श्रीविद्यानन्दनाथविरचितः

सौभाग्यरत्नाकरः

कुलपतेः प्रो. राममूर्तिशर्मणः प्रस्तावनया विभूषितः

सम्पादकः
डॉ. परमहंसमिश्रः 'हंसः'

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी

सम्पूर्णानन्द-
संस्कृत-
विश्वविद्यालयः

श्रीविद्यानन्दनाथविरचितः

सौभाग्यरत्नाकरः

संस्कृत-

योगतन्त्र-ग्रन्थमाला

[२०]

श्रीविद्यानन्दनाथविरचितः

सौभाग्यरत्नाकरः

कुलपतेः प्रो० राममूर्तिशर्मणः प्रस्तावनया विभूषितः

सम्पादकः

डॉ० परमहंसमिश्रः 'हंसः'

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

वाराणसी

योगतन्त्र - ग्रन्थमाला
[२०]

श्रीविद्यानन्दनाथविरचितः

सौभाग्यरत्नाकरः

मूल्यम्

YOGATANTRA-GRANTHAMĀLĀ

[Vol. 30]

SAUBHĀGYARATNĀKARA

OF

ŚRĪ VIDYĀNANDANĀTHA

FOREWORD BY

PROF. RAMMURTI SHARMA

VICE-CHANCELLOR

EDITED BY

DR. PARAM HANS MISHRA 'HANS'

A. 36, Badshahbaga, Varanasi

VARANASI

2000

ISBN : 81-7270-035-0

Research Publication Supervisor –
Director, Research Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi.

❑

Published by –
Dr. Harish Chandra Mani Tripathi
Director, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002

❑

Available at –
Sales Department,
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221 002

❑

First Edition, 500 Copies
Price : Rs. 350 .00

❑

Printed by –
Anand Printing Press
C.27/170-A, Jagatganj,
Varanasi-221 002

योगतन्त्र-ग्रन्थमाला
[३०]

श्रीविद्यानन्दनाथविरचितः

सौभाग्यरत्नाकरः

कुलपतेः प्रो० राममूर्तिशर्मणः प्रस्तावनया विभूषितः

सम्पादकः
डॉ०परमहंसमिश्रः 'हंसः'
ए० ३६, बादशाहबाग
वाराणसी

वाराणस्याम्

२०५७ तमे वैक्रमाब्दे | १९२२ तमे शकाब्दे | २००० तमे ख्रैस्ताब्दे

ISBN : 81-7270-035-0

अनुसन्धानप्रकाशनपर्यवेक्षकः –
निदेशकः, अनुसन्धान-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी ।

❑

प्रकाशकः –
डॉ०हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी
निदेशकः, प्रकाशन-संस्थानस्य
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालये
वाराणसी- २२१ ००२

❑

प्राप्तिस्थानम् –
विक्रय-विभागः,
सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयस्य
वाराणसी - २२१ ००२

❑

प्रथमं संस्करणम्, ५०० प्रतिरूपाणि
मूल्यम् – ३५०.०० रूप्यकाणि

❑

मुद्रकः –
आनन्द प्रिंटिंग प्रेस
सी० २७/१७०-ए, जगतगंज
वाराणसी - २२१ ००२

प्रस्तावना

'सौभाग्यरत्नाकरः' इति शुभाभिधेयोऽयं ग्रन्थः श्रीविद्योपासनापर्यायरूपः श्रीविद्योपास्तिमाश्रित्य सन्दृब्धेषु गौरवग्रन्थेषु ग्रहेषु ग्रहपतिरिव राराजतेतमाम्। श्रीविद्याया आकरग्रन्थेष्वस्य परिगणनं भास्कररायरदीक्षितसदृशैर्वैचक्षण्यविभूषितैः सम्प्रदायप्रवर्त्तकैराचार्यैर्विधीयत इति प्रामाण्यमस्य त्विषांपतिरिव सुस्पष्टमेव सर्वैः स्वीक्रियत एव।

रत्नाकरे तारङ्गिकता स्वाभाविकी स्वक्रिया भवति। तथैव सौभाग्य-समन्वितेऽस्मिन् रत्नाकरे तन्त्रस्य षट्त्रिंशत्तात्त्विकतामतिक्रम्य सप्तत्रिंशत्संख्याका एव तरङ्गा अत्र राजन्ते। तरङ्गेष्वेषु साधकानां सौभाग्यान्येव तरङ्गायन्ते। तरङ्गेषु तरङ्गितानि वैविध्यबृंहितानि रहस्यरत्नानि चिन्तामणिरमणीयानि मणिद्वीपरामणीयकतां प्रदर्शयन्ति। मणिद्वीपसौधसिंहासने राजमानाया राजराजेश्वर्यास्त्रिपुरसुन्दर्यम्बाया ऐश्वर्यं चानुभावयन्ति।

सुभगोदयः, सुभगोदयवासना, सौभाग्यहृदयम्, सौभाग्यसुधोदयादिसुभगसन्दर्भ-परम्परायाः प्रकाशस्तम्भोपमोऽयमनुपमरत्नाकर इति वक्तुं शक्यते।

न कश्चित् श्रीविद्यासमुपासनायाः साधनायाश्चैतादृशो विषयो योऽत्र परित्यक्तः समुपेक्षितो वेत्यस्मिन् रत्नाकरे। अत्र श्रीचक्रम्। अत्र दक्षिणावर्त्तशङ्खः, कौमोदिकी मनोज्ञता। पद्मपद्मपद्मानां मकरन्दराजिः। रत्नाकरोऽयं क्षीरसागरः। यत्र वैष्णवी वैराजिकता राराजते।

भूतिराजतः प्राप्ताया ब्रह्मविद्याया अपि समुल्लेखोऽत्र वर्त्तते। किमधिकं जीवने श्रेयःसाधनानां समुपलब्धेः समग्राः सम्भावनाः समुल्लसिताः सन्ति पदे पदेऽत्र कृताविति ग्रन्थस्य स्वाध्यायेन संज्ञायते।

मान्याः **डॉ॰परमहंसमिश्रमहोदयाः** श्रीतन्त्रालोकसदृशस्य विश्वविश्रुतस्य विश्वकोषस्य सम्पादकाः सिद्धहस्तभाषाभाष्यकाराः परशुरामकल्पसूत्रसम्पादका विद्वन्मूर्धन्यास्तन्त्रशिरोमणयः सन्ति। श्रीविद्यारहस्यपरिदृश्वानो मिश्रमहोदयाः साम्प्रतिके

तान्त्रिके जगति विश्रुताः सततमनवरतं च तन्त्रशास्त्रोद्धारसंलग्नाः सन्ति। प्रमाणमस्य महाग्रन्थस्य सुसम्पादनमिति। साधुवादशतैस्सभाजयामि हंसोपाधिसमिद्धं मिश्रमहोदयम्।

सौभाग्यरत्नाकरेऽस्मिन् सङ्गृहीतानां विषयाणां सम्बन्धेऽपि सम्पादकशिरोमणिना सम्यक् सुस्पष्टीकृतं सम्पादकीये स्वकीये। स्वाध्यायसौविध्यसमृद्धिरत्र दृश्यत एव। प्रमाणनिकषे निकषायितास्सर्वे सिद्धान्तसन्दर्भा इति सम्पादनस्यास्य वैशिष्ट्यम्।

प्रतीयतेऽस्य प्राक्तनस्य ग्रन्थस्य सम्पादने प्रकाशने च काठिन्यम्। पाण्डुलिपि-संशोधनं सर्वविधिविधानमाकलय्य विशुद्धरूपप्रदानं ग्रन्थगौरवसंवर्द्धनाय विषयाणां विश्लेषणं विषयावतरणं सर्वं प्रयाससाध्यमासीत्। तत्सर्वं साधितमध्यवसायसिद्धेन मिश्रमहोदयेनेति प्रसन्नतां व्यनज्मि।

महतोऽस्य प्रकाशनस्य श्रेयःसाधकाः **श्रीमन्तो डॉ०हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठि**महाभागा आशीराशिभिरभिषिच्यन्ते। सम्यक् सम्पादनव्यवस्थया मुद्रण-प्रकाशनव्यवस्थया, आकार-सौन्दर्यशिल्पसमृद्ध्या च प्रकाशननिदेशकैस्सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयं गौरवान्वितं कृतमिति सप्रमाणं समुदीर्यते। शुभाशीर्वादास्पदाः प्रकाशनसंस्थानस्य सर्वे सहयोगिनश्चावसरेऽस्मिन् सुस्मर्तव्याः सन्ति। सर्वैरेतैः कार्येऽस्मिन् स्वकीयानि निर्व्यूढान्युत्तरदायित्वानीति। मुद्रापकं **श्रीजगदीशप्रसादपाण्डेयञ्च** स्मरामि शुभाशंसनञ्च तस्य विदधामि। अन्ते च ग्रन्थमिमं सान्नपूर्णाय श्रीविश्वेश्वराय समुपहरामीति शम्।

रामभूर्ति शर्मा

राममूर्तिशर्मा
कुलपतिः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य

वाराणस्याम्
कार्तिकपूर्णिमायाम्,
वि० सं० २०५७

स्वात्मविमर्श

'सौभाग्यरत्नाकर' अन्वर्थतः सौभाग्य संवर्द्धन के सदुद्देश्य से श्रीविद्या के सम्प्रदाय-सिद्ध सिद्धान्तों और पद्धतियों को ग्रन्थरूप में तरङ्गायित करने वाला रत्नाकर है। समुद्र अर्थ में रत्नाकर का प्रयोग करते समय प्रयोक्ता की दृष्टि उसकी विराट् वारिराशि की तारङ्गिकता पर रहती हो या नहीं, उसमें निहित रत्नराशि की पुष्कलता पर अवश्य रहती है। अपरम्पार ऊर्मिल पारावार को इसी दृष्टि के कारण रत्नाकर की संज्ञा प्रदान की गयी है। उसके उदन्वान् और अर्णव अर्थ में रत्नाकर का प्रयोग नहीं होता। जल के पर्यायवाची शब्दों में रत्न की गणना नहीं होती। सागर के अन्तर्गर्भ की अतल गहराइयों में भरी अनन्त प्राकृतिक सम्पदा के सन्दर्भ में रत्नाकर का निहितार्थ ही समुद्रश्री का शृङ्गार करता है। अपने अर्थ के विराट् परिवेश में रत्नाकर द्रवत्वमयी तारङ्गिकता का परित्याग नहीं करता। अर्थात् अपनी समृद्धि के आधार पर यह सौभाग्य का संवर्धन करता है, भोगेच्छु के लिये रत्नाकर का यही रूप स्वीकार्य है।

मुमुक्षु उपासक के लिये सौभाग्य का यह तरङ्गित रत्नाकर महात्मा विद्यानन्द के चिदाकाश में छाये चिद्घन की आनन्दवादी वारिदमाला का वरदान है। अमृत बन कर बरसने, सरसने और अपने अमर लहराव में लहराने वाला यह रत्नाकर महात्मा सच्चिदानन्द की शक्ति-शुचिता से द्रवित अमृतत्व का प्रतीक है। साधना की विधियों में उतार कर यह उपासक के सौभाग्य का संवर्धन करता है। यह श्रीविद्यारूपरत्न का आकर ग्रन्थ देवी का मणिद्वीप है। तरङ्गें सामुद्र कहलाती हैं। कहीं तरङ्ग समुद्र नहीं होता। इस रत्नाकर में गिनी चुनी केवल ३६ (षट्त्रिंश) तरङ्गें ही तरङ्गायमान हैं। यह पूरी सृष्टि प्रक्रिया ही ३६ तत्त्वमयी है। शिव से लेकर पृथ्वी तत्त्व तक कुल ३६ तत्त्व ही आगमिक तन्त्राचार्य स्वीकार करते हैं। उपासक का शरीर भी ३६ तत्त्वों से समन्वित होता है। इस विषय में श्री अभिनवगुप्तपादाचार्य लिखते हैं कि—

शिवानन्दरसापूर्णं षट्त्रिंशत्तत्त्वसंयुतम्।
देहं दिवानिशं पश्यन् अर्चयन्स्याच्छिवात्मकः॥

अर्थात् शैव संवित्तादात्म्य के आनन्द रसामृत से सराबोर और छत्तीस तत्त्वों से संवलित स्वात्म शरीर या विश्वशरीर को अन्तर्दृष्टि से देखने वाला एवं इसकी पूजा में संलग्न उपासक स्वयं शिव रूप ही हो जाता है[1]।

इसलिये विश्व देवों के तर्पण आदि की पूजासम्बन्धी सभी विधियाँ इस देह के सम्बन्ध में भी सम्पन्न करने की बात शास्त्र करते हैं। आगमिक परम्परा की षट्त्रिंशात्मकता यहाँ व्यक्त की गयी है। यही संस्कार श्रीचक्रसमर्चा के चैतन्यामृत में भी है। इस सौभाग्यसमुद्र के तरङ्गों की विद्यानन्दीय कलना में भी उसी छत्तीस का ही तात्त्विक रूप से समन्वय हुआ है।

मात्र छत्तीस तरङ्गों वाला यह रत्नाकर सौभाग्य की अनन्त भव्यता का उद्भावन करता है। जीवन का सौभाग्य संवर्द्धन ऐसे रत्नाकर की ऊर्मियों में अनवरत उर्मिल होने से ही हो सकता है। सुभगोदय ही जीवन का सौभाग्य माना जाता है। शिवानन्द रूपी इन्दु मण्डल से सौभाग्य की ज्योत्स्ना का प्रसार विश्वविस्तार को प्रकाशमान करता है। यह ग्रन्थ अन्वर्थरूप से सौभाग्य समुद्र की लहरी के सीकरों से साधक की अपनी समस्त अवयव राशि को और अपने अस्तित्व को आर्द्र बनाने का पावन अवसर प्रदान करता है।

सुभगोदय, सुभगोदयवासना, सौभाग्यहृदयस्तोत्र और सौभाग्यसुधोदय आदि ग्रन्थों की परम्परा का पूरक यह ग्रन्थ आनन्दनाथान्त त्रैपुर-सिद्धान्त-सिद्ध योगियों की प्रतिभा का ही प्रतिफलन है। महात्मा शिवानन्दनाथ द्वारा ग्रथित उक्त तीनों ग्रन्थों और सौभाग्य सुधोदय के रचनाकार श्री शिवानन्दनाथ और श्री अमृतानन्दनाथ समकालीन प्रज्ञापुरुष थे।

सौभाग्यरत्नाकर के रचयिता इनके परवर्त्ती ग्रन्थकार हैं। इनका नाम श्रीविद्यानन्दनाथ है। इनके गुरुदेव स्वनामधन्य श्री सच्चिदानन्दनाथ तत्कालीन सिद्ध पुरुषों में अग्रगण्य रूप में परिगणित थे। इसी क्रम में एक अन्य ग्रन्थकार श्रीविद्यानन्दनाथ का नाम इतिहास में प्रसिद्ध है। इन्होंने भी कई ग्रन्थों की रचना की थी। उनकी अर्थरत्नावली प्रसिद्ध पुस्तक है। ज्ञानदीपविमर्शिनी नामक रचना भी उन्हीं की है, किन्तु 'श्री सौभाग्यरत्नाकर' के रचनाकार से प्रथम श्रीविद्यानन्दनाथ भिन्न हैं।

---

१. श्रीतन्त्रालोक आह्निक १५ श्लोक २८४-२८५।

प्रथम श्रीविद्यानन्दनाथ हादिविद्या के पोषक थे। इनके गुरुदेव का नाम श्री रत्नेशानन्दनाथ था। जब कि 'सौभाग्यरत्नाकर' के रचनाकार के गुरुदेव का नाम श्रीसच्चिदानन्दनाथ था। ये कादि विद्या के उपासक थे। इन्हीं के शिष्य श्रीविद्यानन्दनाथ हैं। इनकी एक अन्य रचना का उल्लेख सौभाग्यरत्नाकर के पृष्ठ ३१६ पर है। उस ग्रन्थ का नाम शिवार्चनचन्द्रिका है। ये दोनों रचनाकार श्री भास्करराय के पूर्ववर्त्ती थे। श्री भास्करराय, पदवाक्यपारावार-पारीण सर्वतन्त्रस्वतन्त्र स्वयं सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्य थे। इनका दीक्षा नाम 'श्री भासुरानन्दनाथ' था। इनके नाम के साथ दीक्षित शब्द का भी प्रयोग होता है अर्थात् इन्हें श्री भास्करराय दीक्षित कहते थे। काशिकेय स्वर्गीय श्रीबटुकनाथ शास्त्री खिस्ते इन्हीं की सम्प्रदाय-परम्परा के पूर्णाभिषिक्त सिद्ध पुरुष थे। श्रीभास्करराय भारती दीक्षित श्रीविद्याचिदाकाश के प्रखर प्रकाशमान् सूर्य थे। इन्होंने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर प्रासङ्गिक सन्दर्भों में श्रीविद्या के उक्त उपासकद्वय श्रीविद्यानन्दनाथों को उद्धृत किया है। उन उद्धरणों से यह ज्ञात होता है कि वे कादिविद्यासिद्ध द्वितीय और सौभाग्यरत्नाकर के महान् रचनाकार के समर्थक थे, हादिविद्यासमर्थक श्रीरत्नेशशिष्य श्रीविद्यानन्दनाथ के नहीं।

ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीविद्यानन्दनाथ ने मङ्गलाचरण के सन्दर्भ में जो कुछ लिखा है, उससे भी उनके व्यक्तित्त्व पर प्रकाश पड़ता है। इनके गुरुदेव शिवरूप आत्माराम योगिचक्रचूडामणि थे। ये माँ श्यामलाम्बिका के उपासक थे। सौभाग्यरत्नाकर को स्मृतिशास्त्र की परम्परा में ही परिगणन के पक्षधर थे[1]। अपने गुरुदेव के कृपाकटाक्षपात मात्र से ये पञ्चकृत्यकारी शिवरूप ही हो गये थे। इनकी कोई कुलदेवी के रूप में प्रसिद्ध देवी थी, जिसे इन्होंने चित्तला के अभिधान से अभिहित किया है। इन्होंने समस्त तन्त्रशास्त्रों का आलोडन कर और यामल परम्परा के समस्त ग्रन्थों को आत्मसात् कर गुरु के माध्यम से उनके सार निष्कर्ष रूप रहस्य का साक्षात्कार किया था।

मुख शब्द उपाय अर्थ में भी प्रयुक्त है। 'शैवीमुखमिहोच्यते' उक्ति के अनुसार शिवत्व के साक्षात्कार के उपाय रूप में आणव, शाक्त और शाम्भव उपायों के कथन की चर्चा श्री तन्त्रालोक में आयी है। श्रीविद्यानन्दनाथ ने भी

---

१. "लिखिता दिव्यसौभाग्यरत्नाकर इति स्मृतिः"।

गुरुरूपी उपाय से शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था। 'शिवसूत्र' का प्रसिद्ध सूत्र है– 'गुरुरुपायः' अर्थात् गुरु शास्त्रज्ञान और शैव संवित्तादात्योपलब्धि के लिये उपाय है। इसके अनुसार भी यह सिद्ध होता है कि, ये गुरु के चरणों में बैठ कर ही शास्त्रीय रहस्यों के संदर्शन में समर्थ हो सके थे। इसी तथ्य को वे और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मैं अपने गुरुदेव के चरणारविन्द का चञ्चरीक था।

रहस्यदर्शी विद्वान् ही वीतराग हो सकता है। इस विशेषण से यह सिद्ध होता है कि, पहले इन्होंने समर्थतया शास्त्रों का स्वाध्याय किया। तदनन्तर गुरुदेव से श्रीविद्या की पूर्णाभिषेक दीक्षा ली और वीतराग रहकर विविक्तधी बनकर भी शास्त्रलेखन और शास्त्र परम्परा के प्रवाह के पर्याय बनकर जीवन यापन करते रहे।

ये एक यायावर पर्यटक थे। घूमते हुए भारतीय मनीषियों से विचार विमर्श में रस लेने वाली परम्परा के ये विरक्त मुनिवर्य थे। उन सभी विद्वानों ने इनकी प्रायोगिक प्रवीणता को परिलक्षित कर इनसे यह निवेदन किया कि, आप श्रीविद्यासाधना के सभी प्रचलित पक्षों पर प्रकाश डालते हुए एक ऐसे ग्रन्थ की रचना करें, जिसमें प्रयोग का ही प्राधान्य हो। इन्होंने गुरु द्वारा सारे प्रयोग जान ही लिये थे। स्वयं प्रयोक्ता भी थे ही। ये ऐसे ग्रन्थ की रचना में प्रवृत्त हो गये।

इन्होंने ऐसे ग्रन्थ की रचना की, जिसके विषय में कहा जा सकता है कि, 'न भूतो न भविष्यति' सचमुच यह रत्नों का आकर है। यह सच्चे अर्थ में समुद्र है। यह सौभाग्यप्रद रत्नों से समन्वित श्रीविद्या का आकर ग्रन्थ है। यह इस ग्रन्थरत्न से ही सिद्ध है।

पञ्चस्रोत संकुल, उनकी मणिमालाओं से मनोज्ञ, मणिगणरमणीय, समस्त योगिनीवर्ग के प्रयोग विज्ञान से विशिष्ट, नित्यामण्डलों से इन्दुमण्डलवत् विमण्डित, नवचक्रों की रचना चारुता से महामणिद्वीपवत् रमणीय, न्यासों के विन्यास से विभासित, चरम अर्चनीय के चरणों की पादुका से पावन, चारों वर्गों के फल प्रदान करने में समर्थ सौभाग्यरत्नाकर के प्रकाशन में ये पूर्णतया समर्थ थे, इस वर्णन से यह सिद्ध हो जाता है।

यह महान् ग्रन्थ साधक की दिनचर्या का निदर्शन है। रजनी के तुरीय याम में जग कर नित्यक्रिया निवृत्ति पूर्वक प्रातः मध्याह्न सायं तथा तुरीय सन्ध्या विधियों से लेकर (प्रथम तरङ्ग) जीवन के अन्तिम सन्ध्याकाल (३६वाँ तरङ्ग) में ब्रह्मविद्यापाठश्रवणश्रावणप्रसङ्ग में प्राण के महाप्रयाण पर्यन्त का निर्देश, सन्देश और उपदेश देकर यह महारत्नाकर आराध्य के अस्तित्व तट पर पावन छत्तीस तरङ्गों की छुअन में समाहित हो जाता है। उपासना का कोई अंश इसकी दृष्टि से ओझल नहीं रहता। सुभग-सौभाग्य परम्परा का कोई ग्रन्थ इसके सौभाग्य-शिखर को छू सकने में भी समर्थ नहीं है। यह बात सौभाग्यरत्नाकर के स्वाध्यायानुसन्धान और अनुशीलन में संलग्न साधकों से परोक्ष नहीं रहती।

महामनीषी विद्यानन्दनाथ की कुछ व्यक्तिगत मान्यताओं के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। उन्हीं के आधार पर इनकी अन्यतम कृति के महत्त्व के सम्बन्ध में अपनी धारणा बन सकती है।

१- स्वयं को शिवरूप मानने का दृढ़ निश्चय उपासक में होना ही चाहिये। प्रातःस्तुति के सप्तम श्लोक में उन्होंने स्पष्ट कहा है–

'महापाशाद्विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम्' ।

अर्थात् मैं साक्षात् शिव ही हूँ। इस वैचारिक दार्ढ्य में ध्रुवता का ही सन्देश निहित है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं।

२- चक्र साधना में कमल दलों में अक्षरों के विन्यास की क्रमात्मकता के विषय में इनका निर्णयात्मक कथन चक्रक्रम के अनुसार इस प्रकार है–

(अ) मूलाधार चक्र– वस प्रत्याहार के प्रयोग के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया है कि, 'व' अक्षर के बाद 'स' वर्ण स्वभावतः कहाँ रहे, जिससे व के बाद स बोला जा सके। यह स्थिति तभी हो सकती है, जब मूलाधार के चतुर्दल पद्म में वहीं होनी चाहिये, जिसके आगे के दल अर्थात् उत्तर भाग में सम्मुख ही 'स' मिले।

जैसे–

इसी रूप में वस प्रत्याहार का प्रयोग हो सकता है, अन्यथा नहीं। यह निर्धारण इस निश्चय के साथ कहीं नहीं मिलता।

आ– स्वाधिष्ठान में बल प्रत्याहार क्रम

इ– मणिपूर में डफ प्रत्याहार क्रम

ई– अनाहत में कठ प्रत्याहार क्रम

उ– विशुद्ध में – अः प्रत्याहार का कथन इसी सिद्धान्त की पुष्टि करता है। (सौ०, पृ० २)

३- संसार यात्रा अनुवर्त्तन के लिये गुरु की आज्ञा के विना किसी कर्म का अनुष्ठान उचित नहीं माना जा सकता।

४- श्रीविद्या का साधक अपने अजपाजप का नित्य समर्पण विधिपूर्वक करे। साथ ही चारों सन्ध्याओं को सविधि सम्पन्न करे। यह अनिवार्यतः आवश्यक है।

५- (अ) त्रिपुरभैरवी के कादि रूप का समर्थन उचित है।

(आ) ३६ दिनों में पूरणीय तन्त्रराजोक्त (पृ० २३ श्लोक २, पृ० २४ श्लोक १) विधान साधक के लिये आवश्यक है।

६- समस्त कालचक्र परमेश्वर की क्रमात्मकता नामक विभूति का ही प्रत्यक्ष चित्र है। यह परापरा शक्ति का ही उल्लास माना जाता है।

७- पार्थिवलिङ्ग पूजन आशिवधरान्त व्याप्ति का भावन मात्र है।

८- परदेवता का उल्लास निरन्तर ध्यातव्य है।

९- श्रीचक्र की पूजा के लिये दीपादि और गुरुवर्य से आज्ञा लेना आवश्यक है।

१०- श्रीचक्र के न्यासों की प्रक्रिया में कम से कम ४० प्रकार के सभी न्यास आवश्यक रूप से करणीय हैं।

११- श्रीचक्र की पूजा के बाद भी ३० प्रकार के न्यास उपासक को अपने व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से करना चाहिये।

१२- ऊर्ध्वाम्नाय के लिये न्यासों का पृथक् विधान है। ये सभी अवश्य करणीय हैं। इसके भी बीसों प्रकार के न्यास हैं।

१३- षडन्वय शाम्भव दीक्षा से युक्त उपासक को न्यास अवश्य करना चाहिये। इसमें १५ प्रकार के विशिष्ट न्यास निर्धारित हैं। इसकी पूजा का प्रकार भी भिन्न है। यह १९वें तरङ्ग में है।

१४- षडन्वयशाम्भव रश्मि स्मरण में 'मानसपरेश्वर क्रम का प्राधान्य है। इसके अतिरिक्त नाभसविच्चेश्वर क्रम, वायव्य हंसेश्वरी क्रम, तैजस संवर्त्तेश्वर क्रम, पार्थिवनवेश्वर क्रम के पृथक् विधान अनिवार्यतः करणीय माने जाते हैं। इसमें नित्य होम और बलि भी विहित है।

१५- शाम्भव ३६० रश्मियों के न्यास भी इन क्रमों में चक्रानुसार आवश्यक है। इन रश्मियों का स्वात्मशरीर में धारण करने से साधक विजितेन्द्रिय और तैजसविभूति सम्पन्न हो जाता है।

१६- श्रीचक्र के उपासक के लिये नन्दनोद्यान में मणिद्वीपस्थ मणिमण्डप आदि का ध्यान कर स्वात्मैक्य रूप से चक्रेश्वरी का अर्चन अवश्य करना चाहिये।

१७- श्रीविद्यासाधक को पञ्चम याग अवश्य करना चाहिये। शास्त्रों में इसके महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है।

१८- पञ्चम याग के बाद १. योग, २. गणेश, ३. सौर, ४. वैष्णव, ५. शैव ६. शक्ति पीठों की पूजा करना सभी पूजाक्रमों को पूर्णता प्रदान करता है।

१९- श्रीचक्र की पूजा का श्रीविद्यानन्द-निर्धारित क्रम सर्वतोभावेन विशिष्ट क्रम है। सम्पूर्ण सोलहवाँ तरङ्ग इसी विधान के लिये अर्पित है।

२०- सम्प्रदायानुसारी पूजा ही उपासक की अपनी पूजा मानी जाती है। जैसे कामराज सम्प्रदाय, दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय आदि में जैसी पूजा विहित है, उसी प्रकार की पूजा होनी चाहिये। इसमें गुरु-पंक्ति पूजा का विशिष्ट विधान है।

२१- इस पद्धति में आवरण पूजा अनिवार्यतः करणीय मानी जाती है।

२२- पञ्चपञ्चिकाविधि से दीक्षित उपासक की पूजा को विशिष्टता प्रदान की गयी है। इस क्रम में पाँच कल्पलतायें, पाँच कामदुघेश्वरी, पाँच रत्नेश्वरी, चार समय, और आम्नाय पूजा भी अनिवार्यतः विधेय है।

२३- इनके अनुसार छः प्रकार की बलि और कुमारी पूजा भी इसी पूजा के अङ्ग माने जाते हैं। स्तोत्र पाठ भी पूजा का ही अङ्ग होता है।

२४- किसी निमित्त से होने वाली नैमित्तिक पूजा भी शास्त्रविहित है। इसी तरह काम्य पूजा भी आवश्यक मानी जाती है।

२५- पूजा में मण्डप का अन्यतम महत्त्व है। उसकी रचना का प्रकार शास्त्र सम्मत होना चाहिये। मण्डपान्तर्गत वास्तु, कुण्डादि के विधान शास्त्रीय विधिविधानानुकूल ही मान्य हैं।

२६- क्रियामयी, वर्णमयी, कलामयी, स्पार्शीदीक्षा, दृक्दीक्षा, वागदीक्षा और वेधदीक्षा नामक सात दीक्षायें शास्त्र में प्रचलित हैं। ये सभी महत्त्वपूर्ण हैं। दीक्षित को यह जानना चाहिये। इसमें गुरु और शिष्य दोनों की परीक्षा आवश्यक है। इसके बाद ही दीक्षा दी जा सकती है। २५वें तरङ्ग में दीक्षा-विधि देखनी चाहिये।

२७- पूजा के अन्त में हवन करना चाहिये।

२८- सर्वतोभद्र मण्डल की पूजा का विशिष्ट महत्त्व सर्वशास्त्र स्वीकृत है।

२९- समयाचार का पालन उपासक को अवश्य करना चाहिये। श्रीविद्यानन्दनाथ कुलार्णवतन्त्र वर्णित समयाचार को ही महत्त्व देते हैं। 'प्रयोग-सार' और सोमशम्भु को भी समयाचार की दृष्टि से आदर्श मानते हैं।

३०- ऊर्ध्वाम्नाय का मुख्य ग्रन्थ कुलार्णवतन्त्र है। इसके तीसरे अध्याय में ऊर्ध्वाम्नाय का सम्प्रदाय सिद्ध बीज मन्त्र 'परा प्रासाद' कहलाता है। सौभाग्यरत्नाकर पृ० १५१ में भी इसकी प्रशंसा की गयी है। यहाँ स्पष्ट लिखा गया है कि, ऊर्ध्वाम्नाय में प्रवेश और पराप्रासाद मन्त्र का चिन्तन तथा महाषोढा न्यास का परिज्ञान अल्प तपस्या का फल नहीं, अपितु महान् तपस्या का फल है[1]।

पूरा सौभाग्य रत्नाकर एक तरह से संग्रह ग्रन्थरत्न ही माना जा सकता है। कुछ तरङ्गों के पूरे अंश मात्र उद्धरण हैं। जैसे एकोनत्रिंश तरङ्ग का समयाचारवर्णन केवल कुलार्णव तन्त्र के द्वादश उल्लास के श्लोक तीन से १२८ पर्यन्त, पादुका भक्ति लक्षण के पृ० ३८५ से पृ० ३९५ श्लोकों तक हैं और उसी तरङ्ग के समयाचार वर्णन में श्री कुलार्णवतन्त्रं के एकादश उल्लास के श्लोक ४३ से १०९ तक के हैं, जो पृ० ३९९ तक हैं। उल्लास के शेष

१. सौ० र०, पृ,० १५१ श्लोक ११।

श्लोक प्रयोगसार नामक ग्रन्थ के हैं। कुछ श्लोक सोमशम्भु से लेकर यह उनतीसवाँ तरङ्ग भर दिया गया है। इसमें श्रीविद्यानन्दनाथ का अपना कुछ नहीं है। तरङ्ग के अन्त में "श्रीविद्यानन्देन विरचिते" लिखने की जगह सङ्गृहीते लिखना ही उचित था।

इसी तरह एकत्रिंश तरङ्ग भी श्रीज्ञानार्णव, श्रीकुलमूलावतार, तन्त्रराज आदि के उद्धरणों से ही परिपूर्ण है। श्री विद्यानन्द जी ने स्वयम् इन विषयों पर कुछ कहने की अपेक्षा उन ग्रन्थों के उद्धरण से अपनी तरङ्गें तरङ्गायित की हैं। द्वात्रिंशत्तरङ्ग तो ज्ञानार्णव की तरङ्गों से समुद्रसन्धियों का दृश्य उपस्थित करता है, मानो मलयेशिया और सिंगापुर के नीचे प्रशान्त और हिन्द महासागरों की तरङ्गें ही मिल रही हों। यह किसी ग्रन्थ और ग्रन्थकार के लिये शोभा की बात नहीं मानी जाती है। इसमें एक अच्छाई अवश्य है कि, उद्धरण जहाँ से लिये गये हैं, उनके नाम का उल्लेख अवश्य कर दिया गया है। श्रीविद्यानन्द जी ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह अवश्य किया है कि, उद्धरणों से तरङ्गों को भरने के बाद उन विषयों के प्रयोग पर पर्याप्त बल देने के लिये स्वयं प्रयोग लिखा है। उद्धरण का सन्दर्भ देकर स्वयं प्रयोग मात्र ही यदि इन्होंने लिखा होता, तो ग्रन्थ का आकार इतना विस्तार नहीं प्राप्त कर पाता।

ग्रन्थ के आरम्भ में श्रीविद्यानन्दनाथ जी ने यह स्पष्ट किया है कि,

विचरन्मेदिनीमेतां विद्वद्भिर्विमलात्मभिः।
प्रयोगे प्रार्थितः प्रीत्यै तेषां लोकहिताय च॥
पञ्चस्रोतःप्रयोगार्थं तन्मन्त्रमणिसङ्कुलम्।
समस्तयोगिनीचक्रं ....।
सदाचारादिकं चैव लिख्यते रत्नवारिधौ॥

इससे दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। १- इसमें जितने प्रयोग हैं, वे इनके और इनकी गुरुपरम्परा के हैं, जिनसे इनके प्रयोग प्रमाणित हैं। उक्त श्लोक के अन्त में 'लिख्यते' क्रिया से यह स्पष्ट हो जाता है कि, प्रयोग लेखन जिन तरङ्गों में किया जा रहा है, उनमें उद्धृत ग्रन्थों के मणिगण भी तरङ्गित होने

चाहिये। इसीलिये अनुजोद्दिष्ट रूप से कथ्य बातों का प्रायः उल्लेख उक्त श्लोकों में हो गया है।

जो कुछ भी हो श्रीविद्यानन्दनाथ जी का यह एक महाप्रयास है। श्रीविद्यासम्बन्धी सभी प्रचलित सम्प्रदायसिद्ध पञ्चस्रोत रसपूर्ण सिद्धान्तों का एकत्र समवाय श्रीविद्यानन्दनाथ का सारस्वत महाध्यवसाय ही माना जा सकता है। इसका यह अप्रतिम महत्त्व है कि, विभिन्न प्रकार की दीक्षाओं से दीक्षा-प्राप्त उपासकों के लिये अपनी परम्परा के अनुसार प्रयोगों को समझने का यह महान् आधार ग्रन्थ हो गया है।

वर्तमान संस्करण का आधार एक छायाचित्र प्रति है। मूल हस्तलेख से कई अनुलेखों में लेखकीय अशुद्धियों का आना स्वाभाविक है। इसी क्रम में जो छायाचित्र प्रति हमारे पास आयी, उसमें भी अशुद्धियों का असहज मेल सम्पादन कलाशिल्प प्रकल्प को कठिन बना देने वाला था। अत्यन्त विचार के बाद ही मूल विषय के अनुरूप तत्सम शब्दसमायोजन का आश्रय लेना समय साध्य सिद्ध हुआ है। अन्यथा यह अमूल्य कृति और पहले प्रकाशित हो सकती थी।

ग्रन्थकार श्रीविद्यानन्दनाथ के माता श्यामलाम्बिका के अनन्य उपासक रूप का ही प्रमाण उपलब्ध है। वे मङ्गलाचरण श्लोक में लिखते हैं—

"आत्मारामगुरुं नत्वा ध्यात्वा श्रीश्यामलाम्बिकाम्।
लिखितं दिव्यसौभाग्यरत्नाकर इति स्मृतिः"॥

अर्थात् गुरुचरणों में नमन पूर्वक मैंने आराध्य माँ श्यामलाम्बा का ध्यान किया। ध्यान के उपरान्त ही मैं इस स्मृति ग्रन्थ का लेखन कर रहा हूँ, जिसमें मुख्यरूप से समस्त योगिनी चक्र, नित्यामण्डल, नवचक्रन्यास जो श्रीनाथपादुकामन्त्रसंवलित हैं, श्रीविद्या के नित्य नैमित्तिक अर्चन, कामार्चन, दीक्षाङ्ग, साधकविधान, पुरश्चरण, काम्यहोम, समस्त व्यस्तकलाशिल्पानुसार जप और सदाचार आदि विधान भी इसमें लिखे गये हैं।

ये सारे विधान श्रीविद्या से सम्बद्ध हैं। साधकशिरोमणि की दिनचर्या ऐसी होनी चाहिये, जिसमें उसका दिनान्त के उपरान्त शयन का समय निर्धारित है। इसी के आधार पर वह रजनी के तुरीय याम में जग सकता है। अंग्रेजी की एक कहावत 'अर्ली टु बेड एण्ड अर्ली टु राइज' यहाँ चरितार्थ होती है। तुरीय सन्ध्योपासना सिद्ध साधक के लिये शीघ्रशयन और निशीथ जागरण पुनः शयन और ब्राह्म मुहूर्त्त में जागरण अनिवार्यतः आवश्यक है। साधक किसी परम्परा, किसी सम्प्रदाय या किसी धर्म का हो, उसको स्वास्थ्य, अर्थ और प्रातिभ उत्कर्ष के लिये शयन-जागरण यह अमूल्य मन्त्र अपनाना ही पड़ता है। श्रीविद्यानन्दनाथ परम्परा का साधक दीक्षा प्राप्त है। वह प्रातःकृत्य के उपरान्त शिवरूप गुरु का स्मरण करता है, श्रीपादुका मन्त्र से पूजा कर स्तोत्र पाठ करता है। वह चक्रसाधना सिद्ध है। उसकी कुण्डलिनी जागृत है। उसके आरोह अवरोह क्रम से वह परिचित है, मूलाधार से सहस्रार और सहस्रार से मूलाधार में ले जाने की प्रक्रिया को वहाँ अपनाता है। इसके बाद वाग्भव, कामराजकूट और शक्तिकूटों का प्रयोग करता है। सूर्य सोम मण्डलों के तैजस रूपों को आत्मसात् करता हुआ श्री परदेवता का हृदय कमल में ध्यान करता है। मूलविद्या का जप करता है और स्तोत्र पाठ भी पूरा करता है। इतनी प्रक्रिया के उपरान्त स्वकर्मानुष्ठान की आज्ञा परमाम्बा से प्राप्त होती है।

इसमें सर्वप्रथम अपने गुरु द्वारा उपदिष्ट पद्धति के अनुसार अपने अजपाजप का उन-उन देवताओं को अर्पित करता है। पुनः २१६०० बार अजपाजप करने का संकल्प करता है। नित्यकर्म निवृत्ति के बाद प्रातःकृत्य पूरा करता है। माध्यन्दिन विधि अपनाता है और सायं सान्ध्यविधि पूरा करता है। इसके मध्य के सारे प्रयोग यहाँ निर्दिष्ट हैं, जिनका सम्पादन साधक शिरोमणि करता है।

तुरीय सन्ध्या किये बिना तो साधना अधूरी ही रह जाती है। यह एक क्रम है। इसके बाद तर्पण जप आदि करने के बाद मण्डप आदि के प्रयोग में वह सर्वथा दक्ष है। इसी क्रम से सर्वसाधारण दीक्षा प्राप्त साधक करे। नियमितता आवश्यक है। इसी को अनुशासनबद्ध जीवन शैली कहते हैं। श्री सौभाग्यरत्नाकर के कर्त्ता श्रीविद्यासाधकों की अनुशासनात्मक जीवन शैली के प्रबल पक्षधर रचनाकार हैं, यह इस ग्रन्थ से स्वयंसिद्ध है।

श्रीविद्योपासना से सम्बद्ध यह एक मानक ग्रन्थ है। सम्प्रदाय प्रवर्त्तक प्रज्ञापुरुष श्रीभास्करराय ने 'नित्याषोडशिकार्णव' ग्रन्थ के सेतुबन्ध नामक प्रसिद्ध व्याख्यान में १७ स्थानों पर 'श्रीसौभाग्यरत्नाकर' का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता का यह एक पुष्ट प्रमाण है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विद्यालय से प्रकाशित नित्याषोडशिकार्णव के सेतुबन्ध - व्याख्यान सहित ग्रन्थ में सर्वप्रथम पृ० ६ पर श्रीसौभाग्यरत्नाकर के सम्बन्ध में वे लिखते हैं–

"सौभाग्यरत्नाकरे लिखिता षट्शती ललितार्चनचन्द्रिकादौ लिखितवचनान्यप्येतत्तन्त्रनाम्नैव सन्ति"।

इसी तरह प्रथम विश्राम पृ० ३४ पर इस ग्रन्थ का इस प्रकार उल्लेख है–

"सौभाग्यरत्नाकरे तु चतुर्दशमर्यादावृत्तातिरिक्तान्येव षड्वृत्तानीति तन्त्रराजार्थमभिप्रेत्य सप्तवृत्तान्युक्तानि"। कादिमत में चतुर्दशार मर्यादावृत्त के अष्टदलपद्म के सन्दर्भ में सौभाग्यरत्नाकर और तन्त्रराज की मर्यादा ही श्रीभास्करराय को स्वीकृत है। वस्तुतः श्रीभास्करराय इसमें तीन पक्ष मानते है। १. सर्वकोण स्पर्शपक्ष, २. सर्वकोणों का अस्पर्श और ३. मात्र छः का ही स्पर्श। इसकी व्यवस्था सम्प्रदाय के अनुसार ही की जाती है। वहीं एक स्थान पर कहा गया है कि, 'तन्त्राणां बहुरूपत्वात् कर्त्तव्यं गुरुसम्मतम्' अर्थात् तन्त्रों की अनन्त मान्यताओं के रहते शिष्य गुरुसम्मत व्यवहार और आचार स्वीकार करे।

इसी तरह नित्याषोडशिकार्णव के सेतुबन्ध व्याख्यान में आचार्य प्रवर ने संख्या ३५, ५८, ७९, ९०, ९१, ९३, ९४, ९७, ९८, १३८, १५३, १५४, २४९, २५५ और २७६ पृष्ठों में सौभाग्यरत्नाकर को उद्धृत किया है एवं सम्बद्ध विषयों को विशेष रूप से प्रामाणिक पद्धति से विश्लिष्ट किया है। इस ग्रन्थ के ऐतिहासिक स्तर का भी यह प्रमाण है। श्रीव्रजबल्लभद्विवेदी ने भी नित्याषोडशिकार्णव की भूमिका भाग में यह लिखा है कि, 'भास्कररायोऽनुमोदयति सौभाग्यरत्नाकरकारमतानि सर्वत्र स्वीयेषु ग्रन्थेषु।'

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि, यह ग्रन्थ जीवन के किस स्तर के लिये उपयोगी है ? मानव जीवन में क्रीडाधिकार समाप्त होने पर विद्याधिकार प्राप्त करने की अवस्था आती है। अग्निपुराण यह कहता है कि, विद्याधिकार के स्तर पर छन्द और भाषाज्ञान के लिये काव्य आदि का अध्ययन करना चाहिये। 'अदोषं गुणवत् काव्यं' इस उक्ति के अनुसार विद्वान् बनने के लिये

अवश्य करणीय स्वाध्याय के उपरान्त एक ऐसा स्तर प्राप्त होता है, जिसमें 'काव्यालापाँश्च वर्जयेत्' की उक्ति चरितार्थ होती है। यहाँ जीवन की पूर्वभूमिका समाप्त हो जाती है और चिन्तन प्रधान उत्तर भूमिका का आरम्भ हो जाता है। इस अधिकार में स्थूलदृष्टिसाधित देहभावात्मकता क्षीण हो जाती है और आत्मोत्कर्ष हेतु आध्यात्मिक ज्ञान का जागरण होता है।

भगवान् वसिष्ठ के अनुसार अज्ञान की सात भूमिकाओं को पारकर व्यक्ति ज्ञान भूमिका में प्रवेश करता है। ज्ञान भी साप्तभूमिक ही होता है। १- विवदिषा, २- तनुमानसा, ३- सत्त्वापत्ति, ४- असंसक्ति, ५- पदार्थभाविनी, ६- तदापत्ति (भक्ति) और ७- तुर्यगा। ये सात भूमिकायें ज्ञान क्षेत्र की मानी जाती हैं। इसी अवस्था में ब्रह्मज्ञान होता है। ब्रह्मज्ञान भी शाब्द नहीं अपरोक्षानुभव रूप होना चाहिये। इसके बाद जीवन्मुक्ति, विदेहता, कैवल्य आदि शब्दों से अभिधेय वह अवस्था आती है, जिसमें चिदैक्यदार्ढ्य उपलब्ध हो जाता है। इस क्रम में श्री सौभाग्यरत्नाकर साधक को 'ब्रह्मविद्या' का साधिकार श्रावण करा कर जीवन्मुक्ति का वरदान देने वाला महान् शास्त्र सिद्ध होता है और ज्ञानाधिकार में प्रविविक्षु व्यक्तियों के लिये ही यह उपयोगी है। एक अन्य तथ्य पर भी स्वाध्यायशील साधक को ध्यान देना चाहिये। यह निश्चित है कि, सारी ज्ञानभूमिकायें चित्तबुद्धिपरक ही होती हैं। आराध्य के प्रति अनन्य निष्ठा ही वह नियामिका शक्ति मानी जाती है, जिसके द्वारा उपासक शैवीभूमि में प्रवेश करने का सामर्थ्य अर्जित करता है। श्रीविद्या साधना पद्धतियों में ज्ञानार्णव, दक्षिणामूर्त्ति संहिता, तन्त्रराज और स्वच्छन्द आदि शास्त्र बहिर्याग की प्रधानता पर ही बल देते हैं। वहीं वामकेश्वर तन्त्र और परशुराम कल्पसूत्र आदि शास्त्र अन्तर्याग पर जोर देते हैं।

'श्रीसौभाग्यरत्नाकर' के स्वाध्याय से यह स्पष्ट हो जाता है कि, इसके अनुसार बहिर्याग के सारे विधान अन्तर्याग परक ही हैं। श्रीभगवान् आद्यशङ्कराचार्य ने यह स्पष्ट लिखा है कि,

"चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमनुसन्धाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रः पशुपतिः।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटनात्
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरमिदम्"॥

अर्थात् यह शाक्ततन्त्र परम्परा ही अखिलपुरुषार्थैकसंघटना समर्थ है। श्रीसौभाग्यरत्नाकर के अनुसार सामरस्यमयी उपासना से निश्चित निखिल पुरुषार्थों की सिद्धि हो जाती है, यह सत्य है। दिव्यरसास्वादामोद संवर्धिका श्रीविद्या की साधना साधक को पूर्ण बोध प्रदान करने वाली साधना है। इस महाग्रन्थ के छत्तीस तरङ्गों में तरङ्गायमान महात्रिपुरसुन्दरीपरमाम्बा का वात्सल्य ही तरङ्गित है। ऐसे महाग्रन्थ के सम्पादन का अवसर उसी वात्सल्यमयी परमाम्बा के अनुग्रह का निदर्शन है। मैं यह प्रयास उसी माँ के चरणों में अर्पित कर अपार आनन्द का अभुभव कर रहा हूँ।

सौभाग्यरत्नाकरकार श्री भास्करराय के पूर्ववर्त्ती रचनाकार हैं। श्री भास्करराय ने सर्वत्र इन्हीं के मत का अनुमोदन अपने ग्रन्थों में किया है। श्रीविद्यानन्दनाथ ने सौभाग्यरत्नाकर में अपने जीवनकाल के सम्बन्ध में कोई सङ्केत नहीं दिया है। इतना अवश्य लिखा है कि, मेरा गृहस्थ जीवन का नाम 'श्रीनिवास' था। मैं 'द्रविड' देश का रहने वाला हूँ। अपने सद्गुरुदेव श्री सुन्दरनामा विप्रवंशविभूषण श्रीसच्चिदानन्दनाथ से मैंने तत्त्वज्ञान प्राप्त किया। मेरा दीक्षानाम श्री विद्यानन्दनाथ है। सौभाग्यविद्याओं के मन्त्ररत्नों से युक्त त्रिक दर्शन के ३६ तत्त्वों की संख्या से समन्वित ३६ तरङ्गों वाला यह 'सौभाग्यरत्नाकर' नामक ग्रन्थ मेरी ही कृति है।

ये शिव की राजधानी काशी धाम के अविमुक्त क्षेत्र में गुरु की आज्ञा से निवास करते थे। कब रहते थे, इसका उल्लेख नहीं किया गया है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि, श्री भास्कर के ये पूर्ववर्त्ती थे। उनके जीवन के प्रौढ़ काल में उनके ग्रन्थ की प्रसिद्धि हो चुकी थी।

श्रीभास्करराय का समय श्रीमान् महामाहेश्वर अभिनवगुप्त से सात सौ वर्षों बाद का माना जाता है। श्रीअभिनवगुप्त महामाहेश्वर रूप से विश्वविश्रुत मनीषी के रूप में पहले से ही विख्यात थे। ऐसी कालान्तरालमयी स्थितियों के बाद भी श्रीभास्करराय और श्रीविद्यानन्दनाथ इन दोनों ने महामनीषी अभिनव की चर्चा तक अपने ग्रन्थों में नहीं की, कोई विविदिषा भी नहीं व्यक्त की और नहीं उनके उद्धरण दिये। इस अपवर्जन का कारण केवल साम्प्रदायिक विद्वेष ही माना जा सकता है, जो उस समय विशेष रूप से प्रचलित था। ऐसे उदाहरण बहुत मिलते हैं। मैंने स्वयं तन्त्रशास्त्र के महान् ग्रन्थों के भाष्यों

की रचनायें की हैं, किन्तु श्रीव्रजवल्लभद्विवेदी द्वारा सम्पादित तन्त्र साहित्य के बृहत्संस्कृत साहित्येतिहास में मेरी कृतियों की सक्रियतामयी प्रसरणशीलता का परिचयोल्लेख भी नहीं किया गया है, ऐसा होता रहता है। यह मानव की स्वाभाविक मनःस्थिति का परिचायक है।

श्रीविद्यानन्दनाथ के लिये सौभाग्यरत्नाकर की रचना के क्रम में एक ऐसा प्रसङ्ग आया, जिसमें उनको महामाहेश्वर अभिनवगुप्त का तो नहीं, किन्तु उनके गुरुदेव श्री भूतिराज और श्रीशम्भुनाथ का नाम देना पड़ा और उनके द्वारा प्रवर्त्तित ब्रह्मविद्या का उल्लेख करना पड़ा।

प्रसङ्ग यों आया। सौभाग्यरत्नाकर ग्रन्थ के अन्त में काली आदि दश विद्याओं के साथ मूलविद्या का पारायण क्रम लिखना था। उसे लिखने के बाद उन्होंने पृष्ठ ५७७ में पारायणक्रम का काम्यफल यों उद्धृत किया–

"एवं यः कुरुते नित्यं मन्त्रपारायणं बुधः।
भुक्त्वेह भोगानखिलानन्ते देवीपुरं व्रजेत्"॥

मन्त्र पारायण क्रम में मात्र दीक्षितों का ही अधिकार है। इसका उल्लेख आवश्यक था। उन्होंने लिखा–

दीक्षितास्त्रिविधा प्रोक्ता उत्तमाधममध्यमाः॥

अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के दीक्षित होते हैं। इनमें किसका कहाँ और किस प्रकार का अधिकार है, इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने अन्त्येष्टि का प्रसङ्ग समझाया और इसी सन्दर्भ में ब्रह्मविद्या का उल्लेख करना पड़ा।

श्रीविद्यानन्दनाथ ने ब्रह्मविद्या के मूल प्रवर्त्तक श्रीभूतिराज का उल्लेख पृष्ठ ५८० तरङ्ग ३६ में इस प्रकार किया है–

"श्रीभूतिराजलब्धानि श्रीशम्भुवदनाम्बुजात्।
वाक्यानि ब्रह्मवियायाः प्रणवैः पुटितानि च"॥

इसी क्रम में वे आगे लिखते हैं–

'अथोच्यते ब्रह्मविया सद्यः प्रत्ययकारिका।
शिवः श्रीभूतिराजीयां वियां विनिवेदयेत्॥
सर्वेषामेव भूतानां मरणे समुपस्थिते।
यया पठितयोत्क्रम्य जीवो याति निरञ्जनम्'॥

ये दोनों श्लोक श्रीतन्त्रालोक आह्निक ३० के हैं। इनकी संख्या ६२-६३ है। ये श्रीतन्त्रालोक के भाग ८ में पृष्ठ ३९-४० पर मुद्रित हैं। श्रीतन्त्रालोक में पूरी ब्रह्मविद्या आर्या छन्द में है। सौभाग्यरत्नाकर में सारी आर्यायें ज्यों की त्यों श्रीतन्त्रालोक से उद्धृत हैं पर श्रीविद्यानन्दनाथ ने श्रीतन्त्रालोक का नाम तक इस ग्रन्थ में नहीं आने दिया है। वास्तविकता यह है कि, श्री भूतिराज ने इस विद्या को स्वयं श्रीमदभिनवगुप्त को ही बताया था। महामाहेश्वर श्रीतन्त्रालोक में लिखते हैं–

"शिवः श्रीभूतिराजो यामस्मभ्यं प्रत्यपादयत्"।

(श्री त० ३०।६३)

यही नहीं वे आगे और लिखते हैं–

'एतद्विद्यात्रयं श्रीमद्भूतिराजो न्यरूपयत्।
यः साक्षात् अभजच्छ्रीमाञ्छ्रीकण्ठो मानुषीं तनुम्'॥

(श्री त० ३०।१२०)

यह साहित्यक स्तरीयता यद्यपि वरेण्य नहीं है, किन्तु विद्वद्वरेण्य ऐसा करते हैं, यह इसका प्रमाण है।

अन्त में अन्ताराष्ट्रिय ख्यातिप्राप्त वेदान्तवेत्ता **प्रो० श्रीराममूर्त्ति शर्मा**, कुलपति, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के उत्तरोत्तर उत्कर्ष की कामना करता हूँ। इन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना द्वारा इस महाग्रन्थ की महोपयोगिता को ही ख्याति प्रदान की है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये अनुमोदन इनकी महनीयता का प्रतीक है। इन्हें मेरा भूरिशः आशीर्वचन है।

डॉ० हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी, प्रकाशननिदेशक, प्रकाशन संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी को इस महाग्रन्थ के प्रकाशन के लिये महान् रचनाकार महात्मा श्रीविद्यानन्दनाथ का आन्तर आशीर्वाद मणिद्वीप के वातायन से अभिषिक्त कर रहा है– यह मेरी अनुभूति में प्रत्यक्ष हो रहा है। वैयाकरणशिरोमणि श्री मणि जी ने आज रत्नाकर का यह आकरकोश विश्व के लिये उन्मुक्त कर दिया है, यह इनके समर्पित भाव से संस्कृत विद्यानिधियों के प्रकाशन की निष्ठा का प्रमाण है। श्रीविद्या साधकों को सौभाग्यरत्नाकर

जैसा वरदानोपहार देकर वात्सल्यमयी महात्रिपुरसुन्दरी की कृपा के ये अनन्य अधिकारी बन गये हैं। परमाम्बा जगदम्बा से इनको कुलार्णव के तरङ्ग – पतित्व प्रदान करने की प्रार्थना कर रहा हूँ और अपने आशीःपीयूषराशि से अभिषिक्त कर रहा हूँ।

इस महान् अवसर पर मैं सान्दर्भिक सहयोग के लिये प्रिय डॉ०शीतला-प्रसाद उपाध्याय, उपाचार्य, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी को हार्दिक आशीर्वाद प्रदान कर रहा हूँ।

प्रिय **श्री जगदीश पाण्डेय जी,** आनन्द प्रिंटिङ्ग प्रेस के संस्थापक, व्यवस्थापक और अधिपति हैं। इस महाग्रन्थ के कम्प्यूटर द्वारा इस सुन्दर मुद्रण के लिये आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य मानता हूँ। इनके प्रेस के कर्मचारियों की निष्ठा से इस महान् कृति को यह रूपाकार प्राप्त हुआ है। यह प्रसन्नता का विषय है। मेरी अनन्त मङ्गलकामनायें।

श्रावण-पूर्णिमा
२०५७ वि० सं०

विदुषां वशंवदः
परमहंसमिश्रः
ए ३६ बादशाहबाग, वाराणसी।

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	**प्रथम तरङ्ग**	(१ – १८)
	१- मङ्गलश्लोक - गुरुमुखारविन्द से रहस्यार्थ ज्ञान का उल्लेख, स्वात्मपरिचय, सौभाग्यरत्नाकर रूप 'स्मृति' के प्रणयन का प्रयोजन, श्रीविद्या के साथ नित्य नैमित्तिक और काम्यकर्मविधि आदि की प्रतिज्ञा,	१-२
	२- साधक को साधना के प्रारम्भिक कार्यों का उपदेश और प्रातःस्तोत्र –	२-३
	३- मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त कुण्डलिनी और मातृकाओं का चक्रक्रमानुसार ध्यान व प्रक्रिया का उपदेश –	३-४
	४- मूलविद्याकूट, प्रयोग पूर्वक विधि, अग्नि, अर्क और अब्ज मण्डल का ध्यान, मूलविद्या से प्राणायाम और त्रिपुर-सुन्दरीस्तोत्रपाठ, कर्मानुष्ठान हेतु देवी से अनुज्ञा की प्रार्थना	४-५
	५- अजपाजप समर्पण और आगे करने का संकल्प मोक्षार्थ जप का विनियोग, हृदयादिन्यास और रखने हेतु माता पृथिवी से क्षमा प्रार्थना –	५-६
	६- नित्यकर्मनिवृत्ति, शौचस्नान के सन्दर्भ, तीर्थ मण्डलों के आकर्षण, गङ्गाम्बिका मन्त्र से जल का अभिमन्त्रण, तान्त्रिक सन्ध्या करणीय, इसका चतुर्विधत्व, त्रिपुरार्णवतन्त्र का मत, पाशुपतास्त्र मन्त्र का प्रयोग, सन्ध्या की विशिष्ट विधि, वागीश्वरी देवता का ध्यान, वाग्भवगायत्री जप, मूल विद्या जपविधि –	७-१०

७- सन्ध्याचतुष्टय का सामान्य विधान, नवनाथ पादुका पूजा, प्रातः सन्ध्याविधिः, रुद्रयामलोक्त प्रातः सन्ध्या का महत्त्व १०-११

८- माध्यन्दिन सन्ध्या के पहले के मातृकोदय आदि के साथ अन्य शेष कार्य – ११-१४

९- मध्याह्न में कामराजविद्या का स्मरण, तत्त्वरूपिणी दिन-नित्याओं के साथ त्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकापूजन, षट्त्रिंश-त्तत्त्वयोग, कालनित्या जप, कामराजरश्मि का व्यापक ध्यान – १४-१५

१०- सायंसन्ध्याविधि, ध्यान, शक्तिकूट गायत्रीजप नित्यापरि-वारिता देवी का ध्यान, पादुका पूजा – १५-१७

११- तुरीय सन्ध्याविधि – १८

२. **द्वितीय तरङ्ग** (१९-४१)

१- तान्त्रिक तर्पण, प्रथम दिन का कृत्य, उसका उल्लेख पूर्वक विवरण, अन्य विद्याओं का जप, स्तोत्रपाठ – १९-२४

२- द्वितीयदिनकृत्य २४-२५, तृतीयदिनकृत्य २५ क्रमशः ३६ दिनों के कृत्य – २४-२७

३- वर्ग, पङ्क्ति और योनिपर्याय का 'तन्त्रराज के अनुसार प्रयोग – २७-२९

४- कालरचनाप्रकार, ५७६ भेद, परायण जप के पश्चात् नवकर्म साक्षि स्मरण, सूर्यार्घ्य, चतुरस्रपूजन, सूर्यमन्त्र, आसन, सोमपूजन, नवग्रह पूजन, क्षेत्रपूजन, सूर्यमण्डल ध्यान, मार्त्तण्डभैरव विसर्जन – २९-३३

५- पार्थिवलिङ्गपूजनविधि, स्तोत्रपाठ, क्षमापन स्तोत्रपाठ, शेष विधि – ३३-३५

६- अथ द्वारपूजा, मण्डपमध्यस्थ क्षेत्रपूजा उड्डीशमत उद्धरण, विघ्नोत्सारण ३५-३८

७- द्वारदेवताध्यानश्लोक ३८-४१

३. तृतीय तरङ्ग (४१-५५)

१- मण्डप प्रवेश, प्रदीपप्रज्चालन, दीपनाथ पूजन, चारों द्वार – देवियों की पूजा, भैरवाज्ञा से पूजा, वेदी पर जाकर पृथिव्यादि-पूजन – ४१-४३

२- सौधादिस्थण्डिल, श्रीचक्र का उद्धार, प्रतिष्ठा प्रकार, तन्त्रराजमत-प्रतिष्ठाकाल में 'श्रीरुद्रयामल' के अनुसार श्रीचक्र के अधिकरण, 'मन्त्रराज' मत, दर्क्षिणामूर्त्तिमत 'रत्नसार मत, सारसंग्रह मत, लक्षणसागरमत, प्रस्तावभेदगत त्रैविध्य, फल, 'कूलमूलावतारमत, तन्त्रराज के अनुसार निषिद्धकरण, 'कुलमूलावतार' के अनुसार पीठ व द्रव्य प्रमाण – ४३-४६

३- सौत्रामणितन्त्र, लक्षणसागर, कपिलपञ्चरात्र मत – ४६-४७

४- प्रतिष्ठा प्रकार - तन्त्रराज मत, प्रयोग – शरभ, अघोर, विन्ध्य-वासिनी पूजन, रोगदूरीकरण संकल्पश्लोक, अन्य पूजनविधान और प्राण प्रतिष्ठा विधि विवरण – ४७-५५

४. चतुर्थ तरङ्ग (५६-६८)

१- मातृकान्यास, बाह्यान्तर्मातृकाध्यानन्यास ब्रह्मरन्ध्रवर्णारविन्द ध्यान, बहिर्मातृकाध्यान और न्यास, शुद्धमातृका न्यास, श्लोक, ५६-५९

२- विन्दुमातृकान्यास – ध्यान ६०

३- विसर्गमातृकान्यास – ६०

४- बिन्दुविसर्गमातृका न्यास – ६०

५- हृल्लेखामातृकान्यास

६- बीजादिमातृकान्यास ६१

७- कामबीजमातृकान्यास ६२

८- त्रिबीजमातृकान्यास ६२

९- बालासम्पुटितमातृकान्यास ६३

१०- परासम्पुटितमातृकान्यास – ६३

११- श्रीविद्यायुक्तमातृकान्यास – ६३

१२- हंसमातृकान्यास – ६४

१३- परमहंसमातृकान्यास – ६५

१४- प्रणवोक्तकलामातृकान्यास – ६५-६६

१५- अष्टात्रिंशत्कलामातृकाध्याननन्यास – ६७-६८

५. **पञ्चम तरङ्ग** (६९ – ७९)

१- मूर्त्तिमातृकान्यास (केशवशक्तियामल) ६९-७१

२- श्रीकण्ठमातृकान्यास – ७१-७२

३- प्रपञ्चयागमातृकान्यास – ७२-७३

महागणपतिमन्त्र न्यास, ध्यान, गणपतिबीज न्यास, ध्यान, ७३-७४

४. गणपतिऋक् – गणपतिमालामन्त्र ७४

५. सप्तग्रह न्यास – प्रपञ्चयागमातृकाध्यान ७५

६- भूतलिपिन्यास, श्लोकउद्धरण – संहार-न्यास, स्थिति-न्यास, सृष्टिन्यास ७५-७७

७- षट्त्रिंशत्तत्त्वन्यास ७८-७९

६. **षष्ठ तरङ्ग** (८० – ९०)

१- मूलमन्त्रन्यास, षोढान्यास, ध्यान, गणेशन्यास ध्यान, ग्रहन्यास, नक्षत्रन्यास ८०-८३

२- महायोगिनीन्यास – ८३-८८

३- राशिन्यास, पीठन्यास – ८८-९०

७. **सप्तम तरङ्ग** (९१ – १०५)

१- प्राणायाम, योगपीठन्यास – ९१-९४

२- श्रीचक्रन्यास –

अ – प्रथमावरणन्यास ९४-९५

आ – द्वितीयावरणन्यास ९५-९६
इ – तृतीयावरणन्यास ९६
ई – चतुर्थावरणन्यास ९६-९७
उ – पञ्चमावरणन्यास ९७
ऊ – षष्ठावरणन्यास ९७
ऋ – सप्तमावरणन्यास ९७
ॠ – अष्टमावरणन्यास ९८-९९
ऌ – व्यापकन्यास ९९
ॡ – संहारचक्रन्यास ९९-१००
३- सृष्टिचक्रन्यास १००-१०२
४- स्थितिचक्रन्यास १०२-१०३
५- अक्षरन्यास १०३
६- मूर्त्तिविद्यान्यास, नवचक्रेश्वरी न्यास १०३-१०४
७- श्रीचक्रन्यासफल १०४-१०५

८. **अष्टम तरङ्ग** (१०६ – १२०)

१- करशुद्धिन्यास, आसनन्यासद्वय (चतुरासनन्यास और षडासनन्यास) सभी न्यासों में ऐं ह्रीं सौः और ॐ लगाने का विधान, त्रिपुरा सर्वमन्त्रासन और त्रिपुरामालिनी साध्यसिद्धासन के पृथक् न्यासमन्त्र, षडासनन्यास प्रकार, षडङ्गन्यास त्रिविध भेद – १- रक्षाषडङ्ग, २- मूलविद्याषडङ्गन्यास षडङ्गयुवति न्यास, तीनों न्यासों के विधान – १०६-१०७

२- कामकलापारम्पर्यन्यास –

१- मूलपञ्चदशाक्षरी कामकला रूपध्यान, चरणचतुष्टयन्यास, पादुकान्यास,
२- अन्तः कामकलान्यास – परा, पश्यन्ती, मध्यमा,
वैखरीन्यासान्तर्गत पहले परान्यास,
भैरवयामलोक्त – तरस्थादिलक्षण

पश्यन्ती न्यास प्रकार, मध्यमान्यास, स्थूलमध्यमान्यास, बैखरी-
न्यास – १०७-११२

३- अन्तः कामकलान्यासः, बहिःकामकलान्यासः, आयुधन्यास,
भूषणन्यास, कामरतिन्यास, पञ्चाशत्त्रिपुरान्यास – ११२-११६

४- षोडशकामकलान्यास षोडशसोमकलान्यास ११६-११९
वशिन्यादिवाग्देवताष्टकन्यास, चतुष्पीठन्यास,
कामेश्वर्यादिन्यास, चतुस्तत्त्वन्यास,
मूलविद्यान्यास, नवयोनिन्यास, अन्तर्नवयोनिन्यास,
शृङ्खलान्यास, प्रकटादिन्यास, मठन्यास,

५. न्यासफल आदि – ११९-१२०

९. **नवम तरङ्ग** (१२१ – १४१)

१- फणान्यास, सर्वसम्मोहनन्यास, गुह्यषोढा-
न्यास, तदनन्तर इतिकर्त्तव्य, मूलविद्या-
नवासनन्यास, महाशक्ति न्यास,
श्लोकशतन्यासानुसन्धान १२१-१३८

२- षोढार्णमूलविद्यान्यास, सम्मोहनन्यास,
सोलहबीजों कासंहारन्यास, सृष्टिन्यास, स्थितिन्यास,
सोलह वर्णों का पञ्चविध-वर्णन्यास – १३८-१४१

१०. **दशम तरङ्ग** (१४२-१५४)

ऊर्ध्वाम्नायदीक्षितों का अधिकार –

१- ऊर्ध्वाम्नायन्यास त्रिधाभेद
महाषोढान्यास, शम्भुचरणादिषोडशमूल-
विद्या एवं षडाधारमूलविद्यान्यास
षडन्वय शाम्भवन्यास, महाषोढान्यास, त्र्यंगुलि-
न्यास, पञ्चवक्त्रन्यास, प्रपञ्चन्यास,
भुवनन्यास, मूर्त्तिन्यास, मन्त्रन्यास,
दैवतान्यास, मातृकान्यास, महाषोढान्यास,

न्यासफल 'कुलार्णवतन्त्रोक्त' १५०-१५१, विश्रान्तिचरण-न्यास १५१, शम्भुचरणन्यास, पञ्चाम्बान्यास, नवाकाशनाथ-न्यास १५२, स्वपारम्पर्यन्यास १५३, षोडशमूलविद्या-न्यास १५३, षडाधारमूलविद्यान्यास – १४२-१५४

११. **एकादश तरङ्ग** (१५५ – १६३)

१- षडन्वयशाम्भवदीक्षाप्राप्त के लिये तन्त्रोक्तन्यास

२- वक्त्रन्यास, बीजषोढान्यास, मालिन्यादि षोढान्यास, शब्दराशिन्यास, त्रिविद्या-न्यास, अघोरिकाष्टकन्यास, द्वादशाङ्गन्यास, षडङ्गन्यास, पञ्च महारत्नन्यास, परादि त्रिविध-न्यास, पारम्यर्यन्यास, १५५-१६०

३- दिव्यौघादिगुरुपंक्तिन्यास, सिद्धौघ मानवौघ, षडन्वयमन्त्रन्यास ध्यानश्लोक – १६०-१६३

१२. **द्वादश तरङ्ग** (१६४-१७८)

१- मानसपरेश्वरन्यास शाम्भवरश्मिन्यास, षडन्वय शाम्भवरश्मिस्मरण, मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त ध्यान-विधि, शिरोभाग में षट्कोणप्रकल्पन, वायव्यकोणान्त न्यास १६४-१६६

२- नाभसविद्येश्वरक्रम – १६६ - १६७

३- वायव्य हंसेश्वरीक्रम – १६७-१६९

४- तैजस संवर्त्तेश्वरक्रम १६९-१७०

५- अथ षडङ्गन्यास, वक्त्रन्यास, शक्तिन्यास, विंशति-वक्त्रन्यास, शतवक्त्रन्यास, अङ्गन्यास १७४-१७५

६- पार्थिव नवेश्वरक्रम – १७६-१७८

१३. **त्रयोदश तरङ्ग** (१८० – १८६)

१- श्रीविद्यान्यास के इस प्रकार पादुकापूजनन्यास, श्रीमहत्रिपुर-सुन्दरीशरीरसम्भूत ५६ देवताओं के न्यास, क्रमशः सर्व-चक्रों में न्यास, न्यासविधान, न्यासफल – १८०-१८६

१४. चतुर्दश तरङ्ग (१८७ – २०६)

१- वामकेश्वरतन्त्रोक्त नन्दनोद्यानवर्णन –
प्राङ्गणस्मरण, मण्डपध्यान, वेदिकाध्यान
सिंहासनस्मरण, परशिवाङ्कस्थ देवीध्यान – १८७-१९१

२- हृदय कमल में साङ्ग सपरिवार सावरण देवी का ध्यान –
(चक्रान्तर्गत स्मरण क्रम), स्ववामाग्र में मण्डल संरचना,
संदीपनीविद्या से कलशस्थापन, ग्रामचण्डालिनी, क्रोध-
चण्डालिनी, पशुपाशचण्डालिनी के मन्त्र और पूजन – १९१-१९२

३- कुलार्णवमन्त्र से शुक्लशाप विमोचन १९३

एतद्विषयक वैदिकमन्त्र १९३-१९४

४- अमृतेश्वरीविद्या से अभिमन्त्रण १९४

५- आनन्दभैरव का यामल ध्यान १९४-१९५

आनन्दभैरव, सुरानन्दभैरव, अमृतानन्द, तरुणानन्द,
उन्मनानन्द, ज्ञानानन्द, मुक्तानन्द, परमानन्द, कालभैरवा-
नन्द, नौ भैरव मिथुनों का पूजन, मुद्रा प्रदर्शन, विभिन्न
सूक्ष्मादि शक्तियों का पूजन १९५-१९६

६- प्रथमकूट में वह्निमण्डल, द्वितीय कूट में अर्कमण्डल,
तृतीय कूट में सोम मण्डल पूजन १९६-१९७,

७- रत्नपूजन-गगनरत्न, स्वर्गरत्न, मर्त्यरत्न, पातालरत्न,
नागररत्न, पूजन, पीठपूजन, विशेषार्घ्य, पूजन, अग्नि-
रश्मिपूजन - सूर्यचन्द्रकलापूजन, सोमकलापूजन, शिव-
शक्तिसामरस्य विधान, अमृतेश्वरी मन्त्र अर्घ की
अमृतधारा का प्रवर्त्तन १९७-२००

८- पराप्रासादमन्त्र के प्रयोग की विधि, पूर्णाभिषिक्त की
पृथक् विधि, षडन्वयदीक्षित की पृथक् विधि, वेदमन्त्रों
के प्रयोग, गायत्री का आवाहन पूजन, अमृतेश्वरी विद्या

से आवाहन अभिमन्त्रण, दीपनी विद्या से अभिमन्त्रण, श्रीपात्रस्थापनविधि पूर्ण तथा शेषकृत्य २००-२०२

९- आत्मपूजा २०२-२०६

१५. पञ्चदश तरङ्ग (२०७ – २२८)

१- अथ पञ्चमयागविधि, सर्वसुलक्षणा दूती का आवाहन, पूजन, अलङ्करण, साजसज्जा, आभूषणपरिधानसज्जा, योगपीठपूजन, श्रीचक्रभावन, मपञ्चक के पश्चिम योगिनी बलि, अन्यबलि, पञ्चबाण पूजन, कामपूजन, दूतीप्रत्यङ्गपूजन, वामादिशक्ति पूजन, आदि २०७-२०९

२- दूतीविषयक श्लोक, तदनुकूल उसका स्मरण २०९-२१०

३- रतिशक्ति, कामभेद पूजन, भैरवपूजन, क्षेत्रादिपूजन मातृकाविन्यास, दूतीस्तनमध्यस्पर्श, दूती के हृदय में कामेश्वरीमन्त्र की प्रतिष्ठा, विभिन्न कर्मकाण्ड – २१०-२१२

४- दूती के शिर, मुख, हृदय, गुह्यांग और पैरों के स्पर्श, योनि का तीन बार स्पर्श और उसमें परा, अपरा और परापरा विद्या का चिन्तन, अन्य विधि-प्रक्रिया के बाद परिष्वङ्ग आदि, उसका सम्यक् परितोष, उसके अवट का हेतु से प्रक्षालन, आदि २१२-२१३

५- योगपीठ पूजन, तत्त्वश्रेणी २१३-२१४

६- देवीयामल के अनुसार याग की प्रशंसा २१४-२१७

७- दूतीदोष २१७-२१८

८- ब्रह्मयामल के अनुसार मातङ्गीपूजन, दूतीपूजन का इतिहास २१८-२१९

९- मातङ्गीमन्त्र एवं पूजन प्रंशसा, भोग ही आनन्द २१९-२२१

१०- कुलचूडामणि का उद्धरण, पंचमयाग प्रंशसा २२१-२२३

११- योगपीठपूजा २२३-२२५

	१२- श्रीचक्रपूजाविधि का आरम्भ	२२५-२२६
	१३- सौरपीठपूजा	२२६-२२७
	१४- शैव, वैष्णव और शाक्तपीठपूजाविधि	२२७-२२८
१६.	**षोडश तरङ्ग**	**(२२९ – २३९)**
	१- गुरुपादुकास्मरण, श्रीचक्रपूजन की आज्ञा	२२९-२३०
	२- श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीध्यान मन्त्र, प्राणप्रतिष्ठा क्रम	२३०-२३३
	यागमण्डप में आने की प्रार्थना, पूजन	२३३-२३७
	३- परिवारपूजन, त्रिपुरानित्या, तिथिनित्या भागमालिनी-विद्या, नित्यक्लिना ज्वालामालिनी आदि की सविधि-पूजा, तिथियों के अनुसार नैवेद्य –	२३७-२३९
१७.	**सप्तदश तरङ्ग**	**(२४० – २५१)**
	१- कामराज सम्प्रदाय में गुरुपंक्ति पूजा	२४०-२४१
	२- दक्षिणामूर्त्तिसम्प्रदायानुसार गुरुपङ्क्तिपूजा	२४१-२४३
	३- षडङ्ग युवतीपूजा	२४२-२४३
	४- नवावरणपूजा प्रथमावरण,	२४३-२४४
	द्वितीयावरण, तृतीयावरण	२४४-२४६
	चतुर्थावरण, पंचमावरण	२४७-२४८
	षष्ठावरण, सप्तमावरण	२४८-२४९
	अष्टमावरण, नवावरणपूजन –	२४९-२५१
१८.	**अष्टादश तरङ्ग**	**(२५२ – २६१)**
	१- पञ्चपञ्चिकाविद्या से दीक्षित के लिये श्रीचक्रपूजन का विधान	२५२-२५३
	२- पञ्चकल्पलता	२५३-२५४
	३- पञ्चकामदुघा	२५४-

४- अथ पञ्चरत्नपूजा २५५-२५५

५- अथ चतुःसमयपूजा २५६

६- अथ आम्नाय पूजा २५६-२५७

७- अनुत्तराम्नायपूजा २५७

८- कामकलापारम्पर्यपूजा २५७-२५८

९- ऊर्ध्वाम्नाय दीक्षित के लिये पूजाविधान २५९-२६१

१९. एकोनविंश तरङ्ग (२६२ – २७३)

अ- शाम्भवाख्योर्ध्वाम्नायपूजा
षडन्वयशाम्भवोर्ध्वाम्नाय दीक्षायुक्त का अधिकार, बिन्दुचक्र षट्कोणविभावन और कोणानुसार पूजन, २६२-२६४

आ- षट्दर्शन पूजा २६४-२६५

इ- श्रीचक्रगत समस्त प्रकटगुप्तयोगिनीवृन्द सहित सर्वदेवता पादुका पूजा, श्रीचक्र के बाहर वनिता रूप इन्द्रियादि पूजा, कामकलारूप स्वात्मध्यान और होम २६५

ई- नित्य होमविधि २६६-२६८

उ- नित्यहोम द्रव्य, पूर्णाहुति, वह्नि का स्वात्म में उद्वासन, अशक्त विधि २६८-२७०

ऊ- बलिदान, बाराही बलि २७०-२७३

२०. विंशति तरङ्ग – (२७४ – २८६)

अ- बटुकादिबलि, क्षेत्रपालबलि, गणिपतिबलि, सर्वभूतबलि २७४-२७६

आ- राजराजबलि, ऊर्ध्वाम्नायीय विशेषविधान, अशक्त विधान, २७६-२७८

इ- छागादिबलि, बलि के अन्त में देवी की तृप्ति का विधान, पूजन आरती आदि २७९-२८१

	ई- विशेष आरार्त्तिक्य – कुमारी पूजन, कुमार पूजा, विसर्जन	२८१-२८३
	उ- भोगपात्रसमर्पणविधि, अभाव विधि	
	अन्य करणीय – जप, ऋष्यादि न्यास, करमाला	२८३-२८४
	ऊ- ऊर्ध्वाम्नायी विशेष जपविधान	२८४-२८६
२१.	**एकविंश तरङ्ग**	**२८७**
१-	घण्टादिवाद्यपूर्वक देवीस्तोत्र पाठ	२८७-२९९
	नित्यानन्दमयपरमधाम, गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनी, मन्त्रमयी मातृका, महादेवी मातृका, सर्वेश्वरी महाश्री-सिद्धिमातृका, सिद्धमातृका देवी को प्रणाम	
	परमानन्दरूपिणी महादेवी, क्षकाराक्षररूपिणी	
	अष्टकेश्वरी मातृका, त्रिपुरा –	
२-	प्रार्थनस्तव	२८८
	किमात्मकस्तुति, अम्बिकास्तुति,	२८९
	चैतन्यपञ्चक स्तुति, चतु:पीठेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी	२८९
	शब्दब्रह्ममयी देवी	२९०
	गणेशस्तुति, बटुक क्षेत्रेश चतु:पीठ निवासिनी	२९०
	योगिनियाँ, देवी की प्रार्थना	२९१
	गुरुस्तोत्र, प्रदक्षिणा मन्त्र, क्षमापराधनस्तोत्र,	२९२
	पुष्पाञ्जलि, कामकला रूप अपना ध्यान	२९२
	स्वात्मपरिष्कार मण्डल के सभी कोणों में विविध देवताओं की स्थापना, अर्चना आदि के मन्त्र	२९३-२९६
३-	शान्तिस्तोत्र	२९६-२९७
४-	कर्मकाण्डविधि, नित्य पूजाविधि	२९७-२९८
५-	मानस पूजा विधि आदि	२९८-२९९

२२. द्वाविंश तरङ्ग (नैमित्तिकपूजा) (३००–३११)

१- भूमिका, नित्यार्चन, विशेषदिवस, गुरु जन्मदिन, तिथि, नक्षत्र, स्वजन्मदिन तिथि नक्षत्रादि, विद्या-प्राप्ति दिन, गुरुक्षय दिन, विशिष्ट तिथि में विशेष पूजन ३००

चैत्र पूर्णिमा - दमनक से पूजा, दमनकपूजन विधान - वसन्त रतिकाम, कामगायत्री, कुमारीपूजन दमनपूजाविधानपूर्ण ३००-३०४

चैत्र पूर्णिमा में पूजन न होने पर अन्य तिथियों में पूजा का विधान, क्रमशः अन्य मासों में पूजन ३०४-३०५

२- पवित्रकरचना और आरोपण विधि ३०५-३०६

३- भाद्र, आश्वयुज, नवरात्रिपूजन,

४- कुमारी परिभाषा व पूजन विधान ३०६-३०८

५- पूज्यापूज्य कुमारी लक्षण ३०८

सुवासिनीपूजन लक्षण आदि ३०८-३१०

६- दीपदान, प्रतिमास द्रव्यों का निर्देश ३१०-३११

२३. त्रयोविंश तरङ्ग (३१२–३२३)

१- काम्यपूजाविधिः

काम्य के षट्कर्म (रक्षा-शान्ति-जय-लाभ निग्रह और निधन)

रक्षा=स्तम्भन, शान्ति=भूतादि उपद्रवनिवृत्ति, जय-युद्ध, द्वन्द्व, विशद, द्यूतादि में विजय काम-अभीष्ट प्राप्ति, निग्रह, नियन्त्रण, वशीकरण, निधन, मारण ३१२

२- वारेश, तिथीश, नक्षत्रेश, दिन नित्या, तिथिनित्या, छः धातुदेवता, पंचाशत् मिथुन देवताओं की पृथक्-पृथक् पूजा ३१२-३१३

३- इनकी पूजा के मन्त्र और समय क्रम के पूजा द्रव्य – ३१३-३१५

४- तन्त्रान्तर षट्कर्म

१-शान्ति, २- वश्य, ३- स्तम्भन, ४- विद्वेषण,
५- उच्चाटन और ६- मारण, इनके समय और
सामयिक कर्म ३१५-३१६

५- मण्डल
१- वारि, २- वह्नि, ३- धरा, ४- व्योम, ५- वायु
कर्मानुसार मण्डल प्रयोग ३१६-३१७

६- चैत्रादि मासों के करणीय कार्य (पूजाविशेष)

७- सिद्धिविशेष के लिये विशेषपूजा
श्रीचक्र का इन सब में उपयोग ३१७-३२१

८- पूर्ण सुकुमारी कन्या में देवी का आवाहन,
श्रीचक्र के विशेष प्रयोग ३२१-३२३

२४. चतुर्विंश तरङ्ग (३२४ – ३३६)

१- मण्डप रचना विधि ३२४-३२५

२- महाकपिलपांचरात्र मत ३२५-३२६

३- तन्त्रान्तरीय मत ३२६-३२८

४- ध्वजारोपण आदि ३२८

५- वास्तुपूजा ३२८-३३०

६- वास्तुपूजा के स्थान, फल, कोण कुण्डों की स्थापना
में राशिदृष्टि ३३०-३३१

७- कुण्डों की रचना का प्रकार, वृत्तकुण्ड – अर्धचक्राकृति
आदि त्रिकोण कुण्ड, योनिकुण्ड एवं पृथक् - पृथक्
प्रकार ३३१-३३६

२५. पञ्चविंश तरङ्ग (३३७ – ३५२)

१- दीक्षाविधि –
दिन, तिथि, पक्ष, मास, नक्षत्र फल ३३७-३३९

२- योगकरण – फल ३३९-३४०

३- सबकी दीक्षा के विशेष समय और उनके फल – ३४०-३४१

४- गुरु लक्षण – कादिमत, कुलार्णव मत – ३४४-३४३

५- सच्छिष्य लक्षण – कादिमत, कुलार्णव मत – ३४३-३४५

६- असत् शिष्य – लक्षण, कुलार्णवमत – ३४५-३४७

७- दीक्षा, शिष्य – गुरु के कर्त्तव्य,
वेदिका में श्रीचक्र का उद्धार, कुम्भस्थापन,
अन्य कर्मकाण्ड, दिग्गज-पूजा, आहुति, बलि
आचार्य द्वारा अग्नि स्थापन – ३४७-३५२

२६. **षडविंश तरङ्ग** (३५४ – ३६०)

१- अग्नि स्थापन – गुरु द्वारा कुण्ड निरीक्षण,
आठ संस्कार अक्ष पाठन, स्थण्डिल में चार
संस्कार, कुण्ड निर्माण के कर्म, षडङ्गपूजन
अग्नि आनयन में कवच मन्त्र, साधनात्मक कर्म,
प्रज्वलित अग्नि ३५३-३५६

अग्निस्थापन, स्रुक्, स्रुच्, सप्तजिह्वामुद्रा, कर्मकाण्ड,
कुण्ड में कामेश्वरीगर्भस्थ अग्निका ध्यान ३५६-३५९

२- विविध उपचारों से अग्निपूजन, अग्नि के मुखादि
का प्रकल्पन और उसमें होम, भैरवीतन्त्रमत – ३५९-३६०

२७. **सप्तविंश तरङ्ग** (३६१ – ३७१)

१- हवनप्रकार ३६१

अग्नि के १५ या सोलह संस्कार – ३६१-३६३

२- समित्पञ्चक, अग्निदेव देवियों के लिये होम मन्त्र
गणपति मन्त्र व हवन ३६३-३६४

करशुद्धि, षडासन, षडङ्ग युवती, वशिन्याद्यष्टक
होम, ऋत्विक्कर्म – ३६४-३६५

३- चरु प्रयोग, बलि, दन्तकाष्ठ अधिवासन, षडध्व-
रूप श्रीचक्र ३६५-३६७

४- अग्नि के अङ्ग और अङ्गों में होम के फल, गुरु द्वारा
शिष्य का अभिषेक, तत्त्वशोधन, यथा सम्प्रदाय क्रम
निर्देश और दीक्षा, शिष्य नामकरण, अन्तिम प्रयोग ३६७-३७१

२८. **अष्टाविंश तरङ्ग** (३७२ – ३८३)

१- सर्वतोभद्रमण्डल रचनाप्रकार, रेखाओं कोष्ठकों की
संरचना, वृत्तत्रय निर्माण, षोडश अर्धचन्द्र, अष्टदल,
एकैकदलमूल से केसरद्वय निर्मिति, पद्मसंरचना, पीठ,
पीठमन्त्र, द्वारचतुष्टय, विभिन्न कोष्ठक सहित पद्म
कर्णिका, केसर, दल, पीठ, वीथी, द्वार शोभोपशोभन-
मय पद्म को पञ्चरंगी बनाना ३७१-३७२

२- पञ्चवर्णरज

१- हरिद्राचूर्ण (पीत) तण्डुल चूर्ण (शुक्ल) कुसुम्भ
कुसुम चूर्ण (रक्त) जले चावल का चूर्ण (कृष्ण)
बिल्वचूर्ण (श्याम हरित) ३७२

२- रजोविन्यास प्रकार ३७२

३- अशक्तावस्था के विकल्प, कुम्भस्थापन,
आचार्य द्वारा कुण्ड का संस्कार और दीक्षा ३७२-३७३

४- मण्डपाभाव का विकल्प, अधिवासन विकल्प,
सद्योधिवासन पक्ष, ३७४

५- होमकाल में अग्नि के अङ्गों का ध्यान आवश्यक,
तदनुकूल कृत्य में गृहकल्प का मत, शारदातिलक-
मत, नारद पाञ्चरात्रमत, अग्नि-गन्ध, शब्दलक्षण
(शारदातिलक मत) ३७५

६- अग्नि ज्वाला की आकृति, शिखा का स्वरूप,
निषिद्ध ज्वाला के स्वरूप, शारदातिलक, नारद-

पाञ्चरात्र आदि की दृष्टि ३७६-३७७
७- स्रुक् स्रुव् संरचना, स्थापन प्रकार ३७७-३७९
८- वर्ण दीक्षाविधि ३७९, कलादीक्षा; स्पर्शदीक्षा
वाग्दीक्षा, दृग्दीक्ष ३८० वेध दीक्षा ३८१ ३७७-३८१
९- पूर्णाभिषेक, शिष्य के लिये निर्देश, ३८२-३८३
खारिलक्षण (भविष्यपुराणोक्त) – ३८३
२९. **एकोनत्रिंश तरङ्ग** (३८४ – ४०३)
१- कुलार्णवमत, पादुका का महत्त्व ३८४-३८५
गुरुमहत्त्व, ३८५-३८६
२. भक्ति और भक्त का स्वरूप और भक्ति ३८६
३- माता-पितारूप – १- लक्ष्मीनारायण, २- गिरिजाशिव,
४- गुरुपत्नी, मातापिता ३८७
निर्व्याजगुरुभक्ति, अमाय कुलमार्ग में भक्ति
का वैशिष्ट्य ३८५-३९०
५- गुरुस्व के उपभोग का वर्जन ३९०-३९१
६- गुरु के महत्त्व के प्रतिपादक समय और आचार ३९१-३९५
७- कुलार्णव मत ३९५
८- गुरुयोषित के पाँच प्रकार, देवबुद्धि से स्त्रीपूजा ३९६-३९७
९- वनिता के अतिक्रमण से योगिनियों का कोप,
पुष्प से भी स्त्री के ताडन का निषेध ३९७
कुल वृक्षों के नीचे सोने का निषेध,
श्लेष्मान्तक, करञ्ज, अक्ष, निम्ब, अश्वथ,
कदम्ब, बिल्व, वट, उदुम्बर ये नौ कुलवृक्ष,
१०- कुलशास्त्र की निन्दा का निषेध,
आचारवान् ही योगिनी प्रिय ३९७-३९८

कौलिक में पतन के कारण, प्रायाश्चित्त विधान, मन्त्रिदोष राजा पर, भार्यादोष पति पर और शिष्य दोष गुरु पर पड़ने का निर्देश, ३९९

११- प्रयोगसार का मत ३९९-४००

१२- सोमशम्भु का मत ४०१-४०३

३०. **त्रिंश तरङ्ग** (४०४–४२५)

१- पुरश्चरणविधिः

पुरश्चरण सम्पन्न मन्त्रों की फलप्रदता,
मन्त्रबीजों का प्राधान्य 'वैशम्पायन' की दृष्टि, 'वायवीय संहिता' के मत, 'मन्त्र-तन्त्र प्रकाश' का मत ४०४-४०५

२- श्रीविद्या के पुरश्चरण में 'ज्ञानार्णव' तन्त्र का मत, 'श्रीक्रम संहिता' का मत, 'ज्ञानार्णव' मत, अक्षमाला, स्फटिक-रुद्राक्षमालिका, प्रवालमणि की माला, पुत्रजीवकमाला ४०५-४०७

पुरुषों का योषित् वश्यत्व, 'दक्षिणामूर्त्ति संहिता' का मत, शमी, दूर्वा, अश्वत्थ पल्लव और अर्कयत्रों से पूजा लक्षजप का पुरश्चरणत्व, 'दक्षिणामूर्त्ति संहिता' का वचन, 'ज्ञानार्णव' का मत ४०७-४०८

३- वर्णाक्षमाला (कुलमूलावतारोक्त) वर्गाष्टक जप, पुरश्चरण के अङ्ग, जप, होम, तर्पण, अभिषेक, ब्राह्मण भोजन रूप पञ्चाङ्ग, होम संख्या (तन्त्र राजोक्त) दशाङ्ग पुरश्चरण कथन, पञ्चाङ्ग की श्रेष्ठता ४०८-४१०

४- देश, विभिन्न स्थानों का महत्त्व, दिक्पालबलि, वर्णों का पारस्परिक विरोध, वर्ज्य स्थान, क्षेत्रपाल नाम, कूर्मचक्र ४१०-४११

५- जपमाला, माला संस्कार काल, माला सूत्र-संस्कार, कर्मकाण्ड विधान, वैदिक मन्त्रोल्लेख, संस्कृत माला-स्वरूप, रुद्राक्षप्रतिष्ठा, प्रकारान्तर ४११-४१३

६- विहित ताम्बूलादि द्रव्य, पंचतिक्त-एला, जायफल, कर्पूर, लवङ्ग, जातीपत्र, निषिद्ध वस्तु कथन ४१४

७- आसन, निषिद्धासन, पुरश्चरण के आरम्भ के कर्त्तव्य, चतुर्विध जप के आरम्भ के प्रथम कृत्य, संकल्प, होम, होमाशक्त अवस्था में, 'गौतम' के विचार, 'कुम्भ-सम्भव' मत 'कुलार्णव' मत 'गौतम' मत

भोजनादि सन्दर्भ ४१४-४१७

८- भोज्यवस्तु, वर्ज्यवस्तु भोजन पर्याय, शयन में वेद मन्त्र पाठ, शयन के तान्त्रिक मन्त्र, पौराणिक मन्त्र, स्वप्न फल ४१८-४१९

९- सिद्धिसूचक स्वप्न, अशुभ स्वप्न, नृसिंह मन्त्र, स्वप्न निवेदन, सिद्धि के लक्षण, मन्त्रसिद्धि-पर्याय, अवान्तर पर्याय, हवनादि ४२०-४२२

१०- सम्पुटप्रकार, भूतलिपि, जप प्रकार, प्रकारान्तर, वर्णौषधों के ५१ भेद, अपर प्रकार ४२३

११- मन्त्रबोधन (वाग्भव सम्पुटित मन्त्र)

वशीकरण, पीडन, पोषण, शोषण, दहन प्रकार ४२४

१२- शारदातिलकानुसार 'विदर्भ' के लक्षण ४२५

३१. **एकत्रिंश तरङ्ग** (४२६ – ४५३

१- पुरश्चरण के आरम्भ में अशौच(सूतक)निर्णय, और जपबाधनिषेध ४२६-४२७

२- सकाम पुरुषों के लिये मानस पूजा का विधान ४२७

३- काम्यहोम विधि ४२७

अग्निचक्र का विचार, ग्रहों का क्रम ४२७-४२८

४- सौम्य होम, वह्नि की स्थिति का परिचय, ज्ञानार्णव के अनुसार अग्नि चक्रानुसार होम फल, होमद्रव्य,

		कुलमूलावतार के अनुसार होमद्रव्य और उनके हवन के फल, दशाङ्ग, तन्त्रराज के अनुसार होमद्रव्य फल, ललिताविद्या से होमफल, दिनानुसार होम, नक्षत्रक्रम, होमविशेष, अन्य होम	४२८-४३४
	५-	तर्पण, जप, पुष्पादिहवन द्रव्य और इनसे हवन के फल, पुष्पवर्णानुसार वस्त्रवर्णोपलब्धि हवन के विभिन्न प्रयोग	४३४-४४१
	६-	क्रूर होमतन्त्रराज के अनुसार विधि ग्रहनक्षत्रादि पुत्तलीप्रयोग, श्लोकविषमपद व्याख्या	४४१-४४७
	७-	सर्पशीर्ष स्रुवा से होम, अन्य होम प्रयोग पुत्तलिका प्रयोग, उच्चाटनहोम, विद्वेषण शत्रुनाश कर प्रयोग	४४७-४५३
३२.		**द्वात्रिंश तरङ्ग**	(४५४ – ४७१)
	१-	काम्य होमविधि, (ज्ञानार्णवक्रम)	४५४-४५५
	२-	द्रव्यमान, शारदातिलकोक्त काम्यहोम, कर्षलक्षण,	४५५-४५६
		पिङ्गलामत, नारदपाञ्चरात्र, शैवागम की दृष्टियों से काम्य होम, समिधायें, नारदपञ्चरात्र और वायवीय संहिता मत	४५६-४५७
	३-	काम्यजप ज्ञानार्णवोक्त त्रिपुरसुन्दरी-कूटत्रय साधनविधि	४५७-४६१
	४-	शक्तिबीज का साधन	४६१-४६३
	५-	श्रीचक्रसाधनविधि (ज्ञानार्णवोक्त)	४६३-४६४
	६-	तिलक आदि वश्यप्रयोग	४६५
	७-	आकर्षण प्रयोग	४६५-४६८
	८-	स्तम्भन, मारण	४६८

विद्वेषण, उच्चाटन आदि ४६८-४७०

९- खड्गसिद्धि, वेताल सिद्धि ४७०-४७१

३३. त्रयस्त्रिंश तरङ्गः (४७२ – ४८९)

१- मूलविद्या के भेद – ज्ञानार्णव के अनुसार, वामकेश्वर-तन्त्र के अनुसार, लोपामुद्रापक्ष में सारसङ्ग्रह, हंसवामकेश्वर मत, कामराजमत ४७२-४७४

२- मनुपूजिता विद्या, कुबेर विद्या, चन्द्राराधिता, अगस्त्य-पूजिता, इन्द्राराधिता ४७४-४७५

३- सूर्यपूजितात्रिपुरा, शङ्करपूजिता चतुःकूटा विद्या, षट्कूटा वैष्णवी, दूर्वासापूजिता ४७५-४७६

४- ज्ञानार्णवोक्त भेद, अन्य भेद, सिद्धेश्वरीतन्त्रोक्तमत, वाम-केश्वरमत, सर्वसौभाग्यदायक भेद, रुद्रयामलोक्त भेद ४७६-४८०

५- श्रीक्रमसंहितोक्तप्रकार, वामकेश्वररुद्रयामलैक्य संकेतपद्धतिमत, डामरमत ४८१-४८२

६- श्रीमच्छङ्कराचार्यमत, श्रीसच्चिदानन्दनाथ मत, आनन्दगिरिमत, कुल ५१ भेद ४८२-४८३

७- मन्त्रमेलनचक्र, नक्षत्रचक्ररचना ४८३

कुलर्णवमत, नक्षत्रों का गणभेद ४८४

८- रुद्रयामलोक्तनक्षत्रगण, प्रीतिभेद, राशिचक्र और फल ४८४-४८५

९- पाञ्चभौतिकचक्र, द्वादशारचक्र, षोडशारचक्र ४८५-४८७

१०- सिद्ध, सिद्धसिद्ध और सिद्धसुसिद्ध आदि मन्त्र भेद और फल, ऋणधनशोधन प्रकार ४८७-४८९

३४. चतुस्त्रिंश तरङ्ग ४९०

१- दिननित्या, तिथिनित्या, धातुदेवतारूप ४९२

पचास मिथुनदेवताओं की पूजाविधि का उपक्रम, श्रीतन्त्रराजमत, बलिप्रदान आदि का निर्देश, प्रयोग ४९०-४९२

२-	कामेश्वर्यादिनित्यापूजाविधि, तन्त्रराज और दक्षिणा-मूर्त्तिसंहिता के मत और प्रयोग	४९२-४९७
३-	भगमालिनीनित्यापूजाविधि एवं प्रयोग	४९७-५०२
४-	श्रीनित्यक्लिन्नापूजाविधि, तन्त्रराज, दक्षिणा मूर्त्तिसंहिता मत और प्रयोग	५०२-५०६
५-	भेरुण्डानित्या पूजाविधि तन्त्रराज, दक्षिणा-मूर्त्तिसंहितामत और प्रयोग	५०६-५०९
६-	वह्निवासिनीनित्या पूजाविधि, शास्त्रीयमत और प्रयोग	५०९-५१३
७-	वज्रेश्वरीनित्यापूजाविधि शास्त्रीयमत एवं प्रयोग	५१३-५१७
८-	शिवदूतीनित्यापूजाविधि शास्त्रीयमत एवं प्रयोग	५१७-५२०
९-	त्वरितानित्या पूजाविधि, शास्त्रीयमत एवं प्रयोग	५२०-५२३
३५.	**पञ्चत्रिंश तरङ्ग**	**(५२४–५६२)**
१-	षोडशनित्याओं की दशमीनित्या, कुलसुन्दरीपूजा विधि	५२४-५२८
२-	नित्या-नित्या पूजाविधि और प्रयोग	५२८-५३३
३-	नीलपताका पूजाविधि और प्रयोग	५३३-५३६
४-	विजयानित्या पूजाविधि एवं प्रयोग	५३६-५४०
५-	सर्वमङ्गलानित्या पूजाविधि एवं प्रयोग	५४०-५४३
६-	ज्वालामालिनीपूजा एवं प्रयोग	५४३-५४६
७-	चित्रानित्या, पूजा एवं प्रयोग	५४६-५४८
८-	इडानित्या, पूजा विधि एवं प्रयोग	५४८-५५१
९-	लकिनी, सकिनी-पूजाप्रयोग	५५१-५५२
१०-	पचास मिथुनपूजा	५५२-५५३
११-	मुद्रा एवं लक्षण	५५३-५६१
१२-	जप के समय विहित आसन	५६२

३६. षट्त्रिंश तरङ्ग (५६३ – ५८९)

१- मन्त्रपारायण क्रम, काली के एकपञ्चाशत् मातृका-मन्त्र, बिन्दु विसर्ग सहित पृथक्मन्त्र, पुनः बिन्दु विसर्ग युक्त ५० मन्त्र ५६३-५६५

२- मायाबीज के साथ बने मन्त्र ५६५

३- वाग्भवबीज के साथ बने मन्त्र ५६५

५- कला मन्त्र, चतुर्विधमातृकाक्षरमन्त्र, माया-वाग्भव-कामराजबीजों के साथ ऊह मन्त्रों से जप ५६५-५६६

६- मालिनी मन्त्र, उक्त प्रकारक जप ५६९

७- मातङ्गीमन्त्र, उक्तवत् ऊह मन्त्रजप ५६६-५६७

८- विजया, उक्तवत् पूर्वजप ५६७

९- जया, ” ” ५६७

१०- भगवती, देवी, शिवा एक दिन के सभी मन्त्र २१६०० ५६८-५६९

११- शाम्भवी, काली के उक्तवत् मन्त्र ५६९-५७०

१२- कला, मालिनी, मातङ्गी, विजया, जया, भगवती, देवी शिवा, शाम्भवी देवियों के वाग्भवकामराजबीजों के साथ ऊह मन्त्रजप ५७०-५७३

१३- तृतीयदिन, आसन,. मानसपूजा के बाद चतुर्विध-मातृकाक्षरों के साथ काली, कला, मालिनी, मातङ्गी, विजया, जया, भगवती, देवी, शिवा, शाम्भवी के ६१२० मन्त्र ५७३-५७५

१४- चतुर्थ दिन भी इनके ६१२० मन्त्र जप ५७५-५७६

१५- पञ्चम दिन, षष्ठ, सप्तम, अष्टम नवम दशम दिनों में भी इसी तरह प्रतिदिन ६१२० मन्त्रों के जप एवं फलोक्ति ५७६-५७७

१६- अन्ययागविधिक्रम ५७७-५८०

१७- ब्रह्मविद्या – निष्कला, दीपनीविधि – ५८०-५८२

१८- प्रेत का आकर्षण और पूतपिण्ड में अवस्थापन, आवाहन मन्त्र – पिण्ड में प्रतिष्ठापन, भस्मस्नान आदि श्मशान गमन ५८२-५८३

१९- सन्यासियों की इष्टि – अन्य प्रयोग ५८३-५८४

२०- प्रेतक्रिया और ज्वालामालिनीविद्या से अग्नि और अघोरमन्त्र से 'चिता जलने तक होम, अस्थिसंचय ५८४-५८६

२१- सातवें दिन के बाद अन्य कार्य व पीठविधान, प्रतिमास पूर्त्तपूजा, मूर्त्ति या पादुका रचना, प्रतिष्ठा-पूजा, जीवितान्त्येष्टि विधि, ग्रन्थान्तनिवेदन, आत्मपरिचय ५८६-५९९

॥ श्रीमन्मङ्गलमूर्तये नमः ॥

सौभाग्यरत्नाकरः

अथ प्रथमस्तरङ्गः

आत्मारामगुरुं नत्वा ध्यात्वा श्रीश्यामलाम्बिकाम् ।
लिखिता दिव्यसौभाग्यरत्नाकर इति स्मृतिः ॥

श्रीपरमशिवसाम्राज्यलक्ष्मीश्रीश्यामलाम्बाचरणारविन्दाभ्यां नमः ॥

॥ ॐ अथ ॥

प्रारम्भे सरणे भङ्गे यन्मेदस्यन्दबिन्दवः ।
कारणानि प्रपञ्चस्य तं वन्दे वारणाननम् ॥ १ ॥
सच्चिदानन्दनाथाङ्घ्रिसरोरुहयुगं भजे ।
यत्कटाक्षेक्षण-क्षेपाच्छिवोऽहं पञ्चकृत्यकृत् ॥२॥
प्रकाशरूपा प्रथमे प्रयाणे स्मृतिवर्षिणी ।
प्रतिप्रमाणमेवान्तः पदव्यां चित्तलां भजे ॥३॥
आलोक्य सर्वतन्त्राणि यामलादीन्यशेषतः ।
ज्ञात्वा गुरुमुखात्तेषां रहस्यार्थांश्च तत्त्वतः ॥ ४॥
सच्चिदानन्दनाथाङ्घ्रिसरोजद्वयषट्पदः ।
श्रीविद्यानन्दनाथोऽहं वीतरागो विविक्तधीः ॥ ५॥
विचरन्मेदिनीमेतां विद्वद्भिर्विमलात्मभिः ।
प्रयोगे प्रार्थितः प्रीत्यै तेषां लोकहिताय च ॥ ६॥
पञ्चस्रोतः प्रयोगार्थं तन्मन्त्रमणिसङ्कुलम् ।
समस्तयोगिनीचक्रं प्रवालं लतिकोज्ज्वलम् ॥ ७॥
नित्यामण्डलपूर्णेन्दुं ज्योत्स्नाजालविजृम्भितम् ।
नवचक्रमहाद्वीपं न्यासजालतरङ्गकम् ॥ ८॥

श्रीनाथपादुकापोतं चतुर्वर्गफलामृतम् ।
प्रकाशयामि सौभाग्यरत्नाकरमिति स्फुटम् ॥९॥
श्रीविद्यायाः सभेदाय नित्यनैमित्तिकार्चनम् ।
कामार्चनं च दीक्षाङ्गभूतं प्राच्याङ्गसाधनम् ॥१०॥
दीक्षाभेदः पुरश्चर्यान् तत्कर्मनियमादिकम् ।
काम्यहोमविधिश्चैव सौम्यक्रूरविभेदतः ॥ ११॥
समस्तव्यस्तविद्याया जपात्काम्यफलोदयः ।
सदाचारादिकं चैव लिख्यते रत्नवारिधौ ॥ १२॥

तत्र श्रीमत्साधको रजनीतुरीयायामे विबुध्यावश्यकं कृत्वा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य धौते वाससी परिधाय चाचम्य स्वासने समुपविश्य । पूजामूर्ते-र्निर्माल्यमुपकृष्य पूर्वदिनपूजाविशिष्टपुष्पादिना वक्ष्यमाणसमस्तप्रकटेत्यादि-समष्टिविद्यया त्रिभिरभ्यर्च्य ब्रह्मरन्ध्रस्थश्वेतसहस्रदलकमलकर्णिकायां सिंहासने समुपविष्टं वामाङ्गतया देव्या रक्तवस्त्राभरणमाल्यानुलेपभूषितया वामकरे धृतरक्तलीलाकमलया दक्षिणभुजेनालिङ्गितं श्वेतवस्त्राभरणानुलेपनं मुक्तादामविभूषितं चन्द्रकान्तनिभं त्रिनेत्रं । ज्ञानमुद्रापुस्तकवरदाभयकरं शान्तं सुप्रसन्नं शिवरूपिणं श्रीगुरुं ध्यात्वा तच्चरणारविन्दयुगलाद्विगलि-तामृतधाराभिः स्वदेहं परिप्लुतं विभाव्य प्रणवत्रितारमुच्चार्य वक्ष्यमाण-श्रीगुरुपादुकाविद्यान्ते श्री अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामीति मानसैरुपचारैः सम्पूज्य स्तोत्रं पठेत् । तद्यथा –

स्तुवीत पञ्चभिः श्लोकैः सन्नित्यं सर्वसिद्धये ।
प्रातः प्रबोधसमये जपात्सुदिवसो भवेत् ॥१॥
नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय शिवरूपिणे ।
विद्यावतारसंसिध्यै स्वीकृतानेकविग्रह ॥२॥
नवाय नवरूपाय परमार्थप्रकाशिने ।
सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते ॥३॥

स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने ।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे ॥ ४॥
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिनाम् ।
प्रकाशानां प्रकाशाय ज्ञानानां ज्ञानरूपिणे ॥ ५॥
पुरस्तात्पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कृत्योमुपर्यधः ।
सदा मच्चित्तरूपेण विधेहि भवदासनम् ॥ ६॥
त्वत्प्रसादादहं देव कृतकृत्योऽस्मि सर्वदा ।
महामृत्यु-महापाशाद्विमुक्तोऽस्मि शिवोऽस्म्यहम् ॥ ७॥

इति प्रणम्य

प्रातरारभ्य सायान्तं सायादिप्रातरन्ततः ।
यत्करोमि जगन्नाथ तदस्तु तव पूजनम् ॥ ८॥

हृन्मन्त्रेण स्वहृदि लयं भावयेत् । इति गुरुध्यानम् । विधाय स्वमूलाधारे चतुरस्रवेष्टितं वादिसान्तवर्णचतुष्टययुक्तचतुर्दलपङ्कजं पीतवर्णं ध्यात्वा । तत्कर्णिकायां सोमसूर्याग्निमयमकथादित्रिरेखं कुलशृङ्गाटं त्रिकोणं विभाव्य तन्मध्ये कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलं जपाकुसुमप्रभं सत्त्वरजस्तमोगुणाक्रान्तं कामाख्यं बिन्दुं विभाव्य तदूर्ध्वं कुण्डलीशक्तिं चिद्रूपामष्टत्रिंशत्कृत्वायुक्तं पंचाशद्वर्णविग्रहां श्रीविद्यास्वरूपिणीं तटित्कोटि-प्रभादीप्तां बिसतन्तुतनीयसीं प्रसुप्तभुजगीमिव सार्धत्रिवलयेन स्थितां स्वेच्छया दण्डमहितां कृत्वोत्थाप्य, गुरूपदिष्टविधिना सुषुम्नामार्गेण मूलाधार-स्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाख्यषट्चक्रभेदेन क्रमेण ब्रह्मरन्ध्रस्थित-सहस्रदलकमलं प्राप्य ततः स्रवदमृतधारया रक्तवर्णया वर्णमयीं कुण्डलिनीं तां सन्तर्प्य पुनः सुधाश्रितस्वरूपिणीं मुकुलामृतप्लवेन सुषुम्नान्तर्गतततत्तदाधार-तत्तद्ध्याततत्तद्वर्णतत्तदधिदेवतामाप्लवयनाज्ञाविशुध्यादिक्रमेण मूलाधारं नीत्वा । तथैव स्थापयेदित्यारोहक्रमेण । पराशक्तिं कुण्डलिनीं ध्यात्वा विद्याकूटत्रयं ध्यायेत् । तत्र मूलाधारवह्निमण्डलं दशकलात्मकं विभाव्य तत्र मूलविद्यया प्रथमकूटं वाग्भवाख्यं स्फुरत्तडिल्लताभास्वरमनाहतपर्यन्तं प्राप्तं नादशिखं विभाव्यानाहते सूर्यमण्डलं द्वादशकलात्मकं ध्यात्वा तन्मध्ये

मूलविद्यायाः कामराजाख्यं द्वितीयं कूटमुद्यद्दिनकरसङ्काशमाज्ञापर्यन्त-प्राप्तं नादशिखमथोर्ध्वं प्रसृतरश्मिकं ध्यात्वा। आज्ञाचक्रसोममण्डलं षोडशकलात्मकं ध्यात्वा तन्मध्ये मूलविद्यायाः शक्त्याख्यं तृतीयकूटं पूर्ण-चन्द्रनिभं ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं प्राप्तं नादशिखमथोर्ध्वं प्रसृतरश्मिकं ध्यात्वा ततो मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यायामुद्यद्दिनकरसहस्रभासुरान् तेजोदण्ड-मयमखण्डां ध्यात्वा तत्तेजसा व्याप्तं स्वदेहं परिचिन्त्य तत्तेजसा परिणतां श्रीपरदेवतां हृदयकमले ध्यात्वा। मानसोपचारैः पूजयित्वा मूलविद्यया प्राणायामत्रयं मूलविद्यया वक्ष्यमाणऋष्यादिकरषडङ्गन्यासांश्च कृत्वा मूलविद्यां यथाशक्ति जपित्वा ज़पं समर्प्य स्तोत्रं पठेत्।

प्रातर्नमामि जगतां जनन्याश्चरणाम्बुजम्।
श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्या नमिताया हरादिभिः ॥१॥
प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्याः नमामि चरणाम्बुजम्।
यत्पाद्यमम्बु शिरसि भाति गङ्गा महेशितुः ॥ २॥
प्रातस्त्रिपुरसुन्दर्याः नमामि चरणाम्बुजम्।
हरिर्हरो विरिञ्चिश्च सृष्ट्यादीन् कुरुते यथा ॥ ३॥
प्रातः पाशाङ्कुशशरचापहस्तां नमाम्यहम्।
उद्यदादित्यसङ्काशां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ४॥
प्रातर्नमामि पादाब्जं ययेदं भासते जगत्।
तस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या यत्प्रसादान्निवर्तते ॥ ५॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रातर्नित्यं पठेन्नरः।
तस्मै दद्यादात्मपदं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ॥ ६॥

इति स्तुत्वा प्रणम्य तस्यै निजकृत्यं निवेदयेत्। इति समर्प्य स्वकर्मानुष्ठानार्थं देव्याज्ञां प्रार्थयेत्। तद्यथा –

त्रैलोक्यचैतन्यमयीश्वरीशी श्रीसुन्दरि त्वच्चरणाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयामः ॥१॥

संसारयात्रामनुवर्तमानं त्वदाज्ञया श्रीत्रिपुरे परेशि।
स्पर्धातिरस्कारकलिप्रमादभयानि मां माभिभवन्तु मातः ॥२॥
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वं मे हृषीकेशि हृदि स्थिताहं त्वया नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥३॥

इति देव्याज्ञां प्रार्थ्य स्वगुरूपदिष्टमार्गेण नादानुसन्धानपूर्वकं निरस्त-समस्तोपाधिना केनापि चिद्विकल्पगुरूपदेशेन ज्ञातं सहजसिद्धमजपाजपं तत्तद्देवताभ्यो समर्पयेत्। तद्यथा– अथ पूर्वेद्युरहोरात्रोच्चरितमुच्छ्वास-निःश्वासात्मकं षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रसंख्याकमजपाजपं मूलाधार-स्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाख्य – ब्रह्मरन्ध्रेषु चतुर्दलषड्दलदशदल-द्वादशदलषोडशदलद्विदलसहस्रदलेषु स्वर्णविद्रुमनीलपिङ्गलधूम्रविद्युत्कर्पूरवर्णेषु स्थितेभ्यो गणपतिब्रह्माविष्णुरुद्रजीवात्मपरमात्मश्रीगुरुपादुकाभ्यो यथा-भागशः सर्वेषामिति कृताञ्जलिः सङ्कल्प्य समर्पयेत्। तद्यथा – ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मूलाधारस्थाय गणपतये अजपाजपानां षड्शतानि समर्पयामि नमः। ४ स्वाधिष्ठानस्थाय ब्रह्मणे अजपाजपानां षड्सहस्राणि समर्पयामि नमः। ४ मणिपूरकस्थाय विष्णवे अजपाजपानां षड्सहस्रं समर्पयामि नमः। ४ अनाहतचक्रस्थाय रुद्रायाजपाजपानां षड्सहस्रं समर्पयामि नमः। ४ विशुद्धचक्रस्थाय जीवात्मने अजपाजपानां सहस्रं समर्पयामि नमः। ४ आज्ञाचक्रस्थाय परमात्मने अजपाजपानां सहस्रं समर्पयामि नमः। ४ सहस्रदलकमलकर्णिकामध्यस्थायै श्रीगुरुपादुकायै अजपाजपानां सहस्रं समर्पयामि नमः इति समर्पयेत्। एतावत्कर्त्तुमशक्तश्चेत् ४ मया पूर्वे-द्युरहोरात्रोच्चरितं उच्छ्वासनिःश्वासात्मकषट्शताधिकमेकविंशतिसहस्र-संख्याकमजपाजपं ब्रह्मरन्ध्रस्थसहस्रदलकमलकर्णिकामध्यवर्तिन्यै श्रीगुरु-पादुकायै समर्पयामि नमः। इति गुरवे एवं समर्पयेत्। इत्यजपाजपं समर्प्य ॐ अद्य सूर्योदयमारभ्याहोरात्रं श्वासनिःश्वासात्मकं षट्शताधिकमेक-विंशतिसहस्रसंख्याकमजपाजपमहं करिष्ये। इति कृताञ्जलिपुटः सङ्कल्प्य

अजपामन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा ४ शिरसि हंसाय ऋषये नमः। मुखे ४ अव्यक्तगायत्रीछन्दसे नमः। हृदि ४ परमहंसायै देवतायै नमः। मूलाधारे ४ हं बीजाय नमः। पादयोः ४ सः शक्तये नमः। नाभौ ४ सोऽहं कीलकाय नमः। हृदि ४ ॐकारतत्त्वाय नमः। मूर्ध्नि ४ नभःस्थिताय नमः। कण्ठे ४ उदात्ताय स्वराय नमः इति विन्यस्य मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः । ४ हं सां सूर्यात्मने स्वाहा अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ४ हं सीं सोमात्मने स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः । ४ हं सूं निरञ्जनात्मने स्वाहा मध्यमाभ्यां नमः। ४ हं सैं निराभासात्मने स्वाहा अनामिकाभ्यां नमः। ४ हं सौं अतनुसूक्ष्मप्रबोधात्मने स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ४ हं सः अव्यक्तप्रबोधात्मने स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः। ध्यानम् । तद्यथा –

द्यां मूर्धानं यस्य विप्रा वदन्ति खं वै नाभिं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ।
दिग्भिः श्रोत्रे यस्य पादौ क्षितिं च ध्यातव्योऽसौ सर्वभूतान्तरात्मा ॥
आत्मानमग्निसोमाक्षं पक्षयुक्तं शिवात्मकम् ।
हकारेण बहिर्यान्तं द्विशतं च सकारतः ॥
हं सः सोऽहमिति स्मृत्वा सोऽहं च व्यजहादितः ।
पक्षान् संहृत्य चात्मानमण्डरूपं विभावयेत् ॥

इति विराट्स्वरूपं स्वात्मानं ध्यात्वा तदनुसन्धार्य प्राणवायोर्निर्गम-प्रवेशात्मकमजपामन्त्रं ह स पदं च विंशतिवारं जपित्वा समर्प्य गुरुनाथाय –

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥
धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा ।
तेन सत्त्वेन मां पाहि पापान्मोचय धारिणि ॥

इति भूमिं प्रार्थ्य श्वासानुसारेण तस्यां पादं निधायोत्थाय सपदे अस्त्रमुच्चरन् गृहाद्बहिर्निर्गत्य ग्रामाद्बहिर्नैर्ऋत्यां याम्यां वा दिशि राजपरिवापमात्रां भुवं निर्गत्य दूरे गत्वा मलमूत्रोत्सर्गशौचाचमनादिकं यथाविधि विधाया-निषिद्धदिनेषु विहितकाष्ठेन ४ क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नम इति

मन्त्रेण दन्तान् विशोध्य जिह्वामुल्लिख्य दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य । पुरतः शुद्धदेशे परित्यज्य । वक्ष्यमाणचतुर्लक्ष्मीविद्याभिर्मुखं प्रक्षाल्याचम्य। तिलकुशकुसुम-गन्धाक्षतास्त्राभिमन्त्रितं शङ्कुना शुचिस्थानादुधृतमृद्गोमयधौतवस्त्राण्यादाय नद्यादौ गत्वा अस्त्राभिमन्त्रितवारिणा तीरं प्रक्षाल्य तत्रास्त्राभिमन्त्रितं कुशादिकं निधायोद्धृतजलेन तीर्थाद्बहिः कटिशौचसुगन्धामलकाद्युद्वर्त्तना – मलापकर्षण-स्नानं मृद्गोमयादिभिः स्वशाखोक्तविधिना वैदिकस्नानं च विधाय नाभिमात्रे जले स्थित्वा । ४ ॐ अद्येत्यादि श्री परदेवताप्रीत्यर्थं तान्त्रिकविधिना स्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य । मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलविद्यया ऋष्यादिकं षडङ्गन्यासं च विधाय स्वपुरतः हंसमन्त्रेण तीर्थं चतुरस्रं परिकल्प्य –

४ ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।
तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर ॥

इति प्रार्थ्य क्रोमित्यङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्तीर्थानाकृष्य ।

४ गङ्गे च यमुने चैव गोदावेरि सरस्वति
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।

तज्जले पुरतः स्वकल्पिततीर्थमण्डले मूलविद्यया संयोज्य पुनः सूर्यमण्डलादेव ४ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सर्वानन्दमयी तीर्थशक्ति एहि एहि स्वाहा इति तीर्थशक्तिमावाह्य तस्मिन् तीर्थमण्डलमध्ये तां ध्यायेत् । तद्यथा –

सर्वानन्दमयीमशेषदुरितध्वंसां मृगाङ्कप्रभां
त्र्यक्षां चोर्ध्वकरद्वयेन दधतीं पाशं सृणी च क्रमात् ।
दोर्भ्यां चामृतपूर्णहेमकलशं मुक्ताक्षमालावरे
गङ्गा सिन्धुसरिद्वयादिसहितां श्रीतीर्थशक्तिं भजे ॥ १ ॥

दक्षोर्ध्वयोराद्ये । मध्यस्थाभ्यां कलशं दक्षाद्यधःस्थयोरन्ये इत्यायुध-ध्यानम् । इति ध्यात्वा तद्विद्यया गन्धादिपञ्चोपचारैर्जलमध्यस्थां सम्पूज्य ॐ नमो भगवति ॐ अं अम्बे अम्बालिके अम्बिके महामालिनी एह्येहि भगवति अशेषतीर्थालवाले ह्रीं श्रीं शिवजटाधिरूढे गङ्गे गङ्गाम्बिके स्वाहा इति मन्त्रेण सप्तवारानभिमन्त्र्य ह्रींकारेण जलमालोक्य वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य । मूलविद्यया प्रथमकूटमुच्चार्य – आत्मतत्त्वात्मने नमः । द्वितीयकूटं – विद्या-

तत्त्वात्मने नमः । तृतीयकूट – शिवतत्त्वात्मने नमः इति तत्त्वत्रयं जपे विन्यस्य तत्र श्रीचक्रं विभाव्य हृदयकमलाद् देवीमावाह्य षडङ्गन्यासेन सङ्कुलीकृत्य । तां सावरणां तर्पयित्वा । मूलविद्यया योनिमुद्रया तज्जल-मष्टधाभिमन्त्र्य तस्मिन् जले देवतास्मरणपूर्वकं त्रिर्निमज्योन्मज्य । कुम्भमुद्रया मूलविद्यया स्वशिरसि त्रिरभिषिञ्च्याचम्य मूलविद्यया देवीं त्रिः सन्तर्प्य देवीं विसृज्य वक्ष्यमाणप्रकारेण तत्त्वैराचम्य । अघमर्षणं कृत्वा तीरमागत्य । धौतवाससी परिधायाचम्य । तीर्थमृत्तिकादिनोर्ध्वपुण्ड्रं विधाय । सकुङ्कुमेन चन्दनेन त्रिपुण्ड्रं विधाय । वैदिकसन्ध्यां निवर्त्य तान्त्रिकसन्ध्यां कुर्यात् । सा चतुर्विधा । प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमध्यरात्रिभेदात् । तथा चोक्तं त्रिपुरार्णवे –

सन्ध्या चतुर्विधा ज्ञेया बाला कौमार यौव्वना ।
प्रौढा च निष्कला चेति सन्ध्या देवि प्रकीर्तिता ॥ १ ॥
प्रातःकाले महादेवी विद्यावागीश्वरी मता ।
कामेश्वरी च मध्याह्ने सायं त्रिपुरभैरवी ॥ २॥
मध्यरात्रौ महादेवी ज्ञेया त्रिपुरसुन्दरी ॥ इति ।

तत्र विधिवदाचम्य मूलविद्यया शिखां बध्वा । तथैव प्राणायामत्रयं कृत्वा मूलविद्यया ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय । स्वपुरतः धेनुमुद्रया जलममृतीकृत्य । मूलविद्ययाष्टवारमभिमन्त्र्य । तेन जलेन कुशैरकारादि-क्षकारान्तैः सबिन्दुभिर्मातृकाक्षरैः प्रत्यक्षरं स्वशिरसि प्रोक्ष्य । मूलविद्यया च त्रिः सम्प्रोक्ष्य । सूर्यमण्डले देवीं यथोक्तरूपां ध्यात्वा दक्षिणहस्ते जलमादाय । लं वं रं यं हं इति पाञ्चभौतिकैर्मन्त्रैः सप्तवारमभिमन्त्र्य मूलविद्यया च त्रिरभिमन्त्र्य । तज्जलं बिन्दुभिर्वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां मूलविद्यया च स्वशिरसि त्रिः सम्प्रोक्ष्यावशिष्टजलं वामहस्ते निधाय तेजोरूपं तज्जल-मिडयोत्कृष्य । स्वदेहान्तस्थितं सकलकलुषं प्रक्षाल्य तज्जलं कृष्णवर्णं पिङ्गलया बहिनिर्गतं मत्वा । तज्जलं पुनर्दक्षिणहस्ते कृत्वा स्ववामभागे जलद्वज्रशिलां ध्यात्वा ४ ॐ श्रीं पशु हुं फट् इति पाशुपतास्त्रेण मन्त्रेण तस्यां शिलायामास्फाल्य हस्तौ प्रक्षाल्य मूलविद्यया दक्षिणहस्ते जलमादाय

प्रवहन्निडया सहस्रदलकमलगतपरमामृतेनैकं भूतं विभाव्य। राजदन्त-विवरान्नेत्रमार्गेण निर्गमय्य। तज्जलं वामकरे निधाय। तेन जलेन ४ अमृतमालिनी स्वाहा। इति मन्त्रेण कुशे स्वशिरसि त्रिः प्रोक्ष्य ४ प्रथम-कूटमुच्चार्य आत्मतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। ४ द्वितीयकूटमुच्चार्य विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा। ४ तृतीयकूटमुच्चार्य शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। इति त्रिराचम्य। पुनरेतद्वैपरीत्येन त्रिराचम्य। तद्यथा– ४ तृतीयकूटं शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। ४ द्वितीयकूटं विद्यातत्त्वं। ४ प्रथमकूटं आत्मतत्त्वं। पुनः समस्तविद्यामुच्चार्य सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा। इति त्रिधा। एवं नवधा जलप्राशनेन त्रिराचम्य। मूलविद्यया श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि। इति गन्धपुष्पाक्षतैस्त्रिः सम्पूज्य। जलमञ्जलिनादायोत्थाय ४ प्रथमकूटमुच्चार्य। वागीश्वरीं विद्महे। द्वितीयकूटमुच्चार्य कामेश्वरीं धीमहि। तृतीयकूटमुच्चार्य। तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै एष ते अर्घ्यः स्वाहा। इति त्रिरर्घ्यं दत्वा। ४ ह्रां ह्रीं हं सः श्रीसूर्यं पूजयामि नमः। इति सूर्यं त्रिः सम्पूज्य। ४ ह्रां ह्रीं हं सः श्रीसूर्य एष ते अर्घ्यः स्वाहा। इति सूर्याभिमुखमर्घ्यं अञ्जलित्रयं दत्वा ४ मूलविद्यया श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति महादेवीं त्रिः सन्तर्प्य। ४ ह्रां ह्रीं हं सः श्रीसूर्यं तर्पयामि नमः। इति त्रिः सन्तर्प्य मूलाधारे प्रथमकूटं तटित्कोटिसमप्रभं मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सञ्चित्य। तत्तेजः सुषुम्ना-वर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा वहन्नादाध्वना आकाशस्थवह्निमण्डले समावाह्य तत्तेजसोद्गतां वागीश्वरीं ध्यायेत्। तद्यथा–

पीतां पीताम्बरां पीतस्रग्विभूषानुलेपनाम्।
तटित्कोटिप्रभाभासां बालामक्षस्रगुज्ज्वलाम्॥ १॥
पुस्तकाढ्यकराम्भोजां बह्निपीतनिषेदुषीम्।
वाग्देवीं वाग्भवोद्भूतां त्र्यक्ष्यां च संस्मितां भजे॥ २॥

इत्याकाशस्थवह्निमण्डले ध्यात्वा । प्रथमकूटमुच्चार्य त्रिपुरा वागीश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि। इति गन्धपुष्पाक्षतैः सम्पूज्य । पुनः वक्ष्यमाणां गायत्रीमुच्चार्य त्रिपुरावागीश्वरी श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि नमः । इति त्रिरर्घ्याञ्जलि-मुत्क्षिप्य । पुनः प्रथमकूटमुच्चार्य त्रिपुरावागीश्वरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । इति त्रिः सन्तर्प्य । श्रीगुरुं प्रणम्य । पूर्ववत् प्राणायामऋष्यादिकर-षडङ्गन्यासान् विधाय । मातृकान्यासस्थानेषु प्रणवत्रितारमूलविद्यादिननित्या विद्या हं सः । ॐ नमः । इत्यादिना मातृकां विन्यस्य । पूर्वोक्तां तुरीयगायत्रीं यथाशक्तिं जपित्वा वाग्भवकूटगायत्रीं जपेत् । सा यथा ऐं त्रिपुरादेवी विद्महे वागीश्वरी च धीमहि । तन्नो मुक्तिः प्रचोदयात् । इति वाग्भवगायत्रीं जपेद् यथाशक्तिम् । ततो मूलविद्यां प्रातरित्थं जपेत् । तद्यथा –

तत्र प्रातर्मूलाधार – कमले वह्निमण्डले ।
वाग्बीजरूपां नित्यां तां विद्युत्पटलभासुराम् ॥१॥
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डपाशाङ्कुशलसत्कराम् ।
स्वेच्छागृहीतवपुषां युगनित्याक्षरात्मिकाम् ॥
घटिकावरणोपेतां परितः प्राञ्जलीं तथा ।
ज्ञानमुद्रावरकरां वाग्भवोपास्तितत्पराम् ॥

नवनाथां स्मरेत् भालपङ्कजे योनिमण्डले ॥

दक्षाधः करमारभ्य दक्षोर्ध्वकरपर्यन्तं आयुधध्यानम् । इत्थं सन्ध्या-चतुष्टयेऽपि इति ध्यात्वा प्रणवत्रिताराद्यामूलविद्या दिननित्या विद्या हं सः अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ह्रीं श्रीं प्रकाशानन्दनाथरूपिणी श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरी पादुकां पूजयामि । ४ मूलं दिननित्या विद्या हं सः । ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ह्रीं श्रीं विमर्शानन्दनाथरूपिणीपादुकां । ४ मूलं दिननित्या विद्या हं सः । कं खं गं घं ङं ह्रीं श्रीं आनन्दानन्दनाथरूपिणीपादुकां । ४ मू० दि० नि० हं सः । चं ४ ज्ञानानन्दनाथरूपिणीपादुकां । ४ मू० दि० नि० हं सः । टं ४ । २ सत्यानन्दनाथरूपिणीपादुकां । ४ मू० दि० नि० हं सः । तं ४ । २ पूर्णानन्दनाथरूपिणीपादुकां । ४ मू० दि० नि० हं सः । पं ४ । २

स्वभावानन्दनाथरूपिणीपादुकां । ४ मू० दि० नि०हं सः । यं ४ । २ प्रतिभानन्दनाथरूपिणीपादुकां । ४ मू० दि० नि० हं सः । षं ४ । २ शुभगानन्दनाथरूपिणीपादुकां । इति नवनाथात्मकत्वेन मूलविद्यां जपेत् । ततः तद्दिननित्याविद्यां यथाशक्तिं जपित्वा । इति कालनित्याजपः । ततो मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं मूलविद्यामुद्यत्सूर्यसहस्राभां ध्यायन् । मूलविद्या अष्टोत्तरशतं जपित्वा बहिराकाशस्थाग्निमण्डले पूर्वोक्तरूपां वाग्भवेश्वरीं ध्यायन् । प्रातर्वाग्भवकूटमष्टोत्तरशतं जपित्वा । ततः प्राणायामत्रयं ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासं च विधाय कृतं जपं देव्यै निवेद्य प्रणम्य स्तुत्वा । सूर्यमण्डलाद्वह्निमण्डलाच्च मूलदेवीं वाग्भवेश्वरीं च हृदयमूलाधारे विसृज्य गुरुं प्रणमेदिति । इति प्रातः सन्ध्याविधिः । अत्र कर्मकालेषु गुरुध्यानमुक्तम् । रुद्रयामले –

दीक्षाकाले यथारूपं स्वस्यानुग्रहपर्वणि ।
इष्टं तेन भावेन ध्यायन् माध्याह्निकमाचरेत् ॥

गुरोरिति शेषः । एतद् गुरुध्यानम् । प्रातः स्मरणातिरिक्तकालेषु ज्ञेयम् ।

प्रातः सन्ध्येयमीशानि सर्वकर्मसु सर्वदा ।
कर्तव्यं मन्त्रिणां नित्यं मन्त्रसिद्धिसमृद्धये ॥
प्रातः सन्ध्यां परित्यज्य कर्म कुर्वन् व्रजत्यधः ।
प्रातः सन्ध्यां परित्यज्य देवतापूजनं चरेत् ॥
अशुद्धः स दुराचारः सर्वकर्मबहिष्कृतः ।
प्रातः सन्ध्यां परित्यज्य देवतापूजनं चरेत् ॥
मोहात्कृत्वा महेशानि नरको जायते नरः ।
प्रातः सन्ध्यां परित्यज्य होमं वा तर्पणं शिवे ॥
कुर्वन्नकारणं विप्रः प्रेत्य श्वानो भविष्यति ।
पिशाचो जायते देवि अपि वेदान्तपारगः ॥

सन्ध्यानामपि सर्वासां प्रातःसन्ध्या गरीयसी ।
तस्मात्तां न त्येजेद्विप्रः त्यजन्नरकमाप्नुयात् ॥

इति त्रिपुरार्णववचनादियमवश्यं कर्तव्येति शिवशासनम् । अथ घटिका-पारायणत्वेन षष्टिजपं कुर्यात् । स च पञ्चभिर्दिवसैर्मातृकायाः । तथा पञ्चविंश-तन्त्रराजपटले –

आरभ्य भानो हृदयमेकशो घटिकाक्रमात् ।
एकैकं मातृकावर्णः पञ्चाशत् पीठवर्त्तितः ॥

दिवसैः पञ्चभिस्तस्य षडावृत्तिरुदीरितेति ।

तस्याः मातृकायाः अयमर्थः। चतुर्युगेष्वपि । तत्तद्युगप्रथमदिने सूर्योदयकाले अकार उदयति । ततो द्वितीयघटिकापर्यन्तासु घटिकासु अकारादिक्षकारान्तवर्णविसर्गस्वरसहिताः स्वस्य घटिकोदयकाले समुद्यन्ति। अकाराद् दशवर्णा समुद्यन्ति । इत्थं द्वितीयदिवसे । सूर्योदयकाले एकार उदयति । ततः स्वस्य घटिकोदयकाले एकाराद् द्वाचत्वारिंशद्वर्णा अकाराद्या विंशति-वर्णाश्च समुद्यन्ति । तृतीयदिवसे सूर्योदयकाले चकार उदयति । ततः स्वस्य घटिकोदयकाले चकारादिक्षकारान्ता त्रिंशद्वर्णा अकारादिणकारान्तं त्रिंशद्वर्णा एवं षष्ठिवर्णा समुद्यन्ति । चतुर्थदिवसे सूर्योदयकाले तकार उदयति । ततः स्वस्य घटिकोदयकाले तकारादिक्षकारान्ता अकारादिमकारान्ता षष्टिवर्णा समुद्यन्ति। पञ्चमदिवसे सूर्योदयकाले यकार उदयति । ततः स्वस्य घटिकोदयकाले यकारादिक्षकारान्ता अकारादिक्षकारान्ता षष्टिवर्णा समुद्यन्ति । एवं पञ्चभिर्दिवसैर्मातृकायाः षडावृत्तिर्भवति । एवं क्रमेणैभिर्वर्णै-र्घटिकापारायणपक्षैः षष्ठीजपः कार्यः ! तत्प्रकारः प्रदर्श्यते । ततः तत्र अकारादिक्षान्तः पञ्चाशद्वर्णा विसर्गरहिता दश दश भूत्वा पञ्चवर्गाः । अ १० । ए १० । च १० । त १० । य १०। नामानो भवन्ति । तैः षष्टिजपः कार्यः। तत्प्रकारस्तु । मूलं दिननित्या विद्या हंसः । अं । ४ । मूलं दिन-नित्या विद्या हं सः । आं । एवं क्षान्तान् पञ्चाशद्वर्णानावृत्य । पुनरादि-

वर्गमावर्त्तयेत् । एवं षष्ठिरावृत्तयो मूलविद्यया भवन्ति । द्वितीयदिने । ४ मूलं दिननित्यां विद्या हं सः । एं । ४ मूलं दिननित्या हं सः । ऐं । एवं क्षान्तान् चतुरो वर्गानावृत्य । पुनराद्यद्वितीयवर्गानावर्त्तयेत् । एवं षष्ठिरावृत्तयो मूलविद्यया भवन्ति । तृतीयदिने । ४ मूलविद्या दिननित्या हं सः । चं । एवं क्षान्ता अकारादि णकारान्ताः । एवं षष्ठिरावृत्तयो मूलविद्या भवन्ति । चतुर्थदिने । मूलविद्या दिननित्या हं सः । तं । एवं क्षान्तौ द्वौ वर्गावावृत्य । पुनराद्यं चतुरो वर्गानावर्तयेत् । एवं षष्ठिरावृत्तयो मूलविद्याया भवन्ति । पञ्चमदिवसे । ४ मूलं दिननित्या विद्या हं सः । यं । एवं क्षान्तमेकवर्गमावृत्य । पुनराद्यं चवर्गानावर्त्तयेत् । एवं षष्ठिरावृत्तयो मूलविद्यया भवन्ति । ततः षष्ठे दिने । पुनरकारादित आरभ्योक्तरीत्या घटिकापारायणजपमनवरतं कुर्यात् । अत्राधुना वर्तमानसमये साधकैः ज्योतिःशास्त्रोक्तप्रकारेण अहर्गणेन कलियुगस्य गतदिनानि ज्ञात्वा स्वक्रमारम्भदिनपर्यन्तं गणयित्वा पञ्चभिराहृत्य व्रतदिनेनोदयाक्षरं ज्ञात्वा यस्मिन् दिने उदयाक्षरमकारो भवति, तस्मिन् दिने प्रारभ्य घटिकापारायणं प्रोक्तक्रमेण कार्यमिति । घटिकापारायणजपः । प्रातरेव कार्यः । तन्त्रराजोक्त्या कालत्रयेऽपि कार्यः ।

अथ माध्यन्दिनसन्ध्या । तत्र प्राणायामादिसूर्यतर्पणान्तं प्रातः सन्ध्यावदेव विधाय । बीजसन्ध्या कुर्यात् । सा यथा – तत्र मध्याह्ने अनाहतचक्रे मूलविद्याया कामराजकूटं रक्तवर्णं ध्यायन् । तत्तेजः सुषुम्नामार्गेण वहन्नासापुटाध्वना निःसार्य आकाशस्थसूर्यमण्डले समावाह्य । तदुद्भवां कामेश्वरीं ध्यायेत् । तद्यथा –

रक्तांशुरक्ताम्बरभूषणाढ्यां पाशाङ्कुशाभीतिवरां दधानाम् ।
शुचिस्मितामुद्भटयौव्वनाढ्यां कामेश्वरीं तां स्मरतात् त्रिनेत्राम् ॥

इति ध्यात्वा कामराजकूटमुच्चार्य श्रीत्रिपुराकामेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि । इति त्रिः सम्पूज्य पुनः ४ कामराजकूटं गायत्रीमुच्चार्य श्रीत्रिपुराकामेश्वरी-

श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहेति त्रिरर्घ्याञ्जलिमुत्क्षिप्य पुनः कामराजकूटमुच्चार्य श्रीत्रिपुराकामेश्वरीश्रीपादुकां तर्पयामि नमः। इति त्रिः सन्तर्प्य प्राणायामादिपुरःसरं पूर्ववन्मातृकां विन्यस्य पूर्ववत्तुरीयविद्यागायत्रीं जपित्वा कामराजकूटगायत्रीं जपेत्। सा यथा ४ क्लीं त्रिपुरादेवीं विद्महे। कामेश्वरीं च धीमहि। तन्नः क्लिन्नाप्रचोदयात्। इति कामराजकूटगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा षड्त्रिंशत्तत्त्वात्मिकां मूलविद्यां जपेत्। तद्यथा –

मध्याह्ने हृदम्भोजकर्णिकायां सूर्यमण्डले।
कामराजात्मिकां देवीं अलक्तकसमारुणाम्॥
प्रसूनबाणपुण्ड्रेक्षुपाशचापाङ्कुशान्विताम् ।
सहितां स्वात्ममुख्याभिः षट्त्रिंशत्तत्त्वशक्तिभिः॥
रक्तमाल्याम्बरालेपभूषाभिः परिवारिताम्।
युगनित्याक्षरमयीं घटिकावरणां स्मरेत्॥
पुष्पबाणेक्षुकोदण्डधरां शोणवपुर्धराम्।
हृत्पङ्कजे च तां भजे कामराजपरायणां॥

इति देवीं ध्यात्वा। मूलविद्या दिननित्या विद्या हंसपदं चोच्चार्य अं शिवतत्त्वरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि ॥१॥ ४ मूलं दिननित्या विद्या हं सः। कं शक्तितत्त्वरूपिणी० ॥२॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। खं सदाशिवतत्त्वरूपिणी० ॥३॥ ४ मू० दि नि० हं सः। गं ईश्वरतत्त्वरूपिणी० ॥४॥ ४ मू० दि० नि हं सः। घं शुद्धविद्यातत्त्वरूपिणी० ॥५॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। ङं मायातत्त्वरूपिणी० ॥६॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। चं कलातत्त्वरूपिणी० ॥७॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। जं अविद्यातत्त्वरूपिणी० ॥८॥४ मू० दि० नि हं सः। जं रागतत्त्वरूपिणी० ॥९॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। झं कालतत्त्वरूपिणी० ॥१०॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। जं नियतितत्त्वरूपिणी० ॥११॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। टं पुरुषतत्त्वरूपिणी० ॥१२॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। ठं प्रकृतितत्त्वरूपिणी० ॥१३॥ ४ मू० दि० नि० हं सः। डं

अहङ्काररतत्त्वरूपिणी श्रीपादुकां पूजयामि ।।१४।। ४ मू० दि० नि० ङं सः। ढं बुद्धितत्त्वरूपिणी० ।।१५।। ४ मू० दि० नि० हं सः। णं मनस्तत्त्वरूपिणी० ।।१६।। ४ मूलं दि० नि० हं सः। तं श्रोत्रतत्त्वरूपिणी० ।।१७।। ४ मू० दि० नि० हं सः। थं त्वक्तत्त्वरूपिणी० ।।१८।। ४ मू० दि० नि० हं सः। दं चक्षुस्तत्त्वरूपिणी० ।।१९।। ४ मू० दि० नि० हं सः। धं जिह्वातत्त्वरूपिणी ।।२०।। ४ मू० दि० नि० हं सः। नं घ्राणतत्त्वरूपिणी० ।।२१।। ४ मू० दि० नि० हं सः। पं वाक्तत्त्वरूपिणी० ।।२२।। ४ मू० दि० नि० हं सः। फं पाणितत्त्वरूपिणी० ।।२३।। ४ मू० दि० नि० हं सः। बं पादतत्त्वरूपिणी० ।।२४।। ४ मू० दि० नि० हं सः। भं पायुतत्त्वरूपिणी० ।।२५।। ४ मू० दि० नि० हं सः। मं उपस्थतत्त्वरूपिणी० ।।२६।। ४ मू० दि० नि० हं सः। यं शब्दतत्त्वरूपिणी० ।।२७।। ४ मू० दि० नि० हं सः। रं स्पर्शतत्त्वरूपिणी० ।।२८।। ४ मू० दि० नि० हं सः। लं रूपतत्त्वरूपिणी० ।।२९।। ४ मु० दि० नि० हं सः। वं रसतत्त्वरूपिणी०।।३०।। ४ मू० दि० नि० हं सः। शं गन्धतत्त्वरूपिणी० ।।३१।। ४ मू० दि० नि० हं सः। षं आकाशतत्त्वरूपिणी० ।।३२।। ४ मू० दि० नि० हं सः। सं वायुतत्त्वरूपिणी ।।३३।। ४ मू० दि० नि० हं सः। हं वह्नितत्त्वरूपिणी० ।।३४।। ४ मू० दि० नि० हं सः। लं सलिलतत्त्वरूपिणी० ।।३५।। ४ मू० दि० नि० हं सः। क्षं पृथिवीतत्त्वरूपिणी०। श्रीत्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।।३६।। इति षट्त्रिंशत्तत्त्वयोगेन मूलविद्यां जप्त्वा। ततः कालनित्या विद्यामष्टोत्तरशतं जपित्वा। प्राग्वत् मूलविद्यामष्टोत्तरशतं जपित्वा। हृदयकमले कामराजकूटं बालार्ककोटिप्रभं हृदयादिब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं हृदयादिमूलाधारान्तं च व्याप्तरश्मिकदम्बकं ध्यायन्। कामराजकूटमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा प्राणायामादिपूर्वकं जपं समर्प्य। स्तुत्वा प्रणम्य मूलदेवीं कामेश्वरीं च प्राग्वत्। हृदये विसृजेदिति। इति मध्याह्नसन्ध्याविधिः।

।। अथ सायंसन्ध्याविधिः ।।

तत्र प्राणायामादिसूर्यतर्पणान्तं प्राग्वद् विधाय बीजं सन्ध्यां कुर्यात्। सा यथा सायमाज्ञाचक्रे हं क्षाब्जे चन्द्रमण्डले मूलविद्यया तृतीयकूटं शुद्ध-

स्फटिकसङ्काशं ब्रह्मरन्ध्रस्थपूर्णेन्दुमण्डलपर्यन्तं ध्यात्वा । बहन्नासापुटेनाकाशस्थ-सोममण्डले समावाह्य तदुद्भूतां देवीं वृद्धां ध्यायेत् । तद्यथा –

शुक्लां शुक्लाम्बरामेव स्रग्विभूषाविभूषिताम् ।
जटाजूटधरां नेत्रत्रयोद्भासिमुखाम्बुजाम् ॥
ईषद्व्यायतदंष्ट्रां च लम्बमानपयोधराम् ।
पाशाङ्कुशं पुस्तकं च स्फटिकाक्षस्रजं करैः ॥
दधानां शक्तिबीजोत्थां पूर्णेन्दुमण्डले स्थिताम् ।
ध्यायेदाज्ञां परां शक्तिं शक्तिमद्भिर्निषेविताम् ॥
भोगमोक्षप्रदां शान्तामलंताममृतेश्वरीम् ॥

वामाद्यहृदयोर्ध्वं तदाद्यधस्तदित्यन्ये । इत्यायुधध्यानम् । इति ध्यात्वा मूलविद्यया तृतीयकूटमुच्चार्य त्रिपुरामृतेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः । इति गन्धादिभिः सम्पूज्य वक्ष्यमाणत्वात् । तृतीयकूटगायत्रीमुच्चार्य त्रिपुरा-मृतेश्वरीश्रीपादुकास्तर्पयामि नमः । इति त्रिः सन्तर्प्य प्राणायामादिपूर्वकं मातृकां विन्यस्य । तुरीयविद्यागायत्रीं प्राग्वज्जपित्वा । शक्तिकूटगायत्रीं जपेत् । सा यथा – ४ सौः त्रिपुरादेवी विद्महे शक्तीश्वरी च धीमहि । तन्नो अमृता प्रचोदयात् । इति शक्तिगायत्रीमष्टाविंशतिवारं जपित्वा सायाह्ने षोडश नित्यात्मकत्वेन मूलविद्यां जपेत् । तद्यथा –

सायमग्नौ सरोजस्थे चन्द्रे चन्द्रसमुद्युतिं ।
शक्तिबीजात्मिकां चापबाणपाशाङ्कुशान्विताम् ॥
युगनित्याक्षरां देवीं घटिकावरणां पराम् ।
चिन्तयित्वा भगवतीं नित्याभिः परिवारिताम् ॥
पुस्तकं चाक्षसूत्रं दधानां स्मेरवक्त्रकां ।
नित्यां षोडश चाग्नेयां सायंकाले तु संस्मरेत् ॥

इति देवीं ध्यात्वा । ४ मू० दि० नि० हं सः । अं कामेश्वरी नित्या विद्यामुच्चार्य अं कामेश्वरी नित्यारूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि ।

४ मू० दि० नि० हंसः। आं भगमालिनीविद्यामुच्चार्य भगमालिनी नित्यास्वरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादु०। ४ मू० दि० नि० हं सः। इं नित्यक्लिन्नाविद्यामुच्चार्य। नित्यक्लिना नित्यास्वरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादु०। ४ मू० दि० नि० हं सः। ईं भेरुण्डाविद्यामुच्चार्य। भेरुण्डानित्या स्वरूपिणी श्रीमहात्रिपुर०। ४ मू० दि० नि० हं सः। उं वह्निवासिनीविद्यामुच्चार्य। वह्निवासिनी नित्यास्वरूपिणीश्रीमहात्रिपुर०। ४ मू० दि० नि० हं सः। ऊं महावज्रेश्वरी-विद्यामुच्चार्य। महावज्रेश्वरीनित्यास्वरूपिणी श्रीमहात्रिपुर०। मू० दि० नि० हं सः। ऋं शिवदूतीविद्यामुच्चार्य। शिवदूती नित्यास्वरूपिणी श्रीमहात्रिपुर०। ४ मू० दि० नि० हं सः। ॠं त्वरितविद्यामुच्चार्य। त्वरितनित्यास्वरूपिणी श्रीमहा०। ४ मू० दि० नि० हं सः। ऌं कुलसुन्दरीविद्यामुच्चार्य। कुलसुन्दरी नित्यास्वरूपिणी श्रीमहा०। ४ मू० दि० नि० हं सः। ॡं नित्यानित्याविद्यामुच्चार्य नित्यानित्यास्वरूपिणी श्रीमहा०। ४ मू० दि० नि० हं सः। एं नीलपताका-विद्यामुच्चार्य नीलपताकाविद्यास्वरूपिणी श्रीमहा०। ४ मू० दि० नि० हं सः। ऐं विजयानित्याविद्यामुच्चार्य विजयानित्यास्वरूपिणी श्रीमहा०। ४ मू० दि० नि० हं सः। ओं सर्वमङ्गलानित्याविद्यामुच्चार्य सर्वमङ्गला नित्या स्वरूपिणी श्रीमहा०। ४ मू० दि० नि० हं सः। औं ज्वालामालिनीनित्या विद्यामुच्चार्य ज्वालामालिनी नित्यास्वरूपिणी श्रीमहा०। ४ मू० दि० नि० हं सः। अं चित्रानित्याविद्यामुच्चार्य चित्रानित्याविद्यास्वरूपिणी श्री महा०। ४ मू० दि० नि० हं सः। अः मूलपञ्चदशीविद्यामुच्चार्य मूलपञ्च-दशीविद्यास्वरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामि नमः। इति षोडश नित्यानित्यात्मकत्वेन मूलविद्यां जपित्वा पूर्ववत् कालनित्याविद्यां मूलविद्यां च जपित्वा भ्रूमध्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तृतीयकूटं शरच्चन्द्रनिभं ध्यायन्नष्टोत्तरशतवारं तार्तीयकूटं जपेत्। ततः प्राणायामपूर्वकं जपं समर्प्य स्तुत्वा देवीं प्रणम्य सूर्यमण्डलाच्चन्द्रमण्डलाच्च मूलदेवीममृतेश्वरीं हृदि भ्रूमध्ये च विसृजेदिति। सायंसन्ध्याविधिः॥

॥ अथ तुरीयसन्ध्याविधिः ॥

ततोऽर्धरात्रे तुरीयसन्ध्यामुपासीत। सा यथा – अर्कमण्डले ध्यानं विना प्राणायामाद्याचमनपर्यन्तं पूर्ववद्विधाय सहस्रारकमले। तुरीयकूटं मूलविद्या त्रयोदशाक्षररूपं पद्मरागसमप्रभं ध्यात्वा वहन्नासापुटेन तारकमण्डलाद्बहिः परमाकाशे समावाह्य। तदुद्भूतां भगवतीं यथोक्तरूपां ध्यायन्। तुरीयकूटमुच्चार्य महात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि। त्रिः सम्पूज्य यथोक्तरूपां ध्यात्वा तुरीयकूटमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहेति त्रिरर्घ्यं दत्वा पुनस्तुरीयकूटमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां तर्पयामि। इति त्रिः सन्तर्प्य प्राणायामादिपूर्वकं पूर्वोक्तां तुरीयगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा कालनित्या विद्या मूलविद्यामष्टोत्तरशतवारं तुरीयबीजं चाष्टोत्तरशतवारं जपित्वा प्राणायामादिपूर्वकं जपं समर्प्य देवीं स्तुत्वा परमाकाशात्। सहस्रदलकर्णिकायामुद्वास्य कामकलारूपमात्मानं ध्यायेदिति। तुरीयसन्ध्याविधिः।

एतत् सन्ध्याचतुष्टयमेतद्विद्योपासकानामावश्यकं बाह्यशाक्तध्यानरूपमप्यर्धरात्रिसन्ध्योपासनं कार्यमिति। अकृतं द्वितीयदिने प्रायश्चित्तार्थमष्टोत्तरशतं मूलविद्यां जपित्वा पुनः कर्म कर्त्तुमधिकारो भवतीति शिवशासनम्। स्नानसन्ध्यार्चनालोपे। अष्टोत्तरशतमिति तन्त्रराजवचनात्। जपेदेवं मूलविद्यायामिति शेषः। अत्र सन्ध्यालोपो न कर्तव्यः। शम्भोराज्ञैवैवमेव हि। दीक्षितः सन्ध्यया हीनो न विद्याफलमश्नुतेति वचनात्। सन्ध्याचतुष्टयं साधकैरवश्यं कर्तव्यमिति शेषः। अत्र प्रमादादिना सन्ध्यालोपो भवति। तदात्वन्यसन्ध्यासमये प्रोक्तप्रायश्चित्तपूर्वकं पूर्वसन्ध्यां क्रियां विधाय तत्कालसन्ध्यां कुर्यात्। उक्तं च त्रिपुरार्णवे –

सन्ध्याहीनोऽन्यसन्ध्यायां पूर्वसन्ध्याक्रियामथ।
विधायोत्तरसन्ध्यायां क्रियां कुर्यात्समाहितः। इति।
श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गः प्रथमोऽगमत्॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे प्रथमस्तरङ्गः ॥ १ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ द्वितीयस्तरङ्गः

इत्थं सन्ध्यां विधाय प्रकृते प्रातः सन्ध्यानन्तरं पित्रादितर्पणं निर्वर्त्य तान्त्रिकतर्पणं कुर्यात् । तत्र प्राणायामत्रयं ऋष्यादिन्यासपूर्वकं स्वपुरतो जले पूर्ववत् तीर्थमावाह्य वमिति धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य तत्र श्रीचक्रं विभाव्य तन्मध्ये वक्ष्यमाणप्रकारेण पीठपूजापुरःसरं देवीमावाह्य षोडशोपचारैर्जले देवीं सम्पूज्य वक्ष्यमाणविधिनाङ्गावरणदेवताः सम्पूज्य पुनर्मूलेन देवीं सम्पूज्य ४ मूलविद्यामुच्चार्य । श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां तर्पयामि नमः । इत्यष्टोत्तरशतं तदर्धमष्टाविंशतिवारं यथाशक्ति तीर्थजलैः परदेवतामुखकमले परमामृतबुद्ध्या सन्तर्प्यावरणदेवताः यथाक्रमं पूजोक्तमन्त्रैः पूजयामीति स्थाने तर्पयामीत्यन्तैरेकैकाञ्जलिना तर्पयेत् । तदशक्तौ । वटुकादि-चतुष्टयं षडङ्गयुवतिगुरुपङ्क्तित्रयं सप्तदशनित्याभिः सहितां चतुरस्रवृत्तोपेतेन त्रिकोणमण्डले मध्यस्थां सायुधत्रिकोणावरणशक्तियुतां मूलदेवीं तर्पयेत् । तत्रा-प्यशक्तौ संस्कृते जले देवीं ध्यात्वा सम्पूज्य देवीं तर्पयेत् । इति तर्पणविधिः ॥

अथैवं कृतः प्रातःसन्ध्यावन्दनादिक्रियः स्वगुरूपदिष्टविधिना षड्त्रिंशदु-त्तरशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याभिः युगाक्षरादनक्षरोत्थकालनित्याविद्याभिः सह मूलविद्यया नामपारायणजपं कुर्यात् । कालनित्याविद्यास्तु तन्त्रराजोक्ताः ।

तत्र अकारादिक्षान्ताः षड्त्रिंशत्तत्त्ववर्णाः षोडशनित्याभिः षोडशस्वरैः प्रत्येकं संयोजिता षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याका पूर्णमण्डलाख्या वर्णा भवन्ति । एते वर्णा कालनित्याविद्यानां प्रोक्तसंख्याकानामेकैकवर्णाः षड्त्रिंशद्विद्यानामादिवर्णा इति । सर्ववर्णवाग्भवाख्यद्वितीयवर्णा भवन्ति । ईकारस्तु सर्वासां विद्यानां शक्तिकूटस्तृतीयवर्णो भवति । आदैताः विद्याः क्रमेण पारायणजपपरिपाट्येव प्रदर्श्यन्ते । तत्रादौ साधको विविक्ते देशे नद्यादितीरे स्वगृहे एकान्ते वा स्वासनमास्तीर्य ४ ह्रीं आधारशक्तिकमला-

सनाय नमः इत्यासनं सम्पूज्य तत्र प्राङ्मुखस्वस्तिकाद्यासनेनोपविश्य गुरुगणपतिस्वेष्टदेवताः प्रणम्य प्राणायामत्रयपूर्वकं सङ्क्षेपतो भूतशुद्धिप्राण-प्रतिष्ठामातृन्यासं च कृत्वा। मस्तकदक्षिणबाहुमूलादि षड्त्रिंशस्थानेषु प्रति-स्थानं षोडशदलपद्मं विभाव्य तेष्वकारादिक्षकरान्तान् षड्त्रिंशत्तत्त्ववर्णान् प्रत्येकं षोडशस्वरयुक्तान् विभाव्य मध्ये तत्प्रथमाक्षरं विन्यस्य पूर्वादि-दलेषु तत्तदक्षरविकृतषोडशवर्णास्तदादिकां विन्यसेत्। इत्येवं पूर्णमण्डलवर्णं विन्यस्य पुनस्तद्दिननित्याविद्यया सहितमूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि दक्षिणमूर्त्तये ऋषये नमः। मुखे ४ पङ्क्तिच्छन्दसे नमः। हृदये ४ कालनित्यारूपिण्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः। इति ऋष्यादिकं विन्यस्य। मम मोक्षार्थे नामपारायणजपे विनियोगः। इति कृताञ्जलिरुक्त्वा तत्तद्दिन-नित्या विद्याक्षरैस्त्रिभिः कूटैर्द्विरावृत्य यथाविधि करषडङ्गन्यासं वक्ष्यमाण-चतुरासनन्यासं वाग्देवताष्टकन्यासं च विधाय ध्यायेत्। तद्यथा –

रक्तां रक्ताम्बरारक्तस्रग्विभूषानुलेपनाम्।
पाशाङ्कुशेक्षुकोदण्डप्रसूनविशिखां स्मरेत्॥

इति कालनित्यां हृदये ध्यात्वा वक्ष्यमाणविधिना हृदये श्रीचक्रं काल-चक्रमध्यगतं विभाव्य तत्र देवीं साङ्गावरणां कालनित्याभिश्च परिवृतां ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य पारायणजपमाचरेत्। तत्रादौ अङ्गविद्याजपः। तत्र ४ मू० दि० नि० अ ह सौः हं सः। ४ मू० दि० नि० आह सौः हं सः। ४ मू० दि०नि० इह सौः हं सः। ४ मू० दि० नि० ईह सौः हं सः। ४ मू० दि० नि० उ ह सौः हं सः। ४ मू० दि० नि० ऊ ह सौः हं सः।एवं ४ मूलदिननित्या विद्या क्षह सौः हं सः इत्यन्तं एकपञ्चाशद्विद्याभिः सह मूलविद्यां जपित्वा ततः केवलमूलविद्यां त्रिर्जपित्वा। ४ ऐं वदवदवाग्वादिनी ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदय क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु ह सौः। इति दीपिनीविद्यामेकवारं जपित्वा ततो वक्ष्यमाणगुरुपादुकाविद्यामप्येकवारं जपित्वा पुनश्चत्वारिंशद्विद्याभिः सह मूलविद्यां जपेत्। तद्यथा – ४ मूलं। आक्षाहसौ ई हं सः। ४ मू० ईला हसौ ई सः हं सः। ४ मू० ऊ हा ह सौ ई

हं सः। ४ मू० ऋ सा हसौ ई हंसः। ४ मू० ऌ षा हसौ ई हं सः। ४ मू० ऐ शाह सौ ई हं सः। ४ मू० औ षाह सौ ई हं सः। ४ मू० अः लाह सौ ई हं सः। इत्यष्टधा जपित्वा। ४ मू० आक्षा ई हं सः। ४ मू० आक्षा ई हं सः। ४ मू० ईला ई हं सः। ४ मू० ईला ई हं सः। ४ मू० ऊहा ई हं सः। ४ मू० उहा ई हं सः। ४ मू०ऋ सा ई हं सः। ४ मू० ॠ सा ई हं सः। ४ मू० ॡ षा ई हं सः। ४ मू० ॡ षा ई हं सः। ४ मू० ऐ शा ई हं सः। ४ मू० ए शा ई हंसः। ४ मू० औ वा ई हंसः। ४ मू० ओ वाई हं सः। ४ मू० अः ला ई हं सः। ४ मू० अं लाई हं सः। इति षोडशधा जपित्वा (.......)। ४ मू० अ का ई हं सः। ४ मू० इ चा ई हं सः। ४ मू० उ टा ई हं सः। ४ मू० ऋ ता ई हं सः। ४ मू० ॡ पा ई हं सः। ४ मू० ए या ई हं सः। ४ मू० ओषा ई हं सः। ४ मू० अं षा ई हं सः। इत्यष्टधा जपित्वा ४ मू० आक्षा ई हं सः। ४ मू ० ई ला ई हं सः। ४ मू० ऊ हा ई हं सः। ४ मू० ऋ सा ई हं सः। ४ मू० ॡषा ई हं सः। ४ मू० ऐशा ई हं सः। ४ मू० औ वाई हंसः। ४ मू० अः लाई हं सः। इत्यष्टधा जपित्वा ततः षोडशावान्तरयुगभिन्ने महायुगे यदेव युगं भविष्यति। तदक्षरमारभ्य सर्वाभिः युगनित्याविद्याभिः सह मूलविद्यां जपेत्। अयमङ्गविद्याजपः **वर्गद्वयस्याप्यादौ** प्रत्यहं कार्यः। ततः प्रथमदिने। ४ मूलविद्यामुच्चार्य। अ आ ई हं सः। ४ मू० अ का ई हं सः। ४ मू० अखा ई हं सः। ४ मू० अ गा ई हं सः। ४ मू० अघाई हं सः। ४ मू० अङा ई हं सः। ४ मू० अचाई हं सः। ४ मू० अछाई हं सः। ४ मू० अजाई हं सः। ४ मू० अझा ई हं सः। ४ मू० अञा ई हं सः। ४ मू० अटा ई हंसः। ४ मूः अठा ई हंसः। ४ मू० अडा ई हं सः। ४ मू० अढा ई हं सः। ४ मू० अणा ई हं सः। ४ मू० अता ई हं सः। ४ मू० अथा ई हं सः। ४ मू० अदा ई हं सः। ४ मू० अधा ई हं सः। ४ मू० अना ई हं सः। ४ मू० अपा ई हं सः। ४ मू० अफा ई हं सः। ४ मू० अबा ई हं सः। ४ मू० अभा ई हं सः। ४ मू० अमा ई हं सः। ४ मू० अयाई हं सः।

४ मू० अराई हं सः । ४ मू० अलाई हं सः । ४ मू० अ वा ई हं सः । ४ मू० अशाई हं सः । ४ मू० अषाई हं सः । ४ मू० असाई हं सः । ४ मू० अहाई हं सः । ४ मू० अ ला ई हं सः । ४ मू० अ क्षा ई हं सः । इति जपित्वा पुनरेव जपेत् । तद्यथा – ४ मू० आ आ ई हं सः । ४ मू० आ काई हं सः । ४ मू० आ खा ई हं सः । ४ मू० आ गा ई हं सः । ४ मू० आ घा ई हं सः । ४ मू० आ ङा ई हं सः । ४ मू० इत्यादि आ क्षाई हं सः । इत्यन्तं जपित्वा पुनः ४ मू० इ आ ई हं सः । ४ मू० इ का ई हं सः । ४ मू० इ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं जपित्वा पुनः ४ मू० ई आ ई हं सः । ४ मू० ई का ई हं सः । ४ मू० ई क्षा ई हं सः । इत्यन्तं जपित्वा पुनः ४ मू० उ आ ई हं सः । ४ मू उकाई हं सः । ४ मू० उ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं जपित्वा पुनः ४ मू० ऊ आ ई हं सः । ४ मू० ऊ का ई हं सः । ४ मू० ऊ क्षा ई हं सः। इत्यन्तं जपित्वा पुनः ४ मू० ऋ आ ई हं सः । ४ मू० ऋकाई हं सः । ४ मू० ॠ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं जपित्वा । पुनः । ४ मू० आ ई हं सः । ४ मू०... का ई हं सः । ४ मू० ... क्षा ई हं सः । इत्यन्तं जपित्वा पुनः ४ मू० ॡ आ ई हं सः । ४ मू० ॡ का ई हं सः । ४ मू० ॡ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं जपित्वा पुनः ४ मू० ॡ आ ई हं सः । ४ मू० ॡ का ई हं सः । ४ मू० ॡ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं पुनः । ४ मू० ए आ ई हं सः । ४ मू० ए का ई हं सः । ४ मू० ए क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । पुनः । ४ मू० ऐ आ ई हं सः । ४ मू० ऐ का ई हं सः । ४ मू० ऐ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं ० पुनः । ४ मू० ओ आ ई हं सः । ४ मू० ओ का ई हं सः । ४ मू० ओ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । पुनः । ४ मू० औ आ ई हं सः । ४ मू० औ काई हं सः । ४ मू० औ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । पुनः । ४ मू० अं आ ई हं सः । ४ मू ० अं का ई हं सः । ४ मू० अं क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । पुनः । ४ मू० अः आ ई हं सः । ४ मू० अः का ई हं सः । ४ मू० अः खाई हं सः । ४ मू० अः गा ई हं सः ।

४ मू० अः घा ई हं सः । ४ मू० अः ङा ई हं सः । ४ मू० अः क्षा ई हं सः । इत्यन्तं जपित्वा । एवं जपे षट्सप्तत्युत्तरपञ्चाशत्संख्याको जपो भवति मूलविद्यायाः । अत्र नामपारायणे प्रथमं । तद्दिनं युगाक्षरात् । षोडशस्वरभिन्नादुत्पन्नषट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतविद्याभिः तावत्संख्याभिः सह प्रोक्तक्रमेण मूलविद्यां जपेत् । युगाक्षरदिनाक्षरे तु । तत्तद्दिननित्याविद्यया प्रथमाक्षरं द्वितीयाक्षरं च बोद्धव्यं युगाक्षरोत्थविद्याजपे विशेषस्तु यस्मिन् युगे यत्स्वरयुतं युगाक्षरं भवति। तत्स्वरमारभ्य षट्त्रिंशत्क्रमेण तद्विसर्गान्तमविद्यापर्यन्तं जपित्वा पुनस्तदक्षरस्य प्रथमस्वरमारभ्य आरब्धस्वरस्य पूर्वस्वरान्तविद्यामपि जपेत् । तदा मूलविद्याया षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याकेष्वैकैकाक्षरस्यैकैकं युगं प्रति युगाक्षरत्वं च भवति। एतत्सर्वं गुरुमुखात्सम्यग्विज्ञाय पारायणजपः कार्यः । दिननित्या विद्याक्रमश्च गुरुमुखादेवावगन्तव्य इति । एवं द्विपञ्चाशदुत्तरैकादशसंख्याकः जपो भवति । मूलविद्यायाः अङ्गविद्याजपस्त्वैकैकवर्गादावेकनवतिसंख्याकस्तेन वर्गद्वयादौ जपो द्व्यशीत्युत्तरशतसंख्याको भवति । केवलमूलविद्याजपोऽपि वारचतुष्टयं त्रिरावृत्य द्वादशधा भवति । सम्भूय षट्चत्वारिंशदुत्तरत्रिशताधिकसहस्रसंख्याको जपो भवति । मूलविद्यायाः । एवमुक्तसंख्याकं जपमुक्तविधिना कृत्वा । प्रागुक्तदीपिनीविद्यां गुरुपादुकाविद्यां च सकृज्जपित्वा । ४ द र ल क स हैं । ह स क ल र डों । स ह क ल र डौः । नमः । इत्युत्तीर्णविद्यां सकृज्जपित्वा । ४ मम सकलमनोरथं साधय साधय तुभ्यं नमः । इति प्रार्थनीयविद्यां सकृत्कृताञ्जलिर्जपेत् । इति वर्गद्वयस्याप्यन्ते बोद्धव्यम् । इत्थं पारायणजपं कृत्वा इदं स्तोत्रं पठेत् । तद्यथा –

क्ष्मौं वस्वग्न्यनिलखार्केन्दुयष्टुप्राययुगस्वरैः ।
मातृभैरवगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥
कादिवर्गाष्टकाकारसमस्ताक्षरविग्रहाम् ।
अष्टशक्त्यावृतां देवीं वन्दे त्रिपुरभैरवीम् ॥
स्वरषोडशकानां तु षट्त्रिंशद्भिः परापरैः ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वगां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥

षट्त्रिंशत् तत्त्वं संस्थाप्य शिवे चन्द्रकलास्वपि।
कादितत्त्वान्तरां वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥
आदिमायाद्वयोपाधिविचित्रेन्दुकलावतीं।
सर्वात्मिकां परां वन्दे देवीं० ॥
षडध्वपिण्डयोनिस्थां मण्डलत्रयकुण्डलीम्।
लिङ्गत्रयात्मिकां वंदे देवीं० ॥
स्वयम्भूहृदयावासां भूकामान्तस्थितेतराम् ।
प्राप्तप्रत्यक्चितिं वन्दे देवीं० ॥
अक्षरान्तर्गताशेषनामरूपक्रियापराम् ।
शक्तिं विश्वेश्वरीं वन्दे देवीं त्रिपुरभैरवीम् ॥
वर्गान्ते पठितव्यं च स्तोत्रमेतत्समाहितैः ॥

इति स्तुत्वा दिननित्यायुक्तमूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राग्वत् ऋष्यादिन्यासदिननित्याविद्यया प्राग्वत्करषडङ्गन्यासं च कृत्वा कृतं जपं देव्यै सन्तर्पयेदिति।

एवं द्वितीयदिने प्राग्वदासनपूजाद्यङ्गविद्याजपान्तं विधाय। ४ मू० क आ ई हं सः। ४ मू० क का ई हं सः । ४ मू० क क्षा ई हं सः। इत्यन्तं जपित्वा। ४ मू० कि आ ई हं सः । ४ मू० कि का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० कि क्षा ई हं सः। इत्यन्तम्। ४ मू० की आ ई हं सः। ४ मू० की का ई हं सः इत्यादि। ४ मू० की क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ४ मू० कु आ ई हं सः। ४ मू० कु का ई हं सः इत्यादि । ४ मू कु क्षा ई हं सः इत्यन्तं०। ४ मू० कू आ ई हं सः । ४ मू० कू का ई हं सः इत्यादि। ४ मू० कू क्षा ई हं सः इत्यन्तं ० । ४ मू० क्रुआ ई हं सः । ४ मू० कृ का ई हं सः। इत्यादि। ४ मू० कृ क्षा ई हं सः। इत्यन्तं० । ४ मू० कॄ आ ई हं सः। ४ मू० कॄ का ई हं सः। इत्यादि। ४ मू० कॄ क्षा ई हं सः। इत्यन्तं० । ४ मू० क्लृ आ ई हं सः। ४ मू० क्लृ का ई हं सः । इत्यादि। ४ मू० क्लृ क्षा ई हं सः। इत्यन्तं०। ४ मू० क्लॄ आ ई हं सः। ४ मू० क्लॄ का ई हं सः। इत्यादि।

४ मू० क्लृ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । ४ मू० के आ ई हं सः । ४ मू० के का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० के क्षा ई हं. सः । इत्यन्तं० । ४ मू० कै आ ई हं सः । ४ मू० कै का ई हं सः । इत्यादि ४ मू० कै क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । ४ मू० को आ ई हं सः । ४ मू० को का ई हं सः इत्यादि ४ मू० को क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । ४ मू० कौ आ ई हं सः । ४ मू० कौ का ई हं सः । इत्यादि ४ मू० कौ क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ४ मू० कं आ ई हं सः । ४ मू० कं का ई हं सः । इत्यादि । ४ मू० क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । ४ मू० कः आ ई हं सः । ४ मू० कः का ई हं सः । इत्यादि ४ मू० कः क्षा ई हं सः इत्यन्तमेव जपित्वा । प्राग्वत् मूलविद्यां जपित्वा । दीपिन्यादिस्तोत्रपाठान्तं कृत्वा समर्पयेदिति ।

ततस्तृतीयदिने प्राग्वदासनपूजाद्यङ्गविद्याजपान्तं विधाय । ४ मू० खा ई हं सः । ४ मू० ख का ई हं सः। इत्यादि। ४ मू० ख क्षा ई हं सः। इत्यन्तं०। प्राग्वत् शेषं समापयेत् ।

ततश्चतुर्थदिने प्राग्वदासनमपूजाद्यङ्गविद्याजपान्तं विधाय । ४ मू० ग आ ई हं सः । ४ मू० ग का ई हं सः । इत्यादि । ४ मू० ग क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ५७६ ।पञ्चमदिने । ४ मू० घ आ ई हं सः । ४ मू० घ का ई हं सः। इत्यादि । ४ मू० घ क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ५७६ । षष्ठदिने । ४ मू० ङ आ ई हं सः । ४ मू० ङ का ई हं सः । इत्यादि ४ मू० क्षा ई हं सः इत्यन्तं०। सप्तमदिने । ४ मू० च आ ई हं सः । ४ मू० च का ई हं सः । इत्यादि । ४ मू० च क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । अष्टमदिने । ४ मू० छ आ ई हं सः । ४ मू० छ का ई हं सः । इत्यादि । ४ मू० छ क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । नवमदिने । ४ मू० ज आ ई हं सः । ४ मू० ज का ई हं सः । इत्यादि । ४ मू० ज क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० । दशमदिने । ४ मू० झ आ ई हं सः । ४ मू० झ का ई हं सः इत्यादि ४ मू० झ क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ततः एकादशदिने । ४ मू० ञ आ ई हं सः । ४ मू० ञ का ई हं सः । इत्यादि ४ मू० ञ क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ततः द्वादशदिने । ४ मू० ट आ ई हं सः । ४ मू० ट का ई हं सः

इत्यादि ४ मू० ट क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ततः त्रयोदशदिने । ४ मू० ठ आ ई हं सः । ४ मू० ठ का ई हं सः इत्यादि ४ मू० ठ क्षा ई हं सः । इत्यन्तं० ततश्चतुर्दशदिने । ४ मू० ड आ ई हं सः । ४ मू० ड का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० ड क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः पञ्चदशदिने मू० ढ आ ई हं सः । ४ मू० ढ का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० ढ क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः षोडशदिने । ४ मू० ण आ ई हं सः । ४ मू० ण का ई हं सः । इत्यादि । ४ मू० ण क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः सप्तदशदिने । ४ मू० त आ ई हं सः । ४ मू० त का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० त क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः अष्टादशदिने । ४ मू० थ आ ई हं सः । ४ मू० थ का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० थ क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः एकोनविंशदिने । ४ मू० द आ ई हं सः । ४ मू० द का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० द क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः विंशतिदिने । ४ मू० ध आ ई हं सः । ४ मू० ध का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० ध क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः एकविंशदिने । ४ मू० न आ ई हं सः । ४ मू० न का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० न क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः द्वाविंशदिने । ४ मू० प आ ई हं सः । ४ मू० म का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः त्रयोविंशदिने । ४ मू० फ आ ई हं सः । ४ मू० फ का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० फ क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः चतुर्विंशदिने । ४ मू० ब आ ई हं सः । ४ मू० ब का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० ब क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः पञ्चविंशदिने । ४ मू० भ आ ई हं सः । ४ मू० भ का ई हं सः इत्यादि ४ मू० भ क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः षड्विंशदिने ४ मू० म आ ई हं सः । ४ मू० म का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० क्षा ई हं सः । इत्यन्तं । ततः सप्तविंशदिने य आ ई हं सः । ४ मू० य का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० य क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः अष्टाविंशदिने । ४ मू० र आई हं सः । ४ मू० र का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० र क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ततः एकोनत्रिंशदिने । ४ मू० ल आ ई हं सः । ४ मू० ल का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० ल क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः त्रिंशदिने । ४ मू० व आ ई हं सः । ४ मू० व का

ई हं सः । इत्यादि । ४ मू० व क्षा ई हं सः इत्यन्तं० । ततः एकत्रिंशदिने । ४ मू० श आ ई हं सः । ४ मू० श का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० श क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः द्वात्रिंशदिने । ४ मू० ष आ ई हं सः । ४ मू० ष का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० ष क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः त्रयस्त्रिंशद्दिने । ४ मू० स आ ई हं सः । ४ मू० स का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० स क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः चतुस्त्रिंशद्दिने । ४ मू० ह आ ई हं सः । ४ मू० ह का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० ह क्षा ई हं सः इत्यन्तं । ततः पञ्चत्रिंशद्दिने । ४ मू० ल क आ ई हं सः। ४ मू० ल का ई हं सः इत्यादि । ४ मू० ल आ ई हं सः इत्यन्तं। ततः षड्त्रिंशद्दिने । ४ मू० क्ष आ ई हं सः । ४ मू० क्ष का ई हं सः इत्यादि ४ मू० क्ष क्षा ई हं सः इत्यन्तं । दिवसे दिवसे ५७६ एतत्संख्याक्रमो भवति । प्राग्वज्जपेत् । अत्र षट्त्रिंशद्दिनेषु च प्रागुक्तं परिपाठ्य । प्रत्यहं षट्चत्वारिंशदुत्तरत्रयोदशतसंख्या यथा भवति तथा जपं कृत्वावर्गद्वयस्याप्यन्ते स्तोत्रपाठं च कुर्यात् । अत्र पारायणे पर्यायभेद पञ्चधा भवति। तथा च तन्त्रराजे –

दिनतो वारतः पक्षात् मासात्षट्त्रिंशता दिनैः ।
जपतो वारमेकं तु विद्यानित्यात्मिका स्तुता ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं विजयं वाञ्छितक्रमात् ।
लभते ललिता याभिः सम्प्रदायवती भवेत् ॥
एकस्मिन् दिवसे चैकवारवृत्ता विधिस्त्वयम् ।
मध्याह्ने तु समारभ्य मध्यरात्रे समापयेत् ॥
वारेषु चैकधा जापे प्रथमे रविवारके ।
वशिन्या प्रथमं वर्गं कामेश्वर्या द्वितीयकम् ॥
जपेद्वर्गद्वयं मन्त्रं सोमवारादिषट्स्वपि ।
दिनेषु मोदिनीवर्गादिकैकं प्रजपेत्सुधी ॥
पक्षेऽपि चैकदा जापे प्रथमादितिथिष्वपि ।
पलं द्वयोस्थाविद्यास्तु प्रजपेत्प्रतिवासरम् ॥

पञ्चमी-दशमीपञ्चदशीषु तिथिषु क्रमात्।
पूर्णस्तु प्रजपेद्विद्यां चतुःपङ्क्तिभवां सुधीः॥
मासे प्रतिदिनं विद्वानेकैकां योनिमेव तु।
पूर्णस्तु द्वि-द्वियोन्युत्थां जपेद् षट्स्वपि ताः क्रमात्॥
षट्त्रिंशस्तु दिनष्वेवमेकैकां योनिमेव तु।
जपेत्प्रतिदिनं विद्वानेवं पूर्णा भवन्ति ताः॥
नैताभिः सदृशी कापि विद्या लोकेषु विद्यते।
तस्मादेभिरुपायैस्तैस्साधयेत्सर्वमीप्सितम्॥
यद्यन्निजेप्सितं तत्तद् दुष्करं सुकरं भवेत्।
जपतर्पणहोमार्चनकैः सन्तर्पयेत् स्थिरः॥
पञ्चाशद्वारमावर्त्य विद्यां भक्तिसमन्वितः।
मुच्यते निखिलैः कृत्स्नैर्वैरिरोधैः सुदारुणैः॥
शतवारं समावर्त्य विद्यां विविधवैभवाम्।
लभते तनयान् वन्ध्या अपि सर्वगुणान्वितान्॥
अध्यर्धशतवारं तु विद्यां चावर्त्य भक्तितः।
गुणरूपादिसम्पन्नां भार्यां विद्यात्प्रयत्नतः॥
तावदावर्त्य कन्या वा पतिं सर्वगुणान्वितम्।
लभते पुत्रपौत्राद्यैरेधते सम्पदाऽन्विताः॥
द्विशतं ताः समावर्त्य दारिद्रान्मुच्यते ध्रुवम्।
त्रिशतैर्भूमिसस्याढ्या चतुर्भिश्च शतैर्धनैः।
पञ्चभिस्तु शतैर्भूपो भवेत्षड्भिः शतैर्नृपः।
सप्तभिस्तु शतैस्तस्य न मुञ्चत्यन्वयं रमा॥
अष्टभिस्तु शतैः तासां नृपाः सर्वेऽस्य किङ्कराः।
नवभिस्तु शतैरेवं कन्दर्पा वनिता जने।
एवं नवशतं जप्त्वा सर्वान् कामानवाप्नुयात्।
समस्तभजनं तासामुक्तं सर्वार्थसिद्धिदम्॥ इति।

अथैतेषां विषमपदव्याख्या दिनत इत्यादि भवेदित्यन्तश्लोकद्वयस्य स्पष्टार्थः एकवारावृत्तौ षट्त्रिंशदुत्तरसप्तशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याभिः। कालनित्याविद्याभिः सह मूलविद्यायास्तावत् संख्याजपे प्रोक्तविधिना प्रत्यहं क्रियमाण इत्यर्थः। वारेषु रविवारादिशनिवारान्तेषु सप्तसु। वशिन्यादीनां वर्गात् वर्गेत्यादिन्यासप्रकरणेषु स्फुटीकरिष्यामः। वर्गपङ्क्तियोनिरिति पर्यायः। षेकः अभिषेकः। स्थिरः निश्चलभक्तिमान् पञ्चाशदित्यादिश्लोकैः प्रपञ्चित-काम्यजपः। केवलकालनित्याविद्यानामेव। अन्ये काम्यप्रयोगा बहवः सन्ति। ते त्वत्र ग्रन्थगौरवभयात् नाऽस्माभिर्लिखिता। गुरुतः शास्त्रतश्च बोद्धव्यः।

॥ अथ कालचक्ररचनाप्रकारः ॥

ततः प्रथमतः क्वचिद्बिन्दुं कृत्वा तं परितः षडङ्गुलमानेन वृत्तं कृत्वा तद्बहिरप्येकैकाङ्गुलातरालमानतः षोडशवृत्तानि। इति प्रथमकृतवृत्तेन सह सप्तदशवृत्तानि निष्पाद्य तानि वृत्तानि षट्त्रिंशद्रेखाभिः विभज्य षोडशकोष्ठयुक्ता षड्त्रिंशद्विधिर्निष्पाद्य तासु साग्रवीथ्यां सर्वबाह्यस्थ-कोष्ठमारभ्य प्रवेशगत्या अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः इति विलिख्य ततः प्रादक्षिण्यक्रमप्राप्तद्वितीयवीथ्यां तथैव बाह्यकोष्ठमारभ्य क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः। तृतीयवीथ्यां ख खा० खं खः। एवं सर्वत्र। एवं षट्त्रिंशद्वीथिषु क्षवर्गपर्यन्तं विलिख्य। एवं षट्त्रिंशद्वीथिषु षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतसंख्याकां पूर्णमण्डलवर्णानालिख्य कर्णिकायां आ ई हं सः। इति वर्णचतुष्टयं विलिख्य। सर्वबाह्यवृत्ताद् बहिर्वृत्तत्रयं निष्पाद्य सकेसरमष्टदलपद्मं विरच्य तद्बहिश्चतुरस्रं कुर्यात्। अत्र विन्यासे। मध्यस्थ-देवताभिमुखाः सर्वे वर्णा यथा भवन्ति तथा विलिख्य इति कालचक्ररचना-प्रकारः। एतच्चक्रस्य षट्सप्तत्युत्तरपञ्चशतभेदाः सन्ति। तत्सर्वं तत्र देव्या पूजनप्रकारं तत्फलानि च गुरुतः शास्त्रतश्च बोद्धव्यम्। ग्रन्थगौरवभयादत्रन लिखितमिति। एवं पारायणजपं विधाय ततो गुरुदिक्पतिग्रहान् प्रणम्य शुद्धोदकपूर्णपात्रमादाय हृदि स्वेष्टदेवतां स्मरन्। मूलमन्त्रस्तोत्रं जपन् मौनी स्वपदमात्रदृष्टिः स्वगृहे गत्वा द्वारे स्थित्वा ज्ञात्वा ज्ञातं स्वपापं स्मरन् प्रणवमुच्चार्य—

देवि! त्वं प्राकृतं चित्तं पापाक्रान्तमिदं मम ।
तं निःस्सारय चित्तान्तैः पापं फट्फटे नमः ॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च ।
एते शुभाऽशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः ॥

इति पठित्वा हुँ फट् इति क्रोधदृष्ट्या पार्श्वद्वयमूर्ध्वमधश्चावलोक्य सुमना भूत्वा गृहान्तः प्रविश्य हस्तपादौ प्रक्षाल्य आचम्य गृहाङ्गणे सुसमे गोमयोपलिप्ते भूप्रदेशे सिन्दूरादिना कृतवृत्तमण्डलान्तः स्वासनमास्तीर्य ४ ह्लीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः इत्यासनं सम्पूज्य तत्र प्राङ्मुखोपविश्य वक्ष्यमाणमार्त्तण्डभैरवमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा शिरसि ४ देवभागऋषये नमः मुखे । देवीगायत्रीछन्दसे नमः हृदये । ४ श्री मार्तण्डभैरवाय देवतायै नमः इति विन्यस्य । मम सर्वाभीष्टसिद्धये सूर्यार्घ्यदाने विनियोगः। इति कृताञ्जलिर्वदेत् । ततः ॐ ध्रां ध्रां ध्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ध्रीं ३ तर्जनी० । ऊँ ध्रूं ३ मध्यमा० । ॐ ध्रैं ३ अनामि० । ॐ ध्रौं ३ कनिष्ठिकाभ्यां० ॐ ध्रः ३ करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः एवं हृदयादि । इत्यङ्गमन्त्रं अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तकरयो हृदयादिष्वपि विन्यस्य ध्यायेत् । तद्यथा –

हेमाम्भोजप्रवालप्रतिमनिजगुरोश्चारुखट्वाङ्गपद्मे
चक्रं शक्तिं च पाशं सृणिमपि रुचिरामक्षमालं कपालम् ।
हस्ताम्भोजैर्दधानं त्रिनयनविलसद्वेदवक्त्राभिरामं
मार्त्तण्डं वल्लभाङ्कं मणिमयमुकुटं हारदीप्तं भजामः ॥
दक्षाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधस्थयोरन्ये ।
तदाद्यधस्थयोरपरे तदाद्यस्थयोरितरे ॥

इत्यायुधध्यानम् । इति स्वैक्येन ध्यात्वा मनसा पूजयित्वा ताम्रपात्रे सिन्दूरकुङ्कुमादिना त्रिकोणवृत्तकर्णिकसकेसरमष्टदलकमलं निर्माय तद्बहिर्वृत्तं चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रं कृत्वा तद् बहिर्वृत्तत्रयं भ्रामयेदिति । पूजामण्डलं कृत्वा तत्र सूर्यमन्त्रेण पुष्पं दत्वा वक्ष्यमाणविधिना सामान्यार्घ्यं

विधाय । तेनैव द्वादशभिरभिमन्त्र्य । तेनोदकेन मण्डलं स्वात्मानं पूजोपकरणानि चाभ्युक्ष्य । तत्र । ॐ मण्डूकाय नमः । एवं कालाग्निरुद्राय नमः । मूलप्रकृत्यै नमः । आधारशक्तये नमः । कूर्माय नमः । अनन्ताय नमः । वराहाय नमः । पृथिव्यै नमः । क्षीरसमुद्राय नमः । श्वेतद्वीपाय नमः । कल्पवाटिकायै नमः । मणिमण्डपाय नमः । रत्नवेदिकायै नमः । रत्नसिंहासनाय नमः । इत्युपरिष्टात् सम्पूज्य । चतुरस्रे पूर्वादिचतुर्दिक्षु मध्ये च । ॐ प्रं प्रभूताय नमः । विमलाय नमः । साराय नमः।समाराध्याय नमः । मध्ये – परमुखाय नमः । तत्र आग्नेयादि-कोणेषु। ॐ धं धर्माय नमः । ज्ञं ज्ञानाय नमः। वं वैराग्याय नमः। ऐश्वर्याय नमः । ततः स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु । ॐ अं अधर्माय नमः । अं अज्ञानाय नमः । अं अवैराग्याय नमः । अं अनैश्वर्याय नमः । मध्ये अनन्ताय नमः । पद्माय नमः । आनन्दकन्दाय नमः । संविन्नालाय नमः । प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः । विकारमयकेसरेभ्यो नमः । पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वस्वरूपायै कर्णिकायै नमः । सं सत्त्वाय नमः । रं रजसे नमः । तं तमसे नमः । अं आत्मने नमः । अन्तरात्मने नमः । पं परमात्मने नमः । ह्रीं सूक्ष्मायै नमः । ऋं जायायै नमः । रें भद्रायै नमः । रैं विभूत्यै नमः । रों विमलायै नमः । हौं अमोघायै नमः । रं विद्युतायै नमः । मध्ये ह्रः सर्वतोमुख्यै नमः । इति पीठशक्ति सम्पूज्य । ॐ ब्रह्माविष्णुशिवात्मकाय नमः । सौराय योगपीठाय नमः । इति पीठं सम्पूज्य । तत्कर्णिकायां पूर्वादिचतुर्दिक्षु । ॐ ऊं ऊषायै नमः । प्रं प्रज्ञायै नमः । सं सन्ध्यायै नमः । इति चतुःशक्तीः सम्पूज्य । मार्त्तण्डभैरवमन्त्रमुच्चार्य । श्री मार्त्तण्डभैरवमूर्तिं कल्पयामि मध्ये मूर्तिं परिकल्प्य पुनर्मन्त्रमुच्चार्य । मार्त्तण्डभैरवमूर्त्तये नमः । इति मूर्तिं सम्पूज्य । कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय । हृदयकलमले देवं तेजोरूपं ध्यात्वा सुषुम्नामार्गेण वहन्नासापुटाध्वना तत्तेजःकरस्थपुष्पाञ्जलावानीय । सूर्यमन्त्रमुच्चार्य । भगवान् सूर्य इहागच्छा-गच्छेति तस्यां मुक्तौ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् तत्तेजसमावाह्य । यथोक्तरूपं देवं ध्यात्वा । पूर्वोक्तषडङ्गन्यासेन सङ्कलीकृत्वा प्राणप्रतिष्ठां विधाय

पद्मबिम्बमुद्रे प्रदर्श्य । सूर्यमन्त्रमुच्चार्य श्रीमार्त्तण्डभैरव एतत्ते आसनम् । एवं एष ते अर्घ्यं स्वाहा मूर्ध्नि । एतत्ते पाद्यं नमः पादयोः । एतत्ते आचमीनयं सुधेति मुखे । एष ते मधुपर्कं सुधेति मुखे । एतत्ते आचमीनयं मुखे । एवं स्नानं नमः, आचमनीयम् । एते वाससी नमः आचमनम् । एतत्ते उपवीतं नमः आचमनं । एष ते अलङ्कारो नमः । एष ते गन्धो नमः । एतानि पुष्पाणि वौषट् । इति पुष्पान्तानुपचारान् दत्वा अथावरणपूजां कुर्यात् । सा यथा – कर्णिकायां पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु ह्रां सूर्याय नमः । ह्रीं भास्कराय नमः। ॐ ह्रूं भानवे नमः । ॐ ह्रों रवये नमः । ततः आग्नेयादिचतुर्दिक्षु ॐ ह्रौं दिवाकराय नमः । इति पञ्चमूर्तिं सम्पूज्य । अष्टदलकेसरेषु आग्नेये ॐ ध्रां ध्रूं ध्रां हृदयाय नमः । ॐ ध्रीं झ्रीं शिरसि । वायव्ये ध्रूं भ्रूं ध्रूं शिखायै वषट्। ईशान्ये । ध्रैं झ्रैं ध्रैं कवचाय हुं हृदये। पूर्वादिचतुर्दिक्षु ॐ ध्रः झ्रः ध्रः अस्त्राय नमः । देवाग्रे ध्रौ भ्रौं ध्रौं नेत्रत्रयाय । ततोऽष्टदलेषु । देवाग्रदलमारभ्य सों सोमाय नमः । मं मङ्गलाय नमः । बुं बुधाय नमः । बृं बृहस्पतये नमः । शुं शुक्राय नमः । शं शनैश्चराय नमः । रां राहवे नमः । कें केतवे नमः । तद्बाह्ये दिक्पालान् तदायुधानि च पूजयेत् । ॐ लं इन्द्राय नमः । ॐ रं अग्नये नमः । ॐ यं यमाय नमः । ॐ क्षं नैर्ऋतये नमः । ॐ वं वरुणाय नमः । ॐ यं वायवे नमः । ॐ सं सोमाय नमः । ॐ हं ईशानाय नमः । इन्द्रेशानयोर्मध्ये निर्ऋती वरुणयोर्मध्ये च अं ब्रह्मणे नमः । ह्रीं अनन्ताय० । ततो दिक्पालानां पार्श्वेषु वं वज्राय० । शं शक्त्यै० । दं दण्डाय० । खं खड्गाय० । पां पाशाय० । अं० अङ्कुशाय० । गं गदायै० । त्रिं त्रिशूलाय० । पं पद्माय० । चं चक्राय० । इत्थमावरणानि सम्पूज्य । धूपदीपनैवेद्यानि दत्वा स्वपुरतो वृत्ताकारं मण्डलं निर्माय मार्त्तण्डभैरवार्घ्यमण्डलाय नमः । इति मण्डलं सम्पूज्य तन्मन्त्रजलग्राहकं तावुद्यन्यतमं अस्त्रक्षालितं पात्रं साधारं तत्र निधाय सूर्यमण्डलत्वेन ध्यायन् सूर्यमन्त्रं जपन् शुद्धोदकैः सम्पूज्य कुशतिलश्यामाकुङ्कुमचन्दनरोचनकरवीरपुष्पाणि निक्षिप्य कुशैराच्छाद्य ॐ ध्रीं ह्रीं ध्रीं ॐ इति सूर्यमन्त्रं अष्टोत्तरशतवारं जपित्वा यन्त्रं स्पृशन्

जपित्वा मार्त्तण्डभैरवं ध्यायन् जानुभ्यामवनीं गतः कराभ्यां तं ताम्रपत्रमामस्तकमुत्क्षिप्य । ध्रीं ह्रौं ध्रीं श्रीमार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय द्वादशकलात्मने स्वग्रहराशिनक्षत्रतिथिवारयोगकरणपरिवृत्तासनसंस्थिताय श्री सूर्यायार्घ्यं समर्पयामि स्वाहेति मन्त्रेणार्घ्यं दत्वा महामुद्रया स्वदृष्टि-पद्ममाच्छाद्य । मार्त्तण्डभैरवं दध्यमृतपरिप्लुतं विभावयन् प्राणायामपूर्वकं जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रणम्य क्षमस्वेति मार्त्तण्डभैरवं खे विसर्ज्य । ऐशान्ये चण्डाय नमः । इति निर्माल्यं क्षिपेत् । इति सूर्यार्घ्यदानविधिः ।

अयं मुख्यकल्पः । तदशक्तौ सूर्यमण्डल एव व्योम्नि सावर्णमार्त्तण्ड-भैरवं ध्यायन् यथाशक्तिविधिना अर्घ्यं दद्यादिति मध्यमकल्पः । केवल-मन्त्रमात्रेणार्घ्यं दद्यादित्यपकल्पः । एवं पूजादौ पूर्वं सूर्यार्घ्यदानमावश्यकमिति ।

॥ पार्थिवलिङ्गपूजनविधिः ॥

ततः शिवपूजां कृत्वा मण्डपद्वारपूजां कुर्वीत । तत्र पार्थिवं सर्व-सिद्धिप्रदमित्युक्तेः । पार्थिवलिङ्गपूजनप्रशस्तम् । तत्पूजनप्रकारस्तु । गोमयो-पलिप्ते शुचौ देशे प्राक्सूर्यपूजोक्तविधिना स्वासनं सम्पूज्य तत्रोदङ्मुखोप-विश्याद्येत्यादि तिथ्युल्लेखनान्ते श्रीपरदेवतार्चनार्थपार्थिवलिङ्गपूजनमहं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य –

ॐ सर्वाधाराधरे देवि त्वद्रूपां मृत्तिकामिमाम् ।
ग्रहीष्यामि प्रसन्ना त्वं लिङ्गार्थे भव सुप्रभो ॥

इति भूमिं प्रार्थ्य । ॐ हराय नमः । इति शुचिस्थानात् शुभ्रां सुस्निग्धां मृदमादाय ॐ महेश्वराय नमः इति सङ्घट्टनं विधाय स्वपुरतः ॐ शूलपाणये नमः । इति पीठादौ संस्थाप्य पुष्पाञ्जलिमादाय हृदि तेजोरूपं देवं ध्यात्वा । वहन्नासाध्वना बहिर्निःसार्य । करपुष्पाञ्जलौ तत्तेजः संयोज्य । ॐ पिनाकधृत् इहागच्छागच्छेति तस्मिल्लिङ्गे पुष्पाञ्जलिक्षेपणमावाह्य ॐ शूलपाणे इह तिष्ठ तिष्ठेति संस्थाप्य ॐ पशुपतये नम इति शुद्धजलैः स्नापयित्वा ॐ शिवाय नम इति गन्धाक्षतपुष्पाणि निवेद्य वेद्यां वामावर्त्तेन स्वाग्रमारभ्य ॐशर्वाय क्षितिमूर्त्तये नमः । ॐ भवाय जलमूर्तये नमः । ॐ रुद्रायाग्निमूर्त्तये नमः । ॐ उग्राय वायुमूर्त्तये नमः । ॐ भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः । ॐ

पशुपतये यजमानमूर्त्तये नमः। ॐ महादेवाय सोममूर्त्तये नमः। ॐ ईशानाय सूर्यमूर्त्तये नमः। इति सम्पूज्य। प्राणान्निःसार्य। ॐ ह्रीं उमायै नमः। इति सम्पूजयेत्। ततः साङ्गाय सपरिवाराय श्रीशिवाय नमः। इति त्रिः सम्पूज्य। ॐ शिवाय नम इति त्रि धूपादिताम्बूलान्तानुपचारान् दत्वा –

ॐ सर्वज्ञानविज्ञानप्रदानैकमहात्मने।
नमस्ते देवदेवेश सर्वभूतहिते रतः॥
अनन्तकीर्तिसम्पन्न अनेकासनसंस्थित।
अनेककान्तिसंयोग परमेश नमोऽस्तु ते॥
परापरपरातीत उत्पत्तिस्थितिकारक।
सर्वार्थसाधनोपाय विश्वेश्वर नमोऽस्तु ते॥
स्वभावनिर्मलःभोग सर्वव्याधिविनाशन।
योगियोगिमहायोगी योगीश्वर नमोऽस्तु ते॥
कृत्वा लिङ्गप्रतिष्ठां तु स्तवमेनमुदीरयेत्।
लिङ्गस्तवं महापुण्यं यः शृणोति सदा नरः॥
नोत्पद्यते च संसारो स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन शृणुयाल्लिङ्गसंस्तवम्॥
पापकञ्चुकनिर्माल्यं प्राप्नोति परमं पदम्॥

इति स्तुत्वा, एकाग्रमनसा इमं मन्त्रं पठेत्।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं महेश्वर।
पूजितं हि मया देव तत्क्षमस्वाक्षमात्कृतम्॥
यद्यप्युपहतैः पुष्पैरायस्तैर्भावहर्षितैः।
केशकीटापविद्धैश्च पूजितोऽसि मया प्रभो॥
अन्यत्रासक्तचित्तेन क्रियाहीनेन वा प्रभो।
मनो-वाक्कायदुष्टेन पूजितोऽसि त्रिलोचन॥

यच्चोपहतपात्रेण कृतमर्घ्यादिकं मया।
तामसेन च भावेन तत्क्षमस्व मम प्रभो॥
मन्त्रेणाऽक्षरहीनेन पुष्पेण विकलेन च।
पूजितोऽसि महादेव तत्सर्वं क्षमतां मम॥
व्रतं सम्पूर्णतां यातु फलं चाक्षय्यमस्तु तत्॥

इति पठित्वा प्रदक्षिणनमस्कारैः सम्यक्परितोष्य। श्रीमहादेव क्षमस्वेति स्वात्मनि संहारमुद्रया विसृज्य निर्माल्यमादाय ४ ॐ चण्डेश्वराय नमः। इति ईशानकोणे निक्षिपेत्। लिङ्गनिर्माल्यपुष्पार्चादिकं च जलमध्ये नद्यादौ विसृजेत्। अत्र पार्थिवलिङ्गपूजायां पार्थिवलिङ्गाय यथा बृहत् तथा फलबाहुल्यम्। यथा यथा सूक्ष्मं तथा तथा फलमल्पम्। सूक्ष्मेति फलत्रयन्यूनं कार्यमिति पार्थिवलिङ्गपूजनप्रकारः।

॥ अथ द्वारपूजा ॥

तत्र स्वर्णप्राकारस्य पूर्वद्वारेणान्तः प्रविश्य प्रादक्षिण्येन मण्डपस्य साधकः पूजयेद् देवीमिति। क्रमस्तेनैव क्रमेण द्वारपूजनमिति। यागमण्डपस्य प्राकारसम्भवे मण्डपस्य द्वाराग्रतस्तदसम्भवे यागमण्डपस्य पश्चिमे द्वारे मण्डपसम्भवे गोमयोपलिप्तायाः यागभूमेः पश्चिमभागे क्वापि स्थित्वा सामान्यार्घ्यं विधाय एवं कल्पयित्वा क्रमेण पूजयेत्। तद्यथा – कोटि–कोटि – योजनविस्तीर्णसुधार्णवचतुष्टयान्तर्गतं कोटि – कोटियोजनविस्तीर्यायामं महाद्भुतं नवरत्नमयं दीपं स-सहस्रादित्यतेजसं तन्मध्यतृतीयांशे। कोटिसूर्यप्रतीकाशं ज्वलत्स्वर्णप्राकारावेष्टितं नानासुरभिशालितोरणद्वारनानारत्नमण्डितपरितः सेवार्थं सायान्तेन्द्रादिदेवतागणसमाकुलं माणिक्यमयं श्रीमण्डपं ध्यात्वा सामान्यार्घ्योदकेनाभ्युक्ष्य पुष्पादिभिः क्रमेण पूजयेत्। तद्यथा – ४ सुधार्णवचतुष्टयाय नमः। ४ अ० ५१ नवखण्डविराजिताय नवरत्नद्वीपाय नमः। ४ नन्दनोद्यानाय नमः। ४ स्वर्णप्राकाराय नमः। ४ तद्द्वारस्य दक्षिणोत्तरशाखयोरुपर्यधश्च। ४ गं गणेशाय नमः। ४ क्षं क्षेत्रपालकाय नमः। ४ द्वां द्वारश्रियै नमः। दं देहल्यै

नमः। इति सम्पूज्य प्राकारान्तः प्रविश्य प्रदक्षिणक्रमेणेन्द्रादिदशदिक्पालान् स्व-स्वदिशि सम्पूज्य मणिमण्डपपश्चिमद्वारं गत्वा सामान्यार्घ्यं वक्ष्यमाण-विधिना संस्थाप्य ततोदकेनास्त्रमन्त्रेण तोरणद्वारमभ्युक्ष्य। सामान्यार्घ्यकरणा-शक्तौ ताम्रादिपात्रस्थजलं मूलेनाष्टवारमभिमन्त्र्य। धेनुमुद्रयामृतीकृत्य तेनोदकेन वा प्रोक्षयेत्। ततः ४ कदम्बकाननाय नमः। तद्दक्षिणे ४ कामदेवरतिभ्यां नमः। तदुत्तरदेशे। ४ वसन्तप्रीतिभ्यां नमः। इति सम्पूज्य ४ श्रीरत्नमण्डपाय नमः। इति मण्डपं सम्पूज्य तोरणस्य पश्चिमभागे द्वाराभिमुखमुपविष्टां वाराहीं वक्ष्यमाणरूपां ध्यात्वा। तद्दीपया तां सम्पूज्य। तद्द्वारमस्त्रेणाभ्युक्ष्य। द्वारस्योर्ध्वशाखायां दक्षिणे ४ मं महालक्ष्म्यै नमः। वामे ४ सं सरस्वत्यै नमः। मध्ये ४ दुं दुर्गायै नमः। द्वां द्वारश्रियै नमः। द्वारस्य दक्षिणे वामशाखयोरधोऽधः क्रमेण ४ शं शङ्खनिधिवसुधाराभ्यां नमः। ४ पं पद्मनिधिवसुमतीभ्यां नमः। ४ गं गणपतये नमः। ४ क्षं क्षेत्रपालाय नमः। ४ मां मायाशक्त्यै नमः। ४ चिं चिच्छक्त्यै नमः। ४ गं गङ्गायै नमः। ४ यं यमुनायै नमः। ४ धं धात्रे नमः। ४ विं विधात्रे नमः। ४ दें देहल्याय नमः। ४ दें देहल्यै नमः। द्वाराग्रे ४ वं वरुणाय नमः। इति पश्चिमद्वारं सम्पूज्य ततो तोरणद्वारं गत्वा तथैवा-भ्युक्ष्य तस्योर्ध्वशारवायां दक्षिणवामपार्श्वयोः प्राग्वन्महालक्ष्मी सरस्वत्यौ सम्पूज्य मध्ये ४ वं वटुकाय नमः। ४ द्वां द्वारश्रियै०। पुनः पूर्ववच्छङ्ख-निध्यादिदेहल्यन्तं सम्पूज्य। द्वाराग्रे ४ सों सोमाय०। इति सम्पूज्य। ततः पूर्वद्वारं गत्वा। तथैवाभ्युक्ष्य। तस्योर्ध्वशाखायां दक्षिणवामपार्श्वयोः प्राग्वन्महालक्ष्मीसरस्वत्यौ सम्पूज्य मध्ये ४ क्षं क्षेत्रपालाय नमः। ४ द्वां द्वारश्रियै०। पुनः प्राग्वच्छङ्खनिध्यादिदेहल्यन्तं सम्पूज्य। द्वाराग्रे। लं इन्द्राय नमः। ततो दाक्षिणद्वारं गत्वार्घ्योदकेनाभ्युक्ष्य तदूर्ध्वशाखायां दक्षिण-वामपार्श्वयोः प्राग्वन् महालक्ष्मीसरस्वत्यौ सम्पूज्य मध्ये ४ ग्लौं गणनाथाय नमः। द्वां द्वारश्रियै०। इति सम्पूज्य द्वारशाखयोः प्राग्वच्छङ्खनिध्यादिदेहल्यन्तं सम्पूज्य तामारुह्य मण्डपस्य पश्चिमद्वारादिचतुर्द्वारेषु मञ्चस्थदेवताः सम्पूजयेत्। तत्र प्रथमं तिरस्करिणीम्—

श्यामवर्णां मदघूर्णां रक्तनेत्रत्रयान्विताम्।
कृष्णाम्बरागदाखड्गौ दधतीं च भुजद्वये॥
दोर्भ्यां मनोहराभ्यां च खर्जूरीकुम्भधारिणीम्।
नीलं तुरङ्गमारूढां दृढां पीनघनस्तनीम्॥
मुक्तकेशीं विचित्राङ्गसर्वालङ्कारभूषिताम्।
स्वयोनिदर्शनान्मुग्धां पशुवर्गां तनुं स्मरेत्॥

कृष्णाम्बरामिति कृष्णवर्णप्रियच्छदपरां विवसनामधोवस्त्ररहिताम्। खर्जूरकुम्भधारिणीं। खर्जूररसभरितकुम्भधारिणीमित्यर्थः। दक्षाद्यूर्ध्वयोराद्ये। अधस्तनयोः कुम्भमिति ध्यात्वा पश्चिमद्वाराग्रे किञ्चिद्बहिः ४ ऐं नमो भगवती महेश्वरी पशुजनमनश्चक्षुस्तिरस्करणं कुरु करु स्वाहा। तिरस्करणदेवता श्रीपादुकामिति सम्पूज्य। मध्यस्थदेवताः पूजयेत्। तत्पूजाक्रमः ॐ उड्डीशमते –

सरस्वतीं रमां चैव पश्चिमे परिपूजयेत्।
मायां दुर्गां दक्षिणे तु पूजयेत् परमेश्वरीं॥
भद्रकालीं सरस्वतीं पूर्वे च परिपूजयेत्।
स्वाहां शुभङ्करीं गौरीं दक्षे च परिपूजयेत्॥
वागीशीं लोकधात्रीं च दक्षपश्चिमद्वारके।
एता मञ्चस्थिताः पूज्या यथानुक्रमयोगतः॥ इति।

एवं देवीस्ताः सम्पूज्य पश्चिमद्वारस्य वामभागे। ४ सां सरस्वतीश्री०। दक्षिणभागे ४ मां महालक्ष्मीश्री०। ततो दक्षिणद्वारवामभागे ४ मां मायाश्री०। दक्षिणभागे ४ दुं दुर्गाश्री०। ततः पूर्वद्वारवामे ४ भं भद्रकालीश्री०। दक्षे ४ स्वं स्वस्तिश्री०। तत उत्तरे द्वारे वामे। ४ स्वां स्वाहाश्री०। दक्षे ४ शुं शुभङ्करीश्री०। द्वाराग्रे ४ गं गौरीश्री०। पुनर्दक्षिणद्वारं गत्वा। तद्द्वाराग्रे ४ लों लोकधात्रीश्री०। ततः पश्चिमद्वारं गत्वा। द्वाराग्रे ४ वां वागीश्वरीश्री०। इति सम्पूज्य –

पालितं बहुरिन्द्राद्यैः परमैश्वर्यशोभितं।
प्रपद्ये पश्चिमद्वारं भवान्या मन्दिरं महत्॥

इति ध्यात्वा पश्चिमद्वारमण्डपाय नमः। इति मण्डपं सम्पूज्य तालत्रयपूर्वकं तदुद्वारमुद्घाट्य। सिद्धार्थ भस्मकुशकुसुमा नाराचास्त्रप्रयोगेण –

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः प्रेतगुह्यकाः।
ये चात्र निवसन्त्यन्ये देवता भूमिसंस्थिताः॥

अपसर्पन्तु इत्यन्ते अस्त्रमुच्चरन् मण्डपान्तः निप्रक्षिप्य तस्मिन्निर्गच्छतां विघ्नसङ्घानां स्ववामाङ्गसङ्कोचनेन मार्गं दत्वा त्रिविधान् विघ्नानुत्सारयेत्। तद्यथा –

पाषण्डकारिणो भूत्या भूमौ ये चान्तरिक्षगाः।
दिवि लोकस्थिता ये च ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

इत्यन्ते अस्त्रमुच्चरन्। वामपार्ष्णिघातत्रयं भूमावूर्ध्वतालत्रयेणाऽन्तरिक्षगान् तीक्ष्णदृष्ट्याऽवलोकनेन दिव्यविघ्नानुत्सार्य वामपादपुरःसरं मण्डपान्तः प्रविशेदिति द्वारपूजा।

अत्र प्रतिद्वारगमनाऽसम्भवे पश्चिमद्वार एव गत्वा तत्र द्वाराणि कल्पयित्वा पूजयेत्। अथ यथाक्रमं **द्वारदेवतानां ध्यानं** लिख्यते।

पद्मद्वयवराऽभीतिभास्वत्पाणिचतुष्टयां।
पद्मवर्णां भजेत् पद्मां पद्माक्षीं पद्मवासिनीं॥
अक्षस्रृक्पुस्तकधरा पूर्णचन्द्रसमद्युति।
विश्वविद्यामयी देवी भारती भास्वतां मयि॥
शङ्खचक्राङ्कितकरा कुमारी कुटिलाऽलका।
मृगेन्द्रवाहना देवी दुर्गा दुर्गाणि हन्तु मे॥
तप्तकार्तस्वराऽऽभासा दिव्यरत्नविभूषिता।
द्वारश्री ऊर्ध्वपद्मस्था वराऽभयकराम्बुजा॥
मुक्तामाणिक्यसङ्काशौ किञ्चित् स्मितमुखाम्बुजौ।
अन्योऽन्यालिङ्गनपरौ शङ्खपङ्कजधारिणौ॥
विगलद् रत्नवर्षाभ्यां शङ्खाभ्यां मूर्ध्निलाञ्छितौ।
शङ्खासनसमासीनौ विश्वसङ्कल्पकल्पकौ॥

तुन्दिलं कम्बुकनिधिं वसुधारां घनस्तनीम् ।
वामतः पङ्कजनिधिं प्रियया सहितं भजेत् ॥
सिन्दूराभौ भुजौ श्लिष्टौ रत्नपद्मोत्पलान्वितौ ।
निःसरद् रत्नवर्षाभ्यां पद्माभ्यां मूर्ध्नि लाञ्छितौ ॥
पद्मासनसमासीनौ विश्वसङ्कल्पकल्पकौ ।
तुन्दिलं पङ्कजनिधिं तन्वीं वसुमतीमयीं ॥
पाटलापाटलच्छायां रमणीयरतिप्रियाम् ।
पुण्ड्रेक्षचापपुष्पेषुमन्तं वन्दे मनोभवम् ॥
प्रपद्ये प्रतिदयितं पूर्णेन्दुसदृशं विभुम् ।
वसन्तनन्दनोद्याने वसन्तं सन्ततोत्सवम् ॥
पाशाङ्कुशफलाम्भोजपाणिपात्रं तु तुन्दिलम् ।
वीरं विघ्नेश्वरं वन्दे गजवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
कपालशूलविभ्राणं कपालं कृष्णविग्रहम् ।
तीक्ष्णं स्त्र्यक्षणं समर्चाभिर्क्षेत्रेशं क्षतविद्विषम् ॥
वराभयकरां सौम्यां सोमकोटिसमप्रभाम् ।
भजे गङ्गामहादेव्याः पाद्योदकतरङ्गिणीम् ॥
वामपादाङ्गभूतां परदेव्यास्तरङ्गिणीं ।
वराभयकरां वन्दे कालिन्दीं कालविग्रहाम् ॥
भर्त्तारं जगतां वन्दे शङ्खचक्रगदाम्बुजौ ।
विभ्राणां गरुडारूढं दातारं कृष्णविग्रहम् ॥
रक्तं रक्तारविन्दस्थं वराभयकमण्डलुम् ।
हंसारूढविधातारं वन्दे स्रक्षुक्समन्वितम् ॥
सिंहारूढां श्यामलाङ्गीं खड्गखेटकधारिणीम् ।
अधःस्थां देहलीं वन्दे पश्चिमस्यां सुदक्षिणाम् ॥

पाशाभयधरं वन्दे पूर्णेन्दुसदृशछविम् ।
वरुणं मकरारूढं द्वारे श्रीपरदेवतां ॥
करकलितकपालः कुण्डलीदण्डपाणि-
स्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती ।
क्रतुसमयसपर्या विघ्नविध्वंसहेतु-
र्जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥
धूम्रवर्णो गदाहस्त कुबेरो नरवाहनः ।
सौम्यद्वाराधिपः पायात् परदेव्या धनेश्वरः ॥
व्यालव्यग्रजटाधरं त्रिनयनं नीलाञ्जनादिप्रभं
दोर्दण्डात्तगदाकपालमरुणस्रग्वस्त्रगन्धोज्ज्वलम् ।
घण्टाघुर्घुरमेखलाध्वनिमयं हुङ्कारभीमं भुवः
वन्देऽहं सितसर्वकुण्डलधरं तं क्षेत्रपालं सदा ॥
श्वेताङ्गजाऽऽस्यं परशुं दन्तपाशं त्रिशूलकम् ।
भुजैश्चतुर्भिर्बिभ्राणं मूषकोपरिसंस्थितम् ॥
पूर्वद्वाराधिपः शुक्रः परदेव्यासुप्रीतिकः ।
वज्रहस्तः सहस्राक्षः पायादैरावतं स्थितः ॥
गणेशं श्यामवर्णं च चतुर्बाहुंदिगम्बरम् ।
वामदक्षोर्ध्वबाहुभ्यां पाशाङ्कुशधरं तथा ॥
दक्षिणाधः करेणैव मधुपूर्णं कपालकम् ।
दधानं वामहस्तेन देव्या मदनमन्दिरम् ॥
स्पृशन् वामाङ्गसंस्थाप्य रक्ताया दक्षपाणिना ।
तस्या योनौ न्यस्तलिङ्गं पद्मं वामनपाणिना ॥
दधत्याः शुण्डया योनिं जिघ्रं ध्यात्वा प्रपूजयेत् ।
नीलाञ्जनचयप्रख्यं यमं महिषवाहनं ॥
दण्डमण्डितदोर्दण्डदक्षद्वाराधिपं भजे ॥

अथ मञ्चस्थदेवताध्यानम् –

अक्षस्रक्पुस्तकाभीतिदधानां बाहुभिर्वरम् ।
त्रिलोचनां स्मरेद् देवीं सर्वशुक्लां सरस्वतीम् ॥
पद्मद्वयवराभीतिभास्वत्पाणिचतुष्टयाम् ।
निर्दग्धहेमगौराङ्गीं महालक्ष्मीं त्रिलोचनाम् ॥
वराङ्कुशौ पाशमभीतिशूलौ करैर्दधानां भवभावमुत्काम् ।
घनाघनौघत्प्रभदेहकान्तिं मायां त्रिनेत्रामनिशं स्मरामि ॥
शङ्खचक्रधनुर्बाणान् धारयन्तीं त्रिलोचनाम् ।
दूर्वादलनिभां वन्दे दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम् ॥
कपालखेटकं खड्गं त्रिशूलं बिभ्रतीं करैः ।
भिन्नाञ्जनचयप्रख्यां भद्रकालीं नमाम्यहम् ॥
शक्तिस्वस्तिकमुद्राभिर्हस्तां चन्द्रसमप्रभाम् ।
त्रिनेत्रां संस्मरेद् देवीं स्वस्ति-स्वस्तिकरीं पराम् ॥
रक्तोत्पलद्वन्द्ववराभयानि करैर्वहन्तीं स्मितशोभवक्त्राम् ।
रक्तां त्रिनेत्रामरुणाम्बराढ्यां स्वाहां भजे देवगणाभिवन्द्याम् ॥
शतकल्पलताशार्ङ्गबाणपाशचतुष्टयाम् ।
ज्वलत्काञ्चनवर्णाभां शुभं कुर्याच्छुभङ्करीम् ॥
पाशाङ्कुशावराभीतीर्दधतीमरुणप्रभाम् ।
त्रिनेत्रां मातरं वन्दे गौरीं रक्ताम्बरोज्वलाम् ॥
नाड्युत्पलवराभीतिं बिभ्रतीं काञ्चनप्रभाम् ।
मातरं दिव्यरक्ताङ्गीं लोकधात्रीं नमाम्यहम् ॥
श्वेतां श्वेताम्बरां श्वेतभूषणस्रग्विलेपनाम् ।
पद्मद्वयपरादर्शकरां वागीश्वरीं भजे ॥

इति श्रीपरदेवतामण्डपदेवताद्वाराधिदेवतानां ध्यानम् । इत्थं द्वारदेवताः ध्यायन् पूजयेदिति ।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गाऽगाद्द्वितीयकः ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते श्रीसौभाग्यरत्नाकरे द्वितीयस्तरङ्गः ॥२॥

॥ श्रीः ॥

अथ तृतीयस्तरङ्गः

ततो मण्डपान्तः प्रविश्य वस्त्रेण द्वारमाच्छाद्य घण्टावादनपूर्वकं पञ्चगव्यार्घ्यतोयेनास्त्रमन्त्रेण मण्डपान्तः प्रोक्ष्य नानावर्णरजश्चित्रैः पुष्पमाला-वितानाद्यैर्मण्डपमलङ्कृत्य । मक्षसिन्दूरादिभिर्भित्तिस्तम्भादिकं मणीकृत्य वेदीं परितश्चापि प्रदीपं प्रज्वाल्य कालागुर्वादिर्धूपयित्वा, तदभावे तादृशं ध्यात्वा ततो मण्डपस्य निर्ऋतिकोणे ४ वास्तुपुरुषाय नमः । वास्तव्यतदीश्वराय ब्रह्म णे नमः । ईशानभागे ४ कुलनाथपादुकां पूजयामि । ४ रक्तवर्णद्वादशशक्ति - सहितश्रीदीपनाथपादुकां पूजयामि । इति दीपनाथं सम्पूज्य ।

अस्मिन् क्षेत्रे दीपनाथ निर्विघ्नं सिद्धिहेतवे ।
श्रीचक्रपूजार्थमनुज्ञां देहि दीपतां मयि ॥ इति ।

दीपनाथाज्ञां प्रार्थ्य ततः पश्चिमादिद्वारचतुष्टये मध्ये च ४ शिवदूत्यम्बा-श्रीपादुकां पूजयामि । ४ सुन्दर्यम्बाश्री० । ४ सुमुख्यम्बाश्री० । ४ विरूपाम्बा-श्री० । ४ विमलाम्बाश्री० । ४ अन्तर्यम्बाश्री० । ४ बदर्यम्बाश्री० । ४ पुरन्दर्यम्बा-श्री० । इति द्वारस्य वामदक्षिणयोर्द्वन्द्वं सम्पूज्य । मध्ये ४ पुष्पमर्दिन्यम्बा-श्री० । इति पूजयेत् । ततः—

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इति पठित्वा भैरवाऽऽज्ञामादाय अस्त्राय फडिति पूजावेदीं गत्वा शिरसि ४ मेरुपृष्ठऋषये नमः । मुखे ४ सुतलाय छन्दे नमः । हृदये ४ पृथिव्यै देवतायै० । इति विन्यस्य पृथिवीप्रार्थने विनियोगः। इति कृताञ्जलिरुक्त्वा पृथ्वि त्वया धृता लोकेति पृथिवीं प्रार्थ्य जपस्थाने मूलमन्त्रे वीक्ष्याऽस्त्रेण प्रोक्ष्याऽस्त्रेणैव कुशैस्त्रिः सन्ताड्य । कवचमन्त्रेणाभ्युक्ष्य। वक्ष्यमाणपीठपूजा-क्रमेण ४ मं मण्डूकाय नमः। इत्यादिकाल निरुद्रादिदेवतान्तं सम्पूज्य

तस्यां वेदिकायां यथोक्तमासनं स्वासनस्थाने आस्तीर्य तदस्त्रेण प्रोक्ष्य ४ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः।इत्यासनं सम्पूज्य। तस्याऽऽसनस्याऽऽग्नेयादिकोणेषु ४ गं गणपतये नमः। ४ दुं दुर्गायै०। ४ सं सरस्वत्यै०। ४ क्षं क्षेत्रपालाय०। इति सम्पूज्य तत्र प्राङ्मुखः पद्माद्यासनेनोपविश्य रक्तगन्धवस्त्राङ्गाऽऽभरणभूषितस्ताम्बूलपूरितमुखः कर्पूरमृगनाभिसुवासिताम्बराऽऽस्याऽङ्गः प्रमुदितचित्तः शिवोऽहमिति भावयेत्। स्वशिरसि पूर्वोक्तमातृकाम्बुजं ध्यात्वा गुरूपदेशविधिना स्वपुरतः समे भूतले निर्मितसौधाधिस्थण्डिले सिन्दूरादिना वक्ष्यमाणं श्रीचक्रमुद्धरेत्। अथवा स्वर्णादिपट्टे निर्मितं वक्ष्यमाणविधिना प्रतिष्ठितं चन्दनादिपीठे पुरतः संस्थाप्य वक्ष्यमाणसमष्टियोगिनीमन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं निक्षिपेत्। तत्प्रतिष्ठाप्रकारस्तु श्री तन्त्रराजे –

चक्रे देव्यां तथा शिष्ये प्रतिष्ठा त्रिविधोच्यते।
सा च तत्त्वविदा कार्या सम्प्रदायानुरोधिना॥

चक्रे पूजा चक्रदेव्यां मुक्ततत्त्वविदा प्रतिष्ठा विधिज्ञेन पूर्णाभिषिक्तेन गुरुतः प्राप्तानुज्ञेन। तदुक्तं तन्त्रराजे –

गुर्वनुज्ञां ऋते मोहाल्लोभात् कुरुते यदि।
स पुत्रदारान्निधनं प्राप्नुवन्निहतं व्रजेत्॥

तस्मात् पूर्णाभिषेकेन प्राप्तानुज्ञा समाचरेदिति। एवं विधेनक्रियमाणायां प्रतिष्ठायां कालविशेषः। तत्रैव –

स्थिरे शुभग्रहोपेतेऽनुकूले वा गुणशालिनि।
मुहूर्ते कारयेद्यत्नात्पूर्णायां वा शुभोदये॥
अक्षरत्रयसम्पाते दिने पूर्णा – दिनत्रये।
प्रोक्तेषु पञ्चस्वन्येषु सर्वदा वा शुभोदये॥

पूर्णायां पौर्णिमामावास्यायां अक्षरत्रयसम्पातदिने एकस्यैवाऽक्षरस्य दिनाक्षरत्वेनोदयाक्षरत्वेन च स्थितिर्यस्मिन् दिने अन्येषु पञ्चपर्वसु गुरोर्जन्मदिन-विद्याप्राप्तिदिनस्वजन्मदिन-दर्शन-गुरुमरणदिनेषु इति। पूर्णायां विशेषमाह। यद्येति।

पूर्वोक्तलक्षणयुतदिनासिद्धौ पूर्णायामेव स्वात्मन निःश्वासस्य शुभोदये कुर्यादित्यर्थः। पक्षान्तरमाह सर्वदा शुभोदयमिति। तत्र त्वविद्याकृतामसाक्षात्कारेण प्रोक्ततिथिवारादिकं सर्वमनवेक्ष्य स्वात्मन शुभोदय एवेत्यर्थः। अयं पक्षः सिद्धविषयः। नान्यैः कार्यः। ''कुर्यात्प्रतिष्ठां सिद्धात्मा न त्वन्यो ज्ञानगर्वितः'' इति तत्रैवोक्तत्वात्। तत्रापि सम्प्रदायानुरोधिना विदिततत्वेनापि नित्यनैमित्तिकोपास्तिनिरतेन। तत्रादौ श्रीचक्राधिकरणानि श्रीरुद्रयामले –

ततः कुङ्कुमसिन्दूरैः कार्यं यन्त्रं तु योगिनाम्।
सौवर्णे रजते ताम्रे स्फाटिके विद्रुमे तथा॥
चक्रे यथोक्तविधिना पूज्या देवी नरोत्तमैः॥इति।

तथा मन्त्रराजे –

रत्ने हेमनिरूपे वा ताम्रादिष्विति च क्रमात्।
कृत्वा चक्रस्य निर्माणं स्थापयेत् पूजयेदिति॥
लक्ष्मी कान्तिर्यदा पुत्रधनारोग्यादिसिद्धये।

दृषद्-गण्डकीशिलायां गण्डकीभवपाषाणे। स्वर्णे रजतताम्रादौ। संहितादिरिति दक्षिणामूर्तिवचनात्।

अथ धातुविशेषे पूजाकालसंख्याविशेषमाह रत्नसागरे –

यावज्जीवं सुवर्णे स्याद्रौप्ये द्वाविंशति प्रिये।
ताम्रे द्वादशकं वर्षं तदर्धं भूर्जपत्रके॥

इति सारसङ्ग्रहे।

ताम्रे द्वादशकं वर्षं स्फटिकादौ तु सर्वदा।
तेषां मध्ये स्फाटिकं तु सर्वसिद्धिप्रदं भवेत्॥

श्रीचक्रमिति शेषः। अथाऽधिकरणविशेषफलविशेषमाह लक्षणसागरे–

भूमौ सिन्दूररजजसा रचितं सर्वकामदम्।
सुवर्णं रचितं यन्त्रं सर्वराजवशङ्करम्॥
रजतेन कृतं यन्त्रं आयुरारोग्यकामदम्।
ताम्रे तु रचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदं मतम्॥

यन्त्रे वा स्थण्डिले देवी मनोऽभिलषितप्रदम् ।
माणिक्यलिखितं यन्त्रं राज्यदं भुक्तिदं मतम् ॥
गोमेदरचितं यन्त्रं सर्वैश्वर्यप्रदं मतम् ।
क्लृप्तं मरकतं यन्त्रं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥
लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं मतम् ॥

श्रीदेव्युवाच –

लोहत्रयोद्भवं यन्त्रं कथं कार्यं महेश्वर ।
तन्मे वदस्व कृपया यद्यहं तव वल्लभा ॥

श्रीईश्वर उवाच –

भागा दश सुवर्णस्य रजतस्य च षोडश ।
ताम्रस्य रविभागेन पीठं कुर्यान्मनोहरम् ॥
तस्मिन् पीठे तु निर्माणं श्रीचक्रस्य तु कारयेत् ।
शान्तिदं पुष्टिदं प्रोक्तं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥
आयुरारोग्यजनकं कान्तिदं पुष्टिदं मतम् ॥ इति ।

अथ चक्रस्य प्रस्तारभेदेन त्रैविध्यं तत्रैव –

त्रैविध्यं शृणु चक्रस्य भूप्रस्तारोर्ध्वमेरुकम् ।
पातालवासिनां देवि प्रस्तारो विष्टरौकसाम् ॥
ऊर्ध्वरेखा महेशानि मर्त्यलोकनिवासिनाम् ।
स्वर्गलोकाधिवासिनां यन्त्रराट् मेरुसंज्ञिकः ॥
भूपुरं तु समारभ्य बैन्दवान्तं महेश्वरि ।
क्रमात्समुन्नतं सर्वं मेरुरूपं मयोदितम् ॥
समोर्ध्वरेखं नवकमूर्ध्वरेखं प्रकीर्तितम् ।
निम्नरेखासमायोगाद् भूप्रस्तारो मयोदितः ॥
यन्त्रराजस्वरूपं ते मया स्नेहात्प्रकाशितम् ।
गोपनीयं त्वया भद्रे ! स्वगुह्यमिव सन्ततम् ॥ इति ।

अथैतत्प्रस्तारत्रयस्य फलानि प्रस्तारान्तरं च तन्त्रराजे –

चतुरस्रां समारभ्य नव चक्राण्यनुक्रमात्।
उन्नतोन्नतमामध्याच्चक्रं स्यान्निधनं धनम्॥
त्रि-त्रिक्रमादुन्नतं तदप्रजात्वाश्रयं भवेत्।
एकद्वित्रिक्रमोन्नामश्रियं कर्त्र्यै च कल्पिते॥

नवानि समरूपाणि सर्वाभीष्टसिद्धये। तथा कुलमूलावतारे –

उत्थितं क्रमशो देवि! वित्तप्राप्तिस्ततो मृतिः।
भूचक्रं षोडशारं चाप्यष्टारं च समं भवेत्॥
शेषमुन्नतमीशानि चार्धापि प्रजदं भवेत्।
चतुरस्रं समं देवि! षोडशारादिबिन्दुकम्॥
मिथः समुन्नतं देवि! श्रियै कीर्त्यै च कल्प्यते।
चतुरस्रं समारभ्य विद्रुतं समरेखकम्॥
तथा श्रीकीर्तिरारोग्यं अमृतायोपकल्प्यते॥ इति।

अथ श्रीचक्राधिकरणे निषिद्धधातून् अन्यानि निषिध्यादिकरणानि चाह तन्त्रराजे –

सीसकाँस्यादिषु पुनः पूर्वोक्तविपरीतकृत्।
फलकायां पटे भित्तौ स्थापयेन्न कदाचन॥
स्थापितं यदि मोहेन लोभेनाऽज्ञानतोऽपि वा।
कुलं वित्तमपत्यं च निर्मूलयति सर्वथा॥इति।

तथा लक्षणसागरे –

वंशेऽथ सीसके लोहे न कर्त्तव्यं कदाचन॥इति।

श्रीचक्रस्य पीठप्रमाणं द्रव्यप्रमाणं चाह कुलमूलावतारे।

अग्निरङ्गुष्ठविस्तारं प्राक् प्रत्यग्दक्षिणोत्तरम्।
पलप्रमाणं कर्तव्यं अर्चापीठं मनोहरम्॥
यवार्धोर्ध्वं प्रकुर्वीत चतुरस्रं समन्ततः।
तस्मिन् पीठे च निर्माणं श्रीचक्रस्य तु कारयेत्॥

सौत्रामणितन्त्रे—

रज्जुरेखा भवेल्लक्ष्मी वक्ररेखा दरिद्रता।
अग्निरङ्गुलविस्तारो यवार्धेनोच्छ्रितिर्भवेत्॥

इति लक्षणसागरे।

अग्निरङ्गुलहेमस्य रजतस्य तथैव च।
ताम्रस्य पूर्वसंख्यैव माणिक्यादौ यथेच्छया॥

अग्निरङ्गुलविस्तारमिति हेमस्येति दिव्यत्वात्। त्र्यङ्गुली विस्तारायतम्- इत्यर्थः। फलं विंशत्युत्तरत्रिंशत्यङ्गुलापरिमितम्। आदिशब्देन पुष्पं नीलादयो रत्निविशेषा उच्यन्ते। अङ्गुलविस्तारस्तु मानान्तरमानेन वेदिकापीठशिरो रथादीनां विधिः। पुनः– 'मानान्तराङ्गुलेनैव भवेन्मान्येन केचिदि'ति। महाकपिलपञ्चरात्रवचनात्। श्रीचक्राधिकरणकपिलपञ्चरात्र एव च।

विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिरेर्मानान्तराङ्गुलम्।
शालिनीर्वा ऋजुन्यस्तैस्त्रिभिर्मानान्तरं भवेत्॥ इति।

॥ अथैतत्प्रतिष्ठाप्रकारः ॥

तत्र तन्त्रराजे –

क्षौद्राज्यदुग्धैः प्रथमं नारिकेलाम्भसा ततः।
अभिषेच्याऽथ तोयेन कपित्थेनाक्षकाक्षकैः॥
आवाप्याऽभ्यर्च्य तल्लग्ने चक्रे संस्थाप्य पूजयेत्।
नित्यतत्त्वोऽस्मि कालोत्थविद्ययाऽभ्यर्च्य तां क्रमात्॥
स्पृशन् जपेत् कराग्रेण श्रीचक्रं पूजयेदिति।
एवं दिनत्रयं कृत्वा ततो नित्यक्रमं भवेत्॥
गन्धैः पुष्पैर्नवैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यतर्पणैः।
त्रिरात्रं पूजयेद्देवीं योगिनी योगिभिः समम्॥

एवं देवीप्रतिष्ठायां क्रमः सान्निध्यो कार्य इति।

॥ अथैतत्प्रयोगः ॥

तत्र यथोक्तमानेन निर्मितं चक्रं स्वर्णादिधातुनिर्मितं चेदाऽऽम्लरसेन शुद्धं प्रक्षालितं वेदोक्तविधिना कृताग्न्युत्तारणं क्वचित्पात्रे संस्थाप्य। तत्राग्ने-

दीक्षाप्रकरणे वक्ष्यमाणे शुभमास-पक्ष-तिथि-वार-करण-मुहूर्त्तविशिष्टे साधकस्य चन्द्रताराद्यनुकूले दिवसे स्थिरलग्ने मध्वाऽऽज्य-दुग्ध-नारिकेलजलैः पृथक् पृथगभिषिच्य सुगन्धसलिलेनाऽप्याभिषिच्य पञ्चाशदक्षराधिकाक्षजलेनाऽप्य-भिषिच्य पुनः सुगन्धजलैः प्रक्षाल्य पूर्ववद् द्वारपूजा पीठपूजान्तं कृत्वा तस्मिन् पीठचक्रं संस्थाप्य तथैव पीठमन्त्रान्तं सम्पूज्य तस्मिन् चक्रे देवीमावाह्य। तद्दिननित्याविद्या तृतीयकूटेन मूलविद्यया च प्रत्येकं त्रिवार-मभ्यर्च्य यथोक्तविधिनाऽङ्गावरणपूजां विधाय पूर्वोक्तषड्त्रिंशदुत्तर-सप्तशताधिकविंशतिसहस्रसंख्याभिः कालनित्याविद्याभिश्चक्रं स्पृशन्नभिमन्त्र्य श्रीचक्रपूजाक्रमेण सम्पूज्य धूपदीपादिनानाविधभोज्यैर्देवीशक्तिमेकैकांच तथैव सम्पूज्यादिसन्तर्प्य प्रणम्य च विसृजेत्। दिनत्रयं देवीं न विसृजेत्। प्रत्यहं त्रिसन्ध्यां क्रमार्चनं कुर्यात्। इति प्रतिष्ठिते चक्रे नित्यार्चनादि कुर्यादिति। मूर्तिप्रतिष्ठायामप्येष एव विधिर्ज्ञेयः। तत्र स्थिरायां विसर्जनं नास्तीति विशेषः। इति चक्रराजं समुद्धृत्य स्ववामाग्रे वक्ष्यमाणविधिना सर्वभूतबलिं दत्वा। बलिस्थानादुत्तरतः पक्षिराजं ध्यायेत्। तद्यथा –

अष्टापदं पक्षसुमूलराजद्वज्राङ्कुरं हाटकपक्षकूटम्।
हेमाङ्गमङ्गीकृतपद्मरागं चञ्चत्स्फुटोल्लासमुखारविन्दम्॥
सूर्यानलेन्दुद्युतिराजमानं नेत्रत्रयोल्लासितपद्मरागम्।
नीलाश्मदीप्ताखिलरोमसङ्गं शीतांशुशुण्डोज्ज्वलितोत्तमाङ्गम्॥
विप्रो हे द्वन्द्वबद्धोत्तमकपिलजटा भारिसञ्चारिगङ्गां
भङ्गाकान्तोत्तरङ्गात्क्रमगलितवृषत्सङ्गहाराभिरामम्॥
लग्नोद्यन्नागबन्धक्रमघटितपटीग्रन्थिपञ्चाङ्गुलोद्यत्
पुञ्जस्थग्रन्थिबाहोद्भवभुजगयुगोल्लासिमालाभिरामम्॥
कक्षः सन्धौ च वेद्या पदयुगललसच्चन्द्रतीव्रांशुलीलं
घण्टाघोषाकुलाशादशकप्रतिकुलं वैरिसङ्घैकपालम्।
पाशाङ्कुरांसलोलद्दृषलकुलभवाऽऽशीविषाधीरभोगः
स्फूर्जत्स्फूत्कारघोरं खुरपुटनिकरक्षुण्णसर्वासहान्तम्॥

भक्षयन्तं पक्षिराजं भक्तानां वैरिसञ्चयम्।
शरभं साल्वरूपं च ध्यायेदेकाग्रमानसः॥

इति शरभरूपं शिवं ध्यात्वा। ॐ नमो भगवते शरभसाल्वाय पक्षिराजाय मम शत्रून् नाशय नाशय हुं फट् स्वाहा। श्री शरभदेव श्रीपादुकां पूजयामि शरभस्य वामभागे शरभसदृशीमेव शरभां ध्यात्वा। ॐ नमो भगवति शरभिसाल्वपक्षिराजि मम शत्रून् नाशय-नाशय खे खे हुं फट् स्वाहा। श्रीशरभदेवी श्रीपादुकां०। इति शरभमिथुनं सम्पूज्य। चक्रस्य पूर्वदिशि –

कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तं
रक्ताक्षं पिङ्गकेशं रिपुकुलभयदं भीमदंष्ट्राट्टहासम्।
चक्रं शङ्खं गदाब्जं पृथुतरमुसलं चापपाशाङ्कुशास्त्रै-
र्बिभ्राणं दोर्भिराढ्यं मनसि मुररिपुं भावयेच्चक्रसञ्ज्ञम्॥

दक्षादूर्ध्वयोराद्ये। तदाद्यधस्तनेऽन्ये। तदाद्यधस्तनेऽपरे। इत्यायुध ध्यानम्। इति श्रीसुदर्शनं ध्यात्वा। ४ ॐ सहस्रार हुं फट् श्रीसुदर्शन नमः। इति सम्पूज्य दक्षिणस्यां दिशि –

सजलघनसमानं भीमदंष्ट्रं त्रिनेत्रं भुजगमखिलघोरं रक्तवस्त्राङ्गरा
परशुडमरुखड्गं खेटकं बाणचापं त्रिशिखनरकपालं बिभ्रतं भावय

दक्षादूर्ध्वयोराद्ये। तदाद्यधस्तनेऽन्ये। तदाद्यधस्तनेऽपरे। त धस्तनेइतरे। इत्यायुधध्यानम्। इत्यघोररुद्ररूपं ध्यात्वा। ४ ह्रीं स्फुर २ प्र २ घोर २ तनुरूप २ चट २ प्रचट २ कह २ वंवं २ बन्ध २ घातय फट् अघोररुद्राय नमः। इत्यघोररुद्रं सम्पूज्य, पश्चिमे –

सौवर्णाम्बुजमध्यगां त्रिनयनां सौदामिनीसन्निभां
शङ्खं चक्रवराभयानि दधतीमिन्दोः कलां बिभ्रतीम्।
ग्रैवेयाङ्गदहारकुण्डलधरामाखण्डलाद्यैस्तुतां।
ध्यायेद् विन्ध्यनिवासिनीं शशिमुखीपार्श्वस्थपञ्चाननाम्।

वामोर्ध्वकरमारभ्य वामाधःकरान्तमायुधध्यानम् । इति श्रीदुर्गां ध्यात्वा ४ उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे समुपस्थितम् । यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवती शमय स्वाहा । अत्र वक्ष्यमाणसमयविद्याश्च स्मरेत् । श्री दुर्गायै नमः । इति सम्पूज्य स्वदक्षिणभागे गन्धपुष्पादिपूजोपकरणं निधाय ४ ह्रीं ह्रीं हुं फट् इति मन्त्रं स्मरन्नाराचमुद्रया दिव्यदृष्ट्या च पुष्पादिकं विलोक्य वामभागस्थां जलपूर्णकुम्भां ॐ आं इति वामहस्तेन स्पृष्ट्वा द्रौं क्ष्रौं इति-इति दक्षिणकराग्रेण कुम्भस्य जलं स्पृष्ट्वा ४ रमिंति दीपशिखां स्पृशेत् । ततः करं प्रक्षाल्य वामे ४ गुं गुरुभ्यो नमः । दक्षिणे, गं गणपतये नमः । अग्रे, ४ श्री परदेवतायै० । इति कृताञ्जलिः प्रणम्य मूर्ध्नि सङ्घट्टमुद्रां निधाय ह्स्रौं ह स क्ष म ल व य रां, ह स क्ष म ल व य रुं, ह स क्ष म ल व य रों, ह्स्रौं ह स क्ष म ल व य रुं श्री हं पावक सर्वाराध्य सर्वमूर्ध्नि पुरनाथ सर्वगुरो स्वयंगुरु श्री गुरुनाथ २ ह स क्ष म ल व य रुं, ह्स्रौं ह स क्ष म ल व य रीं, ह स क्ष ह म ल व य रूं, ह स क्ष म ल व य रां श्री शम्भुगुरु ह स्रौं ४२ श्री अमुकानन्दनाथ अमुकदेव्याम्बाश्रीपादुकां पूजयामीति स्वशिरसि श्री गुरुपादुकां विन्यस्य पुनरेतया एव विद्यया गन्धाक्षतकुसुमैः सम्पूज्य । गन्धादिपञ्चमुद्राः प्रदर्श्य नमोऽस्तु गुरवे इत्यादिना, नमस्कारमुद्रया प्रणम्य ४ अं आ सौः इति करशुद्धिविद्यया सुगन्धद्रव्यमर्दनेन करौ सुरभीकृत्य ह्स्रौं इति मन्त्रेण सुगन्धपुष्पाण्यादाय मर्दयित्वा । वामकरेण ४ तां निर्मुक्तमाघ्राय । ४ ॐ

ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः ।
मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्ति रिपुमस्तके ॥

इति पठित्वा नाराचमुद्रया तत्पुष्पमुत्तरस्यां दिशि दूरे निक्षिपेत् । ततः पुनः करशुद्धिविद्यया करावन्योन्यमर्दनेन संशोध्य मध्यमयोः ४ अं नमः । अनामिकयोः आं नमः । कनिष्ठिकयोः ४ सौं नमः । अङ्गुष्ठयोः ४ अं नमः । तर्जन्योः ४ आं नमः । करतलकरपृष्ठयोः ४ सौं नमः इति विन्यस्य । ऐं क्लीं सौः नमः । त्रिपुरसुन्दरीं मां **रक्ष रक्ष इति मन्त्रेण**

मूर्धादिचरणान्तं त्रिव्यापकं विन्यस्य पुनरेतदुद्धार्य ऊर्ध्वोर्ध्वताल-तालत्रयं तर्जन्यङ्गुष्ठोत्थशब्दैर्दशदिग्बन्धनं त्रिशूलाकारयोः व्यत्यस्थयोः स्वमूर्धानं परितस्त्रिभ्रामणेन बहिः प्राकारत्रयं च कृत्वा, मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, प्रणवद्वादशावृत्या सुशुद्धिं विधाय भूतशुद्धिं कुर्यात्। तद्यथा– पादादिजानुपर्यन्तं पृथिवीस्थानम्। चतुरस्रं वज्रलाञ्छितं पीतवर्णं ब्रह्म-दैवत्यं निवृत्तिकलाधिष्ठितम्। लं बीजयुक्तं चिन्तयित्वा। जान्वादिनाभिपर्यन्तं अपां स्थानं अर्धचन्द्राकारं शुक्लवर्णं शृङ्गद्वयेऽपि पद्मलाञ्छितं विष्णुदैवत्यं प्रतिष्ठाकलाधिष्ठितं वं बीजयुक्तं ध्यात्वा। नाभ्यादिकण्ठपर्यन्तं वह्निमण्डलं स्वस्तिकोपेतं त्रिकोणाकारं रक्तवर्णं रुद्रदैवत्यं विद्याकलाधिष्ठितं रं बीजयुक्तं ध्यात्वा कण्ठादिभ्रूमध्यपर्यन्तं वायुमण्डलं षट्कोणाकारं षड्बिन्दुलाञ्छितं वृत्तोपेतं कृष्णवर्णं ईश्वरदैवत्यं शान्तिकलाधिष्ठितं यं बीजयुक्तं विचिन्त्य भ्रूमध्यादिब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं आकाशस्थानं वृत्ताकारं ध्वजलाञ्छितं धूम्रवर्णं सदाशिवदैवत्यं शान्त्यतीताकलाधिष्ठितं हं बीजयुक्तं ध्यात्वा तत्र।

पञ्चभूतमयं देहे धर्मकन्दसमुद्भूतम्। ज्ञाननालकमैश्वर्याऽष्टदलोपेतं परं वैराग्यकर्णिकाकर्णिकं स्वहृदयारविन्दं विभाव्य। तत्कर्णिकायां जीवात्मान-मराग्रमात्रं दीपकलिकाभासमानमादिमलसच्छन्नं परचिद्रूपं सञ्चिन्त्य योनि-मुद्रां बध्वा प्रागुक्तरूपेण मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य सुषुम्नवर्त्मना मूलाधाराद्यनाहतां तच्चक्रस्थावर्णवर्णाधिदेवताः ग्रसन्ति। हृदयकमल मानीय तया कवलीकृतं जीवात्मानं ध्यायेत्। सुषुम्नावत्क्रमाद्विशुध्यादिचक्रस्थवर्णा-वर्णाधिदेवताग्रसन्ति ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा। तत्र श्वेतसहस्रदलकमलकर्णिक-मध्यवर्त्तिनां परमात्मज्योतिः सर्ववर्णवर्णाधिदेवताकदम्बजीवात्मानम्। ४ हंस इति मन्त्रेण संयोज्य अस्त्रेण रक्षां कृत्वा कुण्डलिनीं स्वस्थानमानीय तत्त्वसंहारं कुर्यात्। तद्यथा– तत्र पृथिवीस्थाने पादेन्द्रियगमनक्रिया-गन्तव्यगन्धघ्राणपृथिव्यो ब्रह्मणि निवर्त्तिसमानवायून् सम्पूज्य ४ ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्याधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा। इति मन्त्रेण तान् सर्वान् कुण्डलिनीद्वारा अपां मध्ये संहरेत्। तत्तोये स्थाने हस्तादानदातव्य-

रसरसनाजलविष्णुप्रतिष्ठोदानात् सञ्चिन्त्य ४ ॐ ह्वीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा । इति मन्त्रेण तान् सर्वान् कुण्डलिनीद्वारा वह्नितत्त्वे संहरेत् । ततो बह्निस्थाने पायुविसर्गविसर्जनीयरूपचक्षुर्वह्नि-रुद्रविद्यात्मनाऽऽत्मानं स्मृत्वा । ४ ॐ ह्रूं तेजोधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा । इति मन्त्रेण तान् सर्वान् वायुमण्डले संहरेत् । ततो वायुस्थान उपस्थानं तद्वियत्स्पर्शस्पृष्टव्यश्चरणं त्वपानां संस्मृत्य । ४ ॐ ह्रैं ईश्वराय वातव्याधिपतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा । इति मन्त्रेण तान् सर्वानाकाशस्थाने संहरेत् । तत्राकाशस्थाने वाग्वदवक्तव्य-वाङ्मन-श्रोत्राकाशसदाशिवशान्त्यतीतप्राणं संस्मृत्य । ४ ॐ ह्रौं सदाशिवाखाकाशाधि-पतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा । इति मन्त्रेण तान् सर्वान् कुण्डलिन्यां हृतां बिन्दुशक्तौ बिन्दुशक्तिं नादशक्तौ नादशक्तिं परशक्तिं प्रणवेन संहृत्य ४ ॐ द्रीं द्रुं फट् स्वाहा । इति तां परशक्तिं पूर्वोक्तपरमात्मनि संयोज्य पृथिव्यादीनि भूतानि क्रमेण स्वरूपं सञ्चिन्तयेत् । तद्यथा –

वामकुक्षिस्थितं पापपुरुषं कज्जलप्रभम् ।
ब्रह्महत्या शिरस्कं च स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ॥
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् ।
तत्संयोगपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ॥
उपपातकरोमाणां रक्तश्मश्रुविलोचनम् ।
खड्गचर्मधरं कृष्णं कुक्षौ पापं विचिन्तयेत् ॥

इति पापपुरुषं विचिन्त्य वामनासारन्ध्रेण यं बीजेन द्वात्रिंशद् वारं आवर्तनेन सह वायुमापूर्य नाभिस्थषट्कोणके वायुमण्डले संयोज्य तत्र यमिति वायुबीजं कृष्णवर्णं सञ्चिन्त्य कुम्भकेन यं बीजं चतुः-षष्ट्यावर्तनतदुत्थितेन महावायुना सह पापपुरुषं स्वशरीरं संशोष्य यं वायुबीजं षोडशवारमावर्त्तयेत् । तं वायुं दक्षिणनासया विरेच्य रमिति

बीजेन द्वात्रिंशदावर्तनेन दक्षिणनासया वायुमापूर्य मूलाधारं संयोज्य तत्र वह्निमण्डले रं वह्निबीजं रक्तवर्णं विचिन्त्य कुम्भकेन रमिति बीजं चतुः षष्टिवारमावर्तयेत्। तदुत्थितेन महावह्निना स्वपापपुरुषं देहं दग्ध्वा पापपुरुषभस्मना सह रं वह्निबीजं षोडशवारं समावर्तयेत्। तं वायुं वामनासया विरेच्य। पुनर्वामनासया द्वात्रिंशदावर्त्तनेन वं बीजेन सह वायुमापूर्य ब्रह्मरन्ध्रे संयोज्य। तत्र स्थितचिच्चन्द्रमण्डले वमित्यमृत-बीजं मुक्तावर्णं सञ्चिन्त्य। कुम्भकेन षोडशवारमावर्त्तयन् वं बीजं तन्निसृतामृतधारया स्वदेहभस्म संषिच्य। वं बीजं षोडशवारमावर्त्तयन् तं वायुं दक्षिणनासया विरेच्य। पुनर्दक्षिणनासया लं बीजेन द्वात्रिंश-दावर्तनेन सह वायुमापूर्य मूलाधारस्वपार्थिवमण्डले संयोज्य। तत्र लमिति पृथिवीबीजं पीतवर्णं सञ्चिन्त्य कुम्भकेन लं बीजं चतुःषष्टिवार-मावर्त्तयन्। तदुद्भूतेन तेजसाऽमृताऽऽप्लावितं भस्मादानीकृत्य, लं बीजं षोडश-वारमावर्त्तयन् वामनासया तं वायुं विरेच्य पुनर्वामनासया ह्रींबीजेन ३२ कृतेन सह वायुमापूर्य मूलाधारस्य बिन्दुमध्ये मायाबीजं स्फुरद्बालार्कवर्णं सङ्घीकृत्य। कुम्भकेन मायाबीजं चतुःषष्टिवारमावर्त्तयन् तेन कर-चरणाद्यवयवसमेतं स्वदेहनिष्पन्नं विभाव्य मायाबीजं षोडशवारमावर्त्तयन् तं वायुं दक्षिणनासया विरेचयेदिति स्थूलशरीरं निष्पाद्य। सूक्ष्मशरीरं निष्पादयेत्। तद्यथा — तत्र पूर्वोक्तसहस्रारकमलस्थपरमात्मनः प्रकाशात् सकलं जगत्। सिसृक्षाविजृम्भितपरब्रह्मेच्छारूपिणीं परशक्तिं ४ ॐ ह्रीं नमः। इति परमात्मनः सकाशात् स्वस्थानमानीय ततो नादशक्तिं ततो बिन्दुशक्तिं प्रणवेन स्पृष्ट्वा। बिन्दुशक्तिसकाशात् सकलजगत्सृष्टिहेतुभूतां कुण्डलिनीं प्रणवेन निःसार्य ततः ॐ ह्रीं सदाशिवायाकाशाधिपतये शान्त्यातीतकलात्मने नम इति प्राणशान्त्यतीतसदाशिवाकाशश्रोत्रशब्दवक्तव्य-वदनवाच आकाशस्थाने स्थापयेत्।

ततः आकाशमण्डलात् ॐ हैं ईश्वरवागधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने नम इति मन्त्रेण प्राणशक्तिं ईश्वरवायुसृष्टव्यस्यद्विषयानन्दोपस्थानान् वायुस्थाने स्थापयेत्। ततः ॐ हूं रुद्राय तेजोधिपतये विद्याकलात्मने

नम इति मन्त्रेण व्यानविद्यारुद्रतेजश्चक्षुरूपविसर्जनीयविसर्गवायुं नाभिस्थाने स्थापयेत्। ततः ४ ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने नम इति मन्त्रेणोदानप्रतिष्ठा विष्णो जलरसनारसदातव्यादानहस्तानपानपां स्थाने स्थापयेत्। ततः ४ ॐ ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने नम इति मन्त्रेण समानवृत्तिब्रह्मपृथिवी घ्राणगन्तव्यगमनक्रियापदेन्द्रियाणि पृथिवीस्थाने स्थापयेत्। ततः प्रणवेन कुण्डलिनीं स्वस्थाने स्थापयित्वा नादशक्तिं बिन्दुशक्तिं परशक्तिं प्रणवेन स्वदेहव्याप्तां विभाव्य ब्रह्मरन्ध्रस्य परमात्मनः सकाशात् कुण्डलिन्या जीवात्मानं संहृतवर्णावर्णाधिदेवतासहित-माज्ञाचक्रेषु तत्तद्वर्णवर्णाधिदेवताः स्थापयेत्। हृदयकमलमानीय सोऽहमिति मन्त्रेण हृदयकमले जीवात्मानं स्थापयित्वा। कुण्डलिनीं सुषुम्नामार्गेण मणिपूरकादिचक्रेषु तत्तद्वर्णवर्णाधिदेवता स्थापयेत्। मूलाधारं नीत्वा तत्र तां स्थापयेत्। ततः स्वशरीरनिरस्तसकलकलुषं तेजोरूपं देवताराधनयोग्यं विभाव्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। सा, यथा– शिरसि ४ ब्रह्मा-विष्णु-शिवेभ्यो ऋषिभ्यो नमः। मुखे ४ ऋग्यजुः सामभ्यश्च्छन्दोभ्यो नमः। हृदये ४ पराप्राणशक्त्यै देवतायै नमः। गुह्ये ४ अं बीजाय नमः। पादयोः। ४ ह्रीं शक्तये नमः नाभौ। ४ क्रौं कीलकाय नमः। इति विन्यस्य। मम प्राणप्रतिष्ठार्थे विनियोगः। इति कृताञ्जलिर्वदेत्। ४ ॐ आं ह्रीं क्रौं ॐ अं कं ४ आकाशवाय्वग्निसलिलपृथिव्यात्मने आं हृदयाय नमः। ४ ॐ आं ह्रीं क्रों इं चं ४ शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा। ४ ॐ आं ह्रीं क्रों उं टं ४ श्रोत्रत्वक्-चक्षुजिह्वाघ्राणात्मने ॐ शिखायै वौषट्। ४ ॐ आं ह्रीं क्रों एं तं ४ वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुं। ४ ॐ आं ह्रीं क्रों ॐ पं ४ वचनादानगमनविसर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्। ४ ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं मनोबुध्यहङ्कारचित्तचैतन्यात्मने अः अस्त्राय फट्। इति मन्त्रानङ्गुष्ठादितलान्तं विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि एतान्विन्यस्य। ततो नाभ्यादिपादद्वयान्तं ४ आं नमः। हृदयादिनाभ्यन्तं ह्रीं नमः। मूर्धादिहृदयान्तं ४ क्रों नमः। ततो हृदयकमलमध्ये ४ यं

त्वगात्मने नमः। पूर्वदले ॐ ४ रं असृगात्मने नमः। पश्चिमदले ४ लं मांसात्मने नमः। आग्नेयदले ४ वं मेदात्मने नमः। वायव्यदले ४ शं अस्थ्यात्मने नमः। ईशानदले ४ षं मज्जात्मने नमः। नैर्ऋतिदले ४ ॐ संशुक्लात्मने नमः। उत्तरदले ४ हं प्राणात्मने नमः। दक्षिणदले ४ लं जीवात्मने नमः। कर्णिकायां ४ क्षं परमात्मने नमः। इति विन्यसेत्। ततो ध्यानम् –

रक्ताऽब्धिपोतारुणपद्मसंस्थां पाशाऽङ्कुशाविक्षुशरासबाणान्।
शूलं कपालं दधतीं कराब्जै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम्॥

इति ध्यात्वा। हृदि हस्तं निधाय ४ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं हंसः सोऽहं मम प्राण इह प्राणः ४ ॐ आं० क्षं मम जीव इह स्थितः। ४ ॐ आं १४ सर्वेन्द्रियाणि ४ ॐ आं १४ वाङ्मनस्त्वक्चक्षुश्श्रोत्रजिह्वाघ्राणपाणिपादप्राण इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। इति प्राणप्रतिष्ठां त्रिर्जपित्वा निजतपोज्योतिर्मयं ध्यायेदिति प्राणप्रतिष्ठाविधिः। ॐ इति मन्त्रं १६ जपेत् हृदये हस्तं निधायेति।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गस्तृतीयोऽगमत्॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते श्रीसौभाग्यरत्नाकरे तृतीयस्तरङ्गः॥ ३॥

॥श्रीः॥

अथ चतुर्थस्तरङ्गः

॥अथ मातृकान्यासः॥

स चाऽत्र विद्यायां शुद्धः कलामूर्तिप्रदश्च यागभेदाच्चतुर्विधः। शुद्धादयोऽप्यस्यां विद्यायां त्रयोदशविधाः। शुद्धो बिन्दुयुतो विसर्गयुक्तो बिन्दुविसर्गयुक्तो हृल्लेखाद्यो लक्ष्म्याद्यः कामबीजाद्यो मायाश्रीकामबीजाद्यो बालासम्पुटितः परासम्पुटितः श्रीविद्यान्वितो हंसादिकपरमहंसादिकश्चेति। कलायुक्तो द्विविधः– तारोत्थकलान्यासस्तेजः त्रितयोत्थकलामातृकान्यासश्चेति। मूर्तित्वन्यासोऽपि द्विविधाः– केशवादिश्रीकण्ठादिभेदात्। चतुर्थः प्रपञ्चयागः। तत्रादौ मातृकावर्णैः प्राणायामत्रयं कृत्वा न्यासं समारभेत्। तत्र स्वरैः पूरकः, पञ्चवर्गैः कुम्भकः, याद्यादिभिः रेचकः इति मातृकाप्राणायामः। इत्थं प्राणायामत्रयं कृत्वा न्यासं कुर्यात्।

तत्र प्रथमं शुद्धमातृकान्यासः। ॐ अस्य श्रीशुद्धमातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीमातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः। हलो बीजानि। स्वराः शक्तयः। अव्यक्तं कीलकं मम श्रीविद्याङ्गत्वे न्यासे विनियोगः। इति कृताञ्जलिः ऋष्यादिकं स्मृत्वा, मूर्धादिषु विन्यसेत्। तद्यथा– शिरसि ४ ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे ४ गायत्रीछन्दसे नमः। हृदये ४ श्रीमातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः। गुह्ये ४ हल्-बीजेभ्यो नमः। पादयोः ४ स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नमः। नाभौ ४ अव्यक्ताय कीलकाय नमः। इति विन्यस्य। मम श्रीविद्याङ्गत्वे न्यासे विनियोग इति सर्वाङ्गे व्याप्य कृताञ्जलिः वदेत्। ततः दक्षकरतले अं नमः। तत्पृष्ठे आं नमः। दक्षकरभे इं नमः। दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य वामाङ्गुष्ठादिदशस्वङ्गुलिषु ऊकारान्तान् १० विन्यस्य वामकरमारभ्य पृष्ठतलतलेषु औकारादि विसर्गान्तं न्यसेत्। अयं केवलं न्यासः। ततो वामकरतलादि दक्षकरतलान्तं सविसर्गाद्यकारान्ताः सबिन्दुका न्यसेत्। अयं संहारन्यासः। दक्षकरतलादि-

वामकरतलान्तं सविसर्गान् स्वरान् न्यसेत्। अयं सृष्टिन्यासः। वामकनिष्ठादि-वामकरतलान्तं अष्टौ स्वरान् ऌकारादीन् बिन्दुविसर्गयुक्तान् विन्यस्य, दक्षकरतलादि तत्कनिष्ठान्तमकारादिॠकारान्तान् अष्टौ स्वरान् बिन्दुविसर्ग-युक्तान् न्यसेत्। इति स्थितिन्यासः। इति मातृकास्वरान् विन्यस्य तकरादिशान्तान् वामकनिष्ठमूलादि-तदङ्गुष्ठाग्रपर्यन्तेषु पञ्चदशस्थानेषु विन्यस्य। दक्षाङ्गुष्ठादितत्कनिष्ठिकान्तेषु कादिणान्तान् विन्यस्य। करद्वयेऽप्यङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं युगपदेव षादिक्षान्तान् पञ्चवर्णान् व्यापकत्वेन न्यसेत्। इति मातृकाक्षरैः करशुद्धिं विधाय। ४ ॐ कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः। ४ इ चुं ४ ई शिरसि। ४ ऊं टुं ४ ऊँ शिखायै। ४ एं तुं ४ ऐं कवचाय हुं ४ ॐ पुं ४ औं नेत्रत्रयाय। अं यं ९ अः अस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रान् अङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य। हृदयादि-षडङ्गेष्वपि। ततो ध्यानं। तत्र प्रथमं सूक्ष्मरूपां ध्यात्वा अन्तर्मातृकां न्यसेत्। तद्यथा –

व्योमेन्दौरसतार्णिकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरं
पत्रान्तर्गतपञ्चवर्गयशळाक्षत्रिवर्गक्रमात्।
आशास्वष्टसु लान्तमङ्गुलिषु च क्षोणीपुरेणावृतं
वर्णाद्यं शिरसि स्थितं विषगदप्रध्वंसिमृत्युञ्जयम्॥

इति ब्रह्मरन्ध्रवर्णारविन्दं ध्यात्वा –

मूलाधार-ध्वनिं श्रुत्वा, प्रबुध्वा शक्तिकुण्डलीं।
ज्वलत्पावकसङ्काशां सूक्ष्मतेजःस्वरूपिणीं॥
मूलाधाराच्छिरः पद्मं स्पृशन्तां विद्युदाकृतिम्।
तथा स्पृष्ट – शिरःपद्मादमृतौघस्वरूपिणीं॥
निर्गताम् मातृकावर्णैः सुषुम्नावर्त्मना तनुं।
व्यापयित्वा स्थिताम् सर्वामेवं ध्यात्वा प्रविन्यसेत्॥

इति सूक्ष्मरूपां ध्यात्वा न्यसेत्। तत्र विष्णुं षोडशदलकमलमूर्ध्वमुखं ध्यात्वा तद्दलेषु प्रागादिप्रादक्षिण्येन ४ अं नमः ४ आं नमः एवं षोडश-स्वरान् न्यसेत्। ततो हृदये अनाहतचक्रं द्वादशदलकमलं ध्यात्वा। तथैव ककारादिठकारान्तान् द्वादशवर्ण-प्रणवत्रितारादि नमोऽन्तान् प्रादक्षिण्येन न्यसेत्। ततो नाभौ मणिपूरकं चक्रं दशदलकमलं ध्यात्वा तद्दलेषु डकारादिफकरान्तान् दशवर्णान् पूर्ववत् न्यसेत्। ततो लिङ्गमूले स्वाधिष्ठान-चक्रं षड्दलकमलं ध्यात्वा तद्दलेषु प्राग्वद् बकारादिलकारान्तान् षड्वर्णान् न्यसेत्। ततो मूलाधारे चतुर्दलकमलं ध्यात्वा तद्दलेषु वकरादिसकारान्तान् पूर्ववत् न्यसेत्। ततो भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रं द्विदल-कमलं ध्यात्वा तद्दलयों हं क्षः पूर्ववत् न्यसेत्। इति अन्तःमातृका-न्यासं विधाय, बहिर्मातृकान्यासं कुर्यात्। इत्यन्तर्मातृकान्यासः।

बहिर्न्यासो यथा। तत्र ध्यानं। तद्यथा—

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोः पादयोः कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्ससूर्याकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम्।
अक्षस्रक्कुम्भचित्तालिखितवरकरां त्र्यक्षणां पद्मसंस्था-
मच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि॥

दक्षोर्ध्वकरमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तं आयुधध्यानम्। चित्तालिखितं पुस्तकम्। इति प्रागुक्तम्। वर्णारविन्दं ध्यात्वा न्यसेत्। तत्रादौ ह्सौं अं आमित्यादिसमस्तमातृकामुच्चार्य ह्सौं नमः इति मूर्धादिपादान्तम्। त्रिर्व्यापकं विन्यस्य, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इत्येतान् न्यासादौ सर्वत्रैवदेयात्। शिरसि ४ अं नमः। मुखवृत्ते ४ आं नमः। दक्षनेत्रे ४ इं नमः। वामनेत्रे ४ ईं नमः। दक्षकर्णे ४ उं नमः। वामकर्णे ऊँ नमः। दक्षनासायां ४ ऋं नमः। वामनासायां ४ ॠं नमः। दक्षकपोले ४ ऌं नमः। वामकपोले ४ ॡं नमः। उत्तरोष्ठे ४ एं नमः। अधरोष्ठे ४ ऐं नमः।

ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ४ ॐ नमः । अधरदन्तपङ्क्तौ ४ औं नमः । जिह्वायां ४ अं नमः । चुबुके ४ अः नमः । दक्षबाहुमूले ४ कं नमः । दक्षकोर्परे ४ खं नमः । दक्षमणिबन्धे ४ गं नमः । दक्षाङ्गुलिमूले ४ घं नमः । दक्षाङ्गुल्यग्रेषु ४ ङं नमः । एवं वामबाहुमूल-कूर्पर-मणिबन्धाऽङ्गुलिमूलाऽग्रेषु चवर्गं न्यसेत् । ततो दक्षोरुमूल-जानु-गुल्फाऽङ्गुलिमूलाग्रेषु टवर्गं न्यसेत् । ततो वामोरुमूलजानु-गुल्फाऽङ्गुलि-मूलाऽग्रेषु तवर्गं न्यसेत् । दक्षवामपार्श्व-पृष्ठ-नाभि-जठरेषु पवर्गं न्यसेत् । ततो हृदय-दक्षांऽस-ककुद-वामांऽसेषु यवर्गं न्यसेत् । ततो पाणिद्वये हृदादिपादद्वये हृदादिनाभौ हृदादिब्रह्मरन्ध्रे शवर्गं न्यसेत् । इति शुद्ध-मातृकान्यासः ।

शुद्धं बिन्दुयुतं विसर्गसहितं हृल्लेखयाऽलङ्कृतं
बालासम्पुटितं तथैव परया श्रीविद्ययाऽलङ्कृतम् ।
आरोहादवरोहतः शतशतं न्यासं पुनर्हंसयो-
र्यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थितिध्वंसकृत् ॥

अत्र शुद्धत्वेऽपि बिन्दुयुक्तत्वं वर्णान्तं वीर्ययोजनार्थमिति सम्प्रदायः ।

अथ बिन्दुमातृकान्यासः

तत्र ऋष्यादिकं प्राग्वत् । ध्यायेत्परविशेषतः । तद्यथा –

अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम् ।
अर्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दवासां
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम् ॥

दक्षोर्ध्वकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तं आयुधन्यासम् । विद्यां पुस्तकम्, टंकं आयुधविशेषः । इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा न्यसेत् । तद्यथा – हृदयादि-

ब्रह्मरन्ध्रान्तं क्षं नमः। हृदयादिनाभिपर्यन्तं ४ लं नमः। इत्यादि शिरसि अं नमः। इत्यन्तं संहारक्रमेण तत्तत्स्थानेषु न्यसेत्। इति बिन्दुमातृकान्यासः।

॥ अथ विसर्गमातृकान्यासः॥

तत्र ऋष्यादिध्यानान्तं शुद्धमातृका-देवतान्यास-वर्णेषु विसर्गतान्वितत्त्वं विशेषः। इति विसर्गमातृकान्यासः।

॥ अथ बिन्दु-विसर्गमातृकान्यासः॥

तत्रापि ऋष्यादिकं शुद्धमातृकावदेव ध्याने परं विशेषः। तद्यथा –

सिन्दूरकान्तिममिताभरणां त्रिनेत्रां
विद्याऽक्षसूत्रमृगपोतपरां दधानाम्।
पार्श्वस्थितां भगवतीमपि काञ्चनाभां
ध्यायेत् करे विधृतपुस्तकवर्णमालाम्॥

वामाधः करमारभ्य, वामोर्ध्वकरपर्यन्तं आयुधध्यानम् शिवस्य, शक्त्यै तु वामादिकरद्वये इति ध्यात्वा न्यसेत्। तद्यथा। दक्षिणगुल्फे ४ डं नमः। अङ्गुलिमूले ४ ढं नम इत्यादि प्रणवत्रितारादि ४ क्षं नम इत्यन्तं शुद्धमातृकास्थानेषु विन्यस्य। ४ अं नम इत्यादि ४ ठं नम इत्यन्तं मूर्धादिदक्षिणजान्वन्तं शुद्धमातृकास्थानेषु विन्यसेत्। इति स्थितिरूपो बिन्दुविसर्गमातृकान्यासः।

॥ अथ हृल्लेखादिमातृकान्यासः॥

तत्र शक्तिः ऋषिः। गायत्री छन्दः। हृल्लेखास्वरूपिणी मातृका सरस्वती देवता। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा विन्यस्य ४ अं कं ४ आं ह्रां हृदयाय नमः। ४ इं चं ४ ईं ह्रीं शिरसे स्वाहा। ४ उं टं ४ ऊं ह्रूं शिखायै वषट्। ४ एं तं ४ ऐं ह्रैं कवचाय हुं। ४ ओं पं ४ औं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ४ अं यं ९ अः हः अस्त्राय फट्। इति करषडङ्गन्यासः। ततो ध्यानम्।

उद्यत्कोटिदिवाकरप्रतिभटी तुङ्गोरुपीनस्तनी
बद्धार्धेन किरीटहाररसना मञ्जीरसंशोभिता।

बिभ्राणा करपङ्कजैर्जपवटिं पाशाङ्कुशौ पुस्तकं

विद्यान्नो जगदीश्वरीति नयनापद्मे निषण्णा सुखम् ॥

दक्षाधः करमारभ्य, वामाधः करपर्यन्तं आयुधध्यानम् । इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा । ४ ह्रीं नमः ह्रींमित्यादिक्षकारान्तान् वर्णान् शुद्धमातृकास्थाने न्यसेत् । इति हृल्लेखामातृकान्यासः ।

॥ अथ श्रीबीजादिमातृकान्यासः ॥

तत्र भृगुऋषिः । गायत्री छन्दः । मातृकामयी लक्ष्मी देवता । न्यासे विनियोगः । इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा । यथाविधि विन्यस्य । ४ अं कं ४ श्रां हृदयाय नमः । इत्यादि षड्दीर्घयुक्तश्रीबीजान्तैः षड्वर्गैः करषडङ्ग-न्यासं विधाय ध्यायेत् ।

विद्युद्दामसमप्रभां हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजैः

शुण्डादण्डसमुद्धृतामृतघटैरासिञ्च्यमानामिमाम् ।

बिभ्राणां करपङ्कजैर्जपवटीं पद्मद्वयं पुस्तकं ।

भास्वद्रत्नसमुज्ज्वलां कुचलतां ध्यायेज्जगत्स्वामिनीम् ॥

दक्षाधः करमारभ्य वामाधः करपर्यन्तं आयुधध्यानम् । इति ध्यात्वा । ४ श्रीं अं नमः । श्रीमित्यादिक्षान्तान् वर्णान् शुद्धमातृकास्थाने न्यसेत् । इति श्रीबीजादिमातृकान्यासः ।

॥ अथ कामबीजादिमातृकान्यासः ॥

तत्र सम्मोहः ऋषिः । गायत्री छन्दः । मातृकामयी सम्मोहिनी देवता । न्यासे विनियोगः । इति विन्यस्य । षड्दीर्घयुक्तकामबीजान्तैः षड्वर्गैः प्राग्वत् करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यायेत् ।

बालार्ककोटिरुचिरां स्फटिकाक्षमालां कोदण्डमिक्षुजनितं स्मरपञ्चबाणान् ।

विद्यां च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्रां ध्यायेत्समस्तजननीं नवचन्द्रचूडाम् ॥

वामाधः करमारभ्य दक्षाधः करपर्यन्तमायुधध्यानम् । चकारादक्षमलायुस्तकाद्यो व्यत्ययो बोद्धव्यः। इति ध्यात्वा ४ क्लीं आं नमः। एवं क्षान्तमातृकास्थानेषु न्यसेत् । इति कमबीजादिमातृकान्यासः।

॥ अथ त्रिबीजादिमातृकान्यासः ॥

तत्र महासम्मोहन ऋषिः। गायत्री छन्दः। मातृकामयी महासम्मोहिनी देवता। न्यासे विनियोगः। इति विन्यस्य। द्विरुक्तत्रिबीजान्तैः षड्वर्गैः प्राग्वत् करषडङ्गन्यासं कृत्वा ध्यायेत्।

ध्यायेयमक्षवलयेक्षुशरासपाशपद्मद्वयाङ्कुशधरां नवपुस्तकं च।
आबिभ्रतीं निजकरैररुणां कुचां तां सम्मोहिनीं त्रिनयनां नवचन्द्रचूडाम् ॥

वामाधः करमारभ्य दक्षाधः करपर्यन्तमायुधध्यानम् । अत्रापि चकारात्पूर्ववद्व्यत्ययो बोद्धव्यः। इति ध्यात्वा। ४ ह्रीं श्रीं क्लीं अं नमः ह्रीं श्रीं क्लीं। ४ ह्रीं श्रीं क्लीं आं नमः ह्रीं श्रीं क्लीं। इत्यादि क्षान्ता न्यसेत्। इति त्रिबीजादिमातृकान्यासः।

॥ अथ बालासम्पुटितमातृकान्यासः ॥

तत्र दक्षिणामूर्तिः ऋषिः। गायत्री छन्दः। बालारूपिणीमातृका सरस्वती देवता। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा विन्यसेत्। कराङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा – ४ अं कं ४ आं ऐं हृदयाय नमः। ४ इं चं ४ ईं क्लीं शिरसे स्वाहा। ४ उं टं ४ ऊं सौः शिखायै वषट्। ४ एं तं ४ ऐं सौः कवचाय हुं। ४ ॐ पं ४ औं क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। ४ अं यं ९ अः ऐं अस्त्राय फट्। इति कराङ्गन्यासं विधाय ध्यायेत्। तद्यथा–

मुक्ताशेखरकुण्डलाङ्गदमणिग्रैवेयहारोर्मिकां
विद्योतद्वलयादिकङ्कणकटां शाश्वत्स्फुरन्नूपुराम्।
माणिक्योदरबन्धुरस्तनभरामिन्दोः कलां बिभ्रतीं
पाशं साऽङ्कुशपुस्तकाक्षवलयां दक्षोर्ध्ववामोर्ध्वतः॥

पूर्णेन्दुप्रतिमप्रसन्नवदनां नेत्रत्रयोद्भासितां
बिन्दुक्षीरवलक्षगात्रविलसन्माल्यानुलेपाम्बराम् ।
पञ्चाशल्लिपिजृम्भिताखिलजगद्-वाग्देवतां सुस्मितां
मूलाधारसमुद्भवतां भगवतीं वर्णाम्बुजे चिन्तयेत् ॥

तद्यथा– ४ ऐं क्लीं सौः अं सौः क्लीं ऐं नमः। ४ ऐं क्लीं सौः आं सौः क्लीं ऐं नमः। एवं क्षान्तान् वर्णान् बालासम्पुटितान् शुद्धमातृका-स्थानेषु विन्यसेत्। इति बालासम्पुटितमातृकान्यासः।

॥ अथ परासम्पुटितमातृकान्यासः ॥

तत्र ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। परारूपिणी महामातृकासरस्वती देवता– न्यासे विनियोगः। ४ अं कं ४ आं सां हृदयाय नमः। ४ इं चं ४ ईं शिरसि। ४ उं टं ४ ऊं शिखाय। ४ एं तं ४ ऐं कं व०। ४ ऊँ पं ४ औं नेत्रत्रयाय। ४ अं यं ९ अः अस्त्राय। एवं करषडङ्गं कृत्वा ध्यायेत्। तद्यथा–

अकलङ्कशशाङ्काभां त्र्यक्ष्णां चन्द्रकलावतीम्।
मुद्रापुस्तकसद्बाहुं प्रणमामि कलां पराम् ॥

इति वर्णारविन्दं ध्यात्वा। न्यसेत्। तद्यथा। ४ सौः अं सौः नमः। ४ सौः आं सौः नमः। एवं क्षान्तान् मातृकास्थानेषु न्यसेत्। इति सम्पुटित मातृकान्यासः।

॥ अथ श्रीविद्यायुक्तमातृकान्यासः ॥

तत्र दक्षिणामूर्ति ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीमातृकासुन्दरी देवता। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य। कराङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा। ४ अं कं ४ प्रथमकूटमुच्चार्य आं हृदयाय नमः। ४ इं चं ४ **द्वितीयकूटमुच्चार्य**

ईं शिरसि। ४ उं टं ४ तृतीयकूटमुच्चार्य ऊँ शिखायै। ४ एं तं ४ प्रथमकूटं ऐं कवचाय हुं। ४ ॐ पं ४ द्वितीयकूटं औं नेत्रत्रयाय। ४ अं य तृतीयकूटं अः अस्त्राय। ततो ध्यानम्।

आरक्ताभां त्रिनेत्रां मणिमकुटयुतां रत्नताटङ्करम्यां
हस्ताम्भोजैः सपाशाङ्कुशमदनधनुः सायकैर्विस्फुरन्तीम्।
आपीनोत्तुङ्गवक्षोरुहतटविलसत्तारहारोज्ज्वलाङ्गीं
ध्यायेदम्भोरुहस्तामरुणिमवसनामीश्वरीमीश्वराणाम् ॥

वामादूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधस्तनयोरन्य इत्यायुधध्यानम्। इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा न्यसेत्। तद्यथा। मूलविद्यामुच्चार्य, अं नमः। मूलप्रणवत्रितार श्रीविद्योदितमेतत्। अकारादिक्षकारान्तान् वर्णान् मातृकास्थानेषु न्यसेत् फट् इति श्रीविद्यामातृकान्यासः।

॥ अथ हंसमातृकान्यासः ॥

तत्र ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। हरगौरीस्वरूपिणी मातृका-सरस्वती देवता। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य च कराङ्गन्यासं कुर्यात्। ४ अं कं ४ आं हां सां हृदयाय नमः। ४ इं चं ४ ईं हीं सीं शिरसि। ४ उं टं ४ ऊं हूं सूं शिखायै। ४ एं तं ४ ऐं हैं सैं कवचाय हुं। ४ ॐ पं ४ औं हौं सौं नेत्रत्रयाय। ४ अं यं ९ अः हंसः अस्त्राय। इति विन्यस्य ततो ध्यानम्।

उद्यद्भानुस्फुरिततटिदाकारमर्धाम्बिकेशः
शङ्खाभीतिर्वरदपरशूः सन्दधानः कराब्जैः।
देव्या कल्पैर्नवमणिमयैः शोभितो विश्वमूलोऽ
सौभाग्येयं वपुरवतु नश्चन्द्रचूडस्त्रिनेत्रः॥

वामोर्ध्वादिदक्षोर्ध्वकरपर्यन्तमायुधध्यानम्। इति ध्यात्वा न्यसेत्। ४ हं सः अं नमः। ४ हं सः एवं क्षान्तं मातृकास्थानेषु न्यसेत्। इति हंसमातृकान्यासः।

॥ अथ परमहंसमातृकान्यासः ॥

तत्र परमहंसः ऋषिः। गायत्री छन्दः। परमात्मस्वरूपिणी मातृकासरस्वती देवता। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य च कराङ्गन्यासं कुर्यात्। ४ ॐ अं कं ४ आं ॐ हृदयाय। ४ ॐ इं चं ४ ईं ॐ शिरसि। ४ ॐ उं टं ४ ऊं ॐ शिखायै। ४ ॐ तं ४ ऐं ॐ कवचाय। ४ ॐ ॐ पं ४ औं नेत्रत्रयाय ४ अं यं ९ अः ॐ अस्त्राय। इति विन्यस्य ततो ध्यानम्।

श्रीमत्परात्ममनुजृम्भितवर्णरूपां
मानैरगम्यपदवीपरिचीयमानाम् ।
विद्याक्षसूत्रकलशान् दधतीं च मुद्रां
ध्यायेत् समस्तजननीं शिवदां त्रिनेत्राम् ॥

वामाधःकरयोराद्ये तदाद्यूर्ध्वयोरन्ये इत्यायुधध्यानम्। मुद्रां ज्ञानमुद्रामिति ध्यात्वा न्यसेत्। ४ सोऽहं क्षं नमः। सोऽहं कं नमः। एवमकारान्तान् वर्णान् पूर्ववत् संहाररीत्या न्यसेत्। इति परमहंसमातृकान्यासः।

॥ अथ प्रणवोक्तकलामातृकान्यासः ॥

तत्र प्रजापतिः ऋषिः। गायत्री छन्दः। कलामयीमातृकासरस्वती देवता। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, न्यसेत्। मम श्रीविद्याङ्गत्वे न्यासे विनियोगः। ततः कराङ्गन्यासं कुर्यात्। ४ अं ॐ आं हृदयाय। ४ इं ऊं ईं शिरसि। ४ उं ॐ ऊं शिखायै। ४ एं ॐ ऐं कवचाय। ४ ॐ ॐ औं नेत्रत्रयाय। ४ अं ॐ अः अस्त्राय। एवं कराङ्गन्यासं कुर्यात्। ततो ध्यानम्।

हस्तैः पद्मं दधानां गुणमथ हरिणं पुस्तकं वर्णमालां
टङ्कं शुभ्रं कपालं दधदमृतलसद्हेमकुम्भं वहन्तीम्।
मुक्ताविद्युत्पयोदस्फटिकनवजपाबन्धुरैः पञ्चवक्त्रैः
त्र्यक्षैर्वक्षोजनम्रां सकलशशिनिभां शारदां तां नमामि ॥

वामाद्यधः करयोराद्ये तदाद्यूर्ध्वयोरपरे तदादूर्ध्वयोरितरे तदादूर्ध्वयोरन्ये इत्यायुधध्यानम्। 'दरः शङ्खगुणः पाश' इति वर्णारविन्दे ध्यात्वा न्यसेत्। तद्यथा। ४ औं अं निवृत्तिकलात्मने नमः। ४ ॐ आं प्रतिष्ठाकलायै। ४ ॐ इं विद्याकलायै। उँ ईं शान्तिकलायै। ४ ऊँ उं इन्दिराकलायै। ४ उं ऊं दीपिकाकलायै। ४ उं ॠं रेचिकाकलायै। ४ ॐ ॠं मोचिकाकलायै। ४ ॐ ऌं पराकलायै। ४ ॐ ॡं सूक्ष्माकलायै। ४ ॐ एं सूक्ष्मामातृकाकलायै। ४ ॐ ऐं ज्ञानामृताकलायै। ४ ॐ ॐ आप्यायनीकलायै। ४ ॐ औं व्यापिनीकलायै। ४ ॐ अं व्योमरूपिणीकलायै। ४ ॐ अः अनन्ताकलायै नमः। ४ विष्णुयोनिं कल्पयित्वेति जपेत्। ४ ॐ १६ भुक्तिमुक्तिप्रदानादजा अनन्तकलाभ्यो नम इति मुखे व्यापकम्। ४ ॐ कं सृष्टिकलायै। ४ ॐ खं रुधिरकलायै। ४ ॐ गं सृतिकलायैः। ४ ॐ घं मेधाकलायै। ४ ॐ ङं कान्तिकलायै। ४ ॐ चं लक्ष्मीकलायै। ४ ॐ छं द्युतिकलायै। ४ ॐ जं स्थिराकलायै। ४ ॐ झं स्थितिकलायै। ४ ॐ ञं सिद्धिकलायै। ४ हंसः शुचिषदिति जपेत्। सृष्टिप्रदाकारप्रभवब्रह्मकलाभ्यो नमः। इति भुजयोर्व्यापकम्। ४ ॐ टं जराकलायै। ४ ॐ ठं पालिनीकलायै। ४ ॐ डं शान्तिकलायै। ४ ॐ ढं ऐश्वर्यकलायै। ४ ॐ णं रतिकलायै। ४ ॐ तं कामिनीकलायै। ४ ॐ थं वरदाकलायै। ४ ॐ दं ह्लादिनीकलायै। ४ ॐ धं प्रीतिकलायै। ४ ॐ नं दीर्घाकलायै। ४ प्रतद्विष्णुस्तवतेति जपेत्। ४ ओं पं ४ स्थितिप्रदो कामप्रभवति विष्णुकलाभ्यो नम इति पादयो-र्व्यापकं न्यसेत्। ४ ॐ पं तीक्ष्णाकलायै। ४ ॐ फं कालकलायै। ४ ॐ बं भयाकलायै। ४ ॐ भं निद्राकलायै। ४ ॐ मं तन्द्राकलायै। ४ ॐ यं क्षुधाकलायै। ४ ॐ रं क्रोधिनीकलायै। ४ ॐ लं क्रियाकलायै। ४ ॐ बं उल्काकलायै। ४ ॐ शं मृत्युरूपाकलायै। ४ ॐ त्रियम्बकं यजामहेति जपेत्। ४ पं ५ यं ५ संहृतिप्रदमकारप्रभवरुद्र-कलाभ्यो नमः। इति हृदयादिमध्ये व्यापकं न्यसेत्। ४ ॐ षं पीताकलायै। ४ ॐ सं श्वेताकलायै। ४ ॐ हं अरुणाकलायै। ४ ॐ ळं असिताकलायै। ४ ॐ क्षं अनन्ताकलायै। ४ तत्सवितुरिति जपित्वा। ४ ष ५ तिरोधानविदुं

प्रभवेशानकलाभ्यो नमः। इति सर्वाङ्गे व्यापकम्। इति शुद्धमातृकास्थानेषु न्यसेत्। इति प्रणवकलामातृकान्यासः।

अत्र नादात्मनः सदाशिवात् सम्भूताः स्वरजाः कलाः श्वेताः अक्षस्रक्पुस्तकपाशकलाधराध्येयाः। कवर्गकला अकाराद् ब्रह्मणोद्भूताः पीताः अक्षस्रक्पङ्कजाभयकमण्डलुकरा ध्येयाः। टवर्गजाः डकारविष्णो-रुत्पन्नाः शयामाः अभयशङ्खचक्रवरहस्ता ध्येयाः। पवर्गजाः मकाराद् रुद्रा उत्पन्नाः शरच्चन्द्रनिभाः अभयशूलकपालवरहस्ता ध्येयाः। षादिपञ्च-वर्णजाः ईश्वराद् बिन्दोरुत्पन्ना रक्ता अभयहरिणटङ्कवरहस्ता ध्येयाः। इति तारोत्थकलामातृका ध्येया न्यस्तव्याश्च।

अथाऽष्टात्रिंशत्कलारूपिणी मातृका देवता श्री विद्याङ्गत्वे न्यासे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य। स्वरैर्हृदि। ४ पञ्चवर्गैः शिरसि। ४ यादिभिः शिखा। पुनः स्वरैः कवचं। पञ्चवर्गैर्नेत्रा०। यादि-भिरस्त्रं। इति करषडङ्गन्यासं विधाय, ध्यायेत्। तद्यथा –

चन्द्रसूर्याग्निसङ्काशं वक्त्रदेहपदद्वयम्।
सुधाग्रकलशं पद्मं स्वस्तिकं च वरं करैः॥
दधानां चिन्तयेद् देवीं पद्मस्थां परमेश्वरीम्।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां दिव्याभरणभूषिताम्॥

इति ध्यात्वा, न्यासं कुर्यात्। तत्र ४ अं अमृताकलायै नमः। ४ आं मानदाकलायै०। ४ इं पूषाकलायै०। ४ ईं तुष्टिकलायै०। ४ उं पुष्टि-कलायै०। ४ ऊं रतिकलायै०। ४ ऋं धृतिकलायै०। ४ ॠं शशिनी-कलायै०। ४ ऌं चन्द्रिकाकलायै०। ४ ॡं कान्तिकलायै०। ४ एं ज्योत्स्ना-कलायै०। ४ ऐं श्रीकलायै०। ४ ओं प्रीतिकलायै०। ४ अं पूर्णाकलायै०। ४ अः पूर्णामृताकलायै०। इति षोडशकलाः षोडशस्थानेषु न्यसेत्। ततः ४ कं भंतपिनीकलायै०। ४ खं बंतापिनीकलायै०। ४ गं फंधूम्राकलायै०।

४ घं पं मरीचीकलायै० । ४ ङं नं ज्वालिनीकलायै । ४ चं धं रुचिकलायै० । ४ छं दं सुषुम्नाकलायै० । ४ जं थं भोगदाकलायै० । ४ झं तं विश्वा-कलायै० । ४ ञं णं बोधिनीकलायै ० । ४ टं ढं धारिणीकलायै ० । ४ ठं डं क्षमाकलायै० । इति दक्षिणबाहुमूलादिदक्षिणजान्वन्तं मातृकास्थानेषु न्यसेत् । ततः ४ यं धूम्रार्चिकलायै ० । ४ रं ऊष्माकलायै० । ४ लं ज्वलिनी-कलायै ० । ४ वं ज्वालिनीकलायै० । ४ शं विस्फुलिङ्गिनीकलायै० । ४ षं सुश्रीकलायै० । ४ सं सुरूपाकलायै० । ४ हं कपिलाकलायै० । ४ लं हव्यवाहकलायै० । ४ क्षं कव्यवाहकलायै० । इति दक्षिणगुल्फादिवामपादान्तं मूर्ध्नि सर्वाङ्गे विन्यसेत् । एता श्वेतपीतारुणाः वराभयकराः सर्वाभरण-भूषिता युवतयो ध्येयाः । इत्यष्टात्रिंशत्कलामातृकाऽष्टात्रिंशत्स्थानेषु न्यसेत् ।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गश्चतुर्थोऽगमत् ॥

॥ श्रीसच्चिन्दानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥

॥ श्रीः ॥

अथ पञ्चमस्तरङ्गः

॥ अथ मूर्तिमातृकान्यासः ॥

तत्रादौ केशवादिमातृकान्यासः। तच्च ॐ साध्यनारायण ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीलक्ष्मीनारायणो देवता। मम श्रीविद्याङ्गत्वे न्यासे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य। करषडङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा – ४ ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हं सं सोऽहं अं कं खं गं घं ङं आं ह्रीं हं सः सोऽहं ॐ नमो नारायणाय क्रुद्धोल्काय स्वाहा। श्रं दिव्यै हृदयाय नमः। ४ ॐ १३ इं चं ४ ईं ह्रीं हंसः सोऽहं ॐ नमो नारायणाय महोल्काय स्वाहा। श्रीं पद्मिन्यै शिरसे। ४ ॐ १३ उं टं ४ ॐ ह्रीं १२ वीरोल्काय स्वाहा। श्रूं विष्णुपत्न्यै शिखायै। ४ १३ एं तं ४ ऐं ह्रीं १२ विध्याद्युल्काय स्वाहा। श्रैं वरदायै कवचाय हुं। ४ ॐ १३ ॐ पं ४ औं ह्रीं १२ सहसोल्काय स्वाहा। श्रौं कमलरूपायै नेत्रत्रयाय। ४ ॐ १३ अं यं ९ अः ह्रीं १२ अनन्तोल्काय स्वाहा। श्रः शूलिन्यै अस्त्राय फट्। इति षडङ्गमन्त्रान् अङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य। हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत्। ततो ध्यानम्।

विद्यारविन्दमुकुरामृतकुम्भपद्म-
कौमोदकीदरसुदर्शनशोभिहस्ताम्।
सौदामिनीमुदिरकान्तिविभातिलक्ष्मीं
नारायणात्महृदयाश्रितपद्ममूर्त्तिम्॥

स्मरामीति शेषः। वामाधः करमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तं आयुधध्यानम्। मुकुरो दर्पणः। इति ध्यात्वा न्यसेत्। तद्यथा। ४ ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं ह्रीं केशवाय कीर्त्यै नमः। ४ ह्रीं श्रीं क्लीं आं क्लीं श्रीं ह्रीं नारायणाय कीर्त्यै नमः। ४। ३ इं ३ माधवाय तूष्ण्यै नमः। ४। ३ ईं ३

गोविन्दाय पुष्ट्यै०। ४। ३। उं ३ विष्णवे धृत्यै०। ४। ३ मधुसूदनाय श्रृत्यै। ४। ३ ऋं ३ त्रिविक्रमाय क्रियायै०। ४।३ ॠं ३ वामनाय दयायै०। ४। ३ ऌं ३ श्रीधराय मेधायै०। ४। ३ ॡं ३ हृषीकेशाय हर्षायै०।४।३ एं ३ पद्मनाभाय श्रद्धायै०।४।३ दामोदराय आज्ञायै०। ४।३ ॐ ३ सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै०।४।३ औं ३ वासुदेवाय लक्ष्म्यै०। ४।३ अं ३ प्रद्युम्नाय प्रीत्यै०।४।३ अः ३ अनिरुद्धाय रत्यै०।४। ३ कं ३ चक्रिणे जयायै०।४।३ खं गदिने दुर्गायै०।४।३ गं ३ शार्ङ्गिणे प्रभायै०। ४। ३ घं ३ खड्गिणे सत्यायै०। ४।३। ङं ३ शङ्खिने चण्डायै०।४।३ चं हलिने वाण्यै०।४। ३ छं ३ मुसलिने विलासिन्यै०। ४। ३ जं ३ शूलिने विजयायै ०। ४।३। झं ३ पाशिने विरजायै०।४। ३ ञं ३ अङ्कुशिने विश्वायै०। ४ । ३ टं ३ मुकुन्दाय विनन्दायै ०। ४।३ ठं ३ नन्दजाय सनन्दायै०। ४।३ डं नन्दिने स्मृत्यै ०। ४ । ३ ढं ३ नारायणाय ऋध्यै०। ४।३ णं नरकजिते समृध्यै०। ४।३ तं ३ हरये शुध्यै०। ४।३ थं ३ कृष्णाय भक्त्यै०। ४।३ दं ३ सत्याय बुध्यै०। ४। ३ धं ३ सात्त्वताय मत्यै०। ४। ३ नं ३ शौरये क्षमायै०।४।३ पं ३ शूराय मायै०। ४। ३ फं ३ जनार्दनाय उमायै०। ४। ३ बं ३ भूधराय क्लेदिन्यै०। ४। ३ भं ३ विश्वमूर्तये क्लिन्नायै०। ४।३ मं ३ वैकुण्ठाय सुधायै०। ४। ३ यं ३ त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै०। ४।३ रं ३ असृगात्मने बलिने परायै०। ४। ३ लं ३ मांसात्मने बलानुजाय परायणायै०। ४। ३ वं ३ मेदात्मने बलाय सूक्ष्मायै०। ४। ३ शं ३ अस्थ्यात्मने वृषाय सन्ध्यायै०। ४। ३ षं ३ मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै०। ४। ३ सं ३ शुक्लात्मने हंसाय प्रभायै०। ४। ३ हं ३ प्राणात्मने वराहाय निशायै०। ४। ३ ळं ३ शक्त्यात्मने विमलाय घोरायै०। ४।३ क्षं ३ परमात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नमः। एताः मूर्तिशक्तयः मातृकास्थानेषु न्यस्तव्याः।

केशवाद्याः इमे श्यामाश्चक्रशङ्खलसत्कराः।
शक्तयस्तु प्रियाङ्केषु निषण्णाः सुस्मिताननाः॥

विद्युद्दामसमानाङ्ग्या पङ्कजाऽभयवाहनाः ॥

इति ध्येयाः । इति केशवादिमातृकान्यासः ।

॥ अथ श्रीकण्ठादिमातृकान्यासः ॥

तत्र दक्षिणामूर्ति ऋषिः। गायत्री छन्दः। अर्धनारीश्वरो देवता। श्रीविद्याङ्गत्वे न्यासे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य करषडङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा। ४ अं कं ४ आं ह्रौं हृदयाय नमः। ४ इं चं ईं ह्रीं शिरसि। ४ उं टं ४ ऊँ ह्रूं शिखायै। ४ एं तं ४ ऐं ह्रैं कवचाय। ४ ॐ पं औं ह्रौं नेत्रत्रयाय। ४ अं यं ९ अः ह्रः अस्त्राय। इति षडङ्गमन्त्रान् अङ्गुष्ठादितलान्तं विन्यस्य हृदयादिष्वपि षडङ्गेषु विन्यसेत्। ततो ध्यानम्।

बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालं
पाशाङ्कुशौ च वरदं निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्रं
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामः॥

दक्षाधः करमारभ्य दक्षोर्ध्वकरपर्यन्तमायुधध्यानम्। इति ध्यात्वा न्यसेत्। तद्यथा। ४ ह्सौः अं श्री कण्ठेशाय पूर्णोदयायै नमः। ४ ह्सौः आं अनन्तेशाय विरजायै०। ४ ह्सौः इं सूक्ष्मेशाय शाल्मल्यै०। ४ ह्सौः ईं त्रिमूर्तीशाय लोलाक्ष्यै०। ४। ह्सौः उं अमरेशाय वर्तुलाक्ष्यै०। ४ ह्सौः ऊं अर्घीशाय दीर्घघोणायै०। ४ ह्सौः ऋं भारमूर्तीशाय दीर्घमुख्यै०। ४ ह्सौं: ॠं अतिथीशाय गोमुख्यै०। ४ ह्सौः लृं स्थाण्वीशाय दीर्घजिह्वायै०। ४ ह्सौः लॄं हरेशाय कुण्डोदर्यै०। ४ ह्सौः एं झिण्डीशाय ऊर्ध्वकेश्यै०। ४ ह्सौः ऐं भौतिकेशाय विकृतमुख्यै०। ४ ह्सौः ओं सद्योजातेशाय ज्वालामुख्यै०। ४ ह्सौः औं अनुग्रहेशाय विद्यामुख्यै०। ४ ह्सौः अं अक्रूरेशाय श्रीमुख्यै०। ४ ह्सौः अः महसेनेशाय विद्यामुख्यै०। ४ ह्सौः कं क्रोधीशाय महाकाल्यै०। ४ ह्सौः खं चण्डीशाय सरस्वत्यै०। ४ ह्सौः गं पञ्चान्तरेशाय सर्वसिद्धिगोप्त्र्यै०।

४ ह्स्रौः घं शिवोत्तमेशाय त्रैलोक्यविद्यायै०। ४ ह्स्रौः यै एकरुद्रेशाय मन्त्रशक्त्यै०।४ ह्स्रौः चं कूर्मेशाय आत्मशक्त्यै०। ४ ह्स्रौः छं एकनेत्रेशाय भूतमात्रे०।४ ह्स्रौः जं चतुराननेशाय लम्बोदर्यै ०।४ ह्स्रौः झं अजेशाय द्राविण्यै०।४ ह्स्रौः ञं सर्वेशाय नागर्यै०।४ ह्स्रौः टं सोमेश्वराय खेचर्यै०।४ ह्स्रौः ढं अर्धनारीश्वराय वीरिण्यै०।४ ह्स्रौः ठं लाङ्गलीशाय मञ्जर्यै ०।४ ह्स्रौः डं दारुकेशाय रूपिण्यै०।४ ह्स्रौः णं उमाकान्तेशाय काकोदर्यै०।४ ह्स्रौः तं आषाढीशाय पूतनायै०।४ ह्स्रौः थं दण्डीशाय भद्रकाल्यै०।४ ह्स्रौः दं अत्रीशाय योगिन्यै०।४ ह्स्रौः धं मीनेशाय शङ्खिन्यै०। ४ ह्स्रौः नं मेषेशाय गर्जिन्यै०। ४ ह्स्रौः पं लोहितेशाय कालरात्र्यै०। ४ ह्स्रौः फं शिखीशाय कुब्जिन्यै०।४ ह्स्रौः बं भगलेशाय कपर्दिन्यै०।४ ह्स्रौः भं द्विरेशाय वज्रायै०।४ ह्स्रौः मं महाकालेशाय जपायै०।४ ह्स्रौः यं त्वगात्मने वालीशाय सुमुख्यै०।४ ह्स्रौः रं असृगात्मने भुजङ्गेशाय रेवत्यै०।४ ह्स्रौः लं मांसात्मने पिनाकीशाय माधव्यै०। ४ ह्स्रौः वं मेदात्मने खड्गीशाय वारुण्यै०।४ ह्स्रौः शं अस्थ्यात्मने वरेशाय वायव्यै०। ४ ह्स्रौः षं मज्जात्मने श्वेतेशाय दक्षोदारिण्यै०। ४ ह्स्रौः सं शुक्लात्मने भृग्वीशाय सहजायै०। ४ ह्स्रौः हं प्राणात्मने कुलीशाय महालक्ष्म्यै०। ४ ह्स्रौः ळं शक्त्यात्मने शिवेशाय व्यापिन्यै०।४ ह्स्रौः क्षं परमात्मने संवर्तेशाय महामायायै नमः। इति मातृकास्थानेषु न्यसेत्।

अतः रुद्रास्मृता रक्ता धृतशूलकपालकाः।

शक्तयो रुद्रपीठस्थाः सिन्दूरारुणविग्रहाः॥

रक्तोत्पलकपालाभ्यां अलङ्कृतकराम्बुजाः॥

इति मूर्तिशक्तीनां ध्यानम्। इति श्रीकण्ठादिमातृकान्यासः।

॥अथ प्रपञ्चयागमातृकान्यासः॥

तत्र प्रथमं महागणपतिमन्त्रऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकमष्टधा जपित्वा। ततो न्यासपूर्वकं गणपत्यर्घ ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकमष्टधा जपित्वा। ततो न्यासपूर्वकं गणपत्यर्घमेकवारमावर्त्य पुनर्गणपतिमालामन्त्रं चतुर्वार-

मावर्त्य ततो ऋष्यादिन्यासध्यानपूर्वकं पूर्वोक्तां शुद्धमातृकां त्रिवारं विन्यस्य ततः समग्रहान् विन्यस्य ततः प्रपञ्चयागमन्त्रस्य। ऋष्यादि-करषडङ्गन्यासान् विन्यस्य ध्यानपूर्वकं प्रपञ्चयागमातृकां संहारसृष्टि-मार्गेण न्यसेत्। इति क्रमः। तत्र महागणपतिमन्त्रस्य गणकऋषिः। त्रिवृद्गायत्री छन्दः। श्रीमहागणपतिर्देवता। प्रपञ्चयागादिकत्वे जपे विनि-योगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य। करषडङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा। ४ ॐ गां हृदयाय नमः। ४ श्रीं गीं शिरसे स्वाहा। ४ ह्रीं गूं शिखायै वषट्। ४ क्लीं गैं कवचाय हुं। ४ ग्लौं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ४ गं गः अस्त्राय फट्। इति मन्त्रैः कराङ्गन्यासं कृत्वा ध्यानं कुर्यात्। तद्यथा–

हस्तीन्द्राननमिन्दुचूडमरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसाद्
आश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया स्वाङ्कस्थया सन्ततम्।
बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक्चक्राब्जपाशोत्पलं
व्रीह्याग्रे स्वविषाणरत्नकलशान् हस्तैर्वहन्तं भजे॥
गण्डभित्तिगलत्दानपुरलालसमानसान्।
द्विरेफान् कर्णतालाभ्यां वारयन्तं मुहुर्मुहुः॥
कराग्रधृतमाणिक्यं कुम्भचक्रविनिःसृतैः।
रत्नवर्षैः प्रीणयन्तं साधकान् मदविह्वलम्॥
माणिक्यमुकुरोपेतं रत्नाभरणभूषितम्।
युगपत्सेवितं देवैरसुरैश्च मुहुर्मुहुः॥

वामाधःकरमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तमायुधध्यानम्। रत्नकलशं शुण्डाग्रे त्रिशिखं त्रिशूलम्। इति महागणपतिसाङ्गावरणं ध्यात्वा। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा। इति मन्त्रमष्टधा जपित्वा। गणपतिबीजस्य गणकऋषिः। निचृद्गायत्री छन्दः। विघ्नेश्वरो देवता। प्रपञ्चयागाङ्गत्वे बीजजपे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं विन्यस्य ४ गां गीं इत्यादिना करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यानम् कुर्यात्।

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानं
दन्तं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद् बीजपूराभिरामम्।
बालेन्दूद्योतमौलिं करिपतिवदनं दानपूरार्द्रगण्डं
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥

वामाधःकरमारभ्य दक्षाधःकरपर्यन्तं आयुधध्यानम्। इष्टो वर उरु-करः शुण्डादण्डः। इति ध्यात्वा गं गणपतिबीजं चतुश्चत्वारिंशद् वारं जपित्वा ४ ॐ गणानां नमः शिरसि। ४ त्वां नमः वदने। ४ गणपतिं नमः दक्षकर्णे। ४ हवामहे नमः, वामकर्णे। ४ कविं नमः आस्ये। ४ कवीनां नमः, गले। ४ उपमश्रवस्तमं नमः, अंसयोः। ४ जेष्ठराजं नमः हृदि। ४ ब्रह्मणां नमः। नाभौ। ४ ब्रह्मणः नमः, गुह्ये। ४ पतये नमः, दक्षजानौ। ४ आं नमः, वामजानौ। ४ नः नमः, दक्षोरौ। ४ शृण्वं नमः, वामोरौ। ४ ऊतिभिः नमः, पृष्ठे। ४ सीदं नमः, ककुदि। सादनं नमः। इति विन्यस्य "ॐ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आनः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्"। इति ऋचमेकवारं जपित्वा। गणपतिमालामन्त्रं जपेत्। ह्रीं क्रों ॐ नमः। सर्वविघ्नाधिपाय सर्वार्थसिद्धिदाय सर्वदुःखप्रशमनाय एह्येहि भगवन् सर्वान् वारय २ स्तम्भय २ ह्रीं गं गां नमः स्वाहा, क्रों ह्रीं नमः। इति मालामन्त्रं चतुरावृतिर्जपित्वा। ततः पूर्वोक्तशुद्धमातृकां ऋष्यादिकरषडङ्गन्यास-ध्यानपूर्वकं वारत्रयं शुद्धमातृकास्थाने विन्यस्य ४ मुखे अं १५ आदित्याय नमः। दक्षिणबाहुमूलाद्यग्रान्तं। ४ यं ९ सोमाय नमः, वामबाहुमूलाद्यग्रान्तं। ४ कं ४ भौमाय नमः, दक्षिणोरुमूलादिपादाग्रान्तं। ४ चं ४ बुधाय नमः वामोरुमूलादिपादाग्रान्तं। ४ टं ४ बृहस्पतये नमः, जठरे। ४ तं ४ शुक्राय नमः हृदये। ४ पं ४ शनैश्चराय नमः, सप्तग्रहान् विन्यस्य ततः प्रपञ्चयागमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। सकलपदार्थानुगतपरिपूर्णस्वप्रकाशसच्चिदानन्दपरंज्योतिः परमात्मा देवता। श्री विद्याङ्गत्वे प्रपञ्चयागमातृकान्यासे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा,

विन्यस्य। ४ ॐ ह्रीं अं कं ४ आं स्वाहा, हृदयाय। ४ ॐ ह्रीं इं चं ४ ईं सोऽहं शिरसि। ४ ॐ ह्रीं डं टं ४ ऊं हंसः शिखायै। ४ ॐ ह्रीं ४ एं तं ४ ऐं ह्रीं कवचाय हुं। ४ ॐ ह्रीं ॐ पं ४ औं नेत्रत्राय। ४ ॐ ह्रीं अं यं ९ अः हरिहराय अस्त्राय फट्। इति करषडङ्ग-न्यासं विधाय, ध्यानं कुर्यात्। तद्यथा –

तारादिपञ्चमुनिभिः परिचीयमानं

मानैरगम्यमनिशं जगदेकमूलम्।

सच्चित्समस्तगमनेश्वरमच्युतं तै-

स्तेजः परं भजत सान्द्रसुधाऽम्बुराशिम्॥

इति सकलप्रपञ्चातिरिक्तसर्वसाक्षिनिरतिशयानन्दचिद्विलासाऽविनाभूतः परिपूर्ण-सच्चिदानन्दोऽहमिति स्वात्मानं ध्यात्वा, श्रीपरदेवतापरमात्मनि वह्नौ तत्स्थान-युक्तान् वर्णान् जुहोमि। इति धिया ऽस्मिन् वर्णान् जुहुयात्। तद्यथा– ४ ॐ ह्रीं अं हं सः सोऽहं स्वाहा। ४ ॐ ह्रीं कं ४ हं सः सोऽहं स्वाहा। ४ ॐ ह्रीं अं हं सः सोऽहं स्वाहा। इत्यादि ४ ॐ ह्रीं क्षं हं सः सोऽहं स्वाहा। इत्यन्तं मातृकान्यासस्थाने संहारक्रमेणैव विन्यस्य। पुनः। ४ ॐ ह्रीं अं हं सः सोऽहं स्वाहा। इत्यादि ४ ॐ ह्रीं क्षं हं सः सोऽहं स्वाहा। इत्यन्तं मातृकास्थानेषु न्यसेत्। इति प्रपञ्चाङ्ग-मातृकान्यासः।

॥अथ भूतलिपिन्यासः॥

तत्र श्रीभूतलिपिमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः। गायत्री छन्दः। भूतलिपि-सरस्वती देवता। श्रीविद्याङ्गत्वे भूतलिपिन्यासे विनियोगः। इति ऋष्यादिं स्मृत्वा, विन्यस्य ४ हं यं रं वं लं हृदयाय नमः। ङं कं खं घं गं शिरसे स्वाहा। ४ ञं चं छं झं जं शिखायै। ४ णं टं ठं ढं डं कवचाय हुं। ४ नं तं थं धं दं नेत्रत्रयाय। ४ ऊं मं पं फं भं बं अस्त्राय फट्। इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय ध्यायेत्। तद्यथा –

चिद्बीजं बिन्दुनादहृत्-शिखं विश्वम्भराक्षरैः।
राकासमूहैः सकलदिशासु सुविजृम्भितम् ॥
जलपूर्णदलव्रातेनाच्छादितजगत्त्रयम् ।
कृशानुवर्णाङ्कुरैश्च सन्दीप्यं सुरभूरुहम् ॥
रत्नाङ्कुरैरिव शुभं पवनाक्षरशोभितैः।
कुसुमैर्दीपयन्तं च स्वकीयतनुसच्छ्रियम् ॥
वियदक्षरसद्रूपैः फलैरानतमुत्तमम् ।
सर्वभूताश्रयं नित्यं परामृतमधुद्रवैः ॥
सञ्चित्यात् परमेशानीं देवीं वागीश्वरीं शुचिम् ।
निगमागमसङ्क्लृप्त-समुन्नतिसुशोभिताम् ॥
शिवशक्त्यात्मकच्छाया-समाश्रितजगत्त्रयम् ।
यामाश्रित्य मुनीन्द्राद्या वाञ्छितार्थान् प्रपेदिरे ॥
एवं भूतार्णवृक्षस्य मौलित्वाक्षरपङ्कजाम् ।
वागीश्वरीं स्मरेन्नित्यं सकलेष्टफलप्रदाम् ॥
कुन्दाभासामुरुकुचघटां शोभिचन्द्रार्धमौलिं
हस्ताम्भोजैर्वरजपवटीपुस्तकं पद्ममालाम् ।
बिभ्राणां तां मधुमदलसद्दिक्कलायुग्मनेत्रां
देवीं ध्यायेल्लिपिमयतनुं यौवनप्राप्तशोभाम् ॥

दक्षाधःकरमारभ्य, वामाधः करपर्यन्तमायुधध्यानम् । इति ध्यात्वा, न्यसेत् । तत्र प्रथमं संहारन्यासः । संहारं च तथा सृष्टिं स्थितिं न्यासं समारभेत् । इति कुलार्णवे । तत्र गले ४ ॡं नमः । हृदि ४ ॠं नमः । नाभौ ४ उं नमः । स्वाधिष्ठाने ४ इं नमः । मूलाधारे ४ अं नमः । द्वादशान्ते ४ ॐ नमः । शक्त्यां ४ औं नमः । नादे ४ ऐं नमः । बिन्दौ ४ एं नमः ।

लम्बिकायां ······ नामान्तरं । चोरकूटे ४ लं नमः । वामकर्णे ४ वं नमः। दक्षिणकर्णे ४ रं नमः। मुखे ४ यं नमः। मूर्ध्नि ४ हं नमः। दक्षिणमणिबन्धे ४ गं नमः। अङ्गुलिमूले ४ घं नमः। कूर्परे ४ खं नमः। बाहुमूले ४ कं नमः। अङ्गुल्यग्रे ४ ङं नमः। वाममणिबन्धे ४ जं नमः। अङ्गुलिमूले ४ झं नमः। कूर्परे ४ छं नमः। बाहुमूले ४ चं नमः। अङ्गुल्यग्रे ४ ञं नम :। दक्षगुल्फे ४ डं नमः। अङ्गुलिमूले ४ ढं नमः। जानुनि ४ टं नमः। ऊरुमूले ४ ठं नमः। अङ्गुल्यग्रे ४ णं नमः। वामगुल्फे ४ दं नमः।अङ्गुलिमूले ४ धं नमः। जानुनि ४ थं नमः। ऊरुमूले ४ तं नमः। पादाग्रे ४ नं नमः। पृष्ठे ४ बं नमः। नाभौ ४ भं नमः। वामपार्श्वे ४ फं नमः। दक्षे ४ पं नमः। अधरे ४ मं नमः। भ्रूमध्ये ४ सं नमः। हृदये ४ षं नमः। गुह्ये ४ शं नमः। इति संहारन्यासः।

अथ सृष्टिन्यासः। तत्र मूलाधारे ४ अः, एवं स्वाधिष्ठाने ४ इः नाभौ ४ उः। हृदि ४ ऋः। गले ४ ॡः। बिन्दौ ४ एः। नादे ४ ऐः। शक्त्यां ४ ओः। द्वादशान्ते ४ औः। ४ हः। मुखे ४ यः। दक्षिणकर्णे ४ रः। वामे ४ वः चूडाधः ४ लः। दक्षिणकराङ्गुल्यग्रे ४ ङः। बाहुमूले ४ कः। मध्ये ४ खः।अङ्गुलिमूले ४ घः। मणिवन्धे ४ गः। वामकराङ्गुल्यग्रे ४ ञः। बाहुमूले ४ चः। मध्ये ४ छः। अङ्गुलिमूले ४ झः। मणिबन्धे ४ जः। दक्षपादाग्रे ४ णः। ऊरुमूले ४ टः। जानुनि ४ ठः। अङ्गुलिमूले ४ ढः। गुल्फे ४ डः। वामपादाग्रे ४ नः। ऊरुमूले ४ तः। जानुनि ४ थः। अङ्गुलिमूले ४ धः। गुल्फे ४ दः। उदरे ४ मः। दक्षपार्श्वे ४ पः। वामे ४ फः। नाभौ ४ भः। पृष्ठे ४ बः। मूलाधारे ४ शः। हृदि ४ षः। भ्रूमध्ये ४ सः। नमः इति सृष्टिन्यासः।

अथ स्थितिन्यासः। तत्र मूलाधारे ४ अंः नमः। एवं स्वाधिष्ठाने ४ ईः। हृदि ४ ॠः। गले ४ ॡंः। नाभौ उंः। बिन्दौ एंः। नादे ४ एंः। द्वादशान्ते ४ औंः। शक्त्यां ओंः। ब्रह्मरन्ध्रे ४ हंः। मुखे ४ यंः।

वामकर्णे ४ वंः। चूड़ाधः ४ लंः। दक्षिणकर्णे ४ रंः। दक्षकराङ्गुल्यग्रे ४ उंः। बाहौ ४ कंः। अङ्गुलिमूले ४ घंः। मणिबन्धे ४ गंः। कूर्परे ४ खंः। वामकराङ्गुल्यग्रे ४ ञंः। वामबाहुमूले ४ चंः। अङ्गुलिमूले ४ झंः। मणिबन्धे ४ जंः। मध्ये ४ छः। दक्षपादाङ्गुल्यग्रे ४ णंः। दक्षोरौ ४ टंः। अङ्गुलिमूले ४ ढंः। गुल्फे ४ डंः। जानुनि ४ छंः। वामपादाङ्गुल्ये ४ नंः। वामोरुमूले ४ तंः। अङ्गुलिमूले ४ थः। गुल्फे ४ धंः। जानुनि ४ दंः। उदरे ४ मंः। दक्षपार्श्वे ४ यंः। नाभौ ४ भंः। पृष्ठे ४ बंः। वामपार्श्वे ४ फं। हृदि ४ षंः। भ्रूमध्ये ४ संः। गुह्ये ४ शंः। नमः इति स्थितिन्यासः। इति भूतलिपिमातृकान्यासः।

॥अथ षट्त्रिंशत्तत्त्वन्यासः॥

४ क्षं पृथिवीतत्त्वात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः नाभ्यादिजान्वन्तम्। ४ लं आपस्तत्त्वात्मने श्री० कण्ठादिनाभ्यान्तम् ४ हं तेजस्तत्त्वात्मने श्री० भ्रूमध्यादिकण्ठान्तं। ४ सं वायुतत्त्वात्मने श्री० मूर्धादिमध्यान्तम्। ४ षं आकाशात्मने श्री० पुनः जान्वादिपादान्तम्। ४ शं गन्धतत्त्वात्मने श्री० नाभ्यादिजान्वन्तम्। ४ वं रसतत्त्वात्मने श्री० कण्ठादिनाभ्यन्तम्। ४ लं रूपतत्त्वात्मने श्री० भ्रूमध्यादिकण्ठान्तम्। ४ रं स्पर्शतत्त्वात्मने श्री० मूर्धादिभ्रूमध्यान्तम्। ४ यं शब्दतत्त्वात्मने श्री० गुह्ये ४ मं उपस्थतत्त्वात्मने श्री० गुह्ये ४ भं पायुतत्त्वात्मने श्री० पादयोः। ४ बं पादतत्त्वात्मने श्री० पाण्योः। ४ फं पाणितत्त्वात्मने श्री० मुखे। ४ पं वाक्तत्त्वात्मने श्री० नासिकयोः ४ नं घ्राणतत्त्वात्मने श्री० जिह्वायां ४ धं जिह्वातत्त्वात्मनेश्री० चक्षुषोः ४ दं चक्षुस्तत्त्वात्मने श्री० सर्वाङ्गे। ४ थं त्वक्तत्त्वात्मनेश्री० श्रोत्रयोः ४ तं श्रोत्रतत्त्वात्मनेश्री० मनसि। ४ णं मनस्तत्त्वात्मने श्री० हृदि। ४ ढं बुद्धितत्त्वात्मने श्री०। हृदि ४ अहङ्कारतत्त्वात्मने श्री० सर्वाङ्गे। ४ प्रकृतितत्त्वात्मने श्री०। सर्वाङ्गे ४ पुरुषतत्त्वात्मने श्री०। सर्वाङ्गे ४ ञं नियतितत्त्वात्मने श्री०। सर्वाङ्गे ४ झं कालतत्त्वात्मने श्री० हृदि। ४ जं रागतत्त्वात्मने श्री० हृदि, ४ छं

विद्यातत्त्वात्मने श्री० हृदि । ४ चं कलातत्त्वात्मने श्री० हृदि। ४ ङं मायातत्त्वात्मने श्री० हृदि। ४ घं शुद्धविद्यातत्त्वात्मने श्री० मुखे। ४ गं ईश्वरतत्त्वात्मने श्री० शिरसि। ४ खं सदाशिवतत्त्वात्मने श्री० मूलाधारे । ४ कं शक्तितत्त्वात्मने श्री० ब्रह्मरन्ध्रे। ४ अं शिवतत्त्वात्मने श्री महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। इति षट्त्रिंशत्तत्त्वन्यासः।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गः पञ्चमोऽगमत्॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते

सौभाग्यरत्नाकरे पञ्चमस्तरङ्गः ॥५॥

॥श्रीः॥

अथ षष्टस्तरङ्गः

॥अथ मूलमन्त्रन्यासः॥

स चास्यां विद्यायां त्रिविधः। षोढा श्रीचक्रकरशुध्यादिभेदात्। षोढा न्यासोऽपि द्विविधः, पूर्वोत्तरभेदात्। उत्तरोऽपि त्रिविधः। महाषोढान्यासो बीजषोढान्यासो मालिन्यादिषोढान्यासश्चेति।

तत्र पूर्वषोढान्यासः। सर्वाम्नायविषयः। उत्तरषोढान्यासस्तु ऊर्ध्वाम्नायविषयः। श्री चक्रन्यासोऽपि त्रिविधः, संहार-सृष्टि-स्थितिभेदात्। करशुध्यादिन्यासोऽपि बहुतरः। रतिकामपञ्चाशत्रिपुरादिनां न्यासविशेषाणां तत्रैवाऽऽदिपदेन सङ्गृहीतत्वात्।

तत्रादौ पूर्वषोढान्यासः। तत्र दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः। गायत्री छन्दः। मातृकागणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीराशिपीठमातृकारूपिणी महात्रिपुरसुन्दरी देवता। श्रीविद्याङ्गत्वे न्यासे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, विन्यस्य, करषडङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा– ४ अं कं ४ आं ऐं हृदयाय नमः। ४ इं चं ४ ईं क्लीं शिरसे स्वाहा। ४ उं टं ४ ऊं सौ० शिखायै वषट्। ४ एं तं ४ ऐं एं कवचाय हुम्। ४ ॐ पं ४ औं क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्। ४ अं यं ९ अः सौः अस्त्राय फट्। ततो ध्यानम्–

उद्यत्सूर्यसहस्राभां पीनोन्नतपयोधराम्।
रक्तमाल्याम्बरालेपां रक्तभूषणभूषिताम्॥
पाशाङ्कुशधनुर्बाणभास्वत्पाणिचतुष्टयाम्।
लसन्नेत्रत्रयां स्वर्णमुकुटोद्भासिचन्द्रिकाम्॥
गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीं राशिरूपिणीम्।
देवीं पीठमयीं ध्यायेन्मातृकासुन्दरीं पराम्॥

वामाद्यूर्ध्वयोराद्येतदाधस्तनयोरन्ये इत्यायुधध्यानम्। इति समष्टिरूपेण परमानन्दघनां ध्यात्वा अस्य श्री गणेशन्यासस्य। गणक ऋषिः। निचृद्-गायत्री छन्दः। श्रीगणेशो देवता। न्यासे विनियोगः। ॐ गां शक्त्यानन्दाय हृदयाय नमः। श्रीं गीं मुखेन्द्राय शिरसे। ह्रीं गूं राजचन्द्राय शिखायै। क्लीं गैं मदोत्कटाय कवचाय हुम्। ग्लौं गौं प्रमोदाय नेत्रत्रयाय। गं गः सर्वमन्त्रात्मने आमोदाय अस्त्राय फट्। इति षडङ्गं विन्यस्य, ध्यायेत्। तद्यथा –

तरुणादित्यसङ्काशान् गजवक्त्रान् त्रिलोचनान्।
पाशाङ्कुशवराभीतिकरान् शक्तिसमन्वितान्॥
तास्तु सिन्दूरवर्णाभाः सर्वालङ्कारशोभिताः।
एकहस्तधृताऽम्भोजा इतरालिङ्गितप्रियाः॥

वामोर्ध्वकरमारभ्य, इत्यायुधध्यानम्। शक्तीनां वामकरे कमलम्; दक्षिण-करे प्रियालिङ्गनमिति ध्यात्वा, न्यसेत्। तद्यथा – ४ गं अं विघ्नेश्वराय श्रियै नमः। ४ गं आं विघ्नराजाय पत्न्यै नमः। ४ गं इं विनायकाय तुष्ट्यै नमः। ४ गं ईं शिवोत्तमाय शान्त्यै०। ४ गं उं विघ्नकृते पुष्ट्यै०। ४ गं ऊं विघ्नहर्त्रे सरस्वत्यै०। ४ गं ऋं विघ्नराजाय रत्यै०। ४ गं ॠं गणनायकाय मेधायै०। ४ गं ऌं एकदन्ताय कान्त्यै०। ४ गं ॡं द्विदन्ताय कामिन्यै०। ४ गं एं गजवक्त्राय मोहिन्यै०। ४ गं ऐं निरञ्जनाय जटायै०। ४ गं ॐ कपर्दिने तीव्रायै०। ४ गं औं दीर्घ-वक्त्राय ज्वालिन्यै०। ४ गं अं शुङ्कुकर्णाय नन्दायै०। ४ गं अः ऋषभध्वजाय सुरसायै०। ४ गं कं गणनाथाय कामरूपिण्यै०। ४ गं खं गजेन्द्राय उग्रायै०। ४ गं गं शूर्पकर्णाय जयिन्यै०। ४ गं घं त्रिनेत्राय सत्यायै०। ४ गं ङं लम्बोदराय विघ्नेशायै०। ४ गं चं महानादाय सुरूपिण्यै०। ४ गं छं चतुर्मूर्त्तये कामदायै०। ४ गं जं सदाशिवाय मदविह्वलायै०। ४ गं झं आमोदाय विकटायै०। ४ गं ञं चतुर्मुखाय धूम्रायै०। ४ गं टं दुर्मुखसुमुखाय भूत्यै०। ४ गं ठं प्रमोदाय भूत्यै०। ४ गं

डं एकपादाय सत्यायै०। ४ गं ढं द्विजिह्वाय रमायै०।४ गं णं शूराय मानुष्यै०। ४ गं तं वीराय करध्वजायै०। ४ गं थं षण्मुखाय विकर्णायै०। ४ गं दं वरदाय भृकुट्यै०। ४ गं धं वामदेवाय लज्जायै०। ४ गं नं वक्रतुण्डाय दीर्घघोणायै०।४ गं पं द्विरण्डाय धनुर्धरायै०। ४ गं फं सेनान्यै यामिन्यै०।४ गं बं ग्रामिण्यै रात्र्यै०।४ गं भं मत्ताय चन्द्रिकायै०। ४ गं मं विमत्ताय शशिप्रभायै०। ४ गं यं मत्तवाहनाय लोलायै०। ४ गं रं जटिने चञ्चलाक्ष्यै०। ४ गं लं मुण्डिने ऋध्यै०।४ गं वं खड्गिने दुर्गायै०। ४ गं शं वरेण्याय सुभगायै०। ४ गं षं वृषकेतवे शिवायै०। ४ गं सं भक्षप्रियाय दुर्गायै०।४ गं हं मेघजाताय कालिकायै०। ४ गं ळं गणपतये कालजिह्वायै०। ४ गं क्षं गणेश्वराय विघ्नहारिण्यै०। इति मातृकास्थानेषु न्यसेत् । इति गणेशन्यासः ।

॥ अथ ग्रहन्यासः ॥

तत्र ध्यानम् –

रक्तं श्वेतं तथाऽऽरक्तं श्यामं पीतं च पाण्डुरम् ।
धूम्रकृष्णं कृष्णधूम्रं धूम्रधूम्रं विचिन्तयेत् ॥
रविमुख्यान् कामरूपान् सर्वाभरणभूषितान् ।
वामोरुन्यस्तहस्तांश्च दक्षहस्तवरप्रदान् ॥
शक्तयोऽपि तथा ध्येयाः वराऽभयकराम्बुजाः ।
स्वस्य प्रियाऽङ्कनिलयाः सर्वाभरणभूषिताः ॥

इति ध्यात्वा, न्यसेत् । हृदयाधस्तात् । ४ अं १५ रक्तवर्णसूर्याय रक्तवर्णरेणुकाम्बायै नमः। भ्रूमध्ये । ४ यं ३ श्वेतवर्णचन्द्राय श्वेतामृताम्बायै नमः। नेत्रत्रयाय । ४ कं ४ रक्तवर्णाय मङ्गलाय रक्तवर्णधर्माम्बायै० । हृदयोपरि। ४ चं ४ श्यामायुधाय बुधाय शंखिन्यम्बायै श्यामज्ञानरूपाम्बायै० । कण्ठे । ४ तं ४ पीताय बृहस्पतये पीतशङ्कर्यम्बायै०। हृदि । ४ टं ४ हिण्डुराय शुक्लाय शुक्राय पाण्डुज्ञानरूपाम्बायै० । नाभौ । ४ पं ४ धूम्रकृष्णाय शनैश्चराय

धूमकृष्णशक्त्यम्बायै०। मुखे। ४ शं ३ कृष्णधूम्राय राहवे कृष्णधूम्राम्बायै०। पादयोः। ४ लं क्षं धूम्रधूम्राय केतवे धूम्राम्बायै नमः। इति ग्रहन्यासः।

॥ अथ नक्षत्रन्यासः ॥

तत्र ध्यानम् –

ज्वलत्कालाग्निसङ्काशाः वरदाभयपाणयः।
नतिपाण्योऽश्विनीमुख्याः सर्वाभरणभूषिताः॥

दक्षाधकरयोर्वराभये ऊर्ध्वयोर्नतिमुद्रे। इत्यायुधध्यानम्। इति ध्यात्वा, न्यसेत्। तद्यथा – ललाटे ४ अं आं अश्विन्यै नमः। दक्षिणनेत्रे ४ इं भरण्यै०। वामनेत्रे ४ ई उं ऊं कृत्तिकायै०। दक्षकर्णे ४ ऋं ॠं रोहिण्यै०। वामकर्णे ४ एं मृगशिरसे०। दक्षिणनासायां ४ ऐं आर्द्रायै०। वामनासायां ४ ओं औं पुनर्वसवे०। कण्ठे ४ कं पुष्यायै०। दक्षस्कन्धे ४ खं गं आश्लेषायै०। वामस्कन्धे ४ घं ङं मघायै०। दक्षकफोणौ ४ चं पूर्वायै०। वामकफोणौ ४ छं जं उत्तरफल्गुन्यै०। दक्षमणिबन्धे ४ झं ञं हस्तायै०। वाममणिबन्धे ४ टं ठं चित्रायै०। दक्षस्तने ४ डं स्वात्यै०। वामस्तने ४ ढं णं विशाखायै०। नाभौ ४ तं थं दं अनुराधायै०। दक्षकट्या ४ धं ज्येष्ठायै०। वामकट्यां ४ नं पं फं मूलायै०। दक्षोरुका ४ बं पूर्वाषाढायै०। वामोरुका ४ भं उत्तराषाढायै०। दक्षजानुनि ४ मं श्रवणायै०। वामजानुनि ४ यं रं धनिष्ठायै०। दक्षजङ्घायां ४ लं शातभिषायै०। वामजङ्घायां ४ वं शं पूर्वाभाद्रपदायै०। दक्षपादे ४ षं सं हं उत्तराभ्राद्रपदायै०। वामपादे ४ ळं क्षं अः रेवत्यै नमः। इति नक्षत्रन्यासः।

॥ अथ महायोगिनी न्यासः ॥

तत्र विशुद्धषोडशदलकमलकर्णिकायां त्वग्धातुदेवतां डाकिनीं ध्यायेत्। तद्यथा –

रक्तां रक्तत्रिनेत्रां पशुजनभयकृच्छूलखट्वाङ्गहस्तां
वामे खेटं दधानां चषकमपि सुरापूरितं चैकवक्त्राम्।
अत्युग्रामुग्रदंष्ट्रामरिकुलमथिनीं पायसान्ने प्रसक्तां
कण्ठस्थाने मृताद्यैः परिवृतवपुषीं भावयेद् डाकिनीं ताम्॥

दक्षोर्ध्वाध शूलखट्वाङ्गे वामोर्ध्वाधः खेटचषकेत्यायुधध्यानम्। इत्यायुधं ध्यात्वा न्यसेत्। ४ डां डीं डूं डैं डौं डः डमलवरयूं डाकिनी मां रक्ष, रक्ष; मम त्वग्धातुं रक्ष रक्ष; सर्वसत्त्ववशङ्करि देवि आगच्छाऽऽगच्छ; इमां पूजां गृहाण २; ऐं घोरदेवि ह्रीं सः परघोरे हुं घोररूपे एह्येहि; नमश्चामुण्डे डरलकसे हें श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवि वरदे विच्चे अं १५ विशुद्धपीठस्थिते विशुद्धडाकिनीविशुद्धनाथदेवयुग्मश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इति मनसा कर्णिकायां विन्यस्य। तदग्रादिपरितः तदा वर्णाक्षरशक्तिं न्यसेत्। तद्यथा– ४ अं अमृतायै नमः। ४ आं आकर्षिण्यै०। ४ इं इन्द्राविण्यै०। ४ ईं ईशान्यै०। ४ उं उमायै०। ४ ऊं ऊर्ध्वकेशिन्यै०। ४ ऋं ऋद्धिदायै०। ४ ॠं ॠषायै०। ४ ऌं ऌकारायै०। ४ ॡं ॡषायै०। ४ एं एकपदायै०। ४ ऐं ऐश्वर्यात्मिकायै०। ४ ओं ओंकारात्मिकायै०। ४ औं औषधात्मिकायै०। ४ अं अम्बिकायै०। ४ अः अक्षरात्मिकायै नमः। इति प्रादक्षिण्येन न्यसेत्। एताः शक्तयो डाकिनीव ध्येयाः। ततो अनाहतद्वादशकमले रक्तधातुदेवतां राकिनीं श्यामवर्णां ध्यात्वा, न्यसेत्। तद्यथा –

श्यामाऽऽभामक्षहस्तां डमरुकसहितां तीक्ष्णचक्रं वहन्तीं
द्वास्यां रक्तां त्रिनेत्रां भृकुटिवलयसंदृष्टदन्तप्रभाभिः।
दीप्तास्यां देवदेवीं हृदयकमलगां रक्तधातोः सनाथां
शुद्धान्नेषुप्रसक्तां मधुमदमुदितां चिन्तयेद् राकिनीं ताम्॥

दक्षाधः करमारभ्य, दक्षोर्ध्वकरपर्यन्तमायुधध्यानम्। इति ध्यात्वा, तन्मन्त्रं कर्णिकायां न्यसेत्। तद्यथा– रां रीं रूं रैं रः। रमलवरयूं राकिनी मां

रक्ष रक्ष; मम रक्तधातून् रक्ष रक्ष; सर्वसत्त्ववशङ्करी देवी, आगच्छाऽऽगच्छ; इमां पूजां गृह्ण गृह्ण; ऐं घोरे ह्रीं सः, परमघोरे हुं घोररूपे एह्येहि; नमश्चामुण्डे डरलकसहैं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवि वरदे विच्चे कं ११ अनाहतपीठस्थ अनाहतशक्ति राकिणी अनाहतनाथ-देव-युग्मश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इति मनसा सम्पूज्य कर्णिकायां विन्यस्य, दलेषु परितः तदावरणाक्षरदेवता न्यसेत्। तद्यथा – ४ कं कालरात्र्यै नमः। ४ खं खान्तितायै०। ४ गं गायत्र्यै०। ४ घं घण्टाधारिण्यै०। ४ ङं ङार्णात्मिकायै०। ४ चं चामुण्डायै०। ४ छं छायायै०। ४ जं जयायै०। ४ झं झङ्कारिण्यै०। ४ ञं ञार्णात्मिकायै०। ४ टं टङ्कहस्तायै०। ४ ठं ठङ्कारिण्यै नम. इति द्वादशदले विन्यस्य, एताः राकिनीव ध्येयाः। ततो मणिपूरके दशदलकमले मांसधातुदेवतां लाकिनीं श्यामवर्णां ध्यात्वा, न्यसेत्। तद्यथा –

कृष्णां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनलसितां दंष्ट्रिणीमुग्ररूपां
वज्रं शक्तिं च दण्डाऽभयवरसहितान् दक्षवामे दधानाम्।
ध्यात्वा नाभिस्थपद्मे दलवलयसत्कर्णिके लाकिनीं तां
मांसस्थां गौडभक्तोत्सुकहृदयवतीं विन्यसेत्साधकेन्द्रः॥

दक्षादूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधस्थयोरन्ये तदाद्यधस्थयोरपरे इत्यायुधध्यानम्। इति ध्यात्वा न्यसेत्। लां लीं लूं लैं लौं लः। लमलवरयूं लाकिनी मां रक्ष रक्ष; मांसधातून् रक्ष रक्ष; सर्वसत्त्ववशंकरी देवी आगच्छाऽऽगच्छ; इमां पूजां गृह्ण गृह्ण; ऐं घोरदेवि ह्रीं सः परमघोररूपे एह्येहि; नमश्चामुण्डे डमलकसहै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि देवि वरदे विच्चे डं ११ मणिपूरकपीठस्थे मणिपूरकलानि मणिपूरनाथ-देवयुग्मश्रीपादुकां पूजयामि नमः। कर्णिकायां मनसा सम्पूज्य, विन्यस्य, परितस्तदावरणदेवतान् न्यसेत्। ४ डं डामर्यै नमः। ४ ढं ढङ्कारिण्यै०। ४ णं णकारिण्यै०। ४ तं तामस्यै०। ४ थं स्थानदेव्यै०। ४ दं दाक्षायिण्यै०। ४ धं धात्र्यै०। ४ नं नन्दायै०। ४ पं पार्वत्यै०। ४ फं फट्कारिण्यै०। इति न्यसेत्। एताः लाकिनीव

ध्येयाः। ततः स्वाधिष्ठाने षड्दलकमलकर्णिकायां काकिनीं सावर्णां ध्यात्वा, न्यसेत्। तद्यथा –

स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे रसदललसिते वेदवक्त्रां त्रिनेत्रां
पीताऽऽभां धारयन्तीं त्रिशिखगुणकपालाभयान्यस्तगर्वाम्।
मेदो रक्तं च धातुं प्रतिमलिमदतां बन्धिनीत्यादिपीतां
दध्यन्ने सक्तचित्तामभिमतफलदां काकिनीं भावयेत्ताम्॥

दक्षोर्ध्वकरमारभ्य, दक्षाधः करपर्यन्तं आयुधध्यानम्। कां कीं कूं कैं कौं कः। कमलवरयूं काकिनी मां रक्ष रक्ष; मम मेदो धातुं रक्ष रक्ष; सर्वसत्त्ववशंकरी देवी आगच्छाऽऽगच्छ; इमां पूजां गृह्ण गृह्ण; ऐं घोर-देवी ह्रीं सः परमघोरे हुं घोररूपे एह्येहि नमश्चामुण्डे डरलकस हैं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवि वरदे विच्चे बं ५ स्वाधिष्ठानपीठस्थे स्वाधिष्ठान-काकिनी स्वाधिष्ठाननाददेवयुग्मे श्रीपादुकां पूजयामि नमः। इति कर्णिकायां मनसा सम्पूज्य, विन्यस्य; परितस्तद्दले परिवाराक्षरदेवतान् न्यसेत्। ४ बं बन्धिन्यै नमः। ४ भं भद्रकाल्यै०। ४ मं महामायायै०। ४ यं यशस्विन्यै ४ रं रमायै०। ४ लं लम्बोष्ठ्यै०। इति विन्यस्य। एताः काकिनीव ध्येयाः।

ततो मूलाधारे चतुर्दलकमलकर्णिकायां अस्थिधातुदेवतां साकिनीं ध्यात्वा, न्यसेत्। तद्यथा –

देवीं ज्योतिःस्वरूपां त्रिनयनविलसत्पञ्चवक्त्रां सुदंष्ट्रां
हस्ताम्भोजेषुचापं सृणिमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
मूलाधारस्थपद्मे निखिलपशुजनोन्मादिनीमस्थिसंस्थां
मुद्गाऽन्ने प्रीतियुक्तां मधुमदमुदितां चिन्तयेत्साकिनीं ताम्॥

वामादूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम्। अत्रेषुचापग्रहणात् तत्रैव पुष्पबाणानपि ध्यायेत्। धनुर्बाणयोरत्यन्तसाहचर्यात्। इति ध्यात्वा, तत्कर्णिकायां न्यसेत्। सां सीं सूं सैं सौं सः। समलवरयूं साकिनी मां

रक्ष रक्ष; ममाऽस्थिधातुं रक्ष रक्ष; सर्वसत्त्ववशङ्करी देवि, आगच्छागच्छ इमां पूजां गृह्ण गृह्ण, ऐं घोरदेवि ह्रीं सः परमघोरे हुं घोररूपे एह्येहि, नमश्चामुण्डे डरलसहैं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि देवि ह्रीं सः वरदे विच्चे वं ३ मूलाधारपीठस्थे मूलाधारसाकिनी मूलाधारनाथदेवयुग्मश्रीपादुकां पूजयामि नमः । इति कर्णिकायां मनसा सम्पूज्य विद्यायास्तद्दलेषु परितस्थपरिवार-देवतान्न्यसेत् । ४ वं वरदायै नमः । ४ शं शशिन्यै नमः । ४ षं षडायै० । ४ सं सरस्वत्यै० । इति विन्यस्य एताः साकिनीव ध्येयाः । ततो भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रे मज्ज्ञाधातुदेवतां हाकिनीं ध्यात्वा न्यसेत् । तद्यथा –

भ्रूमध्ये बिन्दुपद्मे द्विदल-सुलसिते शुक्लवर्णां कराब्जैः
बिभ्राणां ज्ञानमुद्रां डमरुकसहितामक्षमालां कपालाम् ।
षड्वक्त्रां मञ्चसंस्थां त्रिनयनलसितां हंसवत्यादियुक्तां
हारिद्रान्ने प्रसक्तां सकलसुरनुतां हाकिनीं भावयेत्ताम् ॥

दक्षादूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानमिति ध्यात्वा न्यसेत् । ४ हां हीं हूं हैं हौं हः हमलवरयूं हाकिनी मां रक्ष रक्ष मम मज्ज्ञाधातुं रक्ष रक्ष; सर्वसत्त्ववशंकरी देवि आगच्छाऽऽगच्छ; इमां पूजां गृह्ण गृह्ण; ऐं घोरे देवि ह्रीं सः परमघोरे हुं घोररूपे एह्येहि; नमश्चामुण्डे डरलसहैं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवि वरदे विच्चे हं क्षं आज्ञापीठस्थे आज्ञाहाकिनी आज्ञानाथदेवयुग्मश्रीपादुकां पूजयामि नमः । इति द्विदलकर्णिकायां मनसा सम्पूज्य विन्यस्य । तद्दलयोः ४ हं हंसवत्यै० । ४ क्षं क्षमावत्यै० । इति विन्यस्य हाकिनीव ध्येयाः । ततो ब्रह्मरन्ध्रे । सहस्रदलकमलकर्णिकायां शुक्लधातुदेवतां सावरणां याकिनीं ध्यात्वा न्यसेत् ।

मुण्डव्योमस्थपद्मे सकलदलयुते याकिनीं भैरवीं तां
पक्षिण्याख्यां समस्तायुधलसितकरां सर्ववर्णां समष्टिम् ।
हादीनां सर्ववक्त्रां सकलसुखकरीं सर्वधातुस्वरूपां
सर्वाऽन्नासक्तचित्तां परशिवरसिकां भावयेत् सर्वरूपाम् ॥

इति ध्यात्वा न्यसेत्। ४ यां यीं यूं यैं यौं यः यमलवरयूं याकिनी मां रक्ष; मम शुक्लादिसर्वधातून् रक्ष, सर्वसत्त्ववशङ्करी देवि आगच्छाऽऽगच्छ; इमां पूजां गृह्ण गृह्ण; ऐं घोरे देवि ह्रीं सः परमघोरे हुं घोररूपे एह्येहि; नमश्चामुण्डे डरलसहैं महात्रिपुरसुन्दरी देवि वरदे विच्चे आऽऽदि-क्षाऽन्तं ५१ ब्रह्मरन्ध्रपीठस्थे ब्रह्मरन्ध्रयाकिनी ब्रह्मरन्ध्रनाथदेव श्रीपादुकां पूजयामि नमः। इति कर्णिकायां मनसा सम्पूज्य। विन्यस्य परितः पञ्चाशद्-वर्णदेवताः न्यसेत्। तद्यथा – ४ अं अमृतायै नमः। ४ आं आकर्षिण्यै ४ इन्द्राण्यै०। ४ ईं ईशान्यै०। ३ उं उमायै०। ४ ऊँ ऊर्ध्वकेश्यै०। ४ ऋं ऋद्धिदायै०। ॠं ॠषायै०। ४ ऌं ऌकरायै०। ४ ॡं ॡषायै०। ४ एं एकपादायै०। ४ ऐं ऐश्वर्यात्मिकायै०। ४ ओं ओंकारात्मिकायै०। ४ औं औषधात्मिकायै०। ४ अं अविकारायै०। ४ अः अक्षरात्मिकायै०। ४ कं कालरात्र्यै०। ४ खं खातायै०। ४ गं गायत्र्यै०। ४ घं घण्टाधारिण्यै०। ४ ङं ङवर्णात्मि-कायै०। ४ चं चामुण्डायै०। ४ छं छायायै०। ४ जं जयायै०। ४ झं झङ्कारिण्यै०। ४ ञं ञार्णात्मिकायै०। ४ टं टङ्कहस्तायै०। ४ ठं ठङ्कारिण्यै०। ४ डं डामर्यै०। ४ ढं ढङ्कारिण्यै०। ४ णं णकारिण्यै०। ४ तं तामस्यै०। ४ थं स्थानदेव्यै०। ४ दं दाक्षायिण्यै०। ४ धं धात्र्यै०। ४ नं नन्दायै०। ४ पं पार्वत्यै०। ४ फं फट्कारिण्यै०। ४ बं बन्धिन्यै०। ४ भं भद्रकाल्यै०। ४ मं महामायायै०। ४ यं यशस्विन्यै०। ४ रं रमायै०। ४ लं लम्बोष्ठ्यै०। ४ वं वरदायै०। ४ शं शशिन्यै०। ४ षं षडायै०। ४ सं सरस्वत्यै०। ४ हं हंसवत्यै०। ४ ळं कालजिह्वायै०। ४ क्षं क्षमावत्यै०। (नमः) इति विन्यस्य राशिन्यासं कुर्यात्।

॥ अथ राशिन्यासः ॥

तत्र ध्यानम्–

रक्तं श्वेतं हरिद्वर्णं पाण्डुचित्रं सितं स्मरेत्।
पिशङ्गपिङ्गलावभ्रूकर्पूरारुणधूमकान् ॥
स्व-स्वनामसमाकाराँस्तुलाकुम्भौ समा कृती ॥

इति ध्यात्वा न्यसेत्। दक्षिणगुल्फे ४ अं आं इं ईं मेषायै०। दक्षिणजानुनि ४ उं ऊं वृषायै०। दक्षिणवृषणे ४ ऋं ॠं ऌं ॡं मिथुनायै०।

दक्षकुक्षौ ४ एं ऐं कर्कटायै०। दक्षस्कन्धे ४ ओं औं सिंहायै०। दक्षशिरोभागे ४ अं अः शं षं सं हं कन्याराश्यै० । वामशिरोभागे ४ कं ४ तुलाराश्यै० वामस्कन्धे ४ चं ४ वृश्चिकाय नमः। वामकुक्षौ ४ टं ४ धनुषे०। वामवृषणे ४ तं ४ मकराय०। वामजानुनि ४ पं ४ कुम्भाय० । वामगुल्फे ४ यं रं लं वं ळं क्षं मीनाय नमः। इति राशिन्यासः।

॥अथ पीठन्यासः॥

तत्र ध्यानम्–

सिताऽसिताऽरुणश्यामहरित्पीतान्यनुक्रमात्।
पुनः पुनः क्रमादेवं पञ्चाशत्स्थानसञ्चयेत्॥
पीठानि संस्मरेद् विद्वान् सर्वकामार्थसिद्धये॥

इति ध्यात्वा, न्यसेत्। ४ अं कामरूपपीठाय नमः। ४ आं वाराणसीपीठाय नमः। ४ इं नेपालपीठाय नमः। ४ ईं पौण्ड्रवर्धनपीठाय नमः। ४ उं पुरस्थिरपीठाय० । ४ ऊं कन्याकुब्जपीठाय०। ४ ऋं पूर्णगिरिपीठाय०। ४ ॠं अर्बुदपीठा०। ४ ऌं आम्रातकेश्वरपी०। ४ ॡं एकाम्रपी० । ४ एं तिस्रोतः- पी० । ४ ऐं कामकोटिपी०। ४ ओं कैलासपी०। ४ औं भृगुनरपी०। ४ अं केदारपी०। ४ अः चन्द्रपुरपी०। ४ कं श्रीपुरपी०। ४ खं ओङ्कारपी०। ४ गं जालन्धरपी०। ४ घं मालवपी०। ४ ङं० कुलान्तपी०। ४ चं देवीकोटिपी०। ४ छं गोकर्णपी० । ४ जं मरुतेश्वरपी० । ४ झं अट्टाहासपी०। ४ ञं विरजापी०। ४ टं राजगृहपी०। ४ ठं महावर्धनी पी०। ४ डं कौलगिरिपी०। ४ ढं एलापुरपी०। ४ णं कालेश्वरपी०। ४ तं जयन्तिकापी०। ४ यं उज्जयिनीपी०। ४ दं चरित्रपुरपी० । ४ धं क्षीरिकापी०। ४ नं हस्तिनापुरीपी०। ४ पं उडमीशपी०। ४ फं प्रयागपी०। ४ बं षष्ठीशपी०। ४ भं मायापुरपी०। ४ मं जलेश्वरपी० । ४ यं मलयगिरिपी०। ४ रं श्रीशैलपी०। ४ लं मरुपी०। वं गिरिवरपी०। ४ शं महेन्द्रपुरपी०। ४ षं वामनपुर पी०।

४ सं हिरण्यपुरपी०। ४ हं महालक्ष्मीपी०। ४ ळं उड्याणपी०। ४ छाया-छत्रपीठाय नमः। इति पीठन्यासः।

एते पीठाः समुद्दिष्टा मातृकारूपमास्थिताः ॥

इति शुद्धमातृकास्थानेषु न्यसनीयाः। इति पूर्णषोढा न्यासः। ज्ञानार्णवे –

षोढा न्यासस्त्वयं प्रोक्तः सर्वत्रैवाह पूजितः।
एवं यो न्यस्तगात्रस्तु सम्पूज्यः सर्वयोगिभिः ॥
नास्त्यस्य पूज्यो लोकेषु पितृमातृमुखो जनः।
स एव पूज्यः सर्वेषां स स्वयं परमेश्वरः ॥
षोढान्यासविहीनं यं प्रणमेदेष पार्वति।
सोऽचिरान्मृत्युमाप्नोति नरकं च प्रपद्यते ॥
षोढान्यासैर्न्यस्तमन्त्रो यदि कुर्यान्नमस्त्रियम्।
अपरीहार्यतः पूज्यां पित्रादौ विदधीयताम् ॥
निजेष्टदेवता बुद्ध्या न तु मानुष उत्थितः।
शुद्धो भूत्वा नमेद्यं यो नो चिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥
श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गः षष्ठ आदितः ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे षष्ठस्तरङ्गः। ६ ॥

॥श्रीः॥

अथ सप्तमस्तरङ्गः

अथ श्रीविद्याप्राणायामत्रयं कृत्वा, योगपीठन्यासं कुर्यात्। तत्र प्राणायामविधिस्तु विहितपद्मासनो मूलाधारार्पितचित्तवृतिः मूलविद्यां स्मरन् ईडया वायुमापूर्य, मूलाधारं प्रापय्य, अङ्गुष्ठानामकनिष्ठाभिः नासापुटे विधृत्य, वायुं कुम्भयित्वा, कुम्भकसमये देवीं स्मरन् मूलविद्यां यथाशक्ति जपित्वा, पिङ्गलया शनैः शनैस्तं वायुं रेचयेद् इत्येकः प्राणायामः। पुनस्तदैव पिङ्गलया वायुमापूर्य, तथैव कुम्भयित्वा, तथैव रेचयेदित्यन्यः। एवं वैपरीत्येन विंशतिवारं षोडश–द्वादशषड्भिर्वा यथाशक्ति जपादौ च प्राणायामान् कुर्यात्। अत्र सर्वत्र प्राणायामेनैव सर्वेषां कर्माधिकारः।

प्राणायामैर्विना यद्यत् कृतं कर्म निरर्थकम्।
अतो यत्नेन कर्तव्याः प्राणायामाः शुभार्थिभिः॥

इत्यगस्त्यवचनेनाकरणनिन्दाश्रुतेरावश्यकोयमिति प्राणायामविधिः। इत्थं प्राणायामं विधाय, मूलविद्यया ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। तद्यथा – शिरसि ४ दक्षिणामूर्ति ऋषये नमः। मुखे ४ पङ्क्तिश्छन्दसे नमः। हृदये ४ श्री महात्रिपुरसुन्दरीदेवतायै नमः। गुह्ये ४ ऐं बीजाय नमः। पादयोः ४ सौः शक्तये नमः। नाभौ ४ क्लीं कीलकाय नमः इति विन्यस्य, ४ मम चतुर्विधपुरुषार्थे जपे विनियोगः। इति कृताञ्जलिर्जपेत्। ततः अङ्गुष्ठयोः ४ ऐं हृदयाय। तर्जन्योः ४ क्लीं शिरसे। मध्यमयोः ४ सौः शिखायै। अनामिकयोः ४ ऐं कवचाय। कनिष्ठिकयोः ४ क्लीं नेत्रत्रयाय। करतलकरपृष्ठयोः ४ सौः अस्त्राय। इति षडङ्गमन्त्रान् अङ्गुष्ठादितलान्तकरयोर्विन्यस्य, हृदयादिष्वपि विन्यस्य, अस्त्रेण तालत्रयपूर्वकं दशदिग्बन्धनं च कुर्यात्। इति ऋष्यादिन्यासः।

॥अथ योगपीठन्यासः॥

तत्रांसद्वयोरुद्वयकल्पितपादचतुष्टयं मुख-नाभिपार्श्वद्वयकल्पितगात्र-चतुष्टयो योगपीठं निजदेहं ध्यात्वा, तत्र योगपीठदेवताः न्यसेत्। तद्यथा –

मूलाधारे ४ मं मण्डूकाय नमः। स्वाधिष्ठाने ४ कां कालाग्निरुद्राय नमः मणिपूरके ४ मूं मूलप्रकृत्यै० ।अनाहते ४ आं आधारशक्त्यै०। हृदये ४ कुं कुर्माय०। तथैव ४ अं अनन्ताय०। ४ वं वराहाय०। दंष्ट्राग्रे पृं पृथिव्यै०। तत्र पृथिव्यां पश्चिमादिविलोमेन ४ इं इक्षुसमुद्राय नमः। ४ मं मदिरासमुद्राय०। ४ घं घृतसमुद्राय० । दुं दुग्धसमुद्राय०। तन्मध्ये ४ अं आं इत्यादि क्षकारान्तमुच्चार्य, ४ नं नवखण्डविराजिताय नवरत्नमयद्वीपाय०। तत्पश्चिमे ४ अं ७ पुं पुष्परत्नाय०। नैऋत्ये ४ ॡ ७ नीं नीलरत्नाय०। दक्षिणे ४ कं ४ वं वैडूर्याय रत्नाय०। आग्नेये ४ चं ४ विं विद्रुमरत्नाय०। पूर्वे ४ टं मौं मौक्तिकरत्नाय०। ईशान्ये ४ तं ४ मं मरकतरत्नाय०। उत्तरे ४ पं ४ वं वज्ररत्नाय०। वायव्ये ४ यं ४ गौं गोमेदिकरत्नाय०। मध्यखण्डे ४ षं ४ पं पद्मरागरत्नाय०। तन्मध्ये ४ स्वं स्वर्णपर्वताय०। तदुपरि ४ नन्दनोद्यानाय०। तन्मध्ये ४ कं कल्पवृक्षेभ्यो०। तन्मध्ये ४ वसन्तादिषड्ऋतुभ्यो०। नन्दनोद्यानपश्चिमे ४ इं इन्द्रियाऽश्वेभ्यो०। तत्पूर्वे ४ इं इन्द्रियार्थगजेभ्यो० ।तन्मध्ये ४ विचित्ररत्नभूमिकायै०। तस्याः पश्चिमादिमध्यान्तं विलोमेन ४ कं कालचक्रेश्वर्यै०। ४ मुं मुद्राचक्रेश्वर्यै०। ४ दें देशचक्रेश्वैर्यै०। ४ रं रत्नचक्रेश्वैर्यै०। ४ गुं गुरुचक्रेश्वैर्ये०। ४ तं तत्त्वचक्रैश्वैर्यै०। ४ ग्रं ग्रहचक्रैश्वर्यै०। ४ मुं मूर्तिचक्रेश्वर्यै०। ततस्तस्यां ४ कं करुणान्तोपरिधये। तदन्तः। ४ स्वं स्वर्णप्राकाराय वज्रालङ्कृताय। तन्मध्ये ४ मं मणिमण्डपाय०। तस्य नैऋत्यदिचतुष्कोणेषु। वामावर्तेन। ४ कां कालरूपिणीशक्त्यै०। ४ दें देशरूपिणीशक्त्यै०। ४ आं आकाशरूपिणीशक्त्यै०। शं ४ शब्दरूपिणीशक्त्यै०। मध्ये ४ सं सङ्गीत-योगिनीभ्यो०। तत्रैव। ४ सं समस्तप्रकटगुप्तसिद्धयोगिनीचक्रेभ्यो नमः। तन्मध्ये। ४ मं मणिमयवेदिकायै०। तस्यां ४ श्वें श्वेतछत्त्रायै०। ४ रं रत्नसिंहासनाय०। इति हृदयएव विन्यस्य देहं पूर्वोक्तसिंहासनरूपं भावयेत्। दक्षिणांस-वामांस-वामोरु-दक्षिणोरु-सर्वाङ्गेषु च वक्ष्यमाणप्रपञ्चप्रेतासनं विन्यस्य, पुनर्दक्षिणांसे। ४ धं धर्माय०। वामांसे ४ ज्ञां ज्ञानाय०। वामोरौ ४ वं वैराग्याय०। दक्षोरौ ४ ऐं ऐश्वर्याय० । मुखे ४ अं

अधर्माय० । वामपार्श्वे ४ अं अज्ञानाय० । नाभौ ४ अं अवैराग्याय० । दक्षपार्श्वे ४ अं अनैश्वर्याय० । इति विन्यस्य । पुनर्हृदये ४ वां वामायै० । ४ मां मायायै० । ४ विं विधायै० । ४ अं अनन्तायै० । ४ पं पद्मायै० । ४ आं आनन्दकन्दायै० । ४ सं संविन्नालाय० । तत्रैव । ४ प्रं प्रकृतिमयपत्रेभ्यो० । ४ विं विकारमयकेसरेभ्यो० । ४ पं पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वसत्त्वरूपायै कर्णिकायै० । तस्यामेव । ४ अं अर्कमण्डलाय० । ४ सों सोममण्डलाय० । ४ वं वह्निमण्डलाय० । इति विन्यस्य, कर्णिकायामेव । ४ सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय० । ४ तं प्रकृत्यात्मने रजसे० । ४ तं मोहात्मने तमसे० । तदुपरि पूर्वादिदिक्षु । ४ अं आत्मने० । ४ अं अन्तरात्मने० । ४ पं परमात्मने० । ४ ह्रीं ज्ञानात्मने० । कर्णिकायां चतुर्दिक्षु । मध्ये । ४ ज्ञां ज्ञानात्मने० । ४ मां मायातत्त्वात्मने० । ४ कं कलातत्त्वात्मने० । ४ विं विद्यातत्त्वात्मने० । ४ पं परतत्त्वात्मने० । इति पश्चिमादि प्रादक्षिण्येन विन्यस्य । ततः केसरेषु । पूर्वाद्यष्टदिक्षु मध्ये । प्रादक्षिण्येन श्रीचक्राधारपीठस्य नवशक्तिं न्यसेत् । तद्यथा – ४ दूत्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः । ४ सुन्दर्यम्बाश्री० । ४ सुमुख्यम्बाश्री० । ४ विरूपाम्बाश्री० । ४ विमलाम्बाश्री० । ४ अन्तर्यम्बाश्री० । ४ बदर्यम्बाश्री० । ४ पुरन्दर्यम्बाश्री० । मध्ये कर्णिकायां ४ पुष्पमर्दिन्यम्बाश्री० । एताः वराऽभयधारिण्यः रक्तवर्णा ध्येयाः । इति नवशक्तीः विन्यस्य, ४ क्लीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः । इति व्यापकं विन्यस्य । तन्मध्ये श्रीचक्रं विभाव्य, ४ समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततरसम्प्रदायकुलकौलनिगर्भरहस्य-पराऽपररहस्ययोगिनीश्रीपादुकाभ्यो नमः । इति सर्वाङ्गे व्यापकं विधाय, ४ प्रथमकूटमुच्चार्य शरीरात्मने नमः । ४ द्वितीयकूटमुच्चार्य बुद्ध्यात्मने नमः । ४ तृतीयकूटमुच्चार्य प्राणात्मने नमः । इति व्यापकत्वेन सर्वाङ्गे विन्यस्य । हृदयत्रिकोणस्य अग्रकोणे ४ ऐं मूलविद्यया वाग्भवकूटमुच्चार्य चतुरस्रपीतवर्णाय कामरूपपीठाय नमः । ४ आग्नेयकोणे ४ क्लीं कामराजकूटमुच्चार्य, अर्धचन्द्रनिभश्वेतवर्णाय जालन्धरपीठाय नमः । ईशानकोणे ४ सौः तृतीयकूटमुच्चार्य षड्बिन्दुलाञ्छितवृत्तधूम्रवर्णाय पूर्णगिरिपीठाय नमः । तन्मध्यस्थबिन्दौ ४ तुरीयविद्यामुच्चार्य, महोड्याणपीठाय नमः । इति

पीठचतुष्टयं विन्यस्य। मध्यस्थबिन्दुचक्रे हिरण्मयसहस्रदलकमलाय नमः। इति विन्यस्य। दक्षांस-पृष्ठ-दक्षिणकर्णपृष्ठ-दक्षललाटभाग-दक्षनेत्रभाग-दक्षचुबुकभागहृदयत्रिकोणेषु वक्ष्यमाणषडासनानि विन्यस्य। ४ अं कं ३६ शिवः शक्त्यादिपृथिव्यात्मने षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपाय श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः योगपीठाय नमः इति सर्वाङ्गे व्यापकं कुर्यात्। ततो मूलविद्यामुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि। इति षट्त्रिंशत्तत्त्वात्मने निजदेहमये महायोगपीठे निजेष्टदेवतां हृदि न्यसेत्। इति देहमयपीठे चिन्तयेत्परदेवताम्। इति योगपीठदेवतान्यासः।

॥ अथ श्रीचक्रन्यासः ॥

तत्र मूलविद्यया एवं ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् कृत्वा, ध्यानं कुर्यात्। तद्यथा – दक्षिणपादाङ्गुष्ठे ओं ऐं ह्रीं श्रीं लं इन्द्राय नमः। दक्षजानुनि ४ रं अग्नये नमः। दक्षपार्श्वे ४ हं यमाय नमः। दक्षिणांसे ४ क्षं निर्ऋतये नमः। वामांसे ४ वं वरुणाय नमः। वामपार्श्वे ४ यं वायवे नमः। वामजानुनि ४ सं सोमाय नमः। वामपादाङ्गुष्ठे ४ हं ईशानाय नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ४ आं ब्रह्मणे नमः। मूलाधारे ४ ह्रीं अनन्ताय नमः। वामजानुनि ४ गं गणेशाय नमः। वामांसे ४ क्षं क्षेत्रपालाय नमः। दक्षजानुनि ४ वं वटुकाय नमः। दक्षांसे ४ यां योगिनीभ्यो नमः। अं आं सौः त्रैलोक्य-मोहनचक्राय नमः। इति सर्वाङ्गे व्यापकत्वेन विन्यस्य, ४ बाह्यचतुरस्ररेखायै नमः। इति व्यापकं विधाय। दक्षांसपृष्ठे ४ अणिमासिध्यै नमः। दक्षिणकराग्रे ४ लघिमासिध्यै नमः। दक्षिणस्फिचि ४ महिमासिध्यै नमः। दक्षिणपादाग्रे ४ ईशत्वसिध्यै नमः। वामपादाग्रे ४ वशित्वसिध्यै नमः। वामस्फिचि ४ प्राकाम्यसिध्यै नमः। वामकराग्रे ४ भुक्तिसिध्यै नमः। वामांसपृष्ठे ४ इच्छासिध्यै नमः। पृष्ठदेशे ४ प्राप्तिसिध्यै नमः। चूडाधः ४ सर्वकामसिध्यै नमः इति दशसिद्धीः विन्यस्य ४ चतुरस्र-मध्यरेखायै नमः। इति व्यापकं कृत्वा पादाङ्गुष्ठद्वये, ४ आं ब्राह्म्यै नमः। दक्षिणपार्श्वे, ४ ईं माहेश्वर्यै नमः। मूर्ध्नि ४ ऊं कौमार्यै नमः।

वामपार्श्वे, ४ ॠं वैष्णव्यै नमः। वामजानुनि, ४ ॡं वाराह्यै नमः। दक्षिणजानुनि, ४ ऐं इन्द्राण्यै नमः। दक्षिणांसे ४ औं चामुण्डायै नमः। वामांसे ४ अं महालक्ष्म्यै नमः। ततः अन्तश्चतुरस्त्ररेखायै नमः। इति व्यापकं कृत्वा। पादाङ्गुष्ठद्वये, ४ द्रां सर्वसङ्क्षोभिण्यै मुद्रायै नमः। दक्षिणपार्श्वे, ४ द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्रायै नमः। दक्षजानुनि, ४ क्लीं सर्वाकर्षिणिमुद्रायै नमः। वामपार्श्वे, ४ ब्लूं सर्ववश्यायै मुद्रायै०। वामजानुनि, ४ सः सर्वोन्मादिन्यै मुद्रायै०। दक्षजानुनि, ४ क्रों सर्वमहाङ्कुशमुद्रायै०। दक्षांसे, ४ हस्‍ख्फ्रें हसौः सर्वत्रिखण्डमुद्रायै०। वामांसे, ४ हसौं सर्वबीजमुद्रायै०। मूर्ध्नि, ४ ह्स्ख्फ्रें ब्क्रं सर्वखेचर्यै मुद्रायै०। वामाङ्गुष्ठद्वये, ऐं योनिमुद्रायै०। इति विन्यस्य। हृदये, अं आं सौः त्रिपुराचक्रेश्वर्यै नमः। तस्यां दक्षिणे, ४ अणिमासिध्यै०। तस्या वामे, ४ द्रां सर्वसङ्क्षोभिणीमुद्रायै०। इति विन्यस्य, ४ एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्यमोहनचक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः। इति व्यापकं कुर्यात्। द्रामिति सर्वसङ्क्षोभिणीमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति श्री प्रथमावरणन्यासः।

ततः ४ ऐं क्लीं सौः सर्वाशापरिपूरचक्राय नमः। इति व्यापकन्यासः। ततः। षोडशदलकमलचक्राय नमः। इति व्यापकं विधाय। दक्षिणकर्णपृष्ठे ४ अकामाकर्षिणि नित्याकलायै नमः। दक्षिणांसे ४ आं बुध्याकर्षिणि नित्याकलायै०। दक्षिणकूर्परे, ४ इं अहङ्काराकर्षिणि नित्याकलायै०। दक्षिण-करपृष्ठे, ४ ईं शब्दाकर्षिणि नित्याकलायै०। दक्षिणोरौ, ४ उं स्पर्शाकर्षिणि नित्याकलायै०। दक्षिणजानुनि, ४ ऊं रूपाकर्षिणि नित्याकलायै०। दक्षिणगुल्फे, ४ ऋं रसाकर्षिणि नित्याकलायै०। दक्षिणपादाग्रे, ४ ॠं गन्धाकर्षिणि नित्याकलायै०। वामपादाग्रे, ४ ऌं चित्ताकर्षिणि नित्या-कलायै०। वामगुल्फे, ४ ॡं धैर्याकर्षिणि नित्याकलायै०। वामजानुनि, ४ एं स्मृत्याकर्षिणि नित्याकलायै०। वामकरे, ४ ऐं नामाकर्षिणि नित्याकलायै०। वामकरपृष्ठे, ४ ओं बीजाकर्षिणि नित्याकलायै०। वामकूर्परे, ४ औं आत्माकर्षिणि नित्याकलायै०। वामांसे, ४ अं अमृताकर्षिणि नित्याकलायै०।

वामकर्णपृष्ठे, ४ अः शरीराकर्षिणि नित्याकलायै० । हृदये, ४ ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेशी चक्रेश्वर्यै नमः । तस्याः दक्षिणे, ४ लं लघिमासिध्यै नमः । तस्य वामे, ४ द्रां द्राविणीमुद्रायै नमः । इति विन्यस्य । एताः गुप्तयोगिन्यः । सर्वाशापूरकचक्रे समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोचारैः सम्पूजिताः सन्तुष्टाः सन्तु नमः । इति व्यापकं कुर्यात् । द्रीमिति सर्वद्राविणीमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति द्वितीयावरणन्यासः ।

ततः ४ ह्रीं क्लीं सौः सर्वसङ्क्षोभणचक्राय नमः । ततः अष्टदलकमलाय नमः । इति व्यापकं विन्यस्य । दक्षजङ्घे, ४ कं ४ अनङ्गकुसुमायै नमः । दक्षजानुनि, ४ चं ४ अनङ्गमेखलायै नमः । दक्षिणोरौ ४ टं ४ अनङ्गमदनायै० । दक्षिणगुल्फे, ४ तं ४ अनङ्गमदनातुरायै० । वामगुल्फे, ४ पं ४ अनङ्गरेखायै० । वामोरौ, ४ यं ३ अनङ्गवेगिन्यै० । वामजानुनि, ४ शं ३ अनङ्गाङ्कुशायै० ।वामजङ्घे, ४ ळं क्षं अनङ्गमालिन्यै० । हृदये, ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रश्वर्यै नमः । तस्याः दक्षिणे, ४ म महिमासिध्यै नमः । तस्याः वामे, ४ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्रायै नमः । इति विन्यस्य । एताः गुप्ततरयोगिन्यः । सर्वसङ्क्षोभणे चक्रे समुद्रादिव्यापकं कुर्यात् । क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति तृतीयावरणन्यासः ।

ततः ह्स्त्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः सर्वसौभाग्यदायकचक्राय नमः । ललाटपार्श्वे । ४कं सर्वसङ्क्षोभिणीशक्त्यै नमः । दक्षकपोले, ४ खं सर्वविद्राविणीशक्त्यै० । दक्षांसे, ४ गं सर्वाकर्षिणीशक्त्यै० । दक्षिणपार्श्वे, ४ घं सर्वाह्लादिनीशक्त्यै० । दक्षोरौ, ४ ङं० सर्वसम्मोहिनीशक्त्यै० । दक्षजङ्घायां, ४ चं सर्वस्तम्भिनीशक्त्यै० । वामजङ्घायां, ४ छं सर्वजृम्भिणीशक्त्यै० । वामोरौ, ४ सर्ववशङ्करिणीशक्त्यै० । वामपादे, ४ झं सर्वरञ्जनीशक्त्यै० । वामांसे ञं सर्वोन्मादनकारिण्यै० । वामकपोले, ४ टं सर्वार्थसाधिनीशक्त्यै० । ललाटवामपार्श्वे ४ ठं सर्वसम्पत्प्रपूरिणीशक्त्यै० । ललाटे, ४ डं सर्वमन्त्रमयीशक्त्यै० । चूडाऽधः, ४ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करीशक्त्यै० । इति विन्यस्य । हृदये, ४ ह्स्त्रैं ह्स्क्लीं ह्स्त्रौः त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वर्यै० । तस्या दक्षिणे, ४ इं ईशित्वसिध्यै नमः । तस्या वामे, ४ ब्लूं सर्ववश्यमुद्रायै० । इति विन्यस्य ।४ एताः

सम्प्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदायकचक्रे समुद्रा इत्यादिव्यापकं कुर्यात्। ४ ब्लूमिति सर्ववश्यमुद्रां प्रदर्शयेत्। इति चतुर्थावरणन्यासः।

ततः ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः सर्वार्थसाधकचक्राय नमः। इति व्यापकं विधाय। ततो बहिर्दशारचक्राय नमः। इति व्यापकं कृत्वा दक्षनेत्रे, ४ णं सर्वसिद्धिदेव्यै०। नासामूले, ४ तं सर्वसम्पत्प्रदादेव्यै०। वामनेत्रे, ४ थं सर्वप्रियङ्करदेव्यै०। वामकुक्षेरुपरि, ४ दं सर्वमङ्गलकारिणीदेव्यै०। वामकुक्षेरधः, ४ धं सर्वकामप्रदादेव्यै०। वामजानुनि, ४ नं सर्वदुःखविमोचिन्यै०। दक्षजानुनि, ४ पं सर्वमृत्युप्रशमनीदेव्यै०। गुदे, ४ फं सर्वविघ्नविनाशिनीदेव्यै०। दक्षकुक्षोरधः, ४ बं सर्वाङ्गसुन्दरीदेव्यै०। दक्षकुक्षोरुपरि, ४ भं सर्वसौभाग्यदायिनीदेव्यै०। इति विन्यस्य, हृदये, ४ ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः त्रिपुराचक्रेश्वर्यै०। तस्य दक्षे, वं वशित्वसिध्यै०। तस्य वामे, ४ सः सर्वोन्मादिनीमुद्रायै नमः। इति विन्यस्य। एताः कुलकौलयोगिन्यः सर्वार्थसाधकचक्रे समुद्राः इत्यादिव्यापकं कुर्यात्। सः सर्वोन्मादिनी मुद्रां प्रदर्श्य, इति पञ्चमावरणन्यासः।

ततः ह्रीं क्लीं ब्लें सर्वरक्षाकरचक्राय नमः। ततो अन्तर्दशारचक्राय नमः। इति व्यापकं विधाय। दक्षनासापुटे, ४ मं सर्वज्ञादेव्यै०। दक्षसृक्किणि, ४ यं सर्वशक्तिदेव्यै०। दक्षस्तने, ४ रं सर्वैश्वर्यप्रदादेव्यै०। दक्षमुष्के ४ लं सर्वज्ञानमयीदेव्यै०। सीविन्यां, ४ सर्वव्याधिविनाशिनीदेव्यै०। वाममुष्के, ४ शं सर्वाधारस्वरूपादेव्यै०। वामस्तने, ४ षं सर्वपापहरादेव्यै०। वामसृक्किणि, ४ सं सर्वानन्दमयीदेव्यै०। वामनासापुटे, ४ हं सर्वरक्षास्वरूपिणीदेव्यै०। नासाग्रे, ४ क्षं सर्वेप्सितफलप्रदादेव्यै०। इति विन्यस्य। हृदये, ४ ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीचक्रेश्वर्यै०। तस्य दक्षिणे, प्रां प्राकाम्यसिध्यै नमः। तस्य वामे ४ क्रों महाङ्कुशमुद्रायै०। इति विन्यस्य। एताः निगर्भयोगिन्यः। सर्वरक्षाकरचक्रे समुद्रा इत्यादिव्यापकं न्यसेत्। क्रोमित्यङ्कुशमुद्रां प्रदर्शयेदिति। इति षष्ठावरणन्यासः।

ततः ४ ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्राय नमः। ततः अष्टारचक्राय नमः। इति व्यापकं विन्यस्य। चुबुकदक्षिणपार्श्वे, ४ अं आं १४ ब्लूं

वशिनीवाग्देवतायै० । कण्ठदक्षभागे, ४ कं ४ ब्लूं ह्लीं कामेश्वरीवाग्देवतायै० । हृदयदक्षभागे, ४ चं ४ मोदिनीवाग्देवतायै० । नाभौ दक्षिणपार्श्वे, ४ टं प्ल्यूं विमलावाग्देवतायै० । नाभौ वामपार्श्वे, ४ तं ४ ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै० । हृदयवामपार्श्वे ४ पं ४ ह्स्ल्व्यूं जयनीवाग्देवतायै० । कण्ठे वामभागे, ४ यं ३ झ्म्र्यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै० । चुबुकवामभागे, ४ शं ५ क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै० । इति विन्यस्य । हृदये, ४ ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरासिद्धचक्रेश्वर्यै नमः । तस्या दक्षिणे, ४ भुं भूसिध्यै० । तस्य वामे, ह्स्ख्फ्रें खेचरीमुद्रायै० । इति विन्यस्य । एताः रहस्ययोगिन्यः सर्वरोगहरचक्रे समुद्रा इत्यादि व्यापकं कुर्यात् । ४ ह्स्ख्फ्रें खेचरीमुद्रां प्रदर्शयेदिति सप्तमावरणन्यासः ।

ततः अन्तरालचक्राय नमः । इति व्यापकं विधाय । हृदयत्रिकोणस्य बहिः दक्षवामदक्षेषु, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं राः । यां रां लां वां सां जं भिन्नेभ्यः कामेश्वरकामेश्वरीबाणेभ्यो नमः । हृदयस्याऽऽग्नेये, धं थं मोहनाभ्यां कामेश्वरकामेश्वरीचापाभ्यां नमः । हृदयस्येशानभागे, ४ आं ह्रीं वशीकरणाभ्यां कामेश्वरकामेश्वरीपाशाभ्यां नमः । हृदयनैऋत्ये, ४ क्रों क्रौं स्तम्भनाभ्यां कामेश्वरकामेश्वरी-अङ्कुशाभ्यां नमः । हृदयस्य वायव्ये, इति विन्यस्य । ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः सर्वसिद्धिप्रदचक्राय नमः । त्रिकोणचक्राय नमः । इति व्यापकं विधाय । त्रिकोणस्याऽग्रकोणे, ४ प्रथमकूटमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिरिपीठे, मित्रेशनाथात्मिके जाग्रद्दशाधिष्ठायके इच्छाशक्त्यात्मकरुद्रात्मशक्तिश्रीकामकामेश्वरीदेव्यै नमः । त्रिकोणस्य वामकोणे, द्वितीयकूटमुच्चार्य, सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथात्मिके स्वप्नदशाधिष्ठायिके ज्ञानशक्त्यात्मकविष्ण्वात्मशक्तिश्रीवज्रेश्वरीदेव्यै नमः । दक्षिणकोणे, ४ तृतीयकूटमुच्चार्य, सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथात्मिके सुषुप्तिदशाधिष्ठायिके क्रियाशक्त्यात्मकब्रह्मशक्तिश्रीभगमालिनीदेव्यै नमः । इति विन्यस्य । हृदये, ४ ह्स्र्यों हसकलरीं ह्स्र्यौः त्रिपुरात्मिकाचक्रेश्वरी देव्यै नमः । तस्याः दक्षिणे । ४ इं इच्छासिध्यै नमः । तस्याः वामे, ह्स्रौं

सर्वबीजमुद्रायै० । इति विन्यस्य एताः पराऽपररहस्ययोगिन्यः सर्वे सिद्धिप्रदे चक्रे समुद्रा इत्यादिव्यापकं कुर्यात् । ह्स्रौं इति बीजमुद्रां प्रदर्शयेदिति अष्टमावरणन्यासः ।

ततः तुरीयविद्यामुच्चार्य सर्वानन्दमयचक्राय नमः । बिन्दुचक्राय नमः । इति व्यापकं विधाय । हृदयत्रिकोणमध्ये बिन्दुमध्ये ४ तुरीयविद्यामुच्चार्य ब्रह्मचक्रे महोड्याणपीठे श्रीचर्यानाथात्मके तुर्य-तुर्यातीतदशाधिष्ठायके परब्रह्मात्मशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नमः । हृदयेव ४ मूलपञ्चदशीमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वर्यै नमः । तस्याः दक्षे, प्रां प्राप्तिसिध्यै नमः । तस्याः वामे, ४ ऐं योगिनीमुद्रायै नमः । इति विन्यस्य । एषा पराऽपररहस्ययोगिन्यः सर्वानन्दमये महाचक्रे परब्रह्मस्वरूपिणी परामृतशक्तिः सर्वमन्त्रेश्वरिसर्वविद्येश्वरि सर्वपीठेश्वरि सर्ववीरेश्वरि सर्वयोगीश्वरि सर्वसिद्धेश्वरि सकल–जगदुत्पत्तिमातृकाः स-चक्राः स-देवताः समुद्राः ससिद्धयः सायुधाः सनाथाः सवाहनाः सपरिवाराः सालङ्काराः सर्वोपचारैः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि परया चाऽपरया परापरपरया च सपर्यया पूजिताः सन्तुष्टास्सन्तु नमः । इति व्यापकन्यासः ॥

॥ अथ संहारचक्रन्यासः ॥

पुनः हृदये एवं मूलमुच्चार्य समस्तचक्रेश्वरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै देव्यै नमः । तस्याः दक्षे, सर्वकामसिध्यै नमः । तस्याः वामे, ४ ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः त्रिखण्डमुद्रायै नमः । इति हृदये एवं विन्यस्य । ऐं योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् । हृदये त्रिकोण एव अग्रादि वामावर्तेन प्रणवत्रितारादिचतुर्थी नमोन्तां नित्यानां मातनित्याविद्याया नित्याषोडकं विन्यस्य चाऽन्तरालेषु पूजाप्रकरणे वक्ष्यमाणप्रकारेण षडङ्गयुवतिः विन्यस्य । बिन्दुचक्रमध्ये वक्ष्य-माणप्रकारेण पञ्चपञ्चिकदेवताः विन्यस्य । दक्षांसपृष्ठ-तत्कर्णपृष्ठशंखतद्भाल तद्दक्षिणनासापुटचुबुकहृदयावधि षड्दर्शनदेवताः विन्यस्य । बिन्दुचक्र एव वक्ष्यमाणप्रकारेण चतुःसमयदेवताः विन्यस्य। तुरीयविद्यया सर्वाङ्गे व्यापकं कृत्वा। ततो मूलविद्यामुच्चार्य, महोड्याणपीठनिलये सर्वचक्रेश्वरीध्यात-पञ्चश्रीपञ्चकोशपञ्चकल्प - लतापञ्च - कामदुघापञ्च - रत्नवृन्दमण्डिताऽऽसनो-

परिस्थित-सर्वदर्शनसेवितषडङ्गयुवतीस्तु चतुःसमयदेवताः पूजिताः ममसौ-भाग्य-जनन-महामोक्षप्रदशून्याऽशून्यविवर्जितसशक्तिसच्चिदानन्द-परब्रह्म-श्रीमन्महा-त्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इति मूर्धादिपादपर्यन्तं त्रिव्याषकं कुर्यात्। ततो ब्रह्मरन्ध्रे स्वगुरुपादुकां विन्यस्य। मूलाधारे स्वगुरुकृतस्वनाम विन्यस्य। तत्रैव महाकामकलाध्यानं कुर्यात्। इति संहारचक्रन्यासः।

॥अथ सृष्टिचक्रन्यासः॥

तत्र शिरसि ४ त्रिकोणं विभाव्य ओं ऐं ह्रीं श्रीं तुरीयाविद्यामुच्चार्य, सस्वानन्दमयमहाचक्राय नमः। बिन्दुचक्राय नमः। इति व्यापकं विन्यस्य। तत्र शिरस्त्रिकोणस्थबिन्दौ तुरीयविद्यामुच्चार्य, ब्रह्मचक्रे श्रीमहोड्याणपीठे इत्यादिपूर्ववत् विन्यस्य। भ्रूमध्ये। मूलविद्यामुच्चार्य प्राग्वत् तामेव चक्रे विन्यस्य। तद्दक्षिणवामपार्श्वयोः। प्राप्तिसिद्धिसर्वकामसिद्धियोनिमुद्रां त्रिखण्डा-मुद्रां प्राग्वत् विन्यस्य ४ एषा परापराऽतिरहस्ययोगिन्यः सर्वानन्दमये महाचक्रे इत्यादि प्राग्वद् व्यापकं विदध्यात्। ऐं योनिमुद्रां दर्शयेत्। इति बिन्दुचक्रन्यासः।

ततः शिरस्त्रिकोणस्य पृष्ठभागे रेखात्रयं विभाव्य, तत्र पूजाप्रकरणे वक्ष्यमाणगुरुपङ्क्तित्रयं न्यसेत्। ततो मातृकायाः षोडशस्वरन्यासस्थानेषु प्रणवत्रितारादिचतुर्थिनमोन्त-तन्नित्यानामान्त-तन्नित्याविद्यया नित्याषोडशकं विन्यस्य। ४ ह्स्रैः ह्सक्लीं ह्स्रौः सर्वसिद्धिप्रदचक्राय नमः। अन्तरालचक्राय नमः। इति व्यापकं विधाय। त्रिकोणाऽष्टकोणयोरन्तरालबुध्या प्रागुक्ताः आयुधदेवताः न्यसेत्। तद्यथा-दक्षनेत्रे, ४ द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः जं भिन्नेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः। वामनेत्रे, यां रां लां वां सां आं जंभिन्नेभ्यो नमः। कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः। दक्षभ्रुवि, ४ धं मोहनाय कामेश्वरपाशाय नमः। वामभ्रुवि, ४ यं मोहनाय कामेश्वरीचापाय नमः। दक्षकर्णे, ४ अं वशीकरणाय नमः। कामेश्वरपाशाय नमः। वामकर्णे, ४ ह्रीं वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः। दक्षनासायां ४ क्रों स्तम्भनाय कामेश्वराङ्कुशाय नमः। वामनासायां, ४ क्रों स्तम्भनाय कामेश्वर्यङ्कुशाय नमः। इत्यायुधदेवताः विन्यस्य। त्रिकोणस्य,

कोणत्रये, पूर्वोक्तकामेश्वर्यादिदेवीत्रयं प्राग्वद् विन्यस्य हृदये प्राग्वद् त्रिपुराम्बाचक्रेश्वरीं विन्यस्य। तद्दक्षवामयोरिच्छासिद्धिबीजमुद्रां च विन्यस्य ४ एताः परापररहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे समुद्रेत्यादि-व्यापकं कुर्यात्। ततः ४ ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्राय नमः। अष्टार-चक्राय नमः। इति व्यापकं विन्यस्य शिरःपुरोभागमारभ्य, मुण्डमाला-क्रमेणासुस्थानेषु पूर्वोक्तवशिन्यादिवाग्देवताष्टकं विन्यस्य मणिपूरकचक्रे पूर्वोक्तां त्रिपुरासिद्धाचक्रेश्वरीं विन्यस्य। तद्दक्षवामयोः भुक्तिसिद्धिं खेचरी-मुद्रां विन्यस्य। ४ एताः रहस्ययोगिन्यः सर्वरोगहरचक्रे समुद्रा इत्यादि व्यापकं न्यसेत्। ततः ह्रीं क्लीं ब्लें सर्वरक्षाकरचक्राय नमः। इति व्यापकं विन्यस्य दक्षनेत्रमूल-तदपाङ्ग-दक्षश्रोत्र-ततः पृष्ठ-चूडाकूपस्य, दक्षपार्श्व-वामश्रोत्र - पृष्ठवामश्रोत्र-वामापाङ्गवामनेत्रमूलेषु दशसु स्थानेषु प्रागुक्तसर्वज्ञादिशक्तीः विन्यस्य स्वाधिष्ठाने च पूर्वोक्तां त्रिपुरमालिनीं चक्रेश्वरीं विन्यस्य। दक्षवामयोः प्राकाम्यसिद्धिमहाङ्कुशमुद्रां च प्राग्वद्-विन्यस्य ४ एताः निगर्भयोगिन्यः सर्वरक्षाकरचक्रे समुद्रा इत्यादि व्यापकं न्यसेत्। ततः ४ ह्स्रैः ह्स्क्लीं ह्स्रौः इति व्यापकं विन्यस्य कण्ठे, विशुद्धचक्रे षोडशदलेषु एकस्मिन् एका शक्तिः, इत्येवं क्रमेण सत्यं मां शक्तिपर्यन्तं विन्यस्य तद्दक्षवामयोः वशित्वसिद्धिमुन्मादिनीमुद्रां च प्राग्वद् विन्यस्य। एताः कुलकौलयोगिन्यः सर्वार्थसाधकचक्रे समुद्राः इत्यादि व्यापकं न्यसेत्। ४ ह्स्रैः ह्स्क्लीं ह्स्रौः सर्वसौभाग्य-दायक-चक्राय नमः, इति व्यापकं विन्यस्य हृदये, अनाहतचक्रे द्वादशदलकमले दशदलेषु सर्वसङ्क्षोभणादिदशशक्तीः विन्यस्य अन्तिमदलद्वये प्रतिदलं शक्तिद्वयमिति। शिवशक्तिचतुष्टयं न्यसेदिति चतुर्दशशक्तिर्विन्यस्य, ऊरुद्वये पूर्वोक्तां त्रिपुरवासिनीं चक्रेश्वरीं प्राग्वद् विन्यस्य तद्दक्षवामयोरीशत्वसिद्धिं वश्यमुद्रां च प्राग्वद् विन्यस्य ४ एताः सम्प्रदाययोगिन्यः सर्वसौभाग्यदायकचक्रे स-मुद्राः इत्यादि व्यापकं न्यसेत्। ६। ततः ४ ह्रीं क्लीं सौः सर्वसङ्क्षोभणचक्राय नमः। इति व्यापकं विन्यस्य। पृष्ठवंशवामपार्श्वयोः उदरदक्षिणपार्श्वेषु स्थानेषु पूर्वोक्तानङ्ग-कुसुमाद्याश्चतुःशक्तिर्विन्यस्य पृष्ठवामपार्श्वयोर्मध्ये

वामपार्श्वोदरयोर्मध्ये उदरदक्षिणपार्श्वयोर्मध्ये दक्षिणपार्श्वपृष्ठवंशयोर्मध्ये च स्थानचतुष्टये अनङ्गरेखादि चतुःशक्तिर्विन्यस्य जानुद्वये, पूर्वोक्तां त्रिपुरसुन्दरिचक्रेश्वरीं पूर्ववद् विन्यस्य तद्दक्षवामपार्श्वयोर्महिमासिद्धिः आकर्षिणीमुद्रां च विन्यस्य एताः ४ गुप्ततरयोगिन्यः सर्वसङ्क्षोभणकर-चक्रे समुद्राः इत्यादि व्यापकं न्यसेत्। ततः ऐं क्लीं सौः सर्वाशापरिपूर-चक्राय नमः। इति व्यापकं विन्यस्य, स्वाधिष्ठाने षड्दलकमले स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन पञ्चदलेषु प्रतिदलं शक्तित्रयं अन्तिमदले त्वेकां शक्तिमिति कामाकर्षिण्यादिषोडशशक्तीर्विन्यस्य जङ्घयोः पूर्वोक्तां त्रिपुरेश्वरीं विन्यस्य दक्षवामभागयोः लघिमासिद्धिद्राविणीमुद्रां च विन्यस्य, ४ एताः गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके समुद्राः इत्यादि व्यापकं न्यसेत्। ।८। ततः ४ अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्राय नमः। इति व्यापकं विन्यस्य। अन्तश्चतुरस्त्ररेखायै नमः। इति व्यापकं विन्यस्य मूलाधारे चतुर्दलकमले च पूर्वदलेशानान्तरालयोर्मध्ये पश्चिमदलनैऋत्यान्तरालयोर्मध्ये च पूर्वोक्त-सर्वसङ्क्षोभणादिमुद्रादशकं न्यसेत्। ततः ४ चतुरस्त्रमध्यरेखायै नम इति व्यापकं विन्यस्य, कक्षजङ्घायां दिग्विधिक्रमेण पूर्वोक्तब्रह्माद्यष्टशक्तिं न्यसेत्। ततः ४ बाह्यचतुरस्त्ररेखायै नमः। इति व्यापकं विन्यस्य। वामजङ्घायां दिग्विधिक्रमेण पूर्वोक्त–अणिमादिसिध्यष्टकं विन्यस्य, दक्षपादे प्राप्तिसिद्धिं वामपादे सर्वकामसिद्धीश्च विन्यस्य। पादद्वये प्राग्वत् त्रिपुराचक्रेश्वरीं विन्यस्य। तद्दक्षवामयोरणिमा-सिद्धिसर्वसङ्क्षोभिणीमुद्रां च विन्यस्य। ४ एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्यमोहन-चक्रे समुद्राः इत्यादि व्यापकं विन्यस्य। सरश्मिकश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी अभेदेन स्वात्मानं ध्यायेत्। इति सृष्टिचक्रन्यासः।

॥ अथ स्थितिचक्रन्यासः ॥

स च विद्याचक्रे चक्रेश्वरित्यङ्गत्रयात्मकः। तत्प्रथमं सम्प्रदायात् पूर्ववत् करशुद्धिं विधाय अं आं सौः करशुद्धिं विधाय, तदैव तां विन्यस्य, तदैव ह्रीं क्लीं आत्मरक्षां कृत्वा न्यासमारभेत्।

तत्रादौ त्रिविधमूलविद्यान्यासः। सा यथामूर्ध्नि प्रथमकूटं नमः। गुह्ये, ४ द्वितीयकूटं नमः। हृदये, ४ तृतीयकूटं नमः। दक्षनेत्रे ४ प्रथम-

कूटाय नमः। वामनेत्रे, ४ द्वितीयकूटाय नमः। फाले ४ तृतीयकूटाय नमः। दक्षकर्णे ४ प्र० कू०। वामकर्णे, ४ द्वि० कू०। मुखे ४ तृ० कू०। दक्षांसे, ४ प्र० कू०। वामांसे, ४ द्वि० कू०। पृष्ठे, ४ तृ० कू०। दक्षजानुनि, ४ प्र० कू०। वामजानुनि, ४ द्वि० कू०। नाभौ, ४ तृतीय-कूटाय नमः। इति मूलविद्याकूटन्यासः।

॥ अथ अक्षरन्यासः ॥

मूर्ध्नि, ४ कं नमः। गुह्ये, ४ एं नमः। हृदये ४, ईं नमः। दक्षनेत्रे ४ लं नमः। वामनेत्रे, ४ ह्रीं नमः। फालनेत्रे ४ ४ हं नमः। दक्षकर्णे ४ सं०। वामकर्णे, ४ कं मुखे, ४ हं०। दक्षभुजे, ४ लं नमः। वामभुजे, ४ ह्रीं नमः। पृष्ठे, ४ सं०। दक्ष जानुनि, ४ कं०। वामजानुनि, ४ लं०। नाभौ, ४ ह्रीं०। इत्यक्षरन्यासः।

समस्तमूलविद्यां प्रणवत्रितारादिनमोन्तान्मूर्ध्यादिनाभ्यन्तं पञ्चदशपूर्वोक्तेषु प्रत्येकं न्यसेदिति त्रिविधा। पादयोः, ४ अं आं सौः नमः। जङ्घयोः, ४ ऐं क्लीं सौः नमः। जान्वोः, ४ ह्रीं क्लीं सौः नमः। स्फिच्योः, ४ हस्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः नमः। लिङ्गाग्रे ४ ह्रीं क्लीं ब्लें नमः। मूलाधारे ४ ह्रीं श्रीं सौः नमः। इति मूर्तिविद्यां विन्यस्य।

तस्यां ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः नमः। इत्यावाहनीविद्यां विन्यस्य हस्वलरडैं हस्वूलरडीं ह्स्वूलरडौं नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ततो ४ मूलविद्यया मूर्धादि-पादान्तं पादादिहृदयान्तं च व्यापकं न्यसेत्। ततो मूलधाराऽधस्थितोर्ध्वमुख-रक्तसहस्रदलकमलकर्णिकायां ४ अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्राय नमः। मूलाधारे, ४ ऐं क्लीं सौः सर्वाशापरिपूरचक्राय नमः। स्वाधिष्ठाने ४ ह्रीं क्लीं सौः सङ्क्षोभणचक्राय नमः। मणिपूरके ४ ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः सर्वसौभाग्यदायकचक्राय नमः। अनाहते, ४ ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौं सर्वार्थसाधकचक्राय नमः। विशुद्धचक्रे, ४ ह्रीं क्लीं सर्वरक्षाकरचक्राय नमः। लम्बिकाग्रे ४ ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्राय नमः। आज्ञायां ४ ह्स्रैं हसक्लीं हस्रौः सर्वसिद्धिप्रदाय चक्राय नमः। पादौ, ४ मूलपञ्चदशी-मुच्चार्य, सर्वानन्दमयश्रीचक्राय नमः। इति नव चक्राणि विन्यस्य नवचक्रेश्वरी-न्यासं कुर्यात्।

तत्र मूलाधाराऽधः प्राग्न्यस्तत्रैलोक्यमोहनचक्रे ४ अं आं सौः त्रिपुराचक्रेश्वर्यै नमः। मूलाधारस्थसर्वाशापरिपूरचक्रे ४ ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरीचक्रेश्वर्यै नमः। स्वाधिष्ठानस्थितसर्वसङ्क्षोभणचक्रे ४ ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वर्यै नमः। मणिपूरकस्थितसर्वसौभाग्यदायकचक्रे ४ ह्सैं ह्सक्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वर्यै नमः। अनाहतस्थसर्वार्थसाधकचक्रे ४ ह्सैं ह्सक्लीं ह्सौः त्रिपुराश्रीचक्रेश्वर्यै नमः। विशुद्धस्थितसर्वरक्षाकरचक्रे, ४ ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीचक्रेश्वर्यै नमः। लम्बिकाग्रस्थितसर्वरोगहरचक्रे ४ ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुरसिद्धाचक्रेश्वर्यै नमः। आज्ञाचक्रस्थसर्वसिद्धिप्रदे चक्रे ४ ह्सैं ह्सक्लीं ह्सौः त्रिपुराम्बिकाचक्रेश्वर्यै महाबिन्दुस्थबिन्दुचक्रे, ४ मूलं पञ्चदशाक्षरीमुच्चार्य, महात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वर्यै श्रीपादुकायै नमः। इति विन्यस्य, तत्तच्चक्रं परस्परं ससंज्ञं तत्तच्चक्रेश्वर्यधिष्ठितं सम्यक् ध्यात्वा, पुनः, करशुद्धिं विधाय, त्रिपुरसुन्दर्यात्मरक्षां कृत्वा पूर्वोक्तषडङ्गं विन्यस्य, वाग्भवं मूलाधारे, ४ कामराजं। हृदये। ४ तृतीयं भ्रूमध्ये। ४ तुरीयविद्यां ब्रह्मरन्ध्रे च विन्यस्य, ४ समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततर-सम्प्रदाय-कुलकौल-निगर्भ-रहस्याऽतिरहस्य-परापररहस्यश्रीचक्रयोगिनी श्रीपादुकाभ्यो नम इति स्वशरीरं श्रीचक्ररूपं ध्यायन्, व्यापकं कुर्यात्। इति स्थितिश्रीचक्रन्यासः।

॥ अथ श्रीचक्रन्यासफलम् ॥

तत्र रुद्रयामले –

य एवं विन्यसेद् देहे साधकः स्थिरमानसः।
विमुच्य मानुषं भावं स सद्यः शिवतां व्रजेत् ॥ १॥
त्रिकालं धारयेद् यस्तु तस्य सर्वाङ्गसङ्गतम्।
सततं भासते देवि ! समस्तं योगिनीपदम् ॥ २॥
धरणीक्षेत्रतां याति यावद् द्वादशयोजनम्।
एतत्ते कथितं भद्रे ! न्यासं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ ३॥

शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत्।
अद्रेभ्यः साधकेभ्यो वा बान्धवेभ्यो न दर्शयेत्॥४॥
दत्तं चेत् सिद्धिहानिः स्यादित्याज्ञा शाङ्करी मता।
मन्त्राः पराङ्मुखाः यान्ति क्रुद्धा भवति सुन्दरी॥५॥
अशुभं च भवेत्तस्य तस्माद् यत्नेन गोपयेत्॥६॥

इति त्रिविधश्रीचक्रन्यासः।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गस्सप्तमोऽगमत्॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना विद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे सप्तमस्तरङ्गः॥७॥

॥ श्रीः ॥

अथाष्टमस्तरङ्गः

॥ अथ करशुध्यादिन्यासः ॥

तत्र प्रथमं, प्रागुक्तप्रथमचक्रेश्वरीविद्यया प्राग्वत् करयोः स्थितिक्रमेण मध्यमादितलान्तं विन्यस्य, आसनन्यासं कुर्यात् । स च द्विविधः ।

१. चतुरासनन्यासः । २. षडासनन्यासश्चेति ।

तत्रादौ **चतुरासनन्यासः** । स यथा पादयोः, ४ ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यासनाय नमः । जङ्घयोः, ४ ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनी सर्वचक्रासनाय नमः । जान्वोः ४ ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः । मूलाधारे ४ ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमः । इति चतुरासनन्यासः ।

॥ अथ षडासनन्यासः ॥

तत्र पादयोः, ४ अं आं सौः त्रिपुरासुधार्णवासनाय नमः । ४ ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरीपोताऽम्बुजासनाय नमः । ऊर्वोः ४ ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यात्मासनाय नमः । स्फिच्योः, ४ ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनीसर्वचक्रासनाय नमः । गुदे, ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः त्रिपुराश्रीसर्वमन्त्रासनाय नमः । मूलाधारे, ४ ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनीसाध्यसिद्धासनाय नमः । इति षडासनन्यासः ।

॥ अथ षडङ्गन्यासः ॥

स च त्रिविधः । १. रक्षाषडङ्गन्यासो २. मूलविद्याषडङ्गन्यासः ३. षडङ्गयुवतिन्यासश्चेति ।

तत्रादौ रक्षाषडङ्गन्यासः । सा यथा – ४ ऐं क्लीं सौः नमस्त्रिपुरसुन्दरि मां रक्ष रक्ष; हृदयाय नमः । एवं षडङ्गेषु तत्तन्मुद्रया सह तत्-तत्-मन्त्रेण सह न्यसेत् ।

॥ अथ मूलषडङ्गन्यासः ॥

स च मूलकूटत्रयस्य द्विरावृत्या षडङ्गन्यासस्थानेषु प्राग्वत् न्यासो ज्ञेयः। षोडशार्णोपासकैस्तु, आद्यबीजपञ्चकेन हृदयम्। तदुत्तरबीजत्रयेण शिरः। तदूर्ध्वगतकूटत्रयेण शिखादिनेत्रान्तमङ्गत्रयम्। अन्तिमबीजपञ्चकेन अस्त्रमिति मूलषडङ्गन्यास कार्यः।

॥ अथ षडङ्गयुवतिन्यासः ॥

स च द्विविधः। बालामूलविद्ययोर्योगभेदात्। तत्रादौ बालायोगन्यासः। तत्र ४ ऐं सर्वज्ञायै हृदयाय नमः। ४ क्लीं नित्यतृप्तायै शिरसि। ४ सौः अनादिबोधायै शिखायै। ४ ऐं स्वतन्त्रायै कवचं। ४ क्लीं नित्यमलुप्तायै नेत्रत्रयाय। ४ सौः अनन्तायै अस्त्राय।

॥ अथ मूलषडङ्गयुवतिन्यासः ॥

तत्र ४ प्रथमकूटं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीसर्वज्ञशक्तिधाम्ने हृदयाय नमः। ४ द्वितीयकूटं श्रीमहा०। नित्यतृप्ति०। शिरसि। ४ तृतीयकूटं श्रीमहा० अनादिबोध० शिखायै। पुराद्यकूटं ४ श्रीमहा० स्वतन्त्रश० कवचाय हुम्। ४ द्वितीयकूटं श्रीमहानित्यमलुप्तशक्ति ० नेत्रत्रयाय०। ४ तृतीय० श्रीमहा० अनन्तशक्ति० अस्त्राय फट्। इति षडङ्गयुवतिन्यासः।

॥ अथ कामकलापारम्पर्यन्यासः ॥

तत्र प्रथमं प्राग्वत्। स्वशिरसि गुरुपादुकां ध्यात्वा, सम्पूज्य, प्रणम्य दक्षांसे, ४ प्रथमकूटं हंसः प्रकाशचरणाभ्यां नमः। वामांसे, ४ द्वितीयकूटं सोऽहं विमर्शचरणाभ्यां नमः। हृदये, ४ तृतीयकूटं हं सः सोऽहं प्रकाशविमर्शचरणाभ्यां नमः। मूर्ध्नि ४ तुरीयविद्यामुच्चार्य, हं सः शिवः सोऽहं निर्वाणाभ्यां नमः। इति कृताञ्जलिः चरणचतुष्टयं प्रणम्य। इति कामकलापारम्पर्यन्यासस्य कामेश्वरी ऋषि। पङ्क्तिश्छन्दः। परमसंवित्कला-

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीदेवता। श्रीपरदेवता प्रसादसिध्यर्थे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, न्यसेत्। आं इत्यादि षड्दीर्घस्वरैः करषडङ्गन्यासं कृत्वा प्रणवसम्पुटितया कामकलारूपया श्रीमूलविद्याव्यापकं विन्यस्य, ध्यानं कुर्यात्। तद्यथा –

प्रकाशमध्यस्थितविश्वरूपां वराऽभये सन्दधतीं त्रिनेत्राम्।

सिन्दूरवर्णामतिकोमलाङ्गीं मायामयीं तत्त्वमयीमुपास्ते॥१॥

इति ध्यात्वा, मूलादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं श्रीमूलपञ्चदशाक्षरीं प्रगुक्तरूपां ध्यात्वा, तस्याः एकैकाक्षरलयेन तुर्यस्वररूपां अन्तिमकलां ब्रह्मरन्ध्रगतामवशेषयेत्। ततस्तामेव पञ्चदशाक्षरगर्भां स्वात्मानुभवरूपसच्चिदानन्दरूपिणींतुरीयस्वरत्वेन परिणतां कामकलां नाभौ ध्यायन्, न्यसेत्। तत्र नाभौ ४ इं नमः इत्यङ्गुष्ठतर्जनिमध्यमाभ्यां न्यसेत्। ततो नाभेर्वामिपार्श्वे, ४ सच्चिदानन्दपरमसंवित्। ईं नमः। वामे दक्षे, ४ सच्चिदानन्दपरमसंवित्। ईं नमः इत्येतद् द्वयं मध्यमानाङ्गुष्ठे न्यसेत्। तत्तच्चरणचतुष्टयन्यासः। तत्र शिरसि त्रिकोणस्याग्रकोणे ४ ईं प्रथमकूटं हं सं प्रकाशचरणाभ्यां नमः। वामकोणे, ४ ईं द्वितीयकूटं सोऽहं विमर्शचरणाभ्यां नमः। दक्षकोणे, ईं तृतीयकूटं हं सः सोऽहं प्रकाशविमर्शचरणाभ्यां नमः। मध्ये तुरीयविद्यामुच्चार्य, ४ हं सः शिवः सोऽहं निर्वाणचरणाभ्यां नमः। इति चरणचतुष्टयं शिवशक्त्यात्मक-दक्षिण-वाम-करधृत-सङ्घट्टमुद्रया विन्यस्य। त्रिकोणपृष्ठरेखायां। सकलानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः। निष्कलानन्दनाथ०। ४ नवात्मानन्दनाथ०। ४ अक्रूरानन्दनाथ०। इति गुरुचतुष्टयं पङ्क्तिक्रमेण स्वदक्षिणादिवामान्तं विन्यस्य। शिरसि त्रिकोणमध्ये ४ ईं मर्मसंवित्कलाश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। मुखमण्डले, ४ ईं स-परार्धकलानन्दनाथोर्ध्वबिन्दुवक्त्राय नमः। स्तनद्वये, ४ ई

स-परार्धकलानन्दनाथोर्ध्वबिन्दुद्वयस्तनाय नमः। इत्येतद् द्वयं अङ्गुष्ठ-मध्यमाऽनामिकाभिः विन्यस्य। योनिस्थाने, ४ ईं स-परार्धकलानन्द-नाथव्यञ्जितायै योनये नमः। इति योनिमुद्रया न्यसेत्। ततः प्रागुक्त-ऋष्यादिन्यासान् षडङ्ग-कर-ऋष्यादिक्रमेण वैपरीत्येन प्रथमं षडङ्ग-न्यासः। पश्चात् करन्यासः। पश्चाद् ऋष्यादीति विन्यस्य। पूर्वोक्तभगवती-रूपां स्वात्मानं ध्यात्वा, यथाशक्तिकामकलाविद्यां जपेदिति कामकला-पारम्पर्यन्यासः।

॥ अथ अन्तः कामकलान्यासः ॥

स च परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीभेदात् चतुर्विधः। तत्रादौ परा-न्यासः। सा यथा— ब्रह्मरन्ध्रे अरुणाऽधोमुखसहस्रदलकमलकर्णिकायां अरुणं पूर्णचन्द्रमण्डलं विभाव्य; तन्मध्ये, उद्यदादित्यसङ्काशं स्व-शिखा-मूलाग्रं शृङ्गाटं ध्यात्वा; तदन्तर्गतमरुणादिक्रमेण समस्ताक्षरमुकुलासनं वाग्भवं ध्यात्वा; तन्मध्ये, ह क्ष पार्श्वमादिवर्णकदम्बकं दीप्तमवर्णरूप-मनुत्तरमनन्तरं रहस्यात्मकं विचिन्त्य; तन्मध्ये, उद्यद्द्युतिं बिसतन्तुनिभासिता-हार्धकलारूपिणीमकुलकुण्डलीं मूलशृङ्गाटामध्यपर्यन्तमच्छिन्नां महाकामकाष्ठा-ममृतकुण्डलिनीं ध्यात्वा; मूलाधारे, चतुर्दलकमलकर्णिकायामपि वह्निमण्डले त्रिकोणस्याऽग्रकोणाऽग्रं पूर्ववत् शृङ्गाटं ध्यात्वा; तदपूर्ववद्वाग्भवं कुलासनं विभाव्य; तत्र पूर्वोक्तमनस्कं विचिन्त्य; तन्मध्यादुद्यन्तिपरार्धकलामयी-मग्निकुण्डलिनीं कामकलां ज्वलदग्निनिभां मध्यमार्गं प्रविश्य, ग्रन्थिसञ्चयं भित्वा, तत्कुलपदादूर्ध्वं प्राप्तां ध्यात्वा; अकुलाम्बुधिमध्यगतदण्डा-कारतरदण्डलिंगेन प्रवेशयित्वा; तयोरमृताऽचलकुण्डलिन्यो योनिलिङ्ग-रूपयोः मथनसम्भवैः निरन्तरनिविडश्रवदरुणामृतपूरैरात्मानं शक्तिं ध्यात्वा, पूरयित्वा; तयोः सामरस्यादिकनादरूपिणीं पराशक्तिं आत्मानं च विभावयेत्। इति परान्यासः।

अन्तरलक्षणं तु भैरवयामले –

तरस्थं तरमध्यस्थं तरस्थन्तरमध्यगम्।
तरंतरङ्गमध्यस्थं यो जानाति स कौलिकः॥१॥
शीर्ष-पाणि-चरणैर्विवर्जितं द्व्यक्षरं भवरुजापहं परम्।
यस्य हृत्कुहरगं सुवर्तते तेन मृत्युरपि भस्मसात्कृतः॥२॥
शैवं चैव तथा शाक्तं सामरस्यं तु मध्यमम्।
एकीकृत्य यदा काले तदा तद्वर्णमुत्तमम्॥३॥
शून्यात् प्रसरमुत्पन्नं प्रसरोत्तमकालकम्।
अकालात्तत्त्वनुत्पन्नं विश्वं यत्पञ्चधा स्थितम्॥४॥
ध्यानात्स्थानविहीनो यो रूपोच्चारविवर्जितः।
अनाहतोन्मनन्यन्तर्मुखान्मुखपदे स्थितः॥५॥
ध्यानत्रयाद् विरहितो योगेशानां मुखे स्थितः।
सत्यं तु कथितं ताभिः स्वयमुच्चरते तु सः॥६॥
शून्याच्छम्भुस्ततः शक्तिः शक्तेर्धामत्रयात्मकम्।
प्रभवेच्च ततः सर्वमादिवर्णकदम्बकम्॥७॥
अनुत्तरं तदेवोक्तं सद्यः कौलिकसिद्धिदम्।
तरहं च तदेव स्याच्चन्द्रभास्करमध्यगम्॥८॥
तकारस्योनधामस्थाद्यो रेफः स तु भास्करः।
दण्डमद्रमतैर्वह्निरेकीभूतं तदात्मकम्॥९॥ इति।

॥अथ पश्यन्तीन्यासः॥

तत्र प्रागुक्तकुलपद्मे ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मरसभरितमाद्यवर्णकदम्बकं ध्यात्वा; तत्सामरस्यादेकादशरूपं पश्यन्तीरसभरितं स्मृत्वा, न्यसेत्। तत्र शिरसि स्वाऽभिमुखाग्रं त्रिकोणं विभाव्य; तस्य अग्रादिवामावर्तेन

वामरेखाग्रादिदक्षिणरेखाग्रपर्यन्तं त्रिकं पञ्चकं त्रिकमिति क्रमेण वामाऽऽद्येकादशकलाः न्यसेत्। तद्यथा –

४ वामायै०। ४ ज्येष्ठायै०। काद्यै नमः। इति वामरेखायाम्। ४ अम्बिकायै०। ४ इच्छायै०। ४ ज्ञानायै०। क्रियायै०। ४ शान्तायै०। इति पृष्ठरेखायाम्। ४ अकारात्मिकायै०। ४ हकारात्मिकायै०। ४ अहरसात्मिकायै०। इति दक्षिणरेखायाम्। ४ इति पश्यन्तीन्यासः।

॥ अथ मध्यमान्यासः ॥

स च द्विविधः। सूक्ष्म-स्थूलभेदात्। तत्र ब्रह्मरन्ध्रे, ४ अनच्कात्मने अविक्लवनादाय नमः। ललाटे ४ अकारात्मने शून्यनादाय नमः। भ्रूमध्ये, ४ अं बिन्दुद्वयात्मने स्पर्शनादाय नमः। लम्बिकाग्रे, ४ षट्कोणात्मने नादनादाय नमः। विशुद्धौ, ४ अर्धचन्द्रात्मने ध्वनिनादाय नमः। हृदये, ४ वृत्तात्मने बिन्दुनादाय नमः। नाभौ, ४ एकारात्मने शक्तिनादाय नमः। स्वाधिष्ठाने, ४ इन्द्रात्मने नमः। मूलाधारे, ४ प्राणत्मने अक्षरनादाय नमः। इति सूक्ष्ममध्यमान्यासः।

॥ अथ स्थूलमध्यमान्यासः ॥

तत्र ब्रह्मरन्ध्रे, ४ अं इं उं ऋं ऌं नमः। ललाटे, ४ एं ऐं ओं औं नमः। भ्रूमध्ये, ४ हं यं रं वं लं नमः। लम्बिकाग्रे, ४ ङँ ङं ञं णं नं मं नमः। विशुद्धौ, ४ कं चं टं तं पं नमः। हृदि, ४ खं छं ठं थं फं नमः। नाभौ, ४ घं झं ढं धं मं नमः। स्वाधिष्ठाने, ४ गं जं डं दं बं नमः। मूलाधारे ४ शं षं सं नमः। इति मध्यमान्यासः।

॥ अथ वैखरीन्यासः ॥

तत्र षडाधारं गुणत्रयेण त्रिधा विभज्य; त्रिबीजसङ्गतं कुर्यात्। तद्यथा – यथोक्तरूपाणि मूलाधाराद्याऽऽज्ञान्तानि षड्चक्राणि ध्यात्वा; तत्र वसबलाब्जयोः मूलविद्यावाग्भवं विद्युत्प्रभं विचिन्त्य, तद्दलेषु

स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन तद्वर्णान् शिवशक्तियोगेन न्यसेत् । तद्यथा – ४ व ह सैं नमः । ४ शहसैं नमः । षहसैं नमः । ४ सहसैं नमः । ४ यहसैं नमः । ४ रहसैं नमः । ४ लहसैं नमः । इति स्वाधिष्ठाने । ततो ड फ कठाब्जयोः । कामराजकूटं रक्तवर्णं ध्यात्वा; तद्दलेषु तद्वर्णपूर्ववत् । तद्यथा – मणिपूरे, दशदलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्येन ४ डहसैं नमः । एवं सर्वत्र । ४ ढहसैं नमः । ४ णहसैं नमः । ४ तहसैं नमः । ४ थहसैं नमः । ४ दहसैं नमः । ४ धहसैं नमः । ४ नहसैं नमः । ४ पहसैं नमः । ४ फहसैं नमः। ततो अनाहते द्वादशदलेषु, स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ४ कहसीं नमः । ४ खहसीं नमः । ४ गहसीं नमः । ४ घहसीं नमः । ४ ङहसीं नमः । ४ चहसीं नमः । ४ छहसीं नमः । ४ जहसीं नमः । ४ झहसीं नमः । ४ ञहसीं नमः । ४ टहसीं ४ ठहसीं नमः । ततः स्वरहक्षाब्जयोस्तार्तीयकूटं शुक्लवर्णं ध्यात्वा, तद्दलेषु न्यसेत् । तद्यथा – ४ अहसौः नमः । ४ आ ह सौः नमः । ४ इ ह सौः नमः । ४ ई ह सौः नमः । ४ उहसौः नमः । ४ ऊहसौः नमः । ४ ऋहसौः नमः । ४ ॠहसौः नमः । ४ ऌहसौः नमः । ४ ॡहसौः नमः । ४ एहसौः नमः । ४ ऐहसौः नमः । ४ ओ हसौः नमः । ४ औ ह सौः नमः । ४ अं ह सौः नमः । ४ अः हसौः नमः । ततो भ्रूमध्ये । आज्ञाब्जस्य दक्षवामदलयोः, ४ ह ह सौः नमः । ४ क्षहसौः नमः । इति वैखरीन्यासं विधाय; अन्तःसुधासिक्तं पद्मरागसमप्रभं वर्णकदम्बकं ध्यायेत् । इति वैखरीन्यासः ।

॥ अथ अन्तःकामकलान्यासः ॥

४ ह्सैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः इति पञ्चकूटविद्यया त्रिखण्डामुद्रां बद्ध्वा विन्यस्य; चित्सुधावृष्टिसेकादुज्चलितप्रभान् वर्णान् ध्यात्वा; षडाधारेषु एतैरन्तरन्तस्तं मोहान् इत्यावाह्य कामकलारूपां देवीमात्मनि भावयेत् । इत्यन्तःकामकलान्यासः ।

॥ अथ बहिःकामकलान्यासः ॥

तत्र कामकलाभूतस्य बिन्दुतुर्यस्वरस्यादिबिन्दुदेवीरूपस्य आत्मनः केश-नेत्र-कर्ण-नासिकाद्यवयव-समेतं वक्त्रं परिकल्प्य; तस्य अधोबिन्दुद्वयं बाहुचतुष्टयाद्यवयवसमेतं स्तनद्वयं ध्यात्वा; तस्याहार्धकलां पादद्वयाद्यवयव-समेतं योनिं विचिन्त्य; वाग्भवकूटमुच्चार्य; ईंकारस्योर्ध्वबिन्द्वात्मने श्रीमहा-त्रिपुरसुन्दर्याः बाहुचतुष्टयाद्यवयवसहितस्तनद्वयाय नमः। ४ तार्तीयकूट-मुच्चार्य; ईकारस्य हार्धकलात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः पादद्वयाद्यवयवसहित-योनये नमः। इति मूर्धादिकण्ठपर्यन्तं, कण्ठादिनाभ्यन्तं, नाभ्यादिपादाग्रपर्यन्तं व्यापकत्वेन विन्यस्य; ४ मूलविद्यामुच्चार्य; समस्तकामकलात्मकश्रीमहात्रिपुर-सुन्दर्याः सर्वावयवेभ्यो नमः। इति सर्वाङ्गे व्यापकं कृत्वा; नासां ललाट-चक्षुषि कर्णौ वदनं च मुखबिन्दौ। भुजचतुष्टयं वक्षो हृदयं स्तनबिन्दौ चरणद्वयं योनिबिन्दौ ध्यात्वा; समष्टिकामकलाभूत-परमाक्षरमय-सर्वावयव-सम्पूर्णां परमसौन्दर्यवतीं कामेश्वराङ्कनिलयां सर्वाभरणसम्पन्नां देवीं स्वात्मानं ध्यायेदिति बहिःकामकलान्यासः।

॥ अथ आयुधन्यासः ॥

अथ स्वदक्षाधःकरे, ४ द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः। यां रां लां वां जम्भनेभ्यः कामेश्वरकामेश्वरीबाणेभ्यो नमः। स्ववामाधःकरे, ४ धं थं मोहनाभ्यां कामेश्वरकामेश्वरीचापाभ्यां नमः। स्ववामोर्ध्वहस्ते, ४ आं ह्रीं वशीकरणाभ्यां कामेश्वरकामेश्वरीपाशाभ्यां नमः। स्वदक्षोर्ध्वहस्ते, ४ क्रों क्रों स्तम्भनाभ्यां कामेश्वर-कामेश्वरी-अङ्कुशाभ्यां नमः। इत्यायुधन्यासस्तत्-तन्मुद्रया कार्यः। इत्यायुधन्यासः।

॥ अथ भूषणन्यासः ॥

तत्र तदङ्गभूषणधिया मातृकावर्णान् वक्ष्यमाणस्थानेषु न्यसेत्। तद्यथा – शिरसि ४ अं नमः। ललाटे, ४ आं नमः। दक्षभ्रुवि, ४ इं नमः।

वामभुवि, ४ ईं० । दक्षिणकर्णे, ४ उं० । वामकर्णे, ४ ऊं० । दक्षनेत्रे, ऋं० । वामनेत्रे, ४ ॠं० । नासायां, ४ ऌं० । दक्षगण्डे, ४ ॡं० । वामगण्डे, ४ एं० । ओष्ठे, ४ ऐं० । अधरे, ४ ओं० । ऊर्ध्वदन्ते, ४ औं० । अधोदन्ते, ४ अं० । जिह्वायां, ४ अः० । चुबुके, ४ कं० । गले, ४ खं० । कण्ठे, ४ गं० । दक्षपार्श्वे, ४ घं० । वामपार्श्वे, ४ ङं० । दक्षस्तने, ४ चं० । वामस्तने, ४ छं० । दक्षांसे, ४ जं० । वामांसे, ४ झं० । दक्षकूर्परे, ४ ञं० । वामकूर्परे, ४ टं० । करतलयोः, ४ ठं० । करपृष्ठयोः, ४ डं० । नाभौ, ४ ढं० । लिङ्गे, ४ णं० । दक्षोरौ, ४ तं० । वामोरौ, ४ थं० । दक्षजानुनि, ४ दं० । वामजानुनि, ४ धं० । दक्षजङ्घायां, ४ नं० । वामजङ्घायां, ४ पं० । दक्षस्फिचि, ४ फं० । वामस्फिचि, ४ बं० । दक्षपादतले, ४ मं० । वामकूले, ४ सं० । मुकुटे, ४ हं० । इत्यादिभूषणन्यासः ।

॥ अथ कामरतिन्यासः ॥

तत्र ध्यानं कुर्यात् ।

अथ कामां स्मरेद् देवीं दाडिमीकुसुमोपमाम् ।
वामाङ्के शक्तिसहितां पुष्प-बाणेक्षुकार्मुकाम् ॥ १ ॥
शक्तयः कुङ्कुमनिभाः सर्वालङ्कारभूषिताः ।
नीलोत्पलकराः ध्येयाः त्रैलोक्याकर्षणक्षमाः ॥ २ ॥

इति ध्यात्वा न्यसेत् । तद्यथा– अस्य कामरतिमातृकायाः ब्रह्मा ऋषिः । गायत्री छन्दः । परमात्मा देवता । न्यासे विनियोगः । बालया षडङ्गं विधाय; ४ क्लीं अं कामाय रत्यै नमः । ४ क्लीं आं कामदाय प्रीत्यै नमः । ४ क्लीं इं कान्ताय कामिन्यै नमः । ४ ईं कान्तिमते मोहिन्यै नमः । ४ उं कामगाय कमलाय नमः । ४ ऊं कामचाराय विलासिन्यै नमः । ४ ऋं कामिने कल्पलतायै नमः । ४ ॠं कामवर्धनाय शुचिस्मितायै नमः । ४ ऌं वामाय विस्मिताक्ष्यै नमः । ४ एं रामाय विशालाक्ष्यै

नमः। ४ ऐं रमणाय लेलिहानायै नमः। ४ ओं रतिनाथाय दिगम्बरायै नमः। ४ औं रतिप्रियाय वामायै नमः। ४ अं रात्रिनाथाय कुब्जिकायै नमः। ४ अः रमाकान्ताय कान्तायै नमः। ४ कं रमणाय नित्यायै नमः। ४ खं निशाचराय कल्पायै नमः। ४ गं नन्दकाय भोगिन्यै नमः। ४ घं नन्दकाय कामदायै नमः। ४ ङं नन्दिने सुलोचनायै नमः। ४ चं नन्दयित्रे सुलापिन्यै नमः। ४ छं पञ्चवाणाय मर्दिन्यै नमः। ४ जं रतिसखाय कलहप्रियायै नमः। ४ झं पुष्पधन्विने वाराक्ष्यै नमः। ४ ञं महाधनुषे सुमुख्यै नमः। ४ टं भ्रामणाय नलिन्यै नमः। ४ ठं भ्रमणाय जयिन्यै नमः। ४ डं भ्रमणाय पालिन्यै नमः। ४ ढं भ्रमाय शिखायै नमः। ४ णं भ्रान्ताय मुग्धायै नमः। ४ तं भ्रामकाय रमायै नमः। ४ थं भृङ्गाय भ्रमायै नमः। ४ दं भ्रान्तचराय लोलायै नमः। ४ धं भ्रमावहाय चञ्चलायै नमः। ४ नं मोहनाय दीर्घ-जिह्वायै नमः। ४ पं मोहकाय रतिप्रियायै नमः। ४ फं मोहाय लोलाक्ष्यै नमः। ४ बं मोहवर्धनाय भृङ्गिण्यै नमः। ४ भं मदनाय पाटलायै नमः। मं मन्मथाय मदनायै नमः। ४ यं मातङ्गाय मालायै नमः। ४ रं भृङ्गनायकाय हंसिन्यै नमः। ४ लं गायकाय विश्वमुख्यै नमः। ४ वं गीतिज्ञाय जगदानन्दिन्यै नमः। ४ शं नर्तकाय रमण्यै नमः। ४ षं खेलकाय कान्त्यै नमः। ४ सं उन्मत्ताय कलकण्ठ्यै नमः। ४ हं मत्तकाय वृकोदर्यै नमः। ४ ळं विलासिने मेघश्यामायै नमः। ४ क्षं लोभवर्धनाय भ्रूषोत्तमायै नमः। इत्येकपञ्चाशत् मिथुनानि मातृकास्थानेषु न्यसेत्। इति कामरतिन्यासः।

॥ अथ पञ्चाशत्त्रिपुरान्यासः ॥

तत्र ४ अं कामिनीत्रिपुरायै नमः। ४ आं मोदिनीत्रिपुरायै नमः। ४ इं मदनाय त्रिपुरायै०। ४ ईं उन्मादिनीत्रि०। ४ उं द्राविणीत्रि०। ४ ऊं खेचरीत्रि०। ४ ऋं घण्टिकात्रि०। ४ ॠं कलावतीत्रि०। ४ ऌं क्लेदिनीत्रि०। ४ ॡं शिवदूतीत्रि०। ४ एं सुभगात्रि०। ४ ऐं भगात्रि०।

४ ओं विद्येश्वरीत्रि० । ४ औं महालक्ष्मी त्रि० । ४ अं कौलिनीत्रि० । ४ अः सुखेश्वरीत्रि० । ४ कं कुलमालिनीत्रि० । ४ खं व्यापिनीत्रि० । ४ गं भगात्रि० । ४ घं वागीश्वरीत्रि० । ४ ङं वषट्करीत्रि० । ४ चं पिङ्गलात्रि० । ४ छं भगसर्पिणी त्रि० । ४ जं सुन्दरी त्रि० । ४ झं नीलपताका त्रि० । ४ ञं त्रिपुरा त्रि० । ४ टं सिद्धेश्वरी त्रि० । ४ ठं अमोघा त्रि० । ४ डं रत्नमालिनी त्रि० । ४ ढं मङ्गला त्रि० । ४ णं भागमालिनी त्रि० । ४ तं नित्या त्रि० । ४ थं रौद्रा त्रि० । ४ दं व्योमेश्वरी त्रि० । ४ धं अम्बिका त्रि० । ४ नं अट्टहासा त्रि० । ४ पं आप्यायनी त्रि० । ४ फं वज्रेश्वरी त्रि० । ४ बं क्षोभिणी त्रि० । ४ भं शाम्भवी त्रि० । ४ मं स्तम्भिनी त्रि० । ४ यं अनामा त्रि० । ४ रं रक्ता त्रि० । ४ लं शुक्ला त्रि० । ४ वं अराजिता त्रि० । ४ शं संवर्तका त्रि० । ४ षं विमला त्रि० । ४ सं घोरा त्रि० । ४ हं अघोरा त्रि० । ४ ळं बिन्दुभैरवी त्रि० । ४ क्षं सर्वाकर्षिणी त्रिपुरायै नमः। इत्येताः मातृकास्थानेषु न्यस्तव्याः । इति पञ्चाशत्त्रिपुरान्यासः ।

॥ अथ षोडशकामकलान्यासः ॥

तत्र दक्षपादे, ४ क्लीं अं सिद्धाकलायै नमः । दक्षजङ्घायां, ४ क्लीं आं प्रीतिकलायै नमः । दक्षजानुनि, ४ क्लीं इं रतिकलायै नमः । दक्षोरौ, ४ क्लीं ईं धृतिकलायै० । दक्षवक्षसि, ४ क्लीं उं कान्तिकलायै० । दक्षबाहुमूले, ४ क्लीं ऊं मनोरमाकलायै० । मुखदक्षे, ४ क्लीं ऋं मनोहराकलायै० । दक्षमूर्ध्नि, ४ क्लीं ॠं मनोभवकलायै० । वामशिरोभागे, ४ क्लीं ऌं मदनोन्मादिनीकलायै० । मुखवामे, ४ क्लीं ॡं मोहिनीकलायै० । वामबाहुमूले, ४ क्लीं एं दीपिकाकलायै० । वामवक्षसि, ४ क्लीं ऐं शोषिणीकलायै० । वामोरौ, ४ क्लीं ओं वशङ्करीकलायै० । वामजानुनि, ४ क्लीं औं रञ्जनीकलायै० । वामजङ्घायां, ४ क्लीं अं सुभदाकलायै० । वामपादे, ४ क्लीं अः प्रियदर्शिनीकलायै० । इति विन्यस्य; एताः शुक्लवर्णाः सोत्पलकराः ध्येयाः । इति षोडशकामकलान्यासः ।

॥ अथ षोडशसोमकलान्यासः ॥

तत्र पृष्ठदक्षभागे, ४ सं अं पूषाकलायै नमः। ४ दक्षांसपृष्ठभागे, ४ सां आं वशाकलायै०। ग्रीवापृष्ठे, ४ सिं द्रं सुमलाकलायै०। दक्षकर्णे, ४ सीं ईं रतिकलायै०। दक्षनेत्रे, ४ सुं उं प्रीतिकलायै०। दक्षनासायां, ४ सूं ॐ धृतिकलायै०। दक्षललाटे, ४ सृं ऋं ऋद्धिकलायै०। दक्षमूर्ध्नि, सृं ॠं सौम्याकलायै०। वाममूर्ध्नि स्लुं लृं मरीचिकलायै०। वामललाटे, ४ स्लूं लॄं अंशुमालिनीकलायै०। वामनासायां, ४ सें एं अङ्गिराकलायै०। वामनेत्रे, ४ सैं ऐं शशिनीकलायै०। वामकर्णे, ४ सों ओं छायाकलायै०। वामग्रीवापृष्ठे, ४ सौं औं सम्पूर्णमण्डलाकलायै०। वामांसपृष्ठे ४ सं अं तुष्टिकलायै०। पृष्ठवामभागे ४ सः अः अमृताकलायै०। एताः शुभ्राः सोत्पलकराः ध्येयाः। इति षोडशसोमकलान्यासः।

॥ अथ वशिन्यादिवाग्देवताऽष्टकन्यासः ॥

तत्र शिरसि, ४ अं आं १४ ब्लूं वशिनीवाग्देवतायै नमः। ललाटे, ४ कं ४ कलह्रीं कामेश्वरी वाग्देवतायै०। भ्रूमध्ये, ४ चं ४ नूल्वीं मोदिनी वाग्देवतायै०। कण्ठे, ४ टं ४ ब्लूं विमलावाग्देवतायै०। हृदये, ४ तं ४ जूम्रीं अरुणा वाग्देवतायै०। नाभौ, ४ पं ४ हसलकव्यूं जयनीवाग्देवतायै०। मूलाधारे, ४ यं ३ झ म र यूं सर्वेश्वरी वाग्देवतायै०। मूलाधारादिपादद्वयान्तं, ४ शं ५ क्ष्म्रीं कौलिनी वाग्देवतायै नम इति वाग्देवतान्यासः।

॥ अथ चतुष्पीठन्यासः ॥

तत्र मूलाधारे, ४ प्रथमकूटमुच्चार्य अग्निचक्रे कामगिरिपीठे मित्रांशनाथात्मके जाग्रद्दशाधिष्ठायके इच्छाशक्त्यात्मक - रुद्रात्मकशक्तिश्रीकामेश्वरीदेव्यै नमः। हृदये, ४ द्वितीयकूटमुच्चार्य, चक्रे जालन्धरीपीठे षष्ठीशनाथात्मके स्वप्नदशाधिष्ठायके ज्ञानशक्त्यात्मकविष्ण्वात्मकशक्तिश्रीवज्रेश्वरीदेव्यै नमः। भ्रूमध्ये ४ तृतीयकूटमुच्चार्य, सोमचक्रे

पूर्णगिरिपीठे उड्डीशनाथात्मकसुषुप्तिदशाधिष्ठायके क्रियाशक्त्यात्मकब्रह्मात्मकशक्तिश्रीभगमालिनीदेव्यै नमः। ब्रह्मरन्ध्रे ४ तुरीयविद्यामुच्चार्य, ब्रह्मचक्रे उड्याणपीठे श्रीचर्यानाथात्मके तुर्यातीतदशाधिष्ठायके ब्रह्मात्मकशक्तिश्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। इति चतुष्पीठन्यासः।

॥ अथ कामेश्वर्यादिन्यासः ॥

तत्र वामपादाङ्गुष्ठादिनाभिपर्यन्तं, ४ ऐं प्रथमकूटं कामेश्वर्यै नमः। नाभेः कण्ठपर्यन्तं, ४ क्लीं द्वितीयकूटं वज्रेश्वर्यै नमः। कण्ठादिशिरःपर्यन्तं, ४ सौः तृतीयकूटं भगमालिनीदेव्यै नमः। इति वामभागे विन्यस्य; दक्षपादाङ्गुष्ठात् नाभिपर्यन्तं, ४ ह्सौं आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः। नाभेः कण्ठपर्यन्तं, ४ ह्स्क्लीं विद्यातत्त्वाधिपतये विष्णवे नमः। कण्ठादिशिरोऽन्तं, ४ ह्सौः शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः। इति तत्त्वदेवतान्यासः।

॥ अथ चतुस्तत्त्वन्यासः ॥

नाभ्यादिपादान्तं, ४ प्रथमकूटं आत्मतत्त्वात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। कण्ठादिनाभ्यन्तं, द्वितीयकूटं ४ विद्यातत्त्वात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। मूर्धादिकण्ठान्तं, ४ तृतीयकूटं शिवतत्त्वात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः। इति व्यापकं कुर्यात्। इति चतुस्तत्त्वन्यासः।

॥ अथ मूलविद्यान्यासः ॥

मूलाधारे ४ प्रथमकूटं। हृदये, ४ द्वितीयकूटं। भ्रूमध्ये तृतीयकूटं। ब्रह्मरन्ध्रे ४ तुरीयविद्यां च, न्यसेत्। प्राग्वत् समस्तविद्यां व्यापकत्वेन न्यसेत्। इति मूलविद्यान्यासः।

॥ अथ नवयोनिन्यासः ॥

स च बालया एव कर्त्तव्यः। तद्यथा – वामकर्णे , ४ ऐं नमः। दक्षकर्णे, ४ क्लीं नमः। चुबुके, ४ सौः नमः। एवं वामशङ्खे दक्षशङ्खे। मुखे च द्वितीययोनिः। वामदक्षनेत्रयोर्नासायां, तृतीया। वामदक्षांस-

हृदयेषु, चतुर्थी। वामदक्षकूर्परनाभिषु पञ्चमी। वामदक्षजानुलिङ्गेषु, षष्ठी। वामदक्षपादाङ्गुलिषु, सप्तमी। वामदक्षपार्श्ववक्षसि, अष्टमी। वाम-दक्षस्तनकण्ठेषु, नवमी। इति वह्निर्नवयोनिन्यासः।

॥ अथ अन्तर्नवयोनिन्यासः ॥

तत्र मूलाधारादि षट्चक्रललाटसीमन्त-ब्रह्मरन्ध्रेषु नवस्थानेषु चतुरस्रवेष्टिता नवयोनिपरिकल्पिता स्वाग्राद्यप्रादक्षिण्यक्रमेण प्रागुक्त-बीजत्रयं मनसा ध्यायन् न्यसेत्। इत्यन्तर्नवयोनिन्यासः।

॥ अथ शृङ्खलान्यासः ॥

तत्र शिखायां, ४ प्रथमकूटं नमः। चुबुके, ४ द्वितीयकू०। मुखे, ४ तृतीयकू०। पुनर्मुखे, ४ प्रथमकू०। कण्ठे, द्वितीयकू०। चुबुके, ४ तृतीयकू०। पुनश्चुबुके, ४ प्रथमकू०। हृदये, ४ द्वितीयकू०। कण्ठे, ४ तृतीयकू०। पुनः कण्ठे, ४ प्रथमकू०। नाभौ, ४ द्वितीयकू०। हृदये, ४ तृतीयकू०। पुनः हृदये, ४ प्रथमं०। स्वाधिष्ठाने, ४ द्वितीयं०। नाभौ, ४ तृतीयं०। पुनर्नाभौ, ४ प्रथमं०। मूलाधारे, ४ द्वितीयं०। स्वाधिष्ठाने, ४ तृतीयं०। पुनः स्वाधिष्ठाने ४ प्रथमं०। ऊर्वोः ४ द्वितीयं०। मूलाधारे, ४ तृतीयं०। इति शृङ्खलान्यासः।

॥ अथ प्रकटादिन्यासः ॥

तत्र च मूलाधारे, ४ अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्रस्थाभ्यः प्रकटयोगिनीभ्यो नमः। स्वाधिष्ठाने, ४ ऐं क्लीं सौः सर्व-सर्वाशा-परिपूरचक्रस्थाभ्यो गुप्तयोगिनीभ्यो नमः। मणिपूरके, ४ ह्रीं क्लीं सौः सर्वसङ्क्षोभणचक्रस्थाभ्यो गुप्ततरयोगिनीभ्यो नमः। हृदये, ४ हस्रैं हस् क्लीं हसौः सर्वसौभाग्यदायकचक्रस्थाभ्यः सम्प्रदाययोगिनीभ्यो नमः। विशुद्धौ, हस्रैं हस्क्लीं हस्रौः सर्वार्थसाधकचक्रस्थाभ्यः कुलकौल-योगिनीभ्यो नमः। आज्ञायां, ४ ह्रीं क्लीं ब्लैं सर्वरक्षाकरचक्रस्थाभ्यो निगर्भयोगिनीभ्यो नमः। ललाटे, ४ ह्रीं श्रीं सौः सर्वरोगहरचक्रस्थाभ्यो

रहस्ययोगिनीभ्यो नमः। शिरसि, ४ ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः सर्वसिद्धिप्रदचक्रस्थाभ्यः परापररहस्ययोगिनीभ्यो नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, ४ मूलपञ्चदशीमुच्चार्य; सर्वानन्दमयचक्रस्थाभ्यः परापराऽतिरहस्ययोगिनीभ्यो नमः। इति विन्यस्य; ४ समस्तप्रकटेत्यादियोगिनीसमष्टिविद्यां सर्वाङ्गे व्यापकं विन्यसेत्। इति प्रकटादिन्यासः।

॥अथ मठन्यासः॥

तत्र, शिरसि ४ ॐ सरस्वत्यै नमः। ललाटे ४ ह्रीं पार्वत्यै नमः। दक्षनेत्रे ४ अं सवित्रे नमः। वामनेत्रे ४ अं अग्नये नमः। मुखवृत्ते ४ ठं चन्द्रमसे नमः। मुखे ४ श्रीं श्रियै नमः। कपोलयोः ४ स्वाहान्तं दन्तिने नमः। इति मठन्यासः।

अथैतेषां न्यासफलम्

त्रिकाले यस्त्रिवारं वा पञ्चवारं च सप्तधा।
कुर्याद् द्वादशधा वाऽथ शृणु तस्य फलं शिवे॥
कान्तिर्मेधा यशः सौख्यं सुखं श्रीस्तस्य जायते॥ इति।
श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गोऽष्टम इत्यगात्॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे अष्टमस्तरङ्गः॥८॥

॥श्रीः॥

अथ नवमस्तरङ्गः

॥ अथ फणान्यासः॥

आधारे चतुर्दलकमलकर्णिकायां स्वराब्जं अवर्गाङ्कितं चिन्तयित्वा; तत्र कुण्डलिनीं फणान्वितां विचिन्त्य; तेषु फणेषु, ४ प्रथमकूटं पञ्चवर्णं मनसा विन्यस्य; ततः अनाहते, द्वादशदलकमलकर्णिकायां तथैवाब्जं कवर्गाङ्कितं विभाव्य; तत्र तां कुण्डलिनीं च फणान्वितां विचिन्त्य; तेषु फणरत्नेषु, ४ द्वितीयकूटार्णवान्वितां विन्यस्य; ततो हक्षाब्जे, तथैवाब्जं, ठवर्गाङ्कितं विचिन्त्य; तत्र तां देवफणान्वितां ध्यात्वा; तत्र शक्तिकूटार्णान् विन्यस्य; ततः सहस्रदलकमलकर्णिकायां वर्णारविन्दं ध्यात्वा; तत्र तां पञ्चदशफणान्वितां विचिन्त्य; तत्र, ४ मूलार्णान् विन्यसेदिति फणान्यासः।

॥ अथ सर्वसम्मोहनन्यासः॥

तत्र, शिरसि, ४ ऐं क्लीं सौः ह्रीं श्रीं अविकृतनादाय नमः। ललाटे, ४ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्स्क्लीं शून्यनादाय नमः। भ्रूमध्ये, ४ ह्रीं श्रीं क ए ई ल ह्रीं अविकृतस्पर्शनादाय नमः। नासायां, ४ ह्रीं श्रीं ह्सौं सकल ह्रीं स्पर्शनादाय नमः। मुखे, ४ ह्सीं ह्रीं श्रीं ध्वनिनादाय नमः। हृदि, ४ अं आं सौः ऐं ह्सौं ह्रीं श्रीं नादनादाय नमः। जठरे, ४ ह स कल ह्रीं क ए ई ल ह्रीं ऐं क्लीं सौः ह्रीं बिन्दुनादाय नमः। नाभौ, ४ ईं ह स कल ह्रीं श्रीं विकृतनादाय नमः। मूले, ४ ह्सौ सौं स कल ह्रीं ह्रीं श्रीं बीजनादाय नमः। मूलाधारे, ४ ओं हं सः ह्रीं श्रीं अक्षरनादाय नमः। मूलेन सर्वशरीरे व्यापकं न्यसेत्। इति सर्वसम्मोहनन्यासः।

॥ अथ गुह्यषोढान्यासः ॥

तद्यथा – शङ्कर उवाच –

कलौ मन्त्रान्न सिध्यन्ति विना येन तदुच्यते।
अनेन मन्त्रतन्त्राणि सिध्यन्ति झटिति ध्रुवम् ॥
पूर्वमासं ततो बीजं कृतं रावणराक्षसैः।
न्यासाँश्चापि क्रमादेषां साधनानां क्रमादपि ॥
किन्तु विद्या-महाविद्यागणेशमनवस्तथा।
हयग्रीवमुनिश्चैव बीजमुक्तं महीतले ॥

ओं अस्य श्रीगुह्यषोढा श्रीमहाचक्रेश्वरीन्यासस्य। दक्षिणामूर्ति ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी देवता। सांख्यायनगोत्रं। ऐं बीजं। ह्रीं शक्तिः। क्लीं कीलकम्। श्रीगुरुदेवता प्रसादसिध्यर्थे गुह्यषोढान्यासे विनियोगः। ४ ऐं मध्यमाभ्यां नमः। ४ ह्रीं अनामिकाभ्यां नमः। ४ श्रीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ४ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ४ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ४ श्रीं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिषडङ्गं विधाय; ४ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्रौं ह्स्क्लीं ह्स्रौः त्रिपुरायै इति शिखा। ४ ऐं क्लीं सौः बालात्रिपुरायै नमः। मुखे, ४ ऐं शारदात्रिपुरायै नमः। कण्ठे, ४ क्ष्रौं श्रीं सिद्धेश्वर्यै नमः। ललाटे, ४ ह्स्रौं ह्स्क्लीं ह्स्रौः त्रिपुरासिद्धायै नमः। भ्रूमध्ये, ४ ह्स्रौं ह्स्क्लीं ह्स्रौः त्रिपुरापरमेश्वर्यै नमः। गले, ४ कामराजविद्या १५ राजराजेश्वर्यै नमः। हृदये, ४ न फ क्ष्म ल व र यूं मालिनीत्रिपुरायै० । हृदयोपरि, ४ लोपामुद्राविद्यायै १५ देवी त्रिपुरसुन्दर्यै० । गुदोपरि, ४ हसरीं हसरीं शृ सुखदात्रिपुरायै० । मेण्ढ्रे, ४ क्लीं कामेश्वर्यै० । गुह्ये, ४ ह्रीं भुवनेश्वर्यै० । सर्वाङ्गे, ४ हं सः निर्वाणसुन्दर्यै० । नासारन्ध्रे, ४ ह्रीं ह्स्रौं स्रहौं हं प्रियापरमायै० । ब्रह्मरन्ध्रे, ४ ऐं १५ पञ्चदशीनक्षत्र-नक्षत्रवल्लभायै० । ललाटे, ४ कामराजकूटं क्लीं रतिप्रियायै० । श्रोत्रयोः, ४ ह्रीं श्रीं क्लीं शक्रप्रियायै० । घ्राणे, ४ शक्तिकूटं सौ. शम्भुप्रि यायै० ।

ओष्ठे, ४ लोपामुद्राद्यकूटं ऐं प्राणेश्वर्यै० । दन्तपङ्क्त्योः, ऐं ह्रीं श्रीं सौः जीवेश्वर्यै० । रसनायां, ४ ह्रीं श्रीं ब्रह्माण्यै० । कूर्परयोः, ४ हं सः ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं हूं सोऽहं परमात्मस्वरूपायै० । पृष्ठे, ओं सृ हृं सौः पृथिवीरूपायै० । सर्वाङ्गे, ४ षोडशीमुच्चार्य; ह्रीं हृल्लेखायै० । हृदये, ४ सौः क्लीं भृगुप्रियायै० । स्तनयो ४ क्रों क्रोधरूपायै० । कुक्षौ, ४ श्रीं ह्रीं ऐं सः विताकादेव्यै० । लिङ्गे, ४ ह्रीं क्लीं भुवनेश्वर्यै० । शीर्षादिपादपर्यन्तं, ४ ऐं वाग्भैरव्यै० । मूलाधारे, ४ क्लीं कामरूपायै० । हृदयाऽधः, ४ सौः शक्तिकूटायै० । अलके, ४ ओं ३ समस्तमूलविद्यामुच्चार्य; श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै० । सर्वाङ्गे, व्यापकम् । पुनः पूर्ववत् करषडङ्गानि कुर्यात् ।

"इमं न्यासं महेशानि ! यः करोति दिवानिशम् ।
स तु सिद्धिं समाप्नोति मोक्षस्तस्य विनिश्चितम् ॥
न जरा न च मृत्युश्च न च राजभयादिकम् ।
येनायं न्यस्यते न्यासः स मुक्तो नाऽत्र संशयः ॥
महाचक्रेश्वरीन्यासो देवानामपि दुर्लभः ।
द्वात्रिंशन्महाविद्या उक्तस्थानेषु विन्यसेत्" ॥

इति गुह्यषोढामहाचक्रेश्वरीन्यासः ।

ततो गणेश पञ्चमी दुर्गा वटुकक्षेत्रपालान्नपूर्णा अश्वारूढा बालां कालसङ्कर्षिण्यादि स्मरेत् । तद्यथा – ॐ वक्रतुण्डाय हुं । ॐ नमो भगवति वाराह्याघोरे स्वप्नं दद स्वाहा । ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॐ ऐं क्लां क्लीं क्लूं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः वां आपदुद्धारणाय अजामलबद्धाय लोकेश्वराय स्वर्णाकर्षणभैरवाय मम दारिद्र्यविद्वेषणाय ओं श्रीं महाभैरवाय नमः । ४ । ॐ क्षें क्षेत्रपालाय स्वाहा । ५ । ह्रों सौः श्रीं ॐ नमो भगवति अन्नपूर्णे महाभिलाषितं अन्नं देहि स्वाहा । ६ । ॐ ह्रीं फ्रें क्रें सर्व-वशङ्करि स्वाहा । ७ । ऐं क्लीं सौः ।८। ॐ ख्फ्रें महाचण्डयोगीश्वरी ।९ । इति मन्त्रनवकं स्मृत्वा; मूलवाग्भवमुच्चार्य; अन्तस्थितं विषयं

बहिः भावयन् पूरयेत्। कामराजेन उपसंहारं सम्भावयन्; कुम्भयेत्। शक्तिबीजेन रेचयेत्। इति प्राणानायम्य; लिङ्गन्यासं कुर्यात्। तद्यथा– ४ ऐं स्वयम्भूलिङ्गाय नमः। मूलाधारे, ४ ह्रीं बाणलिङ्गाय नमः। हृदये, ४ औः इतरलिङ्गाय नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, कनकपाटललसितं तत्समष्टिरूपं तेजो विचिन्त्य; नासामार्गेण स्वकराञ्जलौ सङ्क्रमय्य; अं आं सौः इति बीजत्रयं मध्यमादितलान्तं विन्यस्य; करशुद्धिं विधाय; ऐं नाभेरापादम्। क्लीं हृदयात् नाभिपर्यन्तं सौः शिरसो हृत्पर्यन्तं ऐं क्लीं सौः त्रिव्यापकं सर्वाङ्गे च ह्रीं सौः त्रिपुरसुन्दरी मामात्मानं रक्ष; हृदये। इत्यात्मरक्षान्यासः।

ततः मूलाधारे, दशदलकमलं विभाव्य; ४ वह्निमण्डलाय नमः। हृदये द्वादशदले, ह ५ सूर्यमण्डालाय नमः। भ्रूमध्ये, षोडशदलं विभाव्य; सं ४ सोममण्डलाय नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, १५ परमण्डलाय नमः। करमूले, ह ५। करमध्ये, स ४ कराग्रे। एवं वामकरे। क ४ मूलाधारे, हृदि ह ५ संविदौ। भ्रूमध्ये, क १४ ब्रह्मरन्ध्रे,। द्वादशान्ते इन्दुविलसद्विष्णुरूपेण आत्मनस्तनुं सम्प्लाव्य तन्मयो भूत्वा, न्यसेत् पश्चान्नवासनम्।

॥ अथ मूलविद्या नवाऽऽसनन्यासः॥

अं आं सौः त्रिपुराऽमृतार्णवासनाय नमः। पादयोः, ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरीपोताऽम्बुजासनाय नमः। जानुनि, ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरीदेव्यासनाय नमः। उरौ, ह्स्रैं ह्सक्लीं ह्स्रौः त्रिपुरवासिनी सर्वचक्रासनाय नमः। जङ्घे, ह्स्रैं ह्सक्लीं ह्स्रौः त्रिपुरा श्री सर्वमन्त्रासनाय नमः। गुदे, ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनी साध्यसिद्धासनाय नमः। लिङ्गे, ह्रीं श्रीं सौः त्रिपुर-सिद्ध-सिद्धोद्धतासनाय नमः। नाभौ, ह्स्रैं ह्सक्लीं ह्स्रैः त्रिपुराम्बापर्यङ्कपीठात्मने नमः। हृदये, ह्सकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौः त्रिपुरभैरवी सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः ब्रह्मरन्ध्रे। इति नवासनन्यासः।

॥ अथ महाशक्तिन्यासः॥

तत्र प्रथमं जगच्छून्याकारं निरालम्बं ध्यात्वा; ४ हं पृथिव्यै नमः। इति स्वासनाधः पृथिवीं सम्पूज्य; स्वासनं वामहस्तेन स्पृशेत्। भुवनेश्वरीबीजं सप्तवारं जपित्वा; ॐ ३ जयायै नमः। ४ विजयायै नमः। ४ जयन्त्यै नमः। ४ अजितायै नमः। ४ अपराजितायै नमः। ४ सङ्गमायै नमः। ४ रम्भायै नमः। इति स्वासने सप्तशक्तिं सम्पूज्य; मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा। अस्य श्रीमहाशक्तिन्यासस्य। ४ परमशिव ऋषिः। ४ अतिजगती छन्दः। ४ श्रीपराशक्तिः देवता। ४ ऐं बीजं। ४ श्रीं शक्तिः। ४ सौः कीलकं। श्रीविद्याङ्गत्वेन महाशक्तिन्यासे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा; यथाविधि विन्यस्य; त्रितारैः द्विरावृत्य; करषडङ्गन्यासं विधाय; न्यासं कुर्यात्। तत्र योनौ, औं ३ ह्लां ह्लीं ह्लं नमः। ललाटे, ४ सां सीं सूं नमः। कर्णयोः, ४ ह्रां ह्रीं ह्रूं नमः। ध्वजमूले, ४ द्रां द्रीं द्रूं नमः। चुबुकाग्रे, ४ सौः श्रीं सौः नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, ४ ऐं ईं सौः अं नमः। इति विन्यस्य; अकारादिक्षकारान्तानां सर्वेषां वर्णानां मूलभूतमकारं सर्वेषु वर्णेषु दुग्धस्थसर्पिवत् सूक्ष्मरूपे स्थितिं विभावयन्; तन्मयानन्यवर्णान् वक्ष्यमाणेषु स्थानेषु न्यसेत्। तत्र तालुके ४ ऐं ईं सौः आं नमः। नासाग्रे, ४ ऐं ईं सौः इं नमः। पश्चिमलिङ्गे, शिवस्यां मूलाधारज्योतिर्लिङ्गे वा। ४ ऐं ईं सौः ईं नमः। गुदे, ४।३ उं नमः। पृष्ठमध्ये ४।३ ऊं नमः। कटिसन्धौ, ४।४ ऋं नमः। वृषणान्ते ४।३ ॠं नमः। पृष्ठमध्ये, ४।३ ऌं नमः। लम्बिकास्थाने, ४।३ ॡं नमः। सर्वाङ्गे, ४।३ एं नमः। पद्मबिन्दू परिगतरेखायां, योनौ न्यासभावनया सर्वाङ्गे ४।३ ऐं नमः। इति विन्यस्य –

योनिरित्युच्यते शक्तिरेषा ब्रह्माण्डभेदिनी।
लयं चिदालये देहे एतौ बिन्दुरिति स्मृतः॥ १॥
द्वासप्ततिसहस्रेषु नाडिभेदेषु पञ्जरम्।
व्याप्यमानमहाशक्तिः कामिनीनां ऋतुक्रमात्॥ २॥

नाडिचक्रगतं रक्तं योनिमार्गे निपातयेत्।

पुष्पीभूते भगे पुष्पं मासपक्षादिषु क्रमात्॥३॥

ऐं कां वोऽपि स्वयं योनिर्नाऽत्र कार्या विचारणा।

न्यस्तं चाप्यत्र देवेश त्रैलोक्यं सचराचरम्॥४॥

इत्यन्तश्चैकसमुदायस्य अर्धं चिन्तयन्, महाकामकलायां लयं भावयित्वा; ब्रह्मदण्डे, ४।३ ॐ नमः। नादमध्ये, ४।३ औं नमः नादान्ते, ४।३ अं नमः। कण्ठे, ४।३ अः नमः। हृदि, ४।३ कं नमः। मस्तके, ४।३ खं नमः। जङ्घयोः, ४।३ गं नमः। स्तनयोः, ४।३ घं नमः। नासिकान्ते, ४।३ ङं नमः। आज्ञायां, ४।३ चं नमः। वामकुक्षौ, ४।३ छं नमः। दक्षकुक्षौ,४।३ जं नमः। ऊरुमूले, ४।३ झं नमः। दन्तपङ्क्तौ, ४।३ ञं नमः। जिह्वाग्रे, ४।३ टं नमः। मुखे, ४।३ ठं नमः कक्षयोः, ४।३ डं नमः। अस्थिसन्धिषु, ४।३ ढं नमः। चित्ते, ४।३ णं नमः। नाभौ, ४।३ तं नमः। ललाटे, ४।३ भं नमः। कर्णरन्ध्रयोः, ४।३ दं नमः। कपोलमूलयोः, ४।३ धं नमः। नयनयोः, ४।३ नं नमः। श्वेतसहस्रदलकमले ४।३ पं नमः। हृत्पद्मे ४।३ फं नमः। स्कन्धयोः, ४।३ बं नमः। भ्रूद्वये, ४।३ भं नमः। हनुमूले, ४।३ मं नमः। तालुमूले, ४।३ यं नमः। लिङ्गगुदयोर्मध्ये, ४।३ रं नमः। जिह्वायां, ४।३ लं नमः। सर्वाङ्गे, ४।३ वं नमः। वामादिदक्षिणशिरःपर्यन्तमापादतलवेष्टकत्वेन, ४।३ शं नमः। तालुमूले, ४।३ षं नमः। सर्वाङ्गे, ४।३ सं नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, ४।३ हं नमः। हस्तपादयोः, सर्वाङ्गुलिषु ओं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ईं सौः क्षं नमः। प्रागुक्तमूलाधारस्थितकुण्डलिन्यां, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ईं सौः ॐ नमः इति विन्यस्य; ओं ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ह्रीं सौः समस्तमातृकामुच्चरन् तां कुण्डलिनीं सुषुम्ना वर्त्मना षट्चक्रभेदेन क्रमेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा; तत्रस्थाकुलसहस्रदलकमलकर्णिकामध्यस्थितपरमात्मनि शिवे विलीनां विभाव्य; ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं ईं सौः इति।

रक्ष रक्ष शूलिनि हि त्रैलोक्यानन्ददायिनि।

रक्ष मां त्रिपुरे देवि रक्ष मां त्रिपुरेश्वरि॥१॥

रक्ष रक्ष महादेवि अस्मदीयमिदं पुनः ॥

ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्फ्रें ह्स्रों ह्स्रौः ह्स्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं श्रीस्तपिनि मदिरानन्दसुन्दरि समस्तसुरासुरवन्दिते भुजङ्गभूपालमालालङ्कृतचरणकमले विकटदन्तघटाटोपनिवारिणि मदीयं शरीरं रक्ष रक्ष परमेश्वरि हुं फट् स्वाहा । ॐ भूः स्वाहा । ॐ भुवः स्वाहा । भूर्भुवः स्वाहा । नक्षत्रमालाभरणभूषिते महाकौलिनि महाब्रह्मवादिनि महाधनोन्मादकारिणि महाभोगप्रदे अस्मदीयं शरीरं बज्रमयं कुरु कुरु; दुर्जनान् हन हन; दुष्टमहीपालान् भक्षय भक्षय; परचक्रं भञ्जय भञ्जय; जयजयङ्करि गगनगामिनि त्रैलोक्यस्वामिनि यमलवरयूं लमलवरयूं वमलवरयूं शमलवरयूं श्री भैरविं प्रसादय स्वाहा ।

कुलाङ्गनाकुलं सर्वं मदीयं त्रिपुरेश्वरि ।
देवि रक्षतु दिव्याङ्गी दिव्यात्मा भोगदायिनी ॥ १ ॥
रक्ष रक्ष महादेवि शरीरं परमेश्वरि ।
मदीयं मदिरानन्दे आपादतलमस्तकम् ॥ २ ॥
त्रिपुराख्ये महादेवि भुक्तिमुक्तिफलप्रदे ।
न गुरोः सदृशं वस्तु न देवः शङ्करोपमः॥ ३ ॥
न च कौलपरो योगो न विद्या त्रिपुरोपमा ।
दर्शनेषु समस्तेषु पाषण्डेषु विशेषतः ॥ ४ ॥
दिव्यरूपा महादेवी सर्वत्र परमेश्वरी ॥ ५ ॥

इति मन्त्रविद्ययोर्महिमानं स्मृत्वा; पीठोपपीठशिरस्था गगनगिरिभुवन-गोकुलनिवासिनि, जयति कुलशक्तिः महातलपातालनिवासिनि कुलकौल-विभेदिनि सकलजनमनानन्दकारिणि करोतु मम चिन्तितं कार्यं शतमेकं पुनातु परमेश्वरि मदनमण्डलालम्बिनी ।

सप्तकोटिसहस्राणां मन्त्राणां परमेश्वरी

इति मन्त्रं सकृज्जपित्वा; ओं ऐं नमो भगवति त्रिकोणे त्रिधा वक्त्रे महालिङ्गाऽलङ्कृते त्रैलोक्योत्पत्ति-स्थिति-प्रलयकारिणि हसल

ह्रीं कन्दर्पानन्ददायिनी सह ह्रीं ब्रह्मदण्डे रेखे ह्रौं चित्स्वरूपे पाशाऽङ्कुशाऽलङ्कृते वद वद वाग्वादिनि श्रीं भ्रष्टमहीपालराज्यप्रदे ऐं वरदाऽऽश्रितहस्ते समस्तजनानन्दकारिणि क्लीं क्लीं कामराजबीजाश्रये द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः क्षोभय क्षोभय; क्षोभिणि ह्सौः ह्सः ह्सौः मद मद; अभयप्रदायिनि चतुर्भुजे त्रिनेत्रे प्रेतासनोद्धारिणि महाकपालमालाऽलङ्कृते चन्द्रकृतशेखरे त्रिपुरे भुक्ति-मुक्तिफलप्रदे ॐ ऐं ॐ नमः। सिद्धमकारादि ५१ क्षामित्यादि विलोमेन अकारन्तं ५१ द्धं सि मः न ॐ ऐं सर्वबीजमातः श्रीसमयिनि मम मनोरथं देहि स्वाहा। एवं जपित्वा; ऐं ईं सौः श्रीमन्त्रराजाय नमः। इति त्रिपुरमन्त्रस्य पूजां विधाय; त्रिपुराद्यमहानाम्ना त्रयोदशमहाविद्याः पूजयेत्। तद्यथा ॐ ३ ऐं ह्स्रौः स ह ल ह्रीं स् ह् ह्रां स ह ह्रीं सह ह्लूः काम-त्रिपुरायै नमः। ॐ ३ ऐं ह्रीं क्लीं ह्स्रौः त्रिपुरभैरव्यै नमः। ॐ ऐं क्लीं ह्रीं सः वाक्त्रिपुरायै नमः। ॐ ३ ऐं ह्रीं श्रीं सौः महालक्ष्म्यै त्रिपुरायै नमः। ॐ ३ ऐं ह्रीं सौः वह्नित्रिपुरायै नमः। ॐ ३ ऐं क्लीं मोहिनीत्रिपुरायै नमः। ॐ ३ क्लीं ब्लूं स्त्रीं भ्रामरीत्रिपुरायै नमः। ४ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं फ्रें ह्स्रौः त्रैलोक्यस्वामिन्यै त्रिपुरायै नमः। ॐ ३ ऐं डां डीं डूं डैं डौं डः हं सैः त्रिपुरायै नमः। ४ ऐं ऐं सौः कौलिकायै त्रिपुरायै नमः। ४ ऐं ऐं सौः चण्डिकायै त्रिपुरायै नमः। ४ ऐं ऐं सौः तालुमध्यमायै त्रिपुरायै नमः। ४ ऐं ऐं सौः कपालाऽङ्कुरवासिन्यै त्रिपुरायै तः ठः टः नमः। ३ यथाशक्ति जपित्वा। रक्तपुष्पैः स्व-शिरसि ऐं ईं सौः आत्मदेहाय नमः। इति गन्धाक्षतैश्च सप्तधा सम्पूज्य; धूप-दीप-नैवेद्यैः तस्मिन् त्रैपुरे देहे ऐं ईं सौः इति नित्या क्षोभकरी महाकामकलां ध्यायेत्।

ततः श्लोकशतन्यासाऽनुसन्धानेन पठेत्। तत्र

"शक्तिरुद्रमयं देहे मदीयं त्रिपुरेश्वरी।
देहे मे देवदेवेशि नित्यं नित्यमभीप्सितम् ॥१॥
मस्तकं मङ्गला देवी ललाटं कुलसुन्दरी।
नेत्रयुग्मं महाकाली कर्णौ रक्षतु कुण्डली ॥२॥

कपाली कर्णगर्भं तु कपोलौ कमलावती।
दन्तान् रक्षतु चामुण्डा चुबुके मेरुवासिनी ॥ ३॥
भ्रूमध्यं कण्ठदेशं च रक्षेन्मे भुवनेश्वरी।
जिह्वां सरस्वती रक्षेत् तालुकं तालुवासिनी ॥४॥
स्थातु मे कपिला स्कन्धे स्कन्धान्ते कुलमालिनी।
कुक्षौ विनायकी स्थातु जयानन्दा स्तनद्वये ॥५॥
कण्ठकूटे महालक्ष्मी हृदये चण्डभैरवी।
ब्रह्माणी नाभिदेशे तु स्थातु ज्वालावली गुदे ॥६॥
लिङ्गे लिङ्गप्रभा चैव मुण्डिनी मेदमण्डले।
नाडीचक्रे महावेगा उद्भटा दक्षिणे करे ॥७॥
वामहस्ते महामाया विद्या हस्ताङ्गुलीषु च।
वैष्णवी वामपादे च स्थातु चक्रायुधान्विता ॥८॥
तथा दक्षिणपादान्ते एकपादसुरेश्वरी।
पादाङ्गुलीषु कौबेरी रोमकूपमनोभवा ॥९॥
उद्भटा नाभिलिङ्गान्ते नासाग्रे पूर्णपीठगा।
पृष्ठवंशे जया देवी अस्थिसन्धिषु चर्चिका ॥१०॥
मण्डली नखमूलेषु वाराही मेदमण्डले।
जालन्धरी जलस्थाने कामाक्षी काममध्यगा ॥११॥
चर्मधारी त्वचायां तू स्थातु नित्यं महायशाः।
रक्तमध्ये मनोऽन्ते च स्थातु मे हंसिनी शुभा ॥१२॥
माहेश्वरी च कौमारी द्वे चैते स्थातु चाऽङ्घ्र्योः।
वामदक्षिणयोश्चैव धीरा विकटसन्धिषु ॥१३॥
देवी रक्षतु मे गात्रं मस्तकं कुलमालिनी।
वृद्धिव्याप्यस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥१४॥

पञ्चभूतेषु भूतेषु सदा रक्षतु मे कुलम्।
राज्यं ददातु मे चैन्द्री प्रजां चैव प्रजावती ॥१५॥
माया ददातु मे नित्यं धनं धान्यं यशस्तथा।
रणे राजकुले चैव शत्रुमध्ये महावने॥१६॥
रक्तनेत्रमहादेवी करोतु मम चिन्तितम्।
समया समयं रक्षेद् विद्यां विद्याकुलागमे ॥१७।
साधकानां जगन्नाथा भुक्ति-मुक्तिफलप्रदा।
प्राणाः करोतु मे सिद्धिं त्रैलोक्यविजया सुखम् ॥१८॥
घण्टाली या महाविद्या सा मे यच्छतु मङ्गलम्।
सप्तकोटिसहस्राणां मन्त्राणां नायिका तु या ॥१९॥
सा मे सुरेश्वरी देवी ससिद्धिं च प्रयच्छतु ।
उल्कामुखी मुखे स्थातु मार्जारी देहसन्धिषु ॥२०॥
भद्रकाली तु या विद्या सा मे स्थातु शिखामये।
त्रिकोणं च त्रिधावर्त्तं त्रैपुरं चक्रमुत्तमम् ॥२१॥
मस्तके स्थातु मे नित्यं तस्याऽन्ते बहुरूपिणी।
पूर्वोक्तत्रैपुरीशक्तिः स्थातु मे मन्मथोत्थिता ॥२२।
क्षोभयन्ति जगत्सर्वं मदिरानन्दविह्वला।
निवासं कुरु मे देहे साम्प्रतं दिव्ययोगिनी ॥२३।
एह्येहि त्वं महादेवि सिद्धियोगिनि मे कुले।
शत्रूणां घातनार्थाय जन्तूनां भोगदायिनी ॥२४॥
महायोगीव देहेऽस्मिन् सर्वदा निलयं कुरु।
माहेन्द्री च शिखा स्थातु योनिमध्ये गणेश्वरी ।।२५।।

प्रेतासीना सुविख्याता करोतु कुशलं मम ।
डाकिनी पूर्वभागे च मम सौख्यं प्रयच्छतु ॥ २६॥
साकिनी पश्चिमाङ्गेषु दक्षिणे चाऽपि राक्षसी ।
वामभागे महामाया करोतु कुशलं मम ॥ २७॥
साऽस्मदीयं शिरः रक्षातु सदा तिष्ठतु भैरवि ।
या विशाला विशालाक्षी निर्मला मलवर्जिता ॥ २८।
सा योगिनी महायोगा स्थातु श्रीमस्तके मम ।
या कालकलिता काली कालरात्रीति कथ्यते ॥ २९॥
सा योगिनी महायोगा स्थातु श्रीमस्तके मम ।
या निशाचरराजन्यपूजिता च निशाचरी ॥ ३० ॥
या चोर्ध्वकेशिका नाम्नी मुक्तकेशी महाभया ।
सा योगनी महायोगा स्थातु श्रीमस्तके मम ॥ ३१॥
या वीरेति समाख्याता वीराणां जयदायिनी।
सा योगिनी० ॥ ३२॥
मायालिनी समाख्याता नासाग्रे बिन्दुमालिनी ।
सा योगिनी० ॥ ३३॥
या कङ्कालकरालाङ्गी चण्डी कङ्कालकुण्डली ।
सा योगिनी० ॥ ३४॥
प्रचण्डा च विरूपाक्षी विरूपा विश्वरूपिणी।
सा योगिनी० ॥ ३५॥
खट्वाङ्गी कथ्यते या च काद्रीरूपेण पूजिता।
सा योगिनी० ॥ ३६॥

काली योगी प्रसिद्धा च या लोके ध्यायते कलौ।

सा योगिनी० ॥३७॥

प्रेताक्षी कथ्यते या च फेत्कारोत्कटगर्भिता।

सा योगिनी० ॥३८॥

धूम्राक्षी याऽप्सराख्या सा शास्त्रेऽस्मिन् योगिनी मता।

सा योगिनी० ॥३९॥

घोररूपा महादेवी कथ्यते या कुलागमे।

सा योगिनी० ॥४०॥

विश्वरूपा विशेषेण करोति च जगत्त्रयम्।

सा योगिनी० ॥४१॥

भयङ्करी समादिष्टा या चोक्ता वै कुलागमे।

सा योगिनी० ॥४२॥

कपालमालिका प्रोक्ता या देवी मुण्डधारिणी।

सा योगिनी० ॥४३॥

भीषणा भैरवी नामा या देवी भीमविक्रमा।

सा योगिनी० ॥४४॥

न्यग्रोधवासिनी या च कथ्यते च सुरार्चिता।

सा योगिनी० ॥४५॥

भैरवी भीषणा या च भैरवाऽष्टकवन्दिता।

सा योगिनी० ॥४६॥

प्रोच्यते दीर्घलम्बोष्ठी महामाया महाबला।

सा योगिनी० ॥४७॥

खट्वाङ्गी या महाशक्तिः संसारार्णवतारिणी।
सा योगिनी० ॥४८॥

या समस्तेषु मन्त्रेषु प्रोच्यते मन्त्रवादिनी।
सा योगिनी० ॥४९॥

कालघ्नी कथ्यते या च युगान्ते परमेश्वरी।
सा योगिनी० ॥५०॥

ग्राहिणीति समाख्याता सुरासुरमहोरगैः।
सा योगिनी० ॥५१॥

चक्रिणी कथ्यते या च एकपादत्रिलोचना।
सा यो० ॥५२॥

या विश्वबाहुका देवी विश्वनाथप्रिया सदा।
सा योगिनी० ॥५३॥

दर्शनेषु समस्तेषु विदिता भुवनेश्वरी।
सा योगिनी० ॥५४॥

कण्टकोत्सादनार्थाय शास्त्रे या कण्टकी स्मृता।
सा योगिनी० ॥५५॥

कीलकी कथ्यते या च सप्तहस्ता महाबला।
सा योगिनी० ॥४६॥

सङ्ग्रामे या महादेवी महामारीति कथ्यते ।
सा योगिनी० ॥५७॥

यमदूतीति विख्याता या सुराऽसुरपूजिता ।
सा योगिनी० ॥५८॥

करालिनीति या देवी महामाया महाबला।

सा योगिनी० ॥५९॥

ललिताम्बा महाराज्ञी सर्वचक्रैकनायिका।

सा योगिनी० ॥६०॥

नासाग्रे कौलिनी स्थातु मदनाक्षी तथा मुखे।
व्योमे जङ्घे कपाले च तालुके चाऽपि हारिणी ॥६१॥
द्राविणी क्षोभिणी चैव स्तम्भिनी मोहिनी तथा।
रौद्रकर्मा महाघण्टा डामरि त्वरितामतिः ॥६२॥
देवी रक्षतु मे गात्रं मस्तकं कुलनाशकी ।
भूमिरापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥६३॥
पञ्चभूतेषु भूतेशी सदा रक्षतु मे कुलम्।
राज्यं ददातु मे चैन्द्री प्रज्ञां चैव प्रजावती ॥६४॥
माया ददातु मे नित्यं धनधान्यं यशस्तथा।
रणे राजकुले चैव शत्रुमध्ये महारणे ॥६५॥
रक्तनेत्रा महादेवी करोतु मम चिन्तितम्।
समयाऽसमयं रक्षेद् विद्यां विद्याकुलागमे ॥६६॥
साधकानां जगन्नाथ भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
द्वि-जटित्री जटी प्रोक्ता कन्दली दलिताऽखिला ॥६७॥
गायत्री चाऽम्बिका तारा पार्वती कमलप्रभा।
मादिनी मदनोद्भावा मन्दारी मदनातुरा ॥६८॥
भीषणा भीषणा नाम प्रेतसिद्धा विभीषणा।
क्षुधा तृष्णा तथा निद्रा कान्तिर्वृत्तिस्तथा द्युतिः ॥६९॥

सन्ध्याधृती रतिः कान्तिर्ह्यनिशा परिपठ्यते।
सुराराध्येति विख्याता नगरे नरदेवता ॥७०॥
ग्रामदेवी ह्यधिष्ठात्री पीठे पीठेश्वरी बिदुः।
कावेरी नर्मदा चैव गङ्गेति यमुनोच्यते ॥७१॥
गोदावरी महापुण्या प्रोच्यते चाऽप्यरुन्धती।
त्रैलोक्येऽपि महादेवी स्त्री नाम्नी या प्रकाशिता ॥७२॥
सा देवी रूपलक्षे तु स्थातु श्रीहृदये मम।
सुवर्णरेखिनी प्रोक्ता विद्या सा प्रोच्यतेऽखिलम् ॥७३॥
निर्मूली च भुजङ्गानां सा करोतु सुखं मम।
कुरुकुल्लेति विख्याता पक्षिराजमुखोद्भवा ॥७४॥
या विद्या सा महारूपा जिह्वाग्रे स्थातु मे सदा।
ओङ्कारिणीति विख्याता देहे स्थातु सदा मम ॥७५॥
विघ्नापहारिणी नाम कालिरूपा विदारिणी।
भेरुण्डा स्थातु मे कण्ठे तोतला स्थातु मस्तके ॥७६॥
यथा सुबलरेखाऽपि मूले स्थातु सदा मम।
जीवाङ्गी विषनाशाय वाचां सिद्धिं करोतु मे ॥७७॥
सर्वसिद्धिकरी विद्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
अहं ब्रह्मा अहं विष्णुरहं देवो महेश्वरः ॥७८॥
सर्वभूतनिवासोऽहं लोके श्रीशक्तिचिन्तकः।
शक्तिन्यासेन पूतेन शरीरेण सुराऽसुराः ॥७९॥
प्रदत्ता देशमात्रेण आज्ञां कुर्वन्तु मे सदा।
यत्किञ्चिद्योगिनीरूपं त्रैलोक्ये चाऽपि शङ्कर ॥८०॥

तत्सर्वं तिष्ठते देहे शक्तिन्यासे उपासिते।
कामिनी कुरुते चाऽपि यन्न्यासं शक्तिनिर्मितम् ॥ ८१॥
तां देवीं दिव्यरूपस्थां संसारे त्रिपुरां विदुः।
नमोऽस्तु ते जगन्मातः नमोऽस्तु भुवनेश्वरी ॥ ८२॥
नमो भोगप्रदे देवि नमो देवि महेश्वरि।
प्रकटा गोपिता सर्वा निर्वाणा भैरवी शिवा ॥ ८३॥
सम्भ्रमा विजया हंसा शुभा सा जलदेवता।
पक्षिणी चूडकन्या च तथा चाऽऽकाशगामिनी ॥ ८४।
भूचरी चलिता कुम्भिः सर्वकामनिवासिनी।
रङ्गिनी देवमैत्री च प्रसिद्धमदिरालिका ॥ ८५॥
पूजिता सर्वसिध्यर्थं शास्त्रेऽस्मिन् योगिनीमते।
स्थापिनी कथ्यते सद्भिः सानन्दा वनवासिनी ॥ ८६॥
चतुःषष्ट्याऽऽश्रया देवि योगिन्यो येन चिन्तिताः।
आधारे नियमादाशु स योगी योगविद्भवेत् ॥ ८७॥
ललाटे मण्डला स्थातु विरजा स्थातु मस्तके।
एकाक्षी दक्षिणे स्कन्धे वामे चैव त्रिलोचना ॥ ८८॥
जयन्ती स्थातु मे कुक्षौ कट्यां कन्दर्पमण्डली।
मालिनी लिङ्गसन्धौ च हृदि स्थातु समाधिनी ॥ ८९ ॥
अम्बिका पृष्ठवंशे च पार्श्वयोः स्थातु मेदिनी।
दिग्गजाङ्गी कराऽग्रे च नगेन्द्री नखसन्धिषु ॥॥ ९०।
व्याघ्रचक्री च जङ्घायां स्थातु पादतले मही।
अमृता शङ्खिनी रन्ध्रे लोचने च विलासिनी ॥ ९१।

कालिन्दी मुखजिह्वा च रक्तं रक्षतु रक्तिनी।
लाङ्गली जाङ्गलं रक्षेदस्थिनी चाऽस्थिसन्धिषु॥ ९२॥
मज्जनी देहमज्जां तु शुक्रं शुक्रेश्वरी तथा।
त्वचं रक्षतु वेताली मम रोगप्रणाशिनी॥ ९३॥
उद्भटा कुरुते शान्तिं सहैव मम विग्रहे।
पादा पादतले स्थातु पथि रक्षतु पन्थिनी॥ ९४॥
चोराऽसि-राज-सर्वेभ्यो भयेभ्यः पातु भैरवी।
दुष्टानां दृष्टिबन्धे तु करोतु बैन्दिनी सदा॥ ९५।
चापेटी नाम या विद्या मङ्गलं मे करोतु सा।
मर्कटी घण्टिकर्णी च हनुमन्ती च रावणी॥ ९६॥
घुर्घुरी कीर्ति-विख्याता वन्दे विद्याचतुष्टयम्।
चेटिका ज्ञानदा विद्या कौमारी चरणावली ॥ ९७॥
विघ्नराज-स्तुता नाम तुष्टा सन्तानरूपिणी।
मूलाकाशस्थिता हंसी हताशा-दलनोद्यता॥ ९८॥
दशैताः मन्त्रविद्यास्तु तिष्ठन्तु मम मस्तके।
शुभा मे चाऽग्रतः स्थातु लोहिता स्थातु दक्षिणे॥ ९९॥
वामाङ्गे रतिकाले च पश्चिमे स्थातु शृङ्खला।
शिखायां शङ्खिनी रक्षेद् वक्त्रे वक्त्रवती शुभा॥ १००॥
कवचे कवचाङ्गी च नेत्रे नेत्रकृतोत्सवा।
तिष्ठन्ति योगिनीरूपाः त्रैलोक्ये सचराऽचरे॥ १०१॥
योगिन्यो याः स्तुताः सर्वाः गेहं कुर्वन्तु मे वपुः।
पुत्राणां च तदा देयं भुक्तानां च विशेषतः॥ १०२॥

शक्तिन्यासमिदं देयं न देयं यस्य कस्यचित्।
मनुष्याणां महीलोके चिन्तितार्थफलप्रदम् ॥१०३॥
यः करोति मम न्यासं षोढा न्यासादिकं प्रभो।
स जीवन् शक्तिरूपो वै त्रैलोक्योन्मूलनक्षमः॥१०४॥
शक्तिन्यासकृते जीवे यः कश्चिच्छेदको भवेत्।
कर्मणा मनसा वाचा तस्य तापो भविष्यति॥१०५॥
शक्तिन्यासमिदं प्रोक्तं तुभ्यं शङ्कर मे प्रिये।
येन देहविमुक्तेन शक्तितुल्यो नरो भवेत्॥१०६॥
कुपितः कुरुते योगी त्रैलोक्यस्याऽपि पातनम्।
शक्तिन्यासयुतो वीरो नमस्कारेण शङ्कर॥
स्फोटनं कुरुते साक्षात् पाषाणप्रतिमादिषु॥१०७॥

॥इति शक्तिन्यासः॥

॥ अथ षोढार्णामूलविद्या न्यासः॥

तत्र मन्त्रवर्णेभ्योऽमृतं स्रवति, तेनामृतेन निजशरीरमाप्लावयन्तीं दीपाकारां ब्रह्मरन्ध्रस्थां महासौभाग्यदां श्रीविद्यां ध्यात्वा ; दक्षहस्तस्य मध्यमाऽनामिकाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रे प्रणवादिनमोन्तां मूलविद्यां न्यसेत् ॥१॥ पुनस्तामुच्चार्य; वामहस्तेन सौभाग्यदण्डिनीमुद्रां बध्वा वामकर्णप्रदेशे भ्रामयित्वा; महासौभाग्यं मे देहि परसौभाग्यं दण्डयामीति वामाङ्गदेशे मूर्धादिपादान्तं तथैव विन्यसेत् ॥२॥

वामां मुष्टिं दृढं बध्वा तर्जनीं प्रविसारयेत्।
भ्रामयेद्द्र वामकर्णान्तं मुदा सौभाग्यदण्डिनी॥३॥

तथैव पुनस्तामुच्चार्य; यमशत्रून् गृह्णामीति स्मृत्वा; 'रिपुं जिह्वाग्रहा मुद्रां' प्रदर्शयन् , पादमूले न्यसेत्।

"अङ्गुष्ठगर्भितं मुष्टिं बध्नीयाद् वामपाणिना।
रिपुं जिह्वाग्रहाख्येयं मुद्रोक्ता शत्रुनाशिनी" ॥१॥

तथैव तामुच्चार्य, 'त्रैलोक्यस्याह कर्तेति ध्यायन्, त्रिखण्डमुद्रया ललाटे तिलकत्वेन विन्यसेत् । तथैव तामुच्चार्य; वदने वेष्टनत्वेन विन्यसेत् । तथैव तां दक्षिणकर्णादिवामकर्णान्तं वेष्टनत्वेन मुखे विन्यसेत् । पुनः तथैव तां कण्ठादिमुखान्तं विन्यसेत् । पुनः तथैव तां ॐ प्रणवसम्पुटितामापादतलम् । मस्तकात् पादादिहृदयान्तं च विन्यसेत् । योनिमुद्रां बध्वा मूलविद्यया मुखे क्षिप्त्वा, तथैव प्रणमेत् । इति श्रीविद्यापूर्णे जगद्वशीकरणन्यासः ।

॥ अथ सम्मोहनन्यासः॥

तत्र श्री षोडशार्णां स्मरन् देवीं कान्त्या त्रैलोक्यमरुणवर्णां ध्यायेत् अनामिकां मूर्धानं परितो भ्रामयित्वा; विन्यस्य; श्रीषोडशार्णां तारादि नमोन्ताम् अङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यां ब्रह्मरन्ध्रे विन्यस्य, मणिबन्धद्वये पृथग्विन्यस्य, ललाटे चानामिके विन्यसेत् इति सम्मोहनन्यासः ।

॥ अथ श्रीषोडशार्णावर्णैः संहारन्यासः॥

तत्र पादयोः, ४ प्रथमबीजं नमः । जङ्घयोः; ४ द्वितीयबीजं नमः । जान्वोः, तृतीय०। कट्योः । ४ चतुर्थ०। लिङ्गे, ४ पञ्चम०। पृष्ठे, ४ षष्ठ०। नाभौ, ४सप्तम ०। पार्श्वयोः, ४ अष्टम ०। स्तनयोः, ४ नवम०। अंसयोः, ४ दशम ०। कर्णयोः, ४ एकादश०। ब्रह्मरन्ध्रे, ४ द्वादश०। वदने, ४ त्रयोदश०। नेत्रे, ४ चतुर्दश०। कर्णगुल्फसमीपे, ४ पञ्चदश०। कर्णवेष्टनयोः; ४ षोडशबीजं नमः । इति षोडशार्णैः संहारन्यासः ।

॥ अथ षोडशार्णैः सृष्टिन्यासः॥

तत्र ब्रह्मरन्ध्रे, ४ प्रथमबीजं नमः । ललाटे, ४ द्वितीयबी० । नेत्रयोः, ४ तृतीय०। कर्णयोः, चतुर्थ०। घ्राणयोः, ४ पञ्चम०। ओष्ठयोः, ४ षष्ठ०। दन्तान्तरयोः, ४ सप्तम०। दन्तोर्ध्वे, ४ अष्टम०। जिह्वायां, ४ नवम०। मुखान्तरे, ४ दशम०। पृष्ठे, ४ एकादश०। सर्वाङ्गे, ४ द्वादश०। हृदये, ४ त्रयोदश०। स्तनयोः; ४ चतुर्दश०। कुक्षौ, ४ पञ्चदश०। लिङ्गे,

४ षोडशबीजं नमः । इति वर्णान् विन्यस्य; समस्त षोडशार्णां विद्यया व्यापकं विन्यसेत् । इति सृष्टिन्यासः ।

॥ अथ स्थितिन्यासः ॥

तद्वर्णैः, तत्र करद्वयाङ्गुष्ठयो, ४ प्रथमबीजं नमः । एवं तर्जन्योः, ४ द्वितीय०। मध्यमयोः, ४ तृतीय०। अनामिकयोः, ४ चतुर्थ०। कनिष्ठयोः, ४ पञ्चम०। ब्रह्मरन्ध्रे, ४ षष्ठ०। मुखे, ४ सप्तम०। हृदि, ४ अष्टम०। नाभ्यादिपादान्तं, ४ नवम०। कण्ठादिनाभ्यन्तं, ४ दशम०। ब्रह्मरन्ध्रादि-कण्ठान्तं, ४ एकादश०। पादाङ्गुष्ठयोः, ४ द्वादश० । तर्जन्योः, ४ त्रयोदश० । तन्मध्यमयोः ४ चतुर्दशे०। तदनामिकयोः, ४ पञ्चदश०। कनिष्ठयोः, ४ षोडशबीजं नमः। इति स्थितिन्यासः।

॥ अथ श्रीषोडशार्णन्यासे - पञ्चविधवर्णन्यासः ॥

तत्र शिरसि, ४ प्रथमबीजं नमः । एवं मुखे, ४ द्वितीय०। दक्षनेत्रे, ४ तृतीय०। वामनेत्रे, ४ चतुर्थ०। दक्षकर्णे, ४ पञ्चम०। वामकर्णे, ४ षष्ठ०। दक्षनासापुटे, ४ सप्तम०। वामनासापुटे, ४ अष्टम०। दक्षगण्डे, ४ नवम०। वामगण्डे, ४ दशम०। ओष्ठे, ४ एकादश०।अधरे, ४ द्वादश०। मुखाभ्यन्तरे, ४ त्रयोदश०। ऊर्ध्वदन्ते, ४ चतुदर्श०।अधोदन्ते, ४ पञ्चदश०। वदने, ४ षोडशबीजं नमः। इत्येकप्रकारः।

तत्र , शिरसि ४ प्रथमबीजं नमः। सीमन्ते, ४ द्वितीय० । फाले, ४ तृतीय० । भ्रूमध्ये,४ चतुर्थ०। नासायां, ४ पञ्चम०। वदने, ४ षष्ठ०। दक्षबाहुमूले, ४ द्वादश० । तन्मध्ये, ४ त्रयोदश० । तन्मणिबन्धे, ४ चतुर्दश० । तदङ्गुलिमूले, ४ पञ्चदश० । तदग्रे, ४ षोडशबीजं नमः । इति द्वितीयप्रकारः ।

ततः शिरसि, ४ प्रथम बीजं नमः। ललाटे, ४ द्वितीय०। दक्षनेत्रे, ४ तृतीय०। वामनेत्रे, ४ चतुर्थ०। मुखे, ४ पञ्चम०। जिह्वाग्रे, ४ षष्ठ० । दक्षोरुमूले, ४ सप्तम०। जानुनि, ४ अष्टम०। गुल्फे,४ नवम०। तदङ्गुलिमूले, ४ दशम०। तदङ्गुल्यग्रे, ४ एकादश०। वामोरुमूले, ४ द्वादश०। तज्जानुनि, ४ त्रयोदश०। तद्गुल्फे, ४ चतुर्दश०। तदङ्गुलिमूले , ४ पञ्चदश०। तदङ्गुल्यग्रे, ४ षोडशबीजं नमः। इति तृतीयप्रकारः।

तत्र, शिरसि, ४ प्रथमबीजं नमः। मुखवृत्ते, ४ द्वितीय०। दक्षनेत्रे, ४ तृतीय०। वामनेत्रे, ४ चतुर्थ०। दक्षकर्णे, ४ पञ्चम०। वामकर्णे, ४ षष्ठ०। दक्षघ्राणे, ४ सप्तम०। वामघ्राणे, ४ अष्टम०। दक्षगण्डे, ४ नवम०। वामगण्डे, ४ दशम०। ओष्ठे, ४ एकादश०। अधरे, ४ द्वादश०। ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ४ त्रयोदश०। अधोदन्ते, ४ चतुर्दश०। मूर्ध्नि, ४ पञ्चदश०। जिह्वायां, ४ षोडशबीजं नमः। इति चतुर्थप्रकारः।

अथ, ललाटे, ४ प्रथम बीजं नमः। गले, ४ द्वितीय०। हृदि, ४ तृतीय ०। नाभौ, ४ चतुर्थ०। मूलाधारे, ४ पञ्चम०। ब्रह्मरन्ध्रे , ४ षष्ठ०। हृदि, ४ सप्तम० । मूलाधारे, ४ अष्टम०। पुनर्मूलाधारे, ४ नवम०। हृदि, ४ दशम०। ब्रह्मरन्ध्रे, ४ एकादश०। दक्षकरतले, ४ द्वादश०। वामकरतले, ४ त्रयोदश०। दक्षपादे, ४ चतुर्दश०। वामपादे०, ४ पञ्चदश०। हृदये, ४ षोडशबीजं नमः। इति पञ्चमप्रकारः।

इत्थं न्यासं विधाय; प्रणवसम्पुटितां श्रीषोडशार्णां सर्वाङ्गे व्यापकत्वेन विन्यस्य; पुनस्तथाविधां तां विद्यां हृदये न्यसेत्। एते न्यासाः षोडशार्णोपासकैरेव कार्याः। नान्यैरिति गुरुशासनम्। इति करशुद्ध्यादयो न्यासाः।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गो नवमो ह्यगात्॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते

सौभाग्यरत्नाकरे नवमस्तरङ्गः॥९॥

॥श्रीः॥

अथ दशमस्तरङ्गः

॥अथ ऊर्ध्वाम्नायन्यासः॥

स त्रिविधः। महाषोढान्यासः, शम्भुचरणादिषोडशमूलविद्या षडाधारमूलविद्यान्यासः षडन्वयशाम्भवन्यासश्चेति।

तत्र पराप्रसादेन ऊर्ध्वाम्नायदीक्षितानां महाषोढान्यासमात्रे अधिकारः। चरणादिविद्यादीक्षितानां तदादि– तदादिन्यासेष्वेवाधिकारः; न तु महाषोढान्यासे। उभयविधदीक्षितानां सर्वत्रैवाधिकार इति।

॥महाषोढान्यासः॥

तत्रास्य श्रीमहाषोढान्यासस्य, ब्रह्मा ऋषिः। जगती छन्दः। श्रीमदर्धनारीश्वरो देवता। श्री विद्याङ्गत्वे न्यासे विनियोगः। इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा; मूर्धादिषु विन्यस्य; अङ्गन्यासं कुर्यात्। अङ्गन्यासः त्र्यङ्गुलिदेहवक्त्रात्मकः।

॥त्र्यङ्गुलिन्यासः॥

तत्राङ्गुष्ठयोः ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं सूहौः हों ईशानाय नमः। तर्जन्योः, ४।२ हें तत्पुरुषाय नमः। मध्यमयोः ४।२ हुं अघोराय नमः। अनामिकयोः, ४ । २ हिं वामदेवाय नमः। कनिष्ठयोः, ४ । २ हं सद्योजाताय नमः। मूर्ध्नि, ४।२ हों ईशानाय नमः। मुखे, ४ ।२ हें तत्पुरुषाय नमः। हृदये, ४।२ हुं अघोराय नमः। गुह्ये, ४।२ हीं वामदेवाय नमः। पादयोः, ४।२ हं सद्योजाताय नमः। मूर्ध्नि, ४ हों ईशानाय नमः। ४।२ ऊर्ध्ववक्त्राय नमः। मुखे, ४।२ हं तत्पुरुषाय नमः। पूर्ववक्त्राय नमः। दक्षिणकर्णे, ४ ।२ हुं अघोराय दक्षिणवक्त्राय नमः। वामकर्णे, ४।२ हीं वामदेवाय उत्तरवक्त्राय नमः। चोरकूटे, ४।२ हं सद्योजाताय पश्चिमवक्त्राय नमः। इति त्र्यङ्गुलिन्यासः।

अयं पञ्चवक्त्रन्यासः। क्रमेण अङ्गुष्ठादिपञ्चाऽङ्गुलिभिः एकैकाङ्गुलिना एकैकवक्त्रे न्यस्तव्यः। इति त्र्यङ्गन्यासं विधाय; ततः ह्सीं ह्सीमित्यादिभिः करषडङ्गन्यासं कृत्वा; वक्ष्यमाणरूपं देवं हृदये ध्यात्वा न्यसेत्।

॥ प्रपञ्चन्यासः ॥

तद्यथा – ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं प्रपञ्चरूपायै श्रियै नमः। एवं सर्वत्र , ४।२ आं द्वीपरूपायै मायायै नमः। ४।२ इं जलधिरूपायै कमलायै नमः। ४।२ ईं गिरिरूपायै विष्णुवल्लभायै नमः। ४।२ उं पत्तनरूपायै पद्मधारिण्यै नमः। ४।२ ऊं पीठरूपायै समुद्रतनयायै०। ४।२ ऋं क्षेत्र-रूपायै लोकमात्रे०। ४।२ ॠं वनरूपायै कमलवासिन्यै०। ४।२ ऌं आश्रमरूपायै इन्दिरायै०। ४।२ ॡं गुहारूपायै मायायै०। ४।२ एं नदीरूपायै रमायै०। ४।२ ऐं चतुररूपायै पद्मायै०। ४।२ ॐ उद्भिजरूपायै नारायणप्रियायै०। ४।२औं स्वेदजरूपायै सिद्धलक्ष्म्यै०। ४।२ अं अण्डजरूपायै राजलक्ष्म्यै०। ४।२ अः जारजरूपायै महालक्ष्म्यै०। ४।२ कं लवरूपायै आर्यायै०। ४।२ खं तुटिरूपायै उमायै०। ४।२ गं कलारूपायै चण्डिकायै०। ४।२ घं काष्ठा-रूपायै दुर्गायै०। ४।२ ङं निमेषारूपायै शिवायै०। ४।२ चं श्वासरूपायै अवर्णायै०। ४।२ छं घटिकारूपायै अम्बिकायै०। ४।२ जं मुहूर्तरूपायै रत्यै०। ४।२ झं प्रहररूपायै ईश्वररूपायै०। ४।२ ञं दिनरूपायै शाम्भव्यै०। ४।२ टं सन्ध्यारूपायै ईशान्यै०। ४।२ ठं रात्रिरूपायै पार्वत्यै०। ४।२। डं विधिरूपायै मङ्गलायै०। ४।२ ढं वाररूपायै दाक्षायिण्यै०। ४।२ णं नक्षत्ररूपायै हैमवत्यै०। ४।२ तं योगरूपायै महामायायै०। ४।२ भं करणरूपायै महेश्वर्यै०। ४।२ दं पक्षरूपायै मृडान्यै०। ४।२ धं मासरूपायै रुद्राण्यै०। ४।२ नं राशिरूपायै शर्वाण्यै०। ४।२ पं ऋतुरूपायै परमेश्वर्यै०। ४।२ फं अयनरूपायै काल्यै०। ४।२ बं संवत्सररूपायै कात्यायिन्यै०। ४।२ भं युगरूपायै गौर्यै०। ४।२ मं प्रलयरूपायै भवान्यै०। ४।२ यं पञ्चभूतरूपायै ब्राह्म्यै०। ४।२ रं पञ्चतन्मात्ररूपायै वागीश्वर्यै०। ४।२ लं पञ्चकर्मेन्द्रियरूपायै वाण्यै०। ४।२ वं पञ्चज्ञानेन्द्रियरूपायै सावित्र्यै०। ४।२ शं पञ्चप्राणरूपायै सरस्वत्यै०।

४।२ षं गुणरूपायै गायत्र्यै०। ४।२ सं अन्तःकरणचतुष्टयरूपायै वाक्प्रदायै०। ४।२ हं अवस्थात्रयरूपायै शारदायै०।४।२ लं सप्तधातुस्वरूपायै भारत्यै०।४।२ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः क्षं दोषरूपायै विद्यात्मिकायै नमः। इत्येकपञ्चाशच्छक्तिमातृकास्थाने विन्यस्य; ततः, ४।२ अकारादिक्षकरान्तां मातृकामुच्चार्य; सकलप्रपञ्चादिदेवतायै श्रीपराऽम्बादेवतायै नमः। स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ सर्वाङ्गे व्यापकं कुर्यात्। इति प्रपञ्चन्यासः।

॥ अथ भुवनन्यासः ॥

तत्र पादयोः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं आं ई अतललोकनिलयशतकोटिगुह्ययोगिनी मूलदेवतायुताऽऽधारशक्त्याऽम्बादेव्यै नमः।गुल्फयोः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं आं इं ४।२ ईं उं ऊं वितललोकनिलयशतकोटिगुह्यतराऽनन्तयोगिनीमूलदेवतायुताऽऽधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।जङ्घयोः, ४।२ ऋं ॠं ऌं सुतललोकनिलयशतकोटिगुह्याचिन्त्ययोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः। जान्वोः, ४।२ ॡं एं ऐं महातललोकनिलयशतकोटिमहागुह्यस्वतन्त्रयोगिनीमूल०। ऊर्वोः , ४।२ ॐ औं तलातललोकनिलयशतकोटिपरमगुह्येच्छायोगिनीमूल०। स्फिच्योः, ४।२ अं अः रसातललोकनिलयशतकोटिरहस्यज्ञायोगिनी मू०।मूलाधारे, ४।२ कं खं गं घं ङं पाताललोकनिलयशतकोटिरहस्यतरक्रियायोगिनीमू०। स्वाधिष्ठाने, ४।२ चं भूलोकनिलयशतकोट्यतिरहस्यडाकिनीयोगिनी मू०।मणिपूरके, ४।२ टं ४ भुवर्लोकनिलयशतकोटिमहारहस्यराकिनीयोगिनी मू०। अनाहते , ४।२ तं ४ स्वर्लोकनिलयशतकोटिपरमरहस्यलाकिनी योगिनी मू०। विशुद्धौ। ४।२ पं ४ महर्लोकनिलयशतकोटिगुप्ततरकौलिनीयोगिनी मू०। आज्ञायां, ४।२ यं ३ जनलोकनिलयशतकोटिगुप्ततरसाकिनी योगिनी मू०। ललाटे, ४।२ शं ३ तपोलोकनिलयशतकोट्यतिगुप्तहाकिनी योगिनी मू०। ब्रह्मरन्ध्रे, ४।२ लं क्षं सत्यलोकनिलयशतकोटिमहागुप्तयाकिनीयोगिनीमूल-

देवतायुताऽऽधारशक्त्याम्बा देव्यै नमः। इति विन्यस्य; ४।२ समस्तमातृकामुच्चार्य; सकलभुवनाऽधिरूपायै श्रीपराऽम्बादेव्यै नमः। स्हौः ह्सौः श्री ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यात्। इति भुवनन्यासः।

॥ अथ मूर्तिन्यासः ॥

तत्र शिरसि, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं केशवाक्षरशक्त्यै नमः। मुखे, ४।२ आं नारायणाद्याशक्त्यै नमः। दक्षिणांसे, ४।२ इं माधवायेष्टदायै नमः। वामांसे, ४।२ ईं गोविन्दायैशान्यायै नमः। दक्षपार्श्वे, ४।२ उं विष्णवे उग्रायै नमः। वामपार्श्वे, ४।२ ऊं मधुसूदनाय ऊर्ध्वनयनायै नमः। दक्षकट्यां, ४।२ ऋं त्रिविक्रमाय ऋध्यै नमः। वामकट्यां, ४।२ ॠं वामनाय रूपिण्यै०। दक्षोरौ, ४।२ ऌं श्रीधराय लुप्तायै०। वामोरौ, ४।२ ॡं हृषीकेशाय लूनदोषायै०। दक्षजानुनि, ४।२ एं पद्मनाभाय नायकायै०। वामजानुनि, ४।२ ऐं दामोदरायैकारिण्यै०। दक्षजङ्घायां, ४।२ ओं सङ्कर्षणायौर्वकायै०। वामजङ्घायां, ४।२ औं वासुदेवायौघवत्यै०। दक्षपादे, ४।२ अं प्रद्युम्नायाऽञ्जनप्रभायै०। वामपादे, ४।२ अः अनिरुद्धायाऽस्थिमालाधरायै नमः। दक्षपादाग्राद्यूरूमूलपर्यन्तं, ४।२ कं–भं भवाय करभद्रायै नमः। वामपादाग्राद्यूरुपर्यन्तं, ४।२ खं–बं शर्वाय खगबलायै०। दक्षपार्श्वे,४।२ गं फं रुद्राय गरिमाफलप्रदायै०। वामपार्श्वे, ४।२ घं पं पशुपतये घोरपादायै०। दक्षदोर्मूले, ४।२ ङं नं उग्राय पङ्क्तिनासायै०। वामदोर्मूले, ४।२ चं धं महादेवाय चन्द्रधारिण्यै०। कण्ठे, ४।२ छं दं भीमाय छन्दोमयै०। वदने, ४।२ जं थं ईशानाय जगस्थानायै०। दक्षकर्णे, ४।२ झं तं तत्पुरुषाय झङ्कृत्यै०। वामकर्णे, ४।२ ञं णं अघोराय ज्ञानदानदायै०। फाले, ४।२ टं ढं सद्योजाताय टङ्कढङ्कधरायै०। शिरसि, ४।२ ठं डं वामदेवाय ठङ्कृतिडामर्यै०। मूलाधारे, ४।२ यं ब्रह्मणे यक्षिण्यै०। स्वाधिष्ठाने, ४।२ रं प्रजापतये रञ्जिन्यै०। मणिपूरके, ४।२ लं वेधसे लक्ष्म्यै०। अनाहते, ४।२ वं परमेष्ठिने वज्रिण्यै०। विशुद्धौ, ४।२ शं पितामहाय शशिधरायै०।

आज्ञायां, ४।२ षं विधात्रे षडाधारलयायै० । अर्धेन्दौ, ४।२ सं विरिञ्चये सर्वनयिकायै० । रोधिन्यां, ४।२ हं स्रष्ट्रे हसिताऽऽननायै० । नादे, ४।२ ळं चतुरासनाय ललितायै० । नादान्ते, ४।२ क्षं हिरण्यगर्भाय क्षमायै नमः । इति विन्यस्य; ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः सह्रौः सकलमातृकामुच्चार्य; सकलत्रिमूर्त्यात्मिकायै श्रीपराऽम्बादेव्यै नमः । सह्रौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यात् । इति मूर्तिन्यासः ।

॥ अथ मन्त्रन्यासः ॥

तत्र मूलाधारे, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः सह्रौः अं आं इं एकलक्षकोटि-भेदप्रणवाद्येकाक्षरात्मकाखिलमन्त्राऽधिदेवतायै सकलफलप्रदायै एक कूटैश्वैर्यम्बादेव्यै नमः । स्वाधिष्ठाने, ४।२ ईं उं ऊँ द्विलक्षकोटिभेद-हंसाद्यक्षरात्मकाऽखिलमन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै द्विकूटैश्वर्यम्बादेव्यै नमः । मणिपूरके, ४।२ ऋं ॠं ऌं त्रिलक्षकोटिभेदवह्न्यादित्र्यक्षरात्मकाऽखिल-मन्त्राधिदेवतायै सकलफलप्रदायै त्रिकूटेश्वर्यम्बादेव्यैः नमः । अनाहते, ४।२ ॡं एं ऐं चतुर्लक्षकोटिभेदचन्द्रादिचतुरक्षरात्मकाखिलमन्त्राधिदेवतायै चतुः कूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः । विशुद्धौ, ४।२ ओं औं अं अः पञ्चलक्षकोटिभेद-सूर्यादिपञ्चाक्षरात्मिकाऽखिल० पञ्चकूटेश्वर्यम्बायै नमः । आज्ञायां ४।२ कं खं गं षट्लक्षकोटिभेदस्कन्दादिषडक्षरात्मिकाऽखिलषट्कूटेश्वर्य० । बिन्दौ, ४।२ घं ङं चं सप्तलक्षकोटिभेदगणपत्यादिसप्ताक्षरात्मिकाऽखिल० सप्तकूटैश्वर्य० । अर्धेन्दौ, ४।२ छं जं झं अष्टलक्षकोटिभेदबटुकाद्यष्टाक्षरात्मि-काऽखिल ० अष्टकूटेश्वर्य० । रोधिन्यां, ४।२ ञं टं ठं नवलक्षकोटिभेद-ब्रह्मादिनवाक्षरात्मिकाऽखिल० नवकूटेश्वर्य० । नादे, ४।२ डं ढं णं दशलक्षकोटिभेदविष्ण्वादिदशाक्षरात्मिकाऽखिल० दशकूटेश्वर्य० । नादान्ते ४।२ तं थं दं एकादशलक्षकोटिभेदरुद्राद्येकादशाक्षरात्मिकाऽखिल ०। एकादशकूटेश्वर्य० शक्त्यै, ४।२ धं नं पं द्वादशलक्षकोटिभेदवाण्यादि-

द्वादशाक्षरात्मिकाऽखिल० द्वादशकूटेश्वर्य०।व्यापिकायां, ४।२ फं बं भं त्रयोदशलक्षकोटिभेदलक्ष्म्यादित्रयोदशाक्षरात्मिकाऽखिल० त्रयोदशकूटेश्वर्य०। समानस्थाने, ४।२ मं यं रं चतुर्दशलक्षकोटिभेदगौर्यादिचतुर्दशाक्षरात्मिकाऽखिल० चतुर्दशकूटेश्वर्य०। उन्मन्यां, लं वं शं पञ्चदशलक्षकोटिभेददुर्गादिपञ्चदशाक्षरात्मिकाऽखिल० पञ्चदशकूटेश्वर्य०। ध्रुवमण्डले,४।२ षं सं हं लं क्षं षोडशलक्षकोटिभेदत्रिपुरादिषोडशाक्षरात्मिकाऽखिलमन्त्राधिदेवातायै सकलफलप्रदायै षोडशकूटेश्वर्यम्बादेव्यै नमः।

ततः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं: स्हौः सकलमातृकामुच्चार्य; सकलमन्त्राधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः। स्हौं: ह्सौ; श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकं कुर्यात्। इति मन्त्रन्यासः।

॥ अथ दैवतन्यासः॥

तत्र दक्षपादे, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं: स्हौः अं आं सहस्रकोटिऋषिकुलसेवितायै निवृत्याम्बादेव्यै नमः। वामपादे, ४।२ इं ईं सहस्रकोटियोगिनीकुलसेवितायै प्रतिष्ठाम्बादेव्यै नमः। दक्षगुल्फे, ४।२ उं ऊं सहस्रकोटितापसिकुलसेवितायै विद्याम्बायै नमः। वामगुल्फे, ४।२ ऋं ॠं सहस्रकोटिशान्तकुलसेवितायै शान्त्यतीताम्बायै नमः। दक्षजङ्घायां, ४।२ ऌं ॡं सहस्रकोटिमुनिकुलसेवितायै शान्त्यताताम्बादेव्यै नमः। वामजङ्घायां, ४।२ एं ऐं सहस्रकोटिदैवतकुलसेवितायै हृल्लेखादेव्यम्बायै नमः। दक्षजानुनि, ४।२ ओं औं सहस्रकोटिराक्षसकुलसेवितायै गगनाम्बादेव्यै नमः। वामजानुनि, ४।२ अं अः सहस्रकोटिविद्याधरकुलसेवितायै रक्ताम्बादेव्यै नमः। दक्षोरौ, ४।२ कं खं सहस्रकोटिसिद्धकुलसेवितायै महोच्छुष्मादेव्यै नमः। वामोरौ, ४।२ गं घं सहस्रकोटिसाध्यसेवितायै करालिकादेव्यम्बायै नमः। दक्षोरुमूले, ४।२ ङं चं सहस्रकोटि अप्सरकुलसेवितायै जयाम्बादेव्यै नमः। वामोरुमूले, ४।२ छं जं सहस्रकोटिगन्धर्वसेवितायै विजयाम्बादेव्यै नमः। दक्षपार्श्वे, ४।२ झं ञं सहस्रकोटिगुह्यसेवितायै अजिताम्बादेव्यै नमः। वामपार्श्वे ४।२ टं ठं

सहस्त्रकोटियक्षकुलसिवितायै अपराजिताम्बादेव्यै नमः। दक्षस्तने ४।२ डं ढं सहस्त्रकोटिकिन्नरकुलसेवितायै वामाम्बादेव्यै नमः। वामस्तने, ४।२ णं तं सहस्त्रकोटिपन्नगकुलसेवितायै ज्येष्ठादेव्यै नमः। दक्षदोर्मूले, ४।२ थं दं सहस्त्रकोटिपितृकुलसेवितायै रौद्र्यम्बादेव्यै नमः। वामदोर्मूले, ४।२ धं नं सहस्त्रकोटिगणेश्वरकुलसेवितायै मायाम्बादेव्यै नमः। दक्षभुजे, ४।२ पं फं सहस्त्रकोटिभैरवकुलसेवितायै कुण्डलिन्यम्बादेव्यै नमः। वामभुजे, ४।२ बं भं सहस्त्रकोटिबटुककुलसेवितायै काल्यम्बादेव्यै नमः। दक्षांसे, ४।२ मं यं सहस्त्रकोटिक्षेत्रेशकुलसेवितायै कालरात्र्यम्बादेव्यै नमः। वामांसे, ४।२ रं लं सहस्त्रकोटिप्रमथकुलसेवितायै भगवत्यम्बादेव्यै नमः। दक्षकर्णे, ४।२ वं शं सह० ब्रह्मकुल० सर्वेश्वर्यम्बा०। वामकर्णे, ४।२ षं सं सह० विष्णुकुल० सर्वज्ञाम्बा०। फाले, ४।२ हं लं सहस्त्ररुद्रकुल० सर्वकर्त्र्यम्बा०। ब्रह्मरन्ध्रे, ४।२ क्षं सहस्त्र० चराचरकुल० कुलशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

ततः सकलमातृकामुच्चार्य; समस्तदेवताधिरूपायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः। स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ इति व्यापकन्यासं कुर्यात्। इति दैवतन्यासः।

॥ अथ मातृकान्यासः॥

तत्र मूलधारे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः कं ४ अनन्तकोटिभूचरीसहितायै आं क्षां मङ्गलादेव्यै आं क्षां ब्रह्माण्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिभूतकुलसहितायै अं क्षं मङ्गलानाथाय अं क्षं **असिताङ्गभैरवाय** नमः। स्वाधिष्ठाने, ४।२ चं अनन्तकोटिखेचरीकुलसहितायै ईं लां चर्चिकाम्बादेव्यै ईं लां महेश्वर्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिबेतालकुलसहिताय इं लं चर्चिकानाथाय इं लं **रुरुभैरवाय** नमः। मणिपूरके, ४।२ टं ४ अनन्तकोटिपातालचरीकुलसहितायै ऊं हां योगीश्वर्यम्बादेव्यै ऊं हां कौमार्यम्बादेव्यै अनन्तकोटिपिशाचकुलसहितायै उं हं योगीश्वरनाथाय उं हं **चण्डभैरवाय** नमः। अनाहते, ४।२ तं ४ अनन्तकोटिदिक्चरीकुलसहितायै ॠं सां हरसिद्धाम्बादेव्यै ॠं सां वैष्णव्यम्बादेव्यै, अनन्तकोटिदिक्चरकुलसहिताय ऋं सं दिक्चरनाथाय ऋं सं **क्रोधभैरवाय** नमः। विशुद्धौ, ४।२ पं ४ अनन्तकोटिसहचरीकुलसहितायै ॡं षां

भट्टिन्यम्बादेव्यै लूं षां वाराह्यम्बादेव्यै, अनन्तकोटिब्रह्मराक्षसकुलसहिताय लूं षं भट्टीनाथाय लूं षं उन्मत्तभैरवाय नमः। आज्ञायां, ४।२ यं ३ अनन्तकोटिगिरिचरीकुलसहितायै ऐं शां किलिकिलाम्बादेव्यै ऐं शां इन्द्राण्यम्बादेव्यै, अनन्तकोटिचेटककुलसहिताय एं शं किलिकिलिनाथाय एं शं कपालभैरवाय नमः। ललाटे, ४।२ शं ३ अनन्तकोटिवनचरीकुलसहितायै औ वां कालरात्र्यम्बादेव्यै ओं वां चामुण्डादेव्यै, अन्नतकोटिप्रेतकुलसहिताय ऊँ वं कालरात्रिनाथाय ऊँ वं भीषणभैरवाय नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, ४।२ लं क्षं अनन्तकोटिजलचरीकुलसहितायै अः लां भीषणाम्बादेव्यै अः लां महालक्ष्म्यम्बादेव्यै, अनन्तकोटिकूष्माण्डकुलसहिताय अं लं भीषणनाथाय अं लं संहारभैरवाय नमः।

ततः ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौं: अं आं ५१ समस्तमातृका भैरवाधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः। स्हौः ह्सौः श्रीं ह्रीं ऐं ओम् इति व्यापकं कुर्यात्। इति मातृकान्यासः।

॥ अथ महाषोढान्यासः ॥

ततः पूर्वोक्तैः ह्सां स्हां इत्यादिभिः करषडङ्गन्यासं विधाय; देवं ध्यायेत्। तद्यथा –

अमृतार्णवमध्योद्यत्स्वर्णद्वीपे मनोरमे।
कल्पवृक्षवनान्तःस्थे नवमाणिक्यमण्डपे॥ १॥
नवरत्नमयं श्रीमत्सिंहासनगताऽम्बुजे।
त्रिकोणान्तःसमासीनं चन्द्रसूर्यसमप्रभम्॥ २॥
अर्धाम्बिकासमायुक्तं प्रविभक्तविभूषणम्।
कोटिकन्दर्पलावण्यं सदा षोडशवार्षिकम्॥ ३॥
मन्दस्मितमुखाऽम्भोजं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम्।
दिव्याम्बरस्रगाऽऽलेपं दिव्याऽऽभरणभूषितम्॥ ४॥
पानपात्रं च चिन्मुद्रां त्रिशूलं पुस्तकं करैः।
विद्यासंविद्विभ्राणं सदानन्दमुखेक्षणम्॥ ५॥

महाषोढोदिताऽशेष–देवतागणसेवितम् ।
एवं चित्ताम्बुजे ध्यायेद् अर्धनारीश्वरं शिवम् ॥ ६ ॥
पुरुषं वा स्मरेद् देवीं स्त्रीरूपं वा विचिन्तयेत् ।
अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ ७ ॥
सर्वं तेजोमयं ध्यायेत् सचराचरविग्रहम् ॥

इति स्वाऽऽत्माभेदेन ध्यात्वा; योनि-लिङ्ग-धेनु-कपाल-ज्ञान-त्रिशूल-पुस्तक-वनमाला-नमस्कार-महामुद्राः इति दशमुद्रां विरच्य; शिरसि श्रीगुरुं ध्यायेत् । तद्यथा –

सहस्रदलपङ्कजे सकलश्रीरश्मिप्रथं
वराऽभयकराम्बुजं विमलगन्धपुष्पाम्बरम् ।
प्रसन्नवदनेक्षणं सकलदेवतारूपिणं
स्मरेच्छिरसि सन्ततं तदभिधानपूर्वं गुरुम् ॥

इति श्रीगुरुं ध्यात्वा; तद्विद्यया तत्पादुकां शिरसि विन्यस्य; प्रणम्य; स्वगुरुकृतं स्वनाम-स्वमूलाधारे स्मृत्वा; शिवरूपं स्वात्मानं ध्यायेत् ॥

अथ महाषोढान्यासफलम्

श्रीकुलार्णवे–

एवं न्यासे कृते देवि साक्षात् परशिवो भवेत् ।
मन्त्रे न चाऽत्र सन्देहो निग्रहाऽनुग्रहे क्षमः ॥ १ ॥
महाषोढाह्वयं न्यासं यः करोति दिने दिने ।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति तं नमामि न संशयः ॥ २ ॥
महाषोढाह्वयं न्यासं यत्र मन्त्रान्न्यसेत् ततः ।
दिव्यक्षेत्रं समुद्दिष्टं समं तादृशयोजनम् ॥ ३ ॥

कृत्वा न्यासमिदं देवि यत्र गच्छति मानवः।
तत्र श्रीर्विजयो लाभः स मान्यः पुरुषः प्रिये ॥४॥
महाषोढाकृतं न्यासस्त्वद्दीक्षयाभिवन्दिते।
समासान् मृत्युमाप्नोति यदि त्राता शिवः स्वयम् ॥५॥
वज्रपञ्जरनामानि एवं न्यासं करोति यः।
दिव्याऽन्तरिक्ष-भू-शैल-जलाऽरण्यनिवासिनः ॥६॥
उद्दण्डभूतवेतालदेवरक्षोग्रहादयः।
भयग्रस्तेन मनसा नेक्षन्ते साधकं प्रिये ॥७॥
महाषोढाह्वयं न्यासं ब्रह्मा-विष्णु-शिवादयः।
देवाः सर्वे प्रकुर्वन्ति ऋषयश्च मुनीश्वराः ॥८॥
बहुनोक्तेन किं देवि सुशिष्याय प्रकाशयेत्।
अक्षयां लभते सिद्धिं रहसि न्यासमाचरेत् ॥९॥
अस्मात्परतरः साक्षाद् देवता भावसिद्धिदाः।
लोके नास्ति न सन्देहो सत्यं सत्यं न संशयः ॥१०॥
ऊर्ध्वाम्नायप्रवेशश्च परा प्रासादचिन्तनम्।
महाषोढापरिज्ञानं नाऽल्पस्य तपसः फलम् ॥११॥

इत्थं महाषोढान्यासं विधाय; चरणादिदीक्षायुक्तश्चेत् तद्विषयकं न्यासं कुर्यात्।

॥ तत्रादौ विश्रान्तिचरणन्यासः ॥

तत्र शिरसि, ॐ ऐं ह्लीं श्रीं हं सः शिवः हसौ सोऽहं तुरीयविद्यामुच्चार्य; सच्चिदानन्दज्योतिरहमेव। ॐ ऐं ह्लीं श्रीं हं सः शिवः हसौः सोऽहं तुरीयविद्यामुच्चार्य; सच्चिदानन्दज्योतिरहमेव। ॐ ऐं ह्लीं श्रीं हं सः शिवः हसौः सोऽहं तुरीयविद्यामुच्चार्य; सच्चिदानन्दज्योतिरहमेवास्मि। इति चरणत्रयं सङ्घट्टनमुद्रया विन्यस्य; क्षणं विश्रमेत्।

॥ अथ शम्भुचरणन्यासः ॥

तत्र शिरसि, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ॐ योऽहमस्मि, सोऽहमस्मि, अहमस्मि, ब्रह्माऽहमस्मि, ब्रह्मैवाऽहमस्मि, सोऽहं स्वच्छप्रकाशपरिपूर्णपरापरमहा-प्रकाशपरिपूर्णाऽऽनन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः। इति सङ्घट्टनमुद्रया विन्यस्य, स्वात्मानं सकलप्रपञ्चोत्तीर्णसंविदैकस्वभावं सच्चिदानन्दमयं विचिन्त्य; पञ्चाम्बान्यासं कुर्यात्।

॥ अथ पञ्चाम्बान्यासः ॥

तद्यथा – तत्र शिरसि, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आदिनाथव्योमातीताम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ४ अनादिनाथव्योमेश्वर्यम्बाश्री०। ४ अनामयनाथव्योमगाम्बाश्री०। ४ अनन्तानन्दनाथव्योमचारिण्यम्बाश्री०। ४ चिदाभासानन्दनाथव्योमस्थाम्बाश्री०। इति पञ्चाम्बान्यासः।

॥ अथ नवाकाशनाथन्यासः ॥

तत्र शिरसि, ४ हं उन्मनाकाशानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि। ४ सं समयानन्दनाथश्री०। ४ क्षं व्यापकाकाशानन्दनाथश्री०। ४ मं शक्त्याकाशानन्दनाथश्री०। ४ लं ध्वन्याकाशानन्दनाथश्री०। ४ वं ध्वनिमात्राकाशानन्दनाथश्री०। ४ रं अनाहताकाशानन्दनाथश्री०। ४ यं इन्द्वाकाशानदनाथश्री०। ४ ॐ बिन्द्वाकाशानन्दनाथश्री०। ४ हसक्षमलवरयूं समस्ताकाशानन्दनाथश्री०। इति नवाकाशनाथन्यासः।

॥ अथ आत्मानन्दादिनवनाथन्यासः ॥

तत्र शिरसि, ४ आत्मानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि। ४ परमात्मानन्दनाथश्री०। ४ शाम्भवानन्दनाथश्री०। चिन्मुद्रानन्दनाथश्री०। ४ वाग्भवानन्दनाथश्री०। ४ लीलानन्दनाथश्री०। ४ सम्भ्रमानन्दनाथश्री०। ४ चिदानन्दनाथश्री०। ४ प्रसन्नविश्वानन्दनाथश्री०। अत्रोर्ध्वाम्नाये पञ्चाम्बाः दिव्यौघः। आत्मानन्दनाकादयो मानवौघः। इति गुरुपङ्क्तिन्यासः। सङ्घट्टमुद्रया शिरस्येव न्यसनीयाः।

॥ अथ स्वपारम्पर्यन्यासः ॥

तत्र, ४ यज्ञेश्वरानन्दनाथसौसंविदानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि नमः। ४।२ स्वात्मानन्दनाथश्री०।४।२ सच्चिदानन्दनाथश्री०।४।२ चिदानन्दनाथश्री०। सौः ४।२ संविदानन्दनाथश्री०।४।२ ब्रह्मानन्दनाथश्री०। सौः ४।२ सच्चिदानन्दनाथश्री०।४।२ पूर्णानन्दनाथश्री०।४।२ संविदानन्दनाथश्री०। ततः ४।२ स्वगुरुपादुकां पूर्ववत् न्यसेत्। इति स्वपारम्पर्यन्यासः।

॥ अथ षोडशमूलविद्यान्यासः ॥

ततः शिरसि ४ स्वच्छप्रकाशपरिपूर्णपरापरमहासिद्धविद्याकुलयोगिनी ह्लीं कुलयोगिनी पञ्चविंशार्णा मूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि। ४ ह्सौः आत्मानं बोधय स्हौंः एकादशाक्षरिप्रासादे पराम्बामूलविद्यां श्री०।४ ऐं ब्लूं क्लिन्ने क्लेदिनीमहामदे क्लीं क्लेदय क्लेदय, क्लां क्लीं मोहय मोहय क्लीं नमः स्वाहा। त्रयस्त्रिंशदक्षरा अतिरहस्ययोगिनीमूलविद्या श्री०।४ हं सः।४।२ स्वच्छानन्दपरमहंसपरमात्मने स्वाहा। सहक्ष्रौं एकविंशदक्षरार्णा शाम्भवीमूलविद्याश्री०। ४ ह्लीं नित्यस्फुरत्ता चैतन्यानन्दमयी महाबिन्दुव्यापकमातृस्वरूपिणी ऐं ह्लीं ई ओं त्रिदशाक्षरा चिद्हल्लेखामूलविद्या श्री०।४ ऐं ह्लीं श्रीं स्वच्छप्रकाशात्मिके ह्लीं कुलमहामालिनी ऐं कुलगर्भमातृके ह्लीं ऐं समयविमले श्रीं समयविमलामूलविद्या श्री०। ४ हं सः नित्यप्रकाशात्मिके कुलकुण्डलिनी आज्ञासिद्धिमहाभैरवी आत्मानं बोधय बोधय, अम्बे भगवति ह्लीं ह्रूं परबोधिनीमूलविद्या श्री०। ४ ॐ मोक्षं कुरु कुरु, कुलपञ्चाक्षरीमूलविद्या श्री०।४ लोपामुद्रापञ्चदशाक्षरीमुच्चार्य; चैतन्यत्रिपुरामूलविद्याश्री०।४ ऐं शुद्धसूक्ष्मनिराकारनिर्विकल्पपरब्रह्मस्वरूपिणी क्लीं परानन्दशक्तिः सौः शाम्भवानन्दनाथ–अनुत्तरकौलिनी मूलविद्याश्री०।४ हं सः सोऽहं स्वच्छानन्दपरमहंसपरमात्मने स्वाहा। गुरूत्तमविमर्शिनी मूलविद्याश्री०। अनामाख्या व्योमाऽतीतनाथपरापरव्योमातीतव्योमेश्वरी अम्बा अनामाख्यमूलविद्याश्री०।४ ऐं ईं कं सङ्केतसारामूलविद्याश्री०। ४ ह्लीं भगवति विच्चे वाग्वादिनी ह्लीं क्लीं महाह्रदमायया मतङ्गिनी ऐं क्लिन्ने ब्लूं स्त्रीं अनुत्तरवाग्वादिनी मूलविद्याश्री०। ४ ह्सौ ह्स्ख्फ्रें ह्स्क्लीं ह्सौः

अनुत्तरशाङ्करीमूलविद्याश्री०।४ तुरीयविद्यामुच्चार्य; सर्वानन्दमये महाचक्रे बैन्दवे परब्रह्मस्वरूपिणी पराऽमृतशक्तिः सर्वमन्त्रेश्वरी सर्वविद्येश्वरी सर्वपीठेश्वरी सर्ववीरेश्वरी सर्वयोगीश्वरी सर्ववागीश्वरी सर्वसिद्धेश्वरी सकलजगदुत्पत्तिमातृकाः सचक्राः सदेवताः समुद्राः ससिद्धाः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सशक्तिकाः सालङ्काराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः सन्तु शून्याशून्यविवर्जितशक्तिश्रीत्रिपुरसुन्दरीमूलविद्याश्रीपादुकां पूजयामि।४।२ इति चरणादिषोडशविद्यान्ताः सङ्घट्टमुद्रया शिरस्येव विन्यसेत्। सङ्घट्टमुद्रा तु शिवशक्त्यात्मकदक्षिणवामकरयोः पृथक् पृथक् कनिष्ठारहिताङ्गुलि-चतुष्टयाग्रयोगरूपा युगपदधोमुखं शिरसि निहिता भवेत् इति षोडशमूलविद्यान्यासः।

अथ षडाधारमूलविद्यान्यासः

तत्र, मूलाधारे, ४ हं सः स्वात्मानन्दविभूत्यै स्वाहा, मूलधारविद्या श्री०। स्वाधिष्ठाने, ४ सोऽहं परमहंसविभूत्यै स्वाहा, स्वाधिष्ठाने विद्याश्री०। मणिपूरके, ४ हं सः सोऽहं स्वच्छानन्दनाथपरमहंसपरमात्मने स्वाहा, मणिपूरकविद्याश्री०। अनाहते, ४ हं सः स्वात्मानं बोधय बोधय, श्रीपरमात्मानन्दनाथ अनाहतविद्याश्री०। विशुद्धौ ४ सोऽहं परमात्मानं बोधय बोधय स्वात्मानन्दनाथ विशुद्धविद्याश्री०। आज्ञायां, ४ सः सोऽहं स्वच्छा-नन्दनाथचित्प्रकाशामृतहेतवे स्वाहा आज्ञाविद्याश्रीपादुकां पूजयामि। इति षडाधारमन्त्रान्; तत्र चक्रे मनसा विन्यस्य; पुनः सङ्घट्टमुद्रया शम्भुचरणमात्रं विन्यस्य; स्वात्मानं शिवरूपं ध्यायेत्। इति चरणादिन्यासः।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गो दशमोऽगमत्॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते

सौभाग्यरत्नाकरे दशमस्तरङ्गः॥१०॥

॥ श्रीः ॥

अथैकादशस्तरङ्गः

अथ षडन्वयशाम्भवदीक्षायुक्तश्चेत् तं तन्त्रोक्तं न्यासं कुर्यात् । तद्यथा–

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्फ्रें ह्सौः हसक्षयमलवरयूं अमुकानन्दनाथ ह्सौः ह्स्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं ॐ श्रीपादुकां पूजयामि। इति शाम्भवतन्त्रोक्तगुरुपादुका-विद्याया श्रीगुरुपादुकां शिरसि, सङ्घट्टमुद्रया विन्यस्य; ध्यात्वा; गन्धादिभिः सम्पूज्य; दक्षिणांसे ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्फ्रें ह्सौः ग्लौं हं सौः ह्सफ्रें श्रीं ह्रीं ऐं हेरम्बाय नमः। वामांसे ऐं ह्रीं श्रीं हस्फ्रैं ह्सौः ह्स्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं दुर्गायै नमः। दक्षौरौ ५वं बटुकभैरवाय नमः। वामोरौ, ५ सं सरस्वत्यै नमः। ५ ह्रीं हुं हं क्षं ज्वालामुखभैरवाज्ञया मांसादात् रक्ष रक्ष, हुं स्वाहा। ५ आत्मासनाय नमः। इति स्वासनं सम्पूज्य; दक्षवामहस्तौ शिवशक्त्यात्मकौ ध्यात्वा; सहस्रारे हुं अस्त्राय फट्। इति मन्त्रेण तालत्रयं दशदिग्बन्धनमग्निप्राकारं च कृत्वा; कनिष्ठिकयोः, ५ ग्लूं गगनरत्नाय ग्लूं ५ नमः। अनामिकयोः, ५ ग्लूं स्वर्गरत्नाय ग्लूं नमः। मध्यमयोः, ५ ग्लूं मर्त्यरत्नाय ग्लूं ५ नमः। तर्जन्योः, ५ ग्लूं पातालरत्नाय प्लूं ५ नमः। अङ्गुष्ठयोः, ५ न्लूं नागरत्नाय न्लूं ५ नमः। करतलकरपृष्ठयोः ५ ग्लूं स्लूं प्लूं न्लूं पञ्चरत्नाय ५ नमः। इति पञ्चरत्नन्यासः।

ततः ५ महस्रौः ऐं फें५ इति परमेश्वर परमेश्वरीविद्याभ्यां करयोर्व्यापकं कृत्वा; मूर्धादिपादान्तं सर्वाङ्गं व्यापकं कुर्यात्। ततः ५ सहस्रां फां ५ हृदयाय नमः। ५ सहस्रीं फीं ५ शिरसे स्वाहा; ५ सहस्रं फूं शिखायै वषट्। ५ सहस्रैं फैं कवचाय हुं। ५ सहस्रौं फौं ५ नेत्रत्रयाय वौषट्। ५ सहस्रः फः ५ अस्त्राय फट्। इति कनिष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य; हृदयादिषु च विन्यसेत्।

॥ अथ वक्त्रन्यासः ॥

तत्र चूडाऽधः सहस्रां फां ५ पश्चिमवक्त्राय नमः। वामकर्णे, ५ सहस्रीं फीं ५ उत्तरवक्त्राय नमः। दक्षिणकर्णे ५ सहस्रूं फूं ५ दक्षिणवक्त्राय

नमः। मुखे ५ सहस्त्रैं फैं ५ पूर्ववक्त्राय नमः। शिरसि ५ सहस्त्रौं फौं ५ ऊर्ध्व-वक्त्राय नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, ५ सहस्त्रः फः ५ परवक्त्राय नमः। इति वक्त्रन्यासः।

॥अथ बीजषोढान्यासः॥

तत्र, कुलमूले, ५ स जूं ५ नमः। ब्रह्मरन्ध्रे, ५ ह्रूं ५ नमः। फाले, ५ ख ट ल ह घ र यूं ५ नमः। दक्षशङ्खे, ५ स ह क्ष र यूं ५ नमः। वामशङ्खे ५ क्षुं औं ५ नमः। दक्षभ्रुवि, ५ सृह फ्रें ५ नमः। वामभ्रुवि ५ सृत्यूयूं ५ नमः। भ्रूवोर्मध्ये, ५ सृस्त्रूं ५ नमः। जिह्वायां, ५ सृह्लीं ५ नमः। तालुनि, ५ क्षरक्षुं ५ नमः। दक्षकर्णे, ५ फट् ५ नमः। वामकर्णे, ५ स हं ५ नमः। चोरकूपे, ५ लमयरयूं ५ नमः। गलगण्डे, ५ ह स्त्रुं ५ नमः। कण्ठगर्ते ५ डरयूं ५ नमः। दक्षस्तनोपरि, ५ जूं यरू औं ५ नमः। वामस्तनोपरि, ५ ड म रूं ५ नमः। दक्षस्तनमण्डले, ५ ह सौः ५ नमः। वामस्तनमण्डले, ५ जूं ५ नमः। दक्षकक्षे ५ सकलिं ५ नमः। वामकक्षे ५ ऐं ५ नमः। नाभौ ५ हस्त्रैं ५ नमः। दक्षपाणितले ५ फं ५ नमः। वामपाणितले ५ फ्रें ५ नमः। लिङ्गाग्रे ५ सहीं ५ नमः। लिङ्गमूले ५ ह्सौ ५ नमः। मेदसि, ५ भ्रें ५ नमः। दक्षांसे, ५ फ्रें ५ नमः। वामांसे, ५ स् ह् क्ष् म् ल् य् र् यूं ५ नमः। ब्रह्मसूत्रे ५ हं नमः। पायौ, ५ ह् सृक्ष्र्यूं ५ नमः। गुददक्षिणे ५ ह स फ्रुरुं ५ नमः। गुदवामे, ५ ह्सृरौ ५ नमः। पायुमार्गे ५ ह्लौं ५ नमः। दक्षिणजानुचक्रे, ...। वामंजानुचक्रे ५ ऋं ५ नमः। दक्षजङ्घायां ५ डहु औं ५ नमः। वामजङ्घायां, ५ स ह र क्षुं ५ नमः। दक्षगुल्फे ५ ब्रं ५ नमः। वामगुल्फे, ५ द्रुं ५ नमः। दक्षगुल्फाधः, ५ हुं क्षं फट् ५ नमः। वामगुल्फाधः ५ अं ५ नमः। दक्षयमद्वारे ५ नं फ य रीं ५ नमः। यमद्वारमिति–पादाङ्गुष्ठाभ्यन्तरस्थनिम्नप्रदेशः। वामयमद्वारे, ५ जक्षह्रौं ५ नमः। दक्षपादतले, ५ हस्त्रं ५ नमः। वामपादतले, ५ ह्रं फट् ५ नमः। पृष्ठवंशे ५ चलमहीं ५ नमः। दक्षपार्श्वे,५ ज् स् ह् स् जूं ५ नमः। वामपार्श्वे, ५ क्षं ५ नमः। दक्षकूर्परे, ५ हुं फट् ५ नमः। वामकूर्परे, ५ सृहीं ५ नमः। दक्षमणिबन्धे, ५ गृसमृयृनूलूं ५ नमः। वाममणिबन्धे ५ ल्वृर्यृह्सृं ५ नमः। दक्षांसे ५ ह्सृफ्रें ५ नमः। वामांसे ५ क्षं फट् क्षरूं ५ नमः दक्षचिबुके ५ फ्रें ५ नमः। वामचिबुके, ५ क्ष्णूर्यं ५ नमः। दक्षनेत्रे, ५ ह् र् य् फट् फ्रीं ५ नमः। वामनेत्रे, ५ क्ष्मां ५ नमः। नासाग्रे, ह्यूं नमः।

दक्षतर्जन्यगङ्गुष्ठसन्धौ ५ ह्लीं ५ नमः। वामतर्जन्यङ्गुष्ठसन्धौ ५ स ह क ल ह्लीं ५ नमः। दक्षनासिकायां, ५ ह्लीं ५ नमः। वामनासिकायां ५ स क ल ह्लीं ५ नमः। इति विन्यस्य; मूर्धादिपादान्तं पादादिमूर्धान्तं व्यापकत्वेन पञ्चप्रणवपुटितैः आकारादिक्षकारान्तैः मातृकार्क्षरैः सकृत् न्यसेत्॥ इति बीजषोढान्यासः।

॥अथ मालिन्यादिषोढान्यासः॥

तत्र प्रथमो मालिनिन्यासः। शिखायां, ५ नादिन्यै ५ नमः। पश्चिमास्ये, ५ ॠं निवृत्यै ५ नमः। उत्तरास्यै ५ ॠं प्रतिष्ठायै ५ नमः। दक्षिणास्ये, ५ ॡं विद्यायै ५ नमः। पूर्वास्ये, ५ ॡं शान्त्यै ५ नमः। ऊर्ध्वास्ये, ५ थं ग्रसिन्यै ५ नमः। नेत्रयोः, ५ दं प्रियदर्शिन्यै ५ नमः। नासायां ५ ईं गुह्यशक्त्यै ५ नमः। ऊर्ध्वनेत्रे, ५ चं चामुण्डायै ५ नमः। वदने, ५ वं वज्रिण्यै ५ नमः। दक्षोर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ५ कं कराल्यै ५ नमः। वामोर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ५ खं कपालिन्यै ५ नमः। ऊर्ध्वशूले ५ गं शिखायै ५ नमः। अधःशूले, ५ घं घोषायै० ५ नमः। दंष्ट्रायां, ५ वं वीरायै ५ नमः। जिह्वायां, ५ इं मायै ५ नमः। वाचि, ५ ॐ वागीश्वर्यै ५ नमः। कर्णयोः, ५ णं नारायण्यै ५ नमः। दक्षकर्णबिले, ५ ॐ मोहिन्यै ५ नमः। वामकर्णबिले, ५ ऊं प्रज्ञायै ५ नमः। कण्ठे ५ वं शिखावाहिन्यै ५ नमः। दक्षांसे ५ भं भीषण्यै ५ नमः। वामांसे, ५ पं वायुवेगायै ५ नमः। दक्षभुजे, ५ ॐ भीमायै ५ नमः। वामभुजे, ५ टं विनायक्यै ५ नमः। दक्षपाणौ, ५ ठं पूर्णायै ५ नमः। वामपाणौ, ५ शक्त्यै ५ नमः। दक्षकराङ्गुष्ठे, ५ झं झङ्कार्यै ५ नमः। वामकराङ्गुष्ठे, ५ ञं कुदिन्यै ५ नमः। दक्षकरशूलदण्डे, ५ टं कालिकायै ५ नमः। वामकरशूलदण्डे, ५ रं दीपिन्यै ५ नमः। शूलाग्रे ५ जं जयायै ५ नमः। हृदये, ५ पं पावन्यै ५ नमः। उदरे, ५ बं लम्बिन्यै ५ नमः। नाभौ, ५ क्षं संहारिण्यै ५ नमः। दक्षस्तने, ५ छं छागल्यै ५ नमः। वामस्तने ५ लं पूतनायै ५ नमः। दक्षस्तनोपरि, ५ आं आमोदायै ५ नमः। वामस्तनोपरि, ५ सं परमशक्त्यै ५ नमः। प्राणे, ५ हं अम्बायै ५ नमः। चित्ते, ५ अः इच्छाशक्त्यै ५ नमः। नितम्बद्वये ५ मं महाकाल्यै ५ नमः। गुह्ये, ५ शं पुष्पास्तृष्ण्यै ५ नमः। शुक्रे, ५ अं सूक्ष्मायै ५ नमः। ऊरुद्वये ५ तं तारायै ५ नमः। दक्षजानुनि, ५ रं ज्ञानशक्त्यै ५ नमः। वामजानुनि, ५ ऐं क्रियाशक्त्यै

५ नमः। दक्षजङ्घायां, ५ ऊँ गायत्र्यै ५ नमः। वामजङ्घायां, ५ औं सवित्र्यै ५ नमः। दक्षपादे, ५ दं वह्न्यै ५ नमः। वामपादे, ५ फं फट्करिण्यै ५ नमः। एं ह्रीं श्री ह्स् फ्रें ह्सौः नं फां ह्रां ह्रीं मालिनी सर्वाङ्गेषु पूजयामि ५ नमः। इति सर्वाङ्गे व्यापकं कुर्यात्। इति मालिनीन्यासः।

॥ अथ शब्दराशिन्यासः ॥

स तु प्रागुक्तश्रीकण्ठादिन्यास एव तत्र प्रोक्ततया बीजमपहाय, पञ्चप्रणवसम्पुटितः कार्यः। तत्र ऐं ह्रीं श्री ह्स्फ्रें ह्सरौः अं श्रीं कण्ठेशाय पूर्णोदर्यै हसौः ह्स्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं नमः। इत्यादि शब्दराशिन्यासः।

॥ अथ त्रिविद्यान्यासः ॥

नाभौ, ऐं ह्रीं ह्स्फ्रें ह्सौः ऐं ह्रीं अघोरे ह्रीं सः ह्सौः ह्स्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं नमः। हृदये, ५ परमघोरे हुं घोररूपे ह्सौः घोरमुखि भीमे भीषणे वम पिब हे हिं र र रु रु र ह्रीं फ्रें ह्सौः ५ नमः। भ्रूमध्ये, ५ स्फट् ५ नमः। इति विद्यान्यासः।

॥ अथ अघोरिकाष्टकन्यासः ॥

तत्र, शिरसि, ५ ऐं ह्रीं घोरे ह्रीं हं सः अघोरायै ५ नमः। फाले ५ परमघोरे हुं परमघोरायै ५ नमः। भ्रूमध्ये ५ घोररूपे ह्सौः घोररूपायै ५ नमः। मुखे, ५ घोरमुख सः घोरमुख्यै ५ नमः कण्ठे। ५ भीमे सः भीमायै ५ नमः। हृदये ५ भीषणे सः भीषणायै ५ नमः। उदरे, ५ व म सः वमन्यै ५ नमः। नाभौ, ५ पिब सः पिबन्यै ५ नमः। इति अघोरिकाऽष्टकन्यासः।

॥ अथ द्वादशाङ्गन्यासः ॥

तत्र, पादयोः, ५ स्र्हें सिध्यै ५ नमः। कण्ठे, ५ स्र्हें सुमुखायै ५ नमः। मुखे, ५ स्र्हें मालिन्यै ५ नमः। कर्णयोः ५ स्र्हें नन्दायै ५ नमः। नेत्रयोः, ५ स्र्हें हयवेगायै ५ नमः। फाले, ५ स्र्हें महामुख्यै ५ नमः। शिरसि, ५ स्र्हें विश्वेशायै ५ नमः। इति द्वादशाङ्गन्यासः।

॥अथ षडङ्गन्यासः॥

तत्र, हृदि, ५ स्र्हां सर्वज्ञातायै ५ हृदयाय नमः। ६ स्ह्रीं अमृततेजो ज्वालामालिनीनित्यतृप्तायै ५ शिरसे स्वाहा। ५ स् हं वेदवेदिनि अनादिबोधायै ५ शिखायै वषट्। ५ स्ह्रैं वह्निवज्रधराय स्वाहा स्वतन्त्रायै ५ कवचाय हुम्। ५ स्ह्रौं नित्यमलुप्तशक्तये ५ नेत्रत्रयाय वौषट्। ५ स्ह्रः अनन्तशक्तियुक्ताय पाशुपतास्त्राय हुं फट् । इति षडङ्गन्यासः। तत्तन्मुद्रया कार्यः। इति मालिनीन्यादि-षोढान्यासः।

॥अथ पञ्चमहारत्नन्यासः॥

तत्र, आज्ञाचक्रे, ५ ग्लुं गगनरत्नगगनपीठगगनलोक – गर्भगामिनी गगननाथ–गगनाम्बागगनेश्वरीचतुःषष्ठिलक्षकोटियोगिन्यम्बा ग्लूं ५ श्री पादुकां पूजयामि नमः। विशुद्धचक्रे, ५ स्लूं स्वर्गरत्न-स्वर्गपीठ-स्वर्गलोक-गर्भगामिनी स्वर्गनाथस्वर्गाम्बा–स्वर्गेश्वरी द्वात्रिंशल्लक्षकोटियोगिन्यम्बा ५ स्लूं श्रीपादुकां पूजयामि नमः। अनाहते. ५ म्लूं मर्त्यरत्न-मर्त्यपीठ-मर्त्यलोकगर्भ-गामिनी मर्त्यनाथमर्त्यम्बा मर्त्येश्वरी षोडशलक्षकोटि - योगिन्यम्बा म्लूं ५ श्री पादुकां पूजयामि नमः। मणिपूरके, ५ प्लूं पातालरत्नपातालपीठपाताललोकगर्भ-गामिनीपातालाम्बा पातालेश्वरी अष्टकोटियोगिन्यम्बाप्लूं ५ श्रीपादुकां पूजयामि नमः। स्वाधिष्ठानचक्रे, ५ न्लूं नागरत्ननागपीठनागलोकगर्भगामिनी नागनाथ नागाऽम्बा नागेश्वरी चतुर्लक्षकोटियोगिन्यम्बा न्लूं ५ श्री पादुकां पूजयामि नमः। इति पञ्चमहारत्नन्यासः॥

॥अथ परादित्रिविधन्यासः॥

तत्र, अङ्गुष्ठयोः, ५ ऐं परायै ऐं ५ नमः। तर्जन्यो, ५ हूं इच्छायै हूं ५ नमः। मध्यमयोः, ५ ऐं ज्ञानायै ऐं ५ नमः। अनामिकयोः, ५ श्रीक्रियायै श्रीं ५ नमः। कनिष्ठयोः ५ ह्रीं कुण्डलिन्यै ह्रीं नमः। करतलकरपृष्ठयोः ५ फ्रें मातृकायै फें ५ नमः। इति करन्यासः।

अथ हृदयादिषडङ्गेषु एभिरेव मन्त्रैः सञ्जातिभिः न्यसेत्।

ततः पश्चिमवक्त्रे, ५ ऐं परायै ऐं ५ नमः। उत्तरवक्त्रे, ५ ह्रूं इच्छायै ह्रूं ५ नमः। दक्षिणवक्त्रे, ५ ऐं ज्ञानायै ऐं ५ नमः। पूर्ववक्त्रे, ५ श्रीं क्रियायै श्रीं ५ नमः। ऊर्ध्ववक्त्रे, ५ ह्रीं कुण्डलिन्यै ह्रीं ५ नमः। परवक्त्रे, ५ फ्रें मातृकायै फ्रें ५ नमः। इति परादित्रिविधन्यासः।

॥ अथ पारम्पर्यन्यासः ॥

तत्र, शिरसि, ५ ह स क्ष म ल व र यूं स ह क्ष म ल व र यीं श्रीं अमुकानन्दनाथ ५ श्रीपादुकां पूजयामि। इति सङ्घट्टमुद्रया स्वगुरुपादुकां विन्यस्य; ब्रह्मरन्ध्रे, अः हं सः सोऽहं शोः अः सौः ज्योतिःपराम्बा निर्वाणानन्दनाथ सौः शों अः सोऽहं हं सः अः ५निर्वाणचरणश्री०। इति सङ्घट्टमुद्रया न्यसेत्।

तत्रैव ५ ॐ ह्रीं कामदुघे अमोघे परदे विच्चे स्फुर स्फुर, श्रीं श्रीं श्रीं ५ कुलकामधेनुश्री०।

ततस्तत्रैव दक्षभागे,५ ह्स्लों शुक्लविद्यामहापीठ शुक्लपुष्पमहापीठ शुक्लमण्डलमहापीठ शुक्लचरुमहापीठ शुक्लमन्त्रमहापीठशुक्लदीपमहापीठ शुक्लमुद्रामहापीठ शुक्लनदीमहापीठ महाप्रकाशानन्दनाथ ह्स्रों ५ शुक्लचरण श्रीं वामभागे, ५ स्ह्रौं रक्तविद्यामहापीठ रक्तपुष्पमहापीठ रक्तमण्डलमहापीठ रक्तचरुमहापीठ रक्तमन्त्रमहापीठ रक्तदीपमहापीठ रक्तमुद्रामहापीठ रत्नदीमहापीठ महाप्रकाशिनी पराम्बा स्हौ ५ रक्तचरणा श्रीपा०। ब्रह्मरन्ध्रमध्ये, ५ ह्स्रौं सहरौ मिश्रिविद्यामहापीठ मिश्रिपुष्पमहापीठमिश्रिमण्डलमहापीठ मिश्रिचरुमहापीठ मिश्रिमन्त्रमहापीठ मिश्रिदीपमहापीठ मिश्रिमुद्रामहापीठ मिश्रिनदीमहापीठमहाप्रकाश महाप्रकाशिनी सामरस्यानन्दनाथमिश्रपादसह्रौं ह्स्रौं ५ मिश्रचरणश्रीपादुकां०। इति सङ्घट्टमुद्रया न्यसेत्। इति चरणत्रयन्यासः।

॥ अथ दिव्यौघादिगुरुपङ्क्तित्रयन्यासः ॥

तत्र शिरसि ५ लं ब्रह्ममहाप्रेतपद्मासनाय नमः। लं ब्रह्मश्रीपादुकां०। तत्रैव ५ वं विष्णुमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। वं ५ विष्णुश्रीपा०। ५ रं रुद्रमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। रं ५ रुद्रश्रीपा०। ५ यं ईश्वरमहाप्रेतपद्मासनाय

नमः। यं ५ ईश्वरश्री०। ५ हं सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। हं ५ सदाशिवश्री०। ५ सं हेमगर्भमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। सं ५ हेमगर्भश्री०। ५ ऐं परायै ऐं पराम्बाश्री०। ५ हूं इच्छायै हूं इच्छाम्बाश्री०। ५ ऐं ज्ञानायै ऐं ५ ज्ञानाम्बाश्री०। इति दिव्यौघः।

॥अथ सिद्धौघः॥

५ अं आदिनाथानन्दनाथ आदिपराम्बा आं ५ श्रीपा०। ५ अं अचिन्त्यानन्दनाथ अचिन्तापराम्बा अं ५ श्रीपा०। ५ अं अव्यक्तानन्दनाथ अव्यक्तपराम्बा अं ५ श्रीपा०। ५ कुं कुलेश्वरानन्दनाथकुलेश्वरीपराम्बा कुं ५ श्रीपा०। इति सिद्धौघः।

॥अथ मानवौघः॥

५ चं चर्यातुष्णीशानन्दनाथ सिद्धपराम्बा ५ ऊष्मीशापराम्बाश्री०। ५ चिं चिणीमित्रीशानन्दनाथ कुब्जिकापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ गं गगनानन्दनाथ चाडुलीश्री पराम्बा ५ श्री पा०। ५ चन्द्रगर्भानन्दनाथ बालेभागीपराम्बा ५ श्रीपा०। ५ मुक्तानन्दनाथ सहिलापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ ललितानन्दनाथ शङ्खपराम्बा करुणापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ ऐं श्रीकण्ठानन्दनाथश्रीकण्ठपराम्बा ५ श्रीपा०। ५ परेश्वरानन्दनाथ परेश्वरीपराम्बा ५ श्रीपा०। ५ कुमारानन्दनाथ सहजापराम्बा रत्नादेवी पराम्बा ५ श्रीपा०। रत्नानन्दनाथ ज्ञानदेवीपराम्बा ५ श्रीपा०। ब्रह्मानन्दनाथ नादिनीपराम्बा ५ श्रीपा०। ५ अजेशानन्दनाथ-महिलापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ प्रतिष्ठानन्दनाथ सहजापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ शिवानन्दनाथ प्रतिभापराम्बा ५ श्री०। ५ चिदानन्दनाथ सहजापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ श्रीकण्ठानन्दनाथ विद्याशक्तिपराम्बा ५ श्रीपा०। ५ शिवानन्दनाथ सहजापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ सोमानन्दनाथसहजापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ संविदानन्दनाथ सहजापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ विबुधानन्दनाथ विबुधापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ भैरवानन्दनाथ भैरवीपराम्बा ५ श्री पा०। ५ आनन्दानन्द-नाथ आनन्दापराम्बा ५ श्रीपा०। ५ कामेश्वरानन्दनाथ कामेश्वरी

परम्बा ५ श्रीपा०। ५ कमलानन्दनाथ सहजापराम्बा ५ श्री पा०। इति गुरुपङ्क्तित्रयं ब्रह्मरन्ध्र एव सङ्घट्टमुद्रया विन्यस्य; पुनः शाम्भवप्रकारेण उक्तपादुकाविद्यया स्वगुरुपादुकां विन्यस्य; स्वगुरुकृतनाम स्वमूलाधारे इति गुरुक्रमन्यासः।

॥ अथ षडन्वयमन्त्रन्यासः ॥

आज्ञायां, ५ सह्लें हौ ऐं फ्रें श्रीपरमेश्वरानन्दनाथ परमेश्वरीपराम्बा ५ श्री पा०। विशुद्धौ, ५ ह्लूं ऐं कुब्जि फें श्री विच्चेश्वरानन्दनाथ विच्चेश्वरीपराम्बा ५ श्री पा०। अनाहते, ५ ह्फ्रे ऐं कुब्जिकायै ह फ्रें विच्चे हंसेश्वरानन्दनाथ हंसेश्वरी पराम्बा ५ श्री पा०। स्वाधिष्ठाने, ५ ह्लां ह्लूं ह्लीं ह्सुरयूं ह्स्रयीं क्ष्लां क्ष्लूं क्ष्लीं किणि किणि ह्सफरां ह्स्फ्रूं ह्स्फरीं विच्चे ह्रौ हस हस ह्स्फ्रें हसक्षमलवयरूं औं हसक्षमलवयरीं हसक्षमलवयरूं हसक्षमलवयरीं हसक्षमल-वयरीं ऐं ह्स्री ह्स्रूं ह्स्रौं ह्लीं ह्लूं ह्लां ऐं नित्ये भगवति ह्स्फ्रें कुलेश्वरी ह्लां ह्लूं ह्लीं ह्लां क्लीं ह्लूं ह्लौं डः भणनमो क्षां क्षू क्षीं क्ष्नः क्षम् श्री फट् ह्सरौं क्रीं अधोमुखीकुब्जिकायै छ्रां छ्रीं घोरे अघोरे यं रं लं वं हं सं किणि किणि महाकिणि विच्चे संवर्त्तेश्वरानन्दनाथ संवर्तेश्वरी पराम्बा ५ श्रीपा०। मणिपूरके, ५ हसब्रूं ऐं रिंगटि पिंगटि कंटपि विच्चे द्वीपेश्वरानन्दनाथ द्वीपेश्वरी पराम्बा ५ श्री पा०। मूलाधारे, ५ हसक्षमलवरयूं नमो भगवते ह्स्फ्रें कुब्जिकायै ह्लां ह्लूं ह्लीं ऊँ ञ ण नमो अघोरमुखी छ्रां छ्रूं छ्रीं किणि किणि विकिणि विच्चे नवात्मेश्वरानन्दनाथ नवात्मेश्वरीपराम्बा ५ श्रीपा०। इति षडन्वयमन्त्रन्यासः।

ततः परमेश्वरपरमेश्वरीमूलविद्याया व्यापकन्यासं कृत्वा; देवं हृदये ध्यायेत्। तद्यथा –

'सहस्रसूर्यसङ्काशो महादीप्तिधरो गुरुः।
षडन्वयेश्वरः श्रीमान् परशम्भुरजोऽव्ययः॥
षडाननः स्फुरन् नेत्र-त्रयषट्कसमन्वितः।
द्वीपी चर्मकटिभ्राजन् मुण्डमालाविभूषणः॥

नादास्थितः पारिजातपुष्पमालासमावृतः।
ब्रह्मनाभिगताङ्गुष्ठो दंष्ट्राविस्रुतलालसः॥
विचित्राऽऽभरणैर्युक्तः सर्ववित्-पशुपाशहृत्।
शूलाऽसीषु-शक्ति-सृणि-वरधारि-महातनुः॥
कपाल-फल-चापादि पाशाऽभयकराऽम्बुजः।
देवाऽऽवृतः पितृवने क्रीडाकृन् मानसोत्तरे॥
एवं परेश्वरीं ध्यायेत् स्तनभारविराजिताम्।
मानसं शाम्भवं ज्ञात्वा जपेद्विद्यामनन्यधीः॥

दक्षोर्ध्वकरमारभ्य, दक्षाधः करपर्यन्तं; वामोर्ध्वकरमारभ्य वामाधः करपर्यन्तमायुधध्यानम्। इति ध्यात्वा; अभिसम्पूज्य; मूलविद्याद्वयं पुनः समभ्यर्च्य; समर्प्य; अथ चरणद्वितयं स्मरेद् इति स्वैक्येन ध्यात्वा; मानसैः पूजयित्वा; पञ्चप्रणवसम्पुटितं परेश्वरबीजं यथाशक्ति जपित्वा; तथैव परमेश्वरीमन्त्रं जपित्वा; देवजपं समर्प्य; षडन्वयशाम्भवाऽधिदेवतां ललितां स्वाऽऽत्मानं ध्यायेत्।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गोऽयमेकादशः॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे एकादशस्तरङ्गः॥११॥

॥ श्री ॥

अथ द्वादशस्तरङ्गः

न्यासं कृत्वा, षडन्वयशाम्भवरश्मिस्मरणं कुर्यात्। तत्र प्रथमं मानसपरेश्वरक्रमः।

तत्र आज्ञाचक्रे, ५ हिरण्यगर्भं षडाऽऽननं स्वर्णवर्णं शिवासनं ध्यात्वा; तस्य नाभिपद्मकर्णिकां स्लौं इति परेश्वरकूटं बालार्कवर्णं ध्यात्वा; तदुद्भवं ध्यानोक्तरूपं परेश्वरं देवमात्मानं ध्यात्वा; तं सर्वगुरुस्वरूपं सशववाहनं परेश्वरं ब्रह्मरन्ध्रे सञ्चिन्त्य; मूलाधारे; वाग्भवोत्थां परेश्वरीं ध्यानोक्तरूपां पञ्चदशफणायुक्तां अहीन्द्रमध्यफणाऽन्वितां ध्यात्वा, पुनस्तां तेजोरूपां ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं ध्यात्वा; तेन तेजसा साऽवयवीकृत्य, परेश्वरेण संयोज्य न्यासोक्तेन एकीकृतेन मन्त्रेण देवं देवीञ्च मानसैरुपचारैः पूजयेत्।

ततस्तं परितः शिरसि षट्कोणं विभाव्य; तस्य कोणेषु ईशानादि-वायव्यान्तेषु चतुष्कादिक्रमेण प्रादक्षिण्येन द्वात्रिंशद्रश्मयो मिथुनरूपा पूज्याः।

तत्र ईशानकोणे प्रथमं मिथुनं चतुष्टयं रक्तवर्णं ध्यात्वा; ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्फ्रें ह्स्फ्रौः ऐं परानन्दनाथपरापराम्बा ऐं ह्सौः ह्स्द्भें श्रीं ह्रीं ऐं श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ४ ऐं भानन्दनाथ भापराम्बा ऐं ५ श्रीपादुकां०। ५ ऐं चिदानन्दनाथ चित्पराम्बा ऐं ५ पा०। ५ ऐं महामायानन्दनाथ महामायापराम्बा ऐं ५ श्रीपा०। इति चतुष्टयम्।

अथ पूर्वकोणे, मिथुनपञ्चकां, शुक्लवर्णां ध्यात्वा; ५ ह्रूं इच्छा-नन्दनाथ इच्छापराम्बा ह्रूं ५ श्रीपा०। ५ ह्रूं सृष्ट्यानन्दनाथ सृष्टि-पराम्बा ह्रूं ५ श्रीपा०। ५ ह्रूं स्थित्यानन्दनाथ स्थितिपराम्बा ह्रूं ५ श्री०। ५ ह्रूं निरोधानन्दनाथ निरोधपराम्बा ह्रूं ५ श्री०। ५ ह्रूं मुक्त्यानन्दनाथ मुक्तिपराम्बा ५ श्री०।

अथ आग्नेयकोणे, मिथुनचतुष्कं धूम्रवर्णं ध्यात्वा; ५ ऐं ज्ञानानन्दनाथ ज्ञानपराम्बा ५ श्री० । ५ ऐं सत्यानन्दनाथ सत्यपराम्बा ५ श्री० । ५ असत्यानन्दनाथ असत्यपराम्बा ५ श्री० । ५ ऐं सदसत्यानन्दनाथ सदसतीपराम्बा ऐं ५ श्री० ।

अथ नैर्ऋतिकोणे, मिथुनसप्तकं कृष्णवर्णं ध्यात्वा; ५ श्रीं क्रियानन्दनाथ क्रियापराम्बा श्रीं ५ श्री० । ५ श्रीं आत्मविद्यानन्दनाथ आत्मवतीपराम्बा श्रीं ५ श्रीं० । ५ श्रीं इन्द्रियानन्दनाथ इन्द्रियापराम्बा श्रीं ५ श्री० । ५ श्री० गोचरानन्दनाथ गोचरापराम्बा श्रीं ५ श्री० । ५ श्रीं लोकमुख्यानन्दनाथ लोकमुख्यापराम्बा श्रीं ५ श्री० । ५ श्रीं वेदानन्दनाथ वेदपराम्बा श्रीं ५ श्री० । ५ श्रीं संविदानन्दनाथ संवित्पराम्बा श्रीं ५ श्री० ।

ततः पश्चिमकोणे, मिथुनचतुष्कं पीतवर्णं ध्यात्वा; ५ ह्लीं कुण्डल्यानन्दनाथ कुण्डलीपराम्बा ह्लीं ५ श्री० । ५ ह्लीं सुषुम्नानन्दनाथ सुषुम्नापराम्बा ह्लीं ५ श्री० । ५ ह्लीं प्राणसूत्रानन्दनाथ प्राणसूत्रापराम्बा ह्लीं ५ श्री० । ५ ह्लीं स्यन्दनानन्दनाथ स्यन्दनापराम्बा ह्लीं ५ श्री० ।

ततो वायव्यकोणे, मिथुनाष्टकं पीतवर्णं ध्यात्वा; ५ फ्रें मातृकानन्दनाथ मातृकापराम्बा फ्रें ५ श्री० । ५ फ्रें शब्दानन्दनाथ शब्दापराम्बा फ्रें ५ श्री० । ५ फ्रें वर्णजानन्दनाथ वर्णजापराम्बा फ्रें ५ श्री० । ५ फ्रें वर्गानन्दनाथ वर्गजापराम्बा फ्रें ५ श्री० । ५ फ्रें संयोगानन्दनाथ संयोगापराम्बा फ्रें ५ श्री० । ५ फ्रें मन्त्रविग्रहानन्दनाथ मन्त्रविग्रहा पराम्बा फ्रें ५ श्री० । इति रश्मिक्रमं सम्पूज्य; विन्यस्य; पुनर्देवदेव्यौ पूजयेदिति मानसपरेश्वरक्रमः ।

॥ अथ नाभसविच्चेश्वरक्रमः ॥

तत्र विशुद्धिचक्रे, ह्स्रं इति विच्चेश्वरबीजं शुद्धस्फटिकसङ्काशं ध्यात्वा; तदुद्भवं देवमात्मानम्,

शुद्धस्फटिकसङ्काशं षट्चक्रं द्वादशाङ्घ्रिकम् ।
भैरवाभं शूलचक्रं अङ्कुशं च शरान् वरम् ॥

दक्षे च वामके तद्वत् शङ्ख-ध्वजाऽहिनृमुखम्।
चापाऽभये च बिभ्राणं तद्वन्तीं च कुलेश्वरीम्॥

दक्षोर्ध्व-वामोर्ध्वक्रमेण आयुधक्रमः। इति सदाशिवप्रेतासनस्थं विच्चेश्वरीरूपमात्मानं ध्यात्वा; ५ ह्स्रां हृदयाय नमः। ५ ह्स्रीं शिरसे स्वाहा। एवं षड्दीर्घयुक्तबीजेन करषडङ्गचक्रन्यासं प्राग्वद् विधाय; मूलाधारे देवीं मन्त्रणान्तिमं फ्रेमिति बीजं शुद्धस्फटिकसङ्काशं ध्यात्वा; तदुद्भूतां देवीं विच्चेश्वरसदृशीं ध्यात्वा; षड्दीर्घयुक्तफ्रेमिति बीजेन पञ्चप्रणवसम्पुटितेन प्राग्वत् करषडङ्गवक्त्रं न्यासं कृत्वा; विच्चेश्वरीं तेजोरूपां मूलादिब्रह्मरन्ध्रां ध्यात्वा, विशुद्धौ विश्राम्य पुनः सावयवां तां विच्चेश्वरेण संयोज्य; देवदेविरूपमात्मानं ध्यायन्, पञ्चप्रणवसम्पुटितबीजद्वयेन पुनः प्राग्वद् अङ्गन्यासं कृत्वा; पूर्वोक्तविद्यया देवदेव्यौ मानसोपचारैः सम्पूज्य; पुनर्ब्रह्मरन्ध्रे ध्यात्वा, मानसं पूजयित्वा, षट्कोणं विभाव्य, तस्य पूर्वादि- ईशानान्तकोणेषु षट्क-षट्क-क्रमेण षट्त्रिंशत् रश्मिमिथुनानि न्यसेत्।

तत्र पूर्वकोणे, मिथुनषट्कं शुक्लवर्णं ध्यात्वा; ५ हं हृदयानन्दनाथ-कौलिनीपराम्बा हं ५ श्री०। ५ धं धरानन्दनाथ धात्रीपराम्बा धं ५ श्री०। ५ भां भावानन्दनाथ विच्चेश्वरीपराम्बा भां ५ श्री०। ५ भं भवानन्दनाथ-योगिनीपराम्बा भं ५ श्री०। ५ मं महानन्दनाथ ब्रह्माधारपराम्बा मं ५ श्री०। ५ सं सर्वानन्दनाथ शाम्भवी पराम्बा सं ५ श्री०।

अथ आग्नेयकोणे, द्वितीयषट्कं रक्तवर्णं ध्यात्वा; ५ इं द्रवानन्दनाथ कालिकापराम्बा इं ५ श्री०। ५ वं वशानन्दनाथ दुष्टचाण्डाली पराम्बा वं ५ श्री०। ५ मों मोहानन्दनाथ घोरेशीपराम्बा मों ५ श्री०। ५ मं मनोभवा-नन्दनाथ हेलापराम्बा मं ५ श्री०। ५ सें सेकानन्दनाथमहारक्तापराम्बा सें ५ श्री०। ५ ज्ञां ज्ञानानन्दनाथ कुब्जकापराम्बा ज्ञां ५ श्री०।

अथ निर्ऋतिकोणे, मिथुनषट्कं श्यामवर्णं ध्यात्वा; ५ खें खेटानन्द नाथ डाकिनीपराम्बा खें ५ श्री०। ५ ज्वां ज्वालानन्दनाथ शाकिनीपराम्बा ज्वां

५ श्री० । ५ मं महाङ्कुशानन्दनाथ लाकिनीपराम्बा मं ५ श्री० । ५ श्रीं श्रियोज्वलानन्दनाथ काकिनीपराम्बा श्रीं ५ श्री० । ५ तें तेजीशानन्दनाथ साकिनीपराम्बा तें ५ श्री । ५ मूं मूर्धानन्दनाथ हाकिनीपराम्बा मूं ५ श्री० ।

ततः पश्चिमकोणे, मिथुनषट्कं धूम्रवर्णं ध्यात्वा; ५ वां वायव्यानन्दनाथ पद्मापराम्बा वां ५ श्री० । ५ कुं कुलानन्दनाथ सिंहापराम्बा कुं ५ श्री० । ५ सं सारानन्दनाथ कुलेश्वरीपराम्बा सं ५ श्री० । ५ विं विश्वम्भरानन्दनाथ कृपापराम्बा विं ५ श्री० । ५ कुं कुटिलानन्दनाथ कूर्ममालपराम्बा कुं ५ श्री० । ५ गं गालवानन्दनाथ कलिनीपराम्बा गं ५ श्री० ।

ततो वायव्यकोणे, मिथुनषट्कं अरुणवर्णं ध्यात्वा; ५ व्यों व्योमानन्दनाथ व्योमपराम्बा व्यों ५ श्री० । ५ श्वं श्वसनानन्दनाथ नादापराम्बा श्वं ५ श्री० । ५ खें खेचरानन्दनाथ महिमापराम्बा खें ५ श्री० । ५ बां बाहुलानन्दनाथ महामायापराम्बा बां ५ श्री० । ५ ज्ञां ज्ञानानन्दनाथ कुण्डलीपराम्बा ज्ञां ५ श्री० । ५ विं विश्वानन्दनाथ कुलेश्वरीपराम्बा विं ५ श्री० ।

ततः ईशानकोणे, मिथुनषट्कं स्फटिकवर्णं ध्यात्वा; ५ आं आज्ञानन्दनाथ सिद्धापराम्बा आं ५ श्री० । ५ मं मदनानन्दनाथ द्वीपिकापराम्बा मं ५ श्री० । ५ यं यशानन्दनाथ रेचिकापराम्बा यं ५ श्री० । ५ शं शङ्खानन्दनाथ मोचिकापराम्बा शं ५ श्री० । ५ पं परानन्दनाथ परापराम्बा पं ५ श्री० । ५.वं वरानन्दनाथ चित्तिकापराम्वा वं ५ श्री० । इति रश्मिक्रमं विन्यस्य; देवदेव्यौ तदेकं विद्यया पुनर्विन्यस्य; मानसं सम्पूज्य; वायव्यक्रममारभेत् । इति नाभसविच्चेश्वरक्रमः ।

॥ अथ वायव्यहंसेश्वरीक्रमः ॥

तत्र अनाहतचक्रे, ह्स्फ्रूं इति हंसेश्वरीबीजं धूम्रवर्णं विचिन्त्य; तदुद्भवं देवं धूम्रवर्णं षण्मुखं द्वादशबाहुं हेमपात्र-शूल-चक्राऽङ्कुश-बाण-

वरान् शङ्ख-ध्वज-सर्वनृशिरश्चापाऽभयानि च दक्षवामयोरूर्ध्वादिक्रमेण बिभ्राणं द्वादशपादं भैरवरूपं ईश्वरप्रेतासनस्थं हंसेश्वरं तन्मयमात्मानं च ध्यात्वा; ५ ह्स्फ्रां ५ हृदयाय नमः। इत्यादि षड्दीर्घभाजा हंसेश्वरबीजेन करषडङ्गवक्त्रन्यासान् विधाय; देवीमन्त्रस्य ह्स्रौमिति तत्षट्क-बीजं मूलाधारे धूम्रवर्णं ध्यात्वा; तदुद्भवां धूम्रवर्णां हंसेश्वरसमानरूपां ध्यात्वा; देवीविद्याषट्कबीजेन प्राग्वद् अङ्गन्यासं विधाय; हृदयदेवदेव्यौ ध्यात्वा मानसैः उपचारैः पूजयित्वा; शिरःपीठपूजार्थं चरणद्वयमध्यस्थ-ब्रह्मरन्ध्रे यथोक्तरूपौ ध्यात्वा; तयोरेकविद्यया सम्पूज्य; शिरसि षट्कोणं विभाव्य; तस्य आग्नेयकोणे प्रथमचतुष्कं पीतवर्णं ध्यात्वा; ५ ल म य रु खगेश्वरानन्दनाथ भद्रापराम्बा लमयरूं ५ श्री० । ५ लमयरूं कूर्मानन्दनाथ माधविकापरा॰ । लमयरूं ५ श्री० । ५ लमयरूं मेषानन्दनाथ कोणपराम्बा लमयरूं ५ श्री० । ५ लमयरूं वामानन्दनाथ मल्लिकापराम्बा लमयरूं ५ श्री० ।

अथ नैर्ऋत्ये, पञ्चकं श्यामवर्णं ध्यात्वा; ५ वमयरूं ज्ञानानन्दनाथ विमलापराम्बा वमयरूं ५ श्री० । ५ वमयरूं महानन्दनाथ शाम्बरीपराम्बा वमयरूं ५ श्री० । ५ वमयरूं तीव्रानन्दनाथ लीलापराम्बा वमयरूं ५ श्री० । ५ वमयरूं प्रियानन्दनाथ कुमुदापराम्बा वमयरूं ५ श्री० । ५ वमयरूं कालिकानन्दनाथ मेनकापराम्बा वमयरूं ५ श्री० ।

ततः पश्चिमकोणे, मिथुनषट्कं, रक्तवर्णं ध्यात्वा; ५ रमरयूं डामरानन्दनाथ डाकिनीपराम्बा रमरयूं ५ श्री० । ५ रमरयूं रामानन्दनाथ काकिनीपराम्बा रमरयूं ५ श्री० । ५ रमरयूं लामईनन्दनाथ लाकिनीपराम्बा रमरयूं ५ श्री० । ५ रमरयूं कामराजानन्दनाथ काकिनीपराम्बा रमरयूं ५ श्री० । ५ रमरयूं सामदानन्दनाथ साकिनीपराम्बा रमरयूं ५ श्री० । ५ रमरयूं हामरानन्दनाथ हाकिनीपराम्बा रमरयूं ५ श्री० ।

ततः वायव्यकोणे, तुरीयमिथुनं चतुष्कं धूम्रवर्णं ध्यात्वा; ५ यमयरूं आधारेशानन्दनाथ रक्तापराम्बा यमयरूं ५ श्री० । ५ यमयरूं चक्रांशा-

नन्दनाथ बिन्दुपराम्बा यमंयरूं ५ श्री० । ५ यमयरूं कुरङ्गीशानन्दनाथ कुलपराम्बा यमयरूं ५ श्री० । ५ यमयरूं मदघ्नीशानन्दनाथ कुब्जिकापराम्बा यमयरूं ५ श्री० ।

अथ ईशानकोणे, मिथुनपञ्चकं शुक्लवर्णं ध्यात्वा; ५ हमयरूं हृदीशानन्दनाथ कमलापराम्बा हमयरूं ५ श्री० । ५ हमयरूं शिरसानन्दनाथ कुलदीपिकापराम्बा हमयरूं ५ श्री० । ५ हमयरूं शिखीशानन्दनाथ बर्बरापराम्बा हमयरूं ५ श्री० ।

ततः पूर्वकोणे मिथुनत्रयं बालार्कवर्णं ध्यात्वा; ५ समयरूं परगुर्वानन्दनाथ मङ्गलापराम्बा समयरूं ५ श्री० । ५ समयरूं पराधिकारगुर्वानन्दनाथ कौशलापराम्बा समयरूं ५ श्री० । ५ समयरूं पूज्यगुर्वानन्दनाथ समानाथपराम्बा समयरूं ५ श्री० । इति वायव्यक्रमरश्मि विन्यस्य; पुनरेकविद्यया देवदेव्यौ विन्यस्य, सम्पूज्य; स्वाधिष्ठाने तैजसक्रममारभेत् । इति वायव्यहंसेश्वरक्रमः ।

ननु – अनाहतचक्रे वायव्यहंसेश्वरक्रममभिधाय, क्रमप्राप्तं मणिपूरकं चक्रं विहाय, स्वाधिष्ठानचक्रे तैजससंवर्त्तेश्वररश्मिस्मरणं कुर्यादिति, यदुक्तं, तत् कथमुपपन्नमिति– चेत्, सत्यम्; अनाहतचक्रानन्तरं मणिपूरकचक्रमेव क्रमप्राप्तं भवति। 'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं स्थितं स्वाधिष्ठाने' इति स्वाधिष्ठानचक्रमेव वह्निस्थानत्वेन प्रतिपाद्य, अन्यत्राऽपि तव "स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय निरतं तमीडे संवर्तं जननि महती तां च समयां" इति सौन्दर्यलहर्यां श्री शङ्कराचार्यैः षडन्वयशाम्भवक्रमकथनेऽपि समाम्नातत्वात् । भूतक्रमेण चक्रे च क्रमे बाध इति ।

॥ अथ तैजससंवर्त्तेश्वरक्रमः ॥

तत्र स्वाधिष्ठानचक्रे, संवर्त्तेश्वरमन्त्रस्य क्ष्म्लामिति सदामं बीजं बालार्कनिभं ध्यात्वा, तदुद्भवं भिन्नाञ्जनप्रभं पञ्चवक्त्रं पञ्चदशनेत्रं दशचरणं दशभुजं शूल-चक्र-ध्वज-परब्रह्म-कपालानि पारिजातपुष्पजप-

माला-पुस्तकाऽभयटङ्काञ्च दक्षवामकरेषु, दक्षोर्ध्ववामोर्ध्वादिक्रमतो दधानं दंष्ट्राकरालं वेषविशेषाय बद्धार्धकेशं षोडशवर्षीयं रत्न-सर्पाऽ-स्थिभूषणं सर्वालङ्कारशोभितं, पञ्चवक्त्रे रुद्रप्रेतासने एकपादेन स्थितं तस्य वह्निस्वरूप-नाभिपद्मप्राप्तपादाङ्गुलीयकं मुण्डमालायुक्तं अन्त्रनिबद्धशबररसं घात-रचितमेखलं देवं स्वात्मानं ध्यात्वा; करतलयोः, ५ हं व्योमानन्दनाथ रजनीपराम्बा हं ५ श्री० । करपृष्ठयोः, ५ संविद्यानन्दनाथ चितिपराम्बा सं ५ श्री०। अङ्गुष्ठयोः, ५ क्षं अहङ्कारानन्दनाथ क्रोधिनीपराम्बा क्षं ५ श्री०। तर्जन्योः, ५ मं बुध्यानन्दनाथ कुलवागीश्वरी पराम्बां मं ५ श्री०। मध्यमयोः, ५ लं बुध्यानन्दनाथ मातृकापराम्बा लं ५ श्री०। अनामिकयोः, ५ वं अमृतानन्दनाथ देवद्रवी पराम्बा वं ५ श्री० । कनिष्ठकयोः, ५ यं अचलानन्दनाथ अचलाम्बा यं श्री०। करतलयोः, ५ रं दीप्तानन्दनाथ ज्वालिनीपराम्बा रं ५ श्री० । करपृष्ठयोः, ५ ॐ प्रकृतीशानन्दनाथ प्रकृती-पराम्बा ॐ ५ श्री०। इति करन्यासः।

॥ अथ षडङ्गन्यासः ॥

५ हं सं विशुद्धानन्दनाथ शङ्खिनी पराम्बा सं हं ५ श्री० हृदयाय नमः। ५ क्षं मं प्राणानन्दनाथ योगीश्वरीपराम्बा मं क्षं ५ श्री० शिरसे स्वाहा। ५ लं वं ज्ञानानन्दनाथ विदुपराम्बा वं लं ५ श्री० शिखायै वषट्। ५ यं रं व्यापकानन्दनाथ इन्धिकापराम्बा रं यं ५ श्री० कवचाय हुम् । ५ दुं सुरानन्दनाथ प्रीतिवती पराम्बा दुं ५ श्री० नेत्रत्रयाय वौषट्। ५ अं अघोरानन्दनाथ अघोरेश्वरीपराम्बा अं ५ श्री० अस्त्राय फट्। इति षडङ्गन्यासः।

॥ अथ वक्त्रन्यासः ॥

तत्र पश्चिमवक्त्रे, ५ हं सं कालवक्त्रानन्दनाथ कालरात्रिपराम्बा सं हं ५ श्री०। उत्तरवक्त्रे, ५ क्षं मं रौद्रवक्त्रानन्दनाथ संहारिणी पराम्बा मं क्षं ५ श्री० । दक्षिणवक्त्रे, ५ लं वं विश्वविग्रहानन्दनाथ दमनीपराम्बा

वं लं ५ श्री०। पूर्ववक्त्रे, ५ यं रं प्रकाशानन्दनाथ ज्योति:पराम्बा रं यं ५ श्री०। ऊर्ध्ववक्त्रे ५ ऊं हर्षानन्दनाथ अमृतवाहिनीपराम्बा ऊं ५ श्री०। परवक्त्रे, ऊँ अमरानन्दनाथ चितिपराम्बा ऊँ ५ श्री०। इति वक्त्रन्यासः। इति शैवन्यासं विधाय, शक्तिन्यासं कुर्यात्।

॥ अथ शक्तिन्यासः ॥

मूलाधारस्थयोनिमध्ये ह् स् फ्रेमिति चतुर्थं प्रणवं रक्तवर्णं विचिन्त्य; तत्प्रभापटलसमुद्भूतां देवीं रक्तवर्णां हास्ययुक्तषड्वक्त्रां द्वादशभुजां दशवक्त्रां विंशतिभुजां विंशतिवक्त्रां चत्वारिंशद्भुजां शतवक्त्रां द्विशतभुजां वा प्रतिवक्त्रं स्फुरदादित्यसङ्काशलोचनत्रयभूषिताम्, शूलकपाल - बाण- खट्वाङ्गाऽङ्कुश - पाश - शङ्ख - चक्र गदा - रत्न - खड्ग - डिण्डिम - डमरु - वज्र - घण्टा - त्रिखण्ड-शक्ति - शल्य - कुन्त सर्पजपमालाख्यान्यागन्धानि यथायथं दधानां संवर्त्तेश्वरीं स्वात्मभावेन ध्यात्वा; कनिष्ठिकयोः, ५ ऐं नित्ये भगवति ह्स्फ्रें कुलेश्वरी ५ नमः। अनामिकयोः, ५ ह्लां ह्लूं ह्लीं ह्लां ह्लीं ह्लं ह्सूरैं ह्लौं ङ ञणनमे ५ नमः। मध्यमयोः, ५ क्ष्लां क्ष्लूं क्ष्लीं क्ष्लः श्रीं फट् ह्स्फ्रैं फ्रें ५ नमः। तर्जन्योः, ५ अघोरमुखी कुब्जिकायै ५ नमः। अङ्गुष्ठयोः, ५ छ्रां छ्रूं छ्रीं घोरे ५ नमः करतलयोः, ५ यं रं लं वं हं सं किणि किणि महाकिणि किणिविच्चे ५ नमः। इति करन्यासः।

अथ तैरैव मन्त्रैः षडङ्गन्यासः। पुनरेतैरेव मन्त्रैः पश्चिमादि–वक्त्रन्यासः।

॥ अथ दशवक्त्रन्यासः ॥

तत्र पश्चिमवक्त्रे, ५ ऐं नित्ये भगवती ५ नमः। उत्तरवक्त्रे, ५ हस्फ्रें कुलेश्वरी ५ नमः। दक्षिणे, ५ ह्लीं ह्लीं ह्लूं ह्लां ह्लूं ह्सरैं ह्लौं ५ नमः। पूर्ववक्त्रे ५ ङं ञं णं न मे ५ नमः। वायव्ये, ५ क्ष्लां क्ष्लूं क्ष्लीं क्ष्लः क्ष्लूं फट् ह्स्रौं फ्रें ५ नमः। निर्ऋतिवक्त्रे, ५ अघोरमुखी

कुब्जिकायै ५ नमः। ईशानवक्त्रे, ५ छ्रां छ्रूं छ्रीं ५ नमः। आग्नेये, ५ घोरे अघोरे ५ नमः। ऊर्ध्ववक्त्रे, ५ यं रं लं वं हं सं ५ नमः। परवक्त्रे, ५ किणि किणि महाकिणि विच्चे ५ नमः।

॥ अथ विंशतिवक्त्रन्यासः ॥

तत्र पश्चिमाद्यवक्त्रे, ५ ऐं नित्ये ५ नमः द्वितीयवक्त्रे, ५ भगवती ५ नमः। उत्तराद्यवक्त्रे, ५ हसफ्रें ५ नमः। द्वितीये, ५ कुलेश्वरी ५ नमः। दक्षिणवक्त्रे, ५ ह्लां ह्लूं ह्लीं ह्लां ५ नमः। द्वितीये, ५ ह्वां ह्लूं ह्वैं ह्रौं ५ नमः। पराद्यवक्त्रे, ५ ङ ञ ण ५ नमः। द्वितीये, न मे ५ नमः। वायव्याद्यवक्त्रे, क्षां क्षुं क्षीं क्षः क्षं श्रीं ५ नमः। द्वितीये, फट् ह्स्रौ फ्रें नमः। नैर्ऋत्याद्यवक्त्रे, ५ अघोरमुखि ५ नमः। द्वितीये ५ कुब्जिकायै ५ नमः। ईशान्याद्यवक्त्रे, ५ छ्रां छ्रूं ५ नमः। द्वितीये, छ्रीं नमः। आग्नेयाद्यवक्त्रे, ५ घोरे ५ नमः। द्वितीये, ५ अघोरे ५ नमः। ऊर्ध्वाद्यवक्त्रे ५ यं रं लं ५ नमः। द्वितीये, ५ वं सं हं ५ नमः। पराद्यवक्त्रे, ५ किणि किणि ५ नमः। द्वितीये, महाकिणि किणिविच्चे ५ नमः। इति विंशतिवक्त्रन्यासः।

॥ अथ शतवक्त्रन्यासः ॥

तत्र शतवक्त्रोक्तन्यासपदान्ये दशवक्त्रन्यासस्थानेषु दशकृत्वः। पुनर्न्यसेदिति शतवक्त्रन्यासः।

अथ मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तत्तेजोरूपां संवर्त्तेश्वरीं ध्यात्वा; पूर्ववद् देवेन सह संयोज्य; शिरःपीठे मानसोपचारैः सम्पूज्य ततस्तं परितः, शिरसि, षट्कोणं विभाव्य, तस्य निर्ऋतिकोणे, रश्मिमिथुनपञ्चकं पीत-वर्णं ध्यात्वा; ५ स ह्लां परापरानन्दनाथ खेचरीपराम्बा स ह्लां ५ श्री०। ५ स ह्लां परानन्दनाथ उच्छुष्मापराम्बा स ह्लां ५ श्री०। ५ स ह्लां परमानन्दनाथ गुह्यकालीपराम्बा स ह्लां ५ श्री०। ५ स ह्लां परानन्दनाथ संवर्त्तपराम्बा स ह्लां ५ श्री०। ५ स ह्लां चिदानन्दनाथ नीलकुब्जिकापराम्बा स ह्लां ५ श्री०।

ततः पश्चिमकोणे, मिथुनपञ्चकं कृष्णवर्णं ध्यात्वा, ५ स ह्लीं अघोरानन्दनाथ गन्धापराम्बा स ह्लीं ५ श्री० । ५ स ह्लीं तामराघोरानन्दनाथ रसापराम्बा स ह्लीं ५ श्री० । ५ स ह्लीं ललितानन्दनाथ रूपापराम्बा स ह्लीं ५ श्री० । ५ स ह्लीं स्वच्छानन्दनाथ स्पर्शापराम्बा स ह्लीं ५ श्री० । ५ स ह्लीं भूतेश्वरानन्दनाथ शब्दापराम्बा स ह्लीं ५ श्री० ।

ततो वायव्यकोणे, मिथुनषट्कं कृष्णवर्णं ध्यात्वा; ५ स हूं आनन्दानन्दनाथ कृष्णडाकिनीपराम्बा स हूं ५ श्री० । ५ स हूं अरण्यानन्दनाथ रक्तडाकिनीपराम्बा स हूं ५ श्री० । ५ स हूं प्रभवानन्दनाथ चक्रडाकिनीपराम्बा स हूं ५ श्री० । ४ स हूं योगानन्दनाथ पद्मडाकिनीपराम्बा स हूं ५ श्री० । ५ स हूं अतीतानन्दनाथ कुब्जडाकिनी पराम्बा स हूं ५ श्री० । ५ स हूं पादानन्दनाथ प्रचण्डडाकिनी पराम्बा स हूं ५ श्री० ।

अथ ईशानकोणे, मिथुनचतुष्कं रक्तवर्णं ध्यात्वा; ५ स हैं योगीश्वरानन्दनाथ चण्डापराम्बा स हैं ५ श्री० । ५ स हैं पीठेश्वरानन्दनाथ कौलिनीपराम्बा स हैं ५ श्री० । ५ स हैं कुलकौलेश्वरानन्दनाथ पावनीपराम्बा स हैं ५ श्री० । ५ स हैं अजकुब्जेश्वरानन्दनाथ समयापराम्बा स हैं ५ श्री० ।

अथ पूर्वकोणे, मिथुनपञ्चकं शुक्लवर्णं ध्यात्वा, ५ स हौं श्रीकण्ठानन्दनाथ कामापराम्बा स हौं ५ श्री० । ५ स हौं अनन्तानन्दनाथ चर्चिकापराम्बा स हौं ५ श्री० । ५ स हौं शङ्करानन्दनाथ ज्वालापराम्बा स हौं ५ श्री० । ५ स हौं पिङ्गलानन्दनाथ करालपराम्बा स हौं ५ श्री० । ५ स हौं सदानन्दनाथ कुब्जिकापराम्बा स हौं ५ श्री० ।

अथ आग्नेयकोणे, मिथुनषट्कं स्फटिकवर्णं ध्यात्वा; ५ स हः कालगुर्वानन्दनाथ परापराम्बा स हः ५ श्री० । ५ स हः सिद्धगुर्वा-

नन्दनाथ शान्त्यतीतापराम्बा स ह्रः ५ श्री० । ५ स ह्रः रत्नगुर्वानन्दनाथ शान्तिपराम्बा स ह्रः ५ श्री० । ५ स ह्रः शिवगुर्वानन्दनाथ विद्यापराम्बा स ह्रः ५ श्री० । ५ स ह्रः मैनाकगुर्वानन्दनाथ प्रतिष्ठापराम्बा स ह्रः ५ श्री० । ५ स ह्रः समयगुर्वानन्दनाथ निवृत्तिपराम्बा । स ह्रः ५ श्री० । इति रश्मिक्रमं विन्यस्य; पुनर्देवदेव्यौ मध्ये तदेकविद्यया सम्पूज्य; आद्यक्रम-द्वीपेश्वररश्मिस्मरणं कुर्यात् ।

तं मणिपूरकचक्रे, ह्र स ब्रूमिति द्वीपेश्वरकूटं शुक्लवर्णं ध्यात्वा; तदुद्भवं देवं श्यामवर्णं द्वादशभुजं वा वाण-चापे शूल-चक्र-खड्गाऽ-ङ्कुशवरान्-खट्वाङ्ग-परशुगदा-पाशाऽभयानि दक्षिणवामबाहुभिः दधानं बाहुद्वयेन गजचर्मबिभ्राणं विष्णुमहाप्रेतासनस्थं दष्ट्राकरालभयानकाभरणं द्वीपेश्वरं स्वाऽभेदेन ध्यायेत् । अत्र वाचासावेकहस्ते वरशब्दाङ्कुशविशेषेण द्वादशभुजत्वादिति ।

॥ अथ अङ्गन्यासः ॥

तद्यथा – कनिष्ठयोः, ५ ह स्व्रां ५ हृदयाय नमः । अनामिकयोः, ५ ह स्व्रीं ५ शिरसे स्वाहा । मध्यमयोः, ५ ह स्व्रूं ५ शिखायै वषट् । तर्जन्योः, ५ ह सव्रें ५ कवचाय हुं । अङ्गुष्ठयोः, ह स्व्रौं ५ नेत्रत्रयाय वौषट् । करतलकरपृष्ठयोः, ५ ह स्व्रः ५ अस्त्राय फट् । इति करन्यासः ।

अथ ऐतैरेव मन्त्रैः हृदयादिषडङ्गन्यासः पुनः पश्चिमवक्त्रे, ५ ह स्व्रां ५ नम इत्यादिवक्त्रषट्कोऽपि प्राग्वत् न्यसेत् ।

ततो मूलाधारदेवीमन्त्रस्य चतुर्थमक्षरं विकारं शुक्लवर्णं विभाव्य; तदुद्भूतां देवीं शामवर्णां विष्णुप्रेतासनस्थां अष्टभुजां शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-शूल-पाश-वराऽभयानि दधतीं द्वीपेश्वरीं स्वाऽभेदन ध्यात्वा; कनिष्ठयोः ५ टीं ५ हृदयाय नमः । इत्यादि तलान्तं प्राग्वत् षड्दीर्घयुक्तटकारेण करन्यासं कृत्वा; हृदयादिषडङ्गेष्वपि टां टीं इत्यादि

षड्भिः षडङ्गन्यासं विधाय; तथैव वक्त्रन्यासं च कृत्वा; मूलाधारादि ब्रह्मरन्ध्रान्तं, तेजोरूपां देवीं ध्यायन्, तत्तेजोमणिपूरके स्थिरीकृत्य साऽवयवं देवीं देवेन सह संयोज्य; देवदेवीरूपमात्मानं ध्यायेत्। युगपत्।५ ह्र स्वां टमित्यादि प्राग्वत् करषडङ्गवक्त्रन्यासान् कृत्वा; ब्रह्मरन्ध्रे पुनः देवदेव्यौ ध्यात्वा; शिरसि तं परितः षट्कोणं विभाव्य; पश्चिमकोणे रश्मिमिथुनं-चतुष्कं पीतवर्णं ध्यात्वा; ५ लं सत्यानन्दनाथ निवृत्तिपराम्बा लं ५ श्री०।५ लं वामानन्दनाथ श्रीपराम्बा लं ५ श्री०। ५ लं अघोरानन्दनाथ पद्मापराम्बा लं ५ श्री०। ५ लं पुरुषानन्दनाथ अम्बिकापराम्बा लं श्री०।

ततः वायव्यकोणे, रश्मिमिथुनचतुष्कं श्यामवर्णं ध्यात्वा; ५ वं अनन्तानन्दनाथ निवृत्तिपराम्बा वं ५ श्री०। ५ वं अनन्तानन्दनाथ प्रतिष्ठापराम्बा वं ५ श्री०।५ वं अनश्रितानन्दनाथ विद्यापराम्बा वं ५ श्री०। ५ वं अचिन्त्यानन्दनाथ शान्तिपराम्बा वं ५ श्री०।

तत ईशानकोणे मिथुनषट्कं रक्तवर्णं ध्यात्वा; ५ रं खेचरानन्दनाथ उमापराम्बा रं ५ श्री०। रं तीब्रानन्दनाथ गङ्गापराम्बा रं ५ श्री०। ५ रं मणिवहानन्दनाथ सरस्वतीपराम्बा रं ५ श्री०।५ रं ज्वालेश्वरानन्दनाथ यमुनापराम्बा रं ५ श्री०।५ रं अपूवाहनानन्दनाथ कमलपराम्बा रं ५ श्री०। ५ रं तेजस् ईशानन्दनाथ पार्वतीपराम्बा रं ५ श्री०।

ततः पूर्वकोणे, मिथुनचतुष्कं कृष्णवर्णं ध्यात्वा; ५ यं विद्यावागीश्वरानन्दनाथ चित्रापराम्बा यं ५ श्री०।५ यं चतुर्विधेश्वरानन्दनाथ कमलापराम्बा यं ५ श्री०।५ यं उमागङ्गेश्वरानन्दनाथ मन्मथवेगापराम्बा यं ५ श्री०। ५ यं श्रीकृष्णेश्वरानन्दनाथ रसतापराम्बा यं ५ श्री०।

ततः आग्नेयकोणे, मिथुनपञ्चकं शुक्लवर्णं ध्यात्वा; ५ हं श्रीकण्ठानन्दनाथ लयापराम्बा हं ५ श्री०।५ हं अनन्तानन्दनाथ वसन्तापराम्बा हं ५ श्री०।५ हं शङ्करानन्दनाथ रत्नमेखलापराम्बा हं ५ श्री०।

५ हं पिङ्गलानन्दनाथ यशोवती पराम्बा हं ५ श्री० । ५ हं सदाख्यानन्दनाथ हंसा पराम्बा हं ५ श्री० ।

ततो निर्ऋतिकोणे मिथुनत्रयं रक्तवर्णं ध्यात्वा; ५ सं परदिव्यौघानन्दनाथ वामापराम्बा सं ५ श्री० । ५ सं परिदिव्यौघानन्दनाथ ज्येष्ठापराम्बा सं ५ श्री० । ५ सं पीठौघानन्दनाथ रौद्रीपराम्बा सं ५ श्री० ।

ततः मध्ये, देवदेव्यौ एकविद्यया तौ मानसैः उपचारैः सम्पूज्य तन्मयं स्वात्मानं ध्यायेदिति द्वीपेश्वरक्रमः ।

॥ अथ पार्थिवनवेश्वरक्रमः ॥

तत्र मूलाधारे, ह् स् क्ष् म् ल् व् र् यूं इति नवात्मेश्वरकूटं रक्तवर्णं ध्यात्वा; तदुद्भवं देवं भिन्नाञ्जनचयप्रभं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं दशचरणं दशभुजं शूलचक्र-ध्वज-वर-ब्रह्मकपालानि पारिजातपुष्प-जपमालापुस्तकाऽ-भयटङ्काश्च दक्षवामयोः दधानं दष्ट्राकरालं वेषविशेषाय बद्धोर्ध्वकेशं षोडशवार्षिकं रत्न-सर्पाऽस्थिभूषणं ब्रह्मप्रेतासनस्थं नवात्मेश्वरं स्वाभेदेन ध्यात्वा; तद्बीजाक्षरैः अङ्गन्यासं कुर्यात् । तद्यथा – कनिष्ठयोः, ५ हं सं ५ हृदयाय नमः । अनामिकयोः, ५ क्षं मं शिरसे स्वाहा । मध्यमयोः, ५ लं वं ५ शिखायै वषट् । तर्जन्योः, ५ रं यं ५ कवचाय हुम् । अङ्गुष्ठयोः, ५ ॐ ५ नेत्रत्रयाप वौषट् । करतलकरपृष्ठयोः ५ अं ५ अस्त्राय फट् । इति करन्यासः ।

एतैरेव मन्त्रैः प्राग्वत् षडङ्गवक्त्रन्यासौ कुर्यात् ।

ततो देवीमन्त्रस्य सप्तमं बीजं ह्स्फ्रें इति चतुर्थप्रणवात्मकं कूटं, मूलाधारे रक्तवर्णं ध्यात्वा; तदुद्भवां देवीं नीलवर्णां कुब्जिकारूपां पश्चिमोत्तर – दक्षिणपूर्वेशानऊर्ध्वगतपीतशुक्लकृष्णशुक्लरक्तवर्णषड्वक्त्रां द्वादशभुजां, शूल-चक्र-वज्राऽङ्कुश-शर-कर्तरी-सपङ्कज-नीलोत्पलं समुण्डं खट्वाङ्गं घण्टां पुस्तकं धनुः कपालं च दशवाहुषु दधानां, प्रतिमुखं दंष्ट्राकरालां सर्पाऽस्थि-रत्न-भूषितां मुण्डमालाधरां रौद्ररूपां अष्टाविंशति-

वर्षीयां बिन्द्वोर्ध्वकेशीं व्याघ्रचर्मपरिधानां सिंहचर्मोत्तरीयां दिव्याभरणभूषितां महाट्टहासां ब्रह्मप्रेतासनस्थां देवीं स्वाऽभेदेन ध्यात्वा; कनिष्ठिकयोः, ५ ह्सफ्रां नमो भगवति कमलायै ह्स्फ्रां ५ हृदयाय नमः। अनामिकयोः, ५ ह्सफ्रीं कुब्जिकायै कुलदीपिकायै ह्स्फ्रीं ५ शिरसे स्वाहा। मध्यमयोः, ५ हस्फ्रुं ह्रां हं ह्रीं बर्बरायै ह्स्फ्रूं ५ शिखायै वषट्। तर्जन्योः, ५ ह्स्फ्रैं ङ ञ ण न मे अघोरमुखी बहुरूपायै ह्स्फ्रैं ५ कवचाय हुम्। अङ्गुष्ठयोः, ह्स्फ्रौं छ्रां छ्रूं छ्रीं महातारायै ह्सफ्रौं ५ नेत्रत्रयाय वौषट्। करतलकरपृष्ठयोः, ५ ह्सफ्रः किणि किणि, विणि विणि विच्चे ह्स्फ्रः ५ अस्त्राय फट्। इति प्राग्वत् करषडङ्गवक्त्रन्यासौ कृत्वा; देवीं तेजोरूपां मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ध्यात्वा; देवेन संयोज्य, देवदेवीरूपमात्मानं ध्यायन्, पञ्चप्रणवपुटितैः ह् स् क्ष् म् ल् व् र् यूं ह्स्फ्रां इत्यादि षड्दीर्घजनितैः बीजद्वयस्य षड्भिः मन्त्रैः करषडङ्ग-वक्त्रन्यासान् विधाय; मूलाधारे देवदेव्यौ ध्यात्वा; शिरःपीठे चरणद्वय-मध्येऽपि पुनः देवदेव्यौ ध्यात्वा, तौ परितः षट्कोणं विभाव्य; तस्य वायव्यकोणे, मिथुनचतुष्कं पीतवर्णं ध्यात्वा; ५ ल म य रुं उड्याण-महापीठे, उड्येश्वरानन्दनाथ उड्येश्वरीपराम्बा लमयरूं ५ श्री०। ५ वमयरुं जालन्धरमहापीठे, जालेश्वरानन्दनाथ जालेश्वरीपराम्बा वमयरूं ५ श्री०। ५ रमयरूं पूर्णगिरिमहापीठे, पूर्णेश्वरानन्दनाथ पूर्णेश्वरीपराम्बा रमयरूं ५ श्री०। ५ यमयरूं कामरूपमहापीठे, कामेश्वरानन्दनाथ कामेश्वरी-पराम्बा य म य रूं ५ श्री०।

ततः ईशानकोणे, मिथुनपञ्चकं श्यामवर्णं ध्यात्वा; ५ ग्लूं श्रीकण्ठानन्दनाथ गगनापराम्बा ग्लूं ५ श्री०। ५ स्लूं अनन्तानन्दनाथ स्वर्गापराम्बा स्लूं ५ श्री०। ५ म्लूं शङ्करानन्दनाथ मर्त्यापराम्बा म्लूं ५ श्री०। ५ प्लूं पिङ्गलानन्दनाथ पातालपराम्बा प्लूं ५ श्री०। ५ न्लूं सद्योजातानन्दनाथ नागापराम्बा न्लूं ५ श्री०।

अथ पूर्वकोणे, मिथुनषट्कं कृष्णवर्णं ध्यात्वा; ५ ड्म्र्यूरूं आनन्दानन्दनाथ डाकिनीपराम्बा ड् म् र् यूं ५ श्री०। ५ रमयरूं

अस्त्रावल्यानन्दनाथ राकिनीपराम्बा रमयरूं ५ श्री० । ५ लमयरूं प्रज्ञानन्दनाथ लाकिनीपराम्बा लमयरूं ५ श्री० । ५ कमयरूं योगानन्दनाथ काकिनीपराम्बा कमयरूं ५ श्री० । ५ समयरूं अतीतानन्दनाथ साकिनीपराम्बा समयरूं ५ श्री० । ५ हमयरूं पादानन्दनाथ हाकिनीपराम्बा हमयरूं ५ श्री० ।

ततो अग्निकोणे मिथुनचतुष्कं रक्तवर्णं ध्यात्वा; ५ लं आधारशक्तीशानन्दनाथ रक्तापराम्बा लं ५ श्री० । ५ वं वक्त्रेशानन्दनाथ चण्डा पराम्बा वं ५ श्री० । ५ रं कुरङ्गीशानन्दनाथ करालपराम्बा रं ५ श्री० । ५ यं दुरङ्घ्रीशानन्दनाथ महोच्छाष्मापराम्बा यं ५ श्री० ।

ततो नैर्ऋतिकोणे, मिथुनपञ्चकं रक्तवर्णं ध्यात्वा; ५ गं विमलानन्दनाथ मातङ्गीपराम्बा गं ५ श्री० । ५ सं सर्वज्ञविमलानन्दनाथ पुलिन्दीपराम्बा सं ५ श्री० । ५ मं योगविमलानन्दनाथ शम्बरीपराम्बा मं ५ श्री० । ५ पं सिद्धिविमलानन्दनाथ चम्पकापराम्बा पं ५ श्री० । ५ नं सभयविमलानन्दनाथ कुलालिकापराम्बा नं ५ श्री० ।

ततः पश्चिमकोणे, मिथुनचतुष्कं सूर्यप्रभं ध्यात्वा; ५ लमयरूं मित्रेशानन्दनाथ कुब्जिकापराम्बा लमयरूं ५ श्री० । ५ वमयरूं ५ उड्डीशानन्दनाथ लघ्वीपराम्बा वमयरूं ५ श्री० । ५ रमयरूं षष्ठीशानन्दनाथ कौलेश्वरीपराम्बा रमयरूं ५ श्री० । ५ यमयरूं चर्यानन्दनाथ कुब्जेश्वरी पराम्बा यमररूं ५ श्री० । इति षडन्वयशाम्भवरश्मिक्रमः ।

अत्र षडन्वयरश्मयः । सर्वे वराऽभयकराः मदघूर्णितलोचना ध्येयाः । ततो मध्ये देवदेव्यौ एकविद्यया तौ मानसैरुपचारैः सम्पूज्य तदात्मानमात्मानं ध्यात्वा षडन्वयशाम्भवादिदेवता श्री महात्रिपुरसुन्दरीरूपं निजवपुर्ज्योतिर्मयं ध्यायेदिति शाम्भवाख्योर्ध्वाम्नायन्यासः ।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ द्वादशोऽयं तरङ्गकः ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे द्वादशस्तरङ्गः ॥ १२ ॥

॥ श्रीः॥

अथ त्रयोदशस्तरङ्गः

इत्थं षष्ट्युत्तरत्रिशत शाम्भवरश्मिं विन्यस्य। मूलाधाराद्याऽऽ-क्षपर्यन्तेषु पृथिव्यादिमानसान्तेषु षट्सु चक्रेषु शाम्भवादिभ्यः सारतरायाः श्रीविद्यायाः षष्ट्युत्तरत्रिशतं दर्शयन् मनसा विभावयन् न्यसेत्।

तत्र मूलाधारे, पार्थिवचक्रे मूलविद्यां तेजोरूपां विभाव्य, पुनर्मूलादि-ब्रह्मरन्ध्रान्तं तथैव ध्यात्वा; ब्रह्मरन्ध्रे चरणद्वयमध्ये लयं नीत्वा; चरण-द्वयसामरस्यरूपनिर्वाणचरणोद्भवानन्दतेजोमयीं ध्यानोक्तरूपां श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरीं ध्यात्वा; आज्ञाचक्रं समानीय, तत्र मानसदेवता परमेश्वर-परमेश्वरीरूपत्वेन ध्यात्वा; पञ्चतारसम्पुटितमूलविद्यया उच्चार्य, परमेश्वर-परमेश्वरीरूपमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकां पूजयामीति मन्त्रेण मानसैरुपचारैः सम्पूज्य; पुनस्तन्मिथुनमेव सकामेश्वरश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीरूपेण ध्यात्वा; केवलमूलविद्यया सम्पूज्य, पुनः कण्ठविशुद्धचक्रमानीय; तत्र तद्देवतात्मक-त्वेन ध्यात्वा; पूर्ववत् सम्पूज्य; अनाहतचक्रं नीत्वा, तत्राऽपि तद्देवता-रूपेण ध्यात्वा; मानसैरुपचारैः सम्पूज्य; ततः स्वाधिष्ठानचक्रं नीत्वा, तत्रापि तथैव ध्यात्वा, सम्पूज्य; पुनः मणिपूरचक्रं नीत्वा; तत्राऽपि तथैव ध्यात्वा, सम्पूज्य; ततो मूलाधारचक्रं नीत्वा, तत्रापि तथैव ध्यात्वा, सम्पूज्य; पार्थिवचक्राधिदेवतायाः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः तनुसम्भवाः षट्पञ्चाशद्देवताः पार्थिवचक्रे मनसा भावयन्, न्यसेत्। तद्यथा– मूलाधारे चतुरस्रं पीतवर्णं लं बीजयुक्तं अष्टवज्रोपेतं पृथिवीमण्डलं ध्यात्वा; तत्र षट्पञ्चाशद् दलमण्डितं सरोरुहं विचिन्त्य, तन्मध्ये देवीं ध्यानपूर्वकं दलादिप्रादक्षिण्येन उत्थाय मणिभूषितान् मूलदेवीवर्णान् चतुर्भुजा-स्त्रिपुरसुन्दर्यादिचर्यानाथान्तान् षट्पञ्चाशद् रश्मिं भावयन्, न्यसेत्। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि नमः। ४ त्रिपुरसुन्दरी श्री०। ४ हृदयदेवी श्री०। हृदयदैवश्री०।४ शिरोदेवी श्री०।४ शिरोदेव-

श्री० । ४ शिखादेवी श्री० । ४ शिखादेव श्री० । ४ कवचदेवी श्री० । ४ कवचदेव श्री० । ४ नेत्रदेवी श्री० । ५ नेत्रदेव श्री० । ४ अस्त्रदेवी श्री० । ४ अस्त्रदेव श्री० । ४ कामेश्वरी श्री० । ४ कामेश्वरश्री० । ४ भगमालिनी श्री० । ४ भगमालिन श्री० । ४ नित्यक्लिन्नाश्री० । ४ नित्य-क्लिन्न श्री० । ४ भेरुण्डा श्री० । ४ भेरुण्ड श्री० । वह्निवासिनी श्री० । ४ वह्निवासिनश्री० । ४ महावज्रेश्वरी श्री० । ४ महावज्रेश्वर श्री० । ४ शिवदूती श्री० । ४ शिवदूत श्री० । ४ त्वरिता श्री० । ४ त्वरित श्री० । ४ कुलसुन्दरी श्री० । ४ कुलसुन्दर श्री० । ४ निला श्री० । ४ नित्य श्री० । ४ नीलपताका श्री० ४ नीलपताक श्री० । ४ विजया श्री० । ४ विजय श्री० । ४ सर्वमङ्गला श्री० । ४ सर्वमङ्गल श्री० । ४ ज्वालामलिनी श्री० । ४ ज्वालामालिन श्री० । ४ चित्रा श्री० । ४ चित्र श्री० । ४ महा-नित्या श्री० । ५ महानित्य श्री० । ४ परमेश्वरी श्री० । ४ परमेश्वर श्री० । ४ मित्रीशमयी श्री०। ४ मित्रीशमय श्री० । ४ षष्ठीशमयी श्री० । ४ षष्ठीशमय श्री० । ४ उड्डीशमयी श्री० । ४ उड्डीशमय श्री० । ४ चर्यानाथमयी श्री० । ४ चर्यानाथमय श्री० । इति पार्थिवरश्मिं मनसा विन्यसेत् ।

मणिपूरकचक्रे, जलमण्डलं शुक्लवर्णं अर्धचन्द्राकारं वं बीजयुक्तं पद्मलाञ्छितं ध्यात्वा; तन्मध्ये, द्विपञ्चाशद्दलमण्डितं पद्मं विभाव्य; तत्कर्णिकायां श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं ध्यायन्, जले चक्रेश्वर्याः तस्याः देहोद्भूतां तस्य मानवरूपां चतुर्भुजालोपामुद्रामय्याप्तादि महेश्वरान्तां द्विपञ्चाशद् देवताः पूर्ववद्दलादिप्रादक्षिण्येन मनसा न्यसेत् । तद्यथा – ४ लोपामुद्रमयी श्री० । लोपामुद्रामय श्री० । ४ अगस्त्यमयी श्री० । ४ अगस्त्यमय श्री० । ४ कालतापनमयी श्री० । ४ कालतापनमय श्री० । ४ धर्माचार्यमयी श्री० । ४ धर्माचार्यमय श्री० । मुक्तकेशेश्वरमयी श्री० । ४ मुक्तकेशेश्वरमय श्री० । ४ दीपकलानाथमयी श्री० । ४ दीपकलानाथमय श्री० । ४ विष्णुदेवमयी श्री० । ४ विष्णुदेवमय श्री० । ४ प्रभाकरदेवमयी श्री० । ४ प्रभाकरदेवमय

श्री० । ४ तेजोदेवमयी श्री० । ४ तेजोदेवमय श्री० । ४ मनोजदेवमयी श्री० । ४ मनोजदेवमय श्री० । ४ कल्याणदेवमयी श्री० । ४ कल्याणदेवमय श्री० । ४ रत्नदेवमयी श्री० । ४ रत्नदेवमय श्री० । ४ वासुदेवमयी श्री० । ४ वासुदेवमय श्री० । श्रीरामानन्दमयी श्री० । ४ श्री रामानन्दमय श्री० । ४ अणिमासिद्धिमयी श्री० । ४ अणिमासिद्धिमय श्री० । ४ लघिमासिद्धिमयी श्री० । ४ लघिमासिद्धिमय श्री० । ४ महिमासिद्धिमयी श्री० । ४ महिमा-सिद्धिमय श्री० । ४ ईशित्वसिद्धिमयी श्री० । ४ ईशित्वसिद्धिमय श्री० । ४ वशित्वसिद्धिमयी श्री० । ४ वशित्वसिद्धिमय श्री० । ४ प्राकाम्यसिद्धिमयी श्री० । ४ प्राकाम्यसिद्धिमय श्री० । ४ भुक्तिसिद्धिमयी श्री० ४ भुक्तिसिद्धिमय श्री० । ४ इच्छासिद्धिमयी श्री० । ४ इच्छासिद्धिमय श्री० । ४ प्राप्तिसिद्धिमयी श्री० । ४ प्राप्तिसिद्धिमय श्री० । ४ सर्वकामसिद्धिमयी श्री० । ४ सर्वकामसिद्धिमय श्री० । ४ ब्राह्मीमयी श्री० । ४ ब्राह्मीमय श्री० । ४ माहेश्वरीमयी श्री० । ४ माहेश्वरीमय श्री० । इति जलरश्मिक्रमः ।

अथ स्वाधिष्ठानचक्रे, वह्निचक्रं त्रिकोणं स्वस्तिकलाञ्छितं रं बीजयुक्तं कालाग्निकोटिसदृशं विभाव्य; तन्मध्ये द्वाषष्टिदलमण्डितं सरोरुहं ध्यात्वा; तत्कर्णिकायां यथोक्तरूपां देवीं विभाव्य; तां परितः पूर्वादिप्रादक्षिण्येन दलेषु तदङ्गसम्भवाः कौमार्यादिबीजादिबीजाकर्षण-पर्यन्ता द्वाषष्टिदेवता न्यसेत् ।

४ कौमारी श्री० । ४ कौमार श्री० । ४ बैष्णवी श्री० । ४ वैष्णव श्री० । ४ वाराही श्री० । ४ वाराह श्री० । ४ माहेन्द्री श्री० । ४ माहेन्द्र श्री० । ४ चामुण्डा श्री० । ४ चामुण्ड श्री० ४ महालक्ष्मी श्री० । ४ महालक्ष्म श्री० । ४ सर्वसङ्क्षोभिणी श्री० । ४ सर्वसङ्क्षोभण श्री० । ४ सर्वविद्राविणी श्री० । ४ सर्वविद्रावण श्री० । ४ सर्वाकर्षिणी श्री० । ४ सर्वाकर्षण श्री० ४ सर्ववशङ्करी श्री० । ४ सर्ववशङ्कर श्री० । ४ सर्वोन्मादिनी श्री० । ४ सर्वोन्मादन श्री० । ४ सर्वमहाङ्कुशा श्री० । ४ सर्वमहाङ्कुश श्री० । ४ सर्वखेचरी श्री । ४ सर्वखेचर श्री० । ४ सर्वबीजा

श्री० । ४ सर्वबीज श्री० । ४ सर्वयोनिमयी श्री० । ४ सर्वयोनिमय श्री० । ४ सर्वत्रि-खण्डा श्री० । ४ सर्वत्रिखण्ड श्री० । ४ त्रैलोक्यमोहनचक्रस्वामिनी श्री० । ४ त्रैलोक्यमोहनचक्रस्वामिन श्री० । ४ प्रकटयोगिनी श्री० । ४ प्रकयोगि श्री० । ४ कामाकर्षणी श्री० । ४ कामाकर्षण श्री० । ४ बुध्याकर्षणी श्री० । ४ बुध्याकर्षण श्री० । ४ अहङ्काराकर्षणी श्री० । ४ अहङ्काराकर्षण श्री० । ४ शब्दाकर्षणी श्री० । ४ शब्दाकर्षण श्री० । ४ स्पर्शाकर्षणी श्री० । स्पर्शाकर्षण श्री० । ४ रूपाकर्षणी श्री० । ४ रूपाकर्षण श्री० । ४ रसाकर्षणी श्री० । ४ रसाकर्षण श्री० । ४ गन्धाकर्षणी श्री० । ४ गन्धाकर्षण श्री० । ४ चित्ताकर्षणी श्री० । ४ चित्ताकर्षण श्री० । ४ धैर्याकर्षणी श्री०। ४ धैर्याकर्षण श्री० । ४ स्मृत्याकर्षणी श्री० । ४ स्मृत्याकर्षण श्री० । ४ नामाकर्षणी श्री० । ४ नामाकर्षण श्री० । ४ बीजाकर्षणी श्री० । ४ बीजाकर्षण श्री० । इति वह्निचक्रे द्वाषष्टिरश्मिक्रमन्यासः ।

ततो अनाहते वायुचक्रं कृष्णवर्णं षट्कोणाकारं यं-बीजाधिष्ठितं ध्यात्वा; तन्मध्ये, चतुःपञ्चाशद्दलमण्डितं कमलं विचिन्त्य; तत्कर्णिकायां देवीं ध्यात्वा; तां परितः पूर्वादिप्रादक्षिण्येन देवीं समानरूपां आत्माकर्षिण्यादि सर्वसम्पत्तिपूरणपर्यन्ताः चतुःपञ्चाशद्देवताः न्यसेत् । तद्यथा – ४ आत्माकर्षणी श्री० । ४ आत्माकर्षण श्री० । ४ अमृताकर्षिणी श्री० । ४ अमृताकर्षण श्री० । ४ शरीराकर्षिणी श्री० । ४ शरीराकर्षण श्री० । सर्वाशापरिपूरचक्रस्वामिनी श्री० । ४ सर्वाशापरिपूरचक्रस्वामि श्री० । ४ गुप्तयोगिनी श्री० । ४ गुप्तयोगि श्री० । ४ अनङ्गकुसुमा श्री० । ४ अनङ्गकुसुम श्री० । ४ अनङ्गमेखला श्री० । ४ अनङ्गमेखल श्री० । ४ अनङ्गमदना श्री० । ४ अनङ्गमदन श्री० । ४ अनङ्गमदनातुरा श्री० । ४ अनङ्गमदनातुर श्री० । ४ अनङ्गरेखा श्री०। ४ अनङ्गरेख श्री० । ४ अनङ्गवेगिनी श्री० । ४ अनङ्गवेग श्री० । ४ अनङ्गाङ्कुशा श्री० । ४ अनङ्गाऽङ्कुश श्री० । ४ अनङ्गमालिनी श्री० । ४ अनङ्गमालिनः श्री० । ४ सर्वसङ्क्षोभणचक्रस्वामिनी श्री०। सर्वसङ्क्षोभणचक्रस्वामिनः श्री० । ४ गुप्ततरयोगिनी श्री० । ४

गुप्ततरयोगिनः श्री० । ४ सर्वसङ्क्षोभणी श्री० । ४ सर्वसङ्क्षोभण श्री० । ४ सर्वविद्रावणी श्री० । ४ सर्वविद्रावण श्री० । ४ सर्वाकर्षणी श्री० । ४ सर्वाकर्षण श्री० । ४ सर्वाह्लादिनी श्री० । ४ सर्वाह्लादिन श्री० । ४ सर्वसम्मोहिनी श्री० । ४ सर्वसम्मोहन श्री० । ४ सर्वस्तम्भिनी श्री० । ४ सर्वस्तम्भन श्री० । ४ सर्व-जृम्भिणी श्री० । ४ सर्वजृम्भण श्री० । ४ सर्ववशङ्करी श्री० । ४ सर्ववशङ्कर श्री० । ४ सर्वरञ्जनी श्री० । ४ सर्वरञ्जन श्री० । ४ सर्वोन्मादिनी श्री० । ४ सर्वोन्मादन श्री० । ४ सर्वार्थसाधनी श्री० । ४ सर्वार्थसाधन श्री० । ४ सर्वसम्पत्तिपूरणी श्री० । ४ सर्वसम्पत्तिपूरण श्री० । इति वायुचक्रे चतुः पञ्चाशद्रश्मिन्यासः ।

अथ विशुद्धकण्ठदेशे वृत्ताकारं स्वच्छं हं बीजाधिष्ठितं आकाश-मण्डलं विचिन्त्य, तन्मध्ये द्वासप्ततिदलं कमलं विभाव्य, तत्कर्णिकायां प्राग्वद् देवीं ध्यात्वा; तद्दलेषु प्रागादिपरितः सर्वमन्त्रमय्यादिकौलिनी पर्यन्ताः द्वासप्ततिदेवताः मूलदेव्याकाराः ध्यायन्; न्यसेत् ।

तद्यथा – ४ सर्वमन्त्रमय श्री० । ४ सर्वमन्त्रमयी श्री० । ४ सर्वद्वन्द्व-क्षयङ्कर श्री० । ४ सर्वद्वन्द्वक्षयङ्करी श्री० । ४ सर्वसौभाग्यदायकचक्रस्वामि-श्री० । सर्वसौग्यदायकचक्रस्वामिनी श्री० । ४ सम्प्रदाययोगि श्री० । ४ सम्प्रदाय-योगिनी श्री० । ४ सर्वसिद्धिप्रद श्री० । ४ सर्वसिद्धिप्रदा श्री० । ४ सर्वसम्पत्प्रद श्री० । ४ सर्वसम्पत्प्रदा श्री० । ४ सर्वप्रियङ्कर श्री० । ४ सर्वप्रियङ्करी श्री० । ४ सर्वमङ्गलकारण श्री० । ४ सर्वमङ्गलकारिणी श्री० । ४ सर्वकामप्रद श्री० । ४ सर्वकामप्रदा श्री० । ४ सर्वदुःखविमोचन श्री० । सर्वदुःखविमोचनी श्री० । ४ सर्वमृत्युप्रशमन श्री० । ४ सर्वमृत्युप्रशमनी श्री० । ४ सर्वविघ्न-निवारण श्री० । सर्वविघ्ननिवारिणी श्री० । ४ सर्वाङ्गसुन्दर श्री० । ४ सर्वाङ्ग-सुन्दरी श्री० । ४ सर्वसौभाग्यदायक श्री० । सर्वसौभाग्यदायिनी श्री० । ४ सर्वार्थसाधकचक्रस्वामि श्री० । ४ सर्वार्थसाधकचक्रस्वामिनी श्री० । ४ कुलोत्तीर्णयोगी श्री० । ४ कुलोत्तीर्णयोगिनी श्री० । ४ सर्वज्ञश्री० । ४ सर्वज्ञाश्री० । ४ सर्वशक्तश्री० । ४ सर्वशक्तिश्री० । ४ सर्वैश्वर्यप्रद-

श्री० । ४ सर्वैश्वर्यप्रदा श्री० । ४ सर्वज्ञानमय श्री० । ४ सर्वज्ञानमयी श्री० । ४ सर्वव्याधिविनाशन श्री० । ४ सर्वव्याधिविनाशिनी श्री० । ४ सर्वाधारस्वरूप श्री० । सर्वाधारस्वरूपा श्री० । ४ सर्वपापहर श्री० । ४ सर्वपापहरा श्री० । ४ सर्वानन्दमय श्री० । ४ सर्वानन्दमयी श्री० । ४ सर्वरक्षास्वरूप श्री० । ४ सर्वरक्षास्वरूपिणी श्री० । ४ सर्वेप्सितफलप्रद श्री० । ४ सर्वेप्सितफलप्रदा श्री० । ४ सर्वरक्षाकरचक्रस्वामि श्रीं० । ४ सर्वरक्षाकरचक्रस्वामिनी श्री० । ४ निगर्भयोगि श्री० । ४ निगर्भयोगिनी श्री० । ४ वशि श्री० । ४ वशिनी श्री० । ४ कामेश्वर श्री० । ४ कामेश्वरी श्री० । ४ मोदी श्री० । ४ मोदिनी श्री० । ४ विमल श्री० । ४ विमला श्री० । ४ अरुण श्री० । ४ अरुणा श्री० । ४ जयी श्री० । जयिनी श्री० । ४ सर्वेश्वर श्री० । ४ सर्वेश्वरी श्री० । ४ कौलिक श्री० । ४ कौलिनी श्री० । इत्याकाशचक्रे द्वासप्ततिरश्मिन्यासः ।

ततो भ्रूमध्ये मानसं चक्रं बिन्दुरूपं तडित्कोटिसमप्रभं ध्यात्वा तत्र चतुःषष्टिदलमण्डितं कमलं ध्यात्वा, तत्कर्णिकायां श्री परदेवतां परितः तद्दलेषु प्रादक्षिण्येन तदङ्गभूताः तस्याकाराः सर्वरोगहरस्वामिन्यादि महाशय्यां ताश्चतुःषष्टिदेवताः न्यसेत् । तद्यथा – ४ सर्वरोगहरचक्रस्वामी श्री० । ४ सर्वरोगहरचक्रस्वामिनी श्री० । ४ रहस्ययोगि श्री० । ४ रहस्ययोगिनी श्री० । ४ बाणी श्री० । ४ बाणिनी श्री० । ४ चापी श्री० । ४ चापिनी श्री० । ४ पाशी श्री० । ४ पाशिनी श्री० । ४ अङ्कुशी श्री० । ४ अङ्कुशिनी श्री० । ४ महाकामेश्वर श्री० । ४ महाकामेश्वरी श्री० । ४ महावज्रेश्वर श्री० । ४ महावज्रेश्वरी श्री० । ४ महाभगमाली श्री० । ४ महाभगमालिनी श्री० । ४ महात्रिपुरसुन्दर श्री० । महात्रिपुरसुन्दरी श्री० । ४ सर्वसिद्धिप्रदचक्रस्वामी श्री० । ४ सर्वसिद्धिप्रदचक्रस्वामिनी श्री० । ४ अतिरहस्ययोगि श्री० । ४ अतिरहस्ययोगिनी श्री० । ४ श्री श्रीमहाभट्टारक श्री० । श्री श्रीमहाभट्टारिका श्री० । ४ सर्वानन्दमयचक्रस्वामी श्री० । ४ सर्वानन्दमय-

चक्रस्वामिनी श्री० । ४ परापररहस्ययोगि श्री० । ४ परापररहस्ययोगिनी श्री० । ४ त्रिपुर श्री० । ४ त्रिपुरा श्री० । ४ त्रिपुरेश्वर श्री० । ४ त्रिपुरेश्वरी श्री० । ४ त्रिपुरसुन्दर श्री० । ४ त्रिपुरसुन्दरी श्री० । ४ त्रिपुरवासि श्री० । ४ त्रिपुरवासिनी श्री० । ४ त्रिपुर श्री० । ४ त्रिपुरा श्री० । ४ त्रिपुरमालि श्री० । ४ त्रिपुरमालिनी श्री० । ४ त्रिपुरसिद्ध श्री० । त्रिपुरसिद्धा श्री० । ४ त्रिपुराम्ब श्री० । ४ त्रिपुराम्बा श्री० । ४ महात्रिपुरसुन्दर श्री० । महात्रिपुरसुन्दरी श्री० । ४ महामहामहेश्वर श्री० । ४ महा महामाहेश्वरी श्री० । ४ महा-महाराज श्री० । ४ महामहाराज्ञी श्री० । ४ महामहाशक्त श्री० । ४ महामहाशक्ति श्री० । ४ महामहागुप्त श्री० । ४ महामहागुप्ता श्री० । ४ महामहानन्द श्री० । ४ महामहानन्दा श्री० । ४ महामहास्कन्द श्री० । ४ महामहास्कन्दा श्री० । ४ महामहास्पन्द श्री० । महामहास्पन्दा श्री० । ४ महामहाऽऽशय श्री० । ४ महामहाऽऽशया श्री० । इत्याज्ञायां चतुः-षष्टिरश्मिन्यासः ।

इति षष्ट्युत्तरं त्रिशतं मयूखजालं विन्यस्य; तेषां सर्वेषामुपरि द्वादशान्ते चरणद्वयं न्यसेत् ।

तत्र ब्रह्मन्ध्रस्य सहस्रदलकमलकर्णिकायां श्रीपरदेवतां ध्यात्वा; तस्यामेव श्री श्रीमहाचक्रनगरसाम्राज्ञी रक्तपादुकां पूजयामि नमः । इति ब्रह्मरन्ध्रस्य दक्षिणभागे विन्यस्य; वामभागे, ४ श्री श्रीमन्महाचक्रनगर-सम्राट् शुक्लश्रीपादुकां पूजयामि नमः । इति पादाम्बुजयुगं न्यसेत् । इति श्रीविद्यासम्भवषष्ट्युत्तरत्रिशतरश्मिक्रमन्यासः ।

अत्र न्यासे सप्ताक्षर्यां नमोन्तंमानसपूजायां तु सप्ताक्षरी-मात्रमेव । तत्र केचित् – न्यासे प्रोक्तरश्मीनां तत्तन्नामचतुर्थ्यन्तं नमोन्तमित्याहुः । ५ यथोक्तरूपं देशं कार्यमिति ।

एवं रश्मिक्रमं कुर्वन् साधको विजितेन्द्रियः ।
धनधान्याऽऽयुरारोग्यं भोगमोक्षफलं लभेत् ॥

तत्र ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय; 'शिवोऽहमिति भावयन् वक्ष्यमाण-सङ्क्षोभणादि नवमुद्राः पादादिचतुर्मुद्राश्च बद्ध्वा; सर्वाऽवयवभावन-कामकलारूपमात्मानं ध्यात्वा; शक्त्युत्थापनमुद्रां बध्वा; प्रातःस्मरण-प्रोक्तप्रकारेण मूलाधारात् कुण्डलिनीं समुत्थाप्य; तथैव षट्चक्रभेदन-क्रमेण ध्यायन्, अन्तर्यागं विधाय तत्तेजसा परिणतां श्रीपरदेवता हृदयकमलगतसिंहासने श्रीचक्रराजे कामेश्वराऽङ्कस्थां सर्वाऽऽवरण-संयुक्तां त्रिखण्डमुद्रमुद्रितकरो ध्यायेत् ।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गोऽगात् त्रयोदशः॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभग्यरत्नाकरे त्रयोदशस्तरङ्गः॥१३॥

श्रीमङ्गलमूर्त्तये नमः

ॐ

अथ चतुर्दशस्तरङ्गः

तत्र नन्दनोद्यानम्

तत्र वामकेश्वरतन्त्रे –

उद्यच्चन्द्रोदयक्षुब्धरत्नपीयूषवारिधिः ।
मध्ये हेममयां भूमिं स्मरेन्माणिक्यमण्डिताम् ॥ १ ॥
तन्मध्ये नन्दनोद्यानं मदनोन्मादनं महत् ।
नित्याभ्युदितपूर्णेन्दुज्योत्स्नाजालविराजितम् ॥ २ ॥
सदा सह वसन्तेन कामदेवेन रक्षितम् ।
कदम्ब-चूत-पुन्नाग-नागकेसरचम्पकैः ॥ ३ ॥
बकुलैः पारिजातैश्च सर्वर्त्तुकुसुमोज्ज्वलैः ।
झङ्कारमुखरैर्भृङ्गैः कूजद्भिः कोकिलैः शुभैः ॥ ४ ॥
नानावर्णैरथाऽन्यैश्च द्विजसङ्घैर्निषेवितम् ।
शिखिकारण्डहंसाद्यैर्नानापक्षिभिरावृतम् ॥ ५ ॥
नानापुष्पलताकीर्णैः शोभितं वृक्षखण्डकैः ।
पर्यन्तदीर्घिकोत्फुल्लकमलोत्पलसम्भवैः ॥ ६ ॥
रजोभिर्धूसरैस्सम्यक् सेवितं मलयानिलैः ।
ध्यात्वैवं नन्दनोद्यानं तदन्तः प्राङ्गणं स्मरेत् ॥ ७ ॥

प्राङ्गणस्मरणम् –

शुद्धकाञ्चनसङ्काशवसुधाभिरलङ्कृतम् ।
प्राङ्गणं चिन्तयेत् सिद्धं सुरसिद्धनिषेवितम् ॥८॥

मण्डपध्यानम् –

तन्मध्ये मण्डपं ध्यायेद् व्याप्तब्रह्माण्डमण्डलम् ।
सहस्रादित्यसङ्काशं चतुरस्रं सुशोभनम् ॥९॥
रत्नतेजःप्रभापुञ्जपिञ्जरीकृतदिङ्मुखम् ।
मध्यस्तम्भविनिर्मुक्तं कोणस्तम्भसमन्वितम् ॥१०॥
महामाणिक्यवैदूर्यरत्नकाञ्चनभूषितम् ।
मुक्तादामवितानाढ्य-रत्नसोपानमण्डितम् ॥११॥
मन्दवायुसमाक्रान्तं गन्धधूपतरङ्गितम् ।
रत्न-चामर-घण्टादिविमानैरुपशोभितम् ॥१२॥
जाती-चम्पक-पुन्नाग-केतकीमल्लिकादिभिः ।
रक्तोत्पलसिताऽम्भोजमाधवीभिः सुपुष्पकैः ॥१३॥
बद्धाभिश्चित्रमूलाभिः सर्वत्र समलङ्कृतम् ।
तिर्यगूर्ध्वलसद्रत्नपुत्तलीकोटिमण्डितम् ॥१४॥
नानारत्नादिभिर्दिव्यैर्निर्मितं विश्वकर्मणा ।
तन्मध्ये विपुलं ध्यायेद् वेदिकां शतयोजनाम् ॥१५॥

वेदिकाध्यानम् –

सहस्राऽऽदित्यसङ्काशां कोटिमाणिक्यमण्डिताम् ।
चतुर्द्वारसमोपेतां माणिक्यद्वारतोरणाम् ॥१६॥

प्रदीपैः पूर्णकुम्भैश्च सर्वतः समलङ्कृताम् ।
हैमीभिः पालिकाभिश्च साङ्कुराभिरलङ्कृताम् ॥ १७॥
रत्नपीठस्थितैर्दिव्यैरागमैः परिशोभिताम् ।
तदन्तराऽन्तरप्रोद्यन्मणिदर्पणमङ्गलाम् ॥ १८॥
मधुरोद्गारविविधगन्धर्वैस्तोत्रबृंहिताम् ।
शृङ्गाररससन्मध्यैर्नवयौवनलम्पटैः ॥ १९॥
अमरैर्निकरैर्नानामणिभूषणभूषितैः ।
वीणावेणुमृदङ्गादिवादनेन च नृत्यकैः ॥ २०॥
प्रीणयद्भिर्महादेवीं परान्तां परितः सदा ।
रत्नसिंहासनं तस्य वेद्याः मध्ये स्मरेच्छुभम् ॥ २१॥

सिंहासनस्मरणम् –

विरिञ्चि-विष्णु-रुद्रेश-रूपपादचतुष्टयम् ।
सदाशिवमयं साक्षात् तस्मिन् परशिवात्मकम् ॥ २२॥
पुष्पपर्यङ्कमाश्चर्यं तत्र श्रीचक्रनायकम् ।
तन्मध्ययोनिमध्यस्थे श्रीमदुद्यानपीठके ॥ २३॥
पर्यङ्कमध्यविलसत्-स्वस्तिकासनशालिनीम् ।
ध्यायेत् परशिवाऽङ्कस्थां पद्ममध्योज्ज्वलाकृतिम् ॥ २४॥

परशिवाङ्कस्थदेवीध्यानम् –

ततो ध्यानं प्रवक्ष्यामि त्रिदशैः सेवनीयकम् ।
ततः पद्मनिभां देवीं बालाऽर्ककिरणाऽरुणाम् ॥ २५॥
जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ।
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमोदकसन्निभाम् ॥ २६॥

स्फुरन्मुकुटमाणिक्यकिङ्किणीजालमण्डिताम् ।
कालाऽलिकुलसङ्काशकुटिलाऽलकपल्लवाम् ॥ २७॥
प्रत्यग्राऽरुणसङ्काशवदनाऽम्भोजमण्डलाम् ।
किञ्चिदर्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ॥ २८॥
पिनाकधनुराकारभ्रूलतां परमेश्वरीम् ।
आनन्दमुदितोल्लोललीलाऽऽन्दोलितलोचनाम् ॥ २९॥
स्फुरन्मयूखसङ्घातविलसद्धेमकुण्डलाम् ।
सुगण्डमण्डलाभोगजितेन्द्वमृतमण्डलाम् ॥ ३०॥
विश्वकर्मादिनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम् ।
ताम्रविद्रुमबिम्बाऽऽभरक्तोष्ठीममृतोपमाम् ॥ ३१॥
दाडिमीबीजवज्राभदन्तपङ्क्तिविराजिताम् ।
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ॥ ३२॥
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।
कम्बुग्रीवां महादेवीं मृणाललिलितैर्भुजैः ॥ ३३॥
मणिकङ्कणकेयूरभारां खिन्नैः प्रशोभिताम् ।
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराऽम्बुजाम् ॥ ३४॥
कराऽम्बुजनखज्योतिर्वितानितनभस्तलाम् ।
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् ॥ ३५॥
त्रिवलीवलनायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ।
लावण्यसरिदाऽऽवर्त्ताऽकार-नाभिविभूषिताम् ॥ ३६॥
अनर्घ्यरत्नघटितकाञ्चीयुक्तनितम्बिनीम् ।
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजीवराऽङ्कुशाम् ॥ ३७॥

कदलीललितस्तम्भ-सुकुमारोरुमीश्वरीम् ।
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ॥ ३८॥
गूढगुल्फ-पदद्वन्द्व-प्रपदाजितकच्छपाम् ।
ब्रह्म-विष्णुशिरोरत्न-निघृष्टचरणाम्बुजाम् ॥३९॥
तनुदीर्घाऽङ्गुलीभास्वन्नखचन्द्रविराजिताम् ।
शीतां मुदितसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥४०॥
लौहित्यजितसिन्दूरजपादाडिमरागिणीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाऽङ्कुशकरोद्यताम् ॥४१॥
रक्तपुष्पनिविष्टां च रक्ताऽऽभरणमण्डिताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च पञ्चबाणधनुर्धराम् ॥४२॥
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलाऽऽपूरिताननाम् ।
महामृगमदोद्दाम-कुङ्कुमारुणविग्रहाम् ॥४३॥
सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वाऽलङ्कारभूषिताम् ।
जगदाऽऽह्लादजननीं नमद्रञ्जनकारिणीम् ॥४४॥
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ।
सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ॥४५॥
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां परमानन्दनन्दिताम् ।
एवं ध्यायेत् परेशानीं महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥४६॥

इति स्वैक्येन ध्यात्वा, मूलविद्यया स्वशिरसि पुष्पाञ्जलिं दत्वा, पुनः हृदयकमले यथोक्तरूपां भगवतीं साऽङ्गां सावरणां ध्यात्वा, वक्ष्यम,ाणप्रकारेण पीठपूजादिपूर्वकं साङ्गां साऽऽवरणां देवीं मानसैरुपचारैः सम्पूज्य, नैवेद्यं दत्वा, भोजनाऽवसरे अन्तर्वैश्वदेवं कुर्यात् ।

तत्र मूलाधारे आत्माऽन्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मेत्यात्मचतुष्टयक्लृप्तचतुरस्रं कुण्डल्यग्निसमुज्ज्वलं कुण्डं ध्यात्वा, तत्र श्रीपरदेवतां ध्यात्वा, तन्मुखे मूलविद्यान्ते 'अहं तां जुहोमि स्वाहा' इत्यादि अदन्ता-ऽसत्-पैशुन्य-काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्याणि सुषुम्णाऽस्रुक्युग्युक्तमनःस्रुवेण प्रत्येकं हुत्वा, पुनः हृदयकमले भुक्तवन्तीं देवीं ध्यात्वा, उत्तरापोशनादिसर्वोपचारैः आराध्य, मूलविद्यां यथाशक्ति जपित्वा, प्राणायामादिपूर्वकं वक्ष्यमाण-विधिना जपं समर्प्य, श्रीगुरुं प्रणप्य, स्वदेहं गन्धादिभिरलङ्कृत्य, अर्घादिपात्रस्थापनं कुर्यात् ।

तत्र स्ववामाग्रे वक्ष्यमाणविशेषार्घमण्डलवत् मण्डलं विरच्य, तथैव सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना प्रक्षालितमाऽऽधारं संस्थाप्य, तत्रैव सम्पूज्य, सुवर्णादिरचितं कलशं धूपवासितं 'हुं हुं ब्रह्माण्डचषकाय स्वाहा' इति वामकरेण प्रक्षालितं ऐं सन्दीपिनि ज्वालामालिनि ह्रीं इति सन्दीपिनीविद्यया योनिमुद्रया सन्दीपितं कवचेनाऽवगुण्ठितं 'ॐ नमः ह्रीं नमः क्लुं क्षून्नमः हं नमः सः नमः' इति विन्यस्तपञ्चमन्त्रं 'ॐ ३ श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्या महाकलशं स्थापयामि' इति, तत्र कलशं संस्थाप्य, तत्र वक्ष्यमाणविशेषाऽर्घपात्रवत् सूर्यकलान्तं सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना एव कर्पूरादिसुवासिताऽपर्युषितपरिस्रुतपयः समापूर्य, तत्र अब्जादिकं निक्षिप्य, तन्मध्ये विशेषार्घं वक्ष्यमाणं मण्डलं विभाव्य, वक्ष्यमाणविधिना सोमकलान्तं सम्पूज्य, तत् चतुरस्रं परितः ॐ ३ हसख्फ्रें २ पद्यिकदेवताभ्यो हुं फट् स्वाहा नमः ॐ ३ ह स ख फ्रें ग्रामचण्डालिनी हुं फट् स्वाहा नमः ॐ ३ हसखफ्रें क्रोधचण्डालिनी हुं फट् स्वाहा नमः, ॐ ३ हसखफ्रें दृष्टि चं ॐ ३ ह स ख फ्रें स्पर्श चं० ॐ ३ ह स ख फ्रें सृष्टि चं० ॐ ३ ह स ख फ्रें घट चं० ॐ ३ ह स ख फ्रें तपनवेध चं० ॐ ३ हसखफ्रें निर्दीप चं० ॐ ३ ह स ख फ्रें सर्वजनदृष्टिस्पर्शदोषचं० ॐ ३ ह स ख फ्रें पशुपाशचं० इति स्वाऽग्रादिप्रादक्षिण्येन पूजयेदिति । एवं दश दोषान् निरस्य, 'ॐ ३ कां कीं कूं कौं कः विकारशोषिणि अस्य विकारान् हन हन स्वाहा' इति हेतुमध्ये सम्पूज्य –

"स्वादिष्ट्यादिभिः पूर्वमृग्भिः पञ्चभिरायतः ।
विष्णुयोनित्रयेणैव त्रिभिष्ट्यादित्रयेण च ॥

इमं म इति च द्वाभ्यां तामन्देत्येकया तथा।

श्रोणामेकेति चैकेन शुक्लशापं विमोचयेत्''॥

इति श्रीकुलार्णववचनाद् उक्तपञ्चदशमन्त्रैः सकृत् सकृद् अभिमन्त्रयेत्।

मन्त्रास्तु ऋग्वेदे। यथा– नवममण्डले, प्रथमेऽनुवाके–(१)– ''स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुतः १ रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहतम्। द्रुणा सधस्थमासदत् ॥२॥

वरिवोधातमो भव मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः। पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥

अभ्यर्ष महानां देवानां वीतिमन्धसा। अभिवाजमुत श्रवः ॥४॥

त्वामच्छा चरामसि तदिदर्थं दिवे दिवे। इन्दो त्वे न आशंसः ॥५॥

दशमे मण्डले, द्वादशेऽनुवाके–(१८४) ''विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥१॥ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्वनौ देवा वा धत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥ हिरण्मयी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना। तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे'' ॥३॥

नवममण्डले, द्वितीयाऽध्याये, तृतीयेऽनुवाके – ''त्रिभिष्टं देव सवित वर्षिष्ठैः सोमधामभिः। अग्ने दक्षैः पुनीहि नः ॥२६॥ पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया। विश्वे देवा पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा। ॥२७॥ प्रप्यायस्व प्रस्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः। देवेभ्य उत्तमं हविः ॥२८॥

दशममण्डले, तृतीयेऽध्याये –

''इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।

असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया'' ॥५॥

ऋग्वेदीयखिलसूक्ते –

''सितासिते सरिते यत्र सङ्गथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।

ये वै तन्वति सृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्त्वं भजन्ते'' ॥१॥

दशममण्डले, अष्टमाध्याये, तृतीयेऽनुवाके –

"ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे।

कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामय दुर्मतिं हतम्"॥१३॥

प्रथममण्डले, तृतीयेऽध्याये –

"श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।

आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत् किंस्विद् पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः"॥१०॥

इत्यभिमन्त्य, "ॐ ३ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतस्वरूपिणि अमृतं श्रावय मुक्तशापात् सुधां मोचय २ मोचिकायै नमः ॐ जूं सः स्वाहा" इति विद्ययाऽष्टवारमभिमन्त्र्य, ॐ ३ सिद्धायै नमः, ॐ ३ रक्तायै नमः, ॐ ३ शुक्लायै नमः, ॐ ३ उत्पलायै नमः, इति चतुरस्रस्य चतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन स्वाऽग्रादितः सम्पूज्य, तन्मध्यत्रिकोणं विशेषार्घे वक्ष्यमाणरूपं विभाव्य, "आनन्दभैरवानन्दभैरवी-मिथुनवक्त्रं" ध्यायेत्।

"सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्।
अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम्॥
अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरिस्थितम्।
बृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम्॥
कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम्।
पाशाऽङ्कुशधरं देवं गदामुसलधारिणम्॥
खड्गखेटकपट्टीशमुद्गरं शूलदन्तिकम्।
विचित्रखेटकं मुण्डं वरदाऽभयपाणिनम्॥
लोहितं देवदेवेशं भावयेत् साधकोत्तमः।
तस्योत्सङ्गे सुधां देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम्॥

हिम्कुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम्।
अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वायुधकरोद्यताम्॥
प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सन्मुखीम्।
सर्वदा सर्वदां देवीं भावयेत् साधकोत्तमः"॥

ॐ ३ ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय षट् आनन्दभैरवश्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नमः ४ सहस्रकमलवरयूँ आनन्दभैरव्यै वषट् आनन्दभैरवीश्री० एवं सर्वत्र ॐ ३ सुरानन्दभैरवाय वौषट्०, सुरानन्द-भैरव्यै वषट्० ॐ ३ अमृतानन्दभैरवाय० ॐ ३ अमृतानन्दभैरव्यै० ॐ ३ तरुणानन्दभैरवाय० ॐ ३ तरुणानन्दभैरव्यै० ॐ ३ उन्मनानन्द-भैरवाय० ॐ ३ उन्मनानन्दभैरव्यै० ॐ ३ ज्ञानानन्दभैरव्यै० ॐ ३ मुक्तानन्दभैरवाय० ॐ ३ मुक्त्यानन्दभैरवाय० ॐ ३ मुक्त्यानन्द भैरव्यै० ॐ ३ परमानन्दभैरवाय० ॐ ३ परमानन्दभैरव्यै० ॐ ३ कालभैरवाय० ॐ ३ कालभैरव्यै०" इति भैरवमिथुननवकं मध्येऽष्टदिक्षु च सम्पूज्य, सन्तर्प्य, मूलविद्यया वीक्षणमुद्रया संवीक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेण कुशैः स्त्रिः सन्ताड्य, कवचमन्त्रेण अभ्युक्ष्य, आघ्राय, वामनासारन्ध्रेण प्रविश्य, ब्रह्मरन्ध्रं गत्वा, तत्रस्थचिच्चन्द्रमण्डलमध्यगतपरमाऽमृतवारिधौ मिलित्वा, तन्मयेन राजदन्तविवरान्नेत्रमार्गेण विनिर्गतं तज्जलं विभाव्य, संरोधनमुद्रया संरुध्य, कवचमन्त्रेणाऽव-गुण्ठनमुद्रयाऽवगुण्ठ्य, वमिति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य, तत्र देवीं ध्यात्वा गन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य, मूलविद्यया अष्टवारमभिमन्त्र्य, "ॐ ३ नमो भगवति ग्रामेश्वरि वारुणीजलमूर्त्तये ऊर्ध्वबिन्दुग्राहिणि महालक्ष्मी ईश्वरि परमधाम्नि परमाकाशभासुरि सोमसूर्याऽग्निभक्षिणि आगच्छाऽऽगच्छ, विशविश, स्वभोगद्रव्यं गृह्णगृह्ण स्वाहा" इति तत्कलशाद् बिन्दुं वामाऽङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यां धृतद्वितीयखण्डेन आदाय, ऊर्ध्वमुत्क्षिपेत्। ततः कलशवदनं पात्राऽन्तरेण आच्छाद्य,

उद्धरणपात्रमादाय, वामकरे निधाय ॐ ३ अमोघायै नमः, ॐ ३ सूक्ष्मायै नमः ॐ ३ आनन्दायै० ॐ ३ शान्त्यै० इति शक्ति-चतुष्टयं वामकरस्थपात्रे सम्पूज्य, कुम्भस्य आच्छादनपात्रस्य उपरि स्थापयेदिति; कलशस्थापनं विधाय, ततः कलशदक्षिणभागे शुद्धोदकेन चतुरस्रवृत्तित्रिकोणात्मकं मण्डलं चन्दनाऽऽलिप्तभूमौ वहन् नासाकरोर्ध्व-पुटाभ्यां कराभ्यां त्रितारमुच्चरन्, निर्माय, प्रणवत्रितारादिनमोन्तया मूलविद्यया त्रिकोणमध्यं सम्पूज्य, कूटत्रयेण त्रिषु कोणेषु स्वाग्ग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, चतुरस्रे अग्नीशनिर्ऋतिवायुकोणेषु हृदयाद्यङ्ग-चतुष्टयं मध्येनेत्रं प्रागादि-चतुर्दिक्ष्वस्त्रमिति षडङ्गमन्त्रैस्सम्पूज्य, तत्र मूलेन क्षालितमाधारं संस्थाप्य, 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं प्रथमकूटमुच्चार्य मं वह्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने श्रीपरदेवतायास्सामान्याऽर्घ्याधाराय नमः इति सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणप्रकारेण वह्नेर्दशकलाः पूजयित्वा, तत्राऽस्त्रेण क्षालितं शङ्खं निधाय० ४।

द्वितीये कूटे "अं अर्कमण्डलाय अर्थप्रदद्वादशकलात्मने श्रीपरदेवतायाः सामान्याऽर्घ्यपात्राय नमः"। इति सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणप्रकारेण सूर्यस्य द्वादशकलास्सम्पूज्य, गन्धादिसुवासितशुद्धतोयेन प्रणवत्रितारमूलविद्यान्ते विलोममातृकामुच्चरन् तत्पात्रमापूर्य, तृतीयकूटं "ॐ सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने श्रीपरदेवतायाः सामान्यार्घाऽमृताय नमः" इति जलं सम्पूज्य, तत्र वक्ष्यमाणप्रकारेण सोमस्य षोडशकलाः सम्पूज्य तत्र प्राग्वत् सवितुर्मण्डलात् तीर्थमावाह्य, कलशाऽमृतबिन्दुं दत्वा, मूलेन गन्धपुष्पादिकं निक्षिप्य प्राग्वत् षडङ्गैः सम्पूज्य "हसक्षमलवरयूं सहक्षमलवरयीमिति" नवात्मकमिथुनमन्त्रेण त्रिरभिमन्त्र्य, "ह्सौं वरुणाय सहौं वारुणीदेव्यै नमः" इति वरुणमिथुनमन्त्रेण च त्रिरभिमन्त्र्य मूलेन अष्टधा अभिमन्त्र्य, धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्शयेदिति; सामान्यार्घ्यं विधाय, तत्समीपे सामान्यार्घ्यजलेन यक्षकर्दमादिगन्धद्रव्यमिश्रितेन भूमिं विलिप्य तत्र बृहच्छ्वासोर्ध्वपुटहस्ताभ्यां चतुरस्रवृत्तषट्कोणत्रिकोणात्मकं मण्डलं

विधाय, तन्मण्डलं शङ्खमुद्रामुद्रितवामकरेणाऽवष्टभ्य, तन्मध्यत्रिकोण-मध्ये सबिन्दुतुर्यस्वरूपां कामकलां विलिख्य, 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परदेवताया विशेषार्घाधारमण्डलाय नमः"इति मण्डलं सम्पूज्य, ४ नमोन्त-मूलेन त्रिकोणमध्यं सम्पूज्य, त्रिकोणाऽग्रकोणे ४ प्रथमकूटं नमः, वामे ४ द्वितीयं नमः, दक्षिणे ४ । तृतीयकूटं नमः" इति त्रिकोणं प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, षट्कोणकोणेषु प्रादक्षिण्येन स्वाग्रमारभ्य, मूलकूटत्रयस्य द्विरावृत्त्या पूजयित्वा, चतुरस्रे प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, चतुरस्रे स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च प्रादक्षिण्येन "ग्लूं गगनरत्नाय नमः, स्लूं स्वर्गरत्नाय नमः, म्लूं मर्त्यरत्नाय नमः प्लूं पातालरत्नाय नमः, न्लूं नागरत्नाय नमः" इति पञ्च रत्नानि सम्पूज्य, पुनः षट्कोणेषु स्वाग्रादि प्रादक्षिण्येन न्यायोक्तषडासनानि सम्पूज्य, चतुरस्रवृत्तषट्कोण–त्रिकोणेषु ४ कामरूपपीठाय नमः, जालन्धरपीठाय नमः ४ पूर्णगिरिपीठाय नमः, ४ उड्यानपीठाय नमः, इति पीठचतुष्टयं सम्पूज्य; शाम्भवदीक्षावाँश्चेत्, चतुरस्रे स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च पञ्चप्रणवपुटितैः प्रणवपञ्चकैः पूजयेत् । तद्यथा –

"ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्फ्रें ह्सौः ऐं ह्सौः हस्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं नमः, एवं २ ह्रीं ५ नमः, ५ श्रीं ५ नमः, ५ स्फ्रें ५ नमः, ५ ह्सौः ५ नमः, "इति सम्पूजयेत् । ततः ४ मूलं सर्वशक्तिमयी श्रीपरदेवतायाः पीठचतुष्टयात्मकाय मण्डलाय नमः, "इति समस्तं मण्डलं सम्पूज्य; तत्र मूलेन प्रक्षालितमाधारं गृहीत्वा, "ॐ ३ श्रीपरदेवताया विशेषार्घाधारं स्थापयामीति मण्डलोपरि संस्थाप्य, ४ प्रथमकूटमुच्चार्य, मं वह्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने, श्रीपरदेवताया विशेषार्घपात्रा-धाराय नमः 'इत्याधारं सम्पूज्य, तदुपरि धूम्रार्चिरादिदशकला इहाऽऽगच्छताऽऽगच्छत" इति वह्नेर्दशकलाः समावाह्य तासां प्राण-प्रतिष्ठां कुर्यात् ।

तत्र पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रे, मम पदस्थाने धूम्रार्चिरादीनामिति पदं निक्षिप्य, प्राणप्रतिष्ठामन्त्रमाधारं स्पृशन् पठेदिति प्राणप्रतिष्ठां विधाय;

यं धूम्रार्चिषे नमः, ४ रं ऊष्मायै नमः, ४ लं ज्वलिन्यै नमः, ४ वं ज्वालिन्यै नमः, ४ शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, ४ षं सुश्रियै नमः, ४ सं सुरूपायै नमः, ४ हं कपिलायै नमः, ४ ळं हव्यवहायै नमः, ४ क्षं कव्यवहायै नमः, इति ताः सम्पूज्य, स्वर्णादिरचितं पात्रं अस्त्रेण प्रक्षाल्य, ४ श्रीपरदेवतायाः विशेषार्घपात्रं संस्थापयामीति तत्र संस्थाप्य; ॥४॥ द्वितीयकूटमुच्चार्य, अं अर्कमण्डलाय अर्थप्रददशकलात्मने श्रीपरदेवताया विशेषार्घपात्राय नमः' इति पात्रमध्ये सम्पूज्य, तत्र पूर्वोक्तं मण्डलं विभाव्य, पूर्ववत्पञ्चरत्नान्तं सम्पूज्य, तथैव पञ्चप्रणवैरभ्यर्च्य, तत्र सूर्यस्य द्वादशकलाः प्राग्वत् समावाह्य प्राग्वत् तन्नामपुरःसरं तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, वृत्ताकारेण प्रादक्षिण्येन ताः पूजयेत्। तद्यथा–

४ कं भं तपिन्यै नमः, ४ खं वं तापिन्यै नमः, ४ गं फं धूम्रायै नमः, ४ घं पं मरीच्यै०, ङं नं ज्वालिन्यै०, ४ चं धं रूच्यै०, ४ छं दं सुषुम्नायै०, ४ जं थं भोगिदायै० ४ झं तं विश्वस्यै०, ४ ञं णं बोधिन्यै०, ४ टं ढं धारिण्यै०, ४ ठं डं क्षमायै नमः इति सम्पूज्य; कलशस्थं जलं उद्धरणपात्रेण उद्धृत्य, मूलविद्यान्ते विलोम-मातृकामुच्चरन् तत्पात्रमापूर्य, तत्राप्यब्जादिकं निक्षिप्य, ऐमित्यङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यां पुष्पेण तत्पात्रस्थं जलं आलोड्य, तत्पुष्पं निरस्य, 'क्लीं' इति चन्दनाऽगुरु-कर्पूर-कचोर-कुङ्कुम-रोचना-जटामांसी-शिलारसात्मक-गन्धाऽष्टक-पङ्कलोलितं चन्दनादिपङ्कलोलितं वायुपुष्पं निक्षिप्य, "सौ" रिति गलिनीमुद्रया निरीक्ष्य, ४ तृतीयकूटं 'ॐ सोममण्डलाय कामप्रदषोडश-कलात्मने श्रीपरदेवताया विशेषार्घ्यमातृकाय नमः' इति पात्रस्थजलमध्ये सम्पूज्य, तत्र पूर्वोक्तं मण्डलं विभाव्य, पूर्ववत् पञ्चरत्नान्तं सम्पूज्य; शाम्भवदीक्षायुक्तश्चेत् तथैव पञ्चप्रणवैः पूजयेत्।

ततस्तत्र सोमस्य षोडशकलाः प्राग्वत् समावाह्य, प्राग्वत् तन्नाम-पुरःसरं तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, वृत्ताकारेण स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ताः पूजयेत्। तद्यथा–

'४ अं अमृतायै०, ४ आं मानदायै०, ४ इं पूषायै०, ४ ईं० तुष्ट्यै०, ४ उं पुष्ट्यै०, ४ ऊँ रत्यै०, ४ ऋं धृत्यै०, ४ ॠं शशिन्यै०, ४ ऌं चन्द्रिकायै० ४ ॡं० कान्त्यै०, ४ एं ज्योत्स्नायै०, ४ ऐं श्रियै० ४ ओं प्रीत्यै०, ४ औं अङ्गदायै०, ४ अं पूर्णायै०, ४ अः पूर्णामृतायै नमः इति सम्पूज्य पूर्वपूजितमण्डलमध्यत्रिकोणं कथादित्रिरेखं विभाव्य, तत्कोणत्रयं मूलविद्यायाः कूटत्रयं, मध्यस्थबिन्दौ कामकलां, तत्पार्श्वयोः सबिन्दूहक्षौ, तत्पृष्ठे लकारं, पार्श्वयोः हं सवर्णैः विभाव्य, पुष्पाऽक्षत-गर्भितां योनिमुद्रां बद्ध्वा, गुरूपदिष्टप्रकारेण मूलाधरात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य, षट्चक्रभेदक्रमेण सुषुम्ना वर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रस्थचिच्चन्द्रमण्डलं नीत्वा, तत्र स्थितपरमशिवं संयोज्य, तयोः शिवशक्त्योः सामरस्यमुख्यानुभव-गलिताऽमृतधारां सञ्चिन्त्य, राजदन्तनिवसत् नयनवर्त्मना निःसृतां योनिमुद्रोल्लसितकरेण आनीय, ४ मूलविद्यान्ते "ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतं अशेषरससम्भूतम्। आपूरितं महापात्रं पीयूसरसमावह 'ऐं प्लूं ग्रौं ४ जूं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्वाहा' इति तस्मिन् अर्घामृते पुष्पाक्षतततप्रक्षेपेण तदमृतधारां संयोज्य 'व' मिति धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, '४ ऊँ ४ ह्रीं सः सोऽहं स्वाहा' इत्यात्माष्टाक्षर-मन्त्रेण च त्रिरभिमन्त्र्य पुनरुच्चार्य, आत्मशक्तिश्रीपादुकां पूजयामी'ति जलमध्ये सम्पूज्य, पुनः प्रणवेन त्रिरभिमन्त्र्य, पुनः प्रणवमुच्चार्य, पर-निष्कल-शाम्भवीश्री०' इति जलमध्ये सम्पूज्य, पुनः "ईं सः" इति मन्त्रेण त्रिभिरभिमन्त्र्य, हं सः अजपाशक्तिश्री०, इति सम्पूज्य, मातृकया बिन्दुरहितया त्रिभिरभिमन्त्र्य, पुनः तामुच्चार्य, मातृकासरस्वतीश्री० इति जलमध्ये सम्पूज्य, मूलतार्त्तीय कूटमुच्चार्य , त्रिपुराऽमृतेश्वरीश्री० इति जलमध्ये सम्पूज्य; ४ ह स क्ष म ल व र यूं स ह क म ल व र यीं" इत्यानन्दभैरवमिथुनविद्याभ्यां त्रिभिरभिमन्त्र्य; ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वौषट् आनन्दभैरवश्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नमः इति त्रिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य; ४ स ह क्ष म ल व र

यीं सुधादेव्यै वषट् सुधादेवीश्री० इति त्रिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य, हसौं वरुणाय नमः स् हौं वारुणीदेव्यै नमः' इति वरुणमिथुनविद्याभ्यां त्रिरभिमन्त्र्य, ४ पुनः पृथगुच्चार्य, वंरुणश्री० वारुणीदेवीश्रीपादुकां पूजयामी'ति सम्पूज्य सन्तर्प्य; ततो बालया वक्ष्यमाणषोडशनित्यामन्त्रैश्च सकृत् सकृदभिमन्त्र्य, तद्दिननित्याविद्यया तत्तिथिनित्याविद्यया च पृथक् त्रिस्त्रिरभिमन्त्र्य, पराप्रासादपरामन्त्राभ्यां मूर्ध्नाम्नायदीक्षितश्चेत् ह्सौ स्हौः इति मन्त्राभ्यां त्रिरभिमन्त्र्य, ततश्चरणादिदीक्षितकुलयोगिनीविद्याभ्यां त्रिस्त्रिरभिमन्त्र्य; ततः सौरित्यनुत्तरपराविद्यादीक्षितश्चेत् तया त्रिरभिमन्त्र्य पूर्णाभिषिक्तश्चेत् कामकलाविद्यया त्रिरभिमन्त्र्य, षडन्वयशाम्भवदीक्षा-युक्तश्चेत् तद्विद्याभिस्त्रिस्त्रिरभिमन्त्र्य, ततो वक्ष्यमाणपाञ्चभौतिकमन्त्रैस्त्रि-स्त्रेभिमन्त्र्य, सृष्ट्यादिदशकलाजलमध्ये समावाह्य, प्राग्वत् तन्नामपुरःसरं तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय; वामदेव ऋषिः जगती छन्दः सूर्यो देवता, ॐ हं सः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता, वेदिषदतिथिः, दुरोणसत् नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जागोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्' इत्यनया ऋचा सकृदभिमन्त्र्य, पुनः उच्चार्य, "ब्रह्मणे नमः" इति जलमध्ये सम्पूज्य, 'कं सृष्ट्यै नमः' इत्यादिप्रागुक्तकलामातृकान्यासोक्तप्रकारेण कचवर्णकलाः सम्पूज्य; ततः टतवर्गोत्त्थजरादिदशकलाः समावाह्य, प्राग्वत् तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय; प्रतिद्विष्णुरिति दीर्घतपविष्णुः त्रिष्टुप् प्रतद्विष्णुः तव ते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरोगरिष्ठाः यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षिपन्ति भुवनानि विश्वा' इत्यनया ऋचा सकृदभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य, 'विष्णवे नमः' इति सम्पूज्य 'टं जरायै नमः' इत्यादिना सम्पूज्य, पुनः पयवर्गोत्थकलाः वीक्ष्याद्याः समावाह्य, प्राग्वत् तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय; त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठऋषिः अनुष्टुप् छन्दः त्र्यम्बकरुद्रो, "त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्" इत्यभिमन्त्र्य, पुनर्मूलमुच्चार्य, 'रुद्राय नमः' इति सम्पूज्य 'यं तीक्ष्णायै नमः' इत्यादिभिः सम्पूज्य पुनः षकारादि-

क्षकारान्तपञ्चवर्णोत्थाः पीतादिपञ्चकलाः समावाह्य, प्राग्वत् तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, गायत्र्या ऋष्यादीन् स्मृत्वा, गायत्र्याऽभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य, "ईश्वराय नमः" इति सम्पूज्य, "पं पीतायै नमः" इत्यादि ताः सम्पूज्य, सत्वस्वरोत्थनिवृत्यादिषोडशकलाः समावाह्य, प्राग्वत् तासां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, विष्णुः योनिं कल्पयत्विति' मन्त्रस्य त्वष्टा गर्भकर्त्ता ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीविष्णुर्देवता, सदाशिवपूजार्थे विनियोगः, विष्णुर्योनिं कल्पयतु; त्वष्टा रूपाणि पिंशतु; आसिञ्चतु प्रजापतिर्धातागर्भं दधातु ते इत्यभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य, सदाशिवाय नमः, इति जलमध्ये सकृत् सम्पूज्य, 'अं निवृत्यै नमः' इत्यादि ताः सम्पूज्य मातृकया द्विरभिमन्त्र्य, पुनरुच्चार्य, मातृकासरस्वती श्रीपादुकां इति सम्पूज्य, "ऐं – अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि स्वच्छन्दस्फुरणामात्र निधेह्यकुलरूपिणि"। इत्यनेन त्रिरभिमन्त्र्य, "क्लीं अकुलस्थाऽमृताकारे सिद्धिज्ञानकरे परे। अमृतत्वं निधेहि अस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि"। इति च त्रिरभिमन्त्र्य, ऐं प्लूं ग्रौं जूं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय २ स्वाहा' इत्यमृतेश्वरीविद्यया चतुर्वारमभिमन्त्र्य, पुनः तामुच्चार्य, अमृतेश्वरी श्री० इति सकृत् सम्पूज्य, ततः ऐं वद वद वाग्वादिनि, ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि, क्लेदय, महाक्षोभं कुरु २ क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु, सौः ह्सौः इति दीपनीविद्यया पञ्चवारमभिमन्त्र्य, ततः तत्र मूलविद्यामष्टधा जपित्वा, तन्मध्ये चतुरस्रं पश्चिमद्वारं विचिन्त्य, तद्द्वारपार्श्वयोः कुलवटुकनाथतद्वल्लभाम्बा श्री० कुलगणपतिनाथतद्वल्लभाम्बा श्री० इति दक्षिणवामयोः सम्पूज्य, तदन्तः प्राग्वत् षडासनानि सम्पूज्य, तन्मध्यत्रिकोणमध्यस्थबिन्दुमध्ये कामकलायां वक्ष्यमाणप्रकारेण देवीमावाह्य, ध्यात्वा, षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य, गन्धादिभिः सम्पूज्य, वक्ष्यमाण-विधिना देव्यङ्गे लयाङ्गं सम्पूज्य, तिथिनित्याः षोडशनित्याः गुरुपङ्क्तित्रय-षडङ्गयुवतीश्च सम्पूज्य, वक्ष्यमाणसमष्टियोगिनी मन्त्रेण त्रिः सकृद् वा

पुष्पाञ्जलिं दत्वा, धूपदीपौ निवेद्य, योनि-धेनु-महायोनि-त्रिशिख-पद्म-सङ्क्षोभ-द्रावणाऽऽकर्ष-वश्योन्माद-महाङ्कुश-खेचरी-बीजयोनि-पाशाङ्कुश-धनु-र्बाणाख्याः अष्टादशमुद्राः प्रदर्श्य नमस्कारमुद्रया प्रणमेत् ।

अत्र एतावत् कर्तुमशक्तश्चेत्– अभिमन्त्रणपूजनयोरन्यतरत् कुर्यात् ।

तत्राप्यशक्तश्चेत् आत्माष्टाक्षरपूजां कृत्वा आनन्दभैरवमिथुनं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, सृष्ट्यादिकलापूजामारभ्य, शेषं प्राग्वत् समापयेदिति विशेषार्घ-स्थापनविधिः । ततस्तत्परतस्तेनैव विधिना श्रीपात्राख्यं पात्रान्तरं स्थाययेत् । तेन मूलदेव्यतिरिक्तावरणदेवताः तर्पयेत् । पूजासमर्पणादिकं मूलदेव्यास्तर्पणं च विशेषार्घेणैव । तत्र अनङ्गकुसुमादिपर्यन्तमावरणत्रयपूजासमर्पणमर्घ्यदानं च सामान्यार्घजलैरेव कुर्यादिति श्रीपात्रस्थापनविधिः ।

ततस्तदनुक्रमेणैव तदधः पङ्क्त्याकारेण पाद्याचमनीयमधुपर्कार्थं पात्रत्रयं सामान्यार्घविधिनैव स्यापयेत् । तदशक्तौ त्रिकोणमण्डलत्रये साधारं पात्रत्रयं निधाय, तत्र पात्रद्वयं शुद्धजलेनापूर्य, तृतीयं मधुपर्कद्रव्येण आपूर्य, तेषु विशेषार्घजलं किञ्चित्किञ्चिद् दत्वा, मूलविद्यया पृथक्-पृथक् अष्टवारमभिमन्त्रयेत् । मधुपर्के तु कांस्यपात्रं प्रशस्तं ताम्रवर्ज्यं अन्यतरद् वा पात्रान्तरेण आच्छादितं कुर्यात् । गन्ध-पुष्प-अक्षत-यव-कुशाऽग्र-तिल-सर्षप-दूर्वाः सामान्यार्घे निक्षिपेत् ।

पाद्यपात्रे श्यामक-तण्डुल-दूर्वा कमला-पराजिता-पुष्पोशीर-रोचनाख्य-द्रव्याष्टकं निक्षिपेत् । आचमनीयपात्रे जातीफल-लवङ्गकङ्कोलचूर्णानि निक्षिपेत् । उक्तद्रव्याऽलाभे तत्तद्वस्तुभावनया तण्डुलान् निक्षिपेत् । मधुपर्कपात्रे दधि-मधु-घृतानि विनिक्षिप्य, विशेषार्घबिन्दुना संस्कुर्यात् । दध्याद्यलाभे जलेनैव तद्भावनया पूरयेत् ।

ततः स्वदक्षिणाऽग्रे पाद्यादिपात्रविधानेनैव पुनराचमनीयपात्रं प्रोक्षणी-पात्रं च स्थापयेत्। अत्राऽप्यशक्तौ पाद्यादित्रयमेकस्मिन्नेव पात्रे दद्यात्।

ततः स्वगुरुमुखादवगतविनियोगविधौ पात्रचतुष्टयं सामन्यार्घविधिना प्रोक्षणीपात्रात् परतः स्थापयेत्। तेषां नामानि तु गुरुपात्रं शक्तिपात्रं बटुकपात्रं आत्मपात्रं चेति। गुरुपादुकाविद्यया गुरुपात्रं बालाविद्यया शक्तिपात्रं, बटुकपात्रं तन्मन्त्रेण, आत्मपात्रं आत्माष्टाक्षरमन्त्रेण चेति तत्तन्मन्त्रेण तत्तत्पात्रं अष्टधा अभिमन्त्रयेत्।

ततः प्रोक्षणीपात्रोदकेन पात्रान्तरोद्धृतेन ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं प्रथमकूटमुच्चार्य, आत्मतत्त्वात्मने नमः, ४ क्लीं द्वितीयं विद्यातत्त्वात्मने नमः, ४ सौः तृतीयं शिवतत्त्वात्मने नमः, ततः ४ ऐं क्लीं सौः समस्तमूलमुच्चार्य, सर्वतत्त्वात्मने नमः इति स्वात्मानं प्रोक्ष्य, पुनः मूलेन यागभूमिं यागोपकरणानि, श्रीचक्रं च प्रोक्ष्य, सर्ववस्तुषु धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्। इत्यर्घादिपात्रस्थापनविधिः।

अत्र श्रीपात्रस्थापनाऽशक्तौ विशेषार्घेणैव प्रोक्तपूजादिकं कुर्यादिति।

॥ अथ आत्मपूजा ॥

तत्र स्वपुरतः त्रिकोणमण्डले साधारं पात्रं संस्थाप्य, कलशोदकेन आपूर्य, विशेषार्घबिन्दुं दत्वा, स्वदेहं चन्दनादिरक्तोपचारैः अलङ्कृत्य, आत्मानं इष्टदेवतारूपं ध्यायन्, गुरु-गणपति-परदेवताः प्रणम्य, मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तं बिसतन्तु–तनीयसीं चन्द्रकोटिप्रभाद्रवां कुण्डलिनीं मनोलयपर्यन्तं ध्यात्वा, परमानन्दनिर्भरः तदात्मकत्वेन मूलाविद्यामपि मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं तेजोमयीं विभाव्य, तत्तेजसा परिणतं स्वेष्टदेवतारूपं स्वदेहं भावयन्, आत्मपूजां कुर्यात्। तद्यथा –

तत्र प्रागुक्तयोगपीठन्यासप्रकारेण स्वदेहं सिंहासनत्वेन परिकल्प्य, प्रथमं शिरसि प्रणवत्रिताराद्यां श्री गुरुपादुकाविद्यामुच्चार्य, श्री अमुकानन्दनाथश्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नम' इति सम्पूज्य, सन्तर्प्य,

मूलाधारे 'गं गणपति श्री पा० पू० त० नम' इति सम्पूज्य, सन्तर्प्य, प्रागुक्तयोगपीठन्यासक्रमेण मण्डूकाद्यान् मूलाधारादितत्तत्स्थानेषु प्रणवत्रितार-चतुर्थ्यन्ततत्तन्नामभिः नमोन्तैः सिंहासनान्तं सम्पूज्य, दक्षिणांसवामांस-वामोरुदक्षिणोरुसर्वाङ्गेषु वक्ष्माणपञ्चप्रेतासनं सम्पूज्य, दक्षिणांसादिस्थानेषु धर्मादिचतुष्टयं मुखादिस्थानेषु अधर्मादिचतुष्टयं च तथैव सम्पूज्य, पुनः हृदयकमल एव मायाविद्ये सम्पूज्य, मध्ये पञ्चदशफणान्वितमनन्तं ध्यात्वा, तन्मध्यफणायां अष्टदलकमलं कामेश्वरीपीठं ध्यात्वा, आनन्दकन्दादि-परतत्त्वान्तं सम्पूज्य, तत्केसरेषु प्रागदिप्रादक्षिण्येन ४ मोहिनी श्री० ४ क्षोभिणी श्री० ४ वशिनी श्री० ४ स्तम्भिनी श्री० ४ आकर्षणी श्री० ४ द्रावणी श्री० ४ आह्लादिनी श्री० ४ क्लिन्ना श्री० इति सम्पूज्य; मध्ये क्लेदिनीश्रीपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, क्लीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम' इति योगपीठत्वेन पुष्पाञ्जलिना समस्तं देहं सम्पूज्य, तन्मध्यकर्णिकायां श्रीचक्रं विभाव्य, ४ समस्तप्रकटेत्यादियोगिनीसमष्टिविद्याया त्रिः समस्तं देहं सम्पूज्य, प्रागुक्तयोगपीठन्यासक्रमेण षडासनपर्यन्तं प्राक्न्यस्तस्थलेषु सम्पूज्य, "४ दक्षिणांसपृष्ठ–दक्षकर्णपृष्ठ-दक्ष-शङ्ख -दक्षललाट-दक्षनेत्र-दक्षनासापुट-दक्षचिबुक-हृदयत्रिकोण-तन्मध्येषु ४ नादशक्तिश्री० ४ बिन्दुशक्तिश्री०, ४ कलाशक्तिश्री०, ४ ज्येष्ठाशक्तिश्री०, ४ रौद्रि-शक्तिश्री०, ४ वामाशक्तिश्री०, ४ विषघ्नीशक्तिश्री०, ४ दूतरीशक्ति श्री०, ४ सर्वानन्दाशक्तिश्री०', इति सम्पूज्य, 'अं कं' इत्यादि ३६ शिवशक्ति-सदाशिवेत्यादिन्यासोक्तसमष्टिपीठमन्त्रेण सर्वाङ्गं सम्पूज्य, हृदय-कमले यथोक्तरूपां भगवतीं ध्यायन्, तत्तत्तेजसा व्याप्तं स्वदेहं श्रीभगवतीरूपं विचिन्त्य, मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्री पा० त० नमः' इति शिरसि त्रिः पुष्पाञ्जालिना सम्पूज्य, पुरः स्थापितपात्रोद्बिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः प्राग्वत्, मूलेन शिरोहृदयगुह्यपादद्वयसर्वाङ्गेषु पञ्चपुष्पाञ्जलिभिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य, हृदयत्रिकोणे शिरस्त्रिकोणे वा वक्ष्यमाणप्रकारेण लयाङ्गं तिथिनित्याषोडशनित्यागुरुपङ्क्तित्रयषडङ्गयुवतीः तत्तत्स्थानेषु

वक्ष्यमाणप्रकारेण सम्पूज्य, सन्तर्प्य, हृदयत्रिकोणपूजायां संहारश्रीचक्रोक्तन्यास-प्रकारेण वाऽऽवरणशक्तिं पूजयेत्। शिरस्त्रिकोणपूजा चेत्सृष्टिश्रीचक्र-न्यासक्रमेण नवाऽऽवरणशक्तीश्चक्रेश्वरीश्च पूजयित्वा तर्पयेत्।

एतावत्कर्तुमशक्तौ षडङ्गयुवतीपूजान्ते, समस्तप्रकटेत्यादिसमष्टिविद्यया त्रिः सम्पूज्य सन्तर्प्य, चतुःसमय–चतुराम्नाय–षड्दर्शन–देवताश्च वक्ष्यमाणश्रीचक्रश्रीवक्त्रपूजाक्रमेण पूजयेत्।

ऊर्ध्वाम्नायदीक्षितश्चेत्, महाषोढान्यासोक्तरूपं स्वात्मानं ध्यात्वा, तद्विद्यया वक्ष्यमाणप्रकारेण त्रिः सम्पूज्य शक्तश्चेत् महाषोढोक्तदेवताः तन्न्यासस्थानेषु सम्पूज्य सन्तर्प्य, शिरसि पराप्रासादस्य गुरुपङ्क्तित्रयं पूजयेत्।

ततश्चरणादिदीक्षितश्चेत् प्रागुक्तचरणादिविद्याभिः तन्न्यासस्थानेषु सम्पूज्य, तर्पयेत्।

ततः पूर्णाऽभिषिक्तश्चेद् वक्ष्यमाणप्रकारेण शिरसि कामकलापारम्पर्येण सम्पूज्य, सन्तर्प्य; शाम्भवदीक्षायुक्तश्चेत्, तन्मिथुनषट्कं तद्गुरुक्रमं तदृषिक्रमं च० प्रागुक्तन्यासस्थानेसु सम्पूज्य तर्पयेत्।

अत्र सर्वत्र आत्मपूजायां विस्ताराऽशक्तौ तत्तन्मूलदेवताः तत्तद्गुरुक्रमं च सम्पूज्य तर्पयेदिति सङ्क्षेपः।

ततः पूर्ववत् पुष्पाञ्जलिपञ्चकं स्वदेहे मस्तकादिषु प्रागुक्तस्थानेषु विधाय धूपदीपौ निवेद्य अन्तर्हवनं कुर्यात्।

तत्र मूलाधारे अस्त्रं कुण्डं विभाव्य, तन्मध्यस्थकालाग्निमेव कामाग्निं वासनारूपेन्धनप्रज्वालितं प्राणादिपञ्चवायुभिः सन्धुक्षितं कुण्डलिनी-रूपपरदेवताधिष्ठितं चिदग्निमण्डलं विभाव्य, प्रणवत्रितारादिमूलविद्यान्ते धर्माऽधर्महविर्दीप्तात्माग्नौ मनसा स्रुचि सुषुम्ना वर्त्मनाऽनित्य-मक्षवृत्तीर्जुहोम्यहमिदं जुहोमि स्वाहा'' इति पुण्यपापकृत्याऽकृत्यसङ्कल्प-

विकल्पधर्मात्मकं हविःसप्तकं सप्ताऽऽवृत्या हुत्वा, ततः प्रणवत्रितारादि-मूलविद्यान्ते प्रकाशामर्शहस्ताभ्यां अवलम्ब्योन्मनीस्रुच धर्माधर्मकलास्नेहं पूर्णवह्नौ, जुहोम्यहं अधर्मं जुहोमि स्वाहा' इति पूर्णाहुतिं हुत्वा, निरस्त-निखिल-प्रपञ्चो निष्कलब्रह्मरूपः साधकः कियत्क्षणं तिष्ठेत् ।

ततो देवीरूपमात्मानं ध्यात्वा, श्रीगुरुपादुकां प्रणम्य शिरसि अन्नपूर्णां ध्यात्वा, तन्मन्त्रेण वक्ष्यमाणपूजाप्रकारेण तां सम्पूज्य सन्तर्प्य, पूजाविशिष्टं तत्पात्रस्थमुदकं गुरुपादुकां मूलविद्यां कुण्डल्यात्मकश्री परदेवतामुखे जुहोमीति बुद्ध्या प्राश्य, श्रीपरदेवतारूपमात्मानं ध्यायन्, प्राणायाम-ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं मूलविद्यामष्टोत्तरशतवारं जपित्वा, पुनः प्राणायामपूर्वकं जपं समर्प्य, स्तुत्वा, प्रणमेत् । इत्यात्मपूजा ।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गोऽगाच्चतुर्दशः ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे चतुर्दशस्तरङ्गः ॥ १४ ॥

॥ श्रीः॥

अथ पञ्चदशस्तरङ्गः

॥ अथ पञ्चमयागविधिः॥

तत्र साधकः कृताऽऽत्मपूजनक्रियः, स्वशिरसि श्रीगुरुपादुकां ध्यात्वा, सम्पूज्य प्रणम्य, वक्ष्यमाणप्रकारेण श्रीगुर्वाज्ञामादाय सर्वलक्षण-सम्पन्नां ब्रह्मविद्यादीक्षितां दूतीं प्रातर्निमन्त्रितां साधकः स्वयं गत्वा, प्रणम्य समाहूय, आनीय, पूजास्थाने मृद्वाऽसने समुपवेस्य, तस्याः पादौ उष्णजलेन, प्रक्षाल्य, सुखोपविष्टां तां प्रणम्य कृताञ्जलिः सन्, "भगवति श्रीपरदेवतायजनार्थं त्वं मे दूती भूत्वा मां कृतार्थं कुरु इति सम्प्रार्थ्य देव्यग्रतः स्वासने समुपविश्य, कृताञ्जलिः, 'अद्येत्यादिश्रीपरदेवताप्रीत्यर्थं दूतीयजनमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य, मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विन्यस्य स्ववामभागे दूतीं समुपवेश्य, मूल-विद्यया सुगन्धतैलेनाभ्यङ्गं कृत्वा, सुगन्धाऽऽमलकाद्युद्वर्त्तनं विधाय, उष्णोदकेन स्नापयित्वा, वक्ष्यमाणविधिना नीराजनं कृत्वा, सूक्ष्मवस्त्रेण अङ्गप्रोञ्छनं विधाय, रक्तपट्टवस्त्रयुगमारक्तकञ्चुकं च परिधाप्य नाना-विधाऽऽभरणैः अलङ्कृत्य, केशान् विजटीकृत्य धूपयित्वा, संयम्य सिन्दूरकज्जलालक्तकादिभिः सीमान्तनयनचरणादिरञ्जयित्वा वक्ष्य-माणरत्नेश्वरीविद्यया सकुङ्कुमचन्दनत्रिपुण्ड्रयुक्ते भालतले सिन्दूरतिलकं कृत्वा सुगन्धकुसुममालाभिः सुगन्धानुलेपनैः च अलङ्कृत्य, सवामभागे मृद्वासने समुपवेश्य, स्वयं स्वासने समुपविष्टः, प्राणयामत्रयऋष्या-दिन्यासांश्च विधाय, दूतीं देवीरूपां ध्यायन्, प्राक्स्थापितशक्तिपात्रवत् स्वपुरतः पात्रान्तरं कलशस्थजलेन आपूर्य, संस्कृत्य, तद्धेतुमुद्धरणपात्रेण उद्धृत्य, भोगपात्रे कृत्वा, सद्वितीयं भोगपात्रं तस्यै पुनः पुनः निवेद्य,

तरुणोल्लासयुक्तां ज्ञात्वा, चक्रस्योत्तरभागे सुवर्ण-रूप्य-विद्रुमगज-दन्तादिनिर्मितं सुदृढं नवं पट्टसूत्ररचितरक्तपट्टिकाभिः गुम्फितं पर्यङ्कं आस्तीर्य तदुपरि पट्टवस्त्ररचितां विद्रु(शाल्मलि)तरुतूलभारभरितां तूलिका-मास्तीर्य, तदुपर्युच्छीर्षकोपवर्हणादिकं निवेश्य, तत्र सुगन्धपुष्पाणि कर्पूररजांसि च विकीर्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना योगपीठं सम्पूज्य तदुपरि श्रीचक्रं विभाव्य तथैव सम्पूज्य, मञ्चकस्य पश्चिमे योगिनीबलिं, पूर्वे क्षेत्रपालबालिं दक्षिणे गणेशबलिं, उत्तरे बटुकबलिं चेति बलिचतुष्टयं वक्ष्यमाण-श्रीचक्रपूजोक्तविधिना दत्वा, पर्यङ्कोपरि दूतीं पश्चिमाभिमुखीं समुपवेश्य स्वयं पूर्वाभिमुखः उपविश्य, मूलविद्यया प्राणायामत्रयं ऋष्यादिन्यासांश्च कृत्वा दूतीदेहे प्रागुक्तविधिना मातृकां केवलां विन्यस्य, ततः प्रागुक्त-वशिन्याद्यष्टकं विन्यस्य, शिरसि ॐ ३ द्रां द्रावणबाणाय नमः, पादयोः ॐ ३ द्रीं क्षोभणबाणाय नमः, मुखे ॐ ३ क्लीं वशीकरणबाणाय नमः गुह्ये ॐ ब्लूं आकर्षणबाणाय नमः, हृदि ॐ ३ सः सम्मोहनबाणाय नमः इति पञ्चबाणान् विन्यस्य, तस्याः ललाटे ॐ ३ ह्रीं कामाय नमः, गले ॐ ३ क्लीं मन्मथाय, हृदि ॐ ३ ऐं कन्दर्पाय नमः, नाभौ ४ ब्लूं मकरध्वजाय नमः, मूलाधारे ॐ ३ स्त्रीं मीनकेतवे० इति विन्यस्य, तस्याः देहे पूर्वोक्ताः कामकलाः सोमकलाश्च विन्यस्य, तस्याः शिरसि सुभगाय ऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये भगमालिन्यै देवतायै० गुह्ये ह र ब्लैं बीजाय०, पादयोः स्त्रीं शक्तये नाभौ ह्रीं कीलकाय०, इति ऋष्यादिन्यासं विन्यस्य तस्याः शरीरे वक्ष्यमाण-भगमालिनीविद्यया मूर्धादिपादपर्यन्तं त्रिः व्यापकं विन्यस्य, तस्याः शिरसि त्रिकोणं विभाव्य, शिरस्त्रिकोणमध्ये वक्ष्यमाणविधिना बालां ध्यात्वा, तद्विद्या-मुच्चार्य, श्रीबालादेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः, अग्रकोणे क्लीं कामेश्वरीश्री०, वामकोणे ऐं वागीश्वरी श्री०, दक्षकोणे सौः कुलगणपति श्री०। इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य; तस्याः दक्षिणस्तने क्लीं कामदेव श्री०, वामे वं वसन्तश्री०, योनौ श्रीं रतिदेवी श्री०, नाभौ प्रीतिदेवी श्री०, पुनः

शिरस्त्रिकोणाद्बहिः गं गणनाथ श्री०, ॐ ३ सिंहपादश्री०, ॐ विजयपाद-श्री०, ॐ ३ अनङ्गपादश्री०, ॐ३ भुजङ्गपादश्री०, ॐ ३ चित्रपादश्री० ॐ ३ कनकपादश्री०, ॐ ३ कनकाध्यक्षपादश्री०, इति त्रिकोणाद्बहिः परितः स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, शिरस्त्रिकोणस्य वामकोणे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मां महालक्ष्म्यै०, दक्षे ॐ ३ सं सरस्वत्यै०, तस्याः रोमराजिषु ॐ ३ नन्दनोद्यानाय०, इति सम्पूज्य तस्याः शिरस्त्रिकोणमध्ये नवयोन्याद्य-कर्णिकं सकेसरमष्टदलकमलाग्रेषु त्रिशूलयुक्तं तद्बहिर्वृत्तं, तद्बहिश्चतु-र्द्वारयुक्तं चतुरस्रत्रयवेष्टितं बालाचक्रं विभाव्य, तत्र वक्ष्यमाणविधिना मण्डू-कादिपरतत्त्वान्तं योगपीठं सर्वं शिरस्येव सम्पूज्य अष्टदलकेसरेषु ॐ वामायै०, ॐ ३ ज्येष्ठायै ॐ ३ रौद्र्यै०, ॐ ३ अम्बिकायै०, ॐ ३ इच्छायै०, ॐ ३ ज्ञानायै०, ॐ ३ क्रियायै०, ॐ ३ कुब्जिकायै०, ॐ ३ विभ्व्यै, ॐ ३ विषघ्न्यै०, ॐ ३ दूतर्य्यै०, ॐ ३ आनन्दायै नमः इति स्वाग्रादि-प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, मध्ये ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम इति'' नवयोनिस्थत्रिकोणमध्ये सम्पूज्य, तत्र बालाविद्यामुच्चार्य श्री बालामूर्तिं परि-कल्पयामीति पुष्पाञ्जलिना मूर्तिं परिकल्प्य पुनः बालामुच्चार्य, श्रीबाला-मूर्तये नम इति मूर्तिं सम्पूज्य कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय, हृदयकमले वक्ष्यमाणरूपां देवीं ध्यात्वा, पुनः तेजोरूपतामापाद्य तत्तेजः सुषुम्ना मार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, वहन्, नासापुटाऽध्वना बहिः निस्सार्य करस्थपुष्पाञ्जलौ संयोज्य, ऐं क्लीं सौः श्री भगवति इह आगच्छाऽऽगच्छ इति दूत्याः शिरसि पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य आवाह्य आवाहनीमुद्रां प्रदर्श्य स्थापनादिपरमीकरणाऽन्तं तत्तन्मुद्रया विधाय, प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा, वरदाऽभयपुस्तकाऽक्षमाला-पाशाऽङ्कुश-धनुः-बाण-कपाल-कमलाख्याः

दशमुद्राः प्रदर्श्य –

भ्रमद्भ्रमरनीलाभधम्मिल्लाऽमलपुष्पिणीम् ।

ब्रह्मरन्ध्रस्फुरद्भिन्नमुक्तालेखाविराजिताम् ॥

मुक्तालेखालग्नरत्नतिलकां मुकुटोज्ज्वलाम् ।
विशुद्धमुक्तावज्राढ्यचन्द्रलेखाकिरीटिनीम् ॥
भ्रमद्भ्रमरनीलाभनेत्रत्रयविराजिताम् ।
सूर्यभास्वन्महारत्नकुण्डलालङ्कृतां पराम् ॥
शुक्राकारस्फुरन्मुक्ताहारभूषणभूषिताम् ।
ग्रैवेयाऽङ्गदपत्रालीस्फुरत्कान्तिविराजिताम् ॥
गङ्गातरङ्गकर्पूरशुभ्रां वरविभूषिताम् ।
श्रीखण्डवल्लीसदृशबाहुवल्लीविराजिताम् ॥
कङ्कणादिलसद्भूषां मणिबन्धलसत्प्रभाम् ।
प्रवाललिताकारपाणिपल्लवशोभिताम् ॥
वज्रवैदूर्यमुक्तालीमेखलां विमलप्रभाम् ।
रक्तोत्पलदलाकारपादपल्लवशोभिताम् ॥
नक्षत्रमालासङ्काशमुक्तासञ्चारमण्डिताम् ।
वामेन पाणिनैकेन पुस्तकं चाऽपरेण तु ॥
अभयं च प्रयच्छन्ती साधकाय वरानने ।
अक्षमालां च वरदं दक्षपाणिद्वयेन हि ॥
दधतीं चिन्तयेद् देवीं वश्यसौभाग्यवाक्प्रदाम् ।
क्षीरकुन्देन्दुधवलां प्रसन्नां संस्मरेत् प्रिये ॥

इति ध्यात्वा, बालाविद्यामुच्चार्य, "भगवति एतत्ते आसनं नमः, एष ते गन्धो नमः, इमानि ते पुष्पाणि वौषट्" इति पुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, प्राग्योनिमध्ययोन्योरन्तराले ऐं परगुरुभ्यो नमः, ऐं अपरगुरुभ्यो

नमः, ऐं परापरगुरुभ्यो० इति गुरुपङ्क्तित्रयं विभाव्य सम्पूज्य, योनिमुद्रां बध्वा; हृदि, मुखे, भ्रूमध्ये, ललाटे ब्रह्मरन्ध्रे च संस्थाप्य, दर्शयेत्।

ततः त्रिकोणस्य वामकोणे, ऐं रत्यै०, दक्षिणे क्लीं प्रीत्यै०, अग्रे सौः मनोभवायै०, इति सम्पूज्य; अष्टदलकेसरेषु अग्नीशनिर्ऋतिवायु-कोणेषु अङ्गचतुष्टयं, देव्यग्रे नेत्रं, तदग्रादिचतुर्दिक्षु अस्त्रमिति प्रादक्षिण्येन षडङ्गानि सम्पूज्य; अष्टकोणत्रिकोणान्तरालेषु देव्यग्रमारभ्य चतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन द्रां द्राविण्यै नमः, द्रीं क्षोभिण्यै नमः, क्लीं वशीकरिण्यै०, नमः ब्लूं आकर्षिण्यै०, अग्रे सः सम्मोहिन्यै०, एष्वेवाऽवस्थानेषु ह्रीं कामाय० क्लीं मन्मथाय० ऐं कन्दर्पाय० ब्लूं मकरध्वजाय० स्त्रीं मीनकेतवे नम इति सम्पूज्य; पूर्वाद्यष्टसु योनिषु ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै०, एवं भगायै०, भगसर्पिण्यै०, अनङ्गमालिन्यै०, ॐ ३ अनङ्गायै०, अनङ्गकुसु-मायै०, अनङ्गमेखलायै०, अनङ्गमदनायै० ४ इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन अं असिताङ्गभैरवाय०, आं ब्राह्म्यै० इ रुरु भैरवाय० ईं माहेश्वर्यै०, उं चण्डभैरवाय० ॐ कौमार्यै० ऋं क्रोधभैरवाय०, ॠं वैष्णव्यै०, ऌं उन्मत्तभैरवाय० ॡं वाराह्यै० एं कपालीभैरवाय०, ऐं इन्द्राय०, ॐ भीषणभैरवाय० औं चामुण्डायै०, अं संहारभैरवाय अः महालक्ष्यै०, इति सम्पूज्य, अष्टदलान्तरालेषु कामरूपाय०, मलयाय०, कोल्लगिर्यै० कुलान्तकाय०, जालन्धराय नमः, उद्बाणाय०, देवीकोटाय० इत्यग्रादि-प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, बहिर्वृत्तेः देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन अष्टदिक्षु हेतुकाय०, त्रिपुरान्तकाय०, बेतालाय०, अग्निजिह्वाय० कालान्तकाय०, कपालिने० एकपादाय०, भीमरूपाय० इन्द्रेशानयोर्मध्ये हाटकेश्वराय, निऋति-वरुणर्मध्ये मलयाय० इति सम्पूज्य; तद्बहिः पूर्वादिदशदिक्षु इन्द्रादीन् तदायुधानि च सर्वं चक्राद्बहिः सम्पूज्य; धूपदीपनैवेद्यानि समर्प्य, तदभेदबुध्या दूत्यै हेतुं समर्प्य, स्वदेहे प्राग्वत् श्रीकण्ठादिमातृकां

विन्यस्य, स्वशिवे ॐ ह्रीं क ५ ह ६ स ४ शिवाय नम इति दशार्णया सम्पूज्य शिवाग्रे ह्यों ईशानाय नमः, तत्पूर्वभागे ह्यें तत्पुरुषाय नमः दक्षिणे ह्युं अघोराय०, वामे ह्विं वामदेवाय०, तत्पृष्ठे ह्यं सद्योजाताय० इति सम्पूज्य एतेष्वेव स्थानेषु निवृत्यै०, प्रतिष्ठायै०, विद्यायै०, शान्त्यै०, शान्त्यतीतायै०, इति सम्पूज्य, क्लां क्लीं इत्यादिना षडङ्गं विन्यस्य, मुष्कयोर्मध्ये मूलविद्यामुच्चार्य, नन्दिकेश्वराय० इति सम्पूज्य, तस्यै पुनः पुनः कारणं दत्वा, तदवशेषाऽऽस्वादनेन स्वयं तरुणोल्लासयुक्तः तस्याः स्तनयोर्मध्यं स्पृशन् ऐं ह्लीं चपले चपलचित्ते रेतो मुञ्च मुञ्च, ब्लूं क्लीं स्त्रीं हर ब्लें इति द्राविणीविद्यां वारत्रयं जपित्वा, तस्याः हृदयकमले प्रागुक्ताऽनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तिभिः परिवृतां कामेश्वरीं रक्तवर्णां रक्तमाल्याभरणाऽनुलेपनवसनाऽलङ्कृतां इक्षुकोदण्डपुष्प-बाणधरां चन्द्रशेखरां ध्यायन्, क्लीं कामकलात्मिके रेतो मुञ्च-मुञ्च स्वाहा इति कामेश्वरीमन्त्रं तस्याः हृदि विन्यस्य,

"पशुसम्मोहने देवि स्वभक्तानन्ददायिनि।
बिन्दुरूपे परानन्दे रेतः शीघ्रन्तु मोचय"॥

इति हृदयं स्पृशन्, पठित्वा, ऐं स्वों स्त्रीं ब्लूं क्लः इति योनिमुद्रा बीजस्मरणात् तदीयमूलाधारदेशे शक्तिक्षोभं चिन्तयित्वा, पुनः तां शक्तिं मूलाधारात् हृत्कमलं नीत्वा, ऐं क्लीं स्त्रीं इति क्षोभिणीविद्यां स्मरन्, हृदये शक्तिक्षोभं विचिन्त्य, पुनः तां शक्तिं भ्रूमध्यं नीत्वा, तत्र ऐं भ्रूं ऐं क्लीं इति द्राविणीविद्यां स्मरन्, तया अलातचक्रभ्रामणकुशलया सकलकमलकाननं विह्वलीभूतं चिन्तयन्, पुनः तां ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, पराऽमृतकलास्रावपूरेण सह पुनः मूलाधारमानीय, ऐं गुह्ये र क्लौं ब्लः ऐं ह्लीं श्रीं क्लीं ह्लीं ब्लूं इति सर्वाङ्गसुन्दरीविद्यां तत्र स्मरन्, स्वयं परमानन्दनिर्भरमनाः, तल्लयो भूत्वा, कियत्क्षणं न किञ्चिदपि चिन्तयेत्— इत्थं निरालम्बमुद्रा तत्स्मरकेतनेऽपि चिन्तनीया।

ततः तस्याः शिरसि वदने हृदये गुह्ये पादयोः च "ग्लूं म्लूं प्लूं म्लूं न्लूं" इति पञ्चरत्नबीजानि विन्यस्य, तद्वराङ्गाङ्कुरं दक्षिणकराग्रेण

गृहीत्वा, वामकराग्रेण मूलविद्याया वाग्भवकूटमुच्चरन्, तद्योनिपङ्कजं त्रिः स्पृष्ट्वा, तत्पङ्कजम् –

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमतुलं शीतांशुवत् शीतलं
व्याकोशाऽरुणपद्मरागरुचिरं दृष्ट्वा वराङ्गं ततः।
कस्तूरी-द्यु-सृणेन्दुचन्दनयुतं गोरोचनालेपितं
ध्यात्वा तत्र परां पराऽपरकलां तन्मध्यगां चिन्तयेत् ॥

इति तत्पङ्कजं, तन्मध्ये परकलां च ध्यात्वा; तत्र वाग्भवकूटमवटोपरि, अवटाभ्यन्तरे कामराजकूटं च विलिख्य; गन्धाऽक्षतकरवीरपुष्पैः त्रिः सम्पूज्य, वराङ्गस्य वामभागे वक्ष्यमाणगुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, तस्याः वाम-पादाङ्गुष्ठे शाम्भव्यै नमः, दक्षिणपादाङ्गुष्ठे शम्भवे नम इति मूल-विद्यया सम्पूज्य, तस्याः नाभिदेशे वलिनाथेभ्यो नमः इति वलिदेवताश्च सम्पूज्य, तां प्रणम्य तदाऽऽज्ञया स्वयमक्षुब्धश्च स्मरन्, नाना विद्याऽऽसनपरिष्वङ्गकरजरजरदध्यानादिविविधविचित्रलीलाविशेषैः तां सम्यक् परितोषयन्, तदङ्गजसदनमथनं कृत्वा, तदङ्गं निष्पीड्य, तत् त्रिः गततत्त्वाऽमृतं सुगन्धकुसुमेन उद्धृत्य, कलशविशेषार्घ श्रीपात्रेषु मूलविद्यया संयोज्य, तदवटं हेतुना प्रक्षाल्य, तद्धेतुं कलशे निक्षिप्य, तां प्रणम्य, भोजनताम्बूलवसनाऽऽभरणदक्षिणादानैः परितोष्य, स्वात्मानं कृतकृन्यं मत्वा, श्रीगुरुं प्रणम्य, योगपीठपूजामारभेत् ।

तत्र तत्त्वस्योत्तममध्यमत्वादिविशेषो देवीयामले –

"कुण्डोद्भवाऽमृतं देवि उत्तमोत्तममेव च।
उत्तमं रजवीर्याणि मध्यमं केवलं रजः॥
अधमं पौरुषं वीर्यं तथाऽन्यच्चाऽधमाधमम्"। इति ।

अथैतद्यागप्रशंसा, देवीयामले –

ईश्वर उवाच –

"दूतीयागविधिं वक्ष्ये कौलधर्मोत्तमोत्तमम्।
तस्याऽनुष्ठानमात्रेण स्वयं ब्रह्मत्वमाप्नुयात्॥
सन्ति नानाविधाः धर्माः ऐहिकाऽमुष्मिकप्रदाः।
तत्सारं तु समालोक्य तथाऽन्यत् मन्त्रसङ्ग्रहम्॥
तन्मध्ये सारभूतं च सद्यः प्रत्ययकारकम्।
न कस्याऽपि वरारोहे प्रोक्तवान् त्रिदशेष्वपि॥
दूतीयागे कृते मन्त्री सर्वज्ञो जायते ध्रुवम्।
न तस्य पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥
देवा यक्षाश्च गन्धर्वाः ऋषयश्च मुनीश्वराः।
ब्रह्म-विष्णु-महेशाद्याः तथा च पितृदेवताः।
दूतीयागविधिं कृत्वा तत्तत्पदमवाप्नुयुः।
विधिवत्सुकृती कृत्वा दूतीयागं तु पार्वति॥
कृतकृत्यो न सन्देहः सुन्दरी सुप्रसीदति।
येषां वंशे प्रजायेत दूतीयागो महेश्वरि॥
ते धन्याश्च समुद्धार्थास्ते वन्द्यास्सुहृदः सदा।
कायेन मनसा वाचा सर्वथा न प्रकाशयेत्।
सुतं पत्नीं शिरोदद्यान्न देयमिदमुत्तमम्।
कुर्यात् प्रयत्नतश्चैव दूतिकायजनं प्रिये॥
यैः कृतं यजनं दूत्यास्तैरिष्टाः क्रतवोऽखिलाः।
सर्वतीर्थमयः प्रोक्तः सर्वदेवमयो भवेत्॥

पुरश्चर्यादि-सकलं कृतं तेन न संशयः।
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च॥
आसमुद्रा च धरणी दत्ता तेन सदक्षिणा।
मेरुमन्दरतुल्यानि सुवर्णान्यर्पितानि वै॥
गोकोटिदानाद् यत्पुण्यं तत्पुण्यं जायते प्रिये।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन दूतीयागं समाचरेत्॥
पूजा सम्पूर्णदं भद्रे सर्वाऽरिष्टप्रशामकम्।
यदनुष्ठानमात्रेण सर्वमाचरितं भवेत्॥
शक्तिपूजा प्रकर्त्तव्या विधिवद् भक्तिसंयुतैः"।
"अथ दूतीं प्रवक्ष्यामि लक्षणानि च सुन्दरी॥
अचञ्चला सलज्ञा च कुलजा मृदुभाषिणी।
पटुः सुशीला प्रियवाक् गुरुशुश्रूषणे रता॥
दयाधर्मरता शान्ता हितदा सुखरूपिणी।
रूपयौवनसम्पन्ना निश्चला मन्त्रतत्परा॥
सदा तुष्टा सुपुष्टाङ्गी सुन्दरी मानिनी शुचिः।
नातिकुब्जा च दीर्घा च चारु सर्वाङ्गसंयुता॥
दीर्घकेशी विशालाक्षी सूत्रसुस्पष्टनासिका।
पूर्णगण्डकपोला च रक्तोष्ठी च सुदन्तिका॥
वर्त्तुलाऽनल्पगौरा च सुहनुः कम्बुकण्ठिनी।
सुबाहुवल्लीयुक्ता च वृत्तपीनपयोधरा॥
कृशमध्या सुनाभिः स्याद् ऊरुस्तम्भाऽतिमांसला।
सरलाऽङ्गुलिकायुक्ता सर्वलक्षणसंयुता॥

कायेन मनसा वाऽपि स्वार्थलौल्यविवर्जिता।
पूजनीया प्रयत्नेन पञ्चविंशतिवार्षिका॥
अप्रसूता विशेषेण श्यामा चैवोत्तमा मता"॥

श्यामालक्षणं तु कामशास्त्रेः – "स्निग्धनखनयनदशना निरनुशया मानिनी स्थिरस्नेहा सुस्पर्शशिशिरमांसलवराङ्गविवराङ्गना श्यामा ॥ इति।

अत ऊर्ध्वं न पूज्या स्यादित्याज्ञा पारमेश्वरी।
पूजिताश्चेद् वरारोहे तर्पणं निष्फलं भवेत्॥
अर्चनेषु प्रयोक्तव्याः कामिन्यो भक्तिचेतसः।
ता यदा रजसा युक्ताः ततः पूज्या महाफलाः॥
आत्मीयाश्च पराश्चैव पुष्पवन्तीः प्रपूजयेत्।
तत्र द्वेषपरो मूर्खो दारिद्र्यं समवाप्नुयात्॥
अथ पूजाफलं वक्ष्ये उत्तरोत्तरतोत्तरम्।
स्वशक्त्या अयुतं पुण्यं परशक्तिप्रपूजने॥
ततो वेश्याऽधिका ज्ञेया रजकी च ततोऽधिका।
रजक्याः क्षुरकी श्रेष्ठा क्षुरक्याश्चर्मकारिणी॥
ततोऽधिकतरा प्रोक्ता हेतुनारी वरानने।
ततोऽधिकान्त्यसम्भूता चण्डाली च ततोऽधिका॥
ततो मातङ्गिनी श्रेष्ठा मातङ्ग्याः पुल्कसी तथा।
पुल्कस्या अक्षता श्रेष्ठा ततोऽतिमुदती स्मृता॥
सुन्दरी परतः प्रोक्ता प्रीतिवत्यनुकारिणी।
तत्परा परमेशानि उन्मत्ता शुभलक्षणा॥

समयाचारसम्पन्ना मन्त्रज्ञा भयवर्जिता।
विदग्धा त्वप्रसूता च धैर्यस्वातन्त्र्यसंयुता॥
एवं गुणसमायुक्ताः पूजयेत् सर्वयोषितः।
आत्मीयाश्च पराश्चैव शक्तिमात्रं महेश्वरि॥
मन्त्राऽधिदेवता बुध्या पूज्याः सर्वोपचारकैः।
विविधैः फलताम्बूलवस्त्राऽलङ्कारहेमभिः॥
सम्पूज्य विधिवद् भक्त्या बहुहेतुं प्रदापयेत्।
सम्भोगवासनां धृत्वा यः कुर्यात् शक्तिपूजनम्॥
स दारिद्र्यमवाप्नोति नारकी च भवेद् ध्रुवम्।
परमानन्दरूपेण देहभावविवर्जितः॥
शक्त्या यदुक्तं देवेशि तदूचे शाम्भवी स्वयम्।
तदाज्ञा तु प्रकर्तव्या तदा श्रेयः प्रवर्त्तते॥
शक्त्यालङ्घको मन्त्री तपस्तेपे निरर्थकम्।
कृते तत्रोपहास्यादि कुष्ठी भवति नाऽन्यथा॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तद्वाक्यं तु समाचरेत्।
व्यङ्गाङ्गी विकृताङ्गी च काणाक्षी बधिरा तथा॥
मुण्डिनी विधवा मूका प्रलापिन्यनृतभाषिणी।
अदीक्षिता भक्तिहीना गुरुसेवाविवर्जिता॥
दूषकी समयभ्रष्टा चोरा कितुविचारिणी।
वृद्धाऽऽतुरा वक्रमुखी क्रोधदुर्गन्धकश्मला॥

सदा निष्ठुरवाणी च अनाचाराऽथ काकवाक्।
दीर्घदन्ता च लम्बोष्ठी शुष्कस्तननितम्बिनी॥
कृष्णवर्णाऽतिमलिना कृशा विकलचेतना।
महास्थूलाऽतिरोगाऽऽर्त्ता प्रलम्बितपयोधरा॥
ईषन्नासिकनेत्रा च शुष्काङ्गी चोर्ध्वकेशिनी।
कनिष्ठा क्रोडदन्ता च सदा स्वार्थसमन्विता॥
कुष्ठिनी चैव हीनाङ्गी पङ्ग्वन्धा चाऽऽतुराऽलसा।
श्वेताङ्गिनी रौद्रबिम्बा छागयोनिः पिशाचिका॥
मतिभ्रष्टाऽतिविकला अतिदीर्घातिकुब्जिका।
एतल्लक्षणसंयुक्ताः शक्तीर्यत्नेन वर्ज्जयेत्॥
विशेषतः प्रयत्नेन विधवाः परिवर्जयेत्।
शक्तिपात्रं न दातव्यं विधवायै कदाचन॥
अज्ञानाल्लोभतो मोहाद् दत्ते पूजा तु निष्फला।
तस्माद् दूती प्रकर्तव्या लक्षणोक्ता तु पार्वति''॥ इति।

तथा ब्रह्मयामले–

नारद उवाच–

सर्वज्ञ जगतां नाथ शाक्तं चेत् श्रुतिचोदितम्।
मातङ्गीपूजनं तत्र कथं मुक्तिप्रदायकम्॥
अर्चने प्रथिता वेश्या देवी सा तु रजस्वला।
रजस्वला च मातङ्गी सा दूती सर्वमङ्गला॥
इति प्रोक्तं त्वया पूर्वमिदानीं तद्विपर्ययः।
तव वाक्यमभूद् ब्रह्मन्नेतद् वद पितामह॥

ब्रह्मोवाच–

“मा कुरुष्वाऽत्र सन्देहं वेदोक्तं शाक्तमुत्तमम् ।
अस्ति सर्वज्ञकल्पोऽसौ मतङ्गो मुनिपुङ्गवः ॥
वर्षाणामयुतं वत्स तप उग्रं चचार ह ।
तेन प्रीता महादेवी देवानां हितकारिणी ॥
वरं वृणीष्व भगवन् दास्यामि तव वाञ्छितम् ।
तच्छ्रुत्वा द्विजवर्यस्तां ययाचे धर्मसाधनम् ॥
हे देवि जगतां मातः प्रीता चेद् यदि साम्प्रतम् ।
अपत्यतां समासाद्य मत्कुलाऽऽलम्बनं कुरु ॥
इत्यभ्यर्च्य मुनिश्रेष्ठो जनयामास तां सुताम् ।
श्यामलां चारुवदनां वीणाशुकसमन्विताम् ॥
सारिकां ज्ञानसम्पन्नां जपमालां कराम्बुजे ।
धारयन्तीं विशालाक्षीं शङ्खताटङ्कशोभिनीम् ॥
सा बभूव महादेवी मतङ्गकुलनन्दिनी ।
मातङ्गीति तदा देवी विख्याता वरदायिनी ॥
तां विलोक्य तदा शम्भुर्दूतीं चक्रे सुलक्षणाम् ।
त्रिपुरं जेतुकामेन योनिपूजा तदा कृता ॥
प्रत्याऽऽलीढा स्थिता देवी पूजां स्वीकृत्य निश्चला ।
तदा दृष्टरजो भूत्वा तां वव्रे शङ्करः प्रियाम् ॥
तदा प्रभृति सञ्जातो दूती यागो मनोहरः ।
प्रणवेन तदा शम्भुः तया सार्धं रतो भवेत् ॥

प्रणवान्तर्गतं मन्त्रं मातङ्गाख्यं विनिर्गतम्।
सर्वसौभाग्यजननं मालामन्त्रमभूत् तदा॥
रसाऽऽवाप्तिपदं दिव्यमनिन्द्यं लोकरञ्जनम्।
मातङ्गी-मन्त्रमत्यर्थं मन्मथप्रतिपादकम्॥
आद्यन्तशून्या सा देवी तस्मात् ख्याता तदन्त्यजा।
मातङ्गी अन्त्यवर्णस्था तदा सा अन्त्यजा भवेत्॥
अन्त्यजानां द्विजानां च चक्रे ऐक्यं प्रशस्यते।
सा देवी सर्ववर्णानां वरं दत्वा निरुत्तरम्॥
कृत्वा सङ्केतसमयं चक्रे मातङ्गमुत्तमम्।
न दोषः सर्ववर्णानामिति दत्वा वरं तदा॥
न दोषं तत्र विज्ञेयं सर्वं ते श्रुतिचोदितम्।
देवीमुद्दिश्य मोक्षार्थं कृतं यद्दोषवर्जितम्॥
एतच्छास्त्रमिदं दिव्यं न वाच्यं श्रुतिचोदितम्।
अन्तर्यागमिदं ज्ञेयं बहिर्यागं च वैदिकम्॥
मन्त्र-तन्त्र-समायुक्तं तद्रूपं ब्रह्मबोधकम्।
चक्रसङ्केतसमयं सर्वं तुभ्यं प्रकाशितम्॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न वाच्यं पशुसन्निधौ।
त्यज शङ्कां महाभाग सत्यमेतन्मयोदितम्॥
मातङ्गीपूजनं श्रेष्ठं दूतीयागे मनोहरे।
योनिपूजां विना पूजा कृतमप्यकृतं भवेत्॥
स्मृत्वा केनापि सर्वज्ञः सम्भवेद् विगतामयः।
आयुरारोग्यविभवान् अमिताल्लभते नरः॥

अनेनैव विधानेन विषार्त्तो निर्विषो भवेत्।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्॥
मातङ्गीशक्तिमभ्यर्च्य तया साकं समर्चयेत्।
मातङ्गी मन्मथोपेता सर्वकामार्थसिद्धये॥
शक्त्या साकं सदा पूज्या मातङ्गीमन्त्रदेवता।
सा देवी शक्तिहीना तु न ददाति मनोरथम्॥
निःशङ्कां निर्मलां तन्वीं शामां चारुपयोधराम्।
कौलिकाऽन्वयसम्भूतां दीक्षितां क्रोधवर्जिताम्॥
दीक्षितां कौलिके यागे सुशीलां च दृढव्रताम्।
विंशत्संवत्सराऽधस्थां षोडशाद्याऽधिकामपि॥
पूजयेत् परया भक्त्या तस्याः योनिं सुनिर्मलाम्।
योनिमध्यगतां देवीं कालरात्रिमनुस्मरेत्॥
तत्र भोगं समासाद्य देवीं सन्तर्पयेत् सदा।
सकृज्जपेन संसिद्धिः द्वित्रिर्वा नाऽत्र संशयः॥
पशु-स्त्री-सङ्गमे प्राप्ते शुद्धिश्चेत् पशुबन्धनम्।
अथवा गृहिणी पूज्या पूता पुष्पवती यदि॥
अर्चने कन्यकाः श्रेष्ठाः प्रमदाश्च विशेषतः।
तासां भोज्यं प्रकर्त्तव्यमिति शास्त्रस्य निश्चयः॥
शक्त्युल्लासकरं भोगमानन्दं मोक्ष उच्यते।
दूत्यश्च भगिनीपुत्रि पौत्री नप्त्री तथा स्नुषा॥
रजकी चर्मकारी च मातङ्गी गृहिणी वरा।
अर्चने प्रथिता वेश्या मन्त्रयुक्ता मनोहरा॥

मातङ्गी यदि चेद्वेश्या वेश्या साऽपि रजस्वला।
रजस्वला तदा चाऽऽसीत् सर्वोत्कृष्टा इति स्मृता'' ॥इत्यादि .....

तथा कुलचूडामणौ –

''तरुणोल्लाससंयुक्तां पर्यङ्के तु निवेशयेत्।
भयलज्जादिसर्वाणि परित्यज्याऽथ दूतिका॥
कञ्चुकं च परित्यज्य तथा वस्त्रं च पार्वति।
आचार्याऽनुचरी रक्ता मनसा सुखदायिनी॥
देहभावं परित्यज्य संसक्तभुजकौ प्रिये।
चुम्बनाऽऽलिङ्गने चैव नखदन्तक्षतानि च ॥
बहुना च किमुक्तेन ? प्राणमैक्यं समाचरेत्।
दूती यस्य सुसंज्ञाता सफलं तस्य जीवितम्॥
वंशद्वयं समुद्धृत्य लभते शाश्वतं पदम्।
सर्वदा सुखमाप्नोति सर्वैश्वर्यं च लभ्यते॥
न तस्य दुरितं किञ्चित् न च मारीभयं भवेत्।
चुम्बने परमैश्वर्यं नखदन्तक्षताऽऽयुषः॥
सम्भोगे च सुखं यद्यत् तद्विष्णोः परमं पदम्।
न दद्यात् चुम्बनं यस्तु दरिद्रो जायते ध्रुवम्॥
आलिङ्गनं विना देवि कुष्ठीभवति पार्वति।
विना दन्तक्षतं देवि लोके भवति निन्दितः॥
पञ्चमीं तु सकृत् दत्वा सावित्री जायते सति।
द्वितीयेन तु लक्ष्मीः स्यात् तृतीये पार्वती भवेत्॥

ततो दद्यात् सुखाऽधिक्यं तस्याः पुण्यं न गण्यते।
आलिङ्गने हरेद् रोगान् धनधान्यादिचुम्बने॥
नखदन्तक्षताद्यैश्च तदा मोक्षः प्रजायते।
सायुज्यं सङ्गमेन स्यात् सत्यमेव न संशयः॥

॥इति पञ्चमयागप्रशंसा॥

॥अथ योगपीठपूजा॥

तत्र अर्घ्योदकेन श्रीचक्रमभ्युक्ष्य स्ववामतः पीठोपरि ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गुरुपादुकाविद्यामुच्चार्य, श्री अमुकानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, दक्षिणभागे ४ गं गणपति श्रीं०इति सम्पूज्य, सर्वाऽधस्तादारभ्य, आतलादिसप्त-पातालभावनया उपर्युपरि ४ मण्डूकाय नमः, एवं मण्डूकादिपृथिव्यन्तं सम्पूज्य, पृथिव्यां इक्षुरस-मदिरा-घृत-दुग्धपूर्ण समुद्र-चतुष्टयं पश्चिमदक्षिण-पूर्वोत्तरदिक्षु ध्यात्वा, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इक्षुरस-समुद्राय नमः। मदिरासमुद्राय नमः। ४ घृतसमुद्राय नमः। ४ दुग्धसमुद्राय नमः। इति सम्पूज्य, तेषां मध्ये रत्नद्वीपं प्राग्वत् सम्पूज्य, तथैव स्वाऽग्रमारभ्य विलोमेन नवरत्नानि सम्पूज्य, ततः स्वर्णपर्वतादिविचित्रभूम्यन्तं सम्पूज्य, तस्यां स्वाग्रमारभ्य, मध्यान्तं विलोमेन पूर्वोक्तकालचक्रेश्वर्यादि नव चक्रेश्वरीः नवस्थाने श्रीसप्ताक्षर्याः सम्पूज्य, करुणातोयपरिधिं स्वर्णप्राकारं मणिमण्डपं च प्राग्वत् सम्पूज्य, मण्डपान्तः निर्ऋत्यादिकोणचतुष्टये मध्ये च कालरूपिण्यादि शक्तिचतुष्टयं, सङ्गीतयोगिन्यादिकं च श्रीसप्ताक्षर्याः सम्पूज्य, तन्मध्ये रत्नवेदिकां, तदुरि श्वेतछत्रं, तदधः रत्नसिंहासनं च सम्पूज्य, श्रीचक्राधारपीठं रत्नसिंहासनत्वेन परिकल्प्य, तत् सिंहासनं पञ्चप्रेतमयं ध्यात्वा, तस्य वायव्यादिकोणचतुष्टयगतपादचतुष्टयत्वेन स्थितान् ब्रह्म-विष्णु-रुद्र-ईश्वरान् पीत-श्याम-सिताऽर्क-प्रभांश्चतुर्भुजान् उपविष्टान् तेषां स्कन्धेषु संलग्नं उत्तानशायिनं उदक्शीर्षं सदाशिवं इन्दुप्रभं च ध्यात्वा पूजयेत्। तद्यथा–

वायव्ये, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं लां पृथिव्यधिपतये ब्रह्मणे नमः, ब्रह्म प्रेतासनश्रीपादुकां पूजयामि ईशाने, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वां अपामधिपतये विष्णवे नमः, विष्णुप्रेतासनश्रीपादुकां पूजयामि; आग्नेये, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रां तेजोधिपतये रुद्राय नमः, रुद्रप्रेतासनश्रीपादुकां पूजयामि; नैर्ऋत्ये, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं यां वाय्वधिपतये ईश्वराय नमः, ईश्वरप्रेतासनश्रीपादुकां पूजयामि; मध्ये, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः वियदधिपतये सदा-शिवाय नमः, सदाशिवमहाप्रेतासनश्रीपादुकां पूजयामीति पञ्चप्रेतासनं सम्पूज्य, तस्य वायव्यादिकोणचतुष्टये धर्मादिचतुष्टयं, तस्य पश्चिमादिदिक्षु अधर्मादिचतुष्टयं च प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, तन्मध्ये मायाविद्ये सम्पूज्य, तदुपरि, पञ्चदशफणविराजितायानन्ताय नमः इत्यनन्तं सम्पूज्य, तन्मध्ये मौलौ अष्टदलकमलं कामेश्वरीपीठं ध्यात्वा, पद्माय नमः इत्यादिपरतत्त्वात् तं सम्पूज्य, अष्टदलकेसरेषु मध्ये, च मोहिन्यादि नव शक्तीः आत्मपूजोक्ताः स्वाऽग्रादिप्रादक्षिण्येन श्रीसप्ताक्षर्याः सम्पूज्य, न्यासोक्तपीठमन्त्रेण समस्तं पीठं सम्पूज्य, तदुपरि श्रीचक्रं विभाव्य, ४ समस्तप्रकटेत्यादिसमष्टियोगिनी-मन्त्रेण समस्तचक्रं सम्पूज्य, बिन्दुचक्रे, ४ मूलविद्यां ॐ ह्रौं स्क्लीं ऐं भगवति ब्लूं नित्ये कामेश्वरि स्त्रीं सर्वसत्त्ववशङ्करि सः त्रिपुरभैरवि ऐं विच्चे ह्रीं श्रीं महात्रिपुरसुन्दर्यम्बा श्री० इति पूर्णविद्यया त्रिः सम्पूज्य, पुनः मूलेन त्रिः सम्पूज्य, श्रीचक्रं पुरत्रयात्मकं ध्यात्वा, चतुरस्र-त्रय-षोडशदलाऽष्टदलात्मके प्रथमचक्रे, ४ प्रथमकूटमुच्चार्य, शारीरात्मने नमः, चतुर्दशार-दशार-द्वयात्मके मध्यचक्रे, ४ द्वितीयं बुध्यात्मने नमः, अष्टारत्रिकोणबिन्द्वात्मकाऽन्तश्चक्रे, ४ तृतीयं प्राणात्मने नमः, इति सम्पूज्य, पुनः वाह्यत्रितये, बाह्यमध्याऽन्तर-भेदेन प्रोक्तक्रमेण कूटत्रयेण सम्पूज्य, तथा मध्यचक्रत्रये अभ्यन्तरचक्रत्रयं च प्राग्वत् कूटत्रयेण सम्पूज्य, त्रिकोणचक्रस्य कोणत्रयमध्ये, च प्राग्वत् पीठचतुष्टयं योगपीठं न्यासोक्तं सम्पूज्य, बिन्दुचक्रे महोड्याणपीठे हिरण्मयसहस्रदलकमलाय नमः इति सहस्रदलकमलं सम्पूज्य, चतुरस्र-

पद्मद्वयचतुर्दशार - दशार - द्वय - अष्टार - सत्रिकोणबिन्दुचक्रेषु पूर्वोक्तषडासनानि सम्पूज्य, चतुरस्रे, ४ नादशक्तिश्री०, षोडशदले, ४ बिन्दुशक्तिश्री०, अष्टदले, ४ कलाशक्ति श्री०, चतुर्दशारे, ४ ज्येष्ठाशक्ति श्री०, बाह्यदशारे, ४ रौद्रीशक्ति श्री०, अन्तर्दशारे, ४ वामाशक्तिश्री०, अष्टकोणे, ४ विषघ्नीशक्तिश्री०, त्रिकोणे, ४ दूतरीशक्तिश्री०, बिन्दौ, ४ सर्वानन्दाशक्तिश्री०, इति नव शक्तीः सम्पूज्य, षड्त्रिंशत्तत्त्वात्मकं श्रीचक्रं ध्यात्वा, ४ "अं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामया कलाविद्या-राग-काल-नियति-पुरुष-प्रकृति-अहङ्कार-बुद्धि-मनः-श्रोत्र-त्वक्-चक्षुः-जिह्वा-घ्राण-वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-आकाश-वायु-अग्नि-सलिल-पृथिव्यात्मने श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः योगपीठाय नमः" इति समस्तं पीठं पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य; ततः तदुपरि, प्रसूनतूलिकां कल्पयामीति मध्ये पुष्पं निक्षिप्य, तदुपरि, ४ ह्रीं श्रीं सौः श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याः सकलचैतन्याऽऽनन्दमयीं श्रीकामेश्वरीमूर्तिं कल्पयामीति पुष्पादिप्रक्षेपेण ध्यानोक्तां मूर्त्तिं भावयन् शक्त्युत्थापनमुद्रां प्रदर्श्य, मूलमुच्चार्य, परस्यै कामेश्वरकामेश्वरीमूर्त्त्यै नमः इति कल्पितमूर्त्तिं पूजयेदिति योगपीठपूजा ।

अथ पञ्चायतनी चेत्, श्रीपरदेवताया योगपीठस्य ईशानादिकोणचतुष्टये, गणेशादिचतुरो देवान् श्रीपरदेवतायाः पौरुषरूपविभूतिविग्रहान् तरात्पीठेषु तत्तत्कल्पोक्तविधिना तत्तदङ्गाऽऽवरणैः सार्द्धं सम्पूज्य, तत्तन्मन्त्रजपादिभिः स्तोत्रैः प्रणामैश्च परितोष्य, मध्ये, देव्यग्रतः श्रीपरदेवतायाः परब्रह्मस्वरूपायाः प्रकृतिभूतां श्रीभुवनेश्वरीं ममाऽऽत्मभूतां श्रीमातङ्गेश्वरीं तदङ्गभूतां बालामन्यां शक्तिं वा तत्पीठपूजापूर्वकं तदङ्गाऽऽवरणैः सह सम्पूज्य, तन्मन्त्रजपादिभिः परितोष्य, श्रीपरदेवतापूजामारभेत् ।

अत्र पञ्चायतनपूजायां तत्तत्कल्पोक्तविधिना पृथक् पृथग् अर्घादि-पात्राणि संस्थाप्य पूजयेत्। इति पञ्चायतनपूजां विधाय, श्रीचक्रपूजा-मारभेत्।

अथात्र गणेश-सूर्य-विष्णु-शिवानां मन्त्रभेदबाहुल्येऽपि तत्तत्पीठ-भेदाऽभावात् तेषां पीठपूजाविधिः प्रदर्श्यते।

तत्रादौ, गणेशपीठपूजाप्रकारः। तत्र श्रीचक्रपीठपूजावदेव मण्डूकादि-पृथिव्यन्तं सम्पूज्य, अनन्तरं, इक्षुरससमुद्राय नमः, रत्नद्वीपाय नमः, नन्दनोद्यानाय स्वर्णप्राकाराय०, कल्पवृक्षेभ्यो नमः, मणिमण्डपाय०, स्वर्णवेदिकायै०, रत्नसिंहासनाय०; सिंहासनस्य पादचतुष्टये स्व-वामाग्रपादमारभ्य धर्माय०, ज्ञानाय०, वैराग्याय०, ऐश्वर्याय०; स्वाऽग्रादि-सिंहासनस्य दिक्चतुष्टये अधर्माय०, अज्ञानाय०, अवैराग्याय०, अनैश्वर्याय०; सिंहासनमध्ये मायायै०, विद्यायै०, अनन्ताय०, पद्माय०, आनन्दकन्दाय०, संविन्नालाय०, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो विकृतिमयकेसरेभ्यो०, पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्यसर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै०, अं अर्कमण्डलाय०, उं सोममण्डलाय०, मं बह्निमण्डलाय०, सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय०, रं प्रकृत्यात्मने रजसे०, तं मोहात्मने तमसे०, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने०, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः; स्वाऽऽग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च ज्ञानतत्त्वात्मने मायातत्त्वात्मने नमः, कलातत्त्वात्मने० , विद्यातत्त्वात्मने नमः, परतत्त्वात्मने०, इति सम्पूज्य; अष्टदलकेसरेषु स्वाग्रादि प्रादक्षिण्येन तीव्रायै०, ज्वालिन्यै०, नन्दायै नमः, भोगदायै०, कामरूपिण्यै०, उ उग्रायै०, तेजोवत्यै०, सत्यायै० विघ्ननाशिन्यै०, इति मध्यान्तं सम्पूज्य, गन्धर्वशक्तिकमलासनायै नमः इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, तत्र सोपास्य-गणेशमन्त्रेण मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादि तत्कल्पोक्तविधिना कुर्यादिति।

॥ अथ सौरपीठपूजा ॥

सा तु प्रागेव अर्घदानप्रकरणे मार्त्तण्डपूजायां निरूपिता।

॥ अथ वैष्णवपीठपूजा ॥

तत्र मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं गणेशपीठपूजावदेव। इक्षुरस-समुद्रस्थाने क्षीरसमुद्रं, रत्नद्वीपस्थाने श्वेतद्वीपं च पूजयेदिति विशेषः।

पीठशक्तयस्तु विमलायै०, उत्कर्षिण्यै०, ज्ञानायै०, क्रियायै०, योगायै०, सत्यायै०, प्रह्वै नमः, ईशानायै०, अनुग्रहायै०, इति केसरेषु स्वाऽग्रादि-मध्यान्तं प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य; ॐ नमो विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः इति समस्तं पीठं सम्पूज्य, तत्र मूलेन मूर्त्तिकल्पनादिसर्वं कुर्यादिति।

॥ अथ शैवपीठपूजा ॥

तत्रापि गणेशपीठवदेव मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं पूजयेत्। इक्षुरस-समुद्रस्थाने सुधार्णवं पूजयेत्। ततोऽष्टदलकेसरेषु रुं वामायै०, ज्येष्ठायै०, रौद्र्यै०, काल्यै० कलविकरिण्यै०, बलविकरिण्यै०, बलप्रमथिन्यै०, सर्वभूतदमन्यै नमः, मनोन्मन्यै०, इति मध्यान्तं प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य; ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठाय नमः इति सम्पूज्य, मूर्तिकल्पनादिकं कुर्यादिति।

॥ अथ शक्तिपीठपूजा ॥

तत्र शक्तीनां भेदबाहुल्यात् पीठभेदाश्च बहवः सन्ति। तत्तत्कल्पेषु द्रष्टव्याः। तेष्वपि तत्र अनेकशक्तिसाधारणत्वात् मूलप्रकृतेः भुवनेश्वर्याः पीठपूजा लिख्यते।

तत्राऽपि मण्डूकादिपरतत्त्वान्तं शैवपीठवदेव सम्पूज्य, अष्टदलकेसरेषु स्वाऽग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन जयायै०, विजयायै नमः, अजितायै०, अपराजितायै०, नित्यायै० विलासिन्यै०, दोग्ध्र्यै०, अघोरायै०, मङ्गलायै०, इति सम्पूज्य; ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम इति समस्तं पीठं पूजयेत्। मूर्तिकल्पनादि प्राग्वत्। इति पञ्चायतनपूजाविधिः।

मातङ्गेश्वर्यास्तु पीठं प्राग्वदेव। तच्छक्तयस्तु – "विभूतिः उन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्तिश्च सन्नतिः। व्युष्टिरुत्कृष्टि ऋद्धिश्चेति"॥ ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वशक्तीत्यादि प्राग्वत्। लक्ष्म्याश्चैता एव। बालायास्तु प्रागेवोक्तम्। अन्यासां शक्तीनां तत्तत्कल्पोक्ता पीठपूजा कार्या।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गस्थितिसंख्यकः॥१५॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे पञ्चदशस्तरङ्गः॥१५॥

॥श्रीः॥

अथ षोडशस्तरङ्गः

॥अथ श्रीचक्रपूजा॥

तत्र प्रथमं, प्राग्वत्, श्रीगुरुपादुकाविद्यया शिरसि श्रीगुरुपादुकां सम्पूज्य,

"नमोऽस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे।

यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम्॥

इत्यादिना प्रणम्य

"श्रीगुरो दक्षिणामूर्त्ते भक्तानुग्रहविग्रह।

अनुज्ञां देहि भगवन् श्रीचक्रयजनाय मे"॥

इति गुर्वाज्ञां प्रार्थ्य, मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, मूलविद्याया ऋष्यादिकरषडङ्ग-न्यासान् विधाय, पादाग्रजङ्घा-जानु-मूलाधारेषु देव्यात्मासनादि साध्यसिद्धा-सनान्तानि चतुरासनानि विन्यस्य, वाग्देवताष्टकचतुःपीठचतुस्तत्त्वन्यासान् विधाय, मूलविद्यया व्यापकं विन्यस्य, कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय मातृकाम्भोजत्वेन कल्पयित्वा, त्रिखण्डामुद्रां बध्वा, हृदि श्रीचक्रराजे देवीं यथोक्तरूपां सपरिवारां ध्यात्वा, तेजोरूपतामयाद्यान्तर्मुद्राप्रयोगेण मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य, तया सह षट्चक्रभेदक्रमेण हृदयान्तः स्फुरन्तीं तां तेजोमयीं सुषुम्ना मार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा, परतेजः सङ्गमेन अमृतमहाम्बुधौ क्षणं विश्राम्य, शिवशक्तिसामरस्यसुखमनुभूय, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सॄैं ह्स्क्लीं ह्सौः नमः।

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी –

महापद्मवनान्तःस्थे कारुण्यानन्दविग्रहे।

सर्वभूतहिते मातः एह्येहि परमेश्वरि॥

एह्येहि, देवदेवेशि त्रिपुरे देवपूजिते।
परामृतप्रिये शीघ्रं सान्निध्यं कुरु सिद्धिदे ॥
देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंवृते ।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव॥

इत्यावाहन-मन्त्रमुच्चार्य, वहन् नासापुटाऽध्वना त्रिखण्डामुद्रामुद्रित-करस्थपुष्पाञ्जलौ तत्तेजः समानीय, श्रीपीठान्तः कल्पितमूर्तेः शिरसि ब्रह्म रन्ध्रस्थाने सन्निवेश्य, कामेश्वराङ्कस्थां सावरणां श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं सर्वावयवभावेन ध्यायन् ४ मूलविद्यायाः तृतीयकूटमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि इह तिष्ठ, तिष्ठ इति स्थापन्या मुद्रया संस्थाप्य तथा चोच्चार्य, इह सन्निधेहीति सन्निधापनीमुद्रया सन्निधाप्य, पुनरुच्चार्य, सन्निरुध्य, स्वसंन्निरुध्यस्व, इति संरोधिन्या मुद्रया सन्निरुध्य, तथैव सम्मुखीभव-सम्मुखी भव इति सम्मुखीकरण्या सम्मुखीकृत्य, तथैवावगुण्ठिता भव, अवगुण्ठिता भव इति अवगुण्ठनमुद्रया अवगुण्ठ्य, देव्यङ्गे षडङ्गविन्यासेन सकलीकृत्य, तथैव धेनुमुद्रया अमृत-धारया अभिषिञ्चन् अमृतीकृत्य, तथैव महामुद्रया परमीकुर्यात्। इत्यावाहन्यादि नव मुद्राः प्रदर्श्य, ततो मूलविद्यां पूर्वोक्तदीपिनीविद्यां अकारादिक्षकारान्तां मातृकां चोच्चार्य, अर्घमूलेन देवीं त्रिः प्रोक्ष्य, श्रीं ह्रीं क्लीं हं गणपकालिके सौः सकल ह्रीं क्लीं ब्लीं ह्रीं श्रीं इति जीवन्यास-विद्यया देव्या हृदयकमले जीवं संस्थाप्य, प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।

तत्र पूर्वोक्तप्राणप्रतिष्ठामन्त्रे 'मम' पदस्थाने "श्री महात्रिपुरसुन्दर्याः" इति पदप्रक्षेपेण देवीहृदयं स्पृशन्, तं मन्त्रं त्रिः सकृद् वा पठेत्। इत्येवं प्राणप्रतिष्ठां विधाय, ततः सङ्क्षोभ-द्रावणाऽऽकर्षण-वश्य-उन्माद-महाङ्कुश-खेचरी-बीज-योन्याख्या नवमुद्राः। द्रां ह्रीं क्लीं ब्लूं सः क्रों ह स ख फ्रें ह्सौं ऐं इति एकैकबीजोच्चारणपूर्वकं एकैकां मुद्रां प्रदर्श्य, आं ह्रीं इति पाशमुद्रां क्रों क्रोमित्यङ्कुशमुद्रां, धं भमिति धनुर्मुद्रां, ह्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां सां इति दशभिः बीजैः बाणमुद्रां च प्रदर्श्य, ४ मूलविद्यां उच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि इति पुष्पाञ्जलित्रयेण देवीं सम्पूज्य,

पुनः उच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां तर्पयामि नम इति सव्यहस्ताऽनामिकाऽङ्गुष्ठाभ्यां धृता ये इतरोद्धृतविशेषार्घाऽमृतबिन्दुभिः त्रिवाराद् अन्यूनमष्टोत्तरसहस्रावधि, यथाशक्ति श्री परदेवतामुखकमले तर्पयित्वा, आसनादि षोडशोपचारान् कुर्यात्।

तत्र मूलविद्यामुच्चार्य, भगवति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि तुभ्यमिदमासनं कल्पयामि, अत्र आस्यतां भवत्येति वार्क्ष-पौष्य-चार्म-वास्त्र-तैजसाद्यन्यतमं आसनं कल्पयित्वा, देव्याः वामभागे निवेश्य, सिंहासनमुद्रां पद्ममुद्रां च प्रदर्श्य, प्रणम्य, "ॐ हं हं हं इदमिदमिदं गृहाण स्वाहा" इति प्रार्थनमुद्रया निवेद्य, मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामीति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

ततो मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि स्वागतं इति कुशलप्रश्नं कृत्वा, स्वागतकुशलमुद्रे प्रदर्श्य, मूलमुच्चार्य, प्राग्वत् पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

ततो मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै अर्घ्यं कल्पयामि स्वाहा' इति देव्याः शिरसि सामान्यार्घात् किञ्चिज्जलमुद्धृत्य दद्यात्।

ततः पूर्ववन्निवेदनमन्त्रेण निवेद्य,अर्घ्यमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलिं कुर्यात्।

ततः पाद्यपात्राज्जलमुद्धृत्य, ४ मूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै पाद्यं परिकल्पयामि नम" इति देव्या पादयोः पाद्यं दत्वा, प्राग्वत् निवेद्य पाद्यमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलिं दद्यात्।

एवमाचमनीयं परिकल्पयामि सुधेति मुखे, मधुपर्कं कल्पयामि सुधेति मुखे, इत्याचमनीयमधुपर्कौ दत्वा, तन्मुद्रे प्रदर्श्य, ततः पुनराचमनीयपात्रस्थशुद्धजलेन पूर्ववदाचमनीयं मुखे; ततो रत्नपादुके उपनीय, पादुके परिधाय, अम्ब त्रिपुरे रत्ननिर्मिते स्नानमण्डपमायाहि स्नानार्थं शक्रदिग्गतमिति प्रार्थ्य, रत्नपादुके परिधाप्य, प्रधानमण्डपात् स्नानमण्डपं नीत्वा, स्नानवस्त्रं परिधाप्य, कनकाऽऽसने समुपवेश्य, प्राग्वद् अर्घ-

पाद्याऽऽचमनीयानि दत्वा, मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै स्नानीयं कल्पयामि नमः इति सुगन्धतैलाऽमलकादिस्नानीयद्रव्याणि परिकल्प्य, प्राग्वन्निवेद्य, महाराजोपचारवत् अभ्यङ्ग-उद्वर्तन-केशप्रसाधनानि विधाय, उष्णोदकेन निर्मलस्नानं कारयित्वा, वैदिकपौराणिकमन्त्रैः पञ्चगव्यैः पञ्चाऽमृतेन च स्नापयित्वा, पुनः शुद्धजलेन स्नापयित्वा, इक्षुरस-नालिकेर-सलिलपनस-आम्रादिविविधफलरसैः कर्पूरादिसुवासितैः स्नापयित्वा, पुनर्जलेन अभिषिच्य, देवाऽङ्गनाभिः सुवर्णादिघटैः नानातीर्थोपहृतैः सलिलैः स्नापयित्वा, प्राग्वत् पुष्पाञ्जलिं मूलेन दत्वा, स्नानमुद्रां प्रदर्श्य, आचमनीयं कल्पयित्वा, केशाङ्गमार्जनार्थं वस्त्रं दत्वा, जलप्रच्यवनं कारयित्वा, नानारत्नखचितं रक्तदुकूलद्वयं वमिति प्रोक्ष्य, मूलविद्यया अभिमन्त्र्य, बृहस्पतिदैवताभ्यां वासोभ्यां नम इति सम्पूज्य, ४ मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै वाससी परिकल्पयामि परिकल्पयामि नम इति परिधाप्य, वस्त्रमुद्रां प्रदर्श्य, पुनराचमनीयं दत्वा, प्राग्वन्निवेद्य, पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, पट्टसूत्रभवं स्वर्णादिरचितं अम्बाकण्ठसूत्रं विष्णुदैवताय कण्ठसूत्राय नमः इति पूजितं देव्यै समर्प्य, उपवीतमुद्रां प्रदर्श्य, मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी पादुके परिधाय अम्ब त्रिपुरे रत्ननिर्मिते आगच्छ, निर्मितं याम्यामलङ्कारस्य मण्डपं इति प्रार्थ्य, अलङ्कारमण्डपं नीत्वा, सिंहासने समुपवेश्य, अलङ्कारान् पुरतो निधाय, वमिति प्रोक्ष्य, मूलेन अभिमन्त्र्य, विष्णुदैवतेभ्यो अलङ्कारेभ्यो नम इति सम्पूज्य, ४ मूलमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै मुकुटाद्यलङ्करणानि परिकल्पयामि नम इति सामान्यत उत्सृज्य, विशेषतो मुकुटं परिकल्प्ययामि नम इत्यादि मुकुटललाटाऽऽभरणकर्णपूरहार-ग्रैवेयक- अङ्गुलीयक-प्रालम्बिका-रत्न-सूत्राऽक्षरावली-कर्णोत्तंस-पार्श्वभूषण-नखद्योत-अङ्गुलिछद-कूटलम्ब-अर्द्धहार-मृदुभार-ललन्तिक-अङ्गद-केयूर-वलय-बाहुवेष्टन-सीमन्तिक-गण्डभूषण-भ्रूभूषण-नाभिभूषण-रत्नमाला-मणिमेखला-शृङ्खला-दन्तरत्न-कर्णक-नीवीरत्न-जानुभूषण-पादाङ्गुलीयक-नूपुर-तुच्छक-

पादक-वृकहंसक-क्षुद्रघण्टिका-मुखपत्रकं इति (४०) चत्वारिंशद्भिः अन्यैश्च चूड़ारत्न-ताटङ्क -नानाविधैः स्त्र्यलङ्करणैः (स्त्री-अलङ्करणैः) अलङ्कृत्य पूर्ववन्निवेदनमन्त्रेण निवेद्य, पुष्पाञ्जलिं कृत्वा, आभरणमुद्रां प्रदर्श्य, रत्नपादुके उपनीय, मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी,

पादुकायुगमारुह्य, पञ्चवाद्यपुरःसरम् ।
यागमण्डपमायाहि परिवारगणैः सह ॥

इति प्रार्थ्य, छत्रचामरादि नाना उपकरण-हस्ताभिः शक्तिभिः सह याग-मण्डपं नीत्वा, कामेश्वराङ्के भगवतीं समुपवेश्य, परिवारदेवताश्च यथास्थानं समुपवेशयेत् । ततो –

"लोहितां ललितां चापबाणपाशसृणीन् करैः ।
दधानां कामराजाऽङ्के यन्त्रितां मुदितां स्मरेत्" ॥

इति श्रीपरदेवतां यथोक्तरूपां ध्यात्वा, मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा, चन्दनाऽगुरुकर्पूरकस्तूर्यादिगन्धपञ्चकं चूर्णघृष्ट-दाहज-सम्मर्दज-प्राण्यङ्ग-जमिति पञ्चविधं गन्धं, तदन्यतमं वा, प्राग्वत् प्रोक्ष्य, विष्णुदेवताय गन्धाय न म इति सम्पूज्य, मूलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै गन्धं परिकल्पयामीति गन्धं समर्प्य, प्राग्वन्निवेद्य, गन्धमुद्रां प्रदर्श्य प्राग्वत् पुष्पाञ्जलिं दत्वा, सुगन्ध-सुरूपाणि नानाविधपुष्पाणि आनीय, प्राग्वत् प्रोक्ष्य, वनस्पतिदेवताभ्यः पुष्पेभ्यो नम इति पुष्पाणि सम्पूज्य, मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै पुष्पाणि परिकल्पयामि वौषडिति पुष्पाणि समर्प्य, प्राग्वत् निवेद्य, पुष्पमुद्रां प्रदर्श्य, पुष्पाञ्जलिं दत्वा, धूपग्राहिण्यां निर्धूमाऽङ्गारान् आदाय, वमिति प्रोक्ष्य, धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, क्लीं सुरभितेजसे स्वाहेति मन्त्रेण दशाङ्गं शर्कराघृतमिश्रितं गुग्गुलुं वा निक्षिप्य, ॐ गन्धर्वदैवत्याय धूपाय नम इति धूपं सम्पूज्य, मूलं० –

"वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाऽऽढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्"॥

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै धूपं परिकल्पयामि नमः इति धूपमुत्सृज्य, धूपमुद्रां प्रदर्श्य, वामभागे घण्टां निधाय, अस्त्रेण प्रोक्ष्य, धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, पुनः अस्त्रेण गन्धादिभिः सम्पूज्य, ॐ जगद्ध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति घण्टा-मन्त्रेण अभिमन्त्र्य, तां वामहस्तेन वादयन्, दक्षिणहस्तेन धूपपात्रं चालयन्, नीचैः धूपं निवेद्य, तत्पात्रं देव्या वामभागे निधाय, दीपपात्रं गोघृतेनाऽऽपूर्य, तत्र कर्पूरगर्भिणीं वर्त्तिं निक्षिप्य, ह्रीमिति प्रज्वाल्य, धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, विष्णुदैवत्याय दीपाय नमः सम्पूज्य मूलमुच्चार्य,

"सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः।

सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्" ॥

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै दीपं परिकल्पयामि नम इति दीपमुत्सृज्य, दीपमुद्रां प्रदर्श्य पूर्वोक्तमनुना निवेद्य, घण्टावादनपूर्वकं उच्चैः दीपं प्रदर्श्य, तत्पात्रं देव्या दक्षिणभागे निवेश्य, देव्यग्रे चतुरस्त्रं मण्डलं जलेन निर्माय, तत्र स्वर्णादिपात्रं नानाविधाऽन्नव्यञ्जनभरितं षड्रसोपेतं पञ्चविधनैवेद्योपेतं तस्मिन् मण्डले साधारं निधाय, मूलेन निरीक्ष्य, अस्त्रेण प्रोक्ष्य, तेनैव कुशैः त्रिः सन्ताड्य कवचेनाभ्युक्ष्य, ॐ जूं सः वौषडित्यनेन सप्तधा अभिमन्त्रितेन जलेन पुनः प्रोक्ष्य अस्त्रमन्त्रेण चक्रमुद्रां प्रदर्श्य, अधोमुखवामकरेण नैवेद्यं स्पृशन्, यमिति वायुबीजं सप्तधा जपन्, तद्गतदोषान् संशोष्य, अधोमुखदक्षकरेण स्पृशन्, रमिति वह्निबीजं सप्तवारं तद्गतदोषान् सन्दह्य, अधोमुखवामकरेण स्पृशन्, वमिति बीजेन सप्तवारमभिमन्त्रणेन तदमृतीकृत्य, मूलेन विशेषाऽर्घबिन्दुभिः प्रोक्ष्य, विष्णुदैवत्याय नैवेद्याय नम इति सम्पूज्य, अस्त्रेण संरक्ष्य, मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य, ॐ क्लीं कामदुघे अमोघे वरदे विच्चे स्फुर, स्फुर श्रीं श्रीं श्रीं इति श्रीकामधेनुविद्यया धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, महामुद्रया परमीकृत्य, देव्यै प्राग्वत् पाद्याऽऽचमनीये, दत्वा मूलविद्यया देवीं सम्पूज्य पात्रान्तरे जलममृतीकृत्य चुलुकेन आदाय, वामाऽङ्गुष्ठेन नैवेद्यपात्रं स्पृशन्, मूलमुच्चार्य, साऽङ्गायै सायुधायै सपरिवारायै सर्वात्मिकायै भगवत्यै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकायै नैवेद्यं कल्पयामि नम इति नैवेद्योपरि चुलुकोदकं अर्पयेत्।

ततः कृताञ्जलिः मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी,

"हेमपात्रगतं दिव्यं परमाऽन्नं सुसंस्कृतम्।

पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि"॥

इत्यन्ते, प्रागुक्तमनुना निवेद्य, पात्रान्तरे जलममृतीकृत्य, देव्या दक्षिण-हस्तेन तज्जलं किञ्चिद् दत्वा, ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहेति देवीं प्राशयित्वा; वामकेरण ग्रासमुद्रां विकचोत्पलसन्निभां दर्शयन्, दक्षिणहस्तेन प्राणादिपञ्च-मुद्राः प्रदर्शयेत्। तद्यथा–

४ ऐं ॐ प्राणाय स्वाहा इत्यङ्गुष्ठेन कनिष्ठाऽनामिके स्पृशेत्। ४ क्लीं ऊँ अपानाय स्वाहेति अङ्गुष्ठेन तर्जनीमध्यमे स्पृशेत्। ४ सौः ॐ व्यानाय स्वाहेत्यङ्गुष्ठेन अनामिकामध्यमे स्पृशेत्। ४ ऐं क्लीं उदानाय स्वाहेत्यङ्गुष्ठेन अनामिकामध्यमातर्जनीः स्पृशेत्। ४ ऐं क्लीं सौः समानाय स्वाहा इति अङ्गुष्ठेन सर्वाः स्पृशेत्। इति प्राणादिपञ्चमुद्राः प्रदर्शयन्, पञ्चग्रासान् ग्राहयित्वा, कृताञ्जलिः, मूलविद्यामुच्चार्य, ऐं आत्मतत्त्वव्यापिका श्रीमहात्रि-पुरसुन्दरी तृप्यतु, पुनः मूल०, क्लीं विद्यातत्त्व०, मू० सौः शिवतत्त्व०, मू० ऐं क्लीं सौः सर्वतत्त्व०, इति तत्त्वैः ग्रासचतुष्टयं ग्राहयित्वा नैवैद्यमुद्रां करद्वयेन प्रदर्शयन्, ४ मू० श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी,

"चित्पात्रे सद्धविः सौख्यविविधाऽनेकभक्ष्ययुक्।

निवेदयामि ते देवि सानुगायै जुषाण तत्"॥

इत्यनेन मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं समर्प्य नैवेद्यजातं तादात्म्येन सपरिवारायै देव्यै निवेदयेत्।

ततः स्वर्णादिपात्रस्थं कर्पूरादिसुवासितं जलं धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, ४ मू० श्री महात्रिपुरसुन्दरी,

"नमस्ते देवदेवेशि सर्वतृप्तिकरं परम्।

अन्यन्निवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्॥

अमृतानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम्"।

इति देव्यै जलं निवेद्य, अस्त्रमन्त्रेण जवनिकया भोजनस्थलं संवेष्ट्य, घण्टां वादयन्, भुञ्जानां परदेवतां ध्यायेत्। यथा –

“ब्रह्मेशाद्यैः सरसमभितः सूपविष्टैः समेता
सिञ्चद् बालव्यजननिकरैर्वीज्यमाना सखीभिः।
नर्मक्रीडाप्रहसनपरा पङ्क्तिभोक्तॄन् हसन्ती
भुङ्क्ते पात्रे कनकघटिते षड्रसान् चिद्विलासा”॥

इति ध्यात्वा, मूलविद्यां दशधा जपित्वा, जपं समर्प्य, भुक्तवतीं सन्तृप्तां देवीं विभाव्य, धेनुमुद्रया पत्रान्तरे जलममृतीकृत्य, ॐ अमृतापिधानमसि स्वाहेति देव्या हस्ते उत्तरापोशनजलं दत्वा, तया तत्प्राशितं विभाव्य गतसारं नैवेद्यं समुद्धृत्य, नैर्ऋत्यां दिशि स्थापयेत्। ततोऽस्त्रमन्त्रेण तत्स्थानं प्रोक्ष्य, अद्भिः संशोध्य, हस्तमुखप्रक्षालनार्थं देव्यै करोद्वर्तनार्थं सुगन्धचूर्णं च दत्वा, गण्डूषानि कारयित्वा, कर्पूरशकलैः दन्तधावनं परिकल्प्य, पुनः गण्डूषार्थजलं दत्वा, गण्डूषानि कारयित्वा, देव्याश्चरणक्षालनं कृत्वा आचमनीयं निवेद्य, कर्पूरादिनानासुगन्धमिश्रं ताम्बूलमानीय, प्राग्वत् प्रोक्ष्य, वनस्पतिदैवत्याय ताम्बूलाय नम इति सम्पूज्य, मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकायै ताम्बूलं कल्पयामि नम इति उत्सृज्य, पुनर्मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी –

“तमालदलकर्पूरपूगभागतरङ्गितम्।
संशोधितं सुगन्धं च ताम्बूलं परिगृह्यताम्”॥

इत्यन्ते, ॐ हं हं हमिदमिदमिदं गृहाण स्वाहेति देव्यै ताम्बूलं निवेद्य, योनिमुद्रया प्रणम्य मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, वक्ष्यमाणप्रकारेण प्रसन्नपूजां विधाय, क्लीमिति नमस्कारमुद्रां बद्ध्वा मूलेन प्रदर्श्य प्रणम्य, हूं इति त्यजेत्। शक्तश्चेद् अनुलोमविलोमेन मूलविद्यया सम्पुटितैः मातृकाक्षरैः शुद्धमातृकास्थाने देव्याः देहं गन्धपुष्पाक्षतैः सम्पूजयेत्। यथा – मूलं अं पुनः वैपरीत्येन मूलं नमः इत्यादि।

ततो देव्याः हृदयादि षडङ्गस्थानेषु ४ ऐं हृदयाय नमः एवं क्लीं शिरसे नमः सौः शिखायै नमः ऐं कवचाय नमः, क्लीं नेत्राय नमः, सौः अस्त्राय नमः इति लयाङ्गपूजां विधाय, प्राग्वत् संक्षोभणादित्रयोदशमुद्राः प्रदर्श्य प्राग्वद् विशेषार्घबिन्दुभिः त्रिः वामहस्तेन सन्तर्प्य, आवरणपूजां कुर्यात्। तत्र कृताञ्जलिः मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि,

"संविन्मये परे देवि परामृतचतुःप्रिये।

अनुज्ञां त्रिपुरे देहि परिवाराऽर्चनाय मे"॥

इत्यनुज्ञां प्रार्थ्य, सच्चिदानन्दलक्षणां श्रीत्रिपुरसुन्दरीमेव श्रीचक्रदेवतारूपेण परिणतां ध्यात्वा तत्तद् देवताः पूजयेत्।

तत्र, आदौ, बिन्दुचक्रे ४ अः मूलपञ्चदशाक्षरीमुच्चार्य अः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नम इति गन्धादिभिः त्रिः सम्पूज्य विशेषार्घामृतबिन्दुभिः सन्तर्प्य, तस्यां मूलदेव्यामेव तत्तिथि-नित्याविद्यामुच्चार्य अमुकी-अमुकतिथिनित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम इति त्रिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य, पुनः पूर्ववत् त्रिपुरानित्यां त्रिः सम्पूज्य तर्पयेदिति तिथिनित्यां सम्पूज्य नित्यामण्डलं पूजयेत्।

तत्र तिथिनित्या पूजायां शुक्लपक्षे प्रतिपद आरभ्य पौर्णमास्यन्तं कामेश्वर्यादि चित्रान्तासु पञ्चदशनित्यासु एकस्यां तिथौ एकां नित्यां तिथिनित्यात्वेन प्रोक्तविधिना पूजयेत्। कृष्णपक्षे तु प्रतिपदमारभ्य अमावास्यान्तं चित्रादिकामेश्वर्याः ताः पञ्चदशनित्याः विलोमेन प्रोक्तप्रकारेण पूजयेत्।

अत्र तिथिवृद्धौ एका नित्या दिनद्वये पूज्या; क्षये तु एकस्यां तिथौ नित्याद्वयं पूजयेत्। अत्र सूर्योदयकालवर्तिनी तिथिरेव अहोरात्रव्यापिनी इति तान्त्रिकसिद्धान्तः। इति तिथिनित्यापूजां विधाय, त्रिकोणे वामावर्त्तेन दक्षिणरेखायां अं आं इं ईं उं इति पञ्च, पूर्वरेखायां, ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं इति पञ्च, उत्तररेखायां एं ऐं ओं औं अं इति पञ्च, इत्थं पञ्चदशस्वरान् विभाव्य, तेषु स्वरेषु कामेश्वर्यादि पञ्चदशनित्याः तत्तद्विद्यया पूजयेत्। तद्यथा – ४

अं ऐं सकल ह्लीं नित्य क्लिन्ने मदद्रवे सौः अं श्रीकामेश्वरीनित्या श्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नमः, ४ आं ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोनि, भगनिपातिनि सर्वभगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वाणि भगानि मे ह्यानय, वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय, द्रावय, अमोघभगविच्चे क्षुभः क्षोभय, सर्वसत्त्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं भें जं ब्लूं ब्लूं मों ब्लूं हें ब्लूं हें क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानयन्ती ब्लें ह्ली आं भगमलिनी नित्या श्री० पू० त० नमः, ४ इं ह्लीं नित्यक्लिन्ने 'मदद्रवे स्वाहा, इं नित्यक्लिन्ना नित्या श्री० पू० त० नमः, ४ ईं ॐ क्रों भ्रों क्रौं भ्रैं छ्रौं ज्रौं स्वाहा, भेरुण्डा नित्या श्रीपा० पू० तं नमः, ४ उं रूं ह्लीं वह्निवासिन्ये नमः, उं वह्निवासिनी नित्या श्रीपा० पू० त० नमः, ४ ॐ ह्लीं क्लिन्ने ऐं क्रों नित्यामदद्रवे ह्लीं रुं महावज्रेश्वरी नित्या श्री० पू० त० नमः। (अत्र महाविद्येश्वरीति सम्प्रदायान्तरे षष्ठी नित्याया नाम। तदा– तत्सम्प्रदायवद्भिः ४ रुं रूं ह्लीं फ्रें सः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहेति विद्यया षष्ठी नित्या पूज्या।) ४ ॠं ह्लीं शिवादूत्यै नमः। ॠं शिवदूतीनित्या श्रीपा० पू० त० नमः, ४ ॠं ॐ ह्लीं हुं खे च छे क्षः स्त्री हूं क्षे ह्लीं फट् ॠं त्वरिता नित्या श्रीपा० पू० त० नमः, ४ ऌं ऐं क्लीं सौः ऌं कुलसुन्दरीनित्या श्रीपा० पू० त० नमः, ४ ॡं ह स कलर डैं हसकलर डीं ह सकलर डौ० ॡं नित्या नित्या–नित्या-श्रीपादुकां पूजयामि नमः, ४ ऐं ह्लीं फ्रें स्रूं क्रों आं क्लीं ऐं ब्लूं नित्या मदद्रवे हुं फ्रे ह्लीं एं नीलपताका नित्या श्रीपा० पू० त० नमः, ४ ऐं भ मर यौ० ऐं विजया नित्या श्रीपा० पू० त० नमः, ४ ओं स्वौं ओं सर्वमङ्गला नित्या श्री० पा० पू० त० नमः, ४ औं रुं नमो भगवति ज्वालामालिनि देवदेवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल प्रज्वल, ह्लां ह्लीं र र र र र र र ज्वालामलिनी हुं फट् स्वाहा औं ज्वालामालिनी नित्या श्रीपा० पू० त० नमः, ४ अं च क्रौं अं चित्रा नित्या श्री पा० पू० त० नमः, इति पञ्चदश नित्याः वामावर्तेन सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य मध्ये बिन्दुचक्रे

विसर्गात् स्वरं विभाव्य, तदुपरि, ४ अः मूलपञ्चदशीमुच्चार्य, अः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी नित्या श्री पा० पू० त० नम इति।

ततः ४ अः तुरीयविद्यामुच्चार्य, अः श्रीमहासप्तदशी कलातीता नित्या श्री पा० पू० त० नमः इति पूजापूर्त्यर्थं कलातीतां नित्यां सम्पूज्य, विशेषार्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य पुनः प्राग्वत् तिथिनित्यां सम्पूज्य तिथिनित्यायै गन्धपुष्पधूपदीपान् निवेद्य, तत्तत्तिथिनैवेद्यं निवेदयेत्।

तत्र प्रतिपदि घृतम् १, द्वितीयायां शर्करा २, ३ दुग्धं, ४ अपूपं, ५ कदलीपलं, ६ माक्षिकं, ७ गुडं, नालिकेरफलं ९ लाजाः, १० तिलाः, ११ दधि, १२ पृथुका, १३ चणकाः, १४ मुद्गाः १५ पायसमिति तिथि नैवेद्यम्। पक्षद्वयेऽपि ज्ञेयम्। इति नित्या मण्डलपूजां विधाय, गुरुपङ्क्ति-त्रयं पूजयेत्।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ तरङ्गः षोडशोऽगमत्॥१६॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे षोडशस्तरङ्गः॥१६॥

॥श्री॥

अथ सप्तदशस्तरङ्गः

॥अथ गुरुपङ्क्तिपूजा॥

कामराजसम्प्रदायगुरुपङ्क्तिपूजा –

तत्र प्रथमं, श्रीमूलविद्यया श्रीमूलदेवीं त्रिः सम्पूज्य सन्तर्प्य, मध्यत्रिकोणस्य पूर्वरेखाया बहिः अरुणाग्नेर्विमला जयिन्योर्मध्ये स्थिताऽन्तरालदक्षिणोत्तराय तं रेखात्रयं विभाव्य, तत्राधोऽधः क्रमेण दिव्यौघ-सिद्धौघ-मानवौघगुरून् पूजयेत्।

तत्र प्रथमरेखायां, ४ दिव्यौघेभ्यः पराख्येभ्यो गुरुभ्यो नम इति प्रथमतः समुदायेन पुष्पाञ्जलिं दत्वा, ४ ऐं परप्रकाशानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, ४ ऐं परशिवानन्दनाथश्री०पा० पू० त० नमः, ४ ऐं परशक्तिदेव्याम्बाश्री० पा० पू० त० नमः, ४ ऐं कौलेश्वरानन्दनाथ श्री० पा० पू० त० नमः, ४ ऐं शुक्ला देव्यम्बाश्री० पा० पू० त० नमः, ४ ऐं कुलेश्वरानन्दनाथश्री० पा० पू० त० नमः, ४ ऐं कामेश्वरीदेव्याम्बा श्री० पा० पू० त० नमः, इति दक्षिणाद्युत्तरान्तं पङ्क्तिक्रमेण सम्पूज्य द्वितीयरेखायां ४ ऐं सिद्धौघेभ्यः परापराख्येभ्यो गुरुभ्यो नम इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, ४ ऐं भोगानन्दनाथश्री० पू० त० नमः, ४ ऐं क्लिन्नानन्दनाथश्री० पू० त० नमः, ४ ऐं समयानन्दनाथश्री० पू० त० नमः, ४ सहजानन्दनाथश्री० पू० त० नमः, इति पङ्क्तिक्रमेण प्राग्वत् सम्पूज्य तृतीयरेखायां ४ ऐं मानवौघेभ्यः पराख्येभ्यो नमः इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, ४ ऐं गगनानन्दनाथश्री० पू० त० नमः, ४ ऐं विश्वानन्दनाथश्रीपा० पू त० नमः, ४ ऐं विमलानन्दनाथश्री० पू० त० नमः, ४ ऐं मदनानन्दनाथ श्री० पू० त० नमः, ४ ऐं भुवनानन्दनाथ

श्री० पू० त० नमः, ४ ऐं लीलानन्दनाथ श्री० पू० त० नमः, ४ ऐं स्वात्मानन्दनाथश्री० पू० त० नमः, ४ ऐं प्रियानन्दनाथ श्री० पू० त० नमः, इति सम्पूज्य, तत्पङ्क्तावेव स्वगुरुपारम्पर्यं निजगुरोः पूर्वनवमगुरुमारभ्य ४ ऐं अमुकानन्दनाथश्री० पू० त० नमः, इत्यादितत्तद्गुरुकृतसाङ्केतिकनाम निजगुरोर्मुखाद् विज्ञाय, तत्तन्नाम श्रीसप्ताक्षर्याः स्वगुरुपादुकान्तं पूजयेत्। नवानां नामाज्ञाने परमेष्ठिगुर्वादिगुरुत्रयं पूजयेत्। तेषामपि विशेषनामाज्ञाने श्रीगुरुपादुकामेव पूजयेत्। इति कामराजसम्प्रदायगुरुपङ्क्तिपूजा।

॥ दक्षिणामूर्त्तिसम्प्रदाये गुरुपङ्क्तिपूजा ॥

अथ लोपामुद्राऽगस्त्यसम्प्रदायगुरुपङ्क्तिपूजा यथा – तत्र दिव्यौघः– ४ ऐं परमशिवानन्दनाथकामेश्वरीदेव्यम्बा ...... दिव्यौघानन्दनाथ-सर्वानन्दनाथ-प्रज्ञादेव्यम्बा..... प्रकाशानन्दनाथ.... इति दिव्यौघः। दिव्यानन्दनाथचित्रानन्दनाथ कैवल्यादेव्यम्बा० महोदयानन्दनाथश्री० पू० त० नमः इति सिद्धौघः। ततः चिदानन्दनाथविश्वशक्त्यानन्दनाथ-रमानन्दनाथ-कमलानन्दनाथ-परमानन्दनाथ-मनोहरानन्दनाथ-स्वात्मानन्दनाथ-प्रतिभानन्दनाथ इति मानवौघः। इत्थं प्राग्वद् गुरुपङ्क्तित्रयं लोपामुद्राऽगस्त्यसम्प्रदायिभिः पूज्यम्।

अथ एतद्विद्याद्वयाऽतिरिक्तश्रीविद्याभेदनवकोपासकानां गुरुक्रमो लिख्यते। तद्यथा–परप्रकाशानन्दनाथ० परविमर्शानन्दकामेश्वरीदेव्यम्बा मोक्षानन्द० अमृतानन्द०पुरुषानन्द० अघोरानन्द० इति दिव्यौघः। प्रकामानन्द० सदानन्द० सिद्धौघानन्द०उत्तमानन्द०इति सिद्धौघः। उत्तरानन्द० परमानन्द० सर्वज्ञानन्द० सर्वानन्द० सिद्धानन्द० गोविन्दानन्द० शङ्करानन्द मानवौघानन्द० इति मानवौघः। एतदन्ते स्वगुरुपारम्पर्यन्तं पूजयेत्। इति सम्प्रदायान्तर गुरुक्रमः।

अथ अज्ञानगुरुपङ्क्तित्रयं स्व-पारम्पर्याणामुपासकानां सामान्यगुरुक्रमो लिख्यते। यथा – ४ ऐं गुरुभ्यो नमः, ४ गुरुपादुकाभ्यो नमः, इति

दिव्यौघः । ४ ऐं परमगुरुभ्यो नमः, ४ ऐं परमगुरुपादुकाभ्यो नमः इति सिद्धौघः । ४ ऐं आचार्येभ्यो नमः, ४ ऐं आचार्यपादुकाभ्यो नमः, ४ ऐं पूर्वसिद्धेभ्यो नमः, ४ ऐं पूर्वसिद्धपादुकाभ्यो नमः, इति मानवौघः । अत्राऽपि स्वपारम्पर्यन्तं पूजयेत् । तत्र विशेषनामाऽज्ञाने परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, परमगुरुभ्यो नमः, अस्मद्गुरुभ्यो नमः इति गुरुत्रयं पूजयेत् ।

अत्र लिखितगुरुक्रमत्रयं दक्षिणामूर्तिपारम्पर्यसम्प्रदायवतामेव; अन्येऽप्याऽऽनन्दभैरवादयः सम्प्रदायभेदाः बहवः सन्ति । तत्र गुरुक्रमोऽपि बहुतरः । स्वगुरुमुखात् ज्ञातव्यः । कादिमतगुरवः सन्ध्याप्रकरणे प्रागेव लिखिताः । तत्सम्प्रदायिभिः त एवात्र पूज्याः । तत्र स्वमण्डलेषु नाथान्ताः शक्त्यन्ता देविमण्डले इति तन्त्रराजवचनात् । श्रीचक्रे प्रकाशानन्दशक्तिश्रीपादुकां पूजयामीत्यादिशक्तिपदान्ताः पूज्याः । तत्र तु आद्याः त्रयो दिव्यौघः । अन्ये त्रयः सिद्धाः । अपरे त्रयः मानवा इति ज्ञेयाः । इति गुरुपङ्क्तिपूजा ।

॥ अथ षडङ्गयुवतीपूजा ॥

तत्र मध्यत्रिकोणाद् बहिः आग्नेये, ४ ऐं सर्वज्ञाहृदयशक्तिश्रीपा०; ऐशान्ये, ४ क्लीं नित्यतृप्ता शिरः शक्तिश्रीपा०; नैऋत्ये, ४ सौः अनादिबोधाशिखाशक्तिश्रीपा०; वायव्ये, ४ ऐं स्वतन्त्रा कवचशक्तिश्री पा०; देव्यग्रे, त्रिकोणाद् बहिः, ४ क्लीं नित्यमलुप्ता नेत्रशक्तिश्रीपा०; देव्यग्रादिचतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन, ४ सौः अनन्ताऽस्त्रशक्तिश्रीपा० पूजयामि, तर्पयामि नमः । इति षडङ्गयुवतीपूजा ।

अत्र अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनमिति संहिताज्ञानाऽर्णवयोः वचनेन नित्या तन्त्रसङ्केतपरिपाट्या, देव्यग्रस्य पश्चिमत्वेन यथोक्तमाग्नेयादिकं वदन्ति । तत्, न युक्तम् । नवाऽऽवरणपूजासु प्रारम्भो देवताऽग्रत इति पद्यवाहिनीवचनेन "देव्यग्रमेव आरभ्याऽऽवरणपूजा" इत्युक्तत्वात् । अङ्गावरणस्थाप्यत्वात् –

"यष्टुरभिमुखादेव देवाभिमुखतो दश ।
प्राच्यादि हरितो ज्ञेयाः पूजाहोमादिकर्मसु" ॥

इति सामान्यागमोक्तरीत्या देव्यग्रस्य प्राचीकल्पनया वायव्यकोणस्यैव आग्नेयत्वं युक्तमिति, तदारभ्य उक्तक्रमेण पूजयेत्। इति षडङ्गयुवतीपूजा।

॥ अथ नवाऽऽवरणपूजा ॥

तत्र ४ मूलविद्या समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततरसम्प्रदाय-कुलकौल-निगर्भ-रहस्यपरापररहस्यपरापरातिरहस्ययोगिनी श्रीपादुकाः पूजयामीति श्रीचक्रे पुष्पाञ्जलिं दत्वा, मातृकाक्षरमण्डितशुक्लारुण-पीतवर्णविचित्ररत्नघटित-समस्थलरूपं चतुरस्रत्रयं ध्यात्वा, ४ अं आं सौः त्रैलोक्यमोहनचक्राय नमः इति चतुरस्रत्रयं समुदायेन पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, पुनश्चतुरस्ररेखाभ्यो नमः इति च पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, तस्य देव्यग्रादि द्वारचतुष्टये देवी दक्षिणादिकोण-चतुष्टये च इन्द्रेशानयोर्मध्ये निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये च अणिमादिदशसिद्धीः पाशाऽङ्कुश-पद्मद्वयकरा आरक्तवर्णाः शशिशेखरा निधिवाहनस्था ध्यात्वा पूजयेत्।

तत्र पश्चिमादिद्वारचतुष्टयस्य दक्षिणदिग्भागे,४ अणिमासिद्धिश्री पा० पू० त० नमः, ४ लघिमासिद्धिश्री० पू० त० नमः, ४ महिमासिद्धिश्री० पू० त० नमः, ईशित्वासिद्धिश्री०; ततो वायव्यादिकोणेषु; ४ वशित्वसिद्धिश्री०, ४ प्राकाम्यसिद्धिश्री०, ४ मुक्तिसिद्धिश्री०, ४ इच्छासिद्धिश्री०; निर्ऋतिवरुणयोः मध्ये, ४ प्राप्तिसिद्धिश्री०; इन्द्रेशानयोर्मध्ये, ४ सर्वकामसिद्धिश्री०, ततः ४ चतुरस्रमध्यरेखायै नमः इति सम्पूज्य, तत्र रक्तोत्पलकपालहस्ताः नीलवर्णाः रक्तवस्त्राभरणाः ब्राह्म्याद्यष्टमातृः ध्यात्वा, द्वाराणां वामभागेषु प्राग्वत् कोणेषु च प्रागुक्तरीत्या, ४ ब्राह्मीश्री०, ४ माहेश्वरी श्री०, ४ कौमारीश्री०, ४ वैष्णवीश्री०, ४ वाराहीश्री०, ४ इन्द्राणी श्री०, चामुण्डाश्री०, ४ महालक्ष्मीश्री०, (अत्र अष्ट मातरः दीर्घस्वराद्याः पूज्याः इति केचित्।) ततः अन्तश्चतुरस्ररेखायै नमः इति सम्पूज्य, तत्र पाशाङ्कुशस्व-स्व-मुद्राऽङ्कित-चतुर्भुजा रक्ताः त्रिनेत्राः साऽलङ्कारा दश-दशमुद्राः देवीः ध्यात्वा, प्रथमरेखा-वत् प्रादक्षिण्येन पूजयेत्। यथा— द्रां सर्वसङ्क्षोभिणीमुद्राश्री०, ४ द्रीं

सर्वविद्राविणीमुद्राश्री०, ४ क्लीं सर्वाकर्षिणी-मुद्राश्री०, ४ ब्लूं सर्ववश्यमुद्राश्री०, सः सर्वोन्मादिनीमुद्राश्री०, ४ क्रों सर्वमहाऽङ्कुशामुद्राश्री०, ह्स्रैं ह्स्क्लीं ह्स्रौः त्रिखण्डामुद्राश्री९, ४ ह्सौं बीजमुद्राश्री०, ४ ह स ख फ्रें सर्वखेचरी-मुद्रा श्री०; अधः, ४ ऐं योनिमुद्राश्री० इति चतुरस्रत्रये दिग्विदिक्क्रमेण अष्टाविंशतिदेवताः प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, अणिमासिद्धेः अग्रभागे, पुस्तकाऽ-क्षसूत्रपद्मद्वयकरां स्फाटिकाभां मुक्ताभरणां त्रिपुराचक्रेश्वरीं ध्यात्वा, ४ अं आं सौः त्रिपुराचक्रेश्वरी श्री० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, तस्याः वामे, ४ द्रां सर्वसङ्क्षोभिणीमुद्राश्री०, दक्षिणे ४ अणिमासिद्धिश्री० इति सम्पूज्य, ४ द्रां इति मूलदेव्यै सर्वसङ्क्षोभिणीं मुद्रां प्रदर्श्य, गन्धाऽक्षतकुसुमाऽन्वितं सामान्याऽर्घ्योदकं गृहीत्वा, ४ एताः प्रकटयोगिन्यः त्रैलोक्यमोहने चक्रे समुद्राः ससिद्धयः साऽऽयुधाः सवाहनाः सपरिवाराः सर्वोपचारैः पूजिताः, तर्पिताः सन्तु नम इति चक्रेश्वर्याः वामहस्ते तज्जलदानेन पूजां समर्प्य मूलविद्यया मूलदेवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, पुष्पाञ्जलिमादाय, मूलमुच्चार्य देवीं सम्बोध्य,

"अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणाऽऽगतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमाऽऽवरणाऽर्चनम्"॥

इति देव्याः चरणयोः पुष्पाञ्जलिं दत्वा, ४ प्रकटयोगिनिमयूखायै श्रीमहात्रिपुर-सुन्दर्यै नम इति योनिमुद्रया प्रणमेत्। इति प्रथमाऽऽवरणपूजा।

ततः षोडशदलकमलं पूर्णचन्द्रनिभं स्रवत्पीयूषं ध्यात्वा, ४ ऐं क्लीं सौः सर्वाऽशापरिपूरकचक्राय नमः इति पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, तत्र पाशाऽङ्कुशाऽ-मृतपूर्णस्फटिकवराऽङ्कितकराः शुक्लाः पीयूषवर्षिणीः ध्यात्वा, देव्यग्रदलमारभ्य वामावर्तेन षोडशनित्याः कलाः पूजयेत्। तद्यथा– ४ अं कामाकर्षिणी नित्या कलाश्रीपा० पू० त० नमः. ४ आं बुद्ध्याकर्षिणी नित्या कलाश्री०, ४ इं अहङ्कारकर्षिणीनित्या कलाश्री०, ४ ईं शब्दाकर्षिणी नित्याकलाश्री०, ४ उं स्पर्शाकर्षिणी नित्या कलाश्री०, ४ ऊं रूपाकर्षिणी नित्या कलाश्री०,

४ ॠं रसाकर्षिणीनि०, ४ ॠं गन्धाकर्षिणी नित्या कलाश्री०, ४ ऌं चित्ताकर्षिणी नित्या कलाश्री०, ४ ॡं धैर्याकर्षिणी नित्याकलाश्री०, ४ एं स्मृत्याकर्षिणी नित्या कलाश्री०, ४ ऐं नामाकर्षिणी नित्या कलाश्री०, ४ ओं बीजाकर्षिणी नित्या कलाश्री०, ४ औं आत्माकर्षिणीनित्याश्री०, ४ अं अमृताकर्षिणी नित्या-कलाश्री०, ४ अः शरीराकर्षिणी नित्याकलाश्री० पूजयामि, तर्पयामि नमः इति सम्पूज्य; कामाकर्षिणीं पुरतः पाशाऽङ्कुशवराऽभयहस्तां शुभ्रां शुभ्र-वस्त्राऽऽभरणां रत्नमुकुटां त्रिपुरेश्वरीं ध्यात्वा, ४ ऐं क्लीं सौः त्रिपुरेश्वरी चक्रेश्वरीश्री० ; तस्याः वामे, द्रीं सर्वविद्राविणीमुद्राश्री०; दक्षिणे, ४ लघिमासिद्धिश्री० इति सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, द्रीं इति मूलदेव्यै सर्वविद्राविणीमुद्रां प्रदर्श्य, सामान्याऽर्घोदकं गृहीत्वा, ४ एताः गुप्तयोगिन्यः सर्वाशापरिपूरके चक्रे समुद्राः इत्यादि पठित्वा, सर्वोपचारैः पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः इति चक्रेश्वर्याः वामहस्ते तज्जलदानेन पूजां समर्प्य, मूलदेवीं सम्पूज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय मूलमुच्चार्य देवीं सम्बोध्य

"अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयाऽऽवरणार्चनम्"॥

इति देव्याः चरणयोः पुष्पाञ्जलिं दत्वा, गुप्तयोगिनिमयूखायै श्रीमहात्रिपुर-सुन्दर्यै नम इति योनिमुद्रया प्रणमेत्। इति द्वितीयाऽऽवरणपूजा।

ततः अष्टदलकमलं जपाकुसुमप्रभं ध्यात्वा,. ४ ह्रीं क्लीं सौः सर्वसङ्-क्षोभणचक्राय नमः इत्यष्टदले पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा, तत्र पाशाऽङ्कुशनीलरत्न-नीलोत्पलकरा रक्तवर्णा ध्यात्वा, देव्यग्रदलमारभ्य द्विदलचतुष्टये प्रादक्षिण्येन, ४ कं खं गं घं ङं अनङ्गकुसुमा श्री०, ४ चं० ४ अनङ्गमेखलाश्री०, ४ टं०४ अनङ्गमदनाश्री०, ४ तं० ४ अनङ्गमदनातुरीश्री०; आग्नेयदले, ४ पं० ४ अनङ्गरेखाश्री०; नैॠत्ये,४ यं० ४ अनङ्गवेगिनीश्री०; वायव्यदले, ४ शं०३ अनङ्गाऽङ्कुशाश्री०; ईशानदले, ४ लं क्षं अनङ्गमालिनी श्री०। इति सम्पूज्य,

श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, अनङ्गकुसुमाग्ने रक्तवर्णां सर्वाऽलङ्कारभूषितां पुस्तकाऽक्षमालावराऽभयकरां ध्यात्वा, ४ ह्रीं क्लीं सौः त्रिपुरसुन्दरी चक्रेश्वरी० इति चक्रेश्वरीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, तस्याः वामे, ४ क्लीं सर्वाकर्षिणीमुद्राश्री०; दक्षिणे, ४ महिमासिद्धि श्री० इति सम्पूज्य, श्रीपात्राऽमृतबिन्दुभिः सन्तर्प्य, क्लीं इत्याकर्षिणीमुद्रां प्रदर्श्य, ४ एताः गुप्ततरयोगिन्यः। सर्वसङ्क्षोभकरे चक्रे स-मुद्राः इत्यादिना सामान्याऽर्घोदकेन चक्रेश्वरीहस्ते पूजां समर्प्य मूलेनमूलदेवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, पुष्पाञ्जलिमादाय, मूलविद्याऽन्ते देवीं सबोध्य, "अभीष्टसिद्धिं इत्यादितृतीयाऽऽवरणाऽर्चनमिति पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा, ४ गुप्ततरयोगिनीमयूखायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नम इति योनिमुद्रया प्रणमेदिति तृतीयाऽऽरवणपूजा।

अस्मिन्नावरणे "अस्मिन्नाऽऽवरणेऽनङ्गकुसुमा पूर्वे दक्षिणेऽनङ्गमेखला" इत्यादि ज्ञानार्णवादिषु दर्शनात्। नित्या तन्त्रपरिपाट्या। देव्यग्रस्य पश्चिमत्वेनाऽस्य पूर्वपदस्य यथास्थितपूर्वदिग्ग्रहणाद् देव्याः पृष्ठदलमारभ्य, अनङ्गकुसुमादिपूजनमिति वदन्ति। तत्, न। प्राक् षडङ्गयुवतीपूजाप्रकरणोक्तवचनेन देव्यग्रस्यैव पूर्वत्वात् तदारभ्यैव पूजनं युक्तमिति।

ततः दाडिमीकुसुमप्रभं चतुर्दशारचक्रं ध्यात्वा, ४ हैं ह्स्क्लीं ह्सौः सर्वसौभाग्यदायकचक्राय नमः इति चतुर्दशारचक्रे पुष्पाञ्जलिं दत्वा, तत्र रक्तवर्णाः सर्वाभरणाऽभूषिता पाशाऽङ्कुशदर्पणपानपात्रकराश्चतुर्दशारशक्तीः ध्यात्वा, देव्यग्रकोणमारभ्य, वामावर्त्तेन, ४ कं सर्वसङ्क्षोभिणीशक्तिश्रीपा० पू० त० नमः, ४ खं सर्वविद्राविणीशक्तिश्री०, ४ गं सर्वाकर्षिणीशक्ति श्री०, ४ घं सर्वाऽऽह्लादिनी शक्तिश्री०, ४ ङं सर्वसम्मोहनी शीक्तश्री०, ४ चं सर्वस्तम्भिनी शक्ति श्री०, ४ छं सर्वजम्भिनी शक्तिश्री०, ४ जं सर्ववशङ्करिणी शक्तिश्री०, ४ झं सर्वरञ्जिनीशक्तिश्री०, ४ ञं सर्वोन्मादिनीशक्तिश्री० ४ टं सर्वार्थसाधिनीशक्ति श्री०, ४ ठं सर्वसम्पत्पूरणी शक्ति श्री०, ४ डं सर्वमन्त्रमयीशक्ति श्री०, ४ ढं सर्वद्वन्द्वजयङ्करी शक्ति०

श्री०, इति सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, सर्वसङ्क्षोभिणी शक्त्यग्रे रक्तवर्णां पुस्तकाऽक्षमालावराऽभयकरां त्रिपुरवासिनीचक्रेश्वरीं ध्यात्वा, ४ हैं ह क्लीं ह्सौः त्रिपुरवासिनी चक्रेश्वरी श्री० तस्याः वामे, ४ ब्लूं वश्यमुद्रा श्री०, दक्षिणे, ४ ईशित्वसिद्धि श्री०, इति सम्पूज्य, श्री पात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, ४ ब्लूमिति वश्यमुद्रां प्रदर्श्य, ४ एताः सम्प्रदाययोगिन्यः। सर्वसौभाग्यदायके चक्रे स-मुद्रा इत्यादिना विशेषाऽर्घजलेन चक्रेश्वरीहस्ते चक्रपूजां समर्प्य मूलेन मूलदेवीं सम्पूज्य, विशेषाऽर्घेण सन्तर्प्य, पुष्पाञ्जलिमादाय, ४ मूलविद्याऽन्ते देवीं सम्बोध्य, "अभीष्टसिद्धिं" इत्यादि चतुर्थावरणार्चनमिति। तदाऽऽवरणपूजां देव्यै समर्प्य, ४ सम्प्रदाययोगिनीमयूखायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः इति योनिमुद्रया देवीं श्रीललितां प्रणमेदिति चतुर्थाऽऽवरणपूजा।

ततः बाह्यदशारं सिन्दूरवर्णं ध्यात्वा, ४ ह्सैं: ह स क्लीं ह्सौः सर्वार्थसाधकचक्राय नमः इति पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, तत्र जपाकुसुमवर्णाः पाक्षाऽङ्कुशाऽलङ्कारपेटीहस्ताः सर्वाभरणभूषिताः शुभ्रवर्णाः वा ध्यात्वा, देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन, ४ णं सर्वसिद्धिप्रदा देवीश्री०, ४ तं सर्वसम्पत् प्रदा देवी श्री० ४ थं सर्वप्रियङ्करी देवीश्री०, ४ दं सर्वमङ्गलकारिणी देवी श्री०, धं सर्वकामप्रदा देवीश्री०, ४ नं सर्वदुःखविमोचनी देवी श्री०, ४ पं सर्वमृत्युप्रशमनी देवीश्री, फं सर्वविघ्नविनाशिनी देवी श्री०, ४ बं सर्वाङ्गसुन्दरी देवी श्री०, ४ भं सर्वसौभाग्यदायिनी देवी श्री० इति दशदेवीः सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, सर्वसिद्धिप्रदाऽग्रे उद्यद्भानुसहस्रकान्तिसर्वाऽलङ्कारभूषितां मदाऽऽघूर्णितनेत्रत्रयां पुस्तकाऽक्षमालावराऽभयकरां चक्रेश्वरीं ध्यात्वा, ४ ह्सैं ह्स्क्लीं ह्सौः त्रिपुरा श्रीचक्रेश्वरीश्री०; तस्याः वामे, ४ सः सर्वोन्मादिनीमुद्रा श्री०; ४ दक्षिणे ४ वशित्वसिद्धि श्री०, इति सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, ४ सः इति सर्वोन्मादिनीमुद्रां प्रदर्श्य, ४ एताः कुल-कौल-योगिन्यः सर्वार्थसाधकचक्रे स-मुद्रा इत्यादिना विशेषाऽर्घजलेन चक्रेश्वरीहस्ते चक्रपूजां समर्प्य, मूलेन मूलदेवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य ४

मूलविद्यान्ते देवीं सम्बोध्य, अभीष्टसिद्धिम्" इत्यादि। पञ्चमाऽऽवरणार्चनं इति देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्वा, ४ कुलकौलयोगिनीमयूखायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नम इति योनिमुद्रया प्रणमेत्। इति पञ्चमाऽऽवरणपूजा।

ततः, अन्तर्दशारचक्रं जपाकुसुमवर्णं ध्यात्वा, ४ ह्रीं क्लीं ब्लें सर्वरक्षाकरचक्राय नमः इति पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, तत्र बालार्कवर्णाः पाश-टङ्क-ज्ञानमुद्रा वरकरा मुक्ताविभूषणा दशदेवीः ध्यात्वा, देव्यग्रकोणमारभ्य, वामावर्त्तेन, ४ मं सर्वज्ञादेवी श्री०, ४ यं सर्वशक्तिदेवी श्री०, रं सर्वैश्वर्य-प्रदा देवीश्री०, ४ लं सर्वज्ञानमयी देवीश्री०, ४ वं सर्वव्याधिविनाशनी देवीश्री०, ४ शं सर्वाऽधारस्वरूपादेवी श्री०, ४ षं सर्वपापहरा देवीश्री०, ४ सं सर्वानन्दमयी देवीश्री०, हं सर्वरक्षास्वरूपिणी देवी श्री०, ४ क्षं सर्वेप्सितफलप्रदादेवी श्री०, ४ इति सम्पूज्य श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य सर्वज्ञाऽग्रे रक्तवर्णां पाशाऽङ्कुशकपालाऽभयधारिणीं त्रिपुरमालिनीं ध्यात्वा, ४ ह्रीं क्लीं ब्लें त्रिपुरमालिनी चक्रेश्वरी श्री०; तस्या वामे क्रों महाऽङ्कुशमुद्राश्री०, दक्षिणे, प्राकाम्यसिद्धि श्री०, इति सम्पूज्य, सन्तर्प्य, क्रोमिति महाऽङ्कुशमुद्रां प्रदर्श्य, ४ एतानि गर्भयोगिन्यः। सर्वरक्षाकरे चक्रे समुद्राः इत्यादिना चक्रेश्वरी-हस्ते विशेषाऽर्घोदकेन चक्रपूजां समर्प्य, मूलेन मूलदेवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, मूलविद्यान्ते, देवीं सम्बोध्य, "अभीष्टसिद्धि" मित्यादि। षष्ठाऽऽवरणार्चनम्। इति देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्वा, पूजां समर्प्य, निगर्भयोगिनीमयूखायै श्रीमहा-त्रिपुरसुन्दर्यै नम इति योनिमुद्रया प्रणमेदिति षष्ठाऽऽवरणपूजा।

ततः अष्टारचक्रं पद्मरागप्रभं ध्यात्वा, ४ ह्रीं श्री०, सौः, सर्वरोगहरचक्राय नमः इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, तत्र रक्तवर्णा रक्तवस्त्राऽऽ-भरणाऽनुलेपनाः पञ्चबाणधनुःपुस्तकवरकराः ध्यात्वा, देव्यग्रकोणमारभ्य वामावर्तेन अं.........१५ ब्लूं वशिनी वाग्देवताश्री०, ४ कुं.......४ क्लीं कामेश्वरीवाग्देवताश्री०, चुं......४ न्लीं मोहिनी वाग्देवताश्री०, ४ टुं....४

प्लूं विमलावाग्देवताश्री०, ४ तुं.......ज्म्रीं अरुणवादेवताश्री०, ४ पुं०...४ ह स ल व यूं जयिनीवाग्देवता श्री०, यं....३ झमरयूं सर्वेश्वरी वाग्देवताश्री०, ४ शं.......५ क्ष्म्रीं कौलिनी वाग्देवताश्री०, इति सम्पूज्य श्री पात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य वशिन्यग्रे शुभ्रवर्णां पाशाऽङ्कुशकपालाऽभयधारिर्णीं त्रिपुरा सिद्धा चक्रेश्वरीं ध्यात्वा, ४ ह्रीं श्री०, सौः त्रिपुरासिद्धा चक्रेश्वरी श्री०, तस्याः वामे, ४ ह्स् ख् फ्रें खेचरीमुद्रा श्री०, दक्षिणे, ४ भुक्तिसिद्धि श्री०, इति सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, ४ ह्स् ख् फ्रें इति खेचरीमुद्रां प्रदर्श्य, ४ एताः रहस्ययोगिन्यः सर्वरोगहरे चक्रे समुद्राः इत्यादिना चक्रेश्वरीहस्ते विशेषार्घोदकेन चक्रपूजां समर्प्य, मूलेन मूलदेवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, मूलविद्यान्ते देवीं सम्बोध्य, ''अभीष्टसिद्धि''मित्यादि सप्तमाऽऽवरणार्चनं, इति देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्वा, पूजां समर्प्य रहस्ययोगिनीमयूखायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः इति योनिमुद्रया प्रणमेदिति । इति सप्तमावरणपूजा ।

ततः, अन्तस्त्रिकोणं बन्धूककुसुमारुणं ध्यात्वा, ह्सैं ह्स्क्ली ह्स्रौः सर्वसिद्धिप्रदचक्राय नमः इति सम्पूज्य, त्रिकोणाष्टकोणयोरन्तराले वायव्यादी-शानान्तकोणचतुष्टये वामाऽऽवर्तेन रक्तवर्णा वराभयकरा नवरत्नविभूषणाः स्वस्वाऽऽयुधभूषितमस्तकाः यौवनोन्मत्तविग्रहाः ध्यात्वा, ४ यां रां लां वां सां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां सां जम्भनेभ्यः कामेश्वरबाणेभ्यो नमः, ४ ह्लां ह्लीं क्लीं ब्लूं सः यां रां लां वां सां ह्लां ह्लीं क्लीं ब्लूं सः जम्भनेभ्यः कामेश्वरीबाणेभ्यो नमः, ४ यां रां लां वां सां धं यां रां लां वां सां मोहनाय कामेश्वरचापाय०, ४ ह्लां ह्लीं क्लीं ब्लूं सः थं ह्लां, मोहनाय कामेश्वरीचापाय नमः, ४ यां ५ आं यां ४ वशीकरणाय कामेश्वरपाशाय नमः, ४ ह्लां ह्लीं क्लीं ब्लूं सः ह्लीं ह्लां क्लीं ब्लूं सः वशीकरणाय कामेश्वरीपाशाय नमः, ४ यां ५ क्रों यां ५ स्तम्भनकामेश्वराऽङ्कुशाय नमः, ४ ह्लां ५ क्रों आयुधदेवताः सम्पूज्य, त्रिकोणे वामावर्त्तेन कामेश्वर्यादिदेवीत्रयं पूजयेत्।

तत्र अग्रकोणे, शुक्लां शुक्लाऽम्बरादि भूषणमिक्षु-धनुः-पुष्प-बाण-पुस्तकाऽक्षमालाधरां त्रिनेत्रां चन्द्रचूडां कामेश्वरीं ध्यात्वा, ४ मूलविद्यायाः

प्रथमकूटमुच्चार्य, अग्निचक्रे कामरूपपीठेत्यादि कामेश्वरी देवी श्री० पू० त० नमः इति सम्पूज्य, सन्तर्प्य, त्रिकोणस्य वामकोणे नीलवर्णां रक्तवस्त्राभरणां इक्षुचाप-पुष्पवाणवराऽभयकरां त्रिनेत्रां वज्रेश्वरीं ध्यात्वा, ४ द्वितीयकूटं सूर्यचक्रे जालन्धरपीठे इत्यादिश्रीवज्रेश्वरी देवी श्री०, दक्षिणकोणे शुभ्रां पाशाङ्कुश-जपमाला-पुस्तककरां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखरां भगमालिनीं ध्यात्वा, ४ तृतीयकूटं सोमचक्रे पूर्णगिरिपीठ-इत्यादि श्रीभगमालिनीदेवीश्री०, इति, सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, कामेश्वर्यग्रे "उद्यत्सूर्यसहस्राभां त्रिनेत्रां शशाङ्कमुकुटां रक्ता वरां रत्नाऽलङ्कारभूषितां पीनोन्नतघनस्तनीं शोणित-पङ्किलमुण्डमालां पुस्तकाभयजपमालावरकरां ध्यात्वा, ४ ह्सूरैं ह्स्क्लीं ह्सौः त्रिपुराऽम्बिकाचक्रेश्वरी श्री०; तस्या वामे, ४ ह्सौं बीजमुद्राश्री०, दक्षिणे, ४ इच्छासिद्धि श्री०, इति सम्पूज्य श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, ह्सौमिति मूलदेव्यै बीजमुद्रां प्रदर्श्य, एताः परापररहस्ययोगिन्यः सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे स-मुद्राः इत्यादिना पूजां समर्प्य, मूलेन मूलदेवीं सम्पूज्य, विशेषार्घेण सन्तर्प्य, मूलान्ते देवी सम्बोध्य, "अभीष्टसिद्धिम्" इत्यादि अष्टमावरणर्चनमिति पुष्पाञ्जलिप्रक्षेपेण तदावरणार्चनं समर्प्य, ४ परापररहस्ययोगिनीमयूखायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै नमः इति योनिमुद्रया प्रणमेदिति। इत्यष्टमावरणपूजा।

ततः बिन्दुचक्रं परब्रह्मात्मकं ध्यात्वा, ४ मूलपञ्चदशाक्षरी-त्रयोदशाक्षर-रूपं तुरीयकूटमुच्चार्य, सर्वाऽऽनन्दमयचक्राय नम इति पुष्पाञ्जलिं क्षित्वा, तत्र महोद्यानपीठे कदम्बाननाऽन्तः हिरण्मयसहस्रकमलकर्णिकागतसाध्य-सिद्धासने प्रसूनतूलिकायां स्वसमानाकारकामेश्वराङ्के स्वस्तिकाऽऽसनेनो-पविष्टां प्रमुदितां श्रीललितां यथोक्तरूपां ध्यात्वा, ४ तुरीयकूटमुच्चार्य, ब्रह्मचक्रे महोड्याणपीठ इत्यादिना श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्री पा० पू० त० नमः इति सम्पूज्य विशेषाऽर्घाऽमृतबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः पञ्चदशीमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीचक्रेश्वरी श्रीपा० पू० त० नमः इति सम्पूज्य, सन्तर्प्य; तस्याः वामे, ४ ऐं महायोनिमुद्रा श्री पा० दक्षिणे, ४ प्राप्तिसिद्धिश्री० ततः ऐं इति योनिमुद्रां प्रदर्श्य, ४ एताः परापराऽतिरहस्ययोगिनी सर्वाऽऽनन्दमये महाचक्रे बैन्दवे परब्रह्मस्वरूपिणी पराऽमृतशक्तिः सर्वमन्त्रे॰ ी सर्वविद्येश्वरी

सर्वपीठेश्वरी सर्ववीरेश्वरी सर्वयोगेश्वरी सर्ववागीश्वरी सर्वसिद्धेश्वरी सकलजगदुत्पत्तिमातृका सचक्रा सदेवता समुद्रा ससिद्धिः साऽऽयुधा साऽऽसना सवाहना सपरिवारा साऽलङ्कारा सर्वोपचारैः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपरया चापरया परापरया च सपर्यया पूजिता, तर्पिताऽस्तु नमः इति विशेषाऽर्घोदकपुष्पाक्षतैः नवमचक्रेश्वरीहस्ते चक्रपूजां समर्प्य, ४ मूलमुच्चार्य, समस्तचक्रेश्वरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्री पा०; तस्याः वामे ह्सरैं ह्सक्लीं ह्स्रौः त्रिखण्डामुद्रा देवी श्री०; दक्षिणे, सर्वकामसिद्धिश्री० इति सम्पूज्य, विशेषार्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य, ह्स्रै० ह्स्क्लीं ह्स्रौ इति त्रिखण्डमुद्रां प्रदर्श्य, मूलेन मूलदेवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, पुष्पाञ्जलिं आदाय मूलाऽन्ते देवीं सम्बोध्य,

"अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम्"॥

इति देव्याश्चरणकमले पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, ४ परापराऽतिरहस्ययोगिनीमयूखायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकायै नमः इति योनिमुद्रया प्रणमेदिति। इति नवमावरणपूजा।

अत्र, पूजितावरणदेवतानां चक्रेश्वरीणां च प्रागुक्त-ध्यानकरणाऽशक्तौ कामेश्वराऽङ्कोपवेशनं विना देवीरूपध्यानमेव कार्यम्।

अत्र पूजिताः सर्वाऽऽवरणदेवताः मूलदेव्यभिमुखोपविष्टाः ज्ञातव्याः। इत्थं पूजयित्वा, नवचक्रमेकरूपं ध्यायन्, प्रागुक्तसर्वं सङ्क्षोभणादि त्रयोदशमुद्राः प्राग्वत् प्रदर्श्य विशेषाऽर्घाऽमृतबिन्दुभिः प्राग्वद् देवीः त्रिः सन्तर्प्य, योनिमुद्रया प्रणमेद् एतद् नवमाऽऽवरणाऽर्चनं नित्यमावश्यकम्।

"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सप्तदशः प्राऽगात् तरङ्गो रत्नवारिधौ ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे सप्तदशस्तरङ्गः ॥ १७॥

॥श्रीः॥

अथाष्टादशस्तरङ्गः

अथ पञ्च-पञ्चिका-विद्याभिः दीक्षितश्चेत्, बिन्दुचक्रे सिंहासनाऽऽकारेण मध्यवायव्येशानाऽग्नेयनैऋत्येषु पञ्चश्रीः, पञ्च कोशेश्वरीः पञ्च कल्पलताः पञ्च कामदुघाः, पञ्चरत्नदेवताः च तत्तद्विद्यया वक्ष्यमाणविधिना पूजयेत्। तद्यथा –४ मूलपञ्चदशाऽक्षरीमुच्चार्य –

“श्रीमहालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डिताऽसनसंस्थिता।
सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी”॥

श्री विद्यालक्ष्म्यम्बाश्री पा० पू० त० नम इति मध्ये सम्पूज्य, विशेषाऽर्घबिन्दुभिस्तर्पयेत्।

ततो वायव्यकोणे, लक्ष्मीतप्तकाञ्चनकान्तिं दक्षोर्ध्वादितदधोऽन्तकरैः पद्मद्वयाऽभयवरधरां शुक्लाऽम्बरपरीधानां शुभ्राभ्राभैः चतुर्भिः गजैः करधृतकनककलशविनिर्गताऽमृतधाराभिः अभिषिच्यमानां सर्वाऽऽभरणभूषितां

“श्रीमहालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितासनसंस्थिता।
सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी”॥

ध्यात्वा, श्रीं लक्ष्मी लक्ष्म्यम्बा श्री०, ईशाने , महालक्ष्मीं सिन्दुरवर्णां त्रिनेत्रां वामाऽधःकारादि दक्षाऽधःकरान्तेषु रत्नपात्र-स्वर्णपद्मद्वयरत्नादर्शधरां शुक्लवस्त्राऽनुलेपनां सर्वाभरणभूषितां महालक्ष्मीं ध्यात्वा, ४ ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद, प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्यै नमः “महालक्ष्मीश्वरीवृन्दमण्डितेत्यादिमहालक्ष्म्यम्बा श्रीपा०; तत आग्नेये, त्रिशक्तिलक्ष्मीं नवहेमवर्णां वामोर्ध्वादि तदधःकरादि वामदक्षक्रमेण पद्मद्वयपाशाऽङ्कुशधनुर्बाणधरां सर्वालङ्कारभूषितां ध्यात्वा, श्रीं ह्रीं क्लीं **“महालक्ष्मीश्वरीवृन्दे”** त्यादि० त्रिशक्तिलक्ष्म्यम्बाश्रीपा० ततो नैर्ऋत्ये, सर्वसाम्राज्यलक्ष्मीं नीलवर्णां त्रिनेत्रां

शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गशरवराऽभययुतामष्टभुजां सर्वालङ्कारभूषितां ध्यात्वा, ४ श्रीं सकल ह्रीं श्रीं **श्रीमहालक्ष्मीश्वरी वृन्दे"**त्यादि०, साम्राज्यलक्ष्म्यम्बा श्रीपा० इति सम्पूज्य एतच्चतुष्टयं श्रीपात्रामृतेन तर्पयेत्। ततः पुनर्मध्ये, ४ मूलपञ्चदशीमुच्चार्य 'महाकोशेश्वरीवृन्दमण्डितेत्यादि० श्रीविद्याकोशाम्बा-श्री०, इति देवी ध्यात्वा, सम्पूज्य, विशेषाऽर्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः वायव्यकोणे, परं ज्योतिषं रक्तवर्णं वामोर्ध्वादि तदधोऽन्तैः करैः पाशाऽङ्कुशधराऽभीतिधरां त्रिनेत्रां रक्तपुष्पाऽम्बराऽऽलेपाऽऽभरणां ध्यात्वा, ॐ ह्रीं हं सः सोऽहं स्वाहा 'महाकोशेश्वरीवृन्देत्यादि० परं ज्योतिः कोशाऽम्बा श्री०, ततः ईशाने, परनिष्कलदेवतां शुक्लां शुक्लाऽ-म्बरालेपाभरणां वामजानुन्यस्तवामकरां दक्षिणे ज्ञानमुद्रां दधतीं ध्यात्वा, ४ ॐ महाकोशेश्वरीवृन्देत्यादि० परनिष्कलकोशाम्बा श्री पा०; ततः आग्नेये, अजपाकोशेश्वरीं रक्तपीतवामदक्षिणाऽङ्गद्वयं वामोर्ध्वादिदक्षोर्ध्वान्तकरैः पाशाऽभयवरपरशुधरामर्द्धनारीश्वररूपिणीं त्रिनेत्रां चन्द्रचूडां सर्वाभरणभूषितां ध्यात्वा, ४ हं सः "महाकोशेश्वरीवृन्दे"त्यादि० अजपाकोशाम्बाश्रीपा० ततो नैऋत्ये न्यासोक्तरूपां मातृकासरस्वतीं ध्यात्वा, ४ अ आ इत्यादि ५१ (एकपञ्चापाशत्) 'महाकोशेश्वरीवृन्दे'त्यादि मातृकाकोशाम्बाश्रीपा० इत्येतच्चतुष्टयं श्रीपात्रामृतेन तर्पयेत्।

॥अथ पञ्च कल्पलताः॥

अत्र मध्ये मूलदेवीं ध्यात्वा, मूलपञ्चदशीमुच्चार्य, "महाकल्पलतेश्वरी वृन्दे"त्यादि श्रीविद्याकल्पलताम्बाश्री पा०; ततो वायव्ये, पञ्चकामेश्वरीं रक्तां रक्ताऽम्बरालेपमाल्याभरणां वामाद्यूर्ध्वयोः, तदाद्यधःस्थयोः, तदाद्यधः स्थयोश्च करयोः पाशाऽङ्कुशधनुर्बाण-पुस्तकाऽक्षमाला-वराऽभयधरां ध्यात्वा, ४ ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं "महाकल्पलतेश्वरीवृन्दे" त्यादि०, पञ्चकामे-श्वरीकल्पलताऽम्बाश्रीपा०; (अत्र पञ्चकामेश्वरीस्थाने, त्वरितानित्यां तत्तन्त्रोक्तरूपा ध्यात्वा, कल्पलतात्वेन पूजयेदिति केचित्।) तत्र स्वगुरुमतं आदरणीयम्; तत ऐशान्ये, पारिजातेश्वरीं शुभ्रां शुभ्राऽम्बराऽऽलेपाभरणां

चन्द्रचूडां वामाऽधःकरादिदक्षाऽधःकराऽन्तेषु पुस्तक-वीणा-सुधा-कुम्भाऽक्षमालाधरां सर्वाऽऽभरणभूषितां ध्यात्वा, ॐ ह्लीं ह स्रैं ह्लीं ॐ सरस्वत्यै नमः, महाकत्पलतेश्वरीवृन्देत्यादि०, पारिजातेश्वरीकल्पलताऽम्बा श्रीपादु०; ततः आग्नेये, कुमारम् उद्यत्सूर्यसहस्रप्रभां वामाद्यूर्ध्वयोः तदाद्यधःस्थयोः करयोः इक्षुधनुः पुष्पबाण-पुस्तकाऽक्षमालाधरां रक्तमाल्यां वरालेपरत्नमुकुटादिनानाऽऽभरणां ध्यात्वा, ४ क्लीं ऐं सौः "महाकल्पलतेश्वरी-वृन्दे"त्यादि०, कुमारीकल्पलताऽम्बाश्रीपादु०; (अत्र "त्रिपुटा कल्पलते" ति केचित् । तदा, प्रागुक्तत्रिशक्तिमेव त्रिपुटात्वेन ध्यात्वा, तद्विद्यामेवोच्चार्य, तां कल्पलतात्वेन पूजयेत् । अत्राऽपि स्वगुरुमतं प्रमाणम् ।) ततः नैऋत्ये, पञ्चबाणेश्वरीं बालार्कमण्डलाऽरुणां नानाऽलङ्कारशोभितां रक्तमाल्याऽम्बरा-लेपां वामादीक्षुकोदण्डपुष्पबाणाऽङ्कितकरद्वयां ध्यात्वा, ४ द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः, महाकल्पलतेश्वरी वृन्दे त्यादि...., पञ्चबाणेश्वरीकल्पलताम्बा०; इति सम्पूज्य, श्रीपात्राऽमृतबिन्दुभिः तर्पयेत् ।

॥अथ पञ्चकामदुघाः॥

तत्र मध्ये, मूलदेवीं ध्यात्वा, पञ्चदशीमुच्चार्य,"महाकामदुघेश्वरीवृन्दे" त्यादि०, श्रीविद्याकामदुघाऽम्बाश्रीपा०; ततो वायव्ये, अमृतपीठेश्वरीं कर्पूराभां मुक्ताभूषणां दक्षवामकरयोः ज्ञानमुद्राऽक्षमालाधरां ध्यात्वा, ह्लीं हं सः सञ्जीवनि जूं जीवं प्राणग्रन्थिस्थं कुरु सः स्वाहा, "महाकामदुघेश्वरी वृन्दे" त्यादि०, अमृतपीठेश्वरीकामदुघाऽम्बा श्रीपा०, ततः ऐशान्ये सुधासूः-कामदुघां शुक्लाऽम्बाराऽऽलेप-स्रग्-विभूषणां पुस्तकाऽक्षमालाऽन्वित-वामदक्षकरद्वयां कुमारीं ध्यात्वा, ४ वद, वद वाग्वादिनि ह्सूरैं क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु, कुरु ह् स् क्लीं " ॐ मोक्षं कुरु, कुरु ह्सरौः "महाकामदुघेश्वरीवृन्दे"त्यादि०, सुधासूःकामदुघाम्बाश्री०; आग्नेये अमृतेश्वरीं सुधासूरिव ध्यात्वा, ऐं प्लुं द्रौं जूं सः अमृते अमृतोद्भवे, अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय-स्रावय स्वाहा, "महाकामदुघेश्वरीवृन्दे"त्यादि०,

अमृतेश्वरीकामदुघाऽम्बाश्रीपादु०; नैऋत्ये, अन्नपूर्णेश्वरीं रक्तवर्णां विचित्र-वसनाभरणां स्वर्णदर्वी दुग्धाऽन्नपूर्णरत्नपात्रदक्षवामकरद्वयां ध्यात्वा, ॐ ह्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा "कामदुघेश्वरीवृन्दे" त्यादि०, अन्नपूर्णा कामदुघाऽम्बाश्रीपादु०, इति सम्पूज्य, श्रीपात्राऽमृतबिन्दुभिः तर्पयेत् ।

॥ अथ पञ्चरत्नेश्वरीपूजा॥

तत्र मध्ये, मूलदेवीं ध्यात्वा, पञ्चदशीमुच्चार्य, 'महारत्नेश्वरीवृन्दे-त्यादि०, श्री विद्यारत्नाऽम्बा श्रीपा०; वायव्ये, सिद्धलक्ष्मीं सुवर्णवर्णां मुक्ता-माणिक्यभूषितां मातुलुङ्गवरान्वितदक्षवामकरद्वयां ध्यात्वा, ४ ह्रीं महाचण्डतेजःसङ्कर्षिणिकालि मंथाने हः श्रीं महारत्नेश्वरी वृन्देत्यादि० सिद्धलक्ष्मी-रत्नाऽम्बा श्रीपा०; ऐशान्ये, मातङ्गेश्वरीं द्विभुजां वीणावादनतत्परां कदम्बपुष्पाऽलङ्कृतवेणीबन्धां शङ्ख-कुण्डलधरांऽशुकश्यामलां रक्तांऽशुकां ध्यात्वा, ४ ऐं क्लीं सौः ऐं ह्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति श्रीमातङ्गेश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखरञ्जनि क्लीं ह्रीं श्रीं सर्वराजवशंकरि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सर्वदुष्टमृगवशंकरि सर्वसत्त्ववशंकरि सर्वलोकवशंकरि अमुकं मे वशमानय स्वाहा श्रीं ह्रीं ऐं सौः क्लीं ऐं 'श्रींमहारत्नेश्वरीवृन्दे'त्यादि०, श्रीमातङ्गेश्वरी-रत्नाऽम्बाश्रीपा०, आग्नेये, भुवनेश्वरीं उद्यत्सूर्यसहस्राभां त्रिनेत्रां रक्ताऽम्बरा-नुलेपनमाल्याभरणां वामोर्ध्वादि वामाऽधःकरेषु पाशाऽङ्कुशवराऽ-भयधरां ध्यात्वा, ४ ह्रीं महारत्नेश्वरी वृन्दे'त्यादि०, भुवनेश्वरीरत्नाऽम्बा श्रीपा०; नैऋत्ये, वाराहीं नीलवर्णां दक्षोर्ध्वादि तदधोऽन्तःकरेषु हल-कपाल-मुसलवरधरां त्रिनेत्रां मुण्डमालादिनानाभूषणां चन्द्रशेखरां दंष्ट्राकरालकोलवदनां ध्यात्वा, ४ ऐं नमो भगवति वार्तालिवार्तालि, वाराहि, वाराहि वराहमुखि वराहमुखि, अन्धे अन्धिन्यै नमः, रुन्धे रुन्धिन्यै नमः, जम्भे जम्भिन्यै नमः, मोहे मोहिन्यै नमः, स्तम्भे स्तम्भिन्यै नमः, अमुकं स्तम्भय स्तम्भय, सर्वदुष्टानां सर्वेषां सर्वजिह्वा० स्तम्भं कुरु-कुरु, शीघ्रवश्यं

कुरु कुरु, ऐं ग्लौं ठः ठः हुं फट् स्वाहा ।

"महारत्नेश्वरीवृन्देमण्डितासनसंस्थिता ।
सर्वसौभाग्यजननी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी" ॥

वाराहीरत्नाऽम्बाश्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नमः, इति सम्पूज्य, श्रीपात्राऽमृतबिन्दुभिः तर्पयेत् । इति पञ्च पञ्चिकात्मक-पञ्चसिंहासनपूजा ।

॥ अथ चतुस्समयपूजा ॥

तत्र बिन्दुचक्रे एव मूलदेव्यग्रे, ऐं क्लीं सौः ॐ नमः, कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदे सर्वसत्ववशंकरि सर्वजगत् क्षोभकरि हूं हूं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः सौः क्लीं ऐं कामेश्वरी समयदेवताश्रीपा०; देव्याः वामे, ४ ऐं ह्लीं सर्वकार्यार्थसाधिनिवज्रेश्वरि वज्रपदे वज्रपञ्जरमध्यगते ह्लीं क्लीन्ने ऐं क्रों नित्यमद्रवे ह्लीं वज्रनित्यायै नमः, वज्रेश्वरीसमयदेवता श्रीपा०; दक्षिणे पूर्वोक्तभगमालिनीविद्यामुच्चार्य, भगमालिनी समयदेवताश्रीपा०, इत्येत्त्रयं सकृत् सकृत् केवलपुष्पैः पूजयित्वा, श्रीपात्रविन्दुभिस्तर्पपित्वा, मध्ये, मूलदेव्या वामे, मालिनी क्लीं भगवति ब्लूं नित्ये कामेश्वरी ह्लीं सर्वसत्त्ववशंकरि सस्त्रिपुरभैरवि ऐं विच्चे क्लीं महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी समयदेवताश्रीपा०, इति सप्तवारं केवलपुष्पैः सम्पूज्य, विशेषार्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य, क्लीमिति शक्त्युत्थापनमुद्रां बद्ध्वा, मूलविद्यया प्रदर्श्य, हूं इति मुञ्चेत् । इति चतुस्समयपूजा ।

॥ अथाऽऽम्नायपूजा ॥

तत्र त्रैलोक्यमोहनसर्वाशापरिपूरकसर्वसङ्क्षोभकारके, सृष्टिचक्रे पूर्वाम्नायदेवतां मुक्ताऽऽतपत्रछायायामुपविष्टां पद्मरागाऽरुणां रक्ताऽऽभरणवस्त्रमाल्याऽनुलेपनां पाशाङ्कुशवराऽभयधरां रत्नमुकुटाऽर्पितचन्द्रलेखां ध्यात्वा, ४ ह्स्रीं स्ह्रीं श्रीं स्क्लीं पूर्वाम्नायाऽधिदेवता उन्मनीदेवी श्रीपा०; ततश्चतुर्दशारद्विदशाराऽऽत्मके स्थिते चक्रे दक्षिणाम्नायदेवतां उद्यत्सूर्यसहस्रप्रभां नानाऽलङ्कारभूषितां रक्तवस्त्रानुलेपनां

वामाद्यूर्ध्वयोः तदाद्यधःस्थयोः करयोः पाशाऽङ्कुशपुस्तकाऽक्षमालाधरां ध्यात्वा, ४ ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले हसौः दक्षिणाम्नायाऽधिदेवता भोगिनीदेवीश्रीपा०; अथ नवयोनिचक्रे संहाराख्ये, पश्चिमाम्नायदेवतां पञ्चमुण्डासनां बालाऽर्कसहस्रकान्तिं मुण्डमालां रक्तवस्त्राऽऽभरणाऽनुलेपनां वामाद्यूर्ध्वतदाद्यधः पाशाऽङ्कुशाऽभयवरहस्तां त्रिनेत्रां ध्यात्वा, ४ ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्फ्रें ह्स्रौः नमो भगवति ह्स्फ्रें कुब्जिकायै क्षां ह्रीं हुं अघोरे घोरे अघोरमुखि छिं छिं किणि किणि विच्चे ह्स्रौः हस्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं पश्चिमाऽम्नायाऽधिदेवताकुब्जिकाश्रीपा०; ततः समष्टिश्रीचक्रे उत्तराऽऽम्नायदेवतां कालीं पञ्चमुण्डासनां बन्धूककुसुमाऽरुणदेहवस्त्राऽऽभरणाऽनुलेपनां चन्द्रचूडां मुण्डमालाधरां त्रिनेत्रां वामोर्ध्वादि तदधोऽन्तं पुस्तकाक्षमालावरांऽभयकरां ध्यात्वा, ४ ख फ्रें महाचण्डयोगेश्वरि उत्तराम्नायाऽधिदेवता कालसङ्कर्षिणी देवीश्रीपा०, इति चतुराऽऽम्नायपूजा।

॥ अनुत्तराम्नायपूजा ॥

ततः, मूलदेवीमेव प्रथमं, मूलविद्यया सम्पूज्य, सन्तर्प्य, ततः रक्तवर्णां सुवर्णदेवीं दुग्धाऽन्नभरितस्वर्णपात्रं च दधानां त्रिनेत्रां चन्द्रचूडां विचित्रवस्त्राऽऽभरणां अन्नपूर्णारूपां ध्यात्वा, ४ ह्रीं सौः श्रीं क्लीं ॐ नमो भगवति अन्नपूर्णे ममाऽभिलषितं अन्नं मे देहि स्वाहा, अन्नपूर्णासुन्दरी श्रीपा० इति त्रिः सम्पूज्य विशेषार्घामृतबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः मूलेन मूलदेवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, मूलदेवीमेव अनुत्तराऽऽम्नायदेवतारूपां अकलङ्कशशाङ्ककोटिप्रभां ज्ञानमुद्रापुस्तककरां त्रिनेत्रां चन्द्रचूडां शुभ्राऽम्बराऽऽभरणमाल्यानुलेपनां ध्यात्वा,४ सौः अनुत्तराऽऽम्नायदेवता पराऽम्बाश्रीपा०, इति सप्तविंशतिवारं त्रिर्वा सम्पूज्य, विशेषार्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः देवीं यथोक्तरूपां ध्यात्वा, मूलेन सम्पूज्य तर्पयेदिति अनुत्तराम्नायपूजा।

॥ कामकला पारम्पर्यपूजा ॥

अथ विद्योत्तररूपां श्रीकामकलां पूजयेत्। तत्र, प्रथमं बिन्दुचक्रमध्ये, प्रणवादिनमोऽन्तया मूलविद्यया मूलदेवीं षोडशवारं सम्पूज्य, तामेव

पञ्चदशाक्षरीरूपेण परिणतां ध्यात्वा, पुनस्तां पञ्चदशाऽक्षरीं एकैकाक्षरलयेन अन्तिमतुरीयस्वरावशेषेण उत्तररूपां कामकलां प्रकाशशक्त्यात्मकपरमशिवां अन्तर्गतविश्वरूपां प्रकाशविमर्शात्मकत्वेन बहिः प्रकाशमानां सिन्दूरवर्णां त्रिनेत्रां पीनोन्नतघनस्तनीं रक्तवस्त्राऽऽभरणाङ्गरागां अतिकोमलाङ्गीं वराभयाऽङ्कितकरद्वयां ध्यात्वा, ४ ईं परमसंवित्कलाश्रीमहात्रिपुरसुन्दरीश्री०, इति त्रिः सम्पूज्य, विशेषार्घबिन्दुभिः त्रिः सन्तर्प्य, पुनः तामेव मूलदेवीरूपां ध्यात्वा, मूलेन षोडशवारं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, बिन्दुचक्र एवाग्रे, वामदक्षिणमध्येषु ४ ईं मूलविद्याप्रथमकूटं हं सः प्रकाशचरणश्रीपादु०, ४ ईं द्वितीयकूटं सोऽहं विमर्शचरणश्रीपा०, ४ ईं तृतीयकूटं हं सः सोऽहं प्रकाशविमर्शचरणश्रीपा०; ४ ईं तुरीयविद्यामुच्चार्य, हं सः शिवः ह्सौः सोऽहं निर्वाणचरणश्रीपा०, इति चरणचतुष्टयं सम्पूज्य, विशेषाऽर्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य, प्रागुक्तगुरुपङ्क्तिपूजनस्थाने प्रथमरेखाया उत्तराऽग्रे, ४ सकलानन्दनाथश्रीपा०, द्वितीयरेखाया उत्तराग्रे, ४ निष्कलानन्दनाथ श्री, ४ तृतीयरेखाया उत्तराग्रे नवात्मानन्दनाथश्री०, ४ अक्रूरानन्दनाथश्री०, ४ इत्येतद्गुरुचतुष्टयं दिव्यौघ-सिद्धौघ-मानवौघत्वेन पूजयेत्। इति गुरुपङ्क्तिं सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः बिन्दुमध्ये मूलदेवीं प्रागुक्तकामकलां ध्यात्वा, ४ ईं सच्चिदानन्दनाथपरमसंविदम्बा श्रीपा०, इति त्रिः सम्पूज्य, विशेषार्घेण सन्तर्प्य, ४ ईं परमसंवित्कलामहात्रिपुरसुन्दरीश्रीपा०, इति च त्रिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य तस्यामेव ४ ईं सपरार्ध कलानन्दनाथोर्ध्वबिन्दुचक्रश्रीपा०, ४ ईं सपरार्द्धकलानन्दनाथाधोबिन्दुयुगस्तनद्वयश्री०, ४ ईं सपरार्द्धकलानन्दनाथव्यञ्जितरेखायोनिश्री०, इत्थमंशचतुष्टयं अवयवत्रितयत्वेन सम्पूज्य, विशेषार्घ्यबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः पूर्वोक्तप्रकारेण कामकलासुन्दरीं सिन्दूरवर्णां त्रिनेत्रां इत्यादि ध्यात्वा, ४ ईं परमसंवित्कलाश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्री०, इति सम्पूज्य, विशेषार्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य, प्रागुक्तस्वगुरुपूजास्थाने गुरुपादुकाविद्यया प्राग्वत् स्वगुरुं सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्पयेदिति कामकलापारम्पर्यपूजा।

अथ ऊर्ध्वाम्नायदीक्षितो बिन्दुचक्रे मूलेन मूलदेवीं त्रिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य, पुनः तामेव ऊर्ध्वाम्नायदेवतारूपिणीं महाषोढावसानलिखित-ध्यानोक्ताऽर्द्धनारीश्वररूपां वक्ष्यमाणषट्सरोरुहमध्यगतत्रिकोणमध्यस्थ-सिंहासनोपविष्टां ध्यात्वा, ४ ह्सौः स्हौः तुरीयविद्यामुच्चार्य, श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी-पराम्बाश्रीपा०, इति त्रिः सम्पूज्य, विशेषाऽर्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः ४ ह्सौः श्रीप्रासादपराम्बा श्री० स्हौः श्रीपराप्रासादपराम्बाश्री०, इति च सम्पूज्य, विशेषबिन्दुभिः सन्तर्प्य, बिन्दुचक्रे एव प्रथमं अष्टदलकमलं, तद्बहिः षड्विंशतिदलं, तद्बहिः षोडशदलं, तद्बहिः अष्टत्रिंशद्दलं, तद्बहिः चतुर्दशदलं, तद्बहिः एकपञ्चाशद्दलं – इति षट्सरोरुहात्मकं महाचक्रं ध्यात्वा, सर्वबाह्यगतैकपञ्चाशद्दलकमले एकपञ्चाशद्दलपद्माय नमः इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । एवमग्रेऽपि तत्तत्पद्मं पूजयित्वा, तत्तदावरणं पूजयेदिति ।

ततो देव्यग्रदलमारभ्य ओं ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौंः स्हौः अं प्रपञ्चरूपश्री-श्रीपा० ६ आं द्वीपरूपमायाश्री० । एवं प्रपञ्चन्यासोक्तैकपञ्चाशद्देवताः वामावर्तेन सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः सन्तर्प्य, ॐ ऐं ह्रीं ह्सौः स्हौः अं आं इत्यादि क्षं इत्यन्तमुच्चार्य, सकलप्रपञ्चाऽधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः स्हौंः ह्सौंः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ समस्तप्रपञ्चरूपिणी श्रीपराम्बा देवी श्रीपा०, तर्पयामि नम इति मूलदेवीं सम्पूज्य, विशेषबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुष्पाञ्जलिं आदाय, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौंः स्हौंः "अभीष्टसिद्धि"मित्यादि श्लोकं पठित्वा, प्रथमावरणार्चनमिति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, प्रपञ्चदेवतामयूखायै श्रीपराऽम्बादेव्यै नमः इति योनिमुद्रया प्रणमेत् । इत्थं षट्स्वपि आवरणेषु तत्तदावरणपूजान्ते महाषोढान्यासे तत्तन्न्यासाऽवसानोक्तव्यापकमन्त्रेण उक्तयुक्त्या मध्ये मूलदेवीं पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, सन्तर्प्य, उक्तयुक्त्यैव तत्तदावरणपूजां समर्प्य, तथैव तत्तन्मयूखरूपां श्रीपरदेवतां योनिमुद्रया प्रणमेदिति, तदन्तश्चतुर्दशदलकमलदलेषु देव्यग्रादि अतललोकनिलयेत्यादि०,

देवताऽऽधारशक्त्यम्बादेवी श्री०, इति भुवनन्यासोक्त-चतुर्दशदेवताः वामावर्तेन सम्पूज्य, तदन्ताऽष्टत्रिंशद्दलकमलदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य, अं केशवाक्षराश्रीपा०, एवमष्टत्रिंशद् देवतामावर्तेन सम्पूज्य, तदन्तः षोडशदल-कमलदलेषु ६ अं आं ई एकलक्षकोटिभेदेत्यादि०, एककूटेश्वर्यम्बादेवी श्रीपा०; एवं वामावर्तेन सम्पूज्य, तदन्तः अष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य ६ कं ५ अनन्तकोटीत्यादि, असिताङ्गभैरवश्री०, एवं वामाऽऽवर्तेन न्यासोक्ता-ष्टभैरवदेवताः सम्पूज्य, देवताग्रे, ऊर्ध्वाम्नायगुरून् दिव्यसिद्धमानवौघ-क्रमेण प्राग्वत् पंक्तित्रयेण त्रिकोणाऽष्टदलयोरन्तराले पूजयेत्। तद्यथा – प्रथमरेखायां, ४ आदिनाथपरशिवश्री०, ४ आदिशक्तिपरशिवाश्री०; सदा शिवपरशिवश्री० ४ सदाशिवापरशिवाश्री० ४ ईश्वरपरशिवश्री०, ४ ईश्वरी-परशिवाश्री०, ४ रुद्रपरशिवश्री०, ४ रुद्राणी परशिवाश्री०, ४ विष्णुपर-शिवश्रीं०, ४ वैष्णवी परशिवाश्री०, ४ ब्रह्मपरशिवश्री० ४ ब्रह्माणी-परशिवाश्री०, ४ इति दिव्यौघः।

ततः द्वितीयरेखायां ४ सनकमहाशिवश्री०, ४ सनन्दनमहाशिवश्री०, ४ सनत्कुमारमहाशिवश्री०, ४ सनत्सुजातमहाशिवश्री०, ४ ऋभुमहाशिवश्री०, ४ दत्तात्रेयमहाशिव श्री०, ४ रैवतकमहाशिवश्री०, ४ वामदेवमहाशिवश्री०, ४ व्यासमहाशिवश्री०,४ शुकमहाशिवश्री०, इति सिद्धौघः।

ततः तृतीयरेखायां, ४ नृसिंहसदाशिवश्री०, ४ महेशसदाशिवश्री०, ४ भास्करसदाशिवश्री०, ४महेन्द्रसदाशिवश्री०, ४ माधवसदाशिवश्री०, ४ विष्णुसदाशिवश्री०, इति मानवौघः। इत्थं गुरुपङ्क्तित्रयं सम्पूज्य, श्रीपात्र-बिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुनः पूर्वोक्तरूपामूर्ध्वाम्नायदेवतां ध्यात्वा, पूर्ववत् ह्सौंः तुरीयविद्या..... इत्यादि श्रीप्रासादपराऽम्बा इत्यन्तं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, चरणादि-दीक्षायुक्तश्चेत् तत्रैव चरणादिषडाधारविद्यान्तं न्यासोक्तप्रकारेण पूजयेत्; तर्पयेत्। तत्र निष्कलमव्ययं मातृ-मान-मेय-विवर्जितं शम्भुचरणं ध्यात्वा, प्रागुक्तचरणविद्यया त्रिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य, चरणोत्पन्नाः पश्चाऽम्बादिन्यासोक्ताः

देवताः सम्पूज्य, विशेषाऽर्घबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पुरश्चरणविद्यया त्रिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य, तदेव (तामेव) मूलदेवीं ध्यात्वा, मूलेन सम्पूज्य, तर्पयेदिति ऊर्ध्वाम्नायपूजा ।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ तरङ्गोऽष्टादशोऽगमत् ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे अष्टादशस्तरङ्गः ॥ १८ ॥

॥ श्रीः ॥

अथैकोनविंशतिस्तरङ्गः

॥ अथ शाम्भवाख्योर्ध्वाम्नायपूजा ॥

अथ षडन्वयशाम्भवाख्योर्ध्वाम्नायदीक्षायुक्तश्चेत् – तत्तन्त्रोक्तमानसादिक्रमषट्कं पूजयेत्। तद्यथा – तत्र बिन्दुचक्रे एव नैऋत्य-वायव्य-पूर्वाग्नेय-पश्चिमेशानेषु षट्सु स्थानेषु षट्कोणषट्कं विभाव्य, तेषु षट्सु षट्कोणेषु न्यासोक्तपरेश्वरादिमिथुनषट्कं सरश्मिकं पूजयेत्। तत्र प्रथमं, मध्ये मूलदेवीं सकामेश्वरीं ध्यात्वा, मूलेन त्रिः सम्पूज्य, सन्तर्प्य, पुनः तामेव षडन्वयशाम्भवाऽधिदेवतां अर्द्धनारीश्वररूपां ध्यात्वा, प्रागुक्तशुक्ल-रक्तमिश्रं चरणविद्याभिः त्रिः त्रिः सपूज्य, प्रतिचरणं विशेषबिन्दुभिः सन्तर्प्य, नैर्ऋत्य-दिग्गत-षट्कोणमध्ये तामेव सकामेश्वरीं परमेश्वरपरमेश्वरीरूपां ध्यात्वा, ऐं ह्रीं श्रीं ह् स् फ्रें हसौः स् ह् स्रौं ऐं फ्रें श्रीपरेश्वरानन्दनाथ-परेश्वरीपराम्बा ह्सौः ह्स्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं श्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नमः इति सम्पूज्य, विशेषबिन्दुभिः सन्तर्प्य, षट्कोणेषु ईशानादिवायव्यान्तेषु प्रागुक्तमानसक्रमद्वात्रिंशद्रश्मिमिथुनं प्राक्प्रोक्तसंख्याविभागेन सम्पूज्य, श्रीपात्र-बिन्दुभिः तर्पयेत्।

ततः पश्चिमषट्कोणमध्ये, मूलदेवीमेव मानसक्रमाऽधिदैवत-विच्चेश्वरविच्चेश्वरीरूपां तत्तन्त्रोक्तध्यानरूपां ध्यात्वा, ऐं ह्रीं श्रीं ह्स्फ्रें ह्सौः ह्स्रूं ऐं कुब्जिके फ्रें विच्चेश्वरीपराम्बा ह्सौः ह्स्फ्रें श्रीं ह्रीं ऐं श्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नमः।

ततः पूर्वादीशानान्तेषु न्यासोक्तक्रमेण षट्त्रिंशद्रश्मिमिथुनं सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः तर्पयेत्। ततो वायव्यषट्कोणे, वायव्यक्रमाधिदैवतहंसेश्वर-

हंसेश्वरीरूपां ध्यात्वा, ५ह्स्फ्रूं ऐं कुब्जिकायै ह्स्फ्रें विच्चे हंसेश्वरानन्दनाथ हंसेश्वरपराम्बाश्री० पू० त० नमः। ततः आग्नेयादिपूर्वान्तेषु कोणेषु प्रागुक्तसप्तविंशतिरश्मिमिथुनं प्रागुक्तविभागेन पूजयेत्।

ततः ईशानषट्कोणमध्ये तैजसक्रमदैवतसंवर्तेश्वरसंवर्तेश्वरीरूपिणीं परदेवतां ध्यात्वा, ह्रां ह्रूं ह्रीं ह्स्रां ह्स्रूं ह्स्रीं क्षां क्षूं क्षीं किणि-किणि ह्स्फ्रां ह्स्फ्रूं ह्स्फ्रीं ह्स्फ्रीं विच्चे ह्रौं हस हस ह्सफ्रें हसक्षमलवयरूं औं हसक्षमलवयरां हसक्षमलयवरूं हसक्षमलवयरीं ऐं ह्स्रीं ह्स्रूं ह्स्रां ह्रीं ह्रूं ह्रां ऐं नित्ये भमवति ह्स् फ्रें कुलेश्वरि ह्रां ह्रूं ह्रीं ह्वां ह्वीं ह्वूं ह्यैं ह्रूं ङ ञ ण न मे क्षां क्षूं क्षीं क्षें श्री फट् ह्स्रौं फ्रें अघोरमुखि कुब्जिकायै छ्रां छ्रूं छ्रीं घोरे अघोरे यं रं लं वं हं सं किणि किणि किणि महाकिणि विच्चे संवर्तेश्वरानन्दनाथसंवर्तेश्वरीपराम्बा ५। २ श्री० पा०, इति सम्पूज्य, विशेषबिन्दुभिः सन्तर्प्य, पश्चिमादिनिऋत्यन्तेषु कोणेषु पूर्वोक्तक्रमेण एकत्रिंशद् रश्मिमिथुनं सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः तर्पयेत्।

ततः पूर्वषट्कोणमध्ये, आप्यक्रमाऽधिदैवतद्वीपेश्वरद्वीपेश्वरीरूपां श्रीपरदेवतां ध्यात्वा, ५ ह्स्रूं ऐं रिंगटिपिंगटि कंटपि विच्चे द्वीपेश्वरानन्दनाथ द्वीपेश्वरीपराम्बा ५ श्रीपा०। ततः तस्य पश्चिमादिनिऋत्यन्तेषु कोणेषु पूर्वोक्तषड्विंशतिरश्मिमिथुनं प्राग्वत् विभज्य, सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः तर्पयेत्।

ततः आग्नेयषट्कोणमध्ये, पार्थिवक्रमाधिदैवतनवात्मेश्वरनवात्मेश्वरीरूपां श्रीपरदेवतां प्राग्वत् ध्यात्वा, ५ ह स क्ष म ल व र यूं नमो भगवति ह्सफ्रें कुब्जिकायै ह्रां ह्रूं ङ ञ ण न म ऐं अघोरमुखि छ्रां छ्रूं छ्रीं किणि किणि विणि विणि विच्चे नवात्मेश्वरानन्दनाथनवात्मेश्वरीपराम्बा ५ श्रीपा० इति सम्पूज्य, विशेषबिन्दुभिः सन्तर्प्य तस्य पश्चिमादिनिऋत्यन्तेषु कोणेषु प्रागुक्तक्रमेणाष्टाविंशतिरश्मिमिथुनं सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः तर्पयेत्।

ततः प्राग्वत् मध्ये चरणत्रयेण त्रिः सन्तर्प्य, सम्पूज्य, पुनर्यथोक्तरूपां भगवतीं श्रीललितां ध्यात्वा, मूलेन ४ त्रिः सम्पूज्य, विशेषबिन्दुभिः तर्पयेत्।

अत्र साऽऽवरणपूजाऽशक्तौ, प्रोक्तक्रमेण मिथुनषट्कमेव पूजयेत्। तत्रापि अशक्तौ, सकामेश्वरीं भगवतीमेव परेश्वरपरेश्वरीरूपेण ध्यात्वा, तद्विद्यया पूजयेत्। इति शाम्भवाख्योर्ध्वाम्नायपूजा।

॥ अथ षड्दर्शनपूजा ॥

इत्थमाम्नायपूजां विधाय, षड्दर्शनानि पूजयेत्। तत्र 'त्रैलोक्यमोहने चक्रे चतुरस्रत्रयात्मके' बौद्धदर्शनसमयदेवतां तारादेवीं श्यामवर्णां द्विनेत्रां द्विभुजां दक्षवामकरयोः वरपङ्कजे दधानां नानाऽऽभरणभूषितां रत्नपादुका–न्यस्तपादद्वयां ध्यात्वा, ४ ऊँ तारे तु तारे तुरे स्वाहा, तारादेव्याधिष्ठित–बौद्धदर्शनश्री० पू० त० नमः।

ततः षोडशदले वैदिकदर्शनाधिदैवतं ब्रह्माणं चतुर्वक्त्रं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनं रक्तवर्णं रक्तवस्त्राऽऽद्यलङ्कृतं रक्तपद्मासनस्थं दक्षाधः करादितदूर्ध्वान्तैः करैः वराऽऽभयकमण्डल्वक्षमालाधरं ध्यात्वा, ४ ऊँ ब्रह्मणे नमः, ब्रह्म-देवताधिष्ठितवैदिकदर्शनश्रीपा०।

ततः अष्टदलचक्रे पाशुपताधिदैवतं रुद्रं रक्तवर्णं त्रिनेत्रं रक्तवर्णायाः देव्याः रक्तोत्पलयुक्तवामकरया वक्षोरुहद्वन्द्वोपरिन्यस्तवामाऽधोहस्तं तया दक्षभुजेनाऽऽश्लिष्टं वामोर्ध्वहस्ते मृगं, दक्षिणोर्ध्वे परशुं, दक्षिणाऽधोहस्ते वरं च दधानं चन्द्रचूडं नानाभरणभूषितं ध्यात्वा, ४ ई हौं शिवाय हौं नमः रुद्रदेवताऽधिष्ठितशैवदर्शनश्रीपा०।

ततः चतुर्दशारे, सौरदर्शनाधिदैवतं भास्करं रक्तवर्णं रक्तवस्त्रं नानाऽऽभरणभूषितं वामोर्ध्वादितदधोऽन्तेषु पाशाऽङ्कुशवराऽभीतिकरं त्रिनेत्रं चन्द्रचूडं भगवत्यास्तुङ्गस्तनयुगजगन्मातुः स्वरूपं ध्यात्वा, ४ ॐ ह्रीं हं सः सूर्यदेवताधिष्ठितसौरदर्शनश्रीपा०।

ततो दशारद्वये वैष्णवाधिदैवतं विष्णुं बालार्ककोटिसमप्रभं वामोर्ध्वादि-दक्षोर्ध्वान्तकरेषु शङ्खगदापद्मचक्रधरं श्रीमहीभ्यां शोभितवामदक्षिणपार्श्वद्वयं नानाऽऽभरणभूषितं कौस्तुभश्रीवत्ससुशोभितवक्षसं पीतदुकुलपरिधानं ध्यात्वा, ४ ॐ नमो नारायणाय, विष्णुदैवताधिष्ठितवैष्णवदर्शनश्रीपा०।

ततो नवयोनिचक्रे शाक्तदर्शनाधिदेवतां श्रीभुवनेश्वरीं बालाऽर्क-कोटिकान्तिं दक्षाद्यधःस्तादारभ्य तदूर्ध्वान्तं वराऽभयपाशाऽङ्कुशाऽलङ्कृत-चतुर्भुजां चन्द्रोत्तंसितरत्नमुकुटां पीनोन्नतघनस्तनीं रक्ताऽम्बरमाल्याऽनुलेप-नाऽऽभरणां त्रिनेत्रां सुस्मितमुखीं ध्यात्वा, ४ ह्रीं भुवनेश्वरीदेवताऽ-धिष्ठितशाक्तदर्शनश्रीपा०। इत्थं दर्शनानि सम्पूज्य, श्रीपात्रबिन्दुभिः तर्पयेदिति षड्दर्शनपूजा।

ततः ४ मूलविद्यान्ते, समस्तप्रकटगुप्तगुप्ततरसम्प्रदायकुलकौल-निगर्भ- रहस्य- पराऽपराऽतिरहस्ययोगिनीवृन्दसहितश्रीचक्राऽऽगतसमस्त-देवताश्रीपादुकाः पूजयामीति पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, पुनः ४ मू० समस्तप्रकटे-त्यादिसमस्तदेवताः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः तर्पिताः तुष्टाः सन्तु, नमः, इति पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य श्रीचक्राद् बहिरेन्द्रियादयो वनितारूपाः पूज्याः यथा – ४ लं इन्द्रशक्तिश्री० ४ रं अग्निशक्तिश्रीपा० ४ रं यमशक्ति श्री० पा०, ४ क्षं निऋतिशक्ति श्री०, ४ वं वरुणशक्तिश्री०, ४ यं वायुशक्तिश्री०, ४ सं सोमशक्ति श्री०, ४ हं ईशानशक्ति श्री०, इन्द्रेशानयोर्मध्ये, ४ आं ब्रह्मशक्ति-श्री०, निऋतिवरुणयोः मध्ये, ४ ह्रीं अनन्तशक्तिश्री०, इति पूर्वादिदशदिक्षु सम्पूज्य, तद्बहिः इन्द्रादीनां समीपे, ४ बज्रशक्तिश्री०, ४ शक्तिशक्तिश्री०, दण्डशक्तिश्री०, ४ खड्गशक्ति श्री०, ४ पाशशक्तिश्री०, ४ अङ्कुशशक्ति श्री०, ४ गदाशक्ति श्री०, ४ त्रिशूलशक्ति श्री०, ४ पद्मशक्ति श्री०, ४ चक्र-शक्तिश्री०, ४ इति सम्पूज्य श्रीपात्रबिन्दुभिः तर्पयेत्। पुनः मूलेन मूलदेवीं सम्पूज्य, सन्तर्प्य; पुनः गन्धादिदीपान्तैः उपचारैरुपचर्य, प्राग्वत् नैवेद्यं निवेद्य, वक्ष्यमाणप्रकारेण कामकलारूपं आत्मानं ध्यात्वा, मूलविद्यां दशधा जपित्वा, समर्प्य योनिमुद्रया देवीं प्रणम्य नित्यहोमं कुर्यात्।

॥ अथ नित्यहोमविधिः ॥

तत्र पूजामण्डलस्य ईशानभागे गोमयोपलिप्तायां भूमौ सलक्षणं कुण्डं वाङ्गुष्ठपूर्वोच्चं वाऽङ्गुलमात्रोच्चं चतुरङ्गुलोच्चं वा बालुकागौरमृत्तिका-शालितण्डुलचूर्णाऽन्यतमनिर्मितस्थण्डिलं हस्तमात्रायामविस्तारं वा यथेष्टप्रमाणवेदिकां वा वक्रघटितमृण्मयीलोहमयी अन्यतमां शकटीं वा चुल्लीं वा यथाशक्ति होमस्थानं विधाय, तत्र प्राङ्मुखः स्वाऽऽसने समुपविश्य, स्रुक् स्रुवा वाऽऽज्यस्थाली प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे च स्ववामभागे कुण्डादेरुत्तरे कुशास्तरेधोमुखानि संस्थाप्य, अर्घपात्रं व्यजनं कुशान् पवित्रत्रयं शुष्केन्धनं धूपदीपादिकमाज्यादिकं च यथोचितं यज्ञद्रव्यं कुशाऽऽच्छादित-मुदकभाण्डं च स्ववामे यथायथं कुण्डादिसविधे स्थापयेत्। ततः गुर्वादिवन्दन-पूर्वकं मूलेन प्राणयामत्रयं कृत्वा, मूलविद्यायाः ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं करशुद्धिचतुरासनषडङ्गयुवतीवाग्देवतान्यासान् विधाय, देवीं ध्यात्वा, मानसं पूजयित्वा स्ववामभागे, साऽऽधारं सजलं पात्रं निधाय, मूलेना-भिमन्त्र्य, धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, तज्जलं प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य, तेन जलेन कुशैः कुण्डादिकं प्रोक्ष्य, कुण्डादौ मूलविद्यां दिननित्याविद्यां चोच्चार्य, प्रागग्राः उदगग्राश्च चतस्रश्चतस्रो रेखाः कुशमूलेन विलिख्य पुनस्तथैव प्रोक्ष्य, कांस्यादिपात्रे वह्निमानीय, ऐं ह्रीं श्रीं क्रव्यादेभ्यो हुं फट् इति मन्त्रेण क्रव्यादांशं एकमङ्गारं नैऋत्यां परित्यज्य, अवशिष्टं देवांशं मूलेनाभिमन्त्र्य, धेनुमुद्रयाऽ-मृतीकृत्य, जानुभ्यां अवनीगतः तत्पात्रं कराभ्यामादाय, कुण्डादेरुपरि प्रदक्षिणं त्रिः परिभ्राम्य, तन्मध्यकोष्ठे तं वह्निं निक्षिपेत्।

ततः, तदुपरि, कुशान् शुष्ककाष्ठानि च निक्षिप्य, मूलविद्यां दिननित्याविद्यां चोच्चरन् मुख(मुखेन) फुत्कृत्यैव त्रिः प्रज्वालयेत्।

ततः व्यजनादिना तमनलं पटूकृत्य, ऐं ह्रीं श्रीं,

"अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णमनलं समिद्धं सर्वतोमुखम्"॥

इत्यनेन प्रणमेत् । ततः सप्तजिह्वामुद्रां बध्वा, ऐं ह्रीं श्रीं, सकलजगत्कारण-वह्नेः गर्भाऽऽधानादिकाः क्रियाः सम्पद्यन्तामिति सप्तजिह्वामुद्रां दर्शयेत्।

ततः पात्राणि उत्तानीकृत्य, प्रोक्ष्य प्रणीतापात्रं प्रक्षाल्य, शुभोदकेन आपूर्य, तत्राक्षतान् पवित्रमेकं च निक्षिप्य, उत्तानहस्तद्वय-अनामिकाऽ–ङ्गुष्ठाभ्यां तत्पवित्राऽग्रमूले विधृत्य, सौः अस्त्राय फट् इति अस्त्रमन्त्रेण पवित्रमध्येन तज्जलबिन्दुं त्रिः भूमौ निक्षिपेत्। ततः तत्र घृतबिन्दुं निक्षिप्य, स्ववामाग्रे, कुण्डसमीपे कुशेषु स्थापयेदिति प्रणीतापात्रप्रणयनम् ।

ततः प्रोक्षणीपात्रं प्रक्षाल्योदकेनापूर्य, तत्र किञ्चित् प्रणीतातोयं निक्षिप्य, तेनोदकेन सर्वाण्युपकरणानि प्रोक्षयेत्। ततः तत्पात्रं स्वदक्षिणे स्थापयेत् । ततः मूलविद्यया दिननित्याविद्यया च वह्निं त्रिः परिषिञ्च्य, उदगग्रैः प्रागग्रैश्च दर्भैः ईशानादीशानपर्यन्तं परिस्तीर्य्य, स्वदक्षिणे ब्रह्मासनमास्तीर्य, अमुकहोम-कर्मणि कृताऽकृतावेक्षकत्वेन त्वं ब्रह्मा भवेति ब्रह्माणमुपवेश्य, तदभावे, कुशवटुं वा पूजयेत्। ततो वह्निं हेमवर्णं दद्यात्, ऊर्ध्वयोः तदाद्यधः करयोश्च शक्ति-स्वस्तिक-वराऽभयाऽन्वितं हेमभूषितं मूलदेवीरूपं वा ध्यात्वा, अग्रे त्वं इह आगच्छ–आगच्छ इति आवाहनादिपरमीकरणाऽन्तं तत्तन्मुद्रया कृत्वा, ऊँ ऐं ह्रीं श्रीं अग्निश्रीपादुकां पूजयामि, इति पुष्पाञ्जलिना त्रिः सम्पूज्य एवं अग्नये आसनं कल्पयामि नम इति पुष्पादिकमासनं दत्वा, अर्घं कल्पयामि स्वाहा। पाद्यं कल्पयामि नमः। आचमनीयं कल्पयामि सुधा । मधुपर्कं कल्पयामि सुधा । पुनराचमनीयं० सुधा । ततः गन्धादिनैवेद्यान्तानुपचारान् नमोऽन्तेनैव कल्पयेत्।

ततः पूर्वादिसप्तकोष्ठेषु प्रादक्षिण्येन वह्नेः सप्तजिह्वः पूजयेत्। तद्यथा – ऐं ह्रीं श्रीं हिरण्यपादुकां पूजयामि, एवं कनका रक्ता कृष्णा सुप्रभा अतिरक्ता बहुरूपा चेति जिह्वाः सम्पूज्य पुनरग्निं सम्पूज्य अस्त्रक्षालितायां आज्यस्थाल्यां पवित्रमेकं आज्यं विनिक्षिप्य, मूलेन त्रिः अभिमन्त्र्य, धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, दक्षिणकरे पवित्रं, वामे कुशमुष्टिं च

धृत्वा दक्षिणेन स्रुवमादाय जुहुयात्। तद्यथा – ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अग्नये स्वाहा, अग्नये इदं नमः, ४ सोमाय स्वाहा, सोमाय इदं०, ४ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, अग्नीषोमाभ्यां इदं०, ४ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृत इदं०, इति वह्नेः दक्षनेत्रवामनेत्रललाटनेत्रमुखेषु एकैकां आज्याऽऽहुतिं हुत्वा, यथाक्रमं सप्तजिह्वासु जुहुयात् । तद्यथा– ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हिरण्यायै स्वाहा, एवं पूर्वोक्त–तत्तन्नाम्ना प्रत्येकमेकैकं आहुतिं जुहुयात्। ततः तत्र श्रीचक्रं विभाव्य, तत्र पीठपूजापुरःसरं आवाह्य, प्राग्वद् आसनादिपञ्चोपचारैः सम्पूज्य, आवरण-देवताश्च प्राग्वदभ्यर्च्य, वह्निदेवतयोरैक्यं विभावयन् वक्त्रैकीकरणार्थं पञ्चविंशति आज्याहुतीः नाडीसन्धानार्थं एकादशाऽऽहुतीः च मूलविद्यया हुत्वा, ततः स्रुवमादाय, स्रुवेण तत्र चतुर्वारं आज्यं निक्षिप्य, पुष्पं दत्वा, अधोमुखस्रुवेण तन्मुखं पिधाय, तिष्ठन् ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मूलमुच्चार्य, वौषट् इति एकामाहुतिं दद्यात्। इति संक्षेपतोऽग्निमुखम्। इत्थं संस्कृतेऽग्नौ नित्यहोमं कुर्यात्।

॥ तत्र नित्यहोमद्रव्याणि ॥

घृताऽन्नपायसतिलतण्डुलतदुभयरक्तपुष्पसुगन्धपुष्पाणि चेति नित्य-होमद्रव्याणि।

तत्र प्रथमं पञ्चायतनी चेत् गणेशसूर्यविष्णुशिवेभ्यः तत्तन्मन्त्रेण प्रत्येकं आहुतित्रयं हुत्वा, घृतादिना मूलेन मूलदेव्यै षोडश आहुतीः हुत्वा, पूजाक्रमेण अङ्गदेवताः षोडशनित्याः गुरुपङ्क्तित्रयषडङ्गयुवतीनवावरण-शक्तीनां अन्यासामपि देवतानां चतुर्थ्यां तत्तन्नाम्ना स्वाहाऽन्तेनैकैकां आहुतिं हुत्वा, न्यूनाऽतिरिक्तप्रायश्चित्तार्थे महाव्याहृतिहोमं कुर्यात्। तद्यथा – ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा अग्नय इदं नमः, ॐ भूर्वायवे चाऽन्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, वायवे इदं० । ओं स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा, सूर्यायेदं० ॐ भूर्भुवः स्वश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा, प्रजापतय इदं०, इति महाव्याहृतिहोमः।

ततः ऐं ह्रीं श्रीं इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माऽधिकारजाग्रत्स्वप्न–सुषुप्तिष्ववस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना

यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। इत्याऽऽज्याऽऽहुतीः अष्टौ एकां वा जुहुयात्।

ततः पूर्णाऽऽहुतिं दद्यात्। तत्र ॐ ऐं श्रीं मूलविद्यान्ते अग्नये नमः इति अग्निं सम्पूज्य, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं न्यूनाऽतिरिक्तसिध्यर्थं ददामि सघृतं तिलं हुं साङ्गं कुरु–कुरु स्वाहा। इति आज्यमिश्रिततिलैः एकामाहुतिं जुहुयात्। ततः

"सहस्राऽर्चिर्महातेजाः नमस्ते बहुरूपधृक्।
सर्वाशिने सर्वजगत्पावकाय नमोऽस्तु ते॥
त्वं रौद्र घोरकर्मा च घोरहा त्वं नमामि ते।
विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे"॥

इति अग्निं प्रार्थ्य घृतेन स्रुचमापूर्य, तदुपरि पुष्पं दत्वा, अधोमुखं स्रुवं निधाय, शङ्खवत् सम्पुटाभ्यां स्रुक्स्रुवौ कराभ्यां गृहीत्वा, उत्थाय, तयोर्मूलं नाभौ निधाय, प्रणवादिवौषडन्तया मूलविद्यया आहुतित्रयं जुहुयादिति पूर्णाहुतिः।

ततः, देवीं सम्पूज्य स्तुत्वा, प्रणम्य, वह्नेः सकाशाद् बिन्दुचक्रे विसृज्य, अग्निं सम्पूज्य –

"भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक।
कर्माऽन्तरेऽपि सम्प्राप्ते सन्निधिं कुरु सादरम्"॥

इति वह्निं प्रार्थ्य, संहारमुद्रया स्वाऽऽत्मनि उद्वासयेत्। ततः विभूतिधारणं कृत्वा, प्रणीतापात्रस्य जलैः मार्जनं विधाय, ब्रह्माणं उद्वास्य, तत्स्थाने वृताय ब्राह्मणाय यथाशक्ति दक्षिणां दत्वा, प्रणम्य, पूजास्थानं गत्वा, स्वासने समुपविश्य, बलिदानं कुर्यात्। एतावत्कर्तुमशक्तश्चेत्– "अग्न्याधानादिकं कर्म नित्यहोमेन विद्यते" इति वशिष्ठसंहितावचनात् लौकिकाग्निमेव

मूलविद्यादिननित्याविद्याभ्यामभ्युक्ष्य, अभिमन्त्र्य, देवीरूपां ध्यात्वा, परिषिञ्च्य, वह्निदेवतयोः ऐक्यं विभाव्य, प्रणवत्रितारमूलविद्यामुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यग्नये नम इति सम्पूज्य, आज्यादिकमानीय, वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, मूलविद्यया त्रिः अभिमन्त्र्य, तेन हविषा मूलविद्यया स्वाहाऽन्तया षोडशाऽऽहुतीः हुत्वा समस्तप्रकटेत्यादिसमष्टिमन्त्रेण स्वाहाऽन्तेन एकामाहुतिं जुहुयात्।

ततः तिथिनित्या-षोडशनित्या-गुरुपङ्क्तित्रय-षडङ्गयुवती-नवाऽऽवरण-शक्तिभ्यः तत्तन्मन्त्रेणैकैकामाहुतिं हुत्वा, पुनः समस्तप्रकटेति समष्टिमन्त्रेण-आहुतित्रयं जुहुयात्।

अत्राऽप्यशक्तौ षडङ्गयुवती होमानन्तरं समस्तप्रकटेत्यादिसमष्टि-मन्त्रेणाहुतित्रयं दत्वां प्राग्वत् समापयेत्। इति नित्यहोमविधिः।

॥ बलिदानम् ॥

अथ देव्याः पार्षदेभ्यः कुरुकुल्यादिभ्यः बलिं दद्यात्। तत्रादौ, कुरुकुल्ला बलिः तत्र देव्यग्रे, किञ्चित् स्ववामे भूमौ चन्दनादिना सिन्दूरेण वा नवयोन्याऽऽढ्यकर्णिकमष्टदलकमलं कृत्वा, तद्बहिः प्राक्पश्चिम-द्वारद्वययुक्तं चतुरस्रद्वयमिति बलिमण्डलं निर्माय, ततः कुरुकुल्लाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, अस्याः विद्यायाः दक्षिणामूर्तिः ऋषिः, पङ्क्तिच्छन्दः श्रीकुरुकुल्लादेवता, बलिदाने विनियोगः इति ऋष्यादिकं स्मृत्वा, मूर्द्धादिषु विन्यस्य, बालाबीजत्रयेण मूलविद्यावत् करषडङ्गन्यासान् कृत्वा, कुरुकुल्ला-विद्यया व्यापकं कृत्वा,

"विकीर्णकुन्तलां लग्नां रक्तामानन्दविग्रहाम्।
दधानां चिन्तयेद् बाणचापपाशसृणीन् करैः॥
तत्समानाऽऽयुधाऽऽकारवर्णा देव्यस्तु बाह्यगाः।
ऋतुस्नाताः स्फुरद्योन्यः सदानन्दारुणेक्षणाः" ॥

दक्षाऽधःकरमारभ्य, दक्षोर्ध्वकरपर्यन्तमायुधध्यानम्। इति स्वैक्येन ध्यात्वा, मानसं पूजयित्वा, प्रोक्षणीपात्रजलमुत्सृज्य, शुद्धजलेनापूर्य, साऽऽधारं निधाय, तत्र विशेषार्घबिन्दुं दत्वा, षडङ्गेन सम्पूज्य, कुरुकुल्लाविद्यया अष्टवार-मभिमन्त्र्य, तेनोदकेन मण्डलमभ्युक्ष्य, तत्र मण्डूकादिपृथिव्यन्तं श्रीचक्रपीठ-पूजावदभ्यर्च्य, तथैव पश्चिमादिविलोमेन इक्ष्विराघृतदुग्धादीन् सम्पूज्य, इक्षुसागरतीरे द्वीपस्य नैऋतिकोणे, ॐ ऐं ह्लीं श्रीं वाराहीविद्यामुच्चार्य, श्रीवराही देवी श्रीपादुकां पूजयामीति मूलदेव्यभिमुखोपविष्टां वाराहीं सम्पूज्य, ततः वाराह्यनुज्ञया ॐ ऐं ह्लीं श्रीं ह्लीः रत्नपोतं सम्पूज्य, ततः तन्मध्ये, प्रणवाय नम इति रत्नपोतं सम्पूज्य, तदुपरि, रत्नसिंहासनादिमनोन्मनीशक्त्यन्तं श्रीचक्रपीठपूजाक्रमेण सम्पूज्य, ततः तन्मध्ये प्रणवत्रिताराऽन्ते ह्लीः बलि-चक्राय नम इति बलिचक्रं सम्पूज्य, तन्मध्ये संविदासनाय नम इति देव्याः भर्तृभूतं पुरुषं सम्पूज्य, तत्र पञ्चविंशाऽक्षर्य्याः कुरुकुल्लाविद्यया त्रिखण्डामुद्रया च तां समावाह्य, ह्लीः इति स्थापनादि परमीकरणान्त मुद्राः प्रदर्श्य, तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय, पाशादिचतुर्मुद्राः प्रदर्श्य, आसनादिपुष्पाऽन्तैः उपचारैः सम्पूज्य, श्रीकुरुकुल्लापरिवारपूजार्थमनुज्ञां देहीति प्रार्थ्य, तदनुज्ञया साधकः स्वयं रत्नपोतमारुह्य, रत्नपोतस्य पूर्वपश्चिमकोट्योः ह्लीः भ्रामणी श्री०, ४ ह्लीः द्राविणी श्री०, इति सम्पूज्य, पश्चिमद्वारस्य दक्षिणशाखामारभ्य नवशक्तीः प्रादक्षिण्येन पूजयेत्। तद्यथा– पश्चिमद्वारदक्षिणशाखायां, ४ ह्लीः सूर्यरूपिणीशक्तिश्री०, वायव्यकोणे, ४ ह्ली सोमरूपिणी शक्तिश्री०; उत्तरे ४ ह्लीः तिथिरूपिणी शक्तिश्री०; ईशाने, ४ ह्लीः वाररूपिणी शक्ति श्री०; पूर्वद्वारस्योत्तरशाखायां ४ ह्लीः योगरूपिणीशक्तिश्री०; दक्षशाखायां, ४ ह्लीः ऋक्षरूपिणी शक्तिश्री०; आग्नेये, ४ ह्लीः करणरूपिणीशक्तिश्री०; दक्षिणे, ४ ह्लीः यक्षिणीरूपिणीशक्तिश्री०; नैऋत्ये, ४ ह्लीः तारारूपिणी शक्ति श्री०; ततोऽष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ४ ह्लीः व्योमरूपिणी शब्दशक्ति श्री०, ४ ह्लीः वायुरूपिणी स्पर्शशक्तिश्री०; ४ ह्लीः अग्निरूपिणी

रूपशक्तिश्री०; ४ ह्रीः तोयरूपिणी रसशक्तिश्री०; ४ ह्रीः क्ष्मा-रूपिणी गन्धशक्तिश्री०; ४ ह्रीः प्राणरूपिणीशक्तिश्री०; ४ ह्रीः बुद्धिरूपिणीशक्तिश्री०; ४ ह्रीः शक्तिरूपिणीशक्तिश्री०; इति सम्पूज्य, अष्टयोनिषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन प्रागुक्तवशिन्यादिवाग्देवताऽष्टकं सम्पूज्य, तदन्तर्योनेः बहिर्देव्याः दक्षिणभुजाऽग्रमारभ्य, वामावर्तेन दक्षिणोर्ध्वभुजाग्रपर्यन्तेषु चतुःस्थानेषु ४ ह्रीः बाणरूपिणी शक्तिश्री०;४ ह्रीः चापरूपिणी शक्तिश्री०; ४ ह्रीः पाशरूपिणी शक्तिश्री०; ४ ह्रीः अङ्कुशरूपिणी शक्तिश्री० । ततो मध्ययोनौ, देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ४ ह्रीं: इच्छारूपिणीशक्तिश्री०; ४ ह्रीं: ज्ञानरूपिणी-शक्तिश्री०; ४ ह्रीः क्रियारूपिणीशक्तिश्री०; ततः मध्ये प्राग्वत् संविदासनं सम्पूज्य, तस्मिन् कुरुकुल्लां प्रागुक्तरूपां पञ्चविंशाऽर्णमूलविद्यया गन्धादिभिः पुनः सम्पूज्य, धूपदीपौ निवेद्य, तदग्रे, पात्रत्रयं साऽन्न-व्यञ्जन-जलपूर्णं सगन्ध-पुष्पं चतुरस्र-वृत्त-त्रिकोणमण्डले संस्थाप्य, तत्र विशेषार्घबिन्दुं दत्वा, ४ श्री कुरुकुल्लादेव्याः बलिद्रव्याय नम इति सम्पूज्य, स्ववामादिक्रमेण ४ ॐ कुरुकुल्ले स्वाहा, कुरुकुल्ले एष ते बलिर्नम इति विशेषार्घाद् उद्धृतजलधारां वामकराऽङ्गुलिभिः प्रथमपात्रे दद्यात् । ४ कुरुकुल्लायाः ॐ कुरुकुल्ले ह्रीः स्वाहा इति द्वितीयपात्रे तथैव विशेषार्घजलधारां दद्यात् । ततः कुरुकुल्लायाः ॐ कुरुकुल्ले ह्रीः मम सर्वजनं वशमानय हों स्वाहा इति । तथैव तृतीयपात्रे विशेषार्घजलधारां दद्यात् । इत्थं बलिदानं कृत्वा, नाराचमुद्रया बलिं ग्राहयित्वा, पञ्चविंशार्णमूलविद्यया पुष्पाञ्जलिं दत्वा प्रणमेत् । अत्र साऽऽवरणपूजाऽ-शक्तौ प्रागुक्तमण्डले देवीमेव पञ्चविंशाऽर्णमूलविद्यया गन्धादिदीपान्तैः उपचारैः गन्ध-पुष्पाऽक्षतैर्वा पूजयित्वा, उक्तविधिना बलित्रयं दद्यात् । इति कुरुकुल्लाबलिः।

अत्र देव्यङ्गत्वे बलिदाने पूजायां देवीसम्मुखत्वेन पूर्वाभिमुख-मुपविष्टायाः अपि कुरुकुल्लायाः पश्चिमाऽभिमुखत्वं तदग्रस्यैव पश्चिमत्वं च बोद्धव्यं चेति ।

॥ अथ वाराहीबलिः ॥

तत्र देव्यग्रे किञ्चिन्निऋतिकोणे त्रिकोण-वृत्तद्वय-चतुरस्रात्मकं मण्डलं निर्माय, ४ वाराहीबलिमण्डलाय नमः इति सम्पूज्य, ऐं ग्लौं लृं वाराहीयोग-पीठाय नमः, इति योगपीठं मण्डूकादिज्ञानात्माऽर्चाऽन्ते सम्पूज्य, तत्र वाराहीं तद्विद्यया समावाह्य आवाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय, तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय, वाराहीमुद्रां योनिमुद्रां च प्रदर्श्य, वाराहीविद्यया आसनादिपुष्पान्तैरुपचारैः गन्धादिपुष्पान्तैः वा सम्पूज्य, आवरणानि पूजयेत्। तद्यथा – त्रिकोणस्य वामकोणे ॐ क्रोधिन्यै नम; दक्षे, ॐ स्तम्भिन्यै नमः; अग्रे, ॐ चण्डोच्चण्डायै नमः। ततः षट्कोणकोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ आं ब्राह्म्यै नमः; ॐ ईं माहेश्वर्यै० ॐ ऊं कौमार्यै०; ॐ ॠं वैष्णव्यै०; ॐ ऐं इन्द्राण्यै०; ॐ औं चामुण्डायै०; इति सम्पूज्य, बहिर्वृत्तद्वये, ॐ अः महालक्ष्म्यै नमः इति देव्यग्रे पूजयेत्। ततश्चतुरस्रे, इन्द्रादीन् तद्बहिः वज्रादींश्च सम्पूज्य, पुनर्मध्ये, वाराहीं तद्विद्यया सम्पूज्य; तदग्रे, प्राग्वद् बलिपात्रं निधाय, ४ वाराहीमुद्रामुच्चार्य, श्री वाराहि एष ते बलिर्नमः इति विशेषार्घजलधारां वामकराऽङ्गुलिभिः बलिपात्रे दत्वा, बलिमुत्सृज्य प्राग्वत् नाराचमुद्रया बलिं ग्राहयित्वा, योनि-मुद्रया प्रणमेदिति वाराहीबलिः।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ तरङ्गो ह्यूनविंशतिः॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे एकोनविंशतिस्तरङ्गः ॥१९॥

॥श्रीः॥

अथ विंशतिस्तरङ्गः

॥अथ बटुकादिबलिः॥

तत्र शुद्धोदकेन चन्दनादियुक्तेन वहत्करोर्ध्वपुटहस्ताभ्यां श्रीचक्रस्य ईशानाऽग्निनैऋत्यवायव्यकोणेषु श्रीचक्रस्योत्तरभागे च त्रितारमुच्चरन् चतुरस्रवृत्तत्रिकोणात्मकं मण्डलपञ्चकं निर्माय, ४ ऐं ह्रीं व्यापकमण्डलाय नम इति प्रतिमण्डलं सम्पूज्य, ४ वां बटुकभैरवाय नमः इति मन्त्रेण ईशान-दिग्गतमण्डले बटुकभैरवं आवाह्य, वां वीमित्यादि षट्दीर्घषडङ्गन्यासेन सकलीकृत्य, कपालयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, प्रोक्तमन्त्रेण गन्धादिभिः सम्पूज्य, तदग्रे प्राग्वद् बलिपात्रं निधाय, ४ बटुकभैरवबलिद्रव्याय नमः इति बलिद्रव्यं सम्पूज्य, ४ एह्येहि देवी पुत्रबटुकनाथकपिलजटाभारभासुरत्रिनेत्रज्वालामुख-सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति मन्त्रमुच्चरन् प्रागुक्तरूपं बटुकं ध्यायन् वामाऽङ्गुष्ठानामिकाभ्यां अर्घोदकधारादानेन बलिमुत्सृज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय –

बलिदानेन सन्तुष्टो बटुकः सर्वसिद्धिदः।

शान्तिं करोतु मे नित्यं भूतवेतालसेवितः॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा प्रणमेत्। इति बटुकबलिः॥

ततो द्वितीयमण्डले, ४ यां योगिनीभ्यो नमः सर्वयोगिन्यः इह आगच्छत आगच्छत इति योगिनीः आवाह्य, प्राग्वद् ध्यात्वा, यां यीं इत्यादिना षडङ्गमन्त्रेण सकलीकृत्य, योनिमुद्रां प्रदर्श्य, ४ यां योगिनीभ्यो

नमः सर्वयोगिनीश्रीपादुकाः पूजयामि इति गन्धादिदीपान्तैः उपचारैः सम्पूज्य, प्राग्वत् बलिपात्रं निधाय,

"ऊर्ध्वे ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वाऽनले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीताः देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः"॥

यां योगिनीभ्यः सर्ववर्णयोगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा इति वामकरस्य अङ्गुष्ठ-मध्यमाऽनामिकाभिः योन्याकारेण योजिताभिः जलधारादानेन बलिमुत्सृज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय,

"या काचिद् योगिनी रौद्रा सौम्या घोरतरा परा।
खेचरी भूचरी व्योमचरी प्रीताऽस्तु मे सदा"॥

इत्यनेन पुष्पाञ्जलिं क्षिप्त्वा, योनिमुद्रया प्रणमेदिति योगिनीबलिः।

॥अथ क्षेत्रपालबलिः॥

तत्र निऋतिमण्डले, ४ क्षां क्षेत्रपालाय नमः, क्षेत्रपाल इहागच्छाऽऽगच्छेति समावाह्य क्षां क्षीमित्यादि षडङ्गमन्त्रेण सकलीकृत्य, क्षां क्षेत्रपालाय नमः, इति गन्धादिदीपान्तैः ०, ४ क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः स्थानक्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण, गृह्ण स्वाहा, इति वामकराऽङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां अर्घोदकधारादानेन बलिमुत्सृज्य, पुष्पाञ्जलिं दत्वा, योनिमुद्रया प्रणमेदिति क्षेत्रपालबलिः।

॥अथ गणपतिबलिः॥

तत्र वायव्यमण्डले, गां गणपतये नमः, गणपते इहाऽऽगच्छाऽऽगच्छेति समावाह्य, गां गीमित्यादिना षडङ्गमन्त्रेण सकलीकृत्य, गां गणपतये नमः, इति मन्त्रेण गन्धादिदीपान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, तत्र प्राग्वत् बलिपात्रं निधाय, श्रीगणपतिबलिद्रव्याय नम इति बलिं सम्पूज्य, ४ गां गीं गूं

गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण, गृह्ण स्वाहा इति मन्त्रेण वामकर-मध्यमाऽङ्गुष्ठाभ्यामर्घोदकधारादानेन प्रागुक्तरूपाय गणपतये बलिमुत्सृज्य,

"सर्वदा सर्वकार्याणि निर्विघ्नं साधयेन्मम।
शान्तिं करोतु सततं विघ्नराजः सशक्तिकः"॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, योनिमुद्रया प्रणमेत्। इति गणपतिबलिः।

॥ सर्वभूतबलिः॥

अथोत्तरमण्डले, ४ सर्वभूतेभ्यो नमः, सुराऽसुरनराद्याः सर्वभूतगणाः इहागच्छतागच्छत इत्यावाह्य, नानारूपान् ध्यायन् ह्रां ह्रीं इत्यादि षडङ्गमन्त्रेण सकलीकृत्य, उक्तमन्त्रेण गन्धादिदीपान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, तत्र प्राग्वद् बलिपात्रं निधाय, सर्वभूतबलिद्रव्याय नम इति बलिं सम्पूज्य, ४ ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यः हूं स्वाहा, सर्वभूतेभ्यः एष बलिर्नमः, इति वामकरस्य सर्वाङ्गुलिभिः अर्घोदकधारादानेन बलिमुत्सृज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय

"भूता ये विविधाऽऽकाराः दिव्या भूम्यन्तरिक्षगाः।
पातालतलसंरभाश्च शिवयोगेन भाविताः॥
क्रूराद्याः शतसंख्याकाः पाखण्डाद्याः व्यवस्थिताः।
घृणाद्याः सत्यसन्ध्याश्च हीन्द्राद्याऽऽशाव्यवस्थिताः॥
तृप्यन्तु प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमं बलिम्"।

इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, योनिमुद्रया प्रणमेत्। इति सर्वभूतबलिः।

अत्र 'पूजाऽऽरम्भकाले सर्वभूतबलिं दद्यात्' इत्यन्यत्र अनावश्यकः, इति साम्प्रदायिकाः।

॥ राजराजबलिः ॥

अथ, ऊर्ध्वाऽऽम्नायी चेत् –

राजराजबलिं दद्यात्। तत्र सर्वभूतबलिमण्डलाद् उत्तरतः प्राग्वत् मण्डलं विधाय, तथैव सम्पूज्य तत्र वक्ष्यमाणराजराजमन्त्रेण तमावाह्य, क्षां क्षीं इत्यादि षडङ्गैः सकलीकृत्य, क्षेत्रपालवत् ध्यात्वा, गन्धादिभिः सम्पूज्य, तत्र प्राग्वद् बलिपात्रं निधाय, राजेश्वरबलिदानाय नम इति सम्पूज्य, ४ अमुकस्थान-क्षेत्रपाल राजराजेश्वर इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा इति वामकरमध्यमाऽङ्गुष्ठाभ्यां अर्घामृतधारादानेन बलिमुत्सृज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय

अनेन बलिदानेन बहुवर्गसमन्वितः।
राजराजेश्वरो देव सर्वदा मे प्रसीदतु॥

इति प्रार्थ्य, पुष्पाञ्जलिमुत्सृज्य, योनिमुद्रया प्रणमेदिति राजराजेश्वरबलिः। एवं बलिदेवताभ्यः विशेषार्घोदकधारादानेन बलिमुत्सृजेत्।

अशक्तौ कुरुकुल्ला-वाराहीबलिदानानन्तरं श्रीचक्रस्य उत्तरभागे मण्डलद्वयं कृत्वा, तत्रैकस्मिन् ईशानादिमध्यान्तं प्राग्वत् पात्रपञ्चकं निधाय, बटुकादिसर्वभूताऽन्तं बलिपञ्चकं दद्यात्।

ऊर्ध्वाऽऽम्नायी चेत् –द्वितीयमण्डले राजराजेश्वरबलिं दद्यात्। अत्रापि अशक्तौ एकस्मिन्नेव मण्डले एकमेव पात्रं निधाय, तस्मिन् ईशानादिकोणचतुष्टये बलिचतुष्टयमध्ये द्वयमिति षण्णां बलिं दद्यादिति। अयमतिसङ्क्षेपः तु आपत्कल्पः। इत्थं बलिदानं विधाय, ४ सर्वाभ्यो बलिदेवताभ्यो नमः इति पुष्पाञ्जलिना समस्तबलिदेवताः सम्पूज्य, तालत्रयं दत्वा, नाराचमुद्रां बद्ध्वा,

बलिदानेन सन्तुष्टाः क्षमध्वं बलिदेवताः।

यथासुखं विहरन्तु यथेष्टासु दिशासु च॥

बटुकाद्याः सुराः सर्वे सर्वसिद्धिविधायिनः।

मे शान्तिपुष्टितुष्ट्यश्च सन्तु तत्तत्प्रसादतः॥

इत्युच्चार्य, तान् विसृज्य, प्रसन्नात्मा त्रितारमुच्चरन् शुद्धोदकेनात्मानं प्रोक्षयेत्। इति बलिदानविधिः।

॥ छागादिबलिः ॥

अथ राजादयोऽस्मिन्नेवावसरे छागादिबलिं दद्युः। तद्यथा– सर्वलक्षणसम्पन्नं पशुं मूलमन्त्रेण स्नाप्य, गन्धस्रगादिभिरलङ्कृत्य, देव्यग्रे स्थापयित्वा, मूलमन्त्रेण प्रोक्षणीजलेन प्रोक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य, कवचेनावगुण्ठनमुद्रया अवगुण्ठ्य, वमिति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, ४ सर्वदेवतारूपिणे बलिरूपाय अमुकपशवे नम इति गन्धादिभिः त्रिः सम्पूज्य, तस्य दक्षिणकर्णे, "ॐ पशुपाशाय विद्महे विप्रकर्णाय धीमहि तन्नो जीवः प्रचोदयात्" इति पशुगायत्रीं त्रिः पठित्वा, पुरतः खड्गं निधाय, ॐ कालिकालिवज्रेश्वरि-लोहदण्डायै नमः इति मन्त्रेण गन्धादिभिः त्रिरभ्यर्च्य, तस्य मुष्टिदेशे, ४ वागीश्वरीब्रह्मभ्यां नमः; मध्ये, लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः; इति सम्पूज्य, तं धृत्वा अभिमन्त्रयेत्–

"ॐ खड्गायाऽसुरनाशाय देवकार्याय तत्परः।

पशुश्रेष्ठस्त्वया वध्यः खड्गनाथ नमोऽस्तु ते"॥

इति मन्त्रेण खड्गमभिमन्त्र्य, गन्धाऽक्षतजलादिकं आदाय मूलविद्यामुच्चार्य, अद्येत्यादि तिथ्युल्लेखनान्ते अमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽमुकवर्मेत्यादिदीर्घाऽऽयुष्य-दुर्भिक्षदुःखनिवृत्तिपरमानन्ददशाऽश्वमेधसमफलध्वजमालाकुलविमानवराऽरोहण-

पूर्वकं देवीलोकगमनोत्तरशाश्वतसमाऽवधिचिन्मयाऽखण्ड-विजयकामः श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरि इमं पशुं तुभ्यमहं सम्प्रददे इत्युक्त्वा, पुष्पाऽक्षतजलादिकं पशोः शिरसि निक्षिपेत्।

ततः पशोः शिरः धृत्वा,

ॐ यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः यज्ञार्थे पशुघातनम्।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः॥
शिवाऽऽयत्तमिदं पिण्डं अतस्त्वं शिवतां गतः।
उद्बुध्यस्व पशोत्वं हि नाऽशिवस्त्वं शिवोऽसि हि॥

इति बोधयित्वा, खड्गमादाय, सौः अस्त्राय फट् छिन्धि छिन्धि स्वाहेति मन्त्रेण खड्गं तस्य स्कन्धे योजयेत्। ततः स्वयं देवीरूपो भूत्वा, निर्विकल्पः तमेकेन प्रहारेण छिन्द्यात्। सविकल्पः साधकस्तु परहस्तेन छेदयेत्। ब्राह्मणातिरिक्तैः स्वगात्रशोणितदानरूपोऽपि बलिर्देयः। इति छागादि-बलिदानविधिः। इत्थं बलिदानं विधाय, मूलेन देवीं सम्पूज्य, स्वर्णादिपात्रस्थं जलं धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, मूलविद्यया त्रिः अभिमन्त्र्य, मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुर-सुन्दरीश्रीपादुकायै जलं समर्पयामि, इति समुत्सृज्य,

"सलिलं पावनं देवि शीतलं सुमनोहरम्।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि"॥

इत्यनेन देव्याः वामभागे निवेदयेत्। ततः, मूलाऽन्ते श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि तृप्तासीति विज्ञाप्य, स्वर्णादिपात्रस्थजलं धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, तन्मूलेना-भिमन्त्र्य, अमृतपिधानमसि स्वाहा इति देव्याः दक्षिणहस्ते किञ्चिज्जलं दत्वा, तया प्राशितं विभाव्य, गतसारं नैवेद्यं उद्धृत्य, नैऋत्यां दिशि संस्थाप्य,

अस्त्रमन्त्रेण गोमयोदकेन तत्स्थानं शोधयित्वा, हस्तप्रक्षालनजलं दत्वा, स्नेहाऽपनोदनार्थं सुगन्धचूर्णानि दत्वा, पुनः हस्तप्रक्षालनार्थं जलं दत्वा, कर्पूरादिसुवासितजलैः गण्डूषानि कारयित्वा, कर्पूरशकलैः दन्तशोधनं कारयित्वा, पुनः गण्डूषानि कारयित्वा, चरणौ प्रक्षाल्य, आचमनीयं निवेद्य, सूक्ष्मवस्त्रेण करचरणयोः जलापनयनं कृत्वा, सुगन्धद्रव्यैः करौ सुरभीकृत्य, सुगन्धानुलेपनमाल्यानि समर्प्य, ताम्बूलमानीय, प्राग्वदुत्सृज्य, मूलमुच्चार्य, श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि,

"तमालदल-कर्पूर-पूगभागतरङ्गितम् ।
संशोधितं सुगन्धञ्च ताम्बूलमनुगृह्यताम्"॥

इति ताम्बूलं निवेद्य, छत्रचामरादिराजोपचारान् निवेद्य, प्रसन्नपूजां कुर्यात् । तत्र मूलविद्यामुच्चार्य, सुप्रसन्नां श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामीति पुष्पाञ्जलिभिः त्रिः सम्पूज्य, पुनः मूलमुच्चार्य, सुप्रसन्नायै श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-श्रीपादुकायै अर्घं कल्पयामि स्वाहा इति पूर्ववद् अर्घं दत्वा, गन्ध-पुष्प-धूप-दीपांश्च प्राग्वत् निवेदयेत् । इति प्रसन्नपूजां विधाय, आरार्त्तिकं कुर्यात् । तद्यथा – स्वर्णादिपात्रे सिन्दूरचन्दनादिना अष्टदलकमलं निर्म्माय, तत्र मध्ये दलाऽष्टके च यव-गोधूम-पिष्टादिरचितानि नवदीपपात्राणि संस्थाप्य, घृतेन आपूर्य, कर्पूरादिगर्भिणीः वर्त्तीः निक्षिप्य, भुवनेश्वर्या प्रज्वाल्य, श्रीं ह्रीं ग्लूं म्लूं स्लूं प्लूं न्लूं ह्रीं श्रीं इति नवरत्नेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, मूले मूलदेवीमारार्त्तिके सम्पूज्य, तत्पात्रं आमस्तकं उद्धृत्य, उत्थाय, घण्टादि वादनपूर्वकं देव्याः मस्तकादिपादान्तं, ४ मूलाऽन्ते,

"समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवि नवात्मिके ।
आरार्त्तिकमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये"॥

इति पठन्, देव्याः मस्तकोपरि त्रिः भ्रामणपूर्वकं नवकृत्वो नीराजयेत् । इति सामान्यार्त्तिकविधिः ।

॥ अथ विशेषारार्त्तिकम् ॥

तत्र लोहवर्ज्ये स्वर्णादिपात्रे कुङ्कुमादिना नवयोनिचक्रं विलिख्य, ततः कुत्रचित् पात्रे, सुपक्वं अतिशुद्धोदनं नवधा विभज्य, नवगोलकान् कृत्वा, तान् गोलकान् सप्त-सप्त दीपाधारयोग्यानि वृत्ताकाराणि नव भाजनानि कृत्वा, क्वचित् संस्थाप्य, ततः शर्करायवगोधूमचूर्णानि पिण्डयुग्मयुग्मेन परस्परपार्श्वं संलग्नसप्तकान् नवघटगणान् कृत्वा, तस्मिन् नवयोनिचक्रे मध्यादिनवयोनिषु स्थापपित्वा पूर्वरचितानि नवभाजनानि सप्त सप्त एकैक-क्रमेण तेषामुपरि स्थापयित्वा, तेषु घृतपाचिताश्चषकाऽपूपादिमुद्रा विकीर्य, तत्र शर्करामिश्रितानि यवगोधूमचूर्णदुग्धादिरचितानि मुष्टिप्रमितयष्टिकानि चतुरङ्गुलोन्नतियुतानि स्वाऽभिमतमानानि वा त्रिकोणाऽऽकारमुखानि वा घृतपाचितानि दीपपात्राणि कृत्वा, तेषां नव भाजनानामुपरि एकैकस्मिन् सप्त-सप्त स्थापयेत् । ततः तानि सुगन्धिगोधृतपूर्णानि कृत्वा, तत्र, प्राग्वत् वर्तीः निक्षिप्य, तत्पात्रं देव्याः पुरतश्च, दक्षिणे वा चतुरस्रमण्डले स्थापयित्वा, तत्र, गोमेद-सुवर्ण-मरकत-पद्मरागनीलानीति गगनादीनां पञ्चरत्नानि निक्षिप्य, भावयित्वा, वा, मूलविद्यया भुवनेश्वर्या वा, दीपान् प्रज्वाल्य, चक्रमुद्रां प्रदर्श्य, ॐ ऐं श्रीं ग्लूं गगनलोकगोमेदरत्नाय ग्लूं नमः, ४ स्लूं स्वर्गलोक-सुवर्णरत्नाय स्लूं नमः, ४ म्लूं मर्त्यलोकमरकतरत्नाय म्लूं नमः, ४, ३ प्लूं पाताललोक-पद्मरागरत्नाय प्लूं नमः, ४,२ न्लूं नागलोकनीलरत्नाय न्लूं नमः इति स्वाग्रादिमध्यान्तं प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, प्राग्वद् रत्नेश्वरीविद्ययाभिमन्त्र्य, सम्पूज्य, पूजोक्तैः पञ्च सिंहासनमन्त्रैः तथैव सम्पूज्य, समुत्थाय, घण्टावादनपूर्वकं प्राग्वत् नीराजनं कुर्यात् ।

ततः तत्पात्रं तन्मण्डले निधाय, दीपमालामयं महः पश्यन्, बहिस्तेजः सविन्नेत्रद्वाराऽन्तः संविद्रूपेण स्थितमिति ध्यायेदिति विशेषारार्तिकं शक्तौ प्रत्यहं; नो चेत् पर्वादिषु कुर्यात्। ततः "आरार्तिकस्य मध्यस्थं दीपं मूलेन भक्षयेत्" इति दक्षिणामूर्तिसंहितावचनात्। स्वगुरूपदिष्टविधिना आरार्तिकस्य मध्यस्थं दीपं मूलविद्यया भक्षयेत्। इति नीराजनविधिः।

॥ अथ कुमारीपूजा ॥

अथ कुमारीं सुवासिनीं वा स्वेष्टदेवताबुद्ध्या देवीप्रीतये पूजयेत्। तद्यथा –

"सर्वलक्षणसम्पन्नां सुस्नातां सुपरिष्कृताम्"।

कन्यां सुवासिनीं वा समानीय, तस्याः पादौ प्रक्षाल्य, सूक्ष्मवस्त्रेण मार्जयित्वा, पादपीठोपरि निधाय, सपादपीठे स्थिरासने सङ्क्षेपतः योगपीठ-पूजां विधाय, तत्र स्वस्तिकाऽऽसनोपविष्टायां तस्याम् –

ॐ, "मन्त्राऽक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृकारूपधारिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम्"॥

इत्यावाह्य, ४ बालविद्यामुच्चार्य, कुमारीश्रीपादुकां पूजयामीति तस्यां पादौ त्रिः सम्पूज्य, बालयैव गन्धादिदीपान्तैरुपचारैः सम्पूज्य सुवासिनीपक्षे तु सुवासिनीश्री०, **"आषोडशाब्दं कुमारी तत ऊर्ध्वं सुवासिनी"** इति तान्त्रिक सम्प्रदायः, तत्राऽपि अविवाहितासु फलाधिक्यमिति।

ततः प्राग्वत् त्रिखण्डामुद्रया आवाहनीविद्यया च तस्यां मूलदेवी-मावाह्य, आवाहनादिपरमीकरणाऽन्तं प्राग्वत् कृत्वा, मूलदेवीरूपां तां ध्यायन्, सङ्क्षोभणादिपाशादिमुद्राश्च प्रदर्श्य, मूलेन पुष्पाञ्जलिभिः प्राग्वद् आसनादिभोजनान्तानुपचारानुपचर्य्य, आचमनं दत्वा, ताम्बूलं समर्प्य, वस्त्रा-लङ्कारदक्षिणादिकं यथाशक्ति दत्वा प्रणम्य, विसृजेत् इति कुमारीपूजा।

ततः देवीपुत्रबुद्ध्या, ॐ ह्लीं ऐं कुमाराय नमः इत्यनेन यथाशक्ति उपचारैः देवीप्रीतये कुमारमपि पूजयेत्। इति कुमारपूजा।

तत्र भोगपात्रनिवेदनपक्षे, पूर्वोक्तरीत्या, पूजितायै कुमारिकायै० सुवासिन्यै शक्तिपात्रं निवेद्य, भोजनादिकं दत्वा, विसृजेदिति।

ततः वर्तमानं गुरुं श्रीपादुकाविद्यया समभ्यर्च्य, तदीयं तस्मै निवेदयेत्। तदभावे तुल्याय निवेदयेत्। तस्याऽप्यभावे शिरः पद्मस्थाय गुरवे निवेद्य, तर्पणविधिना त्रिःसन्तर्प्य, तत्प्रसादं स्वाऽऽत्मनि योजयेत्।

ततो बटुकभैरवमन्त्रैरेव कुमारं सम्पूज्य, पूर्वस्थापितबटुकपात्रं तस्मै निवेदयेत्। ततः पूर्वस्थापितं स्वपात्रं आत्माऽष्टाक्षरमन्त्रेण स्वाऽऽत्मनि योजयेत्। इति भोगपात्रसमर्पणविधिः।

भोगपात्राभावपक्षे कुमारीबटुकयोरेव पूजनं; तत्राऽपि कुमार्या एवावश्यकमिति। ततो मूलेन मूलदेव्यै पुष्पाञ्जलिं विधाय, मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, मूलविद्यायाः ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय, कामकलारूपमात्मानं ध्यायेत्। तत्र शक्त्युत्थापनमुद्रां बद्ध्वा, निजदेहं शून्याऽऽकारं विभाव्य, बिन्दुत्रयं हार्द्धं कलात्मकं तुर्यस्वरं ध्यात्वा, तस्य ऊर्ध्वबिन्दुकेशकर्णाऽऽद्यवयवसमेतं आननं, मध्यविन्दुद्वयं बाहुचतुष्टयसमेतं स्तनमण्डलं तदधोमात्रां पादद्वयसमेतां योनिं विभाव्य, आत्मानमपि तद्रूपं ध्यात्वा, मूलविद्यां दशधा जपित्वा, मूलदेवीरूपमात्मानं ध्यायन् स्वशिरसि कामेश्वर्यादिचित्रान्ताः पञ्चदशनित्याः तत्तद्विद्यया सम्पूज्य, अ आ ए क च ट त प य ष प्राणशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि; इ ई ऐ ख घ ठ थ फ र क्ष अग्निशक्तिश्री०; उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ळ इलाशक्तिश्री०; ऋ (ॠ) औ घ झ ढ ध भ व स अम्बुशक्तिश्री०; ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श ह शक्तिश्री०; इति शिरस्येव सम्पूज्य, ४ ॐ सोऽहं स्वाहा, आत्मने नमः। इति स्वात्मानं शिरसि पुष्पाञ्जलिना पूजयेत्।

अत्र पञ्चभूतमन्त्राणां आदौ त्रितारीयोजना; आत्माऽष्टाक्षरमन्त्रान्ते सप्ताक्षरी योजना च नास्तीति रहस्योऽयं सम्प्रदायः। इत्थमात्मानं सम्पूज्य, जपमालमानीय क्वचित् पात्रे वामपाणौ वा निधाय मूलविद्यया सामान्यार्घोदकेनाभ्युक्ष्य,

"ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तः तस्मान्मे सिद्धिदा भव"॥

ह्रीं सिद्ध्यै नमः इति गन्धादिभिः सम्पूज्य, "अविघ्नं कुरु माले त्वं" इत्यनेन दक्षिणहस्ते मालां गृहीत्वा, स्वशिरसि स्वगुरुं, कण्ठे पीतवर्णां विद्यां, हृदये श्रीपरदेवतां, श्रीगुरुचरणयोरात्मानं च ध्यात्वा, भ्रूमध्यस्थ– आज्ञा-चक्रे गुरुमन्त्रदेवतात्मनामैक्यं विभाव्य, कण्ठस्थविशुद्धिचक्रे तच्चतुष्टयमेकीभूतमानीय, श्रीपरदेवतारूपं, तत्र क्षणं ध्यात्वा, मूलविद्यया हृदयकमलमानीय, तत्र श्रीपरदेवतां ध्यायन् मन्त्राऽर्थकृतचित्तः हृदयसमीपे मालामानीय, दक्षिणहस्तस्थमध्यमाङ्गुलिमध्यपर्वणि संस्थाप्य, एकचित्तो भुग्नग्रीवः ऋजुकायः स्वयं उन्नतः कण्डून्मूलनरहितः खट–खटादिशब्दमकुर्वन् अङ्गुष्ठाग्रेण चालयन्, तर्जन्या मालामस्पृशन्, प्रतिबीजं मन्त्रमुच्चरन्, पूर्वबीजजपसमये परबीजं अङ्गुष्ठेनास्पृशन्, वामहस्तेन मालामस्पृशन्, स्थापितस्थानात् स्थानान्तरं अप्रापयन्, अदोलयन्, मेरुमलङ्घयन्, परिवर्तनकाले सङ्घट्टमकारयन्, अङ्गुष्ठाग्रेण मध्यमामध्यपर्वस्थं बीजं परिवर्तयन् प्रणवोच्चरणपूर्वकमारभ्य, अभिमतसंख्यं जपं समाप्य पुनः प्रणवमुच्चार्य,

"ॐ त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा मम।
शुभं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा"॥

इति मन्त्रेण मालां स्वशिरसि संस्थाप्य, पुनः प्राणायामत्रयं कृत्वा, ऋष्यादिकरषडङ्गं न्यासांश्च कृत्वा; अङ्गमन्त्रांश्च दशांशं जपित्वा, पुनः प्राणायामादिपूर्वकम् –

ॐ "गुह्याऽतिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रासादात् त्वयि स्थिता"॥

इति मन्त्रेण सामान्यार्घोदकेन देव्याः वामहस्ते जपं समर्प्य, मालां प्रागुक्तमन्त्रेण सम्पूज्य, तेनैव रहः स्थापयेत्। मालाभावे करमालयैव जपं कुर्यात्। सा त्वनामिकामध्यपर्वादितर्जनीमूलपर्वपर्यन्तदशपर्वरूपा। अनामामूलपर्वादिमध्यमामूलपर्वाऽन्ता वा। मातृकामालया तु सर्वोत्कृष्टो जपः। सा त्वनुलोमविलोमस्था अकारादिळकाराऽन्तसबिन्दुकवर्णात्मिका। अवर्गाद्यष्टवर्गयोगेनाष्टोत्तरशताक्षररूपाक्षमेरुकामूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सुषुम्णाऽन्तःकुण्डलिनीसूत्रेण ग्रथिता निजगुरूपदिष्टविधिना जपकाले भावनीया। अवर्गाष्टकजपस्तूद्दिष्टसहस्रादिसंख्यावसाने कार्यः; न तु प्रत्यावृत्तिरिति। अस्या विद्याया नित्यजपस्तु सहस्रं तदर्द्धं त्रिशतं वा तद्दिनजं वाऽतद्दिनजमिति नाथतत्त्वनित्या घटिकाक्षरजनितैकविंशत्युत्तरशतसंख्यासमसंख्याको जपः कार्य इत्यर्थः। अयं जपः सिद्धविषयः। अङ्गमन्त्रास्तु अष्टचक्रेश्वरीमन्त्रा तद्दिननित्याविद्या तिथिनित्या विद्या चेति दशविद्या आवश्यकाः। शक्तौ तु पञ्चदशनित्याविद्याः पञ्चसिंहासनगताः विंशतिविद्याः पूर्वाद्याऽऽम्नायान्तं चतस्रो विद्याश्चतुःसमयपूजोक्ताः भगमालिनीमन्तरेण तिस्रः पूर्णविद्याः कामकलाविद्या तुरीयविद्याऽनुत्तरपरा कुरुकुल्लाविद्या चेति सप्तचत्वारिंशत् संख्या विद्या जप्याः।

ऊर्ध्वाऽऽम्नायी चेत् – एकशम्भुचरणषोडशविद्याः षडाऽऽधारविद्याश्चेति त्रयोविंशतिविद्याः जपेत्। अत्राऽप्यशक्तौ चरणविद्या मूलविद्या चेति।

केवलप्रासादपरापराप्रासाददीक्षितश्चेत् – तयोरेकतमं तदुभयं वा जपेत्। षडन्वयशाम्भवदीक्षितश्चेत् – देवदेवीनां द्वादशविद्याः पृथग् जपेत्। ततः तिरस्करिणीं विद्यां भुवनेशीरहितान् दर्शनमन्त्रान् पञ्च च जपेत्। तेन श्रीविद्याङ्गभूताश्चतुरायतनसमेताद्युत्तरशतसंख्याकाः भवन्ति। तत्र यथाशक्ति जपेत्।

"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृतेऽगाद् विंशतितमस्तरङ्गो रत्नसागरे"॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे विंशतितमस्तरङ्गः॥२०॥

॥श्रीः॥

अथैकविंशस्तरङ्गः

॥देवीस्तोत्रम्॥

ततः मूलविद्यया देव्यै पुष्पाञ्जलिं दत्वा, घण्टादिवाद्यपूर्वकं, देवीस्तोत्रं पठेत्। तद्यथा –

''श्रीमत् श्रीकोशहृदयं पञ्चसिंहासनात्मकम्।
फलं कल्पलतानां च चारुरत्नस्फुरत्कलम्॥१॥
चतुराऽऽयतनाऽऽनन्दिचतुरन्वयकोशगम्।
नित्याऽऽनन्दिपरं ब्रह्मधाम नौमि सुखाऽऽप्तये॥२॥
गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनीं राशिरूपिणीम्।
देवीं मन्त्रमयीं नौमि मातृकां पीठरूपिणीम्॥३॥
प्रणमामि महादेवीं मातृकां परमेश्वरीम्।
कालहल्लोहलोल्लोलकलनाशमकारिणीम् ॥४॥
यदक्षरैकमात्रेऽपि संसिद्धेः स्पर्धते नरः।
रविताक्ष्येन्दुकन्दर्पशङ्कराऽनलविष्णुभिः॥५॥
यदक्षरशशिज्योत्स्नामण्डितं भुवनत्रयम्।
वन्दे सर्वेश्वरीं देवीं महाश्रीसिद्धमातृकाम्॥६॥
यदक्षरमहासूत्रे प्रोतमेतज्जगत्त्रयम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम्॥७॥

यदेकादशमाधारं बीजं कोणत्रयोद्भवम्।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं जगदद्याऽपि दृश्यते ॥ ८॥
अकचादितटोन्नद्धपयसाक्षरवर्गिणीम्।
ज्येष्ठाङ्गबाहुहृत्पृष्ठकटिपादनिवासिनीम् ॥ ९॥
तामीकाराक्षरोद्धारां सारात्सारां परात्पराम्।
प्रणमामि महादेवीं परमान्दरूपिणीम् ॥ १०॥
अद्यापि यस्याः जानन्ति न मनागपि देवताः।
केऽयं कस्मात् क्व केनेति सरूपारूपभावनाम् ॥ ११॥
वन्दे तामहमक्षय्य क्षकाराक्षररूपिणीम्।
देवीं कुलकलोल्लोलप्रोल्लसन्तीं परां शिवाम् ॥ १२॥
वर्गाऽनुक्रमयोगेन यस्यां मात्रष्टकं स्थितम्।
वन्दे तामष्टवर्गोत्थमहासिद्धाऽष्टकेश्वरीम् ॥ १३॥
कामपूर्णजकाराख्यश्रीपीठान्तर्निवासिनीम्।
चतुराऽऽज्ञाकोशभूतां नौमि श्रीत्रिपुरामहम् ॥ १४॥
इति द्वादशभिः श्लोकैः स्तवनं सर्वसिद्धिकृत्।
देव्यास्त्वखण्डरूपायाः स्तवनं तव तद्यतः ॥ १५॥

इति स्तुत्वा, पुष्पाञ्जलिमादाय अन्यैश्च वैदिकैः पौराणिकैः स्तवैः स्तुत्वा तं देव्याश्चरणयोः क्षिपेत्।

ततः प्रार्थनमुद्रां बध्वा, प्रार्थनस्तवं पठेत्।

"किं किं दुःखं दनुजदलनि क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि ख्याप्यते न स्तुतायाम्।
का का सिद्धिः सुरवरनुते प्राप्यते नाऽर्चितायां
कं कं योगं त्वयि न चिनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥ १॥

सर्ग-संसर्ग-संरम्भ-स्फारिताद्योघविभ्रमे ।
चिच्चन्द्रमण्डलान्तस्थे नमस्ते हरवल्लभे ॥ २॥
जगदाऽऽह्लादनोद्योतयोगभोगवियोगिनि ।
स्थितिभावस्थिते गौरि नमः स्थाणुप्रियेऽम्बिके ॥ ३॥
भावाभावापृथग्भावस्वभावोदयधर्मिणि ।
चैतन्यपञ्चके देवि नमस्तुभ्यं हराङ्गने ॥ ४॥
सृष्टि-स्थित्युपसंहार-प्रत्युज्झितपदोदये ।
चिद्विश्रान्तमहासत्तामात्रे मात्रे नमोऽस्तु ते ॥ ५॥
वह्न्यर्कशीतकिरण-ब्रह्मचक्रान्तरोदिते ।
चतुःपीठेश्वरि शिवे नमस्त्रिपुरसुन्दरि ॥ ६॥
चराचरमिदं विश्वं प्रकाशयसि पास्यथ ।
मातृकारूपमास्थाय तस्यै मातर्नमोऽस्तु ते ॥ ७॥
स्मृताभवभयं हंसि पूजिताऽसि शुभङ्करि ।
स्तुता त्वं वाञ्छितं वस्तु ददासि करुणाकरे ॥ ८॥
भक्तस्य मे नित्यं पूजायुक्तस्य परमेश्वरि ।
वाग्भवादिमहासिद्धिं देहि त्रिपुरसुन्दरि ॥ ९॥
परमानन्दसन्दोहप्रमोदभरनिर्भरे ।
दुःखत्रयपरिम्लानवदनं त्राहि मां शिवे ॥ १०॥
शब्दब्रह्ममये स्वच्छे देवि त्रिपुरसुन्दरि ।
यथाशक्ति जपं पूजां गृहाण मदनुग्रहात् ॥ ११॥
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं कृपया देवि क्षमस्व परमेश्वरि ॥ १२॥

यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु ।
तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद् भूत्यै नमः शिवे ॥१३॥
यन्मयोक्तमिहाज्ञानात् तन्महत्-स्वल्पमेव वा ।
हन्त सर्वजगद्धात्रि क्षन्तव्यमयमञ्जलिः ॥१४॥
द्वैताऽद्वैतमहामोहशर्वरींक्षपणक्षमः ।
भास्वानिव जयत्येको गणेशः शक्तिसंयुतः ॥१५॥
प्रतिभासागरोल्लासो निशाकर इवाऽपरः ।
मूर्तियुक्तः स जयति बटुकस्ताण्डवाऽन्वितः ॥१६॥
षड्त्रिंशत्तत्त्वभरितं क्षेत्रं यः पालयेत् पलम् ।
क्षेत्रेशं तमहं नौमि वारुणस्थं महाबलम् ॥१७॥
चतुःपीठनिवासिन्यो योगेश्वर्यो महाबलाः ।
चतुःषष्टिप्रकारास्ताः नित्यं वन्दे कुलाऽऽगताः ॥१८॥
भेदाऽभेदमहामोहविवर्तं परिमण्डितम् ।
आपूरयन्तीं समयां द्वात्रिंशार्णां नमाम्यहम् ॥१९॥

इति स्तुत्वा, पुष्पाञ्जलिं दत्वा, प्राग् गुरुस्तोत्रेणापि स्तुत्वा, प्रणम्य –

ॐ "सर्वशक्तिक्रमोद्भूति प्रभूम्नोऽहमिहाऽऽत्मिकाम् ।
देवस्य देवतां काञ्चित् संवित्सुखमयीं श्रये" ॥२०॥

इत्युच्चरन् नमस्कारमुद्रां दर्शयेत् । ततः प्रदक्षिणानि कृत्वा –

ॐ "सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते" ॥

इति श्लोकं सप्तधा पठित्वा, गुरूपदेशविधिना साष्टाङ्गं पञ्चाङ्गं वा पञ्चकृत्वः प्रणमेत् । ततः स्वस्तिककमठ-मुष्टि-योन्याऽऽख्याभिः पञ्चमुद्राभिः प्रणमेत् पुनः साष्टाङ्गं प्रणम्य,

"भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवाऽवलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं शिवे॥
अपराधो भवत्येव सेवकस्य पदे-पदे।
कोऽपरः सहतां लोके केवलं स्वामिनीं विना॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मया क्रियते शिवे।
मम कृत्यमिदं सर्वमिति मातः क्षमस्व मे"॥

इति बहुधा प्रणतिपूर्वकं क्षमाप्य, अर्घोदकं चुलुकेन पात्राऽन्तरेण वाऽऽदाय, ४ इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-देह-धर्माऽधिकार-जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिष्ववस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं श्रीगुरुदेवसमर्पितमस्तु स्वाहा, मां मदीयं च सकलं श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यै समर्पये; ॐ तत्सदित्यनेन देव्याश्चरणारविन्दयोः गृहीतोदकदानेन आत्मानमर्पयेत्।

ततः ऊर्ध्वाम्नायी चेत् – ४ महान् तुरीयातीतोऽहं सर्वतत्त्वसमुद्भूतमात्मानं अः अनुत्तरतत्त्वं यथा भवति तथा भगवत्यै समर्पयामीति, अनेन निष्कलमात्मानमर्पयेत्।

तत्रः पूर्वोक्तमूलसमयविद्यया केवलपुष्पैः मूलदेवीं सप्तवारमभ्यर्च्य, कृताञ्जलिः–

ॐ "यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
निवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणाऽनुकम्पया॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजाभागं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि॥

कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नाऽन्या गतिर्मम।
अन्तश्चारेण भूतानां द्रष्ट्री त्वं परमेश्वरि॥
मातर्योनिषु सहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतेऽस्तु सदा त्वयि॥
देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिदं जगत्।
देवी जयति सर्वत्र या देवी साऽहमेव हि॥
यदक्षरं परिभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत्।
क्षन्तुमर्हसि देवेशि कस्य न स्खलितं मनः॥
क्षमस्व देवदेवेशि त्रिपुरे परमेश्वरि।
तव पादाम्बुजे नित्यं निश्चला भक्तिरस्तु मे"॥

इति सर्वं क्षमाप्य, योनिमुद्रया प्रणमेत्। ततः शङ्खमुद्धृत्य, देव्युपरि भ्रामयित्वा,

"साधु वाऽसाधु वा कर्म यद्यदाऽऽचरितं मया।
तत्सर्वं कृपया देवि गृहाणाऽऽराधनं मम"॥

इति मन्त्रमुच्चार्य, देव्याः दक्षहस्ते शङ्खजलं किञ्चिद् दत्वा, पुनः प्राग्वद् देव्याः शिरसि दत्वा, शङ्खं यथास्थाने निवेश्य, तज्जलं किञ्चिद् वामहस्ते निधाय, तस्मिन् पूजाऽवशिष्टं किञ्चिद् गन्धमालोड्य, मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य, तेन जलेनात्मानमभ्युक्ष्य, अन्यानपि सामयिकान् शङ्खजलेन प्रोक्षयेत्। ततः पुष्पाञ्जलिमादाय,

ॐ "रश्मिरूपा-महादेव्या अत्र पूजितदेवताः।
श्रीसुन्दर्यङ्गलीनास्ताः सन्तु सर्वशुभावहाः"॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्वा, परिवारगणान् गणेशाद्यान् अर्घ्यदेवताद्वारदेवतासहितान् मूलदेव्याः देहे विलीनानिति विभाव्य, पूर्ववत् कामकलारूपमात्मानं ध्यात्वा, देव्याः यद्भूषणं रूपमायुधं च तत्सर्वं निजदेहे विचिन्त्य, देवीरूपमात्मानं

ध्यायन् खेचरीमुद्रां बद्ध्वा, तद्बीजेन देवीं प्रणम्य मूलविद्यान्ते, 'भगवति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरि क्षमस्व' इति तालत्रयेण देवीं प्रबोध्य, तेजोमयीं विचिन्त्य –

ॐ "गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि।

यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम्"॥

इत्युच्चार्य तेजोरूपां तां संहारमुद्रया निर्माल्यपुष्पेण तत्तेजः समुद्धृत्य, आघ्राय, पूरकयोगेन शिरस्थसहस्रदलकमलं प्रापय्य, तत्र क्षणं तेजोरूपं ध्यात्वा, सुषुम्णा वर्त्मना ऐं हृदयाय नम इति हृदयकमलमानीय, तत्र, यथोक्तरूपां ध्यायन् –

ॐ "तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि।

यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुराः तिष्ठन्ति मे हृदि"॥

इति हृदयकमले स्थापयित्वा, तत्र यथोक्तसिंहासनमध्यगतां सपरिवारां परदेवतां मानसैरुपचारैः सम्पूज्य, पुनः तेजोरूपां तां कुण्डलिनीरूपेण मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं ध्यात्वा, मूलाधारे स्थापयेत्।

ततः ऐशान्यां दिशि, जलेन त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं निर्माय, तन्मध्ये, शेषिकाख्यां निर्माल्यवासिनीं तन्मन्त्रेण आवाह्य षडङ्गन्यासेन सकलीकृत्य, तत्र तां ध्यायेत्। तद्यथा –

"मातङ्गीं नवयावकार्द्रचरणां प्रोल्लासिकृष्णांशुकाम्।

वीणोल्लासिकरां समुन्नतकुचां मुक्ताप्रवालावलीम्॥

हृद्याङ्गीं सितशङ्खकुण्डलधरां बिम्बाधरां सुस्मिताम्।

आकीर्णाऽलकबेणिमब्जनयनां ध्यायेत् शुकश्यामलाम्"॥

इति जगन्मोहिनीं निर्माल्यवासिनीं ध्यात्वा, तस्याः तस्याः पौरुषरूपात् लम्बोदरादीन् मूलदेवीविभूतिरूपपौरुषरूपगणेशादीनामुच्छिष्टभोजिनः कोणेषु ईशानादिषु तत्र निर्माल्येन पूजयित्वा, मध्ये, मूलदेवीनिर्माल्येन तदुच्छिष्टभोजिनीं तां पूजयेत्।

तत्र तस्य मण्डलस्य ईशानकोणे गणेशनिर्माल्येन ॐ लम्बोदराय नमः इति लम्बोदरं पूजयेत्।

ततः आग्नेये, सूर्यनिर्माल्येन ॐ तेजश्चण्डाय नमः, नैऋत्ये विष्णुनिर्माल्येन ॐ विष्वक्सेनाय नमः, वायव्ये शिवनिर्माल्येन ॐ चण्डेश्वराय नमः इति तत्तन्निर्माल्ये गन्धादिभिः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य त्रिकोणमध्ये प्रकृतिरूपभुवनेश्वर्यादि शक्त्युपासनपक्षे तन्निर्माल्येन ॐ चण्डेश्वर्यै नम इति निर्माल्यवासिनीं सम्पूज्य, ततः त्रिकोणमध्ये देवीनिर्माल्येन ४ ऐं नमः उच्छिष्टचण्डालि-मातङ्गि-सर्ववशङ्करि स्वाहा शेषिकाश्रीपादुकां पूजयामीति निर्माल्यपुष्पैः त्रिः सम्पूज्य तन्निर्माल्योदकादिभिः पाद्यादिदीपान्तानुपचारान् उपचर्य, नैवेद्यस्य शतांशं सहस्रांशं वा तच्चरणोदकेनैव समर्पयेत्। ततो निर्माल्यपुष्पाञ्जलिमादाय –

ॐ "लेह्यचोष्याऽन्नपानादिताम्बूलं स्रग्विलेपनम्।
निर्माल्यभोजिने तुभ्यं ददामि श्रीशिवाज्ञया"॥

इत्यनेन पुष्पाञ्जलिं कृत्वा, प्रणिपत्य, क्षमस्वेति विसर्जयेत्। इति निर्माल्यवासिनीं पूजयित्वा, ततः तालत्रयपूर्वकम् –

ॐ "देवनाथगुरो स्वामिन् देशिक स्वात्मनायक।
त्राहि त्राहि कृपासिन्धो पूजां पूर्णतरां कुरु"॥

इति श्री गुरुं प्रार्थ्य, कराभ्यामामस्तकमुद्धृत्य, शिरसि स्थिताय श्री गुरवे समर्प्य तत्पात्रं दक्षिणे करे निधाय, ४ श्रीगुरुपादुकाविद्यान्ते श्री अमुकानन्दनाथ श्रीपादुकां तर्पयामि नम इति त्रिः सन्तर्प्य, तत्पात्रं यथास्थाने निवेश्य, तज्जलं किञ्चित् पात्रान्तरे निधाय, ४ ऐं प्रथमकूटमात्मतत्त्वाय नमः, ४ क्लीं द्वितीयकूटं विद्यातत्त्वाय नमः, सौः तृतीयं शिवतत्त्वाय नमः, ४ ऐं क्लीं सौः समस्तविद्यामुच्चार्य, सर्वतत्त्वाय नम इति तस्मिन् जले तत्त्वचतुष्टयं विन्यस्य, तज्जलं पुनः पात्रान्तरेणोद्धृत्य, चुलुकेनादाय, तत्रपाद्यलेशं

निक्षिप्य, ४ प्रकृत्यहङ्कार-बुद्धि-मनः श्रोत्र-त्वक्-चक्षुः-जिह्वा-प्राण वाक् -पाणि-पाद-पायु-उपस्थ-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-आकाश-वायु-अग्नि-सलिल-पृथिव्यात्मकाः शुद्धचतुर्विंशतितत्त्वसहितं स्थूलदेहं अं आं इत्यादि १६ ऐं आत्मतत्वं शोधयामि स्वाहा माया-कला-विद्या-राग-काल-नियति-पुरुषात्मकशुद्धबुद्धसप्ततत्त्वसहितं सूक्ष्मदेहं कं खं २५ क्लीं विद्यातत्त्वं शोधयामि स्वाहा, शिव-शक्ति-सदाशिव-ईश्वर-शुद्धविद्यात्मक-पञ्चशुद्ध-तत्त्वसहितं परदेहं यं १० सौः शिवतत्त्वं शोधयामि स्वाहा, शिव-शक्ति-सदा-शिव-ईश्वर-शुद्धविद्या-माया-विद्या-कला राग-नियति-पुरुष-प्रकृति-अहङ्कार-बुद्धि-मनः- श्रोत्र-त्वक्-चक्षुः-जिह्वा-प्राण-वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ-शब्द-स्पर्श-रूप-रसगन्ध-आकाश-अग्नि-सलिल-पृथिव्यात्मकशुद्धमिश्राः शुद्धषट्त्रिंशत् तत्त्व-सहितं स्थूल-सूक्ष्मपराख्य-देहत्रयाभिमानिनं जीवात्मानं अं आं ५१ बाला-मुच्चार्य, सर्वतत्त्वं शोधयामि स्वाहा, इति चुलुकचतुष्टयं स्वीकृत्य, तत्पात्रं कराभ्यामादाय, मूलविद्यां गुरुपादुकाविद्यां चोच्चार्य –

"प्रकाशार्थं च हस्ताभ्यामचलं व्योन्मनीस्रुचा।
धर्माऽधर्मकलास्नेहं पूर्णवह्नौ जुहोम्यहम्"॥

इत्युच्चार्य, तज्जलं प्राश्नीयात्। ततः कराभ्यां मूर्द्धादिपादान्तं पूर्वोक्तषट्-त्रिंशत्तत्त्वात्मकतां भावयन् स्वदेहं स्पृशेत्।

अथ एतावत्कर्तुमशक्तौ सन्ध्याप्रकरणोक्ताचमनविधिना तत्त्वचतुष्टयं शोधयेत्। ततः स्वसामयिकान् यथाशास्त्रं यथागुरुपदेशं सम्भाव्य, तेषु परितुष्टेषु बलिविसर्जनं कुर्यात्।

तत्र पूर्वस्थापितबलिपात्रस्थमन्नादिकमेकस्मिन् पात्रे कृत्वा, तद् गृहीत्वा, सोदकपात्रहस्ताः पूजागृहाद्बहिः गत्वा, जलेन शुचौ देशे चतुरस्र-वृत्तित्रिकोणात्मकं मण्डलं कृत्वा, तत्र,

"गदा-त्रिशूल-डमरु-पात्रहस्तं त्रिलोचनम्।
कृष्णाऽऽभं भैरवं देवं सर्वविघ्नविनाशनम्"॥

वामाऽधः करमारभ्य वामोर्ध्वकरपर्यन्तमायुधध्यानमिति, उच्छिष्टभैरवं ध्यात्वा, गन्धादिभिः सम्पूज्य, ४ ऐं ह्रीं श्रीं उच्छिष्टभैरव एहि एहि, बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा इति मन्त्रेण तस्मिन् मण्डले पात्रस्थं बलिद्रव्यं विसृज्य, तत्पात्रं हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्यं, आचम्य, तत्पात्रं जलेनापूर्य, पूजा-गृहद्वारं गत्वा, "उदयोऽस्तु" इति ब्रुवन्, अन्तःप्रविश्व, स्वासने समुपविश्व, तत्पात्रजले विशेषार्घजलबिन्दुं दत्वा, तेन जलेन सामयिकान् अभिषिञ्चयन्, शान्तिस्तोत्रं पठेत् ।

॥ अथ शान्तिस्तोत्रम् ॥

तत्र, श्री वामकेश्वरतन्त्रे –

ॐ "नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा नश्यन्तु दूषकाः नराः ।
साधकानां शिवाः सन्तु आम्नायपरिपालिनाम् ॥
जयन्तु मातरः सर्वाः जयन्तु योगिनी गणाः ।
जयन्तु सिद्धडाकिन्यो जयन्तु गुरुपङ्क्तयः ॥
नदन्तु अणिमासिद्ध्यो नन्दन्तु भैरवाऽऽदयः ।
नन्दन्तु देवताः सर्वाः सिद्धविद्याधरादयः ॥
ये आम्नायविशुद्धाश्च मन्त्रिणः शुद्धबुद्धयः ।
सर्वादाऽऽनन्दहृदयाः नन्दन्तु कुलपालकाः ॥
इन्द्राद्यास्तर्पिताः सन्तु तृप्यन्तु वाऽस्तु देवताः ।
चन्द्रसूर्यादयो देवाः तृप्यन्तु मम भक्तितः ॥
नक्षत्राणि ग्रहाः योगाः करणाद्यास्तथाऽपरे ।
सर्वे ते सुखिनो यान्तु मासाश्च तिथयस्तथा ॥
तृप्यन्तु पितरः सर्वे ऋतवो वत्सरादयः ।
खेचरा भूचराश्चैव तृप्यन्तु मम भक्तितः ॥

अन्तरिक्षचरा ये च ये चाऽन्ये देवयोनयः।
ते सर्वे सुखिनो यान्तु सर्वा नद्यश्च पक्षिणः॥
पशवस्तरवश्चैव पर्वताः कन्दरा गुहाः।
ऋषयो ब्राह्मणाः सर्वे शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा॥
तीर्थानि पशवो गावो ये चाऽन्ये पुण्यभूमयः।
वृद्धाः पतिव्रता नार्यः शिवं कुर्वन्तु मे सदा॥
शिवं सर्वत्र मे चाऽस्तु पुत्रदारधनादिषु।
राजानः सुखिनः सन्तु क्षेमं मार्गन्तु मे सदा॥
शुभा मे दिवसा यान्तु सुहृदः सन्तु मे शिवाः।
साधकाः जयिनः सन्तु शिवं तिष्ठन्तु पूजकाः॥
ये ये चापधियः स्वभूषणरताः मन्निन्दकाः पूजने
देवाऽचारविशुद्धनष्टहृदया दुष्टाश्च ये बाधकाः।
दृष्ट्वा चक्रमपूर्वमन्धहृदया ये कौलिकद्वेषकाः
ते ते यान्तु विनाशमत्र समये श्रीभैरवस्याऽऽज्ञया॥
''ये निन्दकास्ते विलयं प्रयान्तु
ये साधकास्ते प्रभवन्तु सिद्धाः।
सर्वत्र देवी करुणाऽवलोका
पुरः पुरेशी मम सन्निधत्ताम्''॥

इति पठित्वा, सर्वान् सामयिकान् अभिषिञ्च्य, विशेषार्घपात्रमुद्धृत्य, प्राग्वत् शिरसि स्थिताय गुरवे समर्प्य, तथैव तत्पादुकां त्रिः सन्तर्प्य, मूलविद्यागुरुपादुकाविद्यान्ते च स्वाहेति स्वमूलाधारस्थकुण्डलिन्यात्मकपरदेवतामुखे हवनबुद्ध्या तज्जलं पात्राऽन्तरे कृत्वा, प्राश्नीयात्। शेषं प्रियशिष्याय

प्रसादबुद्ध्या किञ्चिद् दद्यात्। सोऽपि स्वपात्रे कृत्वा, तज्जलं प्राश्नीयात्। इति अर्घप्रतिपत्तिः।

ततः स्वगुरूपदिष्टविधिना शेषकृत्यं निर्वर्त्य, समापयेत्। ततः ताम्रादिपात्रे गन्धपुष्पाऽक्षतान्वितजलमापूर्य –

ॐ"नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे।

नमः सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने"॥

ह्रां ह्रीं सः श्रीसूर्य एष तेऽर्घः स्वाहा इति सूर्याय अर्घं दत्वा, कृताञ्जलिः,

"यज्ञछिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम।

तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु भास्करस्य प्रसादतः॥

इति अच्छिद्रमवधारयेत्। ततो मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय, षडासनवाग्देवताष्टकन्यासान् विधाय, प्रागुक्तगुरुस्तोत्रं पठित्वा, श्रीगुरुं प्रणम्य, मूलविद्या द्वितीयकूटेन निर्माल्यं शिरसि धृत्वा, मूलेनैव चरणोदकं स्वीकृत्य, श्रीपरदेवताभक्तेभ्यो नैवेद्यादिकं विभज्य, दत्वा, स्वयमपि सुहृद्बान्धवजनैः सार्धं युक्त्वा, स्वात्मानं कामकलारूपं भावयन् सुखं विहरेदिति श्रीपरदेवताया नित्यपूजाविधिः।

एवं बिन्दुचक्रमारभ्य, चतुरस्रान्तं वा पूजयेत्। शक्तौ तु चतुरस्राद् बिन्दुचक्रान्तं पूजयित्वा, पुनः बिन्दुचक्रात् चतुरस्रान्तं पूजयेत्। इति विस्ताराऽतिविस्तराभ्यां पक्षत्रयम्।

एवं नित्यं क्रमेण पूजयितुः सर्वसिद्धिर्भवेत्। अमङ्गलमपि मङ्गलं स्यात्। विस्ताराशक्तौ सङ्क्षेपतः नित्यपूजां कुर्यात्। तत्र, शुचिः भूत्वा, शुद्धासने उपविश्य, गुर्वादिवन्दनपूर्वकं भूतशुद्धिं शुद्धमातृकान्यासं च कृत्वा, योगपीठन्यासपूर्वकं प्राणायामत्रयं कृत्वा, मूलविद्याया ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय, करशुद्धिषडासनषडङ्गयुवतीर्वा देवताऽष्टकचतुःपीठचतुष्टत्त्वात्मकं न्यासपञ्चकं कृत्वा;

अत्राऽप्यशक्तौ, प्राणायामत्रयऋष्यादिकरषडङ्गचतुरासनाष्टवाग्देवतात्मकं न्यासत्रयं वा कृत्वा, मुद्रादर्शनान्ते यथाशक्ति मानसपूजां विधाय, सङ्क्षेपतः सामान्यार्घं श्रीपात्रं च स्थापयित्वा, आत्मपूजां विधाय, पीठपूजां कृत्वा, पञ्चायतनी चेत्–पञ्चोपचारैः पञ्चायतनदेवताः सम्पूज्य, श्रीचक्रे, पूर्ववत् मूलदेवीमावाह्य षोडशभिर्वा उपचारैः यथाशक्ति सम्पूज्य, प्राग्वत् तिथिनित्यान्नित्यामण्डलादिषडङ्गयुवत्यन्तं पूजयित्वा, नवावरणदेवताः पूजयेत् ।

अशक्तौ चतुर्दशारमारभ्य बिन्दुचक्रान्तमावरणषट्कं पूजयेत् । ततो यथाविधि पूजाशेषं समापयेदित्यनुकल्पः । आत्राऽप्यशक्तौ, अष्टारमारभ्य बिन्दुचक्रान्तमावरणत्रयं पूजयित्वा, शेषं समापयेत्, इत्यापत्कल्पः । तत्रऽप्यशक्तौ षडङ्गयुवतीपूजान्ते सायुधं त्रिकोणं बिन्दुचक्रं च यथाविधि पूजयेदिति परमापत्कल्पः। प्रवासे पथि दुर्गमस्थाने परचक्राद्यागमे सिंहव्याघ्रचोराद्युपद्रवभये कारागृहप्रायोपवेशनादिसम्भवे मनोजाते स्थानेपूजासाधनाद्यलाभे स्नानसन्ध्यादिकं यथाशक्ति निर्वर्त्य, न्यासादिकमपि यथाशक्ति विधाय, यथाविधि ध्यात्वा, बाह्यपूजाविधिनैवार्घसाधनपीठपूजापञ्चायतनपूजा पुरस्सरं मानसीमेव श्रीचक्रपूजां यथाविधि विधाय, होमजपादिकमपि यथाविधि यथाशक्ति कृत्वा समापयेदिति मानसपूजासमयश्च विधिश्चेति सङ्क्षेपपूजाविधिः ।

एवमपि यो न करोति सोऽधो यातीति शिवशासनम् । इयं सङ्क्षेपपूजा विस्तारतः कर्तुं सामर्थ्यं देशकालादिकं च लब्ध्वाऽपि आलस्यादिना चेत् क्रियते तदेयमनर्थकारिणी भवति । तस्मादापत्समये एवेयं पूजा इति सङ्क्षेपः ।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनना ।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ तरङ्गो ह्येकविंशकः ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे एकविंशस्तरङ्गः ॥ २१ ॥

॥श्रीः॥

अथ द्वाविंशस्तरङ्गः

॥अथ नैमित्तिकपूजा॥

तत्र दीक्षितः प्राप्तपूर्णाऽभिषेकः कृतपुरश्चरणः नित्यार्चननिरतो नैमित्तिकार्चनं कुर्यात्। तत्र विशेषदिवसेषु क्रियमाणा महापूजा नैमित्तिकपूजेत्युच्यते। इयं नैमित्तिकपूजा रात्रावेव कार्या।

"नित्याऽर्चनं दिवा कुर्याद् रात्रौ नैमित्तिकार्चनम्।
उभयोरपि काम्यकर्म चेति शास्त्रस्य निर्णयः"॥

इति कुलार्णववचनात्।

विशेषदिवसास्तु – तन्त्रेष्वेव तत्त्वेनोक्तानि दिनानि; तानि तु गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरूणां जन्मवार-तिथि-नक्षत्राणि, स्व-जन्म-तिथिवारनक्षत्राणि, विद्याप्राप्तिदिनं, गुरोः क्षयदिनं, अष्टमी-चतुर्दशीपूर्णिमाऽमावस्यारविसङ्क्रान्ति-युगादि-मन्वादिदिनानि, पुष्यनक्षत्र-रविवासर-पीठोपीठपगमनदेशिकागमन-वीर-महायोगिदर्शन-तीर्थगमन-व्रतदीक्षाद्युत्सवदिनानि विशेक्षेत्रगमन-देवतादर्शन-अक्षरत्रयसम्पातदिनानि चाक्षरत्रयसम्पातदिनमिति एकस्याक्षरस्य दिनाक्षरत्वेन उदयाऽक्षरत्वेन च दर्शनं यस्मिन् दिने तद्दिनं विशेषपर्व। एतेषु दिनेषु नित्यपूजाऽनन्तरं यथाबलं यथाश्रद्धा यथाकालं यथादेशं यथाविभवविस्तरं वित्त-शाठ्यरहितो यथोक्तद्रव्यैः यथागुरूपदेशं शक्तिसामयिकैः विशेषपूजां कृत्वा, यथाशास्त्रं गुरुं सामयिकांश्च परितोषयेत्।

गुरुपर्वसु गुरुपङ्क्तिपूजोक्तमानवौघगुरुसंख्याकान् साधकानूतत्तन्नाम्ना सर्वोपचारैः समभ्यर्च्य, यथाशक्ति दक्षिणादिभिः परितोषयेत्। चैत्रादि फाल्गुनान्तेषु पूर्णापर्वसु विशेषपूजां कुर्यात्।

तत्रादौ, चैत्रे मासि, पूर्णिमायां दमनैः पूजयेत्। तत्र चैत्र-शुक्लत्रयोदश्यां साधकः कृतनित्यकृत्यः साधकैः सार्द्धं दमनसमीपे गत्वा, पूर्वोक्तचतुःकल्पलताविद्याभिः दमनमभिमन्त्र्य,

"ओं शिवप्रसादसम्भूत चात्र सन्निहितो भव।

शिवकार्ये समुच्छिद्य नेतव्योऽसि शिवाऽऽज्ञया"॥

इति दमनमामन्त्र्य, तत्र कामदेवं रतिं च तत्तन्मन्त्रेण वक्ष्यमाणप्रकारेण दमनस्थले ध्यात्वा, पूजागृहमागच्छेत्।

ततः चतुर्दश्यां कृतनित्यकृत्यः साधकः साधकैः सार्द्धं, पुनः, दमनसमीपं गत्वा, मन्त्रेण दमनं समूलमुत्पाट्य शस्त्रेण वा गच्छन् छित्वा, गृहमानीय, अघोरे ऐं ॐ घोरें ह्री घोरतरे श्रीं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ह्रीं श्रीं इति मन्त्रेण दमनमभ्युक्ष्य, पूजास्थाने क्वचित्पात्रे दमनं नवधा विभज्य, मध्ये अष्टसु दिक्षु च संस्थाप्य, हृन्मन्त्रेण चन्दनाऽगुरुकर्पूरकुङ्कुमाऽऽदिपङ्कैः संलिप्य, हं नमः, षं नमः, क्षं नमः, मं नमः, लं नमः, वं नमः, रं नमः, पं नमः, ॐ नमः, इति नवधा विभक्तं दमनं मध्यादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, अस्त्रेण संरक्ष्य, करद्वयेन त्रिशूलमुद्रां बद्ध्वा, कवचमन्त्रेण दमनोपरि भ्रामयेत्।

ततो नूतनवस्त्रेण आच्छाद्य, रहसि दमनं स्थापयेदिति; अधिवासनं चतुर्दश्यां रात्रौ कुर्यात्। ततः पौर्णमास्यां प्रातः स्नात्वा, नित्यपूजां निर्वर्त्य, सामयिकैः सार्द्धं स्वस्तिवाचनपुरःसरं दमनं पूजास्थानमानीय, पूर्वेद्युः अधिवासनाकरणे चतुर्दश्यां सायन्तने प्रोक्तविधिना दमनमामन्त्र्य, पूर्णिमायां दमनमानीय, यद्वा पूर्णिमायामेव दमनमामन्त्र्य, आनीय, उक्तविधिना

सद्योऽधिवासनं वा विधाय, पुरतः सिन्दूरेण चतुरस्रवृत्तद्वयवेष्टितं नवयोनिचक्रं विधाय, तस्य नवसु योनिषु स्वर्णादिरचितान् नवकलशान् यवपुञ्जोपरि दीक्षाप्रकरणे वक्ष्यमाणविधिना मध्ययोनौ एकं वा कुम्भं संस्थाप्य, स्वासनपूजादिपीठपूजान्तं प्राग्वत् विस्तरतः सङ्क्षेपतो वा कृत्वा, पञ्चायतनक्रमी चेत्गेणशादीन्, दमनैः सम्पूज्य, स्वदक्षिणभागे सर्वतोभद्रमण्डलं वक्ष्यमाणं, तदशक्तौ, अष्टदल-कमलं वा सिन्दूरादिना कृत्वा, तन्मध्ये अशोकतरुं पञ्चवर्णरजोभिः विरचय्य, तस्याऽधः त्रिकोणमण्डले कामदेवं तरुणमरुणवर्णं रक्तवस्त्राऽभरणाऽनुलेपनं वामदक्षिणयो रतिप्रीतिभ्यां शोभितं पुष्पबाणइक्षुधनुर्धरं वसन्तसहितं ध्यात्वा, ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कामाय नम इति मन्त्रेण गन्धादिपञ्चोपचारैः कामदेवं सम्पूज्य; तद्वामभागे, रतिं गौरवर्णां सर्वाऽलङ्करभूषितां रक्तवस्त्रपरीधानां पद्मद्वयकरां ध्यात्वा, ४ श्रीं श्रीं श्रीं क्रौं रत्यै नमः इति मन्त्रेण रतिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य; कामस्य दक्षिणभागे, प्रीतिं श्यामवर्णां सर्वाऽऽभरणभूषितां रक्तवस्त्रपरीधानां ताम्बूलकरां ध्यात्वा, ४ श्रीं श्रीं श्रीं क्रों प्रीत्यै नमः, इति प्रीतिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य ततः कामदेवस्याऽग्रे कदम्बवनमध्ये वसन्तं गौरवर्णं, वामहस्तेन सुधाकुम्भं, दक्षिणहस्तेन नाना पुष्पसमुच्चयं दधानं रक्तवस्त्राभरणभूषितं रक्तमाल्याऽनुलेपनं ध्यात्वा, वं वसन्ताय नमः इति मन्त्रेण पञ्चोपचारैः वसन्तं सम्पूज्य; पुनः मध्ये, कामदेवं पुष्पाञ्जलिना सम्पूज्य, अष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्यमध्ये चतुर्दिक्षु च ह्रदयाय नमः क्लीं शिरसे नमः, क्लूं शिखायै नमः, क्लैं कवचाय हुं, क्लौं नेत्राय नमः, क्लः अस्त्राय फट् इति षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टदलेषु देवाऽग्रादिप्रादक्षिण्येन ओं कामाय नमः, भस्मशरीराय नमः, अनङ्गाय नमः, मन्मथाय नमः, वसन्तसखाय नमः, स्मराय नमः, इक्षुधनुर्धराय नमः, पुष्पबाणाय नमः, इत्यष्टौ कामान् सम्पूज्य; बहिश्चतुरस्रे, लोकपालान् तदस्त्राणि च पूजयेत्।

ततः पुनः कामदेवं तन्मन्त्रेण सम्पूज्य, धूपदीपादिकं कृत्वा, प्रणम्य, "कामदेवाय विद्महे; पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्"। इति। कामगायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा, समर्प्य,

"नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदानन्दकारिणे।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय च"॥

इति कामदेवं प्रणम्य, मूलविद्यया ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् कृत्वा, मध्य-कुम्भे प्राग्वद् देवीमावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य, प्राग्वत् तिथिनित्यादि-लोकपालान्तान् उक्तक्रमेण दमनैः सम्पूज्य,

"आवाहिताऽसि देवेशि सद्यः काले मया शिवे।
कर्तव्यं तु यथालाभं पूर्णपर्व त्वदाऽऽज्ञया"॥

इति विज्ञाप्य देवीं गन्धपुष्पादिभिः पुनः सम्पूज्य, प्राग्वत् धूपदीपनैवेद्यानि निवेद्य, नैमित्तिकहोमं नित्यहोमोक्तविधिना संस्कृतेऽग्नौ नित्यहोमद्रव्यैः केवलघृतेन वा नित्यहोमसंख्यात्रिगुणं हुत्वा, प्राग्वद् राजोपचारान् महद् आरार्त्रिकं कुमारीसुवासिनीबटुकादिपूजां च विधाय, सर्वान् भोजनवस्त्राऽ-लङ्करणदक्षिणाताम्बूलादिभिः परितोष्य, स्वगुरुं गोभूहिरण्यवस्त्राऽलङ्करण-पूजाप्रणतिभिः परितोष्य, तदभावे, तत्पुत्रं तज्ज्येष्ठ-कनिष्ठादीन् अन्यं वा महायोगिनं सम्पूज्य, दक्षिणादानादिभिः परितोष्य, मूलविद्यां नित्यजपां त्रिगुणसंख्यं जपित्वा, अङ्गविद्या अपि तथा जपित्वा, देव्यै जपं समर्प्य, स्तुत्वा, पुनः पुनः प्रणम्य,

"षोडशार्णे जगन्मातः वाञ्छितार्थफलप्रदे।
कामं पूरय मे देहि कामं कामेश्वरेश्वरि"॥

इति देवीं प्रार्थ्य, पुनः कामदेवं तन्मन्त्रेण दमनैः सम्पूज्य, रतिप्रीतिवसन्तांश्च दमनैः सम्पूज्य, धूपदीपनैवेद्यताम्बूलानि निवेद्य, प्राग्वत् स्तुत्वा, प्रणम्य, कामदेवं श्वसन्तं विसृज्य, पुष्पाञ्जलिमादाय,

"समस्तचक्रचक्रेशि सर्वविद्याशरीरिणि।
देवमातर्ममैतत्तु भवत्विष्टं त्वदाज्ञया"॥

इति देवीं प्रार्थ्य, पुष्पाञ्जलिं दत्वा, प्राग्वद् देवीं विसृज्य, श्रीपात्रोद्वासनादि प्राग्वद् यथागुरूपदेशं विधाय, शक्तिसामयिकान् परितोष्य, ब्राह्मणान् भूरिदक्षिणाभोजनादिभिः परितोषयेत्। इति दमनपूजाविधिः।

इयं दमनपूजा यदि चैत्रपूर्णिमायां न सम्पद्यते, तदा पक्षद्वयस्याष्टमी-नवमी-चतुर्दश्यऽन्यतमतिथौ कार्या। चैत्रे मासि चेत्, न भवेत्, तदावैशाखे ज्येष्ठे वा मासि प्रोक्ततिथिष्वन्यतमतिथौ वा कुर्यात्।

अथ चैत्रे मासि पूर्णिमायामेव तत्कालसम्भवैः पुष्पैः सचन्दनकर्पूर-कुङ्कुमकह्लारैः वसन्तोत्सवपूजां कुर्यात्। अत्राऽपि नैमित्तिकपूजायां सर्वत्र पूजाद्रव्याणि पूर्वेद्युः निशि, पवित्रे स्थाने, क्वचित्पात्रे निधाय, मूलविद्यया अभ्युक्ष्य, मूलविद्यातद्दिननित्याविद्यया च गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नमस्काराख्यैः पञ्चोपचारैः अभ्यर्च्य, अधिवासनं विधाय, परेद्युः स्व-नित्यक्रमार्चनाऽन्ते तैः सविशेषं पूजनं कृत्वा, स्वगुरुपूजनं च कुर्यादित्यधिवासनंपूजनं च सर्वत्र ज्ञेयम्।

अथ वैशाखे मासि, पूर्णिमायां हिमजलैः कर्पूरकस्तूरीचन्दनेमिश्रैः शीतलोदकैः वा प्राग्वदधिवासनपूर्वकं विशेषपूजां कुर्यात्।

अथ ज्येष्ठे मासि, पूर्णिमायां विशेषपूजां विधाय, कदलीपनसाऽऽम्र-फलैः नैवेद्यैः देवीं परितोष्य, गुर्वादिपूजनं च कुर्यात्।

अथ आषाढे मासि, पूर्णिमायां एलाकङ्कोलजातीफलकुङ्कुमाऽचितैः चन्दनैः पूजयेत्।

अथ श्रावणे मासि, पूर्णिमायां पवित्रारोपणं कुर्यात्। अत्र श्रावणे मासि इति उपलक्षणम्। मिथुनसङ्क्रमणमारभ्य तुला सङ्क्रान्तिपर्यन्तं पवित्रो-त्सवस्य कालः। तिथयस्तु पक्षद्वयेऽपि चतुर्थी-अष्टमी-नवमी-चतुर्दशी-

पूर्णिमा चेति अत्रोत्तरोत्तरं गौणः कालः। पवित्राणि तु सुवर्ण-रूप्य-ताम्र-पट्टसूत्रसरीपद्मसूत्र-दर्भ-मुञ्ज-शणसूत्र-वल्कल-कार्पाससूत्रेष्वन्यतमेन सूत्रेण कुर्यात्।

कार्पाससूत्रं चेत्, सुवासिनीभिः कृतं त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य, नवसूत्रस्य एकसरत्वेन कल्पितैः उक्तसंख्यैः सूत्रैः पवित्राणि कुर्यात्। तत्र षोडशाऽङ्गुलदैर्घ्याणि षोडशसूत्रैः षोडशग्रन्थियुक्तानि नवाऽङ्गुलदैर्घ्याणि-नवसरनवग्रन्थियुक्तानि वा यस्मिन् आवरणे यावत्यः शक्तयः तत्संख्याऽङ्गुलसरग्रन्थियुक्तानि वा पवित्राणि कुर्यात्। तत्र आवरणशक्तिसंख्याङ्गुलादिपक्षे, मूलदेव्याः षोडशाऽङ्गुलायां आदिपञ्चदशनित्यानां पञ्चदशाङ्गुलादिकं वाराही-कुरुकुल्लयोश्च मूलदेव्या इव पवित्राणि कुर्यात्। आयुधानां अष्टाऽङ्गुलदैर्घ्यसरग्रन्थियुक्तानि गुरुपङ्क्तित्रयस्य तत्तद् ओघोक्तगुरुसंख्याङ्गुलादिकं नवाऽङ्गुलादिकं वा पवित्राणि कुर्यात्। इत्थं श्रीचक्रे पूज्यदेवतावृन्दसमसंख्याकानि पवित्राणि उक्तपक्षेषु एकपक्षाऽनुसारीणि कृत्वा, अष्टोत्तरशतसरग्रन्थियुक्तं एकं वितानात् पूजाविष्टर-मान-दैर्घ्यं बृहत्पवित्रं आत्मनः क्रमागमज्ञ-शिष्याणां च स्कन्धादिनाभिपर्यन्तदैर्घ्यं अङ्गकृतपक्षाऽनुसारि सरग्रन्थिकमन्येषां सामान्य योगशक्तीनां एकग्रन्थिनवसरयुक्तानि मण्डपस्य एकसूत्रेण वेष्टनप्रमाणं ग्रन्थिरहितं पवित्रं कुर्यात्। आवरणशक्तिसमसंख्याऽङ्गुल्यादिपक्षे, आत्मन क्रमागमज्ञशिष्याणां च मूलदेवीवत् पवित्रेषु ग्रन्थयो बालामन्त्रेण कवचमन्त्रेण वा कार्या। ग्रन्थिषु सूत्रवेष्टनसंख्या यथेष्टनमेवेति। इत्थं पवित्राणि विधाय, पवित्रारोपणदिनात् पूर्वदिने साधकः कृतनित्यकृत्यो रात्रौ सामयिकैः सार्द्धं पवित्राणि पूजास्थानमानीय, पवित्रे स्थाने सिन्दूरादिना चतुरस्रवृत्तवेष्टितं नवयोनिचक्रं कृत्वा, क्वचित्पात्रे, तस्मिन् मण्डले पवित्राणि गोरोचना-कुङ्कुम-रक्तचन्दन-कस्तूरी-कर्पूरपङ्कैः लिप्तानि लाक्षागैरिकाद्यैः ग्रन्थिस्थानेषु विचित्रितानि संस्थाप्य, कार्पाससूत्ररचितपवित्राणि चेत्तेषां नवसूत्रेषु, ओङ्काराय नमः,

चन्द्रमसे नमः, वह्नये नमः, ब्रह्मणे नमः, नागाय नमः, गुरवे नमः, रवये नमः, सदाशिवाय नमः, नम इति प्रतिसूत्रमेकैकां देवतां सम्पूज्य, शिरोमन्त्रेणाभिमन्त्र्य, हृन्मन्त्रेणाभ्युक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेणावरुध्य, पवित्रेषु मूलविद्यया षडङ्गैश्च सम्पूज्य, षोडशनित्याश्च पूजयित्वा, तेषु सुगन्धकुसुमानि निक्षिप्य, पञ्चरत्नानि सर्वौषधीश्च निक्षिपेत्। पञ्च रत्नानि तु हीरक-मुक्ताफल-नील-पद्मराग-मरकताख्यानि।सर्षप-कुष्ट-हरिद्रा-दारुहरिद्रा-लोध्र-मुस्त-उशीर-प्रियङ्गु-अगुरुजटा-मांसि-उशीराऽऽख्याः सर्वौषधयः।

ततो नववस्त्रयुगेन आच्छादयेद् इत्यधिवासनं विधाय, परेद्युः साधकः कृतनित्यकृत्यः समयिभिः सार्द्धं पूजास्थानं प्रविश्य, पूजामण्डपं वितानादिभिरलङ्कृत्य, पूजाविष्टराद् ऊर्ध्वे, वितानात् पूजाविष्टरपर्यन्तं शक्त्यवताराख्यं महापवित्रं आलम्बयित्वा, आसनपूजादिन्यासजातं विधाय, प्राग्वत् कुम्भस्थापनं कृत्वा, अर्घस्थापनादि आत्मपूजान्ते पीठपूजां विधाय, पञ्चायतन देवताः सम्पूज्य, पवित्रैः सम्भाव्य, तस्मिन् कुम्भे, देवीमावाह्य, सर्वोपचारैरभ्यर्च्य, नित्यपूजा क्रमेणैव रश्मिवृन्दं पवित्रैः सम्भाव्य, तदङ्गहवनं नैमित्तिकवत् कृत्वा, गुरुं सन्तोष्य, तस्मै पवित्रं समर्प्य, पूर्णाऽऽहुतिं कृत्वा, अग्नये पवित्राऽर्पणं विधाय, गुर्वनुज्ञया स्वयमपि पवित्रधारणं कृत्वा, दमनपूजावत् शक्तिसामयिकान् पवित्रदानादिभिः भोजनताम्बूलदक्षिणाभिश्च परितोष्य, जपं नैमित्तिकत्वेन विधाय, तज्जपं देव्यै समर्प्य, देवीं प्राग्वत् स्तुत्वा, प्रणम्य, विसृज्य, ब्राह्मणादीन् भोजनभूरिदक्षिणादिभिश्च तोषयेत्।

एतावत् कर्तुमशक्तश्चेत् – षण्णवत्यङ्गुलायामक्षरग्रन्थियुक्ताऽतिपवित्राणि त्रीणि कृत्वा प्राग्वदधिवासनपूर्वकं कुम्भस्थापनादिपूजापूर्वकं तानि देव्यै समर्प्य, शेषं समापयेत्। इति पवित्राऽऽरोपणविधिः।

अथ भाद्रपदे मासि, पूर्णिमायां केतकपुष्पैः साऽधिवासं विशेषपूजां कुर्यात्।

अथ आश्वयुजे मासि, शुक्लपक्षप्रतिपत्तिथिमारभ्य पूर्णिमापर्यन्तं पञ्चदशसु तिथिषु प्रत्यहं नित्यपूजाऽनन्तरं नैमित्तिकत्वेन चक्रक्रमं सम्पूज्य, प्रतिपत्तिथिमारभ्य एकादिवृद्ध्या प्रतिपदि शतं, द्वितीयायां द्विशतं, तृतीयायां त्रिशतमित्यादि जपहोमौ विधाय, पूर्णिमायां तद्दिन-पञ्चदश-शत-जपाऽनन्तरं शतसंख्यं होमं च कुर्यात्। प्रतिपदादितिथिषु एकादिवृद्ध्या पूर्णायां षोडश-कन्या यथा भवन्ति, तथा कन्यापूजनं च कुर्यात्। तत्र प्रत्यहं, प्रातः, कन्य-कायाः निमन्त्रणं कृत्वा, पूजाजपहोमान्ते, तां सुस्नातां समलङ्कृतां पूजा-स्थाने मृद्वाऽऽसने समुपावेश्य, तस्यां प्रागुक्तविधिना देवीमावाह्य, सम्पूज्य, वस्त्राऽलङ्करण-भोजन-ताम्बूल-दक्षिणा-दानादिभिः परितोष्य, प्रणम्य विसृजेत्। एवं बहुकन्यापूजनेऽपि प्रत्येकं पूजनं कुर्यात्।

अस्मिन्नेव मासि, प्रतिपत्तिथिमारभ्य, नवम्यन्तासु नवरात्रितिथिषु विशेषपूजां कृत्वा, एकादिवृद्ध्या जपादिकं च विधाय, कुमारीपूजनं च एकादिवृद्ध्या कुर्यात्।

तत्र नवरात्रिषु कुमारीपूजने विशेषः—प्रतिपदि एकवर्षा, द्वितीयायां द्विवर्षा, एवं नवम्यां नववर्षा कन्याः पूज्याः। तत्राऽपि तिथिकुमारी पूर्व-दिनपूजिताश्च नवम्यां एकवर्षादिनववर्षाऽन्ताः नवकुमार्यो यथा भवन्ति, तथा पूजयेत्। तासां नामानि तु प्रतिपदि शुद्धा, द्वितीयायां बाला, तृतीयायां ललिता, चतुर्थ्यां मालिनी, पञ्चम्यां वसुन्धरा, षष्ठ्यां सरस्वती, सप्तम्यां रमा, अष्टम्यां गौरी, नवम्यां दुर्गा। मन्त्रास्तु—ऐं ह्रीं शुद्धायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं बालायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं ललितायै नमः, इत्यादि नाम मन्त्रैः पूजयेत्। अत्र

"एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत्।
गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते"॥

"द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षाऽन्तकन्यकाः"। पूजयेत्। अथवा "नवयौवन-सम्पन्नाः यथोक्तलक्षणाः सुवासिनीर्वा" नवरात्रे पूजयेत्। तासां नामानि

तु – हृल्लेखा-गगना-रक्ता-महोच्छुष्मा-करालिका-इच्छा-ज्ञाना-क्रिया-दुर्गा चेति । अत्राऽपि मन्त्राः त्रिताराऽन्ते हृल्लेखायै नम इत्यादयः ।

॥ अथ पूज्यापूज्यकुमारीणां लक्षणानि ॥

तत्र प्रथमं, पूज्यालक्षणानि । तत्र श्रीकुलार्णवे –

"अरोगिणीं सुपुष्टाऽङ्गां सुरूपां व्रणवर्जिताम् ।
एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक् प्रपूजयेत्" ॥

॥ अथ अपूज्यकुमारिकालक्षणानि ॥

तत्रैव –

"हीनाऽधिकाङ्गीं कुष्टीं च विशील-कुलसम्भवाम् ।
ग्रन्थि-स्फुटित-शीर्णाऽङ्गी रक्तपूयव्रणाङ्किताम् ॥
जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुलोमशाम् ।
सन्त्यजेद् रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम्" ॥

॥ अथ पर्वविशेषे पूज्यकुमारीविशेषः ॥

तत्र स्कान्दे –

"ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजाम् ।
लाभार्थे वैश्यवंशोत्थां सुतार्थे शूद्रवंशजाम् ॥
दारुणे चाऽन्त्यजातीनां पूजयेद्विधिना नरः" ।

अत्र नित्यनैमित्तिकपूजाङ्गकुमारीपूजास्वपि उक्तजातिषु पूर्वपूर्वाऽलाभे उत्तरोत्तरा पूज्या इति ।

॥ अथ पूज्यसुवासिनीलक्षणानि ॥

श्रीकुलार्णवे –

"सुरूपा तरुणी शान्ताऽनुकूला मुदिता शुचिः ।
शङ्काहीनां भक्तियुक्ता गूढा शास्त्रोपयोगिनी ॥

अलोलुपा सुशीला च स्मिताऽऽस्या प्रियवादिनी।
गुरुदैवतसद्भक्ता सुचिता कौलिकप्रिया॥
विमत्सरा विशेषज्ञा देवताऽऽराधनोत्सुका।
मन्त्र तन्त्रसमायुक्ता समयाचारपालिका॥
मनोहरा सदाचारा शक्तिरेखा सुलक्षणा''॥

॥अथ अपूज्यसुवासिनीलक्षणानि॥

तत्रैव –

''दुष्टोग्रा कर्कशा स्तब्धा कुत्सिता कुलदूषिका।
दुराऽचारा पराधीना भावहीना दुराऽलसा॥
निद्राऽऽसक्ताऽतिदुर्मेधा हीनाङ्गी व्याधिपीडिता।
दुर्गन्धा दुःखिता मूर्खा वृद्धोन्मत्ता रहस्यभित्॥
कुतर्का कुत्सिताऽऽलापा निर्लज्जा कलहप्रिया।
विरूपोन्मार्गगा क्रुद्धा पङ्ग्वन्धा विकृताऽऽनना॥
ईदृशीं मन्त्रयुक्तां वा शक्तिं यागे विवर्जयेत्''।

इयं नवरात्रपूजा चैत्रादिफाल्गुनाऽन्तेषु द्वादशमासेषु चैत्राऽऽषाढऽऽश्विन-पुष्याख्यमासचतुष्टये चैत्राऽश्विनमासयोर्वा आश्विने वा शुक्लपक्षेषु यथा-विभवविस्तरं कुर्यात्।

तत्रापि नवरात्रकरणाऽशक्तौ तृतीयादि नवम्यन्तं सप्तरात्रं, पञ्चम्यादि पञ्चरात्रं, सप्तम्यादि त्रिरात्रं वा उक्ततिथिकुमारीपूजनादिभिः नवरात्रोत्सवं कुर्यात्।

एवमन्येऽपि नैमित्तिकपूजाविशेषाः बहवः सन्ति ते त्वत्र (ते तु अत्र) ग्रन्थगौरवभयात् न लिखिता। ते तु साधकैः गुरुतः शास्त्रतश्च ज्ञातव्याः।

अथ कार्तिके मासि, पूर्णिमायां कुङ्कुमेन देवीं समभ्यर्च्य, रात्रौ, कुण्डस्थण्डिलादौ अग्निस्थापनं कृत्वा, पिष्टमयैः घृतपूरितैः कर्पूरवर्त्तिदीपितैः प्रदीपैः नित्य होमक्रमेणैव हुत्वा, साङ्गायै सावरणायै दैव्यै दीपदानं च कुर्यात्।

॥ दीपदानविधिः ॥

तत्र सुसमे भूतले सिन्दूरादिना विपुलं श्रीचक्रं विरच्य, तत्र देवीमावाह्य, सम्पूज्य, मध्ये बिन्दुचक्रे, षोडशदीपान् शर्करादुग्धमिश्रयवगोधूमादिपिष्टरचितान् कर्पूरगर्भवर्तिकान् घृतपूरितान् प्रज्वालितान् मूलविद्यया मूलदेव्यग्रे स्थापयित्वा, उत्सृज्य, नित्यादिश्रीचक्रे पूज्यसमस्तदेवताभिः तत्पूजास्थाने तत्तन्मन्त्रेण तत्तदग्रे एकमेकं दीपं स्थापयित्वोत्सजेत्।

एतावत्करणाशक्तौ एकस्मिन् स्वर्णादिभाजने नवयोनिचक्रमष्टदलकमलं वा कुङ्कुमादिना निर्माय, तस्मिन् यथोक्तरूपान् नवदीपान् मध्ये अष्टसु योनिषु दलेषु वा संस्थाप्य, देवीमभ्यर्च्य, उत्सृज्य, समर्पयेत्।

अथ मार्गशीर्षे मासि,पूर्णिमायां कर्पूर-युक्त-नालिकेरजलैः अर्घस्थापनं विधाय, सुगन्धपुष्पादिभिः सम्पूज्य, माषपिष्टनिर्मिताऽपूपैः नैवेद्यं च कुर्यात्।

अथ पुष्ये मासि पूर्णिमायां देवीं सम्पूज्य, शर्करायुक्तं गुडयुक्तं वा गव्यं दुग्धं नैवेद्यं दद्यात्।

अथ माघे मासि, पूर्णिमायां शुक्लैः कृष्णैर्वा तिलैः देवीं साऽऽवरणां सम्पूज्य, शर्करादुग्धाऽपूपादिनैवेद्यं च निवेदयेत्।

अथ फाल्गुने मासि, पूर्णिमायां पङ्कजैः सुवर्णरजतपुष्पैः आम्रपुष्पैः कह्लारैः मधूकपुष्पैश्च देवीं सम्पूजयेत्। इति नैमित्तिकपूजा।

"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते द्वाविंशतिः प्रागात् तरङ्गो रत्नवारिधौ"॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते
सौभाग्यरत्नाकरे द्वाविंशस्तरङ्गः॥२२॥

॥श्रीः॥

अथ त्रयोविंशतिस्तरङ्गः

॥अथ काम्यपूजाविधिः॥

अथ नित्यनैमित्तिकाऽर्चासु निरतानां सिद्धविद्यानां विवेकिनां साधकानां काम्यपूजाविधिः लिख्यते।

तत्र काम्यानि षट् कर्माणि। तानि तु रक्षा-शान्ति-जय-लाभ-निग्रह-निधनाऽऽख्यानि। तत्र रक्षा नाम राज्यादीनां परचक्र-चोर-व्याघ्र-व्यालादि-भयेभ्यः परिपालनम्। रक्षाशब्देन स्तम्भनमप्युच्यते। रक्षायाः राजादीनां क्रोधोद्योगगतिनिरोधरूपत्वात्। शान्तिस्तु जनानां भूत-प्रेत-पिशाच-कृत्याद्युपद्रवनिवृत्तिः। सङ्ग्राम-द्वन्द्वयुद्ध-द्वन्द्ववाद-द्यूतादिषु विजयो जयः। अत्र राजामात्य-धनिकवनितादयः प्रोक्तकर्मकरा भूत्वा स्वाभीष्टान्यपि वस्तूनि वित्त-प्राणैः सह प्रयच्छन्तीति वश्याऽऽकर्षणयोरपि जयाऽन्तर्वर्तित्वं; तयोः सर्वजनचित्तलयरूपत्वात्। वाणिज्य-राज-सेवादिभिरभीष्टवस्तुप्राप्तिर्लाभः। विद्वेषणोच्चाटनव्याधिकरणादयो निग्रहः। निधनं मरणं कर्म। इति षट् कर्माणि।

तत्र साधको रात्रिशेषस्नातः कृतनित्यकृत्यः क्वचित् पीठान्तरे प्रयोग दिवस-वारेश-द्वय-तिथीश-नक्षत्रेश दिननित्या-तिथिनित्या–षट्धातुदेवताः पञ्चाशन्मिथुनदेवताश्च पृथक्-पृथक् पूजयेत्। तत्र वारेशास्तु रविवारस्य सूर्यशिवौ, चन्द्रवारस्य सोमाऽम्बिके, मङ्गलवारस्य भौमकुमारौ, सौम्यवारस्य ब्रह्मबुधौ, गुरुवारस्य बृहस्पतिविष्णू, भृगुवारस्य शुक्ररमेशौ, शनिवारस्य कुबेरसौरीति तत्तद्वारेशौ पृथक् पूजयित्वा, तिथीशपूजनं कुर्यात्। तिथीशा-

स्तु-प्रतिपदि अग्निः, तृतीयायामश्विनौ, चतुर्थ्यां विघ्नराजः, पञ्चम्यां सर्पः, षष्ठ्यां षण्मुखः, सप्तम्यां रविः, अष्टम्यां मातरः,नवम्यां दुर्गा दशम्यां दिशः, एकादश्यां धनदः,द्वादश्यां केशवः, त्रयोदश्यां यमः,चतुर्दश्यां हरः, पञ्चदश्यां चन्द्रः। नक्षत्र देवतास्तु – अश्विन्यामश्विनौ, भरण्यां यमः, कृत्तिकायामग्निः, रोहिण्यां धाता, मृगशिरसि चन्द्रः, आर्द्रायां शिवः, पुनर्वसौ अदितिः, पुष्ये गुरुः, आश्लेषायां सर्पः, मघायां पितरः, पूर्वायां अर्यमा, उत्तरायां भगः, हस्तस्य सूर्यः, चित्रायां त्वष्टा, स्वात्यां मारुतः, विशाखायां इन्द्राऽग्नी, अनुराधायां मित्रः, ज्येष्ठायामिन्द्रः, मूले निर्ऋतिः, पूर्वाऽऽषाढायां तोयं, उत्तराषाढायां विश्वेदेवाः; श्रवणे हरिः, धनिष्ठायां वसवः, शतभिषायां वरुणः, पूर्वभाद्रपदायामजः एकपात्, उत्तरभाद्रपदि अहिर्बुध्न्यः, रेवत्यां पूषा।

॥ अथैतेषां पूजामन्त्रः ॥

प्रणवत्रितार-तद्दिने नित्याविद्या-तत्तन्नामसप्ताक्षरीति मन्त्रेण प्रोक्तवारेशादिसर्वदेवताः पूजयेत्। ततः तद्दिननित्यां तत्तिथिनित्यां धातुदेवता-मिथुनदेवताश्च वक्ष्यमाणविधिना सम्पूज्य, प्रातः पञ्चघटिकात्मके दिनस्य प्रथमभागे वसन्तर्तौ गोमयोपलिप्ते शुभे सुसमे भूतले हरिद्रा-रजसा त्रिशूलाऽष्टकोपेतं विपुलचतुरस्रं भूमिमण्डलम् ॐ ऐं ह्रीं श्रीं उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल लघुभूपुराय नम इति भूमिमण्डलं पूजयित्वा, पुनः प्रोक्तमन्त्रमुच्चार्य, इलाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि इति भू-पुराधिदेवतां मण्डलमध्ये भूमिं च पीतपुष्पाऽक्षतादिभिः सम्पूज्य, तन्मध्ये, स्वासनमास्तीर्य, प्रागुक्तविधिना सम्पूज्य, उपविश्य, स्वपुरतः गोरोचनादिपीतद्रव्येण श्री चक्रमुद्धृत्य, तत्र ''समस्त प्रकटेत्यादि समष्टियोगिनीविद्यया पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, ततः करशुद्ध्यादिन्यासजातं प्राग्वद् विधाय, ध्यानादियोगपीठार्चनाऽन्ते चतुरायतनदेवताः सम्पूज्य, ॐ अद्येत्यादि तिथ्युल्लेखनान्ते, अमुकस्य रक्षार्थं श्रीपरदेवतायाः साङ्गावरणपूजामहं करिष्य इति सङ्कल्पं विधाय, नित्य-

पूजोक्तविधिना तत्र श्रीचक्रे देवीमावाह्य, सर्वोपचारैराऽऽराध्य, तथैव क्रमाऽर्चनं विधाय, विशेषनैवेद्यमहदाऽऽरार्त्तिक्यादिभिः समस्तराजोपचारैः देवीं परितोष्य, जपादिपूजाशेषं प्राग्वत्समापयेत् ।

एवं शान्तिकर्मणि दिनस्य द्वितीयखण्डे ग्रीष्मर्तौ कर्पूररजसा शालि-तण्डुलचूर्णैर्वा विपुलं अर्धचन्द्राऽऽकारं जलमण्डलं शृङ्गद्वये पद्मलाञ्छितं कृत्वा, प्रणवत्रितारं ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व स अम्बुमण्डलाय नमः इति तन्मण्डलाधिदेवतां मण्डलमध्ये सम्पूज्य, तन्मध्ये प्राग्वत् श्वेतगन्धा-दिभिः श्रीचक्रमुद्धृत्य, देवीमावाह्य, श्वेतचन्दनपुष्पाऽक्षतादिभिः तथैव समर्चयेत् ।

एवं जयाय वश्यादिसिद्धये वा दिनस्य तृतीये खण्डे, वर्षर्त्तौ, सिन्दूर-कुङ्कुमादिना वह्निमण्डलं कोणत्रयेऽपि स्वस्तिकलाञ्छितं कृत्वा, इ ई ए ख छ ठ थ फ र क्ष वह्निमण्डलाय नम इति मण्डलं सम्पूज्य, पुनस्तथै-वोच्चार्य; अग्निशक्तिश्रीपादुकां पूजयामिति रक्तचन्दनपुष्पादिभिः तन्मण्ड-लाऽधिदेवतां सम्पूज्य, तन्मध्ये प्राग्वत् श्रीचक्रमुद्धृत्य, तथैव सम्पूज्य, ततो देवीमावाह्य, सङ्कल्पपूर्वकं रक्तगन्धाद्युपचारैः सचक्रक्रमं सम्पूज्य, प्राग्वत् पूजाशेषं समापयेत् ।

ततः लाभाय दिनस्य चतुर्थे भागे, शरदृतौ, कज्जलैः कोकिला-चूर्णैर्वा एकान्तरितमन्तर्बहिः विरचितबिन्दुषट्कयुक्तवृत्तात्मकं वायुमण्डलं विरज्य, प्रणव त्रिताराऽन्ते अ आ ए क च ट त प ष वायुमण्डलाय नम इति तन्मण्डलं सम्पूज्य, पुनरुच्चार्य, प्राणशक्तिश्रीपादुकां पूजयामीति वायुमण्डलाऽधिदेवतां सम्पूज्य, तन्मध्ये प्राग्वत् श्रीचक्रमुद्धृत्य, प्रोक्त-विधिना देवीमावाह्य, गन्धादिभिः सर्वोपचारैः सम्पूज्य, क्रमार्चनं विधाय, प्राग्वत् पूजाशेषं समापयेत् ।

ततः निग्रहनिधनयोर्दिनस्य पञ्चम-षष्ठभागयोः हेमन्तशिशिराऽऽ-ख्ययोः वृत्ताऽऽकारं व्योममण्डलं प्रोक्त-कृष्णवर्णद्रव्यैः विधाय ओं ऐं ह्रीं

ऌ ॡं अं ङ ञ ण न म स क्षं व्योमममण्डलाय नम इति व्योमममण्डलं कृष्णपुष्पाक्षतैः सम्पूज्य, पुनरुच्चार्य, खशक्तिश्रीपादुकां पूजयामिति व्योमण्डलाऽधिदेवतां सम्पूज्य, तन्मध्ये, श्रीचक्रं कृष्णवर्णैः द्रव्यैः समुद्धृत्य, सङ्कल्पपूर्वकं तत्र देवीमावाह्य, प्राग्वत् कृष्णपुष्पादिभिः सचक्र-क्रममभ्यर्च्य, प्राग्वत् पूजाशेषं समापयेदिति।

एवं "रात्रिं च पञ्च-पञ्चघटिकाभिः षोढा विभज्य, वसन्तादिषड्ऋतु-भूतेषु खण्डेषु प्रोक्तविधिना प्रोक्तषट्कर्मसिद्धये प्रोक्तक्रमेण देवीं पूजयेत्"। इति तन्त्रराजसम्मतम्।

तन्त्रान्तरमते तु – षट्कर्माणि शान्ति-वश्य-स्तम्भन-विद्वेष-उच्चाटन-मरणानि। तत्र शान्तिर्नाम प्राणिनां रोगकृत्या-ग्रहाद्युपद्रवनिवृत्तिः। वश्यं नाम राजामात्यवनितादीनां स्वायत्तीकरणम्। स्तम्भनं तु सर्वेषां प्राणिनां प्रवृत्तिनिरोधः। विद्वेषणं तु स्निग्धयोरन्योन्यं द्वेषजननम्। उच्चाटनं तु द्विषतां देशादिभ्यः प्रवासनम्। मारणं तु शत्रूणां प्राणहरणम्।

अत्र, मारणे कर्मणि, ब्राह्मणधार्मिकजन-धर्मिष्ठ-राजा-स्त्रीजन-व्यति-रिक्तः दुष्टम्लेच्छादयो विषयः। तत्रापि स्वरोषतो लोकाऽनुग्रहाय वा मारणं कर्म कुर्यात्; न तु द्रव्यादिलोभेन।

अथ शान्त्यादि षट्कर्मारम्भकाले पूजनीयतत्कर्माधिदेवता – तत्र शान्तिकर्मणीति पूजयेत्। तस्याः मन्त्रध्यानादिकं नैमित्तिकपूजायां दमनाऽऽरोपणप्रकरणे प्रागेव प्रोक्तम्। तत्र पद्मासनः पद्ममुद्रामुद्रित-करः, रतिं ध्यात्वा, आवाह्य, पद्ममुद्रां प्रदर्श्य, तन्मन्त्रेण षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा तां तथैव ध्यात्वा पूजयेत्।

वश्यकर्मणि, स्वस्तिकासनः, पाशमुद्रामुद्रितकरः पारिजातसरस्वतीं, पञ्चकल्पलतापूजाप्रकरणोक्तरूपां ध्यात्वा, तां तत्रोक्ततन्मन्त्रेण पूजयेत्।

स्तम्भनकर्मणि, विकटासनः, गदामुद्रामुद्रितकरः, रमां प्राक्पञ्चलक्ष्मी-पूजाप्रकरेणोक्तैकाक्षरमन्त्रेण तत्रोक्तरूपां तां ध्यात्वा पूजयेत्।

विद्वेषणे तु कुक्कुटासनस्थः, मुशलमुद्रामुद्रितकरः ज्येष्ठादेवीं, धूमावतीं तत्कल्पोक्तरूपां, ध्यात्वा, तन्मन्त्रेण पूजयेत्। धूमावतीमन्त्रः तत्कल्पश्च अस्मत् शिवार्चनचन्द्रिकायां द्रष्टव्यः।

उच्चाटने वज्रासनस्थो, शनिमुद्रामुद्रितकरो दुर्गां प्राक् श्रीचक्रद्वार–पूजाप्रकरणोक्तरूपां ध्यात्वा, तत्रेक्तमन्त्रेण तां पूजयेत्।

मारणे, भद्रासनस्थः, खड्गमुद्रामुद्रितकरो भद्रकालीं तत्कल्पोक्त-रूपां ध्यात्वा, तन्मन्त्रेण तां पूजयेत्। मन्त्रस्तु "हौं कालि-महाकाली किणिकिणि फट् स्वाहा" इति विशेषः। प्राग्वत् चन्द्रिकायां द्रष्टव्यः।

अत्र शान्तिकर्मणि साधकः श्वेतवसनमाल्यानुलेपनः, ईशानकोणाभि-मुखः, स्वाभिमुखं प्रोक्तरूपं श्रीचक्रमुद्धृत्य प्रोक्तविधिना पूजयेत्।

वश्यकर्मणि उत्तराभिमुखो रक्तवस्त्रादिभूषितः पूजयेत्। स्तम्भने पूर्वाऽभिमुखः पीतवस्त्रादिकः पीतद्रव्यैः पूजयेत्। विद्वेषणे, निर्ऋतिदिङ्मुखो धूम्रवस्त्रादिको धूम्रवर्णद्रव्यैः पूजयेत्। उच्चाटने, वायव्याऽभिमुखः कृष्ण-वस्त्रादिकः कृष्णद्रव्यैः पूजयेत्। मारणेऽपि कृष्णवर्णैरेव, आग्नेयकोणाऽ-भिमुखः पूजयेत्। अत्र कालस्तु-दश-दश-घटिकाभिः अहो-रात्रं षोढा विभज्य, तेषु वसन्तादि षड्ऋतुभूतेसु खण्डेषु, पञ्चमखण्डे हेमान्ताऽऽख्ये शान्तिं कुर्यात्। वसन्ताख्ये प्रथमखण्डे वश्यकर्म कुर्यात्। षष्ठे खण्डे शिशिराख्ये स्तम्भनं कुर्यात्। ग्रीष्माख्ये द्वितीयखण्डे विद्वेषणं कुर्यात्। वर्षाख्ये तृतीयखण्डे उच्चाटनं कुर्यात्। शरदाख्ये चतुर्थे खण्डे मारणं कुर्यात्। इति षट्कर्मसु कालविशेषः।

अत्र मण्डलानि – वारि-वह्नि-धरा – व्योम-वाय्वाख्यानि, शान्तिकादिषु ज्ञेयानि। तानि तु पूर्वोक्तरूपाण्येव। अत्र मारणे वह्निमण्डलमुच्चाटने वायुमण्डलमिति पूर्वतो विशेषः। यस्मिन् कर्मणि यन्मण्डलं तद् भूतोदये तन्मण्डलोद्धारादिकं कार्यम्। तत्परिज्ञानप्रकारस्तु – नासारन्ध्रेण निर्गच्छन्,

वायुर्यदा तिर्यक् चलति तदा वायुभूतोदयकालः। यदा ऊर्ध्वं चलति तदाऽग्नेरुदयः। यदा दण्डलग्नः, तदाऽधरोदयः। यदा तु अधः चलति, तदा जलोदयः। यदा मध्यं गतः, तदा आकाशभूतोदयकाल इति। इत्येतत्सर्वं गुरुमुखात् ज्ञात्वा, कर्म कुर्वीत, तदावश्यं फलसिद्धिर्भवति। इति षट्कर्मपूजाविधिः।

॥अथ चैत्रादिमासेषु पूजाविशेषः॥

तत्र चैत्रे मासि, श्लेष्मान्तकवृक्षेण विपुलं चतुरस्रं पीठं निर्माय, तस्मिन् नित्यपूजाऽन्ते प्रतिदिनं कुङ्कुमादिना श्री चक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीं आवाह्य, त्रिपुरा नाम्नीं तन्मास-सम्भवैः पुष्पैः सम्पूज्य, जपहोमादिकं विधाय, विद्याविदे ब्राह्मणाय यथाशक्ति व्रीहिदानं विधाय, यथाशक्ति दक्षिणां दत्वा प्रणम्य देवीं स्तुतिप्रदक्षिणनमस्कारैः परितोष्य, प्रणम्य विसृजेत्। अत्र पूजायां त्रिपुरारूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपादुकायै आसनं कल्पयामि नम इत्यादि प्रयोगवाक्यं कार्यम्। अग्रे त्रिपुरेश्यादावपि एवं प्रयोगवाक्यमूहनीयम्।

एवं वैशाखे मासि, करञ्जपीठे प्राग्वत् श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र त्रिपुरेशीनाम्ना देवीमावाह्य, तत्कालसम्भवैः पुष्पैः प्रतिदिनं सम्पूज्य, जपहोमादिकं विधाय, विद्याविदे माषदानं यथाशक्ति दक्षिणां च दत्वा, प्रणम्य देवीं च प्राग्वद् विसृजेत्।

एवं ज्येष्ठे मासि, विभीतिकपीठे प्राग्वद् श्रीचक्रमुद्धृत्य तत्र देवीमावाह्य, त्रिपुरसुन्दरीति नाम्ना तत्कालसम्भवैः पुष्पैः सम्पूज्य, प्राग्वद् यवदानं विधाय शेषं समापयेत्।

आषाढे मासि, निम्बपीठे श्री चक्रमुद्धृत्य तत्र देवीमावाह्य, त्रिपुरवासिनी नाम्ना सर्वोपचारैः सम्पूज्य, मधुदानं विधाय, प्राग्वत् शेषं समापयेत्।

श्रावणे मासि, अश्वत्थपीठे श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य, त्रिपुराश्रीरिति नाम्ना सर्वोपचारैः, सम्पूज्य, मधुदानं विधाय, प्राग्वत् शेषं समापयेत् ।

श्रावणे मासि, अश्वत्थपीठे श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य, त्रिपुराश्रीरिति नाम्ना सर्वोपचारैः, सम्पूज्य, प्राग्वत् घृतदानं विधाय, शेषं समापयेत् ।

भाद्रपदे मासि, कदम्बपीठे श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य, त्रिपुरमालिनी नाम्ना सर्वोपचारैः सम्पूज्य, दुग्धदानं विधाय, शेषं समापयेत् ।

आश्विने मासि, बिल्व-वृक्षपीठे श्री चक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य, त्रिपुरासिद्धेति नाम्ना सर्वोपचारैः सम्पूज्य, दधिदानं विधाय शेषं समापयेत् ।

कार्तिके मासि, वटवृक्षपीठे, श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य, त्रिपुराम्बिका नाम्ना सर्वोपचारैः समभ्यर्च्य, वस्त्रदानं विधाय शेषं समापयेत् ।

मार्गशीर्षे मासि, सहकारपीठे श्री चक्रमुद्धृत्य, देवीमावाह्य, त्रिपुरसुन्दरी नाम्ना सर्वोपचारैः आराध्य, हेमदानं विधाय, शेषं समापयेत् ।

पुष्ये मासि कर्पूरेण पीठं निष्पाद्य, तत्र श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य ललितेति नाम्ना सर्वोपचारैः समभ्यर्च्य, रत्नदानं विधाय, प्राग्वत् शेषं समापयेत् ।

माघे मासि रक्तचन्दनपीठे श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य, कामदेति नाम्ना सर्वोपचारैः समभ्यर्च्य तिलदानं विधाय, प्राग्वत् शेषं समापयेत् ।

फाल्गुने मासि, चन्दनपीठे श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य, कामेश्वरीति नाम्ना सर्वोपचारैः समभ्यर्च्य, मुद्गदानं कृत्वा, प्राग्वत् शेषं समापयेत् ।

एवं वत्सरमात्रं अविच्छिन्नं पूजयन् आयुः कीर्तिं श्रियं भूमिं विजयं बलाऽऽरोग्यादि यद् यदभीष्टं, तत्सर्वं प्राप्नुयात्। आज्ञासिद्धिं च लभेत्।

अथ चैत्रादिषु द्वादशमासेषु, प्रतिमासं रविवारेषु नित्यपूजाऽन्ते रक्तकमलैः प्रति रविवासरं पूजयेत्। सोमवासरेषु कुमुदकुसुमैः पूजयेत्। भौमवासरेषु रक्तोत्पलैः पूजयेत्। बुधवासरेषु नन्द्यावर्तैः; गुरुवारेषु कह्लारैः भृगुवारेषु श्लेतकमलैः; शनिवारेषु नीलोत्पलैः पूजयेत्।

अत्र रविवारादिषु नैवेद्यविशेषः। तत्र रविवारेषु पायसम्, सोमवारेषु दुग्धम्, भौमवारेषु कदलीफलम्, बुधवारेषु नवनीतम्। गुरुवारेषु पिण्ड-शर्करा, शुक्रवारेषु सिताऽभिधा शर्करा, शनिवारेषु घृतमिति। एवं वत्सरमात्रमविच्छिन्नं कुर्वन्, ग्रहपीडादि नानादुरितानि विनिर्जित्य, नाना-विधानि सुखानि प्राप्नुयात्।

॥ अथ सिद्धिविशेषे काम्यपूजाविशेषः॥

तत्र अप्सरोमेलनार्थं पर्वताग्रे, रात्रौ पलाशपुष्पैः सिद्धद्रव्यैश्च श्रीचक्रे सपरिवारां देवीं पूजयेत्। एवं सप्तरात्रे कृते अप्सरोभिर्मेलनं भवेत्।

अथ महारण्ये, वटमूले, पर्वतकन्दरे वा कदम्बजातिपुष्पाभ्यां सिद्ध-द्रव्यैश्च श्रीचक्रे सपरिवारां देवीं मासमात्रं पूजयितुः षट्त्रिंशद् यक्षिण्यः प्रत्यक्षाः भूत्वा वाञ्छितमखिलं प्रयच्छन्ति।

समुद्रतीरे, केतकीकुसुमैः सिद्धद्रव्यैश्च श्रीचक्रे सपरिवारां देवीं मास-मात्रं, रात्रौ पूजयितुः चतुःषष्टिभेदाः चेटकाः प्रत्यक्षाः भूत्वा, माल्यभूषणा-दिनानावस्तूनि, अभीष्टां वनितां, अन्यानि नानाविधानि वस्तूनि साधक-वाञ्छितानि प्रयच्छन्ति। युद्धे च महदद्भुतां मायां कुर्वतः शत्रूणां कदनं च कुर्वन्ति।

स्वनक्षत्रवृक्षेण पीठं कृत्वा, तत्र श्रीचक्रमुद्धृत्य, श्मशानदेशे मास-मात्रं, रात्रौ शाल्मलिपुष्पैः सिद्धद्रव्यैश्च निर्भयस्य देवीं पूजयितुः पिशाचाः

प्रत्यक्षाः भूत्वा, तस्याज्ञया पाषाणपातादिनानाविधप्रहारैरस्य शत्रून् संहरन्ति। नक्षत्रवृक्षास्तु –

"कारस्करश्चामलंकोदुम्बरो जम्बुकस्तथा।
खदिरः कृष्णवर्णश्च पिप्पलो नागरोहिणौ॥
पलाशः प्लक्षकाऽम्बष्टौ बिल्वाऽर्जुनविकङ्कताः।
बकुलः सरलः सर्जो बिञ्जुलः पनसस्तथा॥
अर्कः शमी कदम्बश्च चूतो निम्बस्तथैव च।
मधूकश्चेति सम्प्रोक्ता वृक्षाः भानां क्रमादमी"॥

इति तन्त्रराजोक्ताः।

निर्जनेऽरण्ये मासमात्रं श्रीचक्रे देवीं सपरिवारां मालतीजातिपुन्नागकेतकीपुष्पैः मधुभिश्च सिद्धद्रव्यैश्च सम्पूज्य, वेतालसिद्धिं प्राप्नुयात्। तामाऽऽरुह्य यथेष्टं लोकत्रयेऽपि निर्भयश्चरेत्।

श्मशाने चण्डिकायतने निर्जने विपिने वा कृष्णवस्त्रादिभूषितः कज्जलादिकृष्णद्रवेण श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य, कृष्णवर्णामिति क्रुद्धां ध्यायन् स्वयमपि अतिक्रुद्धाऽऽशयो अर्द्धरात्रे कृष्णपुष्पाक्षतैः सिद्धद्रव्यैश्च मासमात्रं सम्पूज्य, अन्तिमदिनेऽर्द्धरात्रे साध्यनक्षत्रयोनिं छित्वा, देव्यै बलिं निवेद्य, तद्भाललोचनात् निसृताभ्यः अतिभीषणाभ्यः कृत्याभ्यः स्वशत्रून् निवेदयेत्। तांस्तान् संहृत्य, साधकेन प्रार्थिताः पुनः एत्य, देव्याः ललाटनेत्रे तिरोहिताः भवन्ति। साध्यनक्षत्रयोनयस्तु – अश्विन्याः अश्वः, भरण्याः गजः, कृत्तिकायाः अजः, रोहिण्याः सर्पः, मृगशिरसः सर्पिणी, आर्द्रायाः श्वा, पुनर्वसो बिडालिका, पुष्यस्य अजा, आश्लेषायाः मार्जारः, मघायाः मूषकः, पूर्वायाः मूषिका, उत्तरायाः वृषः, हस्तस्य महिषी, चित्रायाः व्याघ्रः, स्वात्याः महिषः, विशाखायाः व्याघ्री, अनुराधायाः मृगी, ज्येष्ठायाः, मृगः, मूलस्य शुनी, पूर्वाषाढायाः कपिः, उत्तराऽऽषाढायाः गोषण्डः,

श्रवणस्य वानरी, धनिष्ठाया नारी, शतभिषायाः तुरङ्गी, पूर्वभाद्रपदायाः नरः, उत्तरभाद्रपदायाः गौः, रेवत्याः करेणुरिति।

पुष्पोद्याने निर्जने, रक्तवस्त्र-माल्याऽनुलेप-भूषणभूषितविग्रहः श्रीचक्रे यथोक्तरूपां देवीं ध्यात्वा, कह्लार-चम्पकाशोक–पाटलशतपत्रपुष्पैः सिद्ध-द्रव्यैश्च मासमात्रं पूजयित्वा, मायासिद्धिं प्राप्य, कामरूपो भूत्वा, इन्द्रजालादि-दर्शनेन विश्वचारी, नानाविनोदवान् भवेत्। किंशुकपुष्पैः सिद्धद्रव्यैश्च मास-मात्रं श्रीचक्रे देवीं सम्पूज्य, नानाविधानि भूषणादीनि प्राप्नुयात्। तथैव गजप्राप्त्यै पाटलपुष्पैः मासमात्रं पूजयेत्। तथैव अश्वाप्राप्त्यै रक्तोत्पलैः उष्ट्रप्राप्त्यै मासमात्रं पूजयेत्। गोप्राप्त्यै नन्द्यावर्तैः तथैव मासमात्रं पूजयेत्। तथैव जम्बीरैः महिषीप्राप्त्यै मासमात्रं पूजयेत्। तथैव अजप्राप्त्यै लकुचैः मासमात्रं पूजयेत्। तथैव निधिप्राप्त्यै दाडिमैः मासमात्रं पूजयेत्। गान-सिद्ध्यै तथैव मधूकपुष्पैः मासमात्रं पूजयेत्। स्त्रीप्राप्त्यै वकुलपुष्पैः मास-मात्रं पूजयेत्। स्यन्दनाऽऽन्दोलिकादिवाहनप्राप्त्यै मासमात्रं केतकैः पूजयेत्। नानासुगन्धपुष्पैः सौभाग्यसिद्धये मासमात्रं श्रीचक्रे देवीं सपरिवारां पूजयेत्। अत्र मासमात्रं इत्युपलक्षणम्। मासद्वयं मासत्रयं वा यावत् फलाऽऽवाप्तिर्वा पूजयेदिति।

क्रमुकोद्याने क्रमुपुष्पैः सिद्धद्रव्यैश्च दिवानिशं देवीं पूजयन्, स्त्रीजनेषु साक्षात् मन्मथो भवेत्। सिद्धद्रव्याणि गुरुमुखाद् अवगन्तव्यानि।

पूर्णसुकुमारिकायां देवीमावाह्य, समर्चनात् परेरिताः कृत्याः, मन्त्राश्च प्रेरकानेव परावृत्त्य ग्रसन्ति; पूजकं बाधितुं न शक्नुवन्ति। सुगन्धकुसुमैः श्रीचक्रे देवीं सङ्कल्पपूर्वकं सम्पूज्य, महापातकैर्मुक्तो भवति। तथा शमीपत्रैः पूर्वाऽङ्कुरैः अश्वत्थपल्लवैः अर्कपुष्पैर्वा देवीं सपरिवारां श्रीचक्रे सम्पूज्य, सप्तजन्मार्जितैः पापैः मुक्तो भवति। पीतवर्णस्थले पीतवितानादिशोभि प्राङ्मुखः पीतद्रव्यैश्चक्रराजमुद्धृत्य, तत्र देवीमावाह्य पीतद्रव्यैः सर्वोपचारैः सम्पूज्य, वाञ्छितमखिलं स्तम्भयेत्। उत्तराशामुखः सिन्दूरादिरक्तद्रव्यैः

चक्रराजं समुद्धृत्य, रक्तपुष्पाद्यलङ्कृतः तस्मिन् रक्तोपचारैः देवीं सम्पूज्य, सर्वलोकवशं नयेत्। पश्चिमाऽभिमुखः, चन्दनेन चक्रराजमुद्धृत्य, तत्र विधिवद् देव्यर्चनात् सर्वयोषिद्वल्लभो भवति। ताः तस्य दासीवद् वशगाः भवन्ति। दक्षिणाऽभिमुखः कृष्णद्रव्यैः चक्रराजमुद्धृत्य, तन्मध्ये "अमुकस्य, मन्त्रहानिं कुरु-कुरु" इति साध्य-नाम समालिख्य, तत्र देवीमावाह्य, कृष्ण-वस्त्राद्यलङ्कृतः कृष्णद्रव्यैः समभ्यर्च्य, द्विषतां मानहानिं कुर्यात्। एव-माऽऽग्नेयाऽभिमुखः चक्रं सम्पूज्य, समस्तं स्तम्भयेत्। विद्वेषणाय निर्ऋति-कोणाऽभिमुखः चक्रराजं पूजयेत्। शत्रूणां व्याधिकरणाय वायव्यकोणाऽ-भिमुखः चक्रराजं पूजयेत्। शत्रूच्चाटनाय शम्भुकोणाऽभिमुखः पूजयेत्। महाभूतचतुर्दश्यां, रात्रौ सिद्धद्रव्यैः श्मशाने देवीं सचक्रक्रमां स्थिरचित्तः समभ्यर्च्य, खड्गसिद्धिं बेतालसिद्धिं गुटिकासिद्धिं पादुकासिद्धिमज्जन-सिद्धिं मनःसिद्धिं धातुसिद्धिं महाबलिसिद्धिं यक्षिणीसिद्धिं वा यथोद्दिष्टां लभेत्। महाभूतचतुर्दशी तु दीपमाल्याश्चतुर्दशी।

रक्तपद्मैः कर्पूरक्षोदसिक्तैः मासमात्रं श्रीचक्रे सिद्धद्रव्यैश्च देवीं सम्पूज्य, जन्मान्तरकृतैः ब्रह्महत्यादिमहापातकसमूहैः मुक्तो भवति। महतीं सुस्थिरां श्रियं च प्राप्नोति। जपापुष्पैर्मासमात्रं तथैव सम्पूज्य, जन्मान्तराऽ-र्जितैर्महापातकैश्च मुक्तो धनवान् भवेत्। केतकीपुष्पैर्मासमात्रं प्राग्वत्सम्पूज्य, उपपातकान्मुक्तो भवति; महासौभाग्यं प्राप्नुयात्। शतपुष्पैर्मासमात्रं पूजनात् सर्वपापक्षयो भवति। तथैव चम्पकपुष्पैः सम्पूज्य, शतजन्माऽर्जितपापसमूहा-न्मुक्तो भवति, महासौभाग्यवांश्च भवेत्। तथा श्वेतपद्मैः मासमात्रं देवीं सम्पूज्य, त्रिशतजन्मकृतैः पापैर्विमुक्तो मोक्षभाग् भवेत्। बन्धूककुसुमैः देवीं मासमात्रं तथैव सम्पूज्य, समस्तपापक्षयतः त्रैलोक्यं वशमानयेत्।

बिल्वपत्रयुक्तैः पद्मैः मासमात्रं सम्पूज्य, सर्वपापविमुक्तः सर्व-समृद्धिमान् भवेत्। मल्लिका-जाती-मालती-कुन्द-श्वेत-पत्र-श्वेतोत्पलैर्मिलितैः

सिद्धद्रव्यैश्च मासमात्रं सम्पूज्य, शतजन्माऽर्जितब्रह्महत्यादिमहापातकसमूहात् मुक्तो भवति । वाचा बृहस्पतिसमो भूत्वा, मुक्तिभाग्भवेत् ।

अगस्त्यबन्धूक-जपा-रक्तोत्पलैः पूर्ववत् मासमात्रं सम्पूज्य, महापातकसमूहं नाशयित्वा, कन्दर्पसमो भवेत् । चम्पक-पाटल-बिल्वदल-नागकेसर-कह्लार-सिन्दुवार-पुष्पैर्मासमात्रं प्राग्वत् सम्पूज्य, सहस्रजन्मार्जितानि महापातकानि नाशयित्वा, महासौभाग्यं च प्राप्नुयात् ।

''श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ त्रयोविंशस्तरङ्गकः ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते
सौभाग्यरत्नाकरे त्रयोविंशस्तरङ्गः ॥ २३ ॥

॥श्रीः॥

अथ चतुर्विंशस्तरङ्गः

॥ मण्डपरचनाविधिः ॥

तत्रादौ तदङ्गभूतमण्डपादिरचनार्थं प्राच्यादिदिक्परिज्ञानस्यावश्यकत्वात् तत्परिज्ञानप्रकारः प्रदर्श्यते। तत्र मेघाद्यनावृतसूर्ये निर्मलनभोमण्डले दिवसे वृक्षप्रासादाद्यनावृते भूप्रदेशे जलयन्त्रादिदर्पणोदरवत् सुसमीकृते क्वचित् बिन्दुं कृत्वा, तदवष्टम्भतः प्रतिदिशं द्वादशाऽङ्गुलमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तत्र षडङ्गुलमानपरिणाहमूलं उत्तरोत्तरपरिणाहाऽपचयेन सूचीमात्रीकृताऽग्रपरिणाहं ऋज्वाऽऽकृतीं शङ्कुं द्वादशाऽङ्गुलोच्छ्रायसहितं वृत्ताऽऽकारं शिल्पिवरेण निर्मितं वृत्तमध्यस्थबिन्दुमध्ये यथाशङ्कुमूलपरिणाहमध्यं भवति, तथा संस्थाप्य, तच्छङ्कुच्छायाऽग्रस्य पूर्वाह्णे तद्वृत्तरेखापश्चिमभागे यत्र सम्पातः तत्र ततो पराह्णे शङ्कुछायाऽग्रस्य तद्वृत्तरेखापूर्वभागे यत्र सम्पातः तत्र च चिह्नं विधाय, तच्चिह्नद्वयप्रापि यत्सूत्रं तत्पूर्वापरं परिकल्प्य तच्चिह्नद्वयाऽवष्टम्भेन तच्चिह्नान्तरालमानसा चेष्टाधिकेनाऽर्द्धमानेनान्योन्यसमेन किञ्चिदन्योन्यसंश्लिष्टं पूर्वापरं वृत्तद्वयं विधाय तद्वृत्तरेखादक्षिणोत्तरसूत्रद्वयसम्पाताद् वक्ष्यमाणाद् वक्ष्यमाणमानेन तुल्यरूपपरिकल्पितसूत्राग्रैः तेषां मण्डपकुण्डादीनां प्राक् प्रत्यक् दक्षिणोत्तरात्मकं दिक् चतुष्टयं कल्पयेदिति। इत्थं प्राचीसाधनं विधाय बाहुमात्रां उद्दिष्टमानाऽभ्यधिकां भुवं खनित्वा, तुषाऽङ्गाराऽस्थि-लोष्टादिकं निरस्य, तत्स्थानं शुद्धमृद्भिरापूर्य, समीकृत्य, दृढ़ीकृते, तत्र विंशतिहस्तैरष्टादशहस्तै षोडशहस्तैर्वा उत्तमम्; चतुर्दशहस्तैः द्वादशहस्तैर्वा मध्यम; दशहस्तैः नवहस्तैर्वा समायामविस्तारैः कनिष्ठमण्डपं कुर्यात्।

हस्तलक्षणं तु महाकपिलपाञ्चरात्रे –

"वातायनपथं प्राप्य, ये भान्ति रविरश्मयः।
तेषु सूक्ष्माः विसर्पन्तो रेणवस्त्र्यसरेणवः।
परमाणोरष्टगुणस्त्र्यसरेणुरुदाहृतः।
तेऽष्टौ केशाह्वयास्तेऽष्टौ लिक्षा यूकास्तदष्टकम् ॥
तदष्टकं यवस्तेऽष्टावङ्गुलिः समुदाहृता।
सा तूत्तमाङ्गुलिः सप्तयवा सैव तु मध्यमा ॥
षड् यवा साऽधमा प्रोक्ता मानाऽङ्गुलमितीरितम्।
विन्यस्तैस्तिर्यगष्टाभिर्मुष्टिमङ्गुलिभिः कृतम् ॥
चतुर्धा विभजेदेको भागो मुष्ट्यङ्गुलः स्मृतः।
यं कश्चित् पौरुषायामं विभज्य दशधा पुनः॥
एकं द्वादशधा भागं कृत्वा तेष्वेकमङ्गुलम्।
देहलब्धाऽङ्गुलं नाम जानीयात् तस्य तत्पुनः॥
एभिश्चतुर्विंशतिभिर्हस्तः स्यादङ्गुलैः क्रमात्।
उच्छ्रायः प्रतिमायाः स्यान्महामानाऽङ्गुलाश्रयः।
महामानाऽङ्गुलिरिति मात्राऽङ्गुलिरिहोच्यते।
प्रासादादींश्च तेनैव कुर्यात् मानाऽन्तरेण वै ॥
वेदिका-पीठशिबिका-रथादीनां विधिः पुनः।
मानान्तराऽङ्गुलेनैव भवेन्नान्येन केनचित् ॥
योगोपकरणानां च कुर्यान्मानाऽऽङ्गुलेन वै।
होमाऽङ्गानि स्रुवादीनि कुण्डं मुष्ट्यङ्गुलाश्रयम् ॥
दक्षलब्ध्वाऽङ्गुलेनैव प्रतिमाङ्गानि कल्पयेत्"। इति।

अत्राचरते आचारयतीति आचार्यो यजमानः। "एतावदुक्तं यन्मानं यजमानस्य तद्भवेत्" । इति सारसङ्ग्रहवचनात् । "कर्तुर्दक्षिणहस्तस्य" इति शारदातिलकवचनाच्चेति ।

अत्र कुण्डेषु तन्त्रान्तरापेक्षया विशेषकथनार्थं तन्निर्माणे; हस्तस्तु तन्त्रराजोक्तो गृह्यते, यथा –

"मध्यमाङ्गुलिमध्यस्थपर्वणः परिणाहतः।
तृतीयांशो भवेदत्र तन्त्रे सर्वत्र चाङ्गुलिः॥
तैश्चतुर्भिर्भवेद् मुष्टिर्वितस्तिस्तत्त्रिभिर्गुणैः।
आरत्निस्तद्द्वयेन स्याद् हस्तस्तद्द्वयतः शिवे॥
तद्द्वयं तु भवेद् व्याम तन्माना स्यान्नरोन्नतिः।
षण्णवत्यङ्गुला स्यात् तन्मानैः कुण्डकल्पनम्" ॥इति ।

इत्येवमुक्तप्रकारेण कृतसमचतुरस्रं कोण-चतुष्क-निखात-शङ्कुचतुष्टय-लग्नरज्जुचतुष्टयकोणाष्टकं विधाय, पूर्वापरायतं दक्षिणोत्तरायतं च मध्य-सूत्रद्वयं दूरीकृत्य, तत्पुनः सूत्रैः नवधा विभज्य, बाह्यकोणचतुष्टयेत्वैकैकं प्रतिदिशं सूत्राग्रे द्वि-द्वि-क्रमाद् दिक् चतुष्टये च स्तम्भाष्टकं सम्भूय, द्वादश स्तम्भान् नाऽतिस्थूलकृशान् अवक्रान् अव्रणान् एकजातीयान् सुवृत्तान् पञ्च-हस्तसमुच्छ्रायान् खातप्रविष्टस्वपञ्चमांशान् प्रमाणबह्वीर्हस्वस्थौल्य तृतीयांश-स्थूलवितस्त्युन्नतशिखायुक्तां तन्मध्यविभक्तेः कोणचतुष्टये स्तम्भचतुष्टयं पूर्वस्तम्भसजातीयं पूर्वतः किञ्चित् स्थूलमुत्तमं मण्डपे तदूर्ध्वोच्चमन्येष्वष्ट हस्तसमुन्नतं पूर्ववत् सशिखं पञ्चमांशेन प्रविष्टभूतलमिति षोडशस्तम्भान् निखाय, तेषामुपरि समजातीयानि ऋजूनि अव्रणानि शिखाप्रवेशयोग्यवेध-युक्तकोटिद्वयवन्ति तिर्यक् काष्ठानि शिल्पिभिः परिकल्पितानि द्वादश-स्तम्भाऽग्रेषु मध्य-स्तम्भचतुष्टयाग्रेषु च चतुरस्राकारेण समारोप्य, मध्य-स्तम्भचतुष्टयोपरि शिखाऽग्रप्रविष्टमूलवेधयुक्तमेकीकृताऽग्रचतुष्टयं शिल्पि-

वरनिर्मितसजातीयकाष्ठकलशकमलाकृतिशोभिताऽग्रं दिग्विदिक्स्थद्वादश-स्तम्भशिखाऽग्रप्रोतमूलमध्यस्तम्भचतुष्टयाऽग्रस्पृष्टाङ्कतन्मध्य - तिर्यक्काष्ठ-चतुष्टयमध्यगयाऽग्र-ऋज्वाऽऽकृतियथायोग्यदीर्घस्थौल्ययुतप्रसारित द्वादश-काष्ठसंयुतं अन्यैरपि काष्ठैः यथायोग्यं दृढीकृतं नारिकेलदलैः वंशकटैर्वा सम्यगाऽऽच्छादितं यैरेव निःशेषपिहितकोणचतुष्टयं चतुर्दिक्षु मध्यम-कनिष्ठमण्डपेषु साऽष्टाऽङ्गुलहस्तद्वय-सचतुरङ्गुलहस्तद्वय-हस्तद्वयविस्ता-रयुत-द्वार-चतुष्टयोपेतं मण्डपं विरच्य, मण्डपस्य पूर्वद्वाराद् बहिः हस्तमात्रं परित्यज्य, अश्वत्थवृक्षेण उत्तममध्यमकनिष्ठेषु सप्तषट्-पञ्चहस्तोच्छ्रितं दशाऽङ्गुलविस्तृतं पञ्चाऽङ्गुलस्थूलं विषमचतुरस्रं प्रमाणातिरिक्तवितस्त्युन्न-तशिखं द्वारस्य उभयपार्श्वस्थोत्तममध्यमकनिष्ठमण्डपेषु सार्द्धहस्तद्वय-सपाद-हस्तद्वयान्तरालं यथापूर्व पञ्चमांशेन प्रविष्टभूतलं फलकद्वयं "अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजं होतारं रत्नधातमम्" इति मन्त्रेण निखाय, तत्सजातीयकाष्ठेन समानविस्तारस्थूलं विषमचतुरस्रं कोटिद्वयेऽपि शिखा-प्रवेशभोग्यवेधयुतं तिर्यक्फलकं समारोप्य, दर्भमालां च बध्नीयात्।

एवं दक्षिणद्वारे उदुम्बरमयं तोरणं, "ईषे त्वोर्ज्जे त्वाछायवस्य देवो वः सविता प्रार्थयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण" इति मन्त्रेण निखाय; ततः पश्चिमद्वारे प्लक्षतरुमयं तोरणं प्राग्वत् निर्मितं, "अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य-दातयेति होता सत्सु बर्हिषि" इति मन्त्रेण निखाय; उत्तरद्वारे वटवृक्षमयं तोरणं प्राग्वन्निर्मितं, "शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्र-वन्तु नः" इति मन्त्रेण निखाय; ततस्तेषामुपरितनतिर्यक्फलकेषु मध्यतः सुषिरं विधाय, तेषु तोरणसजातीयकाष्ठेन निर्मिते, ऋजुमध्यशृङ्गमीषद-वक्रपार्श्वशृङ्गद्वयं कनिष्ठेन वाऽङ्गुलदीर्घमध्यमे त्वेकादशाऽङ्गुलदीर्घमुत्तमे त्रयोदशाऽङ्गुलदीर्घं तत्तच्चतुर्थांशविस्तारयुतं कनिष्ठादिषु द्व्यङ्गुल-त्र्य-ङ्गुल-चतुरङ्गुलमानेन सुषिरप्रविष्टं त्रिशूलाऽऽकारं प्रतितोरणमेकमेकं कीलमारोपयेत्।

ततो मण्डपाग्रे दशहस्तदैर्घ्यवंशदण्डाऽवलम्बितं हस्तमात्रविस्तृतं पञ्च-हस्तदैर्घ्य - दातव्यमन्त्रदैवतवाहनमूर्त्यङ्कितं घण्टा-चामर-भूषिताग्रं सुश्वेतं तत्तद्दैवतं वर्णाऽनुरूपवर्णं वा ध्वजमारोप्य, दशदिक्षु बाहुमात्रदीर्घा यथा योग्यमानं दण्डाऽवलम्बिता तत्तल्लोकपालवर्णाऽनुरूपवर्णाः तत्तल्लोकपाल-वाहनमूलाङ्किताः द्वादशाऽङ्गुलविस्तृता लोकपालानां वेदोक्ततत्तन्मन्त्रेण पताकाश्च बध्नीयात्। तत्रेन्द्रस्य पीतवर्णाः, बह्नेः पिङ्गलवर्णाः, यमस्य कृष्णवर्णाः, निऋतेः श्यामवर्णाः, वरुणस्य श्वेतवर्णाः, वायोर्धूम्रवर्णाः, सोमस्य अम्लवर्णाः, ईशानस्य सितवर्णाः, अनन्तस्य श्वेतवर्णाः, ब्रह्मणो रक्तवर्णाः इति लोकपालवर्णाः।

लोकपालवाहनानि तु गज-मेष-महिष-प्रेत-मकर-मृग-नर-वृषभ-हंस-गरुडाः, यथाक्रमेण इन्द्रादीनां ज्ञेयाः।

एतेषां वर्णास्तु श्वेत-रक्त-कृष्ण-धूसर-श्वेत-कृष्ण-गौर-सित-श्वेत-रक्ताः ज्ञेयाः। इत्थं पताकाभिरलङ्कृत्य मण्डलाभ्यन्तरं वितानपुष्पमाल्या-दिभिरलङ्कृत्य, अश्वत्थदलग्रथितदर्भ-रज्जूरूप-वन्दनमालया मण्डपमन्त-र्बहिश्च परिवेष्ट्य, स्तम्भान् दुकूलैः संवेष्ट्य, तन्मध्य-स्तम्भ-चतुष्टय-मध्यगते चतुरस्त्ररूपे मध्यखण्डे अपक्वेष्टकाभिः स्निग्धमृद्भिः वा, चतुरस्त्रां दर्पणोदरनिभां पार्श्वचतुष्टयमध्यप्रदेशां समतलां वेद्यायामस्यैकादशांऽशेन नवमांशेन पञ्चमांशेन चतुर्थांशेन तृतीयांशेन च उच्छ्रायवतीं हस्तमात्रोन्नतां वा वेदीं विदध्यादिति मण्डपनिर्माणविधिः।

इत्थं मण्डपं विधाय तस्य निऋतिकोणे हस्तमात्रविस्ताराऽऽयामां वितस्तिमात्रोन्नतां दर्पणोदरसङ्काशां चतुरस्त्रां वेदीं कृत्वा, तत्र वास्तुपूजां कुर्यात्।

॥ वास्तुपूजा ॥

तत्र प्राक्-प्रत्यग्-दक्षिण-उदक्-दशसूत्रविन्यासेन एकाशीति कोष्ठानि समान्तरालानि निष्पाद्य, तन्मध्ये कोष्टनवकं एकीकृत्य, बाह्यवीथ्यां परितः

षोडशसंख्य-कोष्ठान्वितायां प्रतिदिशं त्रीणि त्रीणि कोष्ठानि अंकीकृत्य, तद्वीथ्यां प्रतिकोणं एकैकक्रमेण विशिष्टकोष्ठचतुष्टयं तद्बाह्यवीथीगतचतुर्विंशतिकोष्ठेषु प्रतिकोणमेकैकक्रमेण कोष्ठचतुष्टयं चैवं क्रमात् प्रतिकोणं कोष्ठद्वयं, कोष्ठद्वयमेकैककोणसूत्रेण द्विधा कृत्वा, सम्भूय, कोणचतुष्टयस्याऽर्द्धकोष्ठद्वयाऽष्टकमेकैकं क्रमात् षोडशदेवता-स्थानं परिकल्प्य, पुनः तद्द्वितीयवीथ्यां तत्तत्कोणोभयपार्श्वयोः कोष्ठद्वयं कोष्ठद्वयमेकीकृत्य, पुनस्तद्वीथ्यां प्रतिदिशं मध्ये-मध्ये शिष्टमेकमेकं कोष्ठं वक्ष्यमाणक्रमाद् अक्षरविन्यासार्थं परिकल्प्य, पुनस्तद्बाह्यवीथ्यां द्वात्रिंशत् कोष्ठानि द्वात्रिंशद् देवतास्थानानि इत्येवं सम्भूयाऽक्षरविन्यासस्थानं कोष्ठचतुष्टयवर्ज्यं त्रिपञ्चाशद्देवतास्थानयुक्तं वास्तुपूजाचक्रं निर्माय, तस्य द्वितीयवीथीगतकोष्ठचतुष्टयं प्रत्येकं कोणसूत्राभ्यां चतुर्धा विभज्य, पूर्वकोष्ठस्य खण्डचतुष्टये प्रागदिप्रादक्षिण्येन तत्कालीनयुगार्णपर्यायनित्याऽक्षरत्रयं च लिखेत्।

ततो दक्षिणकोष्ठस्थखण्डचतुष्टये तद्दिनस्योदयार्णतद्दिननित्यार्णत्रयं च लिखेत्।

ततः पश्चिमकोष्ठे खण्डचतुष्टये प्रादक्षिण्येन भूमिं तोयमग्निं वायुं इति पदचतुष्टयं लिखेत्।

तत उत्तरकोष्ठे प्रागादिखण्डचतुष्टये प्रागदिप्रादक्षिण्येन पूजयामीति वर्णचतुष्टयं लिखेत्। ततस्तन्मध्ये ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वादिचतुर्दिक्षु ॐ आर्याय नमः, ॐ विवस्वते नमः, ॐ मित्राय नमः, ॐ महीधराय नमः, एवं तद्बहिः अर्द्धकोष्ठाष्टके आग्नेयादीशानान्तं, सावित्राय० सवित्रे शक्राय० इन्द्रजिते० रुद्राय० रुद्रजयाय० आपाय० आपवत्साय०, इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य, तद्बहिः कोणपार्श्वयोः एकीकृतकोष्ठद्वयात्मक कोष्ठाऽष्टके प्राग्वद् वह्न्यादितः, सर्वाय नमः, गुहाय० अर्यम्णे० जम्भकाय० पिलिपिच्छकाय० चरक्यै० विदार्य्यै० पूतनायै०, इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य; तद्बहिः, पूर्ववीथ्यां ईशानकोणस्थकोष्ठमारभ्याष्टसु कोणेषु ईशानाय० पर्ज-

न्याय० जयन्ताय० शक्राय० भास्कराय० सत्याय० वृषाय० अन्तरिक्षाय०, इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य दक्षिणवीथ्यां आग्नेयाद्यष्टसु कोणेषु अग्नये० पूष्णे० वितथाय० यमा० गृहरक्षकाय० गन्धर्वाय० भृङ्गराजाय० मृगाय०, इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य; पश्चिमवीथ्यां निऋतिकोष्ठमारभ्याष्टसु कोष्ठेषु, निऋतये० दौवारिकाय० सुग्रीवाय० वरुणाय० पुष्पदन्ताय० असुराय० शेषाय० रोगाय०, इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य; उत्तरवीथ्यां वायुकोणकोष्ठमारभ्य, वायवे० नागाय० मुख्याय० सोमाय० भल्लाटाय० अर्गलाय० दित्यै नमः, अदित्यै नमः, इत्यष्टौ देवताः सम्पूज्य; प्राङ्मुखः चतुरस्रकुण्डे स्थण्डिले वा वक्ष्यमाणमग्निस्थापनं कृत्वा, ॐ ब्रह्मणे नमः स्वाहा इत्यादि पूजितदेवताः नाममन्त्रैः स्वाहान्तैः प्रत्येकं व्रीहि-मुद्ग-यवैः घृत-मधु-दुग्ध-परिप्लुतैः सघृतैः पायसैश्च प्रत्येकद्रव्येण अष्टोत्तरशतसंख्यं अष्टाविंशति-संख्यं वा जुहुयात् ।

ततः घृत-शर्करा-कदलीफल-नाना-व्यञ्जनयुतैः पायसैः ॐ ब्रह्मणे एष बलिर्नमः इत्यादि तत्तत् नामभिः तेषां पदेषु बलिं दद्यात् ।

ततः श्रीपरदेवताभक्तान् नानाविधाऽन्नपानैः भक्ष्यभोज्यैश्च ताम्बूल-दक्षिणादिभिः परितोषयेत् । इति वास्तुपूजाविधिः ॥

इत्थं वास्तुपूजां स्वगृहे, सिंहगते भान्ते, पूर्णायां प्रतिवत्सरं कुर्वतो न सर्पपीडा न बालमरणं नाऽन्योन्यकलहाद्यशुभानि भवन्ति । पुत्र-पौत्र-धनाऽऽ-रोग्य-पशु-दास-दासी-समृद्धमानरोगी विजयी विख्यातस्तस्मिन् गृहे सुखं जीवति । राजवेश्मनि महिषीगृहे सचिवामात्य-सेनानीभवनेषु मान्त्रिकः कारयेत् । तेषां उक्तफलसिद्धिर्भवति । यदि न कुर्यात् तदा वैपरीत्यं भवति । इत्थं वास्तुपूजां विधाय, तस्मिन् मण्डपे प्रागादिदिक्षु मेषादिद्वादश-राशिस्थानेषु चतुरस्रादिकुण्डानि यथाकामफलप्राप्त्यै कुर्यात् । तत्र प्रोक्ते मण्डपे बाह्यभक्त्यष्टके प्रागादिचतुर्दिग्गतासु चतसृषु भक्तिषु एकस्या-मेकस्यां द्वि-द्वि-राशिक्रमेण कोणादिदिग्गतासु भक्तिष्वेकैकक्रमेण च सम्भूय,

प्राग् भक्तिगतस्थानमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेणैशानकोणभक्तिपर्यन्तं मेषादिद्वादशराशिस्थानानि परिकल्प्य, तेषु स्थानेषु मङ्गलप्रयोगे मेषकर्कटतुलामकरराशिषु वृत्तकुण्डानि चत्वारि वृषसिंहवृश्चिककुम्भराशिषु चतुरस्रकुण्डानि चत्वारि, मिथुन-कन्या-चाप-मीनराशिषु योन्याऽऽकाराणि चत्वारि कुण्डानि च पुनरमङ्गलप्रयोगे तन्मेषादिचरराशिचतुष्टये अर्द्धचन्द्राकारकुण्डचतुष्टयं स्थिरराशिचतुष्टये त्रिकोणाकारकुण्डचतुष्टयं उभयराशिचतुष्टये क्रमात्। पञ्चास्रषडस्र-सप्तास्र-अष्टास्रात्मकानि एकैकमिति कुण्डानि कुर्यात्। जाति-वृत्त-चतुरस्र-योनि-अर्द्धचन्द्र-त्रिकोण-पञ्चास्र-षडस्र-सप्तास्र-अष्टास्राणि नवविधानि कुण्डानि भवन्ति।

॥ अथैतेषां (कुण्डानां) रचनाप्रकारः ॥

तत्र वेद्याः पूर्वभागे, वृषराशिस्थाने पदमात्रां भुवं परित्यज्य, प्राक्कल्पितदिक् क्रमात् प्राक्प्रत्यगायतं सूत्रमास्फाल्य, तन्मध्ये चिह्नं कृत्वा, तच्चिह्नात् पूर्वतः पश्चिमतश्च तन्त्रराजोक्ताऽङ्गुलैः द्वादशाऽङ्गुलमानेन चिह्नं कृत्वा, तत्तदधिकांशं मार्जयित्वा, तच्चिह्नद्वयाऽवष्टम्भेन तत्सूत्राऽर्द्धात् किञ्चिदधिकमानभ्रमेण पूर्वपरतः किञ्चिदन्योन्यसंश्लिष्टं वृत्तद्वयं विधाय, तयोः दक्षिणोत्तरहंसपदप्रापि प्राक्प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रमध्यगतहंसपदसम्भेदाद् दक्षिणोत्तरसूत्रमाऽऽस्फाल्य, तत्राऽपि मध्यचिह्नात् द्वादशाऽङ्गुलमानेन चतुर्षु कोणेष्वपि हंसपदचतुष्टयं विधाय, तत्तदग्रात् तत्तद्धंसपदप्रापि प्राक् प्रत्यक् सूत्रद्वयं दक्षिणोत्तरं सूत्रद्वयं च सम्भूय, सूत्रचतुष्टयमास्फाल्य, चतुरस्रं कुर्यात्।

ततस्तत्र तस्य प्राक् प्रत्यगाऽऽयतद्वयं दक्षिणोत्तरं सूत्रद्वयं च सम्भूय, सूत्रचतुष्टयमास्फाल्य, चतुरस्रं खातं कृत्वा, ततो बहिरेकाऽङ्गुलमात्रं त्यक्त्वा, तद्बहिः द्वादशाऽङ्गुलमानविस्तारां चतुरङ्गुलमानोत्सेधां मेखलां कृत्वा, तदपुरि बाह्ये परितः चतुरङ्गुलमानं त्यक्त्वा, अष्टाऽङ्गुलमानविस्तारां चतुरङ्गुलमानोन्नतां मेखलां कृत्वा, तदुपरि बाह्ये प्राग्वत्

चतुरङ्गुलं त्यक्त्वा, तदन्तर्विस्तारोत्सेधाभ्यां चतुरङ्गुलमानमितां मेखलां कुर्यात्। प्रथममेखला द्वादशाऽङ्गुलोन्नता, चतुरङ्गुलविस्तृता; तद्बहिः द्वितीया मेखलाष्टाङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता; तद्बहिः तृतीया मेखला चतुरङ्गुलोन्नता चतुरङ्गुलविस्तृता च भवति। अत्र केचित्–प्रथमा मेखला चतुरङ्गुलविस्तृता नवाऽङ्गुलोन्नता, द्वितीया तु त्र्यङ्गुलविस्तृता पञ्चाऽङ्गुलोन्नता, तृतीया तु द्व्यङ्गुलविस्तारा द्व्यङ्गुलोन्नतेति मेखलामानमाहुः। एतत्तु मेखलया सह हस्तमात्रखातपक्षे ज्ञेयम्।

"व्यासात् खातः करः प्रोक्तो निम्नं तिथ्यङ्गुले ननु"। इति विश्वकर्मवचनात्। तत्र नवाऽङ्गुलस्यैवाऽवश्यकत्वात्। अत्र तु–"सर्वेषां मेखलामानं वितस्त्यष्टतदर्द्धकैः। विस्तारोत्सेधयोः कुर्यात्"। इति तन्त्रराजवचनात्।

"तत्त्वपूर्वकगुणाऽन्विताः क्रमाद्
द्वादशाऽष्टचतुरङ्गुलोच्छ्रिताः ।
सर्वतोऽङ्गुलचतुष्कविस्तृता
मेखलाः सकलसिद्धिदाः मताः"॥

इति प्रपञ्चसारवचनाच्च। पूर्वोक्त एव पक्षः समीचीनः इति सिद्धान्तः।

ततः सर्वबाह्यस्थ-चतुरङ्गुलविस्तारोत्सेधमेखलामध्यप्रदेशे द्व्यङ्गुलाऽऽयामविस्तारं एकाङ्गुलोत्सेधं चतुरस्रं पीठं मृदा कृत्वा, तदुपरि निहितमूलद्वादशङ्गुलदीर्घोत्तरोत्तरोत्तरहीनपरिणाहमध्यमेखलासंलग्नसरन्ध्रनालयुतां मूले कुम्भद्वययुक्तां, मध्ये सगर्तां, उपरितनमेखलोपरिगतामष्टाऽङ्गुलमानविस्तारमध्यां तत्प्रदेशाद्युभयपार्श्वेऽपि क्रमेण सङ्कुचितामेकाऽङ्गुलविस्ताराऽग्रां द्वादशाऽङ्गुलमानायामेकाऽङ्गुलोत्सेधां समेखलां अश्वत्थपात्राकारं मूलात् क्रमात् किञ्चित् निम्नां ईषत्कुण्डप्रविष्टाग्रां योनिं कुर्यात्।

अत्र "वृत्तकुण्डे योनिर्नास्तीति" तन्त्रराजटीकाकारमतम् । योनिकुण्डे योनिः, पद्मकुण्डे नाभिश्च नास्तीत्याहुः तान्त्रिकाः । अत्र नाभिः– तत्र कुण्डमध्यस्थहंसपदाऽवलम्बनेन प्रतिदिशं चतुरङ्गुलमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिः षड्गुलमानेन च वृत्तं कृत्वा, तदन्तवृत्तं कर्णिकां परिकल्प्य, तद्बहिस्थद्व्यङ्गुलमानवृत्तान्तरालवीथ्यामष्टदलानि विधाय षडङ्गुलोच्चं नाभिपङ्कजं कुर्यात् । इति चतुरस्रकुण्डनिर्माणविधिः ।

अत्र तन्त्रराजे – कुण्डानां यत्कण्ठो नोक्तं तत् तेषां षण्णवत्यङ्गुलात्मकत्वभागाशङ्कया इति बोद्धव्यम् । तर्हि कण्ठाऽकरणे प्रत्यवायः श्रूयते इति चेत् – सत्यम्, तस्य अन्यतन्त्रेषु उक्तकुण्डपरत्वं कल्पनीयम्; शिवस्य स्वतन्त्रेच्छत्वात् । कुण्डेष्वन्यदपि अत्राऽन्यतन्त्राऽपेक्षया विशेषबाहुल्यदर्शनादिति ।

॥ अथ वृत्तकुण्डरचनाप्रकारः ॥

तत्र प्राग्वद् यथोद्दिष्टराशिस्थाने समचतुरस्रं क्षेत्रं साधयित्वा, तन्मध्यविष्कम्भमानं अष्टादशधा विभज्य, तेसु एकांशमानतः प्राचीदिग्गतदक्षिणोत्तरायततिर्यक् सूत्राद्बहिः प्राक् प्रत्यग्गतब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं विस्तार्य, मध्यचिह्नमवलम्ब्य, विस्तारितब्रह्मसूत्राऽग्रमानेन परितो भ्रमेण वृत्तं निष्पादयेत् । तदा वृत्ताद्बहिः कोणचतुष्टये त्यक्तभूमिमानं दिक्चतुष्टये चतुरस्राद् बहिः वृत्ताभ्यन्तरे लभ्यते । तेन सर्वाणि कुण्डानि षण्णवत्यङ्गुलपरिणाहवत् चतुरस्रकुण्डक्षेत्रसमानानि भवन्ति । इत्थं वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिः पुनः द्वादशाऽङ्गुलमानेन वृत्तं निष्पाद्य, प्रथमकृतवृत्तमध्ये चतुरस्रस्य ब्रह्मसूत्रमाननिम्नखातं कृत्वा, बहिरेकाऽङ्गुलं त्यक्त्वा, द्वादशाऽङ्गुलाऽन्तरालवीथ्यां प्राग्वत् मेखलात्रयं कृत्वा, प्राग्वदेव योन्यादिकं रचयेदिति ।

॥ अथार्द्धचन्द्रकुण्डरचनाप्रकारः ॥

तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं निर्माय तद्विष्कम्भमानं दशधा विभज्य, तेष्वेकैकांशं तत्प्राक् पश्चिमयोः परित्यज्य, चिह्नद्वयं कृत्वा, तत्पश्चिमचिह्नाद्

दक्षिणोत्तराऽऽयततिर्यक्सूत्रसन्धिमध्याऽवलम्बनेन प्राक् कल्पितचिह्ना-दष्टांऽशमानेन च भ्रमादर्द्धचन्द्राऽऽकारं कुण्डं भवेदिति। इत्थमर्द्धचन्द्राकारं मण्डलं निष्पाद्य, तद्बहिरपि उक्तयुक्त्या द्वादशांशमानेन चार्द्धचन्द्रनिभं मण्डलद्वयं कृत्वा, प्रथमकृतमण्डलमध्ये चतुरस्र-ब्रह्मसूत्रमानेन निम्नं खातं कृत्वा, तद्बहिः प्राग्वत् मेखलादिकं कुर्यादिति।

॥ अथ त्रिकोणकुण्डरचनाप्रकारः ॥

तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं कृत्वा तद्ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं बहिर्गत्या प्रसार्य, तच्चतुरस्रविष्कम्भमानं षोढा विभज्य, तेसु एकैकांशमानेन पश्चिमतिर्यक् सूत्राऽग्रद्वयं पार्श्वयोर्बहिः प्रसार्य, तदग्रद्वयात् तत्सूत्रमानोपेतसूत्रद्वयस्य प्राक्प्रसारितब्रह्मसूत्रस्य च पत्रसम्पातस्तद्बध्वा आस्फाल्य, त्रिकोणकुण्डं परिकल्प्य, तद्बहिरपि एकांशमानेन द्वादशाऽङ्गुलमानेन चोक्तयुक्त्या त्रिकोणं निष्पाद्य, खातकण्ठमेखलादि प्राग्वत् कल्पयेदिति।

॥ अथ योनिकुण्डनिर्माणप्रकारः ॥

तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं निर्माय, चतुःकोष्ठयुतस्य तस्य प्राक् प्रत्यगाऽऽ-यतब्रह्मसूत्रं तन्मानपञ्चमांशेन बहिर्विस्तार्य, तत्कोष्टचतुष्टयात्मकचतुरस्र-पश्चिमभागस्थ दक्षिणोत्तरकोष्ठयोर्नैर्ऋत्यादीशानान्तमाग्नेयादि वायव्यान्तं च कोणसूत्रद्वयास्फालनेन लक्षिततत्सूत्रद्वयसम्पात-विदितमध्यदेशाऽवष्टम्भतः तत्कोणाऽवधिमानेनोत्तरकोष्ठे प्राक् प्रत्यक् ब्रह्मसूत्रपश्चिमाऽग्रादिदक्षिणो-त्तरमध्यतिर्यक् सूत्रोत्तराग्राऽवधि तद्दक्षिणकोष्ठे तत्सूत्रपश्चिमाऽग्रादि तद्दक्षिणाऽग्रावधि च भ्रमादर्द्धचन्द्रद्वयं निर्माय, तन्मध्ये तिर्यक् सूत्रद्वय-मारभ्य, प्राक् प्रसारितब्रह्मसूत्रऽग्रावधि सूत्रद्वयाऽऽस्फालनेन योन्याऽऽकारं क्षेत्रं परिकल्प्य, तद्बहिश्च कण्ठमेखलार्थं यथोक्तमानेन उक्तयुक्त्यायोनि-मण्डलद्वयं निष्पाद्य, प्राग्वत् खातमेखलादिकल्पयेदिति। अत्र योनिकुण्डे योनिं, अब्जकुण्डे नाभिं च वर्जयेदिति सोमशम्भुवचनात्; ''योनिकुण्डे योनिः न कर्तव्या'' इति तान्त्रिकसिद्धान्तः।

॥ अथ पञ्चास्रकुण्डनिर्माणविधिः ॥

तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं कृत्वा, तन्मध्यमानस्य सप्तमांशेन ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं बहिर्विकास्य, तन्मानेन तच्चतुरस्रमध्यस्थहंसपदावलम्बनेन भ्रमाद् वृत्तं निष्पाद्य, तच्चतुरस्रंमध्यसूत्रं चतुर्द्धा कृत्वा, तेष्वंशत्रयेण, अंशत्रयेण तद्वृत्ते ब्रह्मसूत्रप्रागग्रादिपरितः पञ्चचिह्नानि विधाय, तत्तच्चिह्नात् चिह्नं ज्यारूपाणि पञ्चसूत्राण्यास्फाल्य, तच्चापरूपवृत्तखण्डमार्जनात् पञ्चस्रं कुण्डं भवति। इत्थं पञ्चास्रकुण्डं परिकल्प्य, तद्बहिरपि प्रोक्तयुक्त्या कण्ठमेखलार्थं पञ्चास्रद्वयं परिकल्प्य, खातादिकं प्राग्वत् कल्पयेदिति।

॥ अथ षडस्रकुण्डनिर्माणप्रकारः ॥

तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं विधाय, तन्मध्यमानं षोडशधा विभज्य, तेषु एकांशेन ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रं बहिर्विकास्य, तन्मानेन चतुरस्रमध्यस्थहंसपद-मध्यावलम्बनेन भ्रमाद् वृत्तं निष्पाद्य, तन्मध्यविष्कम्भमानार्धेन तन्मध्यतिर्यक् सूत्रदक्षिणाग्रादिपरितो वृत्ते चिह्नषट्कं विधाय, तच्चिह्नं ज्यारूपं सूत्रषट्क-मास्फाल्य, तत्तच्चापरूपवृत्तखण्डमार्जनेन षट्कोणकुण्डक्षेत्रं निष्पाद्य, तद्बहि-रेकांशतो द्वादशांशतश्चोक्तयुक्त्या षट्कोणद्वयं निष्पाद्य, खातादीनि प्राग्वत् कल्पयेदिति।

॥ अथ सप्तास्रकुण्डनिर्माणप्रकारः ॥

तत्र प्राग्वत् समचतुरस्रं कृत्वा, तन्मध्यमानं दशधा विभज्य, तेषु एकांशमानेन तद्ब्रह्मसूत्रं बहिर्विकास्य, तन्मानेन तच्चतुरस्रमध्यस्थहंसपद-मध्यमवष्टभ्य, वृत्तं कृत्वा, तच्चतुरस्रमध्यसूत्रमानं चतुःषष्टिभागेन भागी-कृत्य, तेषु त्रयस्त्रिंशदंशमानेन ब्रह्मसूत्रप्रागग्रादाऽऽरभ्य, वृत्ते सप्त चिह्नानि कृत्वा, चिह्नाच्चिह्नं ज्यारूपेण सप्त सूत्राणि आस्फाल्य, तत्तच्चापरूपवृत्त-खण्डमार्ज़नात् सप्तास्रकुण्डक्षेत्रं निर्माय, तद्बहिरपि, एकांशेन द्वादशाऽ-ङ्गुलमानेन उक्तयुक्त्या सप्तास्रद्वयं कृत्वा, खातादिकं कल्पयेत्। एतत् सप्तास्रं वायुदिग्गतं चापस्थानप्रोक्तं वैरिनाशकरं कुण्डं भवेदिति।

॥ अथाष्टास्रकुण्डरचनाप्रकारः ॥

तत्र प्राग्वत् चतुरस्रं विधाय, तन्मध्यसूत्रमानं चतुर्विंशतिधा विभज्य, तेष्वेकैकांशमानं तद्बहिः प्रतिदिशं प्रसारितसूत्राऽग्रे पूर्ववच्चतुरस्रं प्रोक्तक्रमेण विधाय, तत्र पूर्वचतुरस्रस्य कोणसूत्रस्यार्धमानेन बाह्यचतुरस्र कोणचतुष्टय-व्यत्यासाऽवष्टम्भादुभयतः प्रतिरेखं चिह्नद्वय-द्वय-क्रमात् सम्भूय, अष्ट-चिह्नानि कृत्वा, तच्चिह्नात् चिह्नं प्राग्वत् सूत्रचतुष्कमास्फाल्य, तद्बहिर्गतको-णमार्जनादष्टास्रकुण्डं भवति । इत्थमष्टास्रकुण्डक्षेत्रं कृत्वा, तद्बहिरपि उक्त-युक्त्यैकाऽङ्गुलमानेन द्वादशाऽङ्गुलमानेन चाष्टास्रद्वयं कृत्वा, खातादि कल्पयेदिति । इति नवकुण्डरचनाप्रकारः ।

अत्र दीक्षायां वृषादिस्थिरराशिस्थानचतुष्टये चत्वारि चतुरस्र-कुण्डान्येव कुर्यात् । ऋत्विग् बाहुल्ये तु मिथुन-कन्या-चाप-मीनाख्योभयात्म-कराशिस्थानेष्वाग्नेयादिषु कोणेषु योनिकुण्डानि चत्वारि कुर्यात् । इन्द्रेशान-योर्मध्ये नवममाचार्यकुण्डं चतुरस्रमेव कुर्यात् । अन्यानि तु शुभाऽशुभात्मक काम्यप्रयोगेषु यथागुरूपदेशं विधेयानि । एतत्सर्वमुत्तरोत्तरहोमप्रकरणे सविशेषं वक्तव्यमप्यत्र कुण्डप्रसङ्गे किमप्युक्तमिति ।

"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसुनूना ।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ चतुर्विंशस्तरङ्गकः" ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारिबिन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे चतुर्विंशस्तरङ्गः ॥ २४ ॥

॥श्रीः॥

अथ पञ्चविंशस्तरङ्गः

॥अथ दीक्षाविधिः॥

तत्र "शिष्याय दिव्यज्ञानं ददाति, सर्वपापक्षयं करोति" इति दीक्षाशब्दनिरुक्तिः। सा तु सप्तभेदा भवति – क्रियामयी, वर्णमयी, कलामयी, स्पार्शी, दृग्दीक्षा वाग्दीक्षा, वेधदीक्षा चेति। तत्रादौ क्रियादीक्षाविधिर्विविच्यते।

तत्र शुभे मासि, शुक्लपक्षे, शुभतिथौ, यथोक्तलक्षणयुक्तं गुरुं, यथोक्तलक्षणयुक्तः शिष्यः यथाविधि सेवादिभिः प्रसाद्य, यथाविधि वरणं कृत्वा, तत्सकाशाद् दीक्षां गृह्णीयात्। तत्र मासास्तु मन्थानभैरवतन्त्रे –

"चैत्रे दुःखाय दीक्षा स्याद् वैशाखे सर्वसिद्धिदा।
ज्येष्ठे मृत्युप्रदा सा स्यादाऽऽषाढे बन्धुनाशिनी॥
श्रावणे वृद्धिदा नृणां नभस्ये दुःखदा मता।
आश्विने सर्वसिद्धिः स्यात् कार्तिके ज्ञानवृद्धिदा॥
शुभदा मार्गशीर्षे च पौषे मेधाविनाशिनी।
माघे सुवर्णलाभः स्यात् फाल्गुने सर्वसिद्धिदा"॥

सारसङ्ग्रहे – "मलमासे विवर्जयेत्" इति।

अथ वासराणि। तत्रैव–

"रविवारे भवेद् वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत् किल।
आयुरङ्गारके हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत्॥

बुधे सौन्दर्यमवाप्नोति ज्ञानं स्यात्तु बृहस्पतौ।
शुक्रे सौभाग्यमाप्नोति यशोहानिः शनैश्चरे॥

इति वारफलानि। तन्त्राऽन्तरे तु "अविद्या सोमके भवेत्" इति दीक्षायां सोमवारो निषिद्धः।

॥अथ तिथयः॥

तत्रैव–

"प्रतिपत्सु कृता दीक्षा ज्ञाननाशकरी मता।
द्वितीयायां भवेद् ज्ञानं तृतीयायां भवेच्छुचिः॥
चतुर्थ्यां धननाशः स्यात् पञ्चम्यां वृद्धिवर्द्धनम्।
षष्ठ्यां ज्ञानक्षयः सौख्यं लभते सप्तमीदिने (तिथौ)॥
अष्टम्यां ज्ञाननाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः।
दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत्॥
द्वादश्यां सर्वसिद्धिः स्यात् स्वाध्यायं विवर्जयेत्।
मासावसानेऽमावस्या पक्षान्ते पूर्णिमा तिथिः॥
सन्ध्यागर्जितनिर्घोषभूकम्पोल्कानिपातनम्।
एतानन्यांश्च दिवसान् श्रुत्युक्ताँश्च परित्यजेत्॥

॥अथ नक्षत्राणि॥

तत्रैव–

अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम्।
कृत्तिकायां भवेद् दुःखं रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत्॥
मृगशीर्षे तु दुःखाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम्।
पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात् पुष्ये शत्रुविनाशनम्॥

आश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम्।
सौन्दर्यं पूर्वफाल्गुन्यां सम्प्राप्नोति न संशयः॥
ज्ञानं चोत्तरफाल्गुन्यां हस्तायां च बली भवेत्।
चित्रायां ज्ञानसिद्धिः स्यात् स्वात्यां शत्रुविनाशनम्॥
विशाखायां तु दुःखायाऽनुराधा बुद्धिवर्धिनी।
ज्येष्ठायामशुभाऽऽवाप्तिर्मूलं सर्वसमृद्धिकृत्॥
पूर्वाऽषाढोत्तराऽषाढे भवेतां कीर्तिदायिके।
श्रवणायां भवेद्दुःखं धनिष्ठायां दरिद्रता॥
बुद्धिः शतभिषायां स्यात् पूर्वभाद्रे सुखी भवेत्।
सौख्यं चोत्तरभाद्रायां रेवत्यां कीर्तिवर्धनम्''॥

इति नक्षत्रफलानि।

॥अथ योगाः॥

तत्रैव –

''योगाश्च प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनः शुभः।
सुकर्मा च धृतिर्वृद्धिर्ध्रुवः सिद्धिश्च हर्षणः॥
वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्मा ऐन्द्रश्च षोडश''॥ इति।

॥करणानि च॥

तत्रैव –

''शुभानि करणन्याहुर्दीक्षायां च विशेषतः।
शकुन्यादीनि विष्टिं च विशेषेण विवर्जयेत्''॥

अत्र आदिपदेन किंस्तुघ्नचतुष्पदनागानां ग्रहणम्।

राशयस्तु वैशम्पायनसंहितायाम् –

"मन्त्राद्याऽऽरम्भणं मेषे धनधान्यप्रदं भवेत्।
वृषे मरणमाप्नोति मिथुनेऽपत्यनाशिनी ॥
कर्कटे सर्वसिद्धिः स्यात् सिंहे मेधाविनाशकः ।
कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः ॥
वृश्चिके स्वर्णलाभः स्यात् धनुर्ज्ञानविनाशकम् ।
मकरः पुत्रदः प्राहुः कुम्भो धनसमृद्धिदः ॥
मीनो दुःखप्रदो नित्यं एवं राशिफलं भवेत्" ॥

निषिद्धदिनानि ज्योतिःशास्त्राद्विशेषतो ज्ञेयानि। तान्यत्र न लिखितानि ग्रन्थ-गौरवभयात्।

अथ उक्तमास-पक्षशोधनमन्तरेणापि सर्वेषां दीक्षायाः शुभकालविशेषः।

"विषुवेऽप्ययनद्वन्द्वे सङ्क्रान्त्यां दमनोत्सवे।
दीक्षा कार्या त्वकालेऽपि पवित्रे गुरुपर्वणि ॥
षष्ठी भाद्रपदे मासि ईषे कृष्णत्रयोदशी।
कार्तिके नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥
एतानि देवपर्वाणि तीर्थकोटिफलानि वै" ॥
निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा ॥
सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति भूतले।
तत्र यद्यत् कृतं कर्म अनन्तफलदं भवेत् ॥
रविसङ्क्रमेण चैव नान्यस्यान्वेषणं भवेत्।
न मास-तिथि-वारादि शोधनं सूर्यपर्वणि ॥
तदभीष्टं च गृह्णीयात्तस्मिन् काले गुरोर्नरः।
सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनायासेन वेगतः ॥

रविसङ्क्रमणे चैव सूर्यस्य ग्रहणे तथा।
तत्र लग्नादिकं किञ्चिन्न विचार्यं कथञ्चन॥
सत्तीर्थेऽर्क-विधुग्रासे पुण्यारण्ये वनेषु च।
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन् न शोधयेत्॥
अथवाऽन्यप्रकारेण दीक्षाग्रहणमुत्तमम्।
प्रवक्ष्यामि समासेन सर्वतन्त्रेषु गोपितम्॥
सर्ववाराः ग्रहाः सर्वे नक्षत्राणि च राशयः।
यस्मिन्नहनि सन्तुष्टो गुरुः सर्वे शुभावहाः॥
सन्तुष्टे च गुरौ तस्य सन्तुष्टाः सर्वदेवताः।
गुरुं सन्तोषयेद् भक्त्या द्वयमेव तथा भवेत्॥

(द्वयं=भुक्तिमुक्ती)

मुमुक्षूणां सदाकालः स्त्रीणां कालस्तु सर्वदा।
शुक्लपक्षे शुभा दीक्षा कृष्णेप्यापञ्चमीदिनात्॥
भूतिकामैः सिते पक्षे मुक्तिकामैः सितेतरे''॥

दीक्षा ग्राह्या इति शेषः। तथा –

त्रिषडाऽऽयगताः पापाः शुभः केन्द्रत्रिकोणगाः।
दीक्षायां तु शुभाः सर्वे रन्ध्रस्थः सर्वनाशकाः॥

आयः = एकादशस्थानम्। पापाः = राहु-केतु- क्षीणक्षपेश-तरणि-धरणिजरविजाः। पापयुक्तसौम्यश्च = प्रथम-चतुर्थ - सप्तम - दशमस्थानानां केन्द्रसंज्ञाः। त्रिकोण नवमस्थानं पञ्चस्थानं च शुभाः। अक्षीणः चन्द्रः पापरहितः। सौम्यः गुरुर्भृगुश्च। रन्ध्रमष्टमस्थानम्। एवं विचार्य, निर्देषे दिवसे शुभलग्ने दीक्षां कुर्यात्। इति दीक्षाकालः।

॥ अथ गुरुलक्षणानि ॥

तत्र कादिमते –

"सुन्दरः सुमुखः स्वच्छः सुलभो बहुतन्त्रवित् ।
असंशयः संशयच्छिन्निरपेक्षो गुरुर्मतः ॥
सौन्दर्यमनवद्यत्वं रूपे सुमुखता पुनः ।
स्मेरपूर्वाऽभिभाषित्वं स्वच्छताऽजिह्मवृत्तिता ॥
सौलभ्यमप्यगर्वित्वं सन्तोषो बहुतन्त्रतः।
असंशयस्तत्त्वबोधे तच्छिष्ये प्रतिपादनात् ॥
नैरपेक्ष्यमवित्तेच्छा गुरुत्वं हितवेदिता ।
एवंविधो गुरुर्ज्ञेयः त्वितरः शिष्यदुःखदः" ॥

तथा कुलार्णवे –

"श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेषो मनोहरः ।
सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वावयवशोभितः ॥
सर्वागमार्थतत्त्वज्ञः सर्वमन्त्रविधानवित् ।
लोकसम्मोहनाऽकारो देववत्प्रियदर्शनः ॥
सुमुखः सुलभः स्वच्छः शुद्धान्तश्छिन्नसंशयः ।
इङ्गिताऽकारचेष्टाविद् दूरतः कृतदुर्जनः ॥
अन्तर्मुखो बहिर्दृष्टिः सर्वज्ञो देशकालवित् ।
आज्ञासिद्धः त्रिकालज्ञो निग्रहाऽनुग्रहक्षमः ॥
वेदवेदाङ्गविच्छान्तः सर्वजीवदयापरः ।
सर्वाधीनेन्द्रियसञ्चारः षड्वर्गविजयक्षमः ॥

अग्रगण्योऽतिगम्भीरः पात्रापात्रविशेषवित्।
निर्ममो नित्यसन्तुष्टो निर्द्वन्द्वोऽनन्तशक्तिमान्॥
सद्भक्तवत्सलो धीरः कृपालुः स्मितपूर्वभाक्।
भक्तप्रियः सर्वसमो दयालुः शिष्यशासिता॥
श्रेष्ठनिष्ठो गुरुः प्राज्ञो वनितापूजनोत्सुकः।
नित्ये नैमित्तिके काम्ये रतः कर्मण्यनिन्दिते॥
अलोलुपोऽहिंसकश्च पक्षपाती विचक्षणः।
वित्तविद्यादिभिः पूर्णो मन्त्रयन्त्रादिपारगः॥
निःसङ्कल्पविकल्पश्च निर्णीताऽर्थाभिधायकः।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी निरपेक्षो नियामकः॥
इत्यादिलक्षणोपेतः श्रीगुरुः कथितः प्रिये''॥

इति श्रीगुरुलक्षणानि। सच्छिष्यैरेवंविधो गुरुः मृग्यः सेव्यश्च।

॥अथ सच्छिष्यलक्षणानि॥

कादिमते –

''चतुर्भिराद्यैः संयुक्तः श्रद्धावान् सुस्थिराशयः।
अलुब्धः स्थिरगात्रश्च प्रेक्ष्यकारी जितेन्द्रियः॥
आस्तिको दृढभक्तिश्च गुरौ मन्त्रे सदैवते।
एवंविधो भवेच्छिष्यः त्वितरो दुःखकृद् गुरोः''॥

तथा कुलार्णवे –

''सच्छिष्यं तं कुलेशानि सर्वलक्षणसंयुतम्।
शमादिसाधनोपेतं गुणशीलसमन्वितम्॥

शुद्धदेहाऽनुबन्धाऽङ्गं धार्मिकं शुद्धमानसम् ।
दृढव्रतं सदाचारं श्रद्धाभक्तिसमन्वितम् ॥
कृतज्ञं च पापभीतं च साधुसज्जनसम्मतम् ।
आस्तिकं दानशीलं च सर्वभूतहिते रतम् ॥
विश्वासविनयोपेतं वित्तशाठ्यविवर्जितम् ।
असाध्यसाधकं शूरं बलकान्तिसमन्वितम् ॥
अनुकूलक्रियायुक्तमप्रमत्तं विचक्षणम् ।
हित-सत्य-मित-स्निग्धभाषिणं मुक्तदूषणम् ॥
सकृदुक्तगृहीतार्थं चतुरं बुद्धिविस्तरम् ।
गृहतल्पासनोत्सङ्गनिर्विकारमसेवकम् ।
विमृश्यकारिणं वीरं मनोदारिद्र्यवर्जितम् ।
सर्वकार्याऽतिकुशलं धीरं सर्वोपकारकम् ॥
स्वस्वार्थे परनिन्दायां विमुखं सुमुखं प्रिये ।
जितेद्रियं सुसन्तुष्टं धीमन्तं ब्रह्मचारिणम् ॥
त्यक्ताऽऽधिव्याधिचापल्यं दुःखशङ्काऽऽतङ्कवर्जितम् ।
गुरुध्यान-स्तुति-कथासेवनाभजनोत्सुकम् ॥
गुरुदैवतभक्तं च कामिनीपूजनोत्सुकम् ।
नित्यं गुरुसमीपस्थं गुरुसन्तोषकारिणम् ॥
वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यं गुरुकार्यसमुत्सुकम् ।
गुर्वाऽऽज्ञापालकं देवि गुरुकीर्तिप्रकाशकम् ॥
गुरुवाक्यप्रमाणज्ञं गुरुशुश्रूषणे रतम् ।
चित्ताऽनुवर्तितं प्रेक्ष्यकारिणं कुलनायिके ॥

लज्जाऽभिमानगर्वादिवर्जितं गुरुसन्निधौ ।
निरपेक्षं गुरुद्रव्ये तत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणम् ॥
कुलधर्मकथा-योगियोगिनीकौलिकप्रियम् ।
कुलार्चनादिनिरतं मोक्षमार्गानुगामिनम् ॥
इत्यादिलक्षणोपेतं गुरुः शिष्यं परिग्रहेत्'' ।

इति सच्छिष्यलक्षणानि ।

॥ अथासच्छिष्यलक्षणानि ॥

कुलार्णवे –

''दुष्टाऽन्ववायजं दुष्टं गुणहीनं विरूपिणम् ।
परशिष्यं च पाखण्डं धूर्त्तं पण्डितमानिनम् ॥
हीनाऽधिकाविकाराङ्गं विकलाऽवयवाऽन्वितम् ।
पङ्गुमन्धं च बधिरं मलिनं व्याधिपीडितम् ॥
उच्छिष्टं दुर्मुखं चापि स्वेच्छा वेषधरं विटम् ।
दुर्विदग्धं कुचेष्टं च कुटिलं भीमवीक्षणम् ॥
निद्राऽऽलस्ययुतं तन्द्राद्यूतादिव्यसनाऽन्वितम् ।
कपाट-कुड्यस्तम्भादौ तिरोहिततनुं सदा ॥
शून्ययुक्तिकरं क्षुद्रं श्रद्धाभक्तिविवर्जितम् ।
किमेकवादिनं स्तब्धं प्रेषकं चपलं शठम् ॥
धनस्त्रीशुद्धिरहितं निषेधविधिवर्जितम् ।
रहस्यभेदकं चापि देवि कार्यार्थघातकम् ॥
मार्जारबकवृत्तिं च रन्ध्रान्वेषणतत्परम् ।
मायान्वितं कृतघ्नं च प्रच्छन्नाऽन्तरदायकम् ॥

विश्वासघातकं देवद्रोहिणं पापकारिणम् ।
अविश्वासमवद्याङ्गमनर्थसिद्धिकाङ्क्षिणम् ॥
आततायिनमाऽऽदित्सुः कुत्सितं कूटसाक्षिकम् ।
सर्वत्र याचकं देवि सर्वाऽऽकृष्टाभिगामिनम् ॥
असत्यनिष्ठं चाऽसक्तं ग्राम्यादिबहुभाषिणम् ।
दुर्विचारकुतर्कादिकारकं कलहप्रियम् ॥
वृथाऽऽक्षेपकरं भ्रान्तं भ्रामकं वाग्विडम्बकम् ।
परोक्षे दूषणकरं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ॥
वाग्रूक्षवादिनं विद्याचोरमात्मप्रशंसकम् ।
गुणासहिष्णुं सद्भीतमार्त्तिक्रोधसमन्वितम् ॥
चार्वाकं दुर्जनसखं सर्वलोकविगर्हितम् ।
पिशुनं परसन्तापं सर्वप्राणिभयङ्करम् ॥
स्वक्लेशवादिनं मित्रद्रोहिणं भ्रातृवञ्चकम् ।
जिह्वोपस्थपरं देवि तस्करं पशुचेष्टितम् ॥
अकारणद्वेषहासक्लेशक्रोधादिकारिणम् ।
अतिहास्यसकर्माणं मर्माऽन्तः परिहासकम् ॥
कामुकं चाऽतिनिर्लज्जं मिथ्यादुश्चेष्टसूचकम् ।
असूया-मद-मात्सर्य-दम्भाहङ्कारसंयुतम् ॥
ईर्ष्या-पैशून्य-पारुष्य-कार्पण्य-क्रोधमानिनम् ।
अधीरं दुःखितं द्वेष्यमशक्तं तत्त्ववर्जितम् ॥
अप्रसन्नमतिं मूढं चिन्ताकुलितमानसम् ।
तृष्णालोभयुतं दीनमतुष्टं सर्वयाजकम् ॥

बह्वाऽशिनं कपटिनं भ्रामकं कुटिलं प्रिये।

भक्ति-श्रद्धा-दया-शान्ति-धर्माऽचारविवर्जितम्॥

माता-पितृ-गुरु-प्राज्ञ-महतां हास्यकारकम्।

कुलद्रव्यादिबीभत्सुः गुरुसेवाभिमानिनम्॥

स्त्रीद्विष्टं समयभ्रष्टं गुरुशप्तं कुलेश्वरि।

इत्यादिविगुणोपेतं गुरुः शिष्यं परित्यजेत्॥

स्नेहाद् वा लोभतो वापि यदि गृह्णाति दीक्षयेत्।

तस्मिन् गुरौ सशिष्ये तु देवताः शापमाप्नुयात्॥

तस्मादेवंविधं शिष्यं न गृह्णीयात् कथञ्चन।

यदि गृह्णाति मोहेन तत्पापैर्व्याप्यते गुरुः॥

मन्त्रिपापं च राजानं, पतिं जायाकृतं यथा।

तथा शिष्यकृतं पापं प्रायो गुरुमपि स्पृशेत्॥

इति निन्द्यशिष्यपरिग्रहे दोषश्रवणादसच्छिष्यं न परिगृह्णीयात् प्रायः। इति गुरुणा शिष्यः सम्यग् बोधनीयः। सम्यग्बोधितोऽपि तद्वाक्यमनाऽऽदृत्य पापं चेदाऽऽचरति, तदा तत्पापं, गुरुं न व्याप्नोतीत्यर्थः।

"वर्णाऽऽश्रमाणां सर्वेषां आचारः सद्गतिप्रदः।

गुरुस्त्रिवारमाचारं बोधयेत् कुलनायिके॥

न गृह्णाति हि शिष्यश्चेत्तदा पापं गुरोर्न हि"॥

इति श्रीकुलार्णववचनात्। इति गुरुशिष्यलक्षणानि।

॥अथ दीक्षा॥

तत्र यथोक्तलक्षणः शिष्यः, यथोक्तलक्षणं गुरुं, पूर्वं चिरकालसेवितं शुश्रूषां-वित्त-प्रदान-विनय-प्रणामाद्यैः बहुशः परितोषितं सुस्नातं कृतपूर्वाऽ-

ह्निकक्रियं स्वयं च स्नातः कृतपूर्वाह्निककृत्यः समलङ्कृतः पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं ब्राह्मणैः स्वस्ति वाचयित्वा, ॐ अद्य, अमुके मासि, अमुकराशिगते सवितरि, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, भारतवर्षाख्यभूप्रदेशे, विशेषक्षेत्रे चेत्अमुकक्षेत्रे, अमुकगोत्रो, अमुकवेदाऽन्तर्गतः, अमुकशाखाध्यायी, (ब्राह्मणश्चेद् अमुकशर्मा, क्षत्रियश्चेद् अमुकवर्मा, वैश्यश्चेद् अमुकगुप्तः, शूद्रश्चेद् अमुकदासः,) अहं "मम चतुर्विधपुरुषार्थसिध्यर्थं श्रीविद्याग्रहणमहं करिष्ये इति कुशहस्तः प्राङ्मुखः उदङ्मुखो वाऽसं कल्पं कृत्वा, पुनः पूर्वोक्तएवंगुणविशेषणविशिष्टायां पुण्यतिथौ, अमुकगोत्रिणं, अमुकवेदाऽन्तर्गताऽमुकशाखाऽध्यायिनममुकशर्माणं "त्वां श्रीविद्याग्रहणार्थं गुरुत्वेन वृणे" इति कुण्डलस्वर्ण-यज्ञोपवीत-हार-केयूर-वलयाङ्गद-मुद्रिका-वसनादि गुरु-पादयोः निक्षिप्य, प्रणम्य, वृणुयात्।

ततो "वृतोऽस्मीति" गुरुणा प्रतिवचने दत्ते शिष्यः कृताऽञ्जलिः, "यथोचितं गुरुकर्म कुरुष्व" इति ब्रूयात्।

ततो गुरुः "करवाणि" इति प्रतिश्रुत्य, पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं मौनी समलङ्कृतः ब्राह्मणाशीर्भिरभिनन्दितः सशिष्यः सामयिकैः सार्द्धं दीक्षामण्डस्य पश्चिमद्वारं गत्वा, पादौ प्रक्षाल्य, आचम्य, प्राङ्मुखः स्वासने समुपविश्य, प्रागुक्तं सामान्यार्घं विधाय, द्वारपूजां प्राग्वत् कृत्वा, भूतोत्सारणं विधाय, प्राग्वदेव मण्डपान्तः प्रविश्य, वास्त्वीशदीपनाथादिपुष्पमर्दिन्यम्बान्तं सम्पूज्य, पञ्चगव्याऽर्घतोयाभ्यां मण्डपाभ्यन्तरं प्रोक्ष्य, मण्डपं वीक्षणादिचतुर्भिः संस्कारैः संस्कृत्य, दशाऽङ्गऽगुरुधूपैर्मण्डपं धूपयित्वा, लाज-चन्दनसिद्धाऽर्थ-भस्म-दूर्वा-कुशात्मकान् अस्त्रमन्त्रेण सप्त अभिमन्त्रितान् विकिरान् मण्डपाभ्यन्तरे विकीर्य, अस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितेनकुशमुष्टिना तान् विकिरान् सम्मार्ज्य, एकीकृत्य, ईशानकोणे तत्संच्छाद्य, ब्राह्मणैः पुण्याऽहं वाचयित्वा, ब्राह्मणान् दक्षिणादिभिः परितोष्य, वेद्यां श्रीचक्रमुद्धरेत्।

तत्र वेदिकायां गोमयोपलिप्तायां पश्चिमतः स्वाऽऽसनस्थानं परित्यज्य, पूर्वभागे, सुसमे भूतले हंसपदं विधाय, तत्सदृशस्थानमवष्टभ्य, प्रतिपार्श्वं षट्त्रिंशदङ्गुलमानभ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, तत्र प्राक्-प्रत्यगायतं ब्रह्मसूत्रमास्फाल्य, तदष्टचत्वारिंशदंशेन विभज्य, तद्ब्रह्मसूत्रे प्रागादिषट्षट् पञ्चांशमाने तिर्यक्सूत्रत्रयं दत्वा, पुनरपि पश्चिमादिषट्षडंशमान-तिर्यक् सूत्रत्रयं विधाय, प्रागादितृतीयसूत्रस्य पश्चिमादितृतीयसूत्रस्य च मध्ये वक्ष्यमाणमर्माऽनुगुणं तिर्यक्सूत्रत्रयस्थानं कर्तव्यतया मनसा परिकल्प्य, तैः सह नवसु तिर्यक्सूत्रेषु सर्वपश्चिमस्थं सूत्रं प्रथमसूत्रं परिकल्प्य, तत्क्रमात् तेषु तृतीय सप्तमसूत्रद्वयं वृत्तस्पृष्टं कृत्वा, तत्तृतीयसूत्राऽग्रद्वयादिब्रह्मसूत्रप्रागग्रवृत्तसम्पातात् तं सूत्रद्वयं तत्सप्तमसूत्राऽग्रद्वयादि ब्रह्मसूत्रपश्चिमाग्रवृत्तसम्पातात् तं सूत्रद्वयं च सम्भूय सूत्रचतुष्टयमास्फाल्य, षट्कोणं कृत्वा, पुनः तत्प्रथमरेखा मध्यादिप्राङ्निर्मितषट्कोणप्राचीनमर्मानुगुणगतिवशेन यावदष्टमरेखाऽग्रद्वयान्तं सूत्रद्वयं पुनः नवमरेखामध्यादि षट्कोणस्य पश्चिममर्माऽनुगुणगतिवशेन यावद्द्वितीयरेखाऽग्रद्वयान्तं सूत्रद्वयं सम्भूय सूत्रचतुष्टयं मर्मचतुष्टयाऽनुगुणमास्फाल्य, पुनः नवमतिर्यक्सूत्रोभयपार्श्वान्तमारभ्य सममाष्टमसूत्रयोरुभयपार्श्वसम्पातस्थानचतुष्टयाऽनुगुणं ब्रह्मसूत्रस्याऽष्टाग्रकं सूत्रद्वयमास्फालयेत् ।

तत्सूत्रद्वयस्य ब्रह्मसूत्रे यत्र सम्पातं तत्पश्चिमादि चतुर्थतिर्यक्सूत्रस्य स्थानं भवति, पुनः सप्तमसूत्र-मध्यादिपश्चिमतः उभयपार्श्वस्थमर्मद्वयमर्मद्वयाऽनुगुण्येन यावत्प्रथमतिर्यक्सूत्रोभयपार्श्वान्तं सम्भूय, चतुर्मर्माऽनुगुण्येन सूत्रद्वयमास्फाल्य, पुनरष्टमतिर्यक् सूत्रमध्यमारभ्य प्रथमसूत्रमध्यात् प्रसारितसूत्रद्वयाऽवधि प्रसूतचतुर्थतिर्यग्रेखाऽग्रद्वयान्तं सूत्रद्वयं न्यसेत् । पुनरष्टमरेखामध्यादिपश्चिमतः प्रसृतसूत्रद्वयस्य चतुर्थरेखामध्यादि प्राक्प्रसृतसूत्रद्वयस्य च सम्पातद्वयानुगुणं नवमरेखामध्यात् पश्चिमतः प्रसृतोभयरेखावधि तिर्यग्रेखां कृत्वा, तदग्रद्वयमारभ्य द्वितीयरेखामध्याऽवधिसूत्रद्वय-

मास्फाल्य, पुनः तुर्यरेखामध्यादि प्राक्प्रसृतरेखाद्वयस्य सप्तरेखामध्यादि-पश्चिमतः प्रसृतरेखाद्वयस्य च सम्पातद्वयाऽनुगुणं तुरीयरेखाग्रद्वयात् पूर्वतः प्रसृतरेखाद्वयस्पृष्टाऽग्रद्वयां तिर्यग्रेखां कृत्वा, तदग्रद्वयमारभ्य, तृतीयतिर्यक्-सूत्रमध्याऽवधि सूत्रद्वयमास्फाल्य, ब्रह्मसूत्रं मानयित्वा, वृत्तस्पृष्टषडस्रं तदस्पृष्टाऽष्टाऽस्त्रमष्टादशमर्मोपेतं चतुर्विंशतिसन्धियुतं श्रीचक्रं बिन्द्वादि-चतुर्दशारान्तं निष्पाद्य, तद्बहिः त्र्यङ्गुलमानेन वृत्तं कृत्वा, तद्बहिः अपि षडङ्गुलमानेन वृत्तान्तरं विरच्य, तत्र त्र्यङगुलवीथ्यां केसराणि षोडश-रेखाभिः परिकल्प्य, बहिः षडङ्गुलवीथ्यां अष्टदिक्षु अष्टदलानि परिकल्प्य, तद्बहिः त्र्यङ्गुलमानेन वृत्तमेकं तद्बहिः षडङ्गुलमानेन च वृत्तमिति वृत्तद्वयं निष्पाद्य, त्र्यङ्गुलान्तरालवीथ्यां समान्तरालाभिः केसराणि परिकल्प्य, तद्बहिः षडङ्गुलवीथ्यामष्टदिक्षु तदन्तरालेषु च षोडशदलानि निर्माय तद्बहिः एकै-काऽङ्गुलान्तराले वृत्तद्वयं भ्रामयित्वा, तद्बहिः द्व्याङ्गुलमानं त्यक्त्वैकैकाङ्-गुलमानेन चतुरस्रत्रयं प्रागादिचतुर्दिक्षु प्रतिदिशं दशदशाऽङ्गुलविस्ताराऽ-न्तरालद्वारयुतं कुर्यात् । इति चक्रराजं समुद्धृत्य, तत्समीपे स्वाऽऽसनस्थानं प्राग्वत् संशोध्य, तत्र स्वासनमास्तीर्य, प्राग्वत् सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखः पद्माद्याऽऽसनेनोपविश्य, मौनी विजितेन्द्रियः प्राग्वत् पूजाद्रव्याण्यासाद्य, तानि तथैव संस्कृत्य, ततो गुर्वादिवन्दनाऽन्ते प्राग्वत् "समस्तप्रकटे"त्यादि समष्टियोगिनीमूलविद्यया चक्रराजे त्रिः पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, करशुध्यादि मानसपूजान्तं प्राग्वत् विधाय, मूलविद्यामष्टोत्तरशतं जपित्वा, जपं देव्यै समर्प्य, पूर्ववदर्घस्थापनाद्यात्मपूजान्तं विधाय, पुनः मूलविद्यां यथाशक्ति जपित्वा, जपं देव्यै समर्प्य, पुनः पूर्ववत् श्रीचक्रे पुष्पाञ्जलिं दत्वा, मध्य-त्रिकोणमध्यं शालिभिः आपूर्य्य तदुपरि तण्डुलानि निक्षिप्य, तत्र दर्भा-नास्तीर्य, साऽग्रान् दीर्घान् सप्तविंशतिदर्भान् एकीकृत्य, प्रदेशे ब्रह्मग्रन्थिं विधाय, कूर्चं कृत्वा, गन्धाऽक्षतदूर्वायुतं तत्कूर्चं शालिपुञ्जोपरि निधाय, तत्र प्रागुक्तविधिना पीठपूजां विधाय, सुवर्णादिरचितं कुम्भमव्रणं अतिशोभ-

नाऽऽकृतिमक्षमन्त्रेण क्षालितं चन्दनाऽगुरुकर्पूरधूपिताभ्यन्तरं त्रिगुणीकृततन्तुना वेष्टितसर्वाङ्गमच्छिद्रं गन्धपुष्पादिभिः पूजितं कुम्भं कुशाक्षतसमन्वितं पुष्प-नील-वैडूर्य-विद्रुम-मौक्तिक-मरकत-वज्र-गोमेद-पद्मरागाऽऽख्यनवरत्नोदरं शालिपुञ्जोपरि प्रणवमुच्चरन्, संस्थाप्य, प्रागर्चितयोगपीठस्य कुम्भस्य चैक्यं परिकल्प्य, एकपञ्चाशद् वर्णौषधि-क्वाथतोयैः क्षीरवृक्षत्वक्-क्वाथजलैः ब्रह्मवृक्षत्वक्क्वाथजलैः गन्ध-पुष्प-कर्पूरवासितैः तीर्थजलैः वात्मभेदेन प्रत्यक्षरं सबिन्दुमातृकां प्रतिलोमेन पठन्, मूलविद्यामपि जपन्, देवताधिया तं कुम्भं आपूर्य, पुरतः प्रागुक्तसामान्याऽर्घविधिना शङ्खं संस्थाप्य, तं शङ्खं कुम्भतोयसजातीयजलेनापूर्य, तत्र चन्दनाऽगुरु-कर्पूर-गोरोचनाकाश्मीर-कचोर-जटामांसीसिंहलकाख्याऽष्टगन्धपङ्कं निक्षिप्य, तस्मिन् शङ्खजले प्रागुक्तवह्नेः दशकलाः, सूर्यस्य द्वादशकलाः, सोमस्य षोडशकलाः सृष्ट्यादिपञ्चाशत् कलाश्च विशेषार्घस्थापनप्रकरणोक्तप्रकारेणावाह्य, प्राग्वत् तासां प्राणप्रतिष्ठां च विधाय, सम्पूज्य, प्रतिलोममूलविद्या त्रिः सकृद् वा शङ्खं स्पृशन् जपित्वा, हृदये देवं ध्यात्वा, तच्छङ्खस्थं जलं कुम्भजले निक्षिप्य, अश्वत्थ-पनस-आम्र-पल्लवानि शतक्रतुलतया समाऽऽबध्य, कल्पद्रुम-धिया कुम्भवक्त्रे निधाय, तदुपरि कुम्भसजातीयं तण्डुलपूर्णं नालिकेरफलान्वितं चषकं संस्थाप्य, तत्फलं कल्पवृक्षफलं ध्यायन्, आरक्तपट्टवस्त्रयुगेन तं कुम्भं संवेष्टयेत्। इति प्रधानकुम्भं संस्थाप्य, पूर्वादितोरणसमीपेषु शालिपुञ्जोपरि प्राग्वत् कुम्भान् संस्थाप्य, पूर्वकुम्भे ध्रुवं, दक्षिणे धरां, पश्चिमे वाक्पतिं, उत्तरे विघ्नेशं च सम्पूज्य, तद्वत् मण्डपस्य कोणचतुष्टये कुम्भान् संस्थाप्य; आग्नेयकुम्भेऽमृतं, नैऋत्ये दुर्जयं, वायव्ये सिद्धार्थं, ईशाने मङ्गलं च सम्पूज्य; ततः पूर्वादिकुम्भेषु इन्द्रादीन् वैदिकमन्त्रैः सम्पूज्य, पूर्वाद्यष्टदिक्षु

"ऐरावतं पुण्डरीकं वामनं कुमुदाऽञ्जनौ।
पुष्पदन्तं सार्वभौमं सुप्रतीकं च पूजयेत्"॥

इति दिग्गजान् सम्पूज्य, पुनः स्वासने समुपविश्य, गुर्वादिवन्दनपूर्वकं मूलविद्यया प्राणायामत्रयं, मूलविद्यायाः ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासांश्च विधाय,

प्रधानकुम्भे प्राग्वत् मूलविद्यया श्रीपरदेवतामूर्तिं परिकल्प्य, तस्यां श्रीपरदेवतामावाह्य, सर्वोपचारैः आराध्य, प्राग्वत् तिथिनित्यादि श्रीचक्रगतसमस्तदेवतावृन्दं सम्पूज्य, प्राग्वत् धूपदीपौ निवेद्य, नैवेद्यं परिकल्प्य, प्राग्वत् भुञ्जानां देवीं ध्यात्वा, स्वदक्षिणभागे गोमयोपलिप्तभूतले हस्तमात्रविस्ताराऽऽयामं अङ्गुष्ठपर्वमात्रोच्चमङ्गुलमात्रोच्चं वा बालुकाभिः समचतुरस्रं स्थण्डिलं कृत्वा, तत्र नित्यहोमोक्तविधिना वह्निं संस्कृत्य, तत्र देवीमावाह्य, गन्धादिभिः सम्पूज्य, प्राग्वत् तारव्याहृतिभिराज्याऽऽहुतीः हुत्वा, सघृतेन पायसेन मूलविद्यया पञ्चविंशत्याऽहुतीः षडङ्गेन षडाहुतीश्च हुत्वा, पुनः महाव्याहृतिहोमान्ते देवीं सम्पूज्य, तां कुम्भस्य मूर्तौ विसृज्य, वह्निं च प्राग्वदुद्वास्य, प्राग्वद् बलिदानं विधाय, उत्तराऽऽपोशनादि राजोपचारान्तं कृत्वा, प्राग्वत् ताम्बूलं निवेद्य, आरार्तिकं, कुमार्याः पूजनं च प्राग्वदेव विधाय, प्राग्वत् मूलविद्यामष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा, देव्यै समर्प्य, स्तुत्वा, प्रणम्य, मण्डपस्येशानकोणे पूर्वसञ्चितविकिरपुञ्जोपरि सोदकं हिरण्यगर्भं वस्त्रादिसंयुक्तं करकं निधाय, तस्मिन् सिंहासनाऽऽरूढां खेटकधारिणीं घोररूपां पश्चिमाऽभिमुखीमस्त्रदेवतां ध्यात्वा, तिष्ठन् तां गन्धादिभिः, सम्पूज्य, तं करकमादाय, श्रीपरदेवताऽऽज्ञया अस्मान् रक्ष, रक्षेति लोकपालानां देव्याऽऽज्ञां श्रावयन्, मण्डपाऽन्तर्नालमुक्तोदकधारया परिषिञ्चन्, प्रदक्षिणं परिक्रम्य, अस्त्रमुच्चरन्, यथास्थाने तं करकं निवेश्य, पुनः पूर्ववदस्त्रदेवतामभ्यर्च्य, इन्द्रेशानयोर्मध्ये चतुरस्रकुण्डे आचार्योऽग्निस्थापनं कुर्यात्।

"श्री विद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ तरङ्गः पञ्चविंशकः"॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचते

सौभाग्यरत्नाकरे पञ्चविंशस्तरङ्गः॥२५॥

॥ श्रीः॥

अथ षड्विंशतरङ्गः

॥ अथ अग्निस्थापनम् ॥

तत्रादौ, गुरुः स्वकुण्डसमीपे स्वाऽऽसनं प्राग्वत् सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखः उपविश्य, कुण्डं गोमयोपलिप्तमष्टादशभिः संस्कारैः संस्कुर्यात्।

तत्र मूलमन्त्रं स्मरन्, दिव्यदृष्ट्या कुण्डं निरीक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेण कुशसलिलैः उत्तानहस्ताऽग्रेण प्रोक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेणैव कुशैः त्रिः सन्ताड्य, कवचमन्त्रेण विरलमुष्टिना जलैरभ्युक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेण खनित्रेण खनित्वा, अस्त्रमन्त्रेण मृदमुद्धृत्य, बहिः परित्यज्य, हृन्मन्त्रेण मृत्तिकान्तरेण तत्खातमायूर्य, अस्त्रमन्त्रेण तत्समीकृत्य, कवचमन्त्रेण जलैः आसिच्य, अस्त्रमन्त्रेण फलकादिना दृढीकृत्य, कवचमन्त्रेण कुशैः सम्मार्ज्य कवचेनैव गोमयाद् विलिप्य, कवचेनैव सोम-सूर्य-अग्निकलारूपं परिकल्प्य, कवचेन सूत्रत्रयं त्रिः त्रिः संवेष्ट्य, मूलविद्यामुच्चार्य, अमुककुण्डाय नम इति कुण्डं सम्पूज्य, पुनः प्रणवमुच्चार्यः, नाभये नमः इति नाभिं कुण्डमध्यगतं सम्पूज्य, हृन्मन्त्रेण मेखालाभ्यो नमः इति मेखलाश्च सम्पूज्य, अस्त्रमन्त्रेण कुण्डं वज्रवद् दृढतरं सञ्चिन्त्य, हृन्मन्त्रेण कुण्डस्य चतुर्दिक्षु बह्नेः ज्वाला विलासाय मार्गचतुष्टयं कुशैः परिकल्प्य, अच्छिन्नाऽग्रैः कुशैः अस्त्रमन्त्राभिमन्त्रितैः कवचमन्त्रेण कुण्डभित्तिगणं सर्वमाच्छादयेत्। इति अक्षपाटनं कुर्यात्। एवमष्टाभिः संस्कारैः कुण्डं संस्कृत्य, अथवा प्रथमोक्तैश्चतुर्भि रेव वीक्षणादिभिः संस्कृत्य, अग्निस्थापनं कुर्यात्। स्थण्डिले तु चतुःसंस्कारा एव कार्याः। अत्र हृन्मन्त्रकवचमन्त्रस्तु न्यासोक्तरूपाः ज्ञेयाः; न तु नमः पदेन सह हुं पदमात्राः। ततः

कुण्डमध्यभूमौ कुशमूलेन दक्षिणमध्योत्तरेषु पश्चिमादिप्रागग्राः तिस्रोः रेखाः हृदयमन्त्रेण विलिख्य, पुनः पश्चिममध्यपूर्वेषु दक्षिणादुत्तराऽग्राः तिस्रो रेखाः, तथैव विलिख्य, बालायाः वाग्भवबीजेन कुशसलिलैः प्रोक्ष्य, प्रागग्ररेखासु दक्षिणरेखायां ॐ विष्णवे नमः, मध्यरेखायां ॐ ईश्वराय०, उत्तररेखायां ॐ रुद्राय०, उदगग्ररेखासु पश्चिमरेखायां ब्रह्मणे नमः, मध्यरेखायां यमाय नमः, पूर्वरेखायां सोमाय०, इति रेखाधिदेवताः सम्पूज्य, तत्र त्रिकोणगर्भं चतुर्द्वारयुत-चतुरस्रद्वयवेष्टितं अष्टदलकमलं कामेश्वरीपीठं विरच्य, विभाव्य वा, तत्र ॐ मण्डूकाय नमः, ॐ कालाग्निररुद्राय नमः, ॐ मूलप्रकृत्यै०, ॐ आधारशक्त्यै०; कूर्माय०, अनन्ताय०, वराहाय०, भूम्यै, सुधार्णवाय० रत्नद्वीपाय०, महाकल्पकोद्यानाय०, स्वर्णप्राकाराय०, कदम्बवनाय०, मणिमण्डपाय०, कल्पवृक्षाय०, स्वर्णवेदिकायै०, रत्नसिंहासनाय नमः, इति सम्पूज्य, चतुरस्रं सिंहासनत्वेन परिकल्प्य, तस्याग्नेयादिकोणचतुष्टये धर्माय० ज्ञानाय० वैराग्याय० ऐश्वर्याय०; तस्य स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु अधर्माय० अज्ञानाय० अवैराग्याय० अनैश्वर्याय०; मध्ये मायायै० विद्यायै० अनन्ताय० पद्माय०, आनन्दकन्दाय० संविन्नालाय० प्रकृतिमयपत्रेभ्यो० विकृतिमयकेसरेभ्यो० पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्य सर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः, अं अर्कमण्डलाय० ॐ सोममण्डलाय० मं वह्निमण्डलाय०, सं सत्त्वाय० रं रजसे० तं तमसे० अं आत्मने नमः अं अन्तरात्मने नमः पं परमात्मने० ह्रीं ज्ञानात्मने० स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु मध्ये च ॐ ज्ञानतत्त्वात्मने० मायातत्त्वात्मने० कलातत्त्वात्मने० विद्यातत्त्वात्मने० परतत्त्वात्मने नमः इति सम्पूज्य, अष्टदलकेसरेषु स्वाग्रमारभ्य, ॐ मोहन्यै नमः क्षोभण्यै० वशिन्यै० स्तम्भिन्यै० आकर्षिण्यै० द्राविण्यै० आह्लादिन्यै० क्लिन्नायै०; मध्ये क्लेदिन्यै नमः इति पीठशक्तीः सम्पूज्य, क्लीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम इति समस्तं पीठं सम्पूज्य; पुनः कामबीजमुच्चार्य, कामेश्वरकामेश्वरीमूर्तिं परिकल्प्य, पुनः कामबीजमुच्चार्य, कामेश्वरकामेश्वरी मूर्तिभ्यां नमः इति सम्पूज्य, काम-

बीजेन प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सम्मोहनऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये श्री कामेश्वरीदेवतायै नमः, गुह्ये कं बीजाय० पादयोः ईं शक्तये० नाभौ लं कीलकाय नमः इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः इति कृताञ्जलिर्वदेत् ।

ततः क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, क्लूं शिखायै वषट् क्लैं कवचाय हुं, क्लौं नेत्राय वौषट् क्लः अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्रान् अङ्गुष्ठादितलान्तं करयोः विन्यस्य हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य,

"जपाकुसुमसङ्काशां धनुर्बाणधरां स्मरेत् ।

नानाऽलङ्कारसुभगां मोहयन्तीं जगत्त्रयम्" ॥

इति हृदये ध्यात्वा, मानसं पूजयित्वा, कराभ्यां पुष्पाञ्जलिमादाय, हृदयकमलात् तेजोरूपां भगवतीं करस्थपुष्पाञ्जलौ सुषुम्ना वर्त्मना वहन्, नासापुटद्वारेण निःसार्य, कुण्डमध्यस्थयन्त्रमध्ये कल्पितमूर्त्तौ प्राग्वदावाह्य, आवाहनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय, प्राणप्रतिष्ठान्ते धनुःबाणयोनिमुद्राः प्रदर्श्य, प्रागुक्तरूपां स्वसमानवर्णाऽऽयुध-भूषणादियुत-कामेश्वरयुतां ऋतुमतीं सकामां ग्राम्यधर्माऽभिरतां ध्यात्वा, प्राग्वद् आसनादिपुष्पान्तैः उपचारैः देवदेव्यौ पृथक्– पृथक् सम्पूज्य; अष्टदलकेसरेषु अग्नीशासुरवायव्य-देव्यग्र स्वाऽग्रादिचतुर्दिक्षु च क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे नमः, क्लूं शिखायै नमः, क्लैं कवचाय नमः, क्लौं नेत्राय नमः, क्लः अस्त्राय नमः इति सम्पूज्य; कर्णिकायां त्रिकोणान्तः स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु प्रादक्षिण्येन देव्यग्रे च द्रां द्राविण्यै नमः, द्रीं क्षोभिण्यै नमः क्लीं वशीकरिण्यै नमः, ब्लूं आकर्षिण्यै नमः, सः सम्मोहिन्यै नमः, इति सम्पूज्य; अष्टदलेषु देव्यग्रादि अनङ्गरूपिण्यै० अनङ्गमन्मथायै० अनङ्गकुसुमायै० अनङ्गमदनाऽऽतुरायै० अनङ्गशिशिरायै० अनङ्गमेखलायै० अनङ्गदीपिकायै० इति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य; चतुरस्रप्राग्वल्लोकपालान् तत्तदस्त्राणि च सम्पूज्य, धूपादिताम्बूलान्तानुपचरान् परिकल्प्य, स्वर्ण-रजत-ताम्र-नूतनमृण्मयाऽन्यतमे पात्रे

अरणिभवं सूर्य कान्तादिमण्युद्भवं लोहपाषाणाद्युद्भूतं श्रोत्रियद्विजगृहाद् आहृतं वास्त्रेण अग्निमादाय, कवचमन्त्रेण सजातीयपात्रान्तरेण पिधाय, अग्निमादाय, अस्त्रमन्त्रेण तन्मध्यादेकमङ्गारं नैरृत्यकोणे क्रव्यादांऽशं परित्यज्य, देवांऽशं स्वपुरतः सपात्रं मूलविद्यया संस्थाप्य, मूलमन्त्रेण वीक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेण प्रोक्ष्य, अस्त्रमन्त्रेणैव कुशैः त्रिः सन्ताड्य कवचेनाभ्युक्ष्य, प्रणवेनाभिमन्त्र्य, धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य, अस्त्रमन्त्रेण संरक्ष्य, कवचेनाऽवगुण्ठ्य, जानुभ्यामवनीं गत्वा, तत्पात्रं कराभ्यामादाय, कुण्डस्योपरिदक्षिणं त्रिः परिभ्रम्य, प्रणवमुच्चरन् कामेश्वर्याः कामेश्वरस्य बीजमिति ध्यायन्, स्वाभिमुखं कुण्डमध्ये अग्निं निक्षिप्य, कामेश्वरीकामेश्वरयोराऽऽचमनं दत्वा, स्वनाभिमण्डले जठराग्निं सञ्चिन्त्य, सुषुम्ना वर्त्मना ब्रह्मरन्ध्रस्थाऽग्नीषोमात्ममहाबिन्दुमध्यगतबैन्दवाऽग्नौ तं जठराग्निं संयोज्य, तौ पुनः वहन्, नासाऽध्वना निःसार्य, कुण्डमध्यस्थपार्थिवाऽग्नौ संयोज्य, कामेश्वरीगर्भो वक्ष्यमाणध्यानोक्तरूपां वह्निमूर्तिं सञ्चिन्त्य, मूलविद्यान्ते आं सोऽहं वह्नि चैतन्याय नमः इति तस्यां मूर्त्तौ वह्निचैतन्यं संयोज्य, क्लीं वह्निमूर्त्तये नम इति वह्निमूर्त्तिं सम्पूज्य, तदुपरि कुशान् शुष्ककाष्ठशकलानि च निक्षिप्य, चित्यै गल हन-हन, दह-दह पच-पच, सर्वज्ञा ज्ञापय स्वाहा, इति मन्त्रेण मुखेन फूत्कृत्य, अग्निं प्रज्वाल्य,

"अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखम्"॥

इति ज्वलन्तमग्निमुपतिष्ठेत्।

ततो वक्ष्यमाणवह्निमन्त्रेण प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि भृगुऋषये नमः, मुखे गायत्रीछन्दसे नमः, हृदये आग्नेय देवतायै नमः, इति विन्यस्य, होमार्थे विनियोगः इति कृताञ्जलिर्वदेत्।

ततः सहस्राऽर्चिषे हृदयाय नमः स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, धूम्रव्यापिने कवचाय हुं, सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय

वौषट् धनुर्धराय अस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्रेण अङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि न्यसेत् । ततो लिङ्गे स्त्पूरूं हिरण्यायै नमः, पायौ ष्त्पूरूं कनकायै नमः, शिरशि श्र्यूं रक्तायै नमः, मुखे व्पूरूं कृष्णायै नमः, नासिकायां ल्पूरूं सुप्रभायै नमः, सर्वाङ्गे य्पूरूं बहुरूपायै नमः नेत्रयोः न्यूं अतिरक्तायै नमः इति सप्तजिह्वाः विन्यस्य, मूर्ध्नि ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, वामांऽसे ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, वामपार्श्वे ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः, वामकट्यां ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः; लिङ्गे अग्नये वैश्वानराय नमः, दक्षिणकट्यां ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, दक्षिणपार्श्वे ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, दक्षिणांऽसे ॐ अग्नये देवमुखाय नमः, इति वह्नेरष्टमूर्तीः विन्यस्य सप्तजिह्वामुद्रां बद्ध्वा, वक्ष्यमाणवह्निरूपं स्वाऽभेदेन ध्यात्वा, वह्निमन्त्रेण प्रागुक्तसामान्यार्घविधिना अर्घपात्रं संस्थाप्य, प्रागुक्तविधिनैव पाद्य-आचमनीय-मधुपर्क-पुनराचमीयप्रोक्षणीपात्राणि च संस्थाप्य, स्रुक्-स्रुवा वा आज्यस्थालीं चरुस्थालीं प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे बाहुमात्रदीर्घमश्लिष्टत्वगव्रणमार्द्रमङ्गुष्ठमात्रस्थूलं परिधित्रयं पलाश-वैकङ्कत-काश्मर्य-बैल्वाद्यन्यतमं, परिधि सजातीयं प्रादेशमात्रदैर्घ्यं कनिष्ठाङ्गुलिमानस्थौल्यं आर्द्रं समित्पञ्चकं, कुशान्, पवित्रत्रयं घृतं पूजाद्रव्याणि, दधि–अक्षतादि-बलिद्रव्याणि च योगोपकरणानि सम्पाद्य, कुण्डस्य उत्तरभागे कुशास्तरे स्रुगादिषट्पात्राणि अधोमुखानि संस्थाप्य, अन्यानि द्रव्याणि च यथायथं निधाय, प्रोक्षणीपात्रजलेन पात्रादीनि प्रोक्ष्य, स्रुक् स्रुवादीनि पात्राणि उत्तानीकृत्य, प्रणीतापात्रं प्रक्षाल्य, स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, शुद्धोदकेनापूर्य गन्धाक्षतान् निक्षिप्य, तत्र पवित्रमुत्तराग्रं निधाय, उत्तानहस्तद्वयाऽङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यां पवित्राऽग्रमूले विधृत्य, अधोमुखौ हस्तौ कृत्वास्त्रमन्त्रेण तज्जलबिन्दुं पवित्रमध्येन भूमौ त्रिः निक्षिप्य, तत्र घृतबिन्दुं दत्वा, कुण्डस्योत्तरे कुशास्तरे तत्पात्रं संस्थाप्य, तदुपरि कुशान् निक्षिपेत् । इति प्रणीताप्रणयनं विधाय, प्रोक्षणीपात्रं प्रक्षाल्य, स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, तत्

शुद्धोदकेनापूर्य, तत्र प्रणीताजलं किञ्चिन्निक्षिप्य, प्राग्वत् पवित्रेणोत्पवनं कृत्वा तेनोदकेन तानि पात्राणि होमोपकरणानि च प्रोक्ष्य, तत्पात्रं त्रिभागजलाऽऽपूर्णं कुण्डस्योत्तरे प्रणीतापात्रस्य पूर्वभागे स्वदक्षिणभागे कुशास्तरे सम्पाताऽऽज्यधारणाय स्थापयेत्।

ततः प्राक् स्थापितप्रोक्षणीजलेन वह्निं मेखलोपरि (अभि)षिञ्च्य, मध्यमेखलोपरि गर्भरहितैः चतुर्भिः चतुर्भिः दर्भैः ईशानादीशानान्तं प्रादक्षिण्येन आग्नेये दक्षिणपरिस्तरणाऽग्रेण पूर्वपरिस्तरणस्य मूलमाऽऽच्छादयन् नैऋत्ये दक्षिणपरिस्तरणाऽग्रमाच्छादयन्, ईशाने उत्तरपरिस्तरणाऽग्रेण पूर्वपरिस्तरणाऽग्रमाच्छादयन्, परिस्तीर्य पश्चिमदक्षिणोत्तरदिक्षु ज्येष्ठ-मध्य-कनिष्ठक्रमेण पूर्वाऽग्रमुत्तराग्रं च परिधीन् निक्षिप्य, तेषु पश्चिमपरिधौ ब्रह्मणे नमः, दक्षिणे विष्णवे नमः, उत्तरे रुद्राय नमः, इति पूजयेत्। अत्र "परिस्तरणपरिधिप्रेक्षेपौ पश्चिमेखलायां योनिनालोर्ध्वमेखलयोर्मध्ये मध्यमेखलोपरि कार्यौ, नालमेखलयोर्मध्यं परिधेः स्थापनस्य च रन्ध्रं कुर्यात्। तथा विद्वान् मध्यस्थमेखलोपरि" इति सारसङ्ग्रहवचनात्। तत्र रन्ध्रस्य विद्यमानत्वात्।

ततः शिष्यो ब्रह्मविद्यया दीक्षितं ब्राह्मणमाहूय, कुण्डस्य दक्षिणभागे कुशाऽऽसने समुपवेश्य; अमुकगोत्रः अमुकशर्मा, अहम्, अमुकगोत्रिणं अमुकवेदाऽन्तर्गत-अमुकशाखाध्यायिनं अमुकशर्माणं मम श्रीमहाविद्यादीक्षाङ्गभूतहोमकर्मणि कृताकृतावीक्षणाय ब्रह्मत्वेन त्वां वृणे इति वस्त्राऽलङ्कारादिभिः वृणुयात्।

ततः तं गन्धादिभिः सम्पूजयेत्। ब्राह्मणाऽलाभे कुशवटुं वा सम्पूज्य, कुण्डमध्ये कामेश्वरीगर्भस्थं वह्निं ध्यायेत्। तद्यथा –

"ततो वैश्वानरं गर्भे त्रिनेत्रमरुणप्रभम्।
शुक्लाम्बरं रक्तरत्नभूषणं पद्मसंस्थितम्॥
वरं शक्तिं स्वस्तिकं चाभीतिं हस्तैस्तु बिभ्रतम्।
अनेकहेममालाभिरङ्कितं संस्मरेत्प्रिये"॥

इति त्रिकोणगर्भितषट्कोणे कर्णिकचतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रद्वयवेष्टिताष्टदलकमलात्मकवह्निपीठमध्यस्थं ध्यात्वा, आधारशक्त्यादिज्ञानात्मान्तं प्राग्वद् योगपीठं सम्पूज्य, अष्टदलकेसरेषु मध्ये च स्वाग्रादि प्रादक्षिण्येन ॐ पीतायै नमः, श्वेतायै नमः, अरुणायै नमः, कृष्णायै नमः, धूम्रायै नमः, तीव्रायै नमः, स्फुलिङ्गिन्यै नमः, रुचिरायै नमः, ज्वालिन्यै नमः, इति नवशक्तिः सम्पूज्य, रं सर्वशक्तिकमलासनाय नम इति समस्तपीठं सम्पूज्य, तन्मध्यस्थं यथोक्तरूपं वह्निं ध्यायन्, स्थापनादिपरमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय, सप्तजिह्वामुद्रां प्रदर्श्य, वैश्वानरजातवेद इहाऽऽवह लोहिताऽक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इति मन्त्रेणाऽऽसनादि-पुष्पान्तैरुपचारैः वह्निं पूजयेत् ।

अत्र वह्निपूजायामर्घादिकं वह्नेः तत्तदङ्गबुध्या कुण्डाद्बहिः पात्राऽन्तरे दद्यात्। चन्दनादीनि वह्नावेव दद्यात् । ततो वह्नेः मुखे षट्कोणं विभाव्य, वहिस्थषट्कोणे वेशानकोणे सूपूरूं हिरण्यायै नमः, षूपूरूं कनकायै नमः, शूपूरूं रक्तायै नूपूरूं कृष्णायै० ल्मूं सुप्रभायै० नूर्पू० अतिरक्तायै नमः, मध्ये यूपूरूं बहुरूपायै नमः इति जिह्वाः सम्पूज्य; अष्टदलकेशरेषु आग्नेये ॐ सहस्राऽर्चिषे हृदयाय नमः; ईशाने ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे नमः; नैऋत्ये उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै नमः; वायव्ये धूमव्यापिने कवचाय नमः; आग्नेये सप्तजिह्वाय नेत्राय नमः; स्वाग्रादिचतुर्दिक्षु धनुर्धरायास्त्राय नमः; इति षडङ्गानि सम्पूज्य, अष्टदलेषु स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ अग्नये जातवेदसे नमः, ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः, ॐ अग्नये कव्यवाहनाय नमः, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः, ॐ अग्नये देवमुखाय नमः। इति मूर्तीः सम्पूज्य, अष्टदलाग्रेषु आं ब्राह्म्यै नमः, ईं माहेश्वर्यै नमः, ॐ कुमार्यै नमः, ॠं वैष्णव्यै नमः, ॡं वाराह्यै नमः, ऐं इन्द्राण्यै नमः, औं चामुण्डायै नमः, अः महालक्ष्म्यै नमः, इत्यग्रादिप्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, चतुरस्रं लोकपालान् तदस्त्राणि च प्राग्वत् सम्पूज्य, पुनरुक्तवह्नि-

मन्त्रेण वह्निं सम्पूज्य, धूपाद्युपचारान् ताम्बूलान्तान् परिकल्प्य, वह्निं प्रणम्य, स्रुक्स्रुवादिसंस्कारान् कुर्यात्।

अत्र दीक्षादिसात्त्विकहोमेषु प्रोक्तसप्तजिह्वाः पूज्याः। वश्यादिराजस-काम्यकर्मसु तु –

"पद्मरागा सुवर्णाऽन्या तृतीया भद्रलोहिता।
लोहिताऽनन्तरं श्वेता धूमिनी च करालिका॥
राजस्यो रसना वह्नेर्विहिताः काम्यकर्मसु"। इति।

मरणादिक्रूरकर्मसु तु –

विश्वमूर्तिस्फुलिङ्गिन्यो धूम्रवर्णा मनोजवाः।
लोहिताऽन्याः करालाख्याः काल्यस्तामस्य ईरिताः॥

इति एताश्च तत्तत्कर्मणि प्रागुक्तबीजाद्याः न्यासपूजासु योज्याः। केचितु – प्रागुक्तसात्त्विकसप्तजिह्वासु कर्मविशेषेषु तत्तत्कर्माऽनुगुणामभ्यर्च्य, तस्यां होमः कार्यः इत्याहुः। उक्तं च भैरवीतन्त्रे –

कुण्डस्य मध्ये त्व सा प्रशस्ता
जिह्वा हिरण्या भुवि कर्मणादौ।
स्तम्भनादिषु मता खलु रक्ता
मारणे निगदिता भुवि कृष्णा॥
सुप्रभा बुधवरैरिह शान्तौ
उच्चाटनेति रिक्तान्तरीति ।

अत्र या जिह्वा मध्ये तिष्ठति तदूर्ध्वगामारभ्य, शेषाः सम्पूज्य, पुनरादि-जिह्वामारभ्य, मध्यस्थजिह्वापर्यन्तमीशानादिमध्यान्तं प्रादक्षिण्येन पूजयेदिति।

"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ षडविंशोऽगात् तरङ्गकः"॥

॥श्री सच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे षड्विंशस्तरङ्गः॥२६॥

॥ श्रीः ॥

अथ सप्तविंशस्तरङ्गः

॥ हवनप्रकारः ॥

अथ प्रकृतेः पुनर्वह्निमन्त्रेण सम्पूज्य, आज्यस्थालीमस्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य, स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय, तस्यामुत्तराऽग्रं पवित्रं निधाय, वीक्षणादि चतुर्भिः संस्कारैः संस्कृतं शुद्धं सुगन्धिसुशोधितं गव्यं घृतमापूर्य, मूलविद्यया त्रिरभिमन्त्र्य, तत्र स्वेष्टदेवतां सञ्चित्य, धेनुमुद्रां प्रदर्श्य, कुण्डादङ्गारान् उद्धृत्य, कुण्डस्य वायव्यकोणे क्वचित्पात्रे भूमौ वा निक्षिप्य, तदुपरि हृन्मन्त्रेण आज्यस्थालीं निधाय, दर्भयुगलमग्नौ सन्दीप्य, दग्धांशमाज्ये हृदा निक्षिप्य, अवशिष्टं अग्नौ प्रक्षिप्य, पुनर्दर्भयुगलं कवचेनाज्योपरि त्रिः भ्रामयित्वा, अग्नौ दर्भशेषं विसृज्य, पुनर्दर्भान् प्रज्वाल्य, आज्यहृन्मन्त्रेण प्रदर्श्य, दर्भशेषानग्नौ प्रक्षिप्य, आज्यस्थालीं अङ्गारेभ्य अत्तरस्यामुत्तार्य, अङ्गारानग्नौ निक्षिप्य, आप उपस्पृश्य, स्वपुरतो दर्भेष्वाज्यस्थालीं निधाय, प्राग्वदस्त्रमन्त्रेण पवित्रमध्येन घृतेन त्रिरुत्पवनं विधाय, हृदयमन्त्रेण स्वाभिमुखं पवित्रमध्येन त्रिः सम्प्लवनं कुर्यादिति तापन-पवित्रीकरण-अभिद्योतन-उद्योतन-उत्पवन-सम्प्लवनाख्यषट्संस्करान् कृत्वा, कराभ्यां स्रुक्स्रुवावूर्ध्वमुखौ गृहीत्वा, तावदधोमुखौ प्रताप्य, कुशमूलैः तयोर्मूलं कुशमध्यैः; तयोर्मध्ये कुशाऽग्रं त्रिः त्रिः परिमृज्य, वामहस्ते निधाय, दक्षिणहस्तेन तौ प्रोक्ष्य, पुनः प्रताप्य, दर्भान् अद्भिः संस्पृश्य, अग्नौ प्रक्षिप्य, तयोरधो वामकरं कृत्वा, ऊर्ध्वमुखौ तौ मूलाद्यग्रान्तं बालाविद्यया त्रिरभिमन्त्र्य, तयोर्मूले ऐं आत्मतत्त्वाय नमः, तयोर्मध्ये क्लीं विद्यातत्त्वाय नमः, तयोरग्रे सौः शिवतत्त्वाय नम इति पृथग् विन्यस्य, पुनस्तयोर्मूले हां इच्छाशक्त्यै नमः,

तयोर्मूले ह्रीं ज्ञानशक्त्यै नमः, तयोरग्रे हूं क्रियाशक्त्यै नम इति शक्तित्रयं विन्यस्य, स्रुचि ह्लीं नमः, स्रुवे ह्रौं नमः इति विन्यस्य, हृन्मन्त्रेण तयोः कण्ठ-देशे त्रितन्तुरूपेण सूत्रेण पृथक्-पृथक् त्रिः प्रदक्षिणं संवेष्ट्य, गन्धादिभिः सम्पूज्य, स्वदक्षिणभागे कुशास्तरे स्थापयित्वा, आज्यस्थाल्यां पवित्रं प्रागग्रं कृत्वा, द्वौ भागौ कृत्वा, दक्षिणभागं शुक्लपक्षं, वामभागं कृष्णपक्षं च सञ्चिन्त्य; वामभागे ईडां, दक्षिणे पिङ्गलां, मध्ये सुषुम्णां च विभाव्य, हृन्मन्त्रेण दक्षिणभागात् स्रुवेणाज्यमादाय, अग्नये स्वाहा, इत्यग्नेर्दक्षिणनेत्रे हुत्वा, "अग्नये इदं न मम" इत्युक्त्वा, पुनर्वामभागात् तथैव आज्यमादाय, सोमाय स्वाहा इति वह्नेर्वामलोचने हुत्वा, "सोमाय इदं न मम" इत्युद्देश-त्यागं विधाय पुनः मध्याद् हृदाऽऽज्यमादाय, अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इति वह्नेर्ललाटलोचने हुत्वा, "अग्नीषोमाभ्यामिदं न मम" इत्युक्त्वा, पुनर्दक्षिण-भागाद् हृदा आज्यं गृहीत्वा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा इति मुखे जुहुयात्।

अत्र सर्वत्र स्रुवलग्नं हुतशेषमाज्यं सम्पातधारणाय प्राक्स्थापितपात्रे निक्षिपेत्। सर्वत्र प्रागुक्तयुक्त्या तत्तन्नाम्नोद्देशत्यागं कुर्यात्। इति वह्नेः नेत्र-वक्त्रोद्घाटनं विधाय, ॐ भूः स्वाहा अग्नये इदं न मम' ॐ भुवः स्वाहा, "वायवे इदम्; ॐ स्वः स्वाहा सूर्यायेदं० ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा, प्रजापतये इदं० इत्याहुतिचतुष्टयं हुत्वा, "वैश्वानरजातवेद इहाऽवह लोहिताऽक्ष सर्व-कर्माणि साधय स्वाहा" इत्यग्निमन्त्रेण आहुतित्रयं हुत्वा, ऐं अग्नेर्गर्भाऽऽ-धानं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्नेः पुंसवनं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं वह्नेः सीमान्तोन्नयनं सम्पादयामि स्वाहा, इति प्रतिकर्म आज्याहुत्यष्टकं हुत्वा, कामेश्वरीगर्भाज्जातं प्रागुक्तरूपं वह्निं ध्यायेत्। ऐं अग्नेः जातकर्म सम्पाद-यामि स्वाहा, इत्यष्टौ आज्याऽहुतीः दत्वा, वह्नेः नालच्छेदं कृत्वा, सूतकं संशोध्य, ऐं वह्नेः नामकरणं सम्पादयामि स्वाहा इत्यष्टौ आज्याहुतीर्हुत्वा, कामाऽग्निरिति नाम परिकल्प्य, कामेश्वरीकामेश्वरौ सम्पूज्य, विसृज्य, ऐं वह्नेः उपनिष्क्रमणं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्नेरन्नप्राशनं सम्पादयामि स्वाहा,

ऐं अग्ने: चौलं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्नेरुपनयनं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्ने: महानाम्न्यं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्ने: महाव्रतं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्ने: उपनिषदं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्ने: गोदानं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्ने: समावर्तनं सम्पादयामि स्वाहा, ऐं अग्ने: विवाहं सम्पादयामि स्वाहा इति प्रतिकर्म अष्टौ-अष्टौ आज्याहुती: हुत्वा, गर्भाऽऽधानादिविवाहान्तान् पञ्चदशसंस्कारान् शुभकर्मसु कुर्यात्। अशुभकर्मसु त्वग्ने: मृतिं सम्पादयामि स्वाहा इति मरणान्तान् षोडशसंस्करान् कुर्यादिति।

ततः मूलाऽग्रघृतप्लुतं समित्पञ्चकं तूष्णीं वह्नौ निक्षिप्य, स्प्र्रयूं हिरण्यायै स्वाहा ष्प्रुं कनकायै० श्प्रूं रक्तायै०, व्प्रूं कृष्णायै०, ल्प्रूं सुप्रभायै०, र्र्यूं० अतिरक्तायै० य्प्रूं बहुरूपायै स्वाहा, ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय स्वाहा, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा, ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै स्वाहा, (ॐ) धूमव्यापिने कवचाय स्वाहा, (ॐ) सप्तजिह्वाय नेत्राय०, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय स्वाहा, ॐ अग्नये जातवेदसे स्वाहा, ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय स्वाहा, ॐ अग्नये हव्यवाहनाय स्वाहा, ॐ अग्नये अश्वोदरजाय स्वाहा, ॐ अग्नये वैश्वानराय स्वाहा, ॐ अग्नये कौमारतेजसे स्वाहा, ॐ अग्नये विश्वमुखाय स्वाहा, ॐ अग्नये देवमुखाय स्वाहा; ॐ आं ब्राह्म्यै स्वाहा, इं माहेश्वर्यै स्वाहा, ॐ कौमार्यै स्वाहा, ऋं वैष्णव्यै स्वाहा, ऌं वाराह्यै स्वाहा, ऐं इन्द्राण्यै स्वाहा, औं चामुण्डायै स्वाहा, अः महालक्ष्म्यै स्वाहा, लं इन्द्राय स्वाहा, तमग्नये स्वाहा, टं यमाय स्वाहा, क्षं निर्ऋतये स्वाहा वं वरुणाय स्वाहा, यं वायवे स्वाहा, सं सोमाय स्वाहा, हं ईशानाय स्वाहा, आं ब्रह्मणे स्वाहा, ह्रीं अनन्ताय स्वाहा, ॐ वज्राय स्वाहा, ॐ शक्त्यै स्वाहा, ॐ दण्डाय स्वाहा, ॐ खड्गाय स्वाहा, ॐ पाशाय स्वाहा, ॐ अङ्कुशाय स्वाहा, ॐ गदायै स्वाहा, ॐ त्रिशूलाय स्वाहा, ॐ पद्माय स्वाहा, ॐ चक्राय स्वाहा, इति वह्नेः जिह्वाङ्गाऽऽवृत्तिदेवतानामेकैकामाज्याहुतिं हुत्वा, स्रुवेण चतुर्वारं, स्रुचि घृतमापूर्य, अधोमुखं स्रुवं स्रुचि

निधाय, उत्थाय, प्रागुक्तवह्निमन्त्रान्ते वौषडिति वह्नौ हुत्वा, उपविश्य, पुनः स्रुवेण ॐ स्वाहा, ॐ स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा, ॐ ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा, ॐ श्री ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर-वरद स्वाहा, ॐ श्री ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर-वरद सर्वजनं मे स्वाहा, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर-वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा, इति दशधा विभक्तेन महागणपतिमन्त्रेण दशाऽऽज्याऽऽहुतीः हुत्वा, समस्तेन महागण-पतिमन्त्रेणाहुतिचतुष्टयं जुहुयात्। समस्त-महागणपतिमन्त्रस्तु दशमाहुति-होमप्रोक्तः प्रणवादिस्वाहाऽन्तो ज्ञेयः।

ततः ताम्रादिनिर्मितां चरुस्थालीमस्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य, तत्र शुद्धान् शालि-तण्डुलान् मूलविद्यया अष्टधा अभिमन्त्रितान् पञ्चदशप्रसृतिमितान् अस्त्रमन्त्रं जपन्, निक्षिप्य, तत्र यथामानं गोक्षीरं निक्षिप्य, कवचमन्त्रेण पात्रान्तरेण तत्पात्रमुखं पिधायः, गुरुः प्राङ्मुखो मूलविद्यां जपन्, इध्मजातीयेन इध्माऽ-र्धमानेन अवदानयोग्यस्थूलाग्रेण वृत्ताऽऽकारघटितेन मोक्षणेन प्रादक्षिण्येन ऊर्ध्वमवघटयन् सुस्विन्नमदग्धं नाऽतिकठिनं नाऽतिशिथिलं चरुं स्नप-यित्वा, स्रुवमाऽज्येनाऽभिपूर्य, मूलविद्यया स्विन्ने तस्मिन् चरौ सप्ताऽभिधारं स्रुवस्थमाज्यं निक्षिप्य, तत्पात्रं कवचेनोत्तार्य, कुण्डस्योत्तरभागे स्ववाम-भागे कुशास्तरे निधाय, प्राग्वत् स्वासनं सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखः उपविश्य, मूलविद्यया प्राणायामत्रयं मूलविद्यया ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासांश्च विधाय, करशुद्धि-षडाऽऽसन-षडङ्गयुवती-वशिन्यादि-अष्टक-चतुःपीठ-चतुस्तत्त्वा-ख्यन्यासषट्कं विधाय, ध्यानमानसपूजाऽन्ते प्राग्वदर्घादिपात्रस्थापनं कृत्वा, आत्मपूजां विधाय, वह्निमुखे श्रीचक्रं ध्यात्वा, प्राग्वद् योगपीठं सम्पूज्य, मूर्तिं कल्पयित्वा, तत्र प्राग्वद् देवीमावाह्य, सर्वोपचारैः सम्पूज्य, प्राग्वत्तिथिनित्यादिसमस्तदेवतावृन्दं सम्पूज्य, सन्तर्प्य, वह्निरूपां भगवतीं ध्यायन्, मूलविद्यया, घृतैः पञ्चविंशत्याहुतीः हुत्वा, वक्त्रैकीकरणं विधाय,

पुनः वह्निदेवतयोः स्वात्मना सह ऐक्यं विभावयन्, नाडीसन्धानार्थमेकादशाऽऽज्याहुतीः मूलविद्यया हुत्वा, अङ्गादिसमस्ताऽऽवृत्तिदेवतानां तत्तन्नामाऽन्ते श्रीपादुकायै स्वाहा इत्यादि तत्तन्नाममन्त्रैः प्रत्येकमेकैकामाज्याऽहुतिं हुत्वा, प्रागादिषु कुण्डेषु ऋत्विग्भिः प्रागुक्तविधिना संस्कृतेषु आचार्यः स्वकुण्डादग्निमुद्धृत्य, उद्धृत्य विहरेत्।

ततो ऋत्विजः स्वे-स्वे कुण्डे वह्निं प्रज्वाल्य, स्व-स्व कुण्डाऽग्रे स्व-स्वाऽऽसनानि प्रागुक्तविधिना सम्पूज्य, उपविश्य, गुर्वादिवन्दनपूर्वकं भूतशुद्ध्यादियथाशक्ति न्यासजातं विधाय, प्रोक्तविधिना अर्घादिस्थापनपूर्वकं वह्निमुखे श्रीचक्रं ध्यात्वा, पीठपूजापुरःसरं देवीमावाह्य साङ्गाऽऽवरणां षोऽशोपचारैः सम्पूज्य, संस्कृतघृतेन पञ्चविंशत्याऽऽहुतीः मूलविद्यया स्व-स्व-कुण्डे जुहुयुः।

ततो, गुरुः वेद्यां मण्डले अस्त्राऽभिमन्त्रिते कुशास्तरे चरुं त्रिधा विभज्य, एकं भागं देव्यै निवेद्य, श्रीचक्रं परितः, पूर्वमङ्कुराऽर्पणकर्मणि कृताऽङ्कुरभाजनानि निक्षिप्य, घृतपूर्णान् पिष्टमयदीपांश्च निधाय, द्वितीयं भागं विभज्य, ऋत्विग्भिः सह साऽऽज्येन तेन प्रतिकुण्डं पञ्चविंशत्याहुतीः हुत्वा, श्री चक्राद्बहिः प्रागुक्तमेषादिराशिस्थानेषु राश्यधिनाथेभ्यो ग्रहेभ्यो नक्षत्रेभ्यः करणेभ्यश्च हुतशेषेण पायसेन बलिं दद्यात्। यथा – मेष-वृश्चिकस्थानयोः कं ४ मेषवृश्चिकराश्यधिपतये मङ्गलाय एष गन्धपुष्पक्षतयुक्तपायसबलिर्नमः, चं ४ वृषतुलाराश्यधिपतये शुक्राय० टं ४ मिथुनकन्याऽधिपतये बुधाय० यं ३ कर्काऽधियतये सोमाय० अं १५ सिंहाधिपतये सूर्याय तं ४ धनुःमीनाऽधिपतये गुरवे० पं ४ मकरकुम्भाऽधिपतये शनैश्चराय० पुनः क्रमेण मेषादिस्थानेषु मेषराश्यंशभूताऽश्विनीभरणीकृत्तिकापादनक्षत्रदेवताभ्यो दिवानक्तं चरेभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः एष गन्धेत्यादिप्राग्वदेव वृषराश्यंशभूतकृत्तिकापादत्रयरोहिणीमृगशिराऽर्धं नक्षत्रेत्यादि० मिथुनराश्यंशभूतमृगशिरोर्द्धाऽऽर्द्रा - पुनर्वसु - पादत्रयनक्षत्रेत्यादि० एवमग्रेऽपि मन्त्राः ऊह्याः।

ततो मीनमेषयोरन्तराले बवकरणाय वृष इत्यादि, एवं वृषमिथुनयोरन्तराले बालव-मिथुन-कर्कयोर्मध्ये कौलव०, सिंह-कन्ययोः मध्ये तैतिल० कन्या-तुलयोर्मध्ये गराय०, वृश्चिकधनुसोर्मध्ये वणिजे०, धनुः – मकरयोर्मध्ये विष्टये० एष गन्धाऽक्षतपुष्पयुक्तपायसबलिर्नमः, इति बलिं दद्यात्।

अत्र राशिद्वयाधिपतीनां राशिद्वयस्थानेऽपि बलिर्देयः इति सम्प्रदायः।

ततो गुरुः कुम्भस्थायै देव्यै उत्तरापोशनादिनीराजनान्तं कृत्वा, स्तुत्वा, प्रणम्य, क्षमापयेत्। तृतीयभागं शिष्येण सह गुरुः स्वयं भुक्त्वाऽचम्य, समाचमनान्तं शिष्यं षडङ्गन्यासेन शकलीकृत्य, हृन्मन्त्राऽभिमन्त्रितं क्षीरवृक्षादि सम्भवं दन्तकाष्ठं शिष्याय दद्यात्।

ततः शिष्यः समाहितः तेन दन्तान् विशोध्य दन्तकाष्ठं प्रक्षाल्य, विसृजेत्। ततः समाचान्तं शिष्यं मूलविद्यया बद्धशिखं अस्त्रमन्त्राऽभिरक्षितं वेद्यां नीत्वा, गुरुः तेन सार्धं तस्यां कुशास्तरे तां रात्रिं शयीत। इति दीक्षादिनात् पूर्वदिनेऽधिवासनं कुर्यात्।

ततोऽन्यस्मिन् दिने गुरुः सशिष्यो रात्रिशेषे समुत्थाय, स्नानादिनित्यकृत्यं निर्वर्त्य, यागमण्डपं गत्वा, द्वारपूजादिनित्यक्रमोक्तविधिना कुम्भस्थां परदेवतां साऽङ्गां साऽऽवरणां सम्पूज्य, जपान्तं समाप्य, कुण्डसमीपं गत्वा, स्वाऽऽसनेषु समुपविश्य, ऋत्विजो गुरुः स्वे स्वे कुण्डपरदेवतां यथाविधि सम्पूज्य, मूलविद्यया षोडश घृताऽऽहुतीः हुत्वा, आवरणदेवतामेकैकां आज्याहुतिं हुत्वा, घृतप्लुतैः तिलैः तत्तत्कल्पोक्तपुरश्चरणाऽङ्गहोमद्रव्यैर्वा प्रतिकुण्डं अष्टोत्तरसहस्रं जुहुयुः। अत्र पुरश्चरणोऽङ्गहोमद्रव्यं तु पलाशपुष्पाणि कुसुम्भकुसुमानि वा त्रिमधुयुक्तानि। त्रिमधूनि तु घृतक्षीरमधूनि, घृतशर्करामधूनि वा।

ततः स्नातं कृतनित्यकृत्यं शिष्यं पञ्चगव्यं पाययित्वा, कुण्डसमीपं नीत्वा, गुरुः तं दिव्यदृष्ट्या विलोक्य, योगमार्गेण गुरुः तदीयहृदयं प्रविश्य, तच्चैतन्यमाकृष्य, स्वात्मनि संयोज्य, शिष्यमूर्ध्नि षडध्वरूपं श्रीचक्रं विभाव्य, तस्य षडध्वशोधनं कुर्यात्।

तत्र शिष्यस्य पादयोः प्रागुक्तनिवृत्त्यादिपञ्चकलात्मकं कलाऽध्वानं सञ्चिन्त्य, पुनः तस्य लिङ्गदेशे आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वशिवतत्त्वविद्यातत्त्वाऽत्म-तत्त्व-आत्मतत्त्व-विद्यातत्त्व-शिवतत्त्व-सर्वतत्त्वात्मकतत्त्वमयं तत्त्वदशकं विभाव्य, पुनः तस्य नाभिदेशे प्रागुक्तचतुर्दशभुवनात्मकं भुवनाऽध्वानं परिकल्प्य, पुनस्तस्य हृदये अकारादिक्षकारान्तमातृकावर्णमयं वर्णाऽध्वानं सञ्चिन्त्य, पुनः तस्य ललाटे वर्णसमूहमयं पदाऽध्वानं विभाव्य, पुनः तस्य शिरसि पदसमूहरूपसमस्तमन्त्रराशिमयं मन्त्राऽध्वानं विभावयेदिति षडध्वानं शिष्यदेहे स्मरन्, गुरुः कूर्चेन शिष्यं स्पृशन्, ॐ अमुकस्य कलाऽध्वानं शोधयामि स्वाहा इति तिलैरष्टधा हुत्वा, कलाऽध्वानं तत्त्वाऽध्वनि विलीनं विभाव्य, पुनः तस्य शिरसि समस्तमन्त्रतत्त्वाऽध्वनि विलीनं विभाव्य, पुनः ॐ अमुकस्य तत्त्वाध्वानं शोधयामि स्वाहा इत्यष्टौ आहुतीर्हुत्वा, तं भुवनाध्वनि विलीनं विभाव्य, पुनः ॐ अमुकस्य भुवनाध्वानं शोधयामि स्वाहा इत्यष्टधा हुत्वा, वर्णाध्वनि विलीनं विभाव्य, पुनः ॐ अमुकस्य वर्णाऽध्वानं शोधयामि स्वाहा इत्यष्टधाऽऽहुतीर्हुत्वा, तं पदाध्वनि लयं नीत्वा, पुनः ॐ अमुकस्य पदाध्वानं शोधयामि स्वाहा, इत्यष्टधा तं मन्त्रा-ध्वनि विलीनं विभाव्य, ॐ अमुकस्य मन्त्राध्वानं शोधयामि स्वाहा इत्यष्टा-हुतीः हुत्वा, तं परमात्मनि विलीनं विभावयेत्। इत्यध्वशोधनं विधाय, पुनः सृष्टिक्रमात् परमात्मनि लीनं तं मन्त्राध्वानं, ततः तस्मात् पदाध्वानं, ततो वर्णाध्वानं, ततो भुवनाध्वानं, ततः तत्त्वाध्वानं, ततः कलाध्वानं च तत्तत्स्थाने संयोज्य, स्वात्मस्थितं शिष्यचैतन्यं तद्ब्रह्मरन्ध्रेण प्रवेश्य, सुषुम्ना वर्त्मना शिष्यस्य हृदये तं दिव्यदृष्ट्या विलोकयन् स्थापयेत्।

ततो गुरुः स्वकुण्डे ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा, अग्नय इदं न मम, ॐ भुवो वायवे चाऽन्तरिक्षाय च महते च स्वाहा, वायव इदं न मम, ॐ स्वरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा आदित्याय इदं न मम, ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा, प्रजा-

पतय इदं न मम, इत्याऽऽज्येनाऽहुतिंचतुष्टयं न्यूनाऽतिरिक्तप्रायश्चित्तार्थं हुत्वा, इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-देह-धर्माऽधिकार-जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा, इति ब्रह्माऽर्पणमन्त्रेण कर्मबन्धविमुक्त्यर्थं आज्येनाऽष्टाऽऽहुतीः हुत्वा, बह्निमन्त्रेण पुनः प्राग्वद्वह्निं सम्पूज्य –

सहस्राऽर्चिर्महातेजा नमस्ते बहुरूपधृक्।
सर्वाऽशिने सर्वगतपावकाय नमोऽस्तु ते ॥
त्वं रौद्रघोरकर्मा च घोरहा त्वं नमामि ते।
विष्णुस्त्वं लोकपालोऽसि शान्तिमत्र प्रयच्छ मे ॥

इत्यग्निं प्रार्थ्य, न्यूनाऽतिरिक्तपूर्णार्थं ददामि सघृतं तिलं ॐ हूं साङ्गं कुरु-कुरु स्वाहा, इति तिलैः एकामाहुतिं हुत्वा, स्रुवेण स्रुचि घृतमापूर्य, तदग्रे कुश-पुष्प-पूगीफलादिकं च निक्षिप्य, तदूर्ध्वेऽधोमुखं स्रुवं निधाय, शङ्खवत् सम्पुटाभ्यां कराभ्यां स्रुक्स्रुवौ गृहीत्वा, उत्थाय, ऋजुकायः तयोर्मूलं स्वनाभौ निधाय वामपादमग्रे कृत्वा, मूलविद्यामुच्चार्य नमः, इति देव्याः मुखकमले परमाऽमृतबुद्ध्या जुहुयात् ।

एवं पूर्णाऽऽहुतित्रयं कृत्वा, उपविश्य, देवीं सम्पूज्य, देवीं सचक्रां साऽङ्गां साऽऽवरणां कुम्भे विसृजेत् । एवं ऋत्विजोऽपि स्वस्वकुण्डे महाव्याहृत्यादिहोमपूर्वकं पूर्णाऽऽहुतिं हुत्वा, देवीं सम्पूज्य, विसर्जयेयुः ।

ततो गुरुः प्रागुक्तविधिना साऽङ्गं साऽऽवरणं वह्निं सम्पूज्य, प्राग्वद् व्याहृतिभिः जिह्वादीनां मन्त्रैश्च घृतैः हुत्वा, वह्निं परिषिञ्च्य,

ॐ "भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक।
कर्माऽऽन्तरेऽपि सम्प्राप्ते सन्निधिं कुरु सादरम्" ॥

इति वह्निं सम्प्रार्थ्य, प्रणम्य, तं स्वात्मनि संयोज्य, परिस्तरणपरिधीन् अग्नौ प्रक्षिप्य, विभूतिवन्दनं कृत्वा, नेत्रमन्त्रेण शिष्यनेत्रे च यद्वस्त्रेण बद्ध्वा तं

करे गृहीत्वा, कुण्डसकाशात् मण्डलं नीत्वा, तस्याञ्जलिं पुष्पैराऽऽपूर्य, स्वयं मूलविद्यामुच्चरन् कुम्भस्थदेवतायै पुष्पाञ्जलिं दापयित्वा, नेत्रबन्धं विसृज्य, दर्भास्तरे तं समुपवेश्य, भूतशुद्धिविधिना शिष्यदेशं संहृत्य, उत्पाद्य, तद्देहे प्रागुक्तषोढाद्यखिलन्यासजातं विन्यस्य, पञ्चोचारैः कुम्भस्थां देवतां सम्पूज्य, षडङ्गन्यासयोगेन गुरुः प्राग्वद् देवीं सकलीकृत्य, वेद्याः उत्तरभागे उत्तरकुण्ड-द्वारयोरन्तराले कनिष्ठमण्डपे चेत्, मण्डपाद्बहिः उत्तरस्यां दिशि क्वचित् सुसमे भूतले सुश्लक्ष्णे वक्ष्यमाणसर्वतोभद्रमण्डले स्वलङ्कृतं शिष्यं प्राङ्मुखं भद्रासने समुपवेश्य, पञ्चवाद्यघोषपुरःसरं ब्राह्मणाशीर्भिः सह गुरुः कुम्भ-मुत्थाप्य, तन्मुखस्थान् सुरद्रुमात् शिष्यमूर्ध्नि निधाय, विलोममातृकां मूल-विद्यां च जपन्, उदङ्मुखः शिष्यमभिषिच्य, पूर्वस्थापितवर्धनीतोयेन रक्षार्थं शिष्यमभिषिच्य, तदवशिष्टजलेनाऽऽचान्तं तं षडङ्गन्यासयोगेन षडङ्गमन्त्रैः सकलीकुर्यात् ।

ततः शिष्यः उत्थाय, सुधौते शुभ्रे नूतने वाससी परिधाय, आचम्य, मौनी कृताञ्जलिः गुरुसन्निधौ तिष्ठेत् ।

ततो गुरुः तं श्रीचक्रे प्रागुद्धृते समुपवेश्य, तस्मिन् सङ्क्रान्तां स्वेष्ट-देवतां गन्धादिभिः पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, शिष्यदेवतयोरैक्यं सञ्चिन्तयन्, श्री-पात्राऽमृतेन प्रागुक्तविधिना गुरुः शिष्यस्य तत्त्वशोधनं कारयित्वा, तस्य पाशच्छेदं विदध्यात् ।

तत्र प्रथमं शिष्यदेहे प्रागुक्तमहाषोढान्यासाऽन्तर्गतमन्त्रन्यासोक्त-मूलाधारादिषोडशस्थानेसु षोडशार्णोपदेशे तस्याः षोडशबीजानि सञ्चिन्त्य, पञ्चदशाऽक्षर्युपदेशे तस्याः पञ्चदशाऽक्षराणि मूलाधारादिपञ्चदशस्थानेषु सञ्चिन्त्य, तदूर्ध्वे समस्तविद्यामयीं सबिन्दुचतुर्थस्वरात्मिकां महाकामकलां सञ्चिन्त्य, विद्याक्षरषोडशक-संलीनाः सत्त्वादिगुणत्रयगुणाऽतीतस्वरूपजाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुर्याख्याऽवस्थाचतुष्टयजनिताः षोडशकला उत्पत्ति-जागर-बोध-मनोव्यावृत्ति-अभिलाष-भ्रम-चिन्ता-स्मृति - मरण-विस्मृति - मूर्च्छा-निद्रा-

वैराग्य-मुमुक्षा-समाधि-विवेकाख्याः सञ्चिन्त्य, तं दिव्यदृष्ट्यावलोकयन् धनपुत्रादिमूले नानापातकमय(पत्र)युते अभिलाषप्रसूनभरिते पुण्यपाप-फलाऽन्विते संसारवृक्षे श्रुतदृष्टाख्यस्थूलशाखाद्वये निषण्णं, मोह-मत्सर-काम-क्रोधाहङ्कार-मदमय-पिच्छबहुलाभ्यां सङ्कल्प-विकल्परूप-पक्षाभ्यां-मतिचञ्चलं तृष्णा-चञ्चुपुटं कृत्वा, कृत्यपदद्वयं शिष्यस्य मनःपक्षिणं ज्ञानोपदेशलक्षण-पाशेन बद्ध्वा, श्रीगुरुकटाक्षरूप-शस्त्र-च्छिन्न-पक्षद्वयतया निश्चलीभूत-मनः-पक्षिणः प्राप्तोन्मनीभावस्य निःशेष-त्रुटित-भवपाशस्य शिष्यस्य ब्रह्मरन्ध्रे गुरुः सपुष्पफलेन स्वदक्षिणकरेण स्पृशन् वाच्यरूपं यद्वस्तु तच्छिष्ये संयोज्य, ब्रह्मैवायमिति भावयन् तत्रस्थसहस्रदलसरसीरुहोदरमध्यगतं गुरुतत्त्वं प्राक्-प्रातःस्मरणोक्तरूपं बोधयित्वा, तत्रैवाऽजपा सङ्कल्प्य, प्रकरणोक्तप्रकारेण षट्चक्रेस्वरूपादेकं चोपदिश्य, प्रागुक्तविधिना श्रीपात्राऽमृतेन तत्त्वशोधनं कारयित्वा, नूतनवस्त्रेण शिष्यस्य मस्तकमाच्छाद्य, तस्य दक्षिणकर्णे प्रथमतो, गुरुपादुकाविद्यां स्वपादुकान्तामुपदिश्य, तदनु गणेश-सूर्य-विष्णु-शिव-शक्त्यात्मक-पञ्चायतन-मन्त्रान्, ततो बालां तदनु पञ्चपञ्चिकाविद्याः, ततो मूलविद्यां, तदनु नव चक्रेश्वरीविद्याः; षोडशार्णोपदेशपक्षे – तदन्तर्गतां त्रिकूटां, तदनु पञ्चदश नित्याविद्याः, ततश्चतुराऽऽम्नायविद्याः, ततः चरणाद्यूर्ध्वाऽऽम्नायविद्याः, अन्याः चक्रपूजोपयोगिन्यो याः याः विद्याः ताः सर्वाः, यथाक्रमं यथासम्प्रदायं यथाऽधिकारं सम्यगुपदिश्य, तस्य नामाऽऽ-द्यक्षरादिवर्णं "आनन्द नाथ" शब्दान्तं सुन्दरं शिष्यस्य नाम कुर्यात्।

अथवा स्वशरीरे मातृकान्यासस्थानेषु एकमङ्गं शिष्येण स्पर्शयित्वा, तत्रस्थमातृकाऽक्षरमाद्यक्षरं कृत्वा, 'आनन्दनाथ'शब्दान्ते नाम विदध्यात्। इति यथासम्प्रदायं नाम कृत्वा, तदनु गलितकलियुगदिनानि दीक्षादिनाऽ-वसानानि गणयित्वा, नवभिर्हृते यावन्ति दिनान्यवशिष्टानि भवन्ति, तानि परिज्ञाय, प्राक् प्रातः सन्ध्याप्रकारेण उक्तेषु नव-नाथेषु दीक्षादिनस्य यः यः नाथो भवति, तस्य नामैव स्वशिष्यस्याऽपि नाम कुर्यात्।

ततः शिष्यः प्राणायामषडङ्गन्यासपूर्वकं गुरूपदिष्टां मूलविद्यामष्टोत्तरशतं अष्टाविंशतिवारमष्टधा वा जपित्वा, जपं समर्प्य, गुरुमन्त्रदेवतानामैक्यं विभावयन्, देवतात्मकं गुरुं ध्यायन्, दण्डवत् प्रणम्य, तस्य पादद्वयं "कृताऽर्थोऽस्मि" इति वदन्, स्वशिरसि निधाय प्रणमेत् ।

ततो गुरुः "कृतार्थोऽसि" इति वदन्, शिष्यमुत्थाप्य, परिरभ्य, मूर्धन्याऽऽघ्राय, कालनित्योदयाऽक्षरादिपारम्पर्यक्रममुपदिश्य, समयाऽचारादिकं यथाधिकारं बोधयेत् ।

ततः शिष्यः प्रहृष्टमनाः,स्वात्मनि वेदनं कृत्वा, गुरवे सर्वस्वं, तदर्द्धं वा, स्ववित्तदशमांशं वा, वित्तशाठ्यरहितो गो-भू-हिरण्य-आभरण-गज-अश्व-दास-दासी-गृह-आरामादियुतां दक्षिणां दत्वा, ऋत्विग्भ्यश्च समस्तां दक्षिणां दत्वा, प्रणम्य, परितोष्य, कुमारिकाः सुवासिनीः सामयिकांश्च भक्ष्यभोज्य-वस्त्राऽलङ्कार-भूरिदक्षिणाद्यै तोषयेत् । इति क्रियामयी दीक्षा ।

" श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ तरङ्गः सप्तविंशकः" ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते

सौभाग्यरत्नाकरे सप्तविंशस्तरङ्ग ॥ २७ ॥

॥ श्रीः ॥

अथाष्टाविंशस्तरङ्गः

॥ अथ सर्वतोभद्रमण्डलरचनाप्रकारः ॥

तत्र प्राक् प्रत्यगाऽऽयताः दक्षिणोत्तरायताश्च सप्तदश-सप्तदशरेखाः कृत्वा, षट्पञ्चाशदुत्तरशत्रयकोष्ठयुतं चतुरस्रमण्डलं कृत्वा, तन्मध्यगतषड्त्रिंशत् कोष्ठान्येकीकृत्य, तद्बहिश्चतुर्दिक्षु एकपङ्क्तिं परितः, संमार्ज्य, एकीकृत्य, पीठं परिकल्प्य, तद्बहिरपि चतुर्दिग्गतपङ्क्तिद्वयमेकीकृत्य, सम्मार्ज्य, वीथीं परिकल्प्य, सर्वमध्यगतसरोजस्थाने बहिः परितो द्वादशभागं परित्यज्य, सर्वमध्याऽवलम्बनेन समान्तरालं वृत्तत्रयं सम्पाद्य, तत्र सर्वमध्यवृत्तमध्यं कर्णिकां परिकल्प्य, तद्बहिर्गतवृत्तवीथीं केसरार्थं परिकल्प्य, केसरस्थानं षोडशधा विभज्य, तच्चिह्नाऽवलम्बनेन द्वितीयतृतीयवृत्तयोरन्तरालमानसूत्रमानेन गुरूक्तयुक्त्या षोडशाऽर्धचन्द्रान् परिकल्प्य, अनेनाष्टदलानि कृत्वा, तृतीयवृत्ताद्बहिस्त्यक्त्यैकांशतः मध्यचिह्नाऽवलम्बनेन वृत्ताऽन्तरं निष्पाद्य, गुरूक्तयुक्त्या पत्राऽग्राणि विधाय, एकैकदलमूलेन केसरद्वयं यथा दृश्यते तथा, विरच्य, पद्मं कृत्वा, पद्मबहिर्गतैकपङ्क्तिरूपचतुरस्रपीठस्य कोणचतुष्टयेऽपि कोष्ठत्रयेण पीठपादात्परिकल्प्य, अवशिष्टकोष्ठैः एकीभूतैः पीठमन्त्राणि विधाय, तद्बहिर्गतपङ्क्तिद्वयकोष्ठानि सम्यक् प्रमार्ज्य, तद्बहिर्गतपङ्क्तेश्चतुर्दिक्षु मध्ये कोष्ठद्वयं-कोष्ठद्वयमेकीकृत्य, सर्ववाह्यगतपङ्क्तेरपि चतुर्दिक्षु प्रतिदिशं कोष्ठचतुष्टय-कोष्ठचतुष्टयमार्जनेन द्वारचतुष्टयं परिकल्प्य, द्वारचतुष्टस्यापि पार्श्वयोः पङ्क्तिद्वयगतकोष्ठेष्वन्तः पङ्क्तेः कोष्ठमेकं, बहिः पङ्क्तेः कोष्ठत्रयमिति कोण्ठचतुष्टयं कोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य, शोभाः परिकल्प्य, तत्पार्श्वयोरपि अन्तः पङ्क्तेः

कोष्ठमेकं; बहिः पङ्क्तेः कोष्ठत्रयंकोष्ठत्रयमिति कोष्ठचतुष्टयमेकीकृत्य, उपशोभाः परिकल्प्य, अवशिष्टैः षड्भिः कोष्ठैश्चत्वारि कोणानि कल्पयेदिति सर्वतोभद्रमण्डलं निर्माय, सरोजकर्णिकाकेसरदल-दलाऽग्र-पीठ-वीथी-द्वार-शोभोपशोभा-कोणस्थानानि पञ्चवर्णरजोभिर्भूषयेत् ।

पञ्चवर्णरजांसि तु – हरिद्राचूर्णं पीतं रजः, तण्डुलचूर्णं शुक्लं, कुसुम्भकुसुमचूर्णं रक्तं दग्धतण्डूलचूर्णं कृष्णवर्णं, बिल्पत्रचूर्णं श्याममिति । रजोविन्यासप्रकारस्तु – सीमागताः सर्वरेखाः शुक्लरजस एकाऽङ्गुलोत्सेधविस्तारयुताः कार्याः, पीतरजसा कमलकर्णिकां केसराणि च समाऽऽपूर्य, शुक्लरजसा दलानि च सम्पूर्य, श्यामरजसा दलसन्धीन् पूरयेत् ।

अथवा कर्णिकां, पीतेन केसरान्, पीतरक्ताभ्यां दलानि, रक्तेन दलसन्धीन् कृष्णेन रजसा सम्पूर्य, पीतेन कृष्णेन वा पीठगर्भमापूर्य, पीठपादानि रक्तेनाऽऽपूर्य, पीठगात्राणि शुभ्ररजसाऽऽपूर्य, वीथीचतुष्टये कल्पवल्लीः, कोरक-पुष्प-पल्लवफलमण्डिता नानावर्णरजोभिराऽऽरचय्य, शुभ्रेण रजसा द्वारचतुष्कमापूर्य, रक्तवर्णेन द्वारशोभाः, पीतेनोपशोभाः, कृष्णेन कोणानि चापूर्य, तद्बहिः रेखात्रयमेकैकाऽङ्गुलान्तराले कृष्ण-शुक्ल-रक्तरजोभिः कुर्यात् । इति सर्वतोभद्रमण्डलरचनाप्रकारः ।

अथैतावत् कर्तुमशक्तानामाचार्यः प्रागुक्ते मण्डपे, मण्डपकरणाशक्तौ, प्रशस्ते क्वचिद्गृहे वा सुसमे भूतले, मण्डपे चेद् वेद्यां प्राक्प्रत्यक् ब्रह्मसूत्रमास्फाल्य, पश्चिमतो गुरुः स्वासनस्थानं परित्यज्य; पूर्वतो हस्तद्वयमात्रे ब्रह्मसूत्रे मध्ये चिह्नं विधाय, तच्चिह्नाऽवलम्बनेन हस्तमात्रपरिभ्रान्त्या वृत्तं निष्पाद्य, तन्मध्यब्रह्मसूत्रं षोडशधा विभज्य, प्रागादिपञ्चदशचिह्नानि कृत्वा, समाऽन्तरालेषुतेषु चतुर्थ-सप्तम-दशमेषु चिह्नेषु तिर्यक् सूत्रत्रयं दक्षिणोत्तरवृत्तरेखाऽवधि कृत्वा, तेषु मध्यसूत्रस्य दक्षिणोत्तरवृत्तसन्धिद्वयमारभ्य, पश्चिमसूत्रमध्ये ब्रह्मसूत्र-पश्चिमसूत्र-पश्चिमसूत्रयोः यत्र सम्पातः तदवधि सूत्रद्वयामास्फाल्य, ततः प्राक्सूत्रस्य दक्षिणोत्तरवृत्तसन्धिद्वयमारभ्य,

ब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमवृत्तसन्ध्यवधि सूत्रद्वयमास्फाल्य, ब्रह्मसूत्रं मार्जयित्वा, सुसमं नवयोनिचक्रं निष्पाद्य, तत्र प्राग्वत् कुम्भस्थापनादिकं विधाय, वैश्वदेवान्ते गुरुः इन्द्रेशानयोर्मध्ये चतुरस्रमाचार्यकुण्डं यथाविधि संस्कृत्य, अग्निस्थापनादिकं कृत्वा, अभिषिच्य, प्रागुक्तविधिना दीक्षां दद्यात् ।

मण्डपाभावे, गृह एव कुण्डकरणाशक्तौ प्रागुक्तस्थण्डिलं वा कृत्वा, अग्निस्थापनादि दीक्षान्तं सकलं कर्म कुर्यात् ।

अग्निस्थापनेऽपि विस्ताराशक्तौ प्रागुक्तनित्यहमोमविधिना वा अग्निस्थापनं कुर्यात् ।

पूर्वदिनाधिवासनाऽशक्तौ तस्मिन्नेव दिने सद्योऽधिवासनं कृत्वा, दिनद्वयकृत्यं एकस्मिनन्नेव दिने समापयेत् । इति सङ्क्षेपतः क्रियादीक्षा ।

सद्योऽधिवासनपक्षे – गुरुशिष्ययोर्हुतशेषचरुप्राशनं न स्यात्; किन्तु प्राशनस्यावश्यकत्वादाघ्राणं कार्यमिति शिष्टाचारः । अत्र होमकाले वह्ने र्जिह्वा-शिरः-कर्णादिकं ज्ञात्वा जुहुयात् । तत्र जिह्वायामेव होमः श्रेयः । अन्येष्वङ्गेषु दोषावहः ।

तथा चोक्तं गृहकल्पे –

“सर्वकार्यप्रसिद्ध्यर्थं जिह्वायां तस्य होमयेत् ।
चक्षुः कर्णादिकं ज्ञात्वा होमयेद् देशिकोत्तमः ॥
अग्निकर्णे हुतं यस्तु कुर्याच्चेद् व्याधितो भयम् ।
नासिकायां महद्दुःखं चक्षुषोर्नाशनं भवेत् ॥
केशे दारिद्र्यदं प्रोक्तं तस्मात् जिह्वासु होमयेत् ।
यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ यत्र धूमस्तु नासिके ॥
यत्राऽल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्म तु तच्छिरः ।
यत्रैव ज्वलितो वह्निस्तत्र जिह्वा प्रकीर्तिता” ॥ इति ।

तथा शारदातिलके–

“आज्यान्तर्जुहुयाद् वह्नेर्विपश्चित् सर्वकर्मसु।
कर्णहोमे भवेद् व्याधिर्नेत्रे त्वन्धमीरितम्॥
नासिकायां शिरःपीडा मस्तके धनसङ्क्षयः।
सधूमोऽग्निः शिरः प्रोक्तो निर्धूमश्चक्षुरेव च॥
ज्वलन् कृशो भवेत्कर्णः काष्ठलग्नश्च नासिका।
अग्निर्न जायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभः॥
तन्मुखं तत्र विज्ञेयं चतुरङ्गुलमानतः”। इति॥

॥अथाग्नेः वर्णाद्याः॥

तत्र नारदपञ्चरात्रे–

“अग्नेर्भासश्च गन्धाश्च शब्दाश्चाऽऽकृतयस्तथा।
विकाराश्च शिखाश्चैव संवेद्याः कर्मसिद्धये॥
पद्मरागद्युतिः श्रेष्ठो लाक्षारससमप्रभः।
बालाऽर्कवर्णो हुतभुक् जयार्थं शस्यते बुधैः॥
इन्द्रगोपकसङ्काशः शोणिताऽऽभोऽथ पावकः।
शक्रचापनिभः श्रेष्ठः कुसुम्भाऽऽभस्तथैव च॥
रक्तानां पुष्पजातीनां वर्णेनाऽग्निरिहोच्यते”॥

॥अथ गन्धः॥

“सुगन्धद्रव्यगन्धोऽग्निर्घृतगन्धः सुशोभनः।
आयुर्दः पद्मगन्धः स्याद् बिल्वगन्धश्च सुव्रतः”॥

॥अथ शब्दः॥

“जीमूतवल्लकशङ्खमृदङ्गध्वनितुल्यकः।
शब्दोऽग्ने सिद्धये होतुस्तोऽन्यः स्यादसिद्धिदः”॥

तथा शारदातिलके –

"भेरी-वारिद-हस्तीन्द्र-ध्वनिवह्नेः शुभावहः" ॥

॥ अथाकृतिः ॥

नारदपञ्चरात्रे –

"छत्राऽऽकारोऽपि हंसानां मयूराणां च सिद्धिदः ।
तथाऽऽकृतिः सदा वह्निः सिद्धिकरः स्मृतः ॥
शेषाणां दंष्ट्रिणां रूपं न शस्तं होमकर्मणि ।
यद्रूपं कथितं चैतद् यदि तस्य प्रतिक्षणम् ॥
अत्योन्यत्वं प्रपद्येत तदा सिद्धिकरोऽनलः" ॥

॥ अथ शिखाः ॥

तत्रैव –

"विषमश्च शिखाः वह्नेः त्र्यादयश्च शुभावहाः ।
ह्रस्वा ह्रस्वोन्नताः दीर्घाऽग्निज्वालाः सिद्धिदाः स्मृताः" ॥

तथा शारदातिलके –

"प्रदक्षिणास्त्यक्तकम्पाश्छत्राभाः शिखिनः शिखाः ।
शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः" ॥

तथा नारदपञ्चरात्रे –

"प्रदीप्ते लेलिहानोऽग्नौ निर्धूमे सगुणे तथा ।
हृद्ये तुष्टिप्रदे चैव होतव्यं सिद्धिमिच्छता" ॥

॥ अथ निषिद्धः ॥

नारदपञ्चरात्रे –

"अल्पतेजाश्च रूक्षश्च विस्फुलिङ्गसमन्वितः ।
धूमाऽवलीढज्वालश्च कृशानुर्नैव सिद्धिदः ॥

दुर्गन्धश्चाऽवलीढश्च सितकृष्णश्च यो भवेत्।

भूमिं च विलिखेद्यस्तु सोऽपि दद्यात् पराभवम्''॥

तथा शारदातिलके –

''कृष्णः कृष्णगतेर्वर्णो यजमानं विनाशयेत्।

पूतिगन्धो हुतंभुजो होतुर्दुःखप्रदो भवेत्॥

छिन्नाऽवृत्ताः शिखा कुर्यात् मृत्युं धनपरिक्षयम्।

शुकपक्षनिभो धूमः पारावतसमप्रभः॥

हानिं तुरगजातीनां गवा च कुरुते चिरात्''॥

तथा नारदपञ्चरात्रे –

''स्वराष्ट्रे महिषादीनां रुतमत्र न सिद्धये।

कृष्णश्चट-चटाशब्दस्त्वपसव्यगतिः सदा॥

उल्लिखेद् वसुधां यश्च यश्चाऽधःशिख एव च।

नेच्छतेऽसौ मुनिश्रेष्ठ शास्त्रेऽस्मिन् पारमेश्वरे''॥ इति।

अत्रैवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्तमुक्तम्।

शारदातिलके –

''एवं विधेषु दोषेषु प्रायश्चित्ताय देशिकः।

मूलेनाऽऽज्येन जुहुयात् पञ्चविंशतिमाऽऽहुतीः''॥ इति।

पञ्चविंशतिरेकैकस्मिन् दोष इति ज्ञेयम्।

॥अथ स्रुक्स्रुवौ॥

तत्र श्रीपर्णी-शिंशुपा-चन्दन-रक्तचन्दन-बिल्वाऽऽम्र-पनस-चम्पकः-पुन्नाग-खदिर-वैकङ्कत-पलाश-वट-पिप्पल-प्लक्ष-उदुम्बरादिवृक्षाणामन्यतमस्य शुष्कमव्रणमशीर्णं घुणादिभिरदुष्टमुद्दिष्टनादधिकदीर्घ-स्थूलयुतं समचतुरस्रं काष्ठं गृहीत्वा, तत्र मुष्ट्यङ्गुलेन चतुर्विंशत्यङ्गुलमानषट्त्रिंशदंशेन

विभज्य, तेषु विंशत्यंशं दण्डार्थं विभज्य, अवशिष्टषोडशभागेष्वग्रेदेशे भागाऽष्टकं मुखार्थं परिकल्प्य, अवशिष्टभागाष्टकेन समचतुरस्रां वेदीं कृत्वा, तन्मध्ये चिह्नं कृत्वा, तच्चिह्नमवलम्ब्य, अर्धांशमानेनाभितो वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरपि एकांशमानेन वृत्तान्तरं निष्पाद्य, वृत्तयोरन्तराले भागत्रयनिम्नं मध्ये वृत्ताकारां कर्णिकां स्थापयन्, गर्तं कृत्वा, तद्बहिः अर्धांशमानेन वृत्तं निष्पाद्य, तद्बहिरप्येकांशमोनन वृत्तान्तरं कृत्वा, वृत्तद्वयान्तरालेऽष्टदलानि परिकल्प्य, तद्बहिरर्धांशमानेन परितश्चतुरस्राऽऽकारां मेखलां विधाय, तद्बहिरर्धांशमानेन सुसमाकारां विचित्रां च शोभां विदध्यात्। ततो अग्रेऽवशिष्टाष्टांशेषु एकांशेन वेद्याः तृतीयांशेन पार्श्वद्वयखण्डनेन मध्ये कण्ठं विधाय, कण्ठतः किञ्चिदुन्नतमवशिष्टैः सप्तभिरंशैरग्रे कण्ठसमानविस्तारं समतलमधस्तादधोऽधः क्षीयमाणविस्तारं मुखं कृत्वा, मुखेऽपि वेदीवत् मेखलां परिकल्प्य, कण्ठादधोमुखस्थमेखलामभिन्दन्, प्रणालाऽऽकारं एकांशमाननिम्नं कनिष्ठाप्रवेशयोग्यं खातं कृत्वा, कर्णिकामध्यस्थखातमध्यात् मुखं, मध्यस्थप्रणालाकारखातमध्ये यथाघृतं निःसरति तथा लोहशलाकया कण्ठवेदीपरिधिभेदिनं सुषिरं विधाय, तथैवाऽग्रेऽपि मुखपरिधिभेदिनं घृतनिर्गमनाय कनिष्ठाप्रवेशयोग्यं रन्ध्रं कुर्यात्।

ततो वेद्याः षष्ठभागे कूर्माकारं मध्ये किञ्चित्समतलं भूमौ यथा निश्चलं तिष्ठति तथा कृत्वा, मुखस्य पृष्ठभागे मध्ये किञ्चिन्निम्नं कृत्वा, मुखरन्ध्राऽधस्ताद् उच्चभागं हंसमुखाकारं गजमुखाकारं वराहमुखाकारं वा सुरम्यं कारयित्वा, स्रुवं यन्त्रमारोप्य, तद्दण्डमुद्दिष्टमानात् किञ्चिदधिकस्थूलं सुवर्तुलं शिल्पिवरेण कारयित्वा, दण्डस्य मूले टङ्कांशेन कङ्कणाकारत्रयं चतुष्टयं वा कृत्वा, तदुपरि अंशत्रयेण मुख-कण्ठमध्यमूलादिशोभितमर्ध्वमुखं कुम्भं निर्माय, तदूर्ध्वे पुनरेकांशेन कङ्कणानि कृत्वा, तदधो नवांऽशमानं सुवर्तुलं षडंशमानदैर्घ्यसूत्रेण वेष्टनयोग्यं स्थूलं दण्डमध्यं कृत्वा, तदूर्ध्वे पुनरेकांशेन कङ्कणानि, तदूर्ध्वेंऽशचतुष्टयेन प्राग्वदूर्ध्वमुखं कुम्भं तदूर्ध्वे

पुनरेकांशेन कङ्कणानि च कुर्यादिति स्रुवं निर्माय, स्रुवश्चतुर्विंशतिभागदैर्घ्यमग्रदेशद्वयमानेन वर्तुलाकारस्थूलशिरोभागयुतं सुवर्तुलं स्रुवं निर्माय, तस्य मुखप्रदेशे पङ्कजमध्यगतमृगपोतपदाकारं कर्षमात्रघृतग्राहिखातं कृत्वा, तदधो दण्डमूले एकांशमानेन प्राग्वत् कङ्कणानि, तदूर्ध्वेऽशत्रयेण कुम्भं, ततः एकांशेन पुनः कङ्कणानि, तत एकादशांशमात्रं चतुरंशमानदैर्घ्यसूत्रवेष्टनयोग्यस्थूलं दण्डमध्यं कृत्वा, पुनरेकांशेन कङ्कणानि, ततोंऽशचतुष्टयेन कुम्भं, पुनरेकांशेन कङ्कणानि च कुर्यादिति स्रुक्स्रुवनिर्माणप्रकारः।

एवं स्वर्ण-रौप्य-ताम्रमयौ वा स्रक्स्रुवौ कार्यौ। स्रुक्-स्रुवाऽभावे पलाशस्य मध्यपत्रद्वयं पिप्पलदलद्वयं वा होमे ग्राह्यम्। संस्कारोऽपि स्रुक्स्रुवयोरिव पर्णयोरपि कार्यः इति।

॥ अथ वर्णदीक्षाविधिः ॥

अथ प्रकृते क्रियादीक्षाऽ शक्तानां वर्णदीक्षाविधिर्लिख्यते।

तत्र पुं प्रकृत्यात्मकान् अकारादिक्षकारान्तान् मातृकावर्णान् पुं प्रकृत्यात्मके शिष्यदेहे प्रागुक्तविधिना विन्यस्य, पुनः संहारक्रमेण मूर्धादिहृदयान्तरस्थं क्षकारं, हृदयादिनाभ्यन्तस्थे ळकारे संहरामि; हृदयादिनाभिर्यन्तस्थं ळकारं, हृदयादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थे हकारे संहराम, हृदयादिवामपादाग्रपर्यन्तस्थं हकारं, हृदयादिदक्षिणपादाग्रपर्यन्तस्थे सकारे संहरामि; हृदयादिदक्षपादाऽग्राऽवधिस्थं सकारं, हृदयादिवामपाण्यग्राऽवधिस्थे षकारे संहरामि; हृदयादिवामपाण्यग्राऽवधिस्थं षकारं, हृदयादिदक्षिणपाण्यग्राऽवधिस्थे शकारे संहरामि; एवं युक्त्या शकारं वकारे संहरामीत्यादिमुखवृत्तस्थमाकारं शिरस्थेऽकारे संहरामीत्यन्तमुक्तयुक्त्या वर्णान् संहृत्य, ततः तच्चैतन्यं सकलतत्त्वग्रामसमेतं परमात्मनि सयोज्य, विलीनसकलतत्त्वसमूहं विगतनिखिलकलुषं दिव्यतनुं शिष्यं सञ्चिन्त्य, पुनः परमात्मनः सकाशादकारादिक्षकारान्तान् वर्णानुत्पाद्य, प्रागुक्तसृष्टिन्यासप्रक्रमेण शिष्यदेहे मातृकाणि विन्यस्य, पुनस्तच्चैतन्यं तत्त्वग्रामसमेतं तस्मिन् संयोज्य, उक्तविधिनोपदेशं कुर्यात्। इति वर्णदीक्षा।

॥ अथ कलादीक्षा ॥

तत्र पादतो जानुपर्यन्तं निर्वृत्तिकलां, जानुतो नाभिपर्यन्तं प्रतिष्ठाकलां, नाभितः कण्ठपर्यन्तं-विद्याकलां कण्ठाल्ललाटपर्यन्तं शान्तिकलां, ललाटाद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं शान्त्यतीतकलाञ्च शिष्यदेहे सञ्चिन्त्य; निवृत्तिकलां प्रतिष्ठाकलायां संहरामि; प्रतिष्ठाकलां विद्याकलायां संहरामि; विद्याकलां शान्तिकलायां संहरामि; शान्तिकलां शान्त्यतीतकलायां संहरामि; शान्त्यतीतकलां परमात्मनि संहरामीति क्रमात् संहृत्य, वेधयित्वा, पुनः परमात्मनः सकाशात् शान्त्यतीतकलां, ततः शान्तिं, ततो विद्यां, ततः प्रतिष्ठां, ततो निवत्तिं च सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तत्स्थाने संयोज्य, उपदेशादिकं कुर्यादिति।

एवमष्टत्रिंशत् कलाभिर्वा एकपञ्चाशत् कलाभिर्वा प्रागुक्ताभिः उक्तयुक्त्या संहारसृष्टिन्यासक्रमेण शिष्यं संस्कृत्य, दीक्षां दद्यात्। इति कलादीक्षा।

॥ अथ स्पर्शदीक्षा ॥

तत्र गुरुः स्वहस्ततले शिवरूपं स्वगुरुं ध्यायन्, मूलविद्यां षडङ्गमातृकां च जपन्, शिष्यस्य शिरसि दक्षिणं करं निधाय, उपदिशेत्। इति स्पर्शदीक्षा।

॥ अथ वाग्दीक्षा ॥

तत्र गुरुः परचिद्रूपे चित्तं निधाय, तदुद्भूतान् समस्तमन्त्रान् ध्यायन्, तन्मयः स्वयं शिष्याय मन्त्रानुपदिशेत्। इति वाग्दीक्षा।

॥ अथ दृग्दीक्षा ॥

तत्र गुरुः स्वनेत्रे निमील्य, परमात्मस्वरूपिणीं मन्त्रदेवतां ध्यात्वा, प्रसन्नचित्तो दिव्यचक्षुषा शिष्यं निरीक्ष्य, मन्त्रोपदेशं कुर्यात्। इति दृग्दीक्षा।

पश्चादुक्तमेतद् दीक्षात्रयं विरक्तानामशक्तानां शिष्याणां तत्त्वविदा गुरुणा कार्यमिति। स्त्रीणां तु वाग्दीक्षैव विहिता; नाऽन्या।

॥ अथ वेधदीक्षा ॥

तत्र गुरुः शिष्यस्य मूलाऽऽधारे चतुर्दलपङ्कजमध्यगतत्रिकोणमध्ये प्रागुक्तरूपां कुण्डलिनीं ध्यात्वा, तत्पत्रचतुष्टयमध्यस्थवाऽऽदिसान्ताक्षर-चतुष्टयं तन्मध्यस्थिते कमलासने संहृत्य तं ब्रह्माणं तदूर्ध्वगतस्वाधिष्ठ-नाख्यषट्पत्रकमलमध्यस्थिते विष्णौ संयोज्य, वेधयित्वा, तत्पत्र षट्कमध्य-स्थवाऽऽदिलाऽन्तवर्णषट्कं च विष्णौ संयोज्य, तदूर्ध्वे नाभिमण्डले दश-दलकमलात्मके मणिपूरकचक्रे विष्णुं संयोज्य, तत्पत्रदशकमध्यस्थडाऽऽदि फाऽन्तदशकसहितं विष्णुं तत्पङ्कजमध्यस्थे रुद्रे संयोज्य, वेदयित्वा, तं रुद्रं अनाहताख्ये हृत्पद्मे काऽऽदि ठाऽन्तद्वादशवर्णाढ्यद्वादशदलयुक्ते संयोज्य, तैरक्षरैः सार्धं तं रुद्रं तन्मध्यस्थितेश्वरे संयोज्य, वेधयित्वा, कण्ठदेशे षोडशस्वराढ्यषोडशदलकमले विशुद्धिचक्रे तं ईश्वरं संयोज्य, तैः स्वरैः सार्द्धमीश्वरं तन्मध्यस्थे आज्ञाचक्रं नीत्वा, तत्पत्रद्वयस्थ-ह-क्ष-वर्णद्वयसहितं तं सदाशिवं, तन्मध्यवर्तिनि बिन्दौ संयोज्य, वेधयित्वा, तं बिन्दुं तदूर्ध्वस्थि-तायां कलायां संयोज्य, तां पुनः नादे नादं, नादान्ते नादान्तमुन्मन्यान्तां, विषु-वक्त्रे विषुवक्त्रं, गुरुवक्त्रे चेत्युत्तरोत्तरं संयोज्य, वेधयित्वा, जीवात्मना सह तां कुण्डलिनीं परशिवे संयोज्य, वेधयेत्। एवं कृते शिष्यो गुर्वाऽऽज्ञया उच्छिन्नसंसारपाशः परशिवो भवेत्।

ततो गुरुः संहृतविपरीतक्रमेण परशिवात् कुण्डलिनीं उत्पाट्य तया संहृतमखिलं सृष्टिक्रमेण शिष्यदेहे तत्तच्चक्रे तां तां देवतां संयोज्य, हृदये जीवं मूलाधारे कुण्डलिनीं च संयोज्य, उपदेशादिकं कुर्यात्।

ततः शिष्यः सञ्जातदिव्यबोधो भूत-भविष्य-वर्तमानज्ञः सदाशिवो भवति। इति वेधदीक्षा। प्रायः कलौ वेधदीक्षाकरो गुरुः, तद्योग्यः शिष्यश्च दुर्लभः इत्याहुराचार्याः। प्रसङ्गादत्राऽपि लिखितेयमिति शिवम्।

अथ एवं दीक्षितानां सद्भक्तियुक्तानां कृतपुरश्चरणक्रियाणां नित्यनैमि-त्तिकरतानां विदितविविधविद्यारहस्याणां शिष्याणां गुरुः, पूर्णाऽभिषेकाख्यं द्वितीयमभिषेकं कुर्यात्।

॥ अथ पूर्णाभिषेकः ॥

तत्र क्वचित् प्रशस्ते प्रावृते भूप्रदेशे प्राग्वत् समीकृते स्थाने प्रागुक्त-लक्षणं वक्ष्यमाणषड्त्रिंशदधिकसार्धसहस्रकलशस्थापनयोग्यं विपुलतरं श्रीचक्रं विरच्य, तत्र चतुरस्ररेखात्रयाऽन्तरालगतवीथीद्वये सिद्धिदशकस्थानेषु ब्रह्माद्यष्टकस्थानेषु षोडशदलेष्वष्टदलेष्वायुधाऽष्टकपूजास्थानेषु च त्रिकोणानि कृत्वा, मध्यस्थत्रिकोणस्य कोणत्रये प्रतिकोणमेकैकां तिर्यग्रेखां कृत्वा, त्रिकोणत्रयं निष्पाद्य, तेषु चतुर्दशाद्यष्टादशान्त-चक्रचतुष्टय-गतद्विचत्वारिंशत् त्रिकोणेषु च सम्भूय, पञ्चनवतिसंख्येषु श्रीचक्रगताऽष्टावरणदेवता-पूजास्थानत्रिकोणेषु प्रतित्रिकोणं रेखात्रयेऽपि प्रतिरेखं समान्तरालानि त्रीणि-त्रीणि चिह्नानि कृत्वा, तेषु चिह्नाच्चिह्नमिति क्रमेण गुरूक्तयुक्त्या नव नव तिर्यग्रेखाभिः षोडशत्रिकोणानि कृत्वा, मध्यगत- त्रिकोणत्रयस्यान्तराले वृत्तं कृत्वा, तन्मध्ये स्वाभिमुखाग्रं त्रिकोणं कृत्वा, तत्रापि प्रागुक्तयुक्त्या षोडश-त्रिकोणानि कृत्वा, तेषु सर्वमध्यत्रिकोणमध्ये दीक्षाप्रकरणोक्तविधिना वक्ष्य-माणखारिप्रमाणजलपूर्णं कुम्भं संस्थाप्य, अन्येषु षण्णवतित्रिकोणगर्भगतेषु पञ्चत्रिंशदधिकसार्धसहस्रसंख्याकेषु त्रिकोणेषु तावत्संख्याकान् कलशान् जलपूर्णान् वस्त्रयुग्मवेष्टितान् नवरत्नादियुतान् स्थापयित्वा सर्वमध्यस्थ-कुम्भे देवीमावाह्य प्राग्वत् सर्वोपचारैः साऽङ्गां साऽऽवरणां प्रोक्तक्रमेण सम्पूज्य, कुम्भं स्पृशन्, षट्त्रिंशदुत्तर-सप्त-शताधिकविंशतिसहस्रसंख्याकाः कालनित्याः विद्याः प्रजपेत्। तास्तु प्रागेव पारायणप्रकरणे दर्शिताः गुरु-मुखादवगन्तव्याः।

एवं शिष्यस्य जन्मनक्षत्रदिनात् पूर्वदिने जन्मनक्षत्रदिने वा पूर्व-मधिवासनं कृत्वा, पूर्वदिनाधिवासनापक्षे पूर्वेद्युः उक्तविधिनाधिवासनं विधाय, शिष्यस्य जन्मनक्षत्रे गुरुः प्रातः स्नात्वा, नित्यक्रियां निवर्त्य, मध्यकुम्भे देवीं साऽऽवरणां सम्पूज्य, मूलविद्यामष्टोत्तरसहस्रं जपित्वा, नित्यहोमप्रोक्तविधिना स्थण्डिलादावग्निं संस्थाप्य, नित्यहोमोक्तद्रव्यैः यथा-शक्ति हुत्वा, पूजाशेषं समाप्य, शृङ्गकाहलादिनानावादित्रघोषपुरःसरं ब्राह्मणा-

शीर्वादैः सह गुरुः प्राक् निमन्त्रितैः देवतात्मभिः शक्तिसाधकैः सार्धं, स्वयं प्रधानकुम्भं समुत्थाप्य, प्रागुक्तविधिनाभिषिञ्चेत् । ततः शक्तयः सामयिकाश्च कलशान् उत्थोप्योत्थाप्य, अभिषेकं कुर्युः ।

ततः शिष्याय दिननित्या पर्यायनित्या-उदयाऽक्षरादिकं स्वक्रमं सर्वं कथयेत् । शिष्योऽपि तदारभ्याऽविच्छिन्नपर्यायं यथा भवति तथा, गुरूक्तक्रमभजनं कुर्यात् । पर्य्याये गुर्वाज्ञाऽमृते विच्छिन्ने शिष्यः साभिषेकं मूलविद्यामष्टोत्तरसहस्रं जपेत् । प्रायश्चित्तामिति विच्छिन्नदिनानां प्रत्येकं सन्ध्यात्रयषष्टिजपं घटिकाजपं शताऽऽवृत्तिजपं च प्रायश्चितं कृत्वा, तद्दिनादिक्रमभजनं कुर्यादिति ।

अथ पूर्णाऽभिषेके प्रागुक्तषोडशत्रिकोणकरणादिविस्ताराऽशक्तौ, विपुलं श्रीचक्रमुद्धृत्य, तत्र प्रागुक्तषण्णवतित्रिकोणेषु मध्यत्रिकोणे बृहत्कुम्भमन्येषु कलशान् प्राग्वत् संस्थाप्य, सम्पूज्य, अभिषिञ्चेत् । अथवा मध्यत्रिकोणबिन्दुस्थान एव खारितोयपूरितं कुम्भं संस्थाप्य, सम्पच्याभिषिञ्चेत् ।

अत्र षण्णवतिकलशस्थापनपक्षे त्वावरणशक्तीनां प्रतिकलशमेकैकदेवतापूजनं कुम्भे मूलदेव्याः पूजनमिति । अत्र उत्तरः पक्षस्तुः– अशक्तविषयः । इति पूर्णाभिषेकविधिः ।

खारिलक्षणं तु भविष्यपुराणे–

"पलद्वयं तु प्रसृतं द्विगुणं कुडवं मतम् ।
चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥
आढकैस्तैश्चतुर्भिश्च द्रोणस्तु कथितो बुधैः ।
कुम्भो द्रोणद्वयं सूर्पः खारी द्रोणास्तु षोडश" ॥इति ।
"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धावष्टाविंशस्तरङ्गकः" ॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे अष्टाविंशस्तरङ्गः॥२८॥

॥ श्रीः॥

अथैकोनत्रिंशस्तरङ्गः

अथैवं प्राप्तद्विविद्याऽभिषेकानां सद्भक्तानां साधकानां श्रीगुरुपादुका-भक्तिलक्षणं, तत्पादुकामाहात्म्यं,तद्भजनेन प्राप्यं फलं तद्भक्तानां प्रत्यवायं, तद्भक्तैः कर्तव्याचारादि च लिख्यते ।

॥ अथ समयाचारः ॥

तत्र श्रीकुलार्णवे –

वागुरामूलवलये सूत्राद्याः कवलीकृताः ।
एवं कुलागमे ज्ञानं पादुकायां प्रतिष्ठितम् ॥
कोटि कोटिमहादानात् कोटि कोटि महाव्रतात् ।
कोटिकोटि महायज्ञात् परा श्रीपादुकास्मृतिः ॥
कोटि मन्त्रजपात् कोटि-पुण्यतीर्थावगाहनात् ।
कोटिदेवाऽर्चनाद् देवि परा श्रीपादुकास्मृतिः ॥
महारोगे महोत्पाते महादुःखे महाभये ।
महाऽऽपदि महापापे स्मृता रक्षति पादुका ॥
तेनाधीतं श्रुतं ज्ञानं दत्तमिष्टं च पूजितम् ।
जिह्वाऽग्रे वर्तते यस्य सदा श्रीपादुका प्रिये ॥
सकृत् श्रीपादुकां देवि यो वा जपति भक्तितः ।
स सर्वपापरहितः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥

शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वा यो भक्त्या स्मरति पादुकाम् ।
अनाऽऽयासेन धर्मार्थकाममोक्षाल्लभेत्तु सः ॥
श्रीनाथचरणाऽम्भोजं यस्यां दिशि विराजते ।
तस्यां दिशि नमस्कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये ॥
न पादुकापरो मन्त्रो न देवः श्रीगुरुः परः ।
नहि शाक्तात् परो मार्गो न पुण्यं कुलपूजनात् ॥
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
शास्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥
गुरुमूलाः क्रियाः सर्वाः लोकेऽस्मिन् कुलनायिके ।
तस्मात् सेव्यो गुरुर्नित्यं सिद्ध्यर्थं भक्तिसंयुतैः ॥
तावदाऽऽर्तिभयं दुःखं मोहशोकभ्रमादयः ।
यावन्नाऽऽयाति शरणं श्रीगुरुं शिवरूपिणम् ॥
सर्वसिद्धिफलोपेतो मन्त्रस्कन्धोऽतिशोभनः ।
गुरुप्रसादमूलोऽयं परतत्त्वमहाद्रुमः ॥
यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्ने वरदो मनुम् ।
तथा भक्त्या धनैः प्राणैर्गुरुं यत्नेन तोषयेत् ॥
यदा दद्याच्छिवाय स्वमात्मानं देशिकोत्तमः ।
तदा मुक्तो भवेच्छिष्यो न ततोऽस्ति पुनर्भवः ॥
तावदाराधयेच्छिष्यः सुप्रसन्नो यथा भवेत् ।
गुरौ प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पाशक्षयो भवेत् ॥
मनसापि न काङ्क्षन्ते भक्ता मानं तु जीविकाः ।
सम्पादयन्ति तत्सर्वं स्वामिनो भक्तवत्सलाः ॥

ब्रह्म-विष्णु-महेशान-देवता-मुनि-योगिनः।
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टाः गुरौ तुष्टे न संशयः॥
भक्त्या सन्तुष्टगुरुणा योपदिष्टः कृपालुना।
कर्मयुक्तो भवेच्छिष्यो भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम्॥
शिष्येणाऽपि तदा ग्राह्यं यदा सन्तोषितो गुरुः।
तस्माद् गुरोः प्रियं कुर्यात् मनो-वाक्कायकर्मभिः॥
यदि वा परितुष्टेन गुरुणा यत्र कुत्रचित्।
मुक्तोऽसीति समाऽऽदिष्टः सोऽपि मुक्तो भवेत् प्रिये॥
अथवा निष्प्रपञ्चेन धाम्ना केनचिदीश्वरि।
करोमि गुरुरूपेण पशुपाशविमोचनम्॥
न मे प्रियश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स तु पूज्यो ह्यहं यथा॥
विप्रोऽपि गुणयुक्तो वाऽप्यभक्तो न प्रशस्यते।
म्लेच्छोऽपि गुणहीनो वा भक्तिमान् स विशिष्यते॥
गुरुभक्तिविहीनस्य तपो विद्या व्रतं कुलम्।
निष्फलं हिं कुलेशानि केवलं लोकरञ्जनम्॥
गुरुभक्त्याख्यदहनदग्धदुर्जातिकल्मषः।
श्वपचोऽपि परैः पूज्यो न विद्वानपि नास्तिकः॥
धर्मार्थकामैः किं तस्य मोक्षस्तस्य करे स्थितः।
सर्वार्थैः श्रीगुरौ देवि यस्य भक्तिः स्थिरा सदा॥
स शिवो गुरुरूपेण भुक्तिमुक्तिप्रदो मम।
इति भक्त्या स्मरेद् यस्तु तस्य सिद्धिरदूरतः॥

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्ते कुलेश्वरि॥
नारायणे महादेवे मातापित्रोश्च राजनि।
यथा भक्तिर्भवेद् देवि तथा कार्या निजे गुरौ॥
लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ।
श्रीगुरुं गुरुपत्नीं च पितराविति चिन्तयेत्॥
गुरुभक्त्या यथा देवि प्राप्यन्ते सर्वसिद्धयः।
यज्ञदानतपस्तीर्थव्रताद्यैर्न तथा प्रिये॥
श्रीगुरौ निश्चला भक्तिः वर्धते हि यथा यथा।
तथा तथाऽस्य विज्ञानं वर्धते कुलनायिके॥
किं तीर्थाद्यैर्महाऽऽयासैः किं तीर्थैः कायशोषणैः।
निर्व्याजसेवा देवेशि भक्तिर्येषां हि सद्गुरौ।
कायक्लेशेन महता तपसा वाऽपि यत्फलम्।
तत्फलं लभते देवि सुखेन गुरुसेवया॥
भोगमोक्षार्थिनां ब्रह्मविष्ण्वीशपदकाङ्क्षिणाम्।
भक्तिरेव गुरौ देवि "नाऽन्यः पन्था" इति श्रुतिः॥
अशुभानि च सर्वाणि समहापातकानि च।
भक्तिः क्षणेन दहति तूलराशिमिवानलः॥
विश्वासाय नमस्तस्मै सर्वसिद्धिप्रदायिने।
येन मृद्-दारु-दृषदः फलन्त्यविकलं फलम्॥
न योगो नतयो नाऽर्चाक्रमः कोऽपि निगद्यते।
अमाये कुलमार्गेऽस्मिन् भक्तिरेव विशिष्यते॥

साक्षाद्गुरुमये देवि सर्वस्मिन् भुवनान्तरे।
किन्न भक्तिमतां क्षेत्रं मन्त्रः केषां न सिद्ध्यति॥
गुरौ मनुष्यबुद्धिं च मन्त्रे वाऽक्षरबुद्धिकम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्॥
गुरुं न मर्त्यं बुध्येत यदि बुध्येत तस्य तु।
कदापि न भवेत् सिद्धिर्न मन्त्रैर्देवपूजनैः॥
श्रीगुरुं प्राकृतैः सार्धं ये स्मरन्ति वदन्ति वा।
तेषां च सुकृतं सर्वं पातकं भवति प्रिये॥
जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माधर्मप्रदर्शकः॥
गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवः गुरुर्गतिः।
शिवे हितं हि कर्तव्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः।
अहिताचरणाद् देवि विष्ठायां जायते कृमिः॥
शरीरचित्तप्राणैश्च श्रीगुरुं वञ्चयन्ति ये।
कृमिकीटपतङ्गत्वं पाप्नुवन्ति नराऽधमाः॥
गुरु-त्यागाद् भवेत् मृत्युर्मन्त्रत्यागाद् दरिद्रता।
गुरुमन्त्रपरित्यागाद् रौरवं नरकं व्रजेत्॥
गुर्वर्थं धारयेद् देहं तदर्थं धनमर्जयेत्।
निजप्राणान् परित्यज्य गुरुकार्यं समाचरेत्॥
गुरूक्तं परुषं वाक्यमाशिषं चिन्तयेत् प्रिये।
तेन सन्ताडितो वाऽपि प्रसादमिति चिन्तयेत्॥

भोगयोग्यानि वस्तूनि गुरवे सर्वमर्पयेत्।
तच्छेषमिति सञ्चिन्त्य चानुभूयात् कुलेश्वरि॥
गुर्वग्रे न तपः कुर्यान्नोपवासादिकं व्रतम्।
तीर्थयात्रां च नो कुर्यान्न स्नायादात्मशुद्धये॥
न नियोगं गुरोर्दद्याद् ''युष्मदा'' नैव भाषयेत्।
ऋणाऽऽदानं तथा दानं वस्तूनां क्रयविक्रयः॥
न कुर्याद् गुरुभिः सार्धं शिष्यो भूष्णुः कदाचन।
न कुर्याद् नास्तिकैर्वादं सम्भाषणमपीश्वरि॥
विलोक्य दूरतो गच्छेन्नाऽऽसीत सह तैः क्वचित्।
गुरौ सन्निहिते यस्तु पूजयेदन्यमन्तिके॥
स याति नरकं घोरं सा पूजा निष्फला भवेत्।
शिरसा न वहेद्भारं गुरुपादाऽब्जधारिणा॥
तदाऽऽज्ञया तु कर्तव्यमाऽऽज्ञारूपो गुरुः स्मृतः।
मन्त्राऽऽगमाद्यमन्यत्र श्रुतं तस्मै निवेदयेत्॥
गुर्वाऽऽज्ञया तद्गृह्णीयादनिष्टं तद्विवर्जयेत्।
स्वशास्त्रोक्तं रहस्यार्थं न वदेद्यस्य कस्यचित्॥
यदि ब्रूयात् स समयाच्युत एव न संशयः।
अद्वैतं भावयेन्नित्यं नाऽद्वैतं गुरुणा सह॥
आत्मवत् सर्वभूतेषु हितं कुर्यात् कुलेश्वरि।
आत्मस्थानाङ्गसद्भावैः सुश्रूषा स्याच्चतुर्विधा॥
शुश्रूषया तया देवि शिष्यः सन्तोषयेद् गुरुम्।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयः॥

शुश्रूषणपरो यस्तु गुरुदेवमहात्मनाम् ।
केवलं गुरुशुश्रूषा तत्कृपाकारिणी प्रिये ॥
सद्भक्तिसहिता सा चेत् सर्वकामफलप्रदा ।
क्षीयन्ते सर्वपापानि वर्धन्ते पुण्यराशयः ॥
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि गुरुशुश्रूषया प्रिये ।
यद् यदात्महितं वस्तु तत्तद्धितं न वञ्चयेत् ॥
गुरुदेवार्चको यस्तु तस्य पुण्यं न गण्यते ।
भक्त्या वित्ताऽनुसारेण गुरुमुद्दिश्य यत्कृतम् ॥
स्वल्पं वा बहु वा पुण्यं तुल्यमाढ्यदरिद्रयोः ।
सर्वस्वमपि यो दद्याद् गुरवे भक्तिवर्जितः ॥
शिष्यो न फलमाप्नोति भक्तिरेव हि कारणम् ।
यस्मिन् द्रव्ये गुरोरस्ति स्पृहा नानुभवेच्च तत् ॥
अवश्यं यदि वाञ्छा स्यादनुभूयात्तदाऽऽज्ञया ।
यस्तिलाऽर्धं तदर्धं वा गुरुस्वमुपजीवति ॥
लोभात् मोहात् स पच्येत नरके च त्रिसप्तके ।
अल्पादनल्पं गुरुद्रव्यमदत्तं स्वीकरोति यः ॥
तिरश्चां योनिमाऽऽपन्नः क्रव्यादैर्भक्ष्यते प्रिये ।
गुरुद्रव्याभिलाषी च गुरुस्त्रीगमनोत्सुकः ॥
पतितस्य क्षुल्लकस्य प्रायश्चित्तं न गण्यते ।
आज्ञाभङ्गोऽर्थग्रहणं गुरोरप्रियवर्तनम् ॥
गुरुद्रोहमिदं प्राहुर्यः करोति स पातकी ।
स्वद्रव्यविनियोगं च तं निवेद्य गुरोश्चरेत् ॥

अनिवेद्य तु यः कुर्यात् स भवेद्ब्रह्मघातकः।
गुरुभिः स बहिः कार्यो दण्ड्यो वध्यश्च पातकी।
गुरुकोपान्न नाशोऽन्यो गुरुद्रोहान्न पातकम्॥
न मृतिर्गुरुनिन्दाया गुरुरुष्टान्न चाऽऽपदः॥
जीवेदग्निप्रविष्टो वा नरः पीतविषोऽपि वा॥
मृत्युहस्तगतो वाऽपि नाऽपराधकरो गुरोः।
यत्र श्रीगुरुनिन्दा स्यात् पिधाय श्रवणे स्वके॥
सद्यस्तस्मादपक्रामेद् दूरं न शृणुयाद्यथा।
गुरोर्नाम जपेत्पश्चात् श्रवणे सा प्रतिक्रिया॥
गुरु-मित्र-सुहृद्-दासी-दासाद्यान्नापमानयेत्।
न निन्देद् दृश्यसमयान् वेदशास्त्रागमादिकान्॥
श्रीगुरोः पादुका भूषा गुरुनामस्मृतिर्जपः।
गुर्वाऽऽज्ञाकारणं कृत्यं शुश्रूषा भजनं गुरोः॥
विविक्षुर्देशिकावासं शान्तचित्तोऽतिभक्तिमान्।
व्यजनं पादुकां छत्रं चामरं वाहनादिकम्॥
ताम्बूलमुल्बणं वेषमुत्सृज्य प्रविशेच्छनैः।
वाहनं पादुकां छत्रमासनं वसनादिकम्॥
दृष्ट्वा गुरोर्नमस्कुर्यान्नात्मभोगाय कारयेत्।
पादप्रक्षालनं स्नानमभ्यङ्गं दन्तधावनम्॥
मूत्रं निष्ठीवनं क्षौरं शयनं स्त्रीनिषेवणम्।
वीरासनं च दुर्वाक्यमासनं हास्यरोदनम्॥
केशमोचनमुष्णीषं कञ्चुकं नग्नता तथा।
पादप्रसारणं वादं कलहं दूषणं प्रिये॥

अङ्गभङ्गाङ्गवाद्यादि कराऽऽस्फालनधूननम् ।
द्यूतकुक्कुटमल्लादि युद्धमित्यादि चाऽम्बिके॥
गुरु-योगि-महासिद्ध-पीठक्षेत्राश्रमेषु च ।
नाऽऽचरेदाचरेन् मोहाद् देवताशापमाप्नुयात् ॥
उपचारं विना तिष्ठेद् गुर्वग्रे नेच्छया विशेत् ।
मुखावलोकी सेवेत तदुक्तं च समाचरेत् ॥
गुरूक्ताऽनुक्तकार्येषु नोपेक्षां कारयेत् प्रिये ।
सदसद्यद् गुरुर्ब्रूयात्तत्कार्यमविशङ्कया ॥
विग्रहाऽनुग्रहे वापि गुरुः सर्वस्य कारणम् ।
निर्गतं यद् गुरोर्वक्त्रात् सर्वं शास्त्रं तदुच्यते ॥
गुरुकार्ये स्वयं शक्तौ नापरं प्रेषयेत् प्रिये ।
बहुत्वे तत्परैर्भृत्यैः सहितोऽप्यतिभक्तिमान् ॥
गच्छन् तिष्ठन् स्वपन् जाग्रन् जपन् जुह्वन् प्रपूजयन् ।
गुर्वाऽऽज्ञामेव कुर्वीत तद्गतेनाऽन्तराऽऽत्मना ॥
अभिमानो न कर्तव्यो जातिविद्याधनादिभिः ।
सर्वदा सेवयेन्नित्यं शिष्यः श्रीगुरुसन्निधौ ॥
छायाभूमिपरित्यागी विनीतस्त्वतिभक्तिमान् ।
देवि गुर्वग्रतस्तिष्ठेत् गुरुकार्यसमुत्सुकः ॥
स्वकार्यमात्मकार्यं च शिष्यः श्रीगुरुचित्तवित् ।
गुरुपार्श्वगतो नम्रः प्रच्छन्नाऽऽस्यो मितं वदेत् ॥
सामान्यतो निषेवेत् चेत् स्वगुरोर्यदि सन्निधौ ।
आचरेद्यदि मूढात्मा दोषः कोटिगुणो भवेत् ॥

अनाऽदृत्य गुरोर्वाक्यं शृणुयाद् यः पराङ्मुखः।
अहितं वा हितं वाऽपि रौरवं नरकं व्रजेत्॥
गोब्राह्मणवधं कृत्वा यत् पापं समवाप्नुयात्।
तत्पापं समवाप्नोति गुर्वग्रेऽनृतभाषणात्॥
स्थानाऽन्तरगतं वाऽर्थन्यसने विषयस्थितम्।
श्रीगुरुं न त्यजेत् क्वाऽपि तदाऽऽदिष्टो व्रजेत्प्रिये॥
अधःस्थिते गुरावूर्ध्वं न तिष्ठेच्च कदाचन।
न गच्छेदग्रतस्तस्य न विशेदुत्थिते गुरौ॥
शक्तिच्छायां गुरुच्छायां देवच्छायां न लङ्घयेत्।
स्वछायां तेषु नो कुर्यात् न स्वपेद् गुरुसन्निधौ॥
भाषणं पठनं गानं भोजनं शयनादिकम्।
अनाऽऽदिष्टो न कुर्वीत न चाऽवन्दनपूर्वकम्॥
ब्रह्महत्याशतं कुर्याद् गुर्वाज्ञां परिपालयन्
विना गुर्वाऽऽज्ञया शिष्यो निश्चयं याति शासनात्॥
पूर्वं गुर्वाज्ञया कुर्यान्नालिङ्गेत स्त्रियं प्रिये।
भक्त्या प्रणम्य चोत्तिष्ठेद् बद्धाञ्जलिपुटः प्रिये॥
पश्चात्पादेन निर्गच्छेन्नमस्कृत्य गुरोर्गृहात्।
एकाऽऽसने नोपविशेद् गुरुणा तत्समैः सह॥
न विशेदाऽऽसने देवि देवतागुरुसन्निधौ।
गुरोः सिंहासनं देयं ज्येष्ठानामुत्तमासनम्॥
देश्यासनं कनिष्ठानामितरेषां समासनम्।
जातिविद्याधनाऽऽढ्यो वा दूरे दृष्ट्वा गुरुं सदा॥

दण्डप्रणामं कुर्वीत त्रिः प्रदक्षिणमाचरेत् ।
ततस्त्रिषड्द्वादश वा ज्येष्ठादिष्वेकमेव च ॥
गुरुं तद्गुरुयोगे तु वन्देत परमं गुरुम् ।
ततो नमेद् गुरुं योऽपि गुर्वग्रे तन्निवारयेत् ॥
प्रगुरोः सन्निधौ शिष्यः स्वगुरुं मनसा नमेत् ।
गुरुबुद्ध्या नमेत्सर्वं दैवतं तृणमेव च ॥
न नमेद् देवबुद्ध्या तु प्रतिमां लोहमृण्मयीम् ।
गुरोः प्रणामत्रितयं ज्येष्ठानामेकमेव च ॥
पूज्यानामञ्जलिस्तद्वदन्येषां वाक्यवन्दनम् ।
देवान् गुरून् कुलाचार्यान् ज्ञातविद्यातपोधनान् ॥
विद्याधिकान् स्वधर्मस्थान् प्रणमेत् कुलनायिके ।
स्त्रीद्विष्टं गुरुभिः शप्तं पाषण्डं पतितं शठम् ॥
विकर्मिणं कृतघ्नं वा नाऽऽश्रमिणं च नो नमेत् ।
अनिवेद्य गुरौ भुक्तं यस्त्वेकगृहसंस्थितः ॥
अमेध्यं तेन भुक्तं स्यात् सूकरो जायते मृतः ।
एकग्रामस्थितः शिष्यः त्रिसन्ध्यं प्रणमेद् गुरुम् ॥
क्रोशमात्रस्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत् ।
अर्धयोजनगः शिष्यः प्रणमेत् पञ्चपर्वसु ॥
एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि ।
तत्तद् योजनसंख्यातः मासैर्गत्वा नमेद्गुरुम् ॥
दूरदेशस्थितः शिष्यो भक्त्या तत्सन्निधिं गतः ।
अतिदूरस्थितः शिष्यो यदेच्छा स्यात्तदा व्रजेत् ॥

रिक्तहस्तस्तु नोपेयाद् राजानं दैवतं गुरुम्।
फलपुष्पाऽम्बरादीनि यथाशक्त्या समर्पयेत्॥
एवं यो नाऽऽचरेद्देवि ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत्।
गुरुः शक्तिश्च तत्पुत्रो ज्येष्ठभ्राता गुरोः समः॥
आत्मवच्च कनीयांसः पुत्रवत् कुलपालकाः।
लोकाचार्यस्य देवेशि गुरुज्येष्ठकनिष्ठयोः॥
गुरुकल्पस्य कुर्वीत प्रणामं स्वगुरोर्यथा।
स्वज्येष्ठश्च क्रमज्येष्ठः कुलज्येष्ठस्तृतीयकः॥
गुरोः ज्येष्ठस्तु देवेशि इति ज्येष्ठचतुष्टयम्।
यावज्ज्येष्ठाऽभिवादे तु क्रमकोऽष्टाङ्ग ईरितः॥
गुरोश्च कुलवृद्धस्य वन्दनाद् विविधाऽऽनतः।
पितृमातादिसर्वेषु पूज्यकोटिषु बन्धुषु॥
अभ्युत्थानप्रणामाद्यैरव्यक्तो दोषलाघवः।
आदौ त्वाचार्यरूपेण स्वात्मानं सम्प्रकाशयेत्॥
अभ्युत्थानप्रणामाद्यैर्दोषदः स्यात्तदा प्रिये।
पतिर्भूत्वा पशुभ्यस्तु प्रणामं यः करिष्यति॥
स महापशुरित्युक्तो देवताशापमाप्नुयात्।
यो गुरुस्थानकं प्राप्तः पादुकापरिसंख्यया॥
गुरुवत् स तु मन्तव्यो ज्येष्ठैर्वन्द्यो न च प्रिये॥

इति पादुकाचारविधिः।

॥अथ समयाचारः॥

तत्र श्रीकुलार्णवे –

श्रीगुरुं कुलशास्त्राणि पूज्यस्थानानि यानि च।
भक्त्या श्रीपूर्वकं देवि प्रणम्य परिकीर्तयेत्॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं पश्य(दृष्ट्वा) मे गुरुसन्ततिम्।
तस्य मे सर्वशिष्यस्य को न पूज्यो महीतले॥
गुरुं नाम्ना न भाषेत जपकालादृते प्रिये।
श्रीनाथदेव-स्वामीति विवादे बोधने वदेत्॥
श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां मूलमन्त्रं स्वपादुकाम्।
शिष्यादन्यत्र देवेशि न वदेद् यस्य कस्यचित्॥
पारम्पर्याऽऽगमाऽऽम्नायमन्त्राऽऽचारादिकं प्रिये।
सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं सफलं स्यान्न चाऽन्यथा।
श्रीशास्त्राऽऽश्रमभूतं च पुस्तकं देववत्प्रिये।
नित्यं समर्चयेद् भक्त्या पशुहस्ते न निक्षिपेत्॥
स्वदारवन्निषेवेत कुलशास्त्राणि पार्वति।
पशुशास्त्राणि सर्वाणि वर्जयेत्परदारवत्॥
श्वचर्मस्थं यथा तोयमपेयं स्याद् द्विजोत्तमैः।
तथा पशुमुखाद् धर्मो न श्रोतव्यश्च कौलिकैः॥
यः शृणोति कुलाचारं यथाशास्त्रं च यो वदेत्।
तावुभौ गच्छतः साक्षाद् योगिनीवीरमेलनम्॥
अश्रद्दधाना ये चात्र कुलधर्मे कुलेश्वरि।
नरकान्न निवर्तन्ते यावदाभूतसम्प्लवम्॥
ऊढा धृता तथा प्रीता मूल्येन च समाहृता।
सकृत् कामगता चाऽपि पञ्चधा गुरुयोषितः॥
अलङ्घ्याः पूजनीयाः स्युर्गुरुवद्-गुरुयोषितः।
कृष्णांशुकां कृष्णवर्णां कुमारीं च कृशोदरीम्॥

मनोहरीं यौवनस्थामर्चयेद् देवताधिया।
आममांसं सुराकुम्भं मत्तेभं सिद्धलिङ्गिनम्॥
सहकारमशोकं च क्रीडालोलां कुमारिकाम्।
एकवृक्षं श्मशानं च समूहं योषितामपि॥
नारीं च रक्तवसनां दृष्ट्वा वन्देत भक्तितः।
गुरुशक्तिसूतज्येष्ठकनिष्ठकुलदेशिकान्॥
कुलदर्शनशास्त्राणि कुलद्रव्याणि कौलिकान्।
प्रेरकान् सूचकांश्चाऽपि वाचकान् दर्शकांस्तथा॥
शिक्षकान् बोधकान् योगियोगिनीसिद्धपौरुषान्।
कन्याकुमारकान्नग्नानुन्मत्तामपि योषितम्॥
न निन्देत जुगुप्सेत न हसेत् नाऽपमानयेत्।
नाऽप्रियं नाऽनृतं ब्रूयात् कस्याऽपि कुलयोगिनः॥
कुरूपेत्यतिकृष्णेति न वदेत् कुलयोषितम्।
परीक्षयेन्न भक्तानां वीराणां च कृताकृतम्॥
न पश्येत् वनितां नग्नामुन्मत्तां प्रकटस्तनीम्।
न दिवा सेव्ययेन्नारीं तद्योनिं न निरीक्षयेत्॥
या काचिदङ्गना लोके सा मातृकुलसम्भवा॥
कुप्यन्ति कुलयोगिन्यो वनितानामतिक्रमात्॥
शतापराधां वनितां पुष्पेणापि न ताडयेत्।
दोषान् न गणयेत् स्त्रीणां गुणानेव प्रकाशयेत्॥
तिष्ठन्ति कुलयोगिन्यः कुलवृक्षेषु सर्वदा।
तत्पत्रेषु न भोक्तव्यमर्कपत्रे विशेषतः॥

न स्वपेत् कुलवृक्षाऽधो न चोपद्रवमाचरेत्।
दृष्ट्वा भक्त्या नमस्कुर्यात् छेदयेन्न कदाचन॥
श्लेष्मान्तककरञ्जाऽक्ष-निम्बोऽश्वत्थकदम्बकाः।
बिल्वो वटोदुम्बरश्च कुलवृक्षाः नव स्मृताः॥
देवता-गुरु-शास्त्रादि-सिद्धाऽऽचारविडम्बकः।
विद्याचोरी गुरुद्रोही ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत्।
गुरुं मोहादनाऽऽदृत्य निर्भर्त्स्य वीरपूरुषान्।
विकल्प्य कुलशास्त्राणि भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः॥
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नैव मन्यते।
श्वानयोनिशतं गत्वा चाण्डालत्वमवाप्नुयात्॥
गुरुं प्रकाशयेद् श्रीमान् मन्त्रं नैव प्रकाशयेत्।
अप्रकाशप्रकाशाभ्यां क्षीयते सम्पदाऽऽयुषी॥
कुलधर्मं समाऽऽश्रित्य आचारं यो न पालयेत्।
यथेष्टाचारिणस्तस्य महापातकिनः प्रिये॥
आपदो दुरिताः रोगाः दारिद्र्यं कलहो भयम्।
योगिनीनां प्रकोपश्च स्खालित्यञ्च पदे पदे॥
भ्रष्टमानः प्रनष्टश्च तेजोहीनोऽतिदुःखितः।
निन्दितः सर्वविद्विष्टो विह्वलः सङ्गवर्जितः॥
देशाद् देशान्तरं याति कार्यहानिश्च सर्वदा।
तत्रापि कुलमार्गस्थाः शाकिन्यः कुलपालिकाः॥
भक्षयन्ति पुरा तासां वरो दत्तो मयैव तु।
तस्मादाचारवान् देवि योगिनीनां प्रियो भवेत्॥

सदाचारेण देवत्वं योगिनीवीरमेलनम्।
सम्प्राप्नुवन्ति तिर्यक्त्वं कौलिकास्तद्विपर्ययात्॥
संस्कारेण विहीनत्वाद् गुरुवाक्यस्य लङ्घनात्।
आचारलङ्घनाद् देवि कौलिकः पतितो भवेत्॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं मन्त्रतन्त्रादिलोपजम्।
अनर्हपशुदुःसङ्गं मन्त्रसाङ्कर्यसम्भवम्॥
गुरुप्रकटसम्भूतं ज्ञानाऽज्ञानकृतं प्रिये।
एवमादिषु दोषेषु पापस्य गुरुलाघवम्॥
देशं कालं वयो वित्तं सम्यक् ज्ञात्वा यथाविधि।
प्रायश्चित्तं गुरुर्दद्यात् सर्वपापविशुद्धये॥
शिष्योऽपि च तथा प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत्।
अथवा सर्वपापानां गुरुनामजपः स्मृतिः॥
जम्बूनदस्य कालुष्यं परिशुद्धं यथाग्निना।
अनाचारस्य मालिन्यं प्रायश्चित्ताग्निना दहेत्॥
बहुनात्र किमुक्तेन रहस्यं शृणु पार्वति।
वर्णाश्रमाणां सर्वेषा[illegible]चारः सद्गतिप्रदः॥
गुरुः त्रिवारमाचारं कथयेत् कुलनायिके।
तत्र गृह्णाति शिष्यश्चेत् तदा पापं गुरोर्नहि॥
मन्त्रिदोषश्च राजानं भार्यादोषः पतिं यथा।
तथा प्राप्नोत्यसन्देहः शिष्यपापः गुरुं प्रिये॥

तथा प्रयोगसारे –

देवस्थाने गुरुस्थाने श्मशाने वा चतुष्पथे।
पादुकासन-विण्मूत्रमैथुनानि विवर्जयेत्॥

देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवताः।
सिद्धं सिद्धाधिवासांश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत् ॥
प्रमत्तामन्त्यजां कन्यां पुष्पितां प्रकटस्तनीम्।
विरूपां मुक्तकेशीं च कामार्तां च न निन्दयेत् ॥
कन्यायोनिं पशुक्रीडां दिग्वस्त्रां प्रकटस्तनीम्।
नालोकयेत् परद्रव्यं परदारांश्च वर्जयेत् ॥
धान्यगोगुरुविप्राग्निविद्याकोशनरान् प्रति।
नैव प्रसारयेत् पादौ नैतानपि च लङ्घयेत् ॥
आलस्यमदसम्मोहशाठ्यपैशुन्यविग्रहान्।
असूयामात्मसम्मानं परनिन्दां च वर्जयेत् ॥
लिङ्गिनं व्रतिनं विप्रं वेदवेदाङ्गसंहिताः।
पुराणागमशास्त्राणि कल्पांश्चापि न दूषयेत् ॥
युगं मुसलमश्मानं दामचुल्लीमुलूखलम्।
शूर्पं सम्मार्जनीं दण्डं ध्वजं वैडूर्यमायुधम् ॥
कलशं चामरं छत्रं दर्पणं भूषणं तथा।
भोगयोग्यानि चान्यानि यागद्रव्याणि यानि च ॥
महास्थानेषु वस्तूनि यानि वा देवतालये।
दिव्योक्तानि पदार्थानि भूताविष्टानि यानि वै ॥
लङ्घयेत् जातु नैतानि न तथा च पदा स्पृशेत्।
या गोष्ठी लोकविद्विष्टा यावत् स्वैरविसर्पिणी ॥
परहिंसात्मिका या च न तामवतरेत् क्वचित्।
प्रतिग्रहं न गृह्णीयात् आत्मभोगविधित्सया ॥

देवतागुरुपूजार्थं यत्नतोऽप्यर्जयेद् धनम्।
धारयेदाऽऽर्जवं सत्यं सौशील्यं समतां धृतिम्॥
क्षान्तिं दयामनास्थां च दिव्यां शक्तिं च सर्वदा।
विभीतकार्ककारञ्जस्नुहिच्छायाः न संश्रयेत्॥
स्तम्भदीपमनुष्याणामन्येषां प्राणिनां तथा।
नखाऽग्रकेशनिर्धूतस्नानवस्त्रघटोदकम्॥
एतत्स्पर्शं त्यजेद्दूरं खरश्वाऽजरजस्तथा"॥

तथा सोमशम्भुः—

न निन्देत् कारणं देवं न शास्त्रं तेन निर्मितम्।
न गुरुं साधकं चैव लिङ्गच्छायां न लङ्घयेत्॥
नाऽऽद्यॉल्लङ्घेन्न निर्माल्यं तद्वद्याच्छिवदीक्षिते।
न लङ्घयेद् गुरोराज्ञामुत्तरं न वदेत् तथा॥
रात्रौ दिवा च तस्याज्ञां दासवत्परिपालयेत्।
असत्यमशुभं तद्वद् बहुवादं परित्यजेत्॥
अप्रियं च तथालस्यं कामक्रोधौ विशेषतः।
अप्रछन्नमुखो ब्रूयाद् गुरोरग्रे कदाचन॥
अभिमानं न कुर्वीत धनजात्याश्रमादिभिः।
गुरुद्रव्यं न भोक्तव्यं तेनादत्तं कदाचन॥
दत्तं प्रसादवद् ग्राह्यं लोभतो न कदाचन।
अद्वैतं देवपूजां च गुरोरग्रे परित्यजेत्॥
पादुकायोगपट्टादिगुरुचिह्नानि सादरम्।
न लङ्घयेत् स्पृशेन्नैव पादाभ्यां प्रणमेत् सदा॥

पर्यङ्कशयनं तद्वत् तथा पादप्रसारणम् ।
अङ्गभङ्गं च लीलां च न कुर्याद् गुरुसन्निधौ ॥
गमनागमने कुर्यात् प्रणम्य गुरुपादुकाम् ।
छायां न लङ्घयेत् तद्वत् न गच्छेत्पुरतो गुरोः ॥
पश्चात्पादेन निर्गच्छेत् प्रणम्य च गुरोर्गृहात् ।
गुरोरग्रे न कुर्वीत प्रभावं शिष्यसङ्ग्रहम् ॥
अहङ्कारं न कुर्वीत नोल्बणं धारयेद् वपुः ।
प्रगुरोः सन्निधौ नैव स्वगुरुं प्रणमेद् बुधः ॥
नमस्काराय चोद्युक्तं गुरुर्दृष्ट्वा निवारयेत् ।
नातियोगं गुरुं दद्याद् 'युष्मदा' नैव भाषयेत् ॥
उपयुक्तं परेणैव यदि वा दीक्षितेन तु ।
छत्रोपानहवस्त्राद्यं नोपयुञ्जीत कर्हिचित् ॥
असम्पन्नेऽथवाऽऽपत्सु न दोषः क्षालिते सति ।
स्वकुले दीक्षितानां तु चाचार्याणां तथैव च ॥
उपयुक्तान्न दोषः स्यात्तद् दत्तादाहृतादपि ।
मन्त्रोपभुक्तमन्नाद्यं तथा मन्मन्त्रसंस्कृतम् ॥
प्राप्तमाऽऽयतनाद् देव्या शिरसा प्रणतो वहेत् ।
निक्षिपेदम्भसि ततो न पतेदवनौ यथा ॥
जातायामापदि भ्रंशे शपथं गुरुसंज्ञकम् ।
न कुर्याद् भगवत्संज्ञं प्रमादेन क्रियेत चेत् ॥
तदर्थं निर्वहेद् यत्नादन्ते पूजाजपाहुतीः ।
अनिर्वाहे तु कार्यस्य यदर्थं शपथः कृतः ॥

प्रायश्चित्तजपो देवि सहस्रं स्वमनोस्ततः।
लोकोद्वेगकरी या च या च मर्मनिकृन्तनी॥
स्थित्युद्वेगकरी या च तां गिरं नैव भाषयेत्।
रम्यमप्युज्ज्वलमपि मनसोऽपि समीप्सितम्॥
लोकविद्वेषणं वेषं न गृह्णीयात् कथञ्चन।
अत्रोक्तान् यः सदा ह्येतान् ऐहिकाऽमुष्मिकोचितान्॥
आचारानादृतः शान्तिं दीक्षितः सोऽधिगच्छति।
स्त्रीणां विशेषतो दद्यात् समयांश्चाऽमलाऽऽशयः॥
पालनात् समयानां तु सिद्धिरुत्पद्यतेऽचिरात्।
मन्त्रः साम्मुख्यमायाति समयस्थस्य सर्वदा॥
सिद्धयः समयस्थस्य सर्वाः स्युर्मोक्षपश्चिमाः।
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥
अष्टम्यां पूर्णिमायां च तेषु नैमित्तिको जपः।
नित्यं त्रिगुणितः सोऽथ पूजां चैव समाचरेत्॥
न्यायार्जितैः साधनैश्च दानहोमार्चनादिकम्।
कुर्यान्न चेदधो याति भक्त्या कुर्वन्नपीश्वरि॥
श्री विद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसुनूना।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धावूनत्रिंशस्तरङ्गकः॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते

सौभाग्यरत्नाकरे एकोनत्रिंशस्तरङ्गः॥२९॥

॥श्रीः॥

अथ त्रिंशस्तरङ्गः

॥अथ पुरश्चरणविधिः॥

तत्र –

पुरश्चरणसम्पन्नो मन्त्रो हि फलदायकः।

किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यासविस्तरैः॥

रहस्यानां हि मन्त्राणां प्रधानं बीजमुच्यते॥

वीर्यहीनो यथा देही सर्वकर्मसु न क्षमः।

पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥इति।

वैशम्पायनेन पुरश्चरणमस्याऽऽवश्यकत्वाभिधानात्; तस्य तु –

"निर्ऋतिर्विधिहीनानां फलं हन्ति तु कर्मणाम्"।

इति विधिहीनानुष्ठाने निन्दाश्रवणात्; तदनुष्ठानविधिर्विविच्य लिख्यते।

तत्र पुरश्चरणशब्दनिरुक्तिः **वायवीयसंहितायाम्** –

"साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते।

पुरतश्चरणीयत्वाद् विनियोगाख्यकर्मणाम्॥

पुरतो विनियोगस्य चरणाद् वा तथोदितम्॥ इति।

विनियोगलक्षणं तु **मन्त्रतन्त्रप्रकाशे** –

धर्मार्थकाममोक्षाणां शास्त्रमार्गेण योजनम्।

सिद्धमन्त्रस्य सम्प्रोक्तो विनियोगो विचक्षणैः॥

पुरश्चरणपूर्वोऽसौ विनियोगो विनिर्मितः।
फलाय मन्त्रसेवा या राजसेवा यथा तथा॥
चरणात्पूर्वमेवाऽसौ पुरश्चरणमुच्यते॥इति।

एतेन काम्यकर्मफलसिद्धिजनकक्रिया ऐहिकामुष्मिकमन्त्राऽऽत्मशुद्धि-हेतुक्रिया वा पुरश्चरणमित्युक्तम्।

तत्र श्रीविद्यायाः पुरश्चरणमुक्तं ज्ञानार्णवे –

यत्र वा कुत्रचिद्भागे लिङ्गं सत्पश्चिमामुखम्।
स्वयम्भूर्बाणलिङ्गं वा वृषशून्यं जलस्थितम्॥
पश्चिमाऽऽयतनं वापि इतरं चापि सुव्रते।
शक्तिक्षेत्रेषु गङ्गायां नद्यां पर्वतमस्तके॥
पवित्रे सुस्थले देवि जपेद् विद्यां प्रसन्नधीः।
तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद् देवीस्वरूपवान्॥
ततो भवति विद्येयं त्रैलोक्यवशकारिणी।
एवं जपं यथाशक्ति कृत्वाऽऽदौ साधकोत्तमः॥
किंशुकैर्हवनं कुर्याद् दशांऽशेन वरानने।
कुसुम्भकुसुमैर्वापि मधुरत्रयमिश्रितैः॥
विधिनोक्तप्रकारेण विघ्नौघं नाशयेत् क्षणात्।
सर्वकामप्रदा राज्यभुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥इति।

एकलक्षजप एव श्रीविद्यायाः पुरश्चरणम्। दशांशहोमस्य तद् धर्मस्य सर्वकामदत्वादिफलस्य चाप्यभिधानात्, एतस्य धर्मोपदेशानिति न्यायात्, तत्त्वनिर्णयात्, प्रयोगादौ विधानाऽयुक्तानां प्रयोगाणां कथं सिद्धिः? इति आकाङ्क्षायां – "पुरश्चरणपूर्वोऽसौ विनियोगो विनिर्मितः" इति वचनात्; अभिधानस्यैव योग्यत्वाच्च।

तथा **श्रीक्रमसंहितायामपि** लोपामुद्राविद्यामुद्धृत्योक्तम् –

"लक्षमेवमिदं जप्त्वा सर्वपापहरो भवेत्"।

इति लक्षजपमात्रमेवोक्तमिति। वामकेश्वरतन्त्रेऽपि एवमेव उक्तमिति वदन्ति। वस्तुतस्तु विचार्यमाणे दक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यतया ज्ञानार्णवे श्रीचक्रसाधनप्रकरणोक्तत्रिलक्षजप एव पुरश्चरणमिति भाति। यथा ज्ञानार्णवे –

शृणु सर्वाङ्गसुभगे श्रीचक्रविधिमुत्तमम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण कर्ता हर्ता सदाशिवः॥
अनेन विधिना यत्र श्रीचक्रं क्रमसंयुतम्।
पूज्यते तत्र सकलं वशीकुर्यान्न संशयः॥
नगरं वशमायाति देशं मण्डलमद्रिजे।
योषितः सकलाः वश्याः ज्वलत्कामाग्निपीडिताः॥
विद्याविमूढहृदयाः साधके न्यस्तमानसाः।
तद्दर्शनेन देवेशि जायन्ते सर्वयोषितः॥
अक्षमालां समाश्रित्य मातृकावर्णरूपिणीम्।
अथ मुक्ताफलमयां वाङ्मोक्षफलदायिनीम्॥
सर्वसिद्धिप्रदां नित्यं सर्वराजवशंकरीम्।
यथा मुक्ताफलमयी तथा स्फाटिकनिर्मिता॥
रुद्राक्षमालिका मोक्षे भवेत् सर्वसमृद्धिदा।
प्रवालमाला वश्ये तु सर्वकार्यार्थसाधिका॥
माणिक्यमाला फलदा साम्राज्यफलदायिनी।
पुत्रजीवकमाला तु वश्यदा भोगदा भवेत्॥
अक्षमालां प्रपूज्याथ चन्दनेन प्रपूजिताम्।
समाश्रित्य जपेद्विद्यां लक्षमात्रं यदा शुचिः॥

योषितो भ्रामयन्त्येनं मनस्तस्य सुनिश्चलम् ।
तदा द्वितीयलक्षं तु प्रजपेत् साधकोत्तमः ॥
पातालतलनागेन्द्रकन्यकाः क्षोभयन्ति तम् ।
तासां कटाक्षजालैस्तु न मोहं याति साधकः ॥
तदा लक्षत्रयं कुर्यात् साधकः स्थिरमानसः ।
तृतीयलक्षे सम्प्राप्ते द्रावयन्ति सुराङ्गनाः ॥
अभिमानेन सौन्दर्यसौभाग्यमदकारिणः ।
साधकं द्रावयन्त्येव ततश्चाऽसौ मनस्थिरः ॥
तदा लक्षत्रयं साधु सर्वपापनिकृन्तनम् ।
एवं लक्षत्रयं जप्त्वा व्रतस्थः स्वस्थमानसः ॥
सङ्क्षोभयति भूर्लोकपातालतलवासिनः ।
पुरुषाः योषितो वश्याश्चराचरमपि प्रिये ॥

इति त्रिलक्षजपमुक्त्वा, श्रीचक्रसाधनस्योक्तत्वात्, श्रीचक्रसाधनस्य काम्यप्रयोगत्वात्, काम्यप्रयोगस्य विद्यासिद्धेरपेक्षितत्वात्, विद्यासिद्धेः पुरश्चरणमूलकत्वात्, पुरश्चरणमनुक्त्वा; काम्यप्रयोगकथनाऽनौचित्याद्, अक्षमालाभेदनिरूपणाद्, अक्षमालायाः पुरश्चरणप्रकरणे एव वक्तव्यत्वात्, विघ्नबाहुल्यकथनाद्, एवंविधानां विघ्नानां सिद्धिप्रतिबन्धकतया पुरश्चरणकाल एव निषिद्धत्वात्, काम्यजपेषु तूक्तविघ्नानामेव फलत्वेनाभिधानाद् व्रतस्थस्वस्थमानस इति नियममनस्थैर्ययोः पुरश्चरणकाल एवात्यन्तमावश्यकत्वेन तत्कथनस्यौचित्याद् । दक्षिणामूर्तिसंहितायामपि –

"शृणु देवि प्रवक्ष्यामि श्रीविद्यामन्त्रसाधनम् ।
शमीदूर्वाङ्कुराऽश्वत्थपल्लवैरर्कसम्भवैः ॥

श्रीचक्रं पूजयेद् देवि मासमात्रं समाहितः।
सहस्रजन्मजं पापं हन्ति मासेन देशिकः''॥

इत्यारभ्य, प्रायश्चित्तपूर्वकं ज्ञानार्णवोक्तप्रकारेणैव स्थानाक्षमालोपांश्वादि-जपलक्षणं प्रागुक्तप्रकारेण विघ्नत्रयकथनपूर्वकं च लक्षत्रयजपमुक्त्वा,

तद्दशांशेन होमः स्यात् कुसुमैर्ब्रह्मवृक्षजैः।
कुसुम्भपुष्पैर्जुहुयात् मधुरत्रयसंयुतैः॥

इति तद्दशांश-होमकथनादेष लक्षत्रयजप एकपुरश्चरणमिति तत्त्वम्। यत्तु ज्ञानार्णवे –

''यत्र वा कुत्रचिद् भागे लिङ्गं सद्'' इत्यारभ्य, जपस्थानकथनपूर्वकं, ''तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद् देवीस्वरूपवान्''। इत्युक्तम् –

स तु लक्षशब्दः पूर्वोक्तलक्षत्रयस्मारकदक्षिणामूर्तिसंहितैकवाक्यात्। अत एव श्रीचक्रसाधनप्रकरणे उपस्थानहोमावत्रोक्तौ; अन्यथा त्वक्षमालादीनामप्यत्रैव वक्तुमुचितत्वात्।

नवलक्षजपस्याऽपि पुरश्चरणं केचिद् वदन्ति। तदप्युक्तं दक्षिणामूर्ति-संहितायाम् –

''अथवा नवलक्षं तु जपेद्विद्यां समाहितः।
तद्दशांशेन होमं तु पूर्वोक्तविधिना चरेत्॥
साधयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलवासिनः''॥ इति।

ज्ञानार्णवे तु – नवलक्षजपो नोक्तः। किन्तु एकलक्षमारभ्य, एकलक्षस्येदं फलम्, द्विलक्षस्येदं फलम्, इत्यादि नवलक्षपर्यन्तस्य पृथक्-पृथक् फलमुक्तम्। न तु द्वितीयलक्षस्य, तृतीयलक्षस्येति। तस्मात् तत्र सम्भूय, पञ्चचत्वारिंशत् लक्षजपो जायते। तेन तत्र पुरश्चरणत्वशङ्काऽपि नास्ति। स तु काम्यजप एवेति निश्चितम्।

वर्णाक्षमाला तु –

ब्रह्मनाडीगतानादिक्षान्तवर्णान् विभाव्य च।
अर्णं बिन्दुयुतं कृत्वा स्वेष्टं मन्त्रं जपेत् सुधीः॥
अकारादिषु संयोज्य तथा कादिषु च क्रमात्।
क्षार्णं मेरुमयो तत्र कल्पयेज्जगदीश्वरि॥
तदा लिपिर्भवेदक्षमालाऽर्धशतसंख्यया।
अनया सर्वमन्त्राणां जपः सर्वार्थसाधकः॥
क्षकारं मेरुसंस्थाने नकारादिविलोमतः।
एकैकान्तरितं मन्त्रं जपेदेवं फलप्रदम्॥

इति कुलमूलावतारोक्ता।

अत्राष्टोत्तरसहस्रं वाष्टोत्तरशतं वा यदा जपः कार्यः स्यात्, तदा "वर्गाऽष्टकविभेदेन भवेदष्टोत्तरं शतम्"। इति।

अत्र वर्गाऽष्टकजपस्तूद्दिष्टशतादिसंख्याऽवसान एव कर्तव्यः। एष कृतयुगजपः। कलावेतच्चतुर्गुणजपादिकं कार्यमिति। तन्त्रराजे तु तृतीयकूटस्य स्वर-व्यञ्जन-बिन्दून् पृथक्कृते सप्ताक्षराणि भवन्ति। तेषां सप्तानां वर्णानां प्रतिवर्णं त्रिलक्षमिति सम्भूय, एकविंशतिलक्षजपः पुरश्चरणं कृतयुगे; कलावेतच्चतुर्गुणजप इति पुरश्चरणमुक्तम्।

पुरश्चरणं तु जप-होम-तर्पणाभिषेकब्राह्मणभोजनात्मकं पञ्चाङ्गरूपं भवति। अत्रैतदङ्गपञ्चकं पूर्वपूर्वदशांशतः कार्यमिति। तन्त्रराजे तु होमसंख्या समसंख्यं तर्पणमिति विशेषः। केचितु –

जपो होमस्तर्पणं च स्वाहाभिषेकोऽघमर्षणः।
सूर्यार्घ्यं जलपानं च प्रणामं देवपूजनम्॥

ब्राह्मणान्तं भोजनं च पूर्व-पूर्व दशांशतः।
दशाङ्गोपासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते ॥

इति वचनाद् दशाङ्गं वदन्ति।

अत्र –

"संसारे दुःखभूयिष्ठे यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः।
पञ्चाङ्गोपासनेनैव मन्त्रजापी सुखं व्रजेत्" ॥

इति कुलप्रकाशतन्त्रवचनाद् बहुसम्मतत्वाच्च पञ्चाङ्गमेव पुरश्चरणं प्रसिद्धमिति।

केचित्तु शारदातिलकप्रपञ्चसारादिषु जपहोमावाभिधाय, प्रयोगाभिधानाज्जपहोमयोरेव पुरश्चरणत्वं वदन्ति। तन्न रम्यम्, बहुतन्त्रविरोधात्। तत्रापि सामान्यपटले पञ्चाऽङ्गस्यैव पुरश्चरणस्योक्तत्वाच्चेति।

॥ अथ देशः ॥

तत्र समुद्रतीर-पर्वतशृङ्गसमुद्रगामिनदीतीरविष्णुगृहविविक्तनिजगृह-गोष्ठ-अश्वत्थ-बिल्वमूल-जलाशपश्चिमामुख-वृषशून्यशिवालय-गुरुसन्निधि-तुलसीवन-स्वेष्टदेवतासन्निधि-पुण्य-क्षेत्र-तीर्थ-वन-उपवन-नदीह्रद-स्वाऽभिमतस्थानम्लेच्छ-दुष्टमृग-व्यालशङ्कावर्जित-एकान्त-निन्दारहित-धार्मिक-स्वेष्ट देवताभक्तजनाश्रम-सुभिक्ष-निरुपद्रव-राज-तत्सचिवादिगमनागमनरहित-स्थानानि। एषामन्यतम-स्थानं; ग्रामात् क्रोशमात्रं, नगरात् कोशद्वयं, नदीपर्वत-तीर्थादौ परिमाणरहितम्।

अमुकस्येह मन्त्रस्य पुरश्चरणसिद्धये।
मयेयं गृह्यते भूमिर्मन्त्रो मे सिध्यतामिति ॥

मन्त्रेण भूमिपरिग्रहं विधाय, क्षीरवृक्षभवान् वितस्तिमितान् दशकीलान् कृत्वा, अस्त्रमन्त्रेण पृथक्-पृथक् अष्टधा अभिमन्त्र्य, पूर्वाऽऽद्यष्टसु दिक्षु इन्द्रेशानयोर्मध्ये निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये च निखनेत्। तेष्वस्त्रं च सम्पूज्य, तेषु स्थानेषु इन्द्रादिदश-दिक्पालेभ्यो माषभक्तबलिं दद्यात्।

ततः क्षेत्रपालं गणेशं वास्तुपुरुषं च सम्पूज्य, प्राक् प्रत्यगायताः दक्षिणोत्तरायताश्चतस्रश्चतस्रो रेखाः विलिख्य, नव कोष्ठानि कृत्वा, तेषु पूर्वादिक्रमेण क-च-ट-त-प-यशाख्यान् सप्त कोष्ठेषु विलिख्य, ऐशान्यकोष्ठे ल-क्षौ विलिख्य, मध्यकोष्ठं तथैव नवधा विभज्य, पूर्वादिक्रमेण द्विशः द्विशः षोडशस्वरान् अष्टकोष्ठेषु विलिखेदिति कूर्मचक्रं निर्माय, तत्र मध्यनवके मध्ये पूर्वादिक्रमेण अष्टदिक्षु चामृत-वृषभ-शैलराज-वासुकि-अर्थकृत्-शक्ति-पद्मयोनि-महाशङ्ख-छाया-छत्रगणान् नव क्षेत्रपालान् प्रणवादिचतुर्थी-नमोन्तं तत्तन्नाम्ना सम्पूज्य, ग्रामनामाद्यक्षरयुक्तकोष्ठदिशि कूर्ममुखे तदलाभे मध्ये कूर्मपृष्ठे वा मुखादधः कोष्ठद्वयाऽन्यतमकूर्महस्ते वा गृहं जपार्थं शीतवाताऽऽतपनिवारणक्षमं कुर्यात् ।

॥ अथ वर्ज्यस्थानानि ॥

अ-वर्णस्य गकारेण, ऋवर्णस्य पकारेण, ओकारस्य खकारेण, जकारस्य टकारेण, झकारस्य षकारेण, डकारस्य तकारेण, फकारस्य धकारेण, लवर्णस्य यकारेण भकारस्य रेफेण, यकारस्य सकारेणेत्येतेषामन्योन्यमरित्वम् । यत्र स्थानसाधकयोराद्यक्षरेणाऽरित्वं तत्स्थानं त्याज्यमिति ।

॥ अथ जपमाला ॥

पुत्रजीव-शंख-प्रवाल-रत्न-स्फटिक-मुक्ताफल-पद्मबीज-रजत-सुवर्ण-कुशग्रन्थि-रुद्राक्षान्यतमनिर्मिता, अष्टोत्तरशतचतुःपञ्चाशत् सप्तविंशति-संख्यातैर्बीजैः युक्ता, समेरुका कार्या ।

॥ अथ मालासंस्कारकालः ॥

विष्णोर्द्वादश्याः पूर्वाह्णः; शक्तेरष्टमी-नवमी-चतुर्दशीरात्रिः, शिवस्य त्रयोदशी दिवा; गणेशस्य चतुर्थी दिवा; सूर्यस्य सप्तमी दिवा इति ।

॥ अथ मालायां सूत्राणि ॥

विष्णोः पट्टसूत्रं, शणसूत्रं वा देव्याः; पट्टसूत्रं शिवस्य; ऊर्णाभवं

वाल्कलं वा सूर्यगणेशयोः; कार्पाससूत्रं पट्टसूत्रं वा, कार्पाससूत्रं चेद् ब्राह्मणीकृतं स्व-समान-वर्णयोषिता वा त्रिगुणं त्रिगुणीकृतं कुर्यात्।

अन्येषु सूत्रेषु यथेच्छमेव स्थौल्यमाने (कुर्याताम्)।

॥ अथ संस्कारः ॥

तत्र गोमूत्र-गोमय-दुग्ध-दधि-घृत-कुश-जलात्मकं पञ्चगव्यं घृतं तिलांश्च होमार्थं सम्पाद्य, प्रातः कृत-नित्यकृत्य-भोजनः साधको रात्रौ सूत्रं मणींश्च पृथक्-पृथक् पञ्चगव्येन जलैश्च प्रक्षाल्य, नवसु पिप्पलदलेषु पद्माऽऽकाररचितेषु सूत्रं मणींश्च संस्थाप्य, स्थण्डिलादावग्निं संस्थाप्य, यथाशक्ति सघृतैः तिलैः "सद्याऽऽदि-पञ्चमन्त्रैः" हुत्वा, (होमाऽशक्तौ जपं वा विधाय), सूत्रे मुखेषु मुखानि संयोजयन्, मणीनाऽऽरोप्य, एकैकमणिमध्ये ब्रह्मग्रन्थिं विधाय, गोपुच्छाकारेण सर्पाकारेण वा ग्रथयित्वा, सर्वतः स्थूलं सजातीयं एकं मणिं सूत्रद्वयमेकीकृत्य, मेरुं ग्रथयित्वा,

"सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।
भवे भवे नाऽतिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः"॥

इति मन्त्रेण पञ्चगव्येन शीतलजलेन च प्रक्षाल्य,

"ओं वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः"। इति मन्त्रेण चन्दनागरु-कर्पूर-कुङ्कुमैर्विलिप्य, **"ओं अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्य"** इति अगरूशीर-शर्करा-गुग्गुलु-मधु-चन्दन-घृतैर्धूपयित्वा,

"ओं तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्"।

इति गन्ध-चन्दन-कस्तूरी-कुङ्कुम-कर्पूरैः लेपयेत्।

"ओं ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्म शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्" । इति मन्त्रेण प्रतिबीजं शतं-शतमभिमन्त्रयेत् । मेरुं चाऽनेन, अघोरेभ्य इत्यनेन चाभिमन्त्रयेत् ।

ततश्च आवाहन-स्थापन-सन्निधापन-सम्मुखीकरण-सकलीकरण-अवगुण्ठन-अमृतीकरण-परमीकरणानि तत्तन्मुद्रया विधाय, प्रागुक्तैः पञ्चभिः मन्त्रैः प्रतिबीजं पञ्चोपचारैः स्वेष्टदेवतावत् पूजयित्वा, इत्थं संस्कृतमालया जपं कुर्यादिति ।

अयं प्रतिष्ठाप्रकारो रुद्राक्षाणामेव; नान्येषाम् । अन्येषां संस्कारप्रकारस्तु ग्रथितां मालां कुत्रचित् पात्रे संस्थाप्य, तस्यां गणेश-सूर्य-विष्णु-शिव-दुर्गाः पृथक्-पृथग् आवाह्य, पञ्चोपचारैः सम्पूज्य, होमिति मन्त्रेण पञ्चगव्ये निक्षिप्य, पुनः तस्मादुद्धृत्य, शीतलजले निक्षिप्य, प्रक्षाल्य, चन्दन-कस्तूरी-कुङ्कुम-कर्पूरागुरुभिः अनुलिप्य, तस्यां हौमिति मन्त्रमष्टोत्तरशतं जपित्वा, सूर्यादि नवग्रहान् इन्द्रादि दिक्पालांश्च सम्पूज्य, सघृतैः तिलैः यथाशक्ति मूलमन्त्रेण हुत्वा, यथाशक्ति काञ्चनं गुरवे दक्षिणां दत्वा, ब्राह्मणांश्चान्नादिभिः तोषयेत्, इति द्वितीयः प्रकारः ।

प्रकारान्तरस्तु सूत्रं मणींश्च पञ्चगव्ये त्र्यहं क्षिप्त्वा, चतुर्थदिने तस्मादुद्धृत्य, अस्त्रमन्त्रेण प्रक्षाल्य, हृन्मन्त्रेण ग्रथयित्वा, कवचमन्त्रेण प्रतिबीजं ब्रह्मग्रन्थिं नागपाशं वा विधाय, प्रणवेन बध्नीयात् ।

ततः स्थण्डिले श्रीचक्रं कृत्वा, तत्र स्वेष्टदेवतां सम्पूज्य, मूलविद्यामष्टोत्तरशतं जपित्वा, पुरश्चरणोक्तद्रव्यैः तावत् संख्यं, हुत्वा, श्रीचक्रमध्ये मालां (सं)स्थाप्य, तस्यामस्त्रमूलाऽङ्गमन्त्रान् विन्यस्य, स्वेष्टदेवतारूपां तां मूलविद्यया सम्पूज्य, प्रागुक्तबलिदानं विधाय, पुनः तस्यां स्वेष्टदेवतां सम्पूज्य, गुरवे दक्षिणां दत्वा, ब्राह्मणान् भोजनादिभिः तोषयेदिति । इति तृतीयप्रकारः ।

॥ अथ विहितानि ताम्बूलादीनि ॥

मनः संहरण-शौच-मौन-मन्त्रार्थचिन्तनाऽव्यग्रता-निर्वेद-श्रद्धा-जयोत्साह-क्रोधत्याग - स्वधर्मानुष्ठान- परिणुति- इन्द्रियनिग्रह - ब्रह्मचर्य- साधुसंसर्ग-सुगन्धामलकस्नान-मन्त्राऽभिमन्त्रितजलेनाभिषेक-त्रिषवण-द्विसवनमशक्तो सकृद् वा स्नानं पित्रादिपर्तणं मध्यपत्ररहित-पलाशपत्र-पत्रावल्यां रात्रौ गित-भोजनं गो-विप्र-बालादिषु कृपा, वक्ष्यमाण-पञ्चतिक्तसहित-ताम्बूलभक्षणं सुगन्धाङ्गवसन-मुख-केशधारणं च पञ्चतिक्तं मुखे क्षिप्त्वा, जपं कृत्वा, समर्पयेत् ।

"तस्याः हंसकलां पृथ्वीं ददामि पुरुषोत्तम।
कालं च पञ्चतिक्तं स्यात् कौलं कुलसमुद्भवम् ॥
तस्माद् देयं प्रयत्नेन देव्यै चोद्भवमिच्छता।
एला-जाती-फलं चैव कर्पूरं चलवङ्गकम् ॥
जातीपत्रं तथा देवि पञ्चतिक्तमिदं प्रिये" ॥

इति रुद्रयामलोक्तपञ्चतिक्तसहितताम्बूलभक्षणम् ।

॥ अथ निषिद्धानि वस्तूनि ॥

अप्रियाऽनृतभाषणे करञ्जविभीतकार्कस्नुहीच्छायाक्रमण-प्रतिगृहाऽ-दीक्षितस्त्री-शूद्र-पतितोच्छिष्ट-नास्तिकसम्भाषण-स्नान-तर्पणाद्यननुष्ठान-बहुवस्त्रैकवस्त्र-मलिनवस्त्रधारण-काम्यकर्मासङ्कल्पितकर्म-स्वाश्रमाद्यविहित-कर्माऽऽचरण-कांस्यभोजन-असद्भाषण-अन्यपूजन-कौटिल्य-क्षौर-असाधु-समागमोष्णजलस्नान-उन्मर्दन-गीतवाद्यादिश्रवण-नृत्यदर्शन-अष्टविधमैथुन-तत्कथालाप-अस्नातस्पर्श-प्राणिहिंसा-कञ्चुक-उष्णीषधारण-प्रलापकराऽ-प्रावरणकेश-मोक्षण-शिरःप्रावरण-चिन्ता-क्रोध-भ्रम-त्वरा-मनोरथ-शयन-गमनोत्थान-अन्धकाराऽमङ्गलस्थानपादुकाधारण-यान-शय्याधिरोहण-पाद प्रसरणोत्कटासनक्षुत्-जृम्भा-हिक्कादिविकलमनस्त्व-अनशनत्व-प्रौढपादत्व-नग्नत्व-कुशरहितकरत्वानि च ।

स चोच्च-उपांशु-जिह्वा-मानसभेदाच्चतुर्विधः। स्पष्टपदाक्षरपूर्वकोच्चारणो वाचिकः। ईषदोष्ठचालनपूर्वकः किञ्चिच्छ्रवणयोग्यश्च उपांशुः। जिह्वामात्रस्पन्देन जपो जिह्वाजपः। मनसा पदाक्षराणामुच्चारणं मानसः। वाचिकादीनां उत्तरोत्तरं फलपौष्कल्यं दश-शतसहस्रगुणत्वेनेति।

॥ अथासनानि ॥

व्याघ्रचर्म-मृगाजिन-वेत्रज-कम्बल-कुश-कट-रक्तवस्त्रात्मकानि।

॥ अथ निषिद्धासनानि ॥

वंश-दारुज-भूमि-पाषाण-तृण-पल्लव-ज्येष्ठकानिर्मितानि।

॥ अथ जपारम्भात् पूर्वदिनकृत्यम् ॥

तत्र प्रातः स्नात्वा, नित्यक्रियां विधाय, भोजनादिभिः ब्राह्मणान् तोषयित्वा, गुरुमपि वित्त-भूषा-वस्त्रादिभिः परितोष्य, क्षौं क्षेत्रपालाय नमः इति मन्त्रेण क्षेत्रपालं सम्पूज्य, प्रागुक्तबलिदानविधिना क्षेत्रपालाय एहि विदुषि पुरु-पुरु भञ्जय नर्तय-नर्तय विघ्नमहाभैरवक्षेत्रपालबलिं गृह्ण-गृह्ण स्वाहा इति मन्त्रेण बलिं दत्वोपवसेत्।

शक्तश्चेदेवं त्रिरात्रं बलिमुपोषणं च कुर्यात्।

॥ अथ पुरश्चरणारम्भदिनकृत्यम् ॥

तत्र दीक्षोक्तमासर्क्षादिशुद्धे दिवसो, प्रातः स्नात्वा, गुरु-विप्राऽऽज्ञामादाय, कुशहस्तः, स्वस्तिवचनं कारयित्वा,

''ॐ सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा।
पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचराऽमराः॥
ब्राह्मं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्।

इति पठित्वा, ताम्रपात्रे कुश-तिलाऽ-क्षत-जलानि आदाय, उदङ्मुखः, अद्य, अमुके मासि, अमुकराशिगते सवितरि, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ,

भारतवर्षाख्य- भू-प्रदेशे, (विशेषक्षेत्रे चेद्) अमुकक्षेत्रे अमुकगोत्र० अमुकशर्मा श्री अमुक श्री विद्यासिद्धिकामः इयत्संख्या जपात्मकं पुरश्चरणमहं करिष्य इति सङ्कल्प्य, गुरु-गणेश-दुर्गा-मातृः नत्वा, पूजां समाप्य, जपमारभेत्।

तत्र मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, मूलविद्यायाः प्रागुक्त-ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय, अर्घोदकेन प्रागुक्तमन्त्रेण देवताहस्ते जपं समर्प्य मालापूजनमन्त्रेण मालां प्राग्वत् सम्पूज्य, रहसि स्थापयेत्।

ततो मध्याह्ने स्नानादिकं विधाय, पुनः पूजां विस्तरतः कृत्वा, प्रतिदिनहोमपक्षे जपदशांशं कल्पोक्तद्रव्यैः होमं कुर्यात्।

प्रतिलक्षहोमपक्षे, लक्षसंख्यं जपं तद्दशांशहोमादिकं च समाप्य, अग्रिम-लक्षजपारम्भं कुर्यात्। कल्पोक्तसंख्यासमाप्त्यनन्तरहोमपक्षे कल्पोक्त-संख्याजपं समाप्य, पश्चाद् दशांशहोमादिकं कुर्यात्। इति पक्षत्रयेऽपि एकः पक्षः अङ्गीकार्यः। होमपर्यायस्तु प्रागेव दीक्षाप्रकरणे अभिहितः। होमाऽशक्तौ तावदाऽह गौतमः–

"होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः।
इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणादिविधीयते" ॥ इति।

द्विगुणजपस्तु पुरश्चरणजपस्येतरेषां क्षत्रिय-वैश्य-द्विजभक्त-व्यतिरिक्त-शूद्राणां द्विजभक्तानां; शूद्राणां तु द्विजपत्नीतुल्यजपाभिधानात् तथा कुम्भसम्भवोऽपि,

"यदि होमे न शक्तिः स्यात्पूजायां तर्पणेऽपि च।
तावत् संख्यजपेनैव ब्राह्मणाऽऽराधनेन च॥
भवेदङ्गद्वयेनैव पुरश्चरणमार्य वै।
यद्यदङ्गं विहीयेत तत्संख्याद्विगुणो जपः॥
कर्तव्यः साङ्गसिध्यर्थं तदशक्तेन भक्तितः"॥

तावत् संख्याजपेन यावता पुरश्चरणं तेन प्रकृतजपद्विगुणजपलाभः; न च होमद्विगुणजपः, पूजायां संख्याभावेन द्वैगुण्याभावात्। उत्तरग्रन्थविरोधाच्च तदशक्तेन द्विगुणजपाऽसमर्थेन यद्यदङ्गं न सम्पद्यते तावत् संख्याद्विगुणो जपः कर्तव्य इति। यथा कुलार्णवेऽपि,

यद्यदङ्गं विहीयेत तत्संख्या द्विगुणं जपम्।
कुर्वीत त्रिःचतुःपञ्च संख्यया साधकः प्रिये॥
कुर्वीत साङ्गसिध्यर्थं तदशक्तेन भक्तितः॥

तेन शक्तानां द्विजातीनां द्विगुणादिजपः। अशक्तानां होमसंख्या द्विगुणादिजपः द्विजभक्तिव्यतिरिक्तशूद्राणां पञ्चगुणजपः द्विजभक्तानां द्विजस्त्रीणां च द्विगुणादिजपेनैव पुरश्चरणम्।

"दक्षिणा च प्रदातव्या गुरोरिष्टा द्विजन्मना।
भक्तियुक्तस्य शूद्रस्य दक्षिणा द्विगुणा भवेत्॥
स्त्रीणामपि तथा ज्ञेया भक्तस्यैव फलं भवेत्"।

इति गौतमेन विप्रभक्तस्य शूद्रस्य विप्रपत्नीनां च ततो द्विगुणदक्षिणा विधानाद् "एकत्र निर्णीत" इति न्यायेन जपेऽपि तथा कल्पनादिति। अपरे तु होमशक्तानां द्विजातीनां क्रमेण वेदरसनाऽङ्गगुणजपः। तदाऽऽश्रितानां शूद्राणां द्विजस्त्रीणां चायमेव प्रकृतजपः इत्याहुः। यथा सम्प्रदायं विधेयमिति।

इत्थं होमं विधाय, चन्दनकर्पूरादिवासितैः शुद्धसलिलैः होमसंख्या-दशांशतः प्रागुक्तविधिना देवीं सन्तर्प्य, स्वात्मानं इष्टदेवतारूपं ध्यायन्, कुम्भमुद्रया मूलविद्यान्ते आत्मानमभिषिञ्चामि इति तर्पणदशांशसंख्यया स्वमूर्धानमभिषिच्य, अभिषेकसंख्यादशांशसंख्याकान् ब्रह्मविद्यादीक्षितान् सदाचारानन्यान् वा प्रातः निमन्त्रितान् आहूय, अभ्यङ्गादिना स्नापयित्वा

वस्त्रगन्धादिभिरलङ्कृत्य, षड्रसैः नानाविधैः भक्ष्यभोज्यैः स्वेष्टदेवता बुध्या भोजयित्वा, ताम्बूलदक्षिणादिभिः परिरतोष्य, कुमारिकाः सुवासिनीश्च यथाशक्त्या तथैव परितोष्य., प्रदक्षिणीकृत्य, प्रणम्य, विसृजेदिति प्रत्यहं वा लक्षान्ते वा समस्तसंख्यासमाप्तौ वा भक्तिपूर्वकं कुर्यादिति।

ततो वैश्वदेवादिकमाह्निकं विधाय, स्वेष्टदेवता-मन्त्र-जप-ध्यान-कीर्तन-श्रवणादिना दिनशेषं नीत्वा, शक्तौ सायन्तनं स्नानं विधाय, पूजां समाप्य, भुञ्जीत।

॥तत्र भोज्यानि॥

शुक्लैकविधास्विन्नहैमन्त-नीवार-कङ्गु-षष्टिका-यवाः, शूद्राऽनवहताः, पादाभ्यां अनुत्तोल्याऽवहता गुडवर्जितमैक्षवं कृष्णतिल-मुद्ग कलायकैमुकेतर-कन्दविशेष-नालिकेर-कदली-लवली-पनसाऽऽमलकाऽ-ऽर्द्रक-हरीतकी-वास्तूक-कालशाक-हिलमोचिका-सैन्धव-सामुद्रे लवणेऽनुद्धृतसाराणि गव्यानि पिप्पली-जीरक-नारङ्ग-तित्तिडीमूलकानि।

॥अथ वर्ज्यानि॥

गुड-कृत्रिमलवण-क्षारलवण-स्विन्नपर्युषित-निस्नेह-कीटादिदूषित-काञ्जिकगृञ्जन-बिल्व-करञ्ज-लशुन-मृणाल-कोद्रव-मण्डुक-तैलपक्व-माष-मसूर-चणक-गोधूम-देवधान्यादीन्यतिभोजनं च।

॥अथ भोजनपर्यायः॥

तत्र स्वेष्टदेवताप्रसादमन्नं मध्यपत्ररहित-पलाशपत्रावल्यां संस्थाप्य, मूलविद्यया प्रोक्ष्य, प्रतिद्रव्यं मूलविद्यया सप्तधा अभिमन्त्र्य, मौनी पवित्रं हितं मितं हृन्मन्त्रेणाश्नीयात्।

मूलविद्यया द्वात्रिंशद्वाराऽभिमन्त्रितं जलं च प्राशयेदिति।

॥अथ शयनम्॥

कुशनिर्मितायां शय्यायां प्रक्षालितायां तादृशवस्त्रमास्तीर्य, तां मूलविद्यया सप्तवारमभिमन्त्र्य, "ॐ यज्जाग्रतो दुरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य

तथैवेति दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वं येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। यस्मिन् ऋचः सामयजूँषि, यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः, यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु। सुसारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु"। इति मन्त्रान् त्रिः पठित्वा,

"ॐ भगवन् देव देवेश शूलभृद् वृषवाहन।
इष्टाऽनिष्टे समाचक्ष्व मम सुप्तस्य शाश्वतम्"॥

ॐ हिलि हिलि शूलपाणये स्वाहा,

नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने।
वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाऽधिपतये नमः॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रासादान्महेश्वर॥
नमः सकललोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाऽधिपतये नमः॥

इति मन्त्राश्च सकृत् पठित्वा, प्राक्शिरा दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत।

तत्र सुस्थानां प्रथमे प्रहरे दृष्टस्य स्वप्नस्य वर्षेण फलम्। द्वितीये पड्भिर्मासैः; तृतीये मासत्रयेण, चतुर्थे मासात्; निशान्ते सद्यः फलं ज्ञेयमिति।

॥ अथ सिद्धिसूचकस्वप्नाः ॥

तत्र प्रासादसुमुखस्वेष्टदेवतागुरुनिर्मलचन्द्रसूर्यमण्डलगङ्गा-गो-सरस्वती-संन्यासि-शिवलिङ्गानां दर्शनं, भूमिलाभ-रक्तसमुद्रतरण-युद्ध-जप-होम-वह्नि पूजन-हंस-चक्रवाक-मयूर-सारस-रथारोहण-कन्या-तत्र रथदीप-प्रासाद-पद्म-गज-वृष-माल्य-समुद्र-सर्प-फुल्लवृक्ष-पवित्राममांस-सुराऽऽसव-स्त्रीदर्शन-नदीतरणाऽऽकाशगमन-ग्रह-नक्षत्रदर्शन-हर्म्य-प्रासादशिखर-गजाऽश्व-वृषभ-तरु-पर्वत-शिखरारोहण-विमानगमन-लाभदेवीदर्शनानि। मदिरापानाममांस-भक्षण-कृमि-पुरीषाऽनुलेपन-रक्ताऽभिषेक-दधि-भक्तभोजन-श्वेतवस्त्राऽ-नुलेपन-सिंहासन-रथयान-ध्वज-राज्याभिषेक-रत्नाऽऽभरणदर्शनानि।

॥ अथाशुभसूचकाः स्वप्नाः ॥

चण्डाल-कलभ-काक-शून्यगर्ताऽमङ्गलद्रव्य-तैलाऽभ्यक्त-नग्न-शुष्कवृक्ष-कण्टक-तन्तुरु-तलरहित-प्रासाददर्शनं रोगदम्।

तत्र प्रायश्चितं नृसिंहमन्त्रं पठित्वा, दुःस्वप्नसूचितदावान् (दोषान्) जहि-जहि; पुनः नृसिंहमन्त्रं पठित्वा, स्वाहा इति अष्टोत्तरशतं घृतैर्जुहुयात्।

अथवा एवमेवास्त्रमन्त्रेण होमः कार्यः।

॥ नृसिंहमन्त्राः ॥

"वर्णान्त्यं वह्निसंस्थं तु मनुस्वरविभूषितम्।
बिन्दुनादयुतं प्रोक्तं बीजं नरहरेः शुभम्॥

"क्ष्रौं" इत्युक्तम्। अस्त्रमन्त्रस्तु मूलविद्यायाः।

॥ अथ स्वप्ननिवेदनम्॥

गुरुचरणारविन्दयुगलं प्रणम्य, पुष्पहस्तः स्वप्नं तस्मै निवेदयेत्। गुरोरन्यत्र न प्रकाशयेत्।

"स्वप्ने वाक्षिसमक्षं वा आश्चर्यमतिहर्षदम्।
अकस्माद् यदि जायेत न ख्यातव्यं गुरोर्विना" ॥ इति वचनात्।

॥ अथ सिद्धिचिह्नानि॥

चित्तप्रसादो मनस्तुष्टिः स्वल्पाऽशन-निद्रा-जप-ज्योतिर्दर्शनाऽकस्मादतिहर्ष-अन्तरिक्षस्थ-दुन्दुभिशब्द-मधुरवाद्य-नानागीतश्रवण-कर्पूरादि-गन्ध-प्राप्ति-चन्द्राऽर्ककिरणाऽऽकीर्णाऽऽकाशाऽऽलोकनादीनि ।

॥ अथ मन्त्रसिद्धिरन्यः पर्यायः ॥

तत्र शशिसूर्योपरागे, त्रिरात्रमेकरात्रं वा पूर्वमुपोष्य, एकभक्तं वा विधाय, ग्रहणं दृष्ट्वा, स्नानं विधाय, समुद्रगायां नद्यां नाभिमात्रे जले स्थितः; तदलाभे क्वचिज्जले भूमौ वा समुपविष्टः, ॐ अद्य, अमुके मासि, अमुकराशिगते सवितरि, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, भारतवर्षाख्यभूप्रदेशे, अमुकतीर्थे, सोमग्रहणे सूर्यग्रहणे वा, अमुकगोत्रः, अमुकशर्मा, श्रीविद्यासिद्धिकामः, सूर्यग्रहणैतत्समयमारभ्य, सोमग्रहणैतत्समयमारभ्य वा, विमुक्तिपर्यन्तममुकविद्याजपमहं करिष्ये; इति जपसङ्कल्पं विधाय जपेत् ।

ततो ग्रहणकालीनजपदशांशहोममहं करिष्ये, इति सङ्कल्पं विधाय, होमं कुर्यात् । होमाशक्तौ ग्रहणकालीनजपसमसंख्यजपमहं करिष्ये; तदशक्तौ ग्रहणकालीनजपदशांशहोमसंख्याद्विगुणजपमहं करिष्ये; त्रिगुणादावप्येवमेव सङ्कल्पः । तर्पणादिष्वप्येवं सङ्कल्पः कार्यः इति ।

॥ अपरस्तु मन्त्रसिद्धिपर्यायः ॥

तत्र ॐ अद्येत्यादि० श्री विद्यासिद्धिकामो कृष्णाऽष्टमीमारभ्य, तच्चतुर्दशीपर्यन्तं अमुकः श्रीविद्यायाः अयुतचतुष्टयजपतद्दशांशहोम-तर्पणाद्यात्मकं पुरश्चरणमहं करिष्ये; इति सङ्कल्पं विधाय, अयुतचतुष्टयं सप्तधा विभज्य, प्रत्यहं चतुर्दशोत्तरसप्तशताऽधिकसहस्रपञ्चकं, अन्तिमदिने षोडशोत्तर-सप्तशताधिकसहस्रपञ्चकं, जपेत् । इत्ययुतचतुष्टयं जपित्वा होमादिकं कुर्यात् ।

अत्राऽपि प्रत्यहं वा समस्तजपान्ते वा होमादिकं कार्यमिति।

होमाऽशक्तौ कृष्णाष्टमीमारभ्य, कृष्णचतुर्दशीपर्यन्तं कृताऽयुत-चतुष्टयजपसमसंख्यजपपहं करिष्ये, तद्दशांशहोमसंख्याद्विगुणादिजपमिति वा सङ्कल्पः।

अन्यस्तु क्रमोत्क्रममातृकापुटितं मन्त्रं मासमात्रं प्रतिदिनं शतं-शतं जपेत्। तत्र ॐ अद्येत्यादि० अमुकविद्यासिद्धिकामः क्रमोत्क्रममातृका-पुटिताया अमुकविद्याया अद्यादिमासं प्रतिदिनं शतं-शतं जपमहं करिष्ये; इति जपसङ्कल्पः।

सम्पुटप्रकारस्तु— अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स, ह ळ क्ष। मूलविद्या।

क्ष ळ ह स ष श व ल र य म भ ब फ प न ध द थ त ण ढ ड ठ ट ञ झ ज छ च ङ घ ग ख क अः अं औ ओ ऐ ए ॡ ऌ ॠ ऋ ऊ उ ई इ आ अ इति शतवारं मूलविद्यां जपेदिति।

अत्र शतमित्युपलक्षणम्। अष्टोत्तरशतं जपेदिति सम्प्रदायः।

अपरश्च तत्र, क्रमोत्क्रम-भूतलिपिपुटिताया मूलविद्याया अष्टोत्तरसहस्रं मासमत्रं प्रतिदिनं जपेत्। सङ्कल्पस्तु पूर्ववदेव।

भूतलिपिस्तु— अ इ उ ॠ ऌ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख ग घ ञ च छ ज झ ण ट ठ ढ ड न त थ द ध म प फ ब भ श ष स इति।

जपप्रकारस्तु— अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ह य र व ल ङ क ख घ ग ञ च छ झ ज ण ट ठ ढ ड न त थ ध द म प फ भ ब श ष स। मूलं। स ष श म भ फ प ब द ध थ त न ड ढ ठ ट ण ज झ छ च ञ ग घ ख क ङ ल व र य ह औ ओ ऐ ए ऌ ऋ उ

इ अ इति मूलविद्यामष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा प्रतिदिनं मासमेकं जपेत्। अष्टोत्तरशतं तु गुरुजप्तमन्त्रपरमिति ज्ञेयम्।

प्रकारान्तरस्तु – अद्येत्यादि अमुकविद्यासिद्धिकामो रात्रौ त्रिकालपूजनं करिष्ये, इति सङ्कल्प्य, वत्सरमात्रं प्रतिदिनं रात्रौ त्रिकालं सर्वोपचारैः श्रीचक्रे देवीं साऽङ्गाऽऽवरणां पूजयेत्। एवं षण्मासं वा त्रिमासं वा मासमात्रं वा पूजयितुः पुरश्चरणमन्तरेणाऽपि विद्यासिद्धिर्भवति।

अन्यस्तु – मन्त्रवर्णौषधिविनिर्मितमन्त्रवर्णसमसंख्यगुलिकानां धारणं; विलेपनं, ताभिः पूजा तत्क्वाथजलैः स्नानं, तद्भस्मधारणं च कुर्यात्। तेन विद्यासिद्धिर्भवति।

॥ वर्णौषधयस्तु ॥

चन्दन-रक्तचन्दनाऽगुरु-कर्पूर-उशीर-कुष्टवाल-कुङ्कुम-कक्कोल-जातीफल-जटामांसी-मुर-चोरग्रन्थि-गोरोचना-पत्र-पिप्पल-बिल्व-पृष्णिपर्णी-चित्रक-लवङ्ग-कतृ-कटूफलवन्दिन्युदुम्बर-पाषाणभेद-पद्म-शङ्खपुष्पी मयुरशिखाप्लक्षाऽ-ग्रिमन्थ-सिंही-कुश-कृष्णशङ्खपुष्पी-रोहिणश्योनाक-बृहती-पाटल-मूषिकपर्णी-तुलसी-अपामार्गेन्द्रवल्ली-भृङ्गराजाऽपराजिता-तालमूली-कृताञ्जलि-दूर्वा-श्रीदेवी-कुमारी-भार्ङ्गी-भद्रमुस्तेत्येकपञ्चाशदौषधयः।

क्रमादकारादिक्षकारादि क्षकारान्तैकपञ्चाशद् वर्णानामिति।

अपरप्रकारश्च भूर्जपत्रे गोरोचना गन्धादिभिरष्टदलपद्मं विरच्य, तत्कर्णिकायां साधकनाम-वर्णविदर्भितमाद्यन्ते सकलं नाम प्रणवं च विलिख्य, पत्रेषु द्वन्द्वशः क्रमेण स्वरान् विलिख्य, गुलिकीकृत्य, पवित्रमृदा संवेष्ट्य, तदपि सिक्थकेन संवेष्ट्य, मधुरत्रयपूरिते स्वल्पपात्रे निरूप्य, क्षीरपूर्णो नूतनकुम्भे सयन्त्रगुलिकं तत्पात्रं निक्षिप्य, प्रागुक्तविधिनाग्निं कुण्डादौ संस्कृत्य, तत्समीपे तं कुम्भं संस्थाप्य, ॐ अद्येत्यादि० अमुकविद्यासिद्धिकामो विद्या-साधकयोरैक्यत्वसिध्यर्थमष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तरशतं वा मधुरत्रयहोममहं

करिष्ये; इति सङ्कल्प्य, उपास्यविद्यया सङ्कल्प्यसंख्यं प्रत्याहुतिं कुम्भे सम्पातं स्रुवलग्नं हुतशेषं निक्षिपन्, हुत्वा, तं कुम्भं जलाशये निक्षिप्य, गुरुं ब्राह्मणान् दीनाऽन्धादींश्च अन्नादिभिस्तोषयेदिति।

एवं कृतेऽपि न सिध्यति चेद् विद्याया द्रावणादिकं कुर्यात्।

तत्र द्रावणं तु – वरुणबीजग्रन्थितमन्त्रं कर्पूरकुङ्कुममनःशिला-गोरोचनोशीरैः विलिख्य, दुग्ध-मधु-जल-घृतमेकीकृत्य, कस्मिंश्चित् पात्रे निधाय तन्मध्ये तद्यन्त्रं निक्षिप्य, पूजा-जप-होमान् कुर्यादिति।

॥अथ बोधनम्॥

तच्च वाग्भवपुटितमन्त्रजपरूपम्।

॥अथ वशीकरणम्॥

तत्र भूर्जपत्रे रक्तचन्दन-हरिद्रा-कस्तूरीमनःशिलाभिः विद्यामालिख्य, कण्ठे धारयेदिति।

॥अथ पीडनम्॥

अधरोत्तरभावेन मन्त्रपदानि प्रजप्य, देवतामप्यधरोत्तरभावेन ध्यात्वा, अर्कदुग्धेन मन्त्रं भूर्जपत्रे समालिख्य, तत्पादेनाऽऽक्रम्य, अधरोत्तरक्रमपठित-मन्त्रेण होमं च कुर्यादिति।

॥अथ पोषणम्॥

तत्र बालबीजैः पुटितं मन्त्रं गोदुग्धमधुभ्यां भूर्जादौ विलिख्य, हस्ते धारयेदिति।

॥अथ शोषणम्॥

यज्ञभस्मना वायुबीजविदर्भितं मन्त्रं विलिख्य, कण्ठे धारयेदिति।

॥अथ दहनम्॥

पलाशबीजतैलेन वह्निबीजसम्पुटितं मन्त्रस्यैकैकमक्षरं विलिख्य, प्रतिवर्णं चाधश्चोर्ध्वं च वह्निबीजमालिख्य, कण्ठे धारयेदिति।

विदर्भलक्षणं तु शारदातिलके –

"मन्त्रार्णद्विन्द्वमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेद् विदर्भ एष विज्ञेयः" इति। एकान्तरं तु ग्रथितमिति च।

श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धावगात् त्रिंशस्तरङ्गकः॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे त्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३० ॥

॥ श्रीः॥

॥ अथैकत्रिंशस्तरङ्गः॥

अथारब्धपुरश्चरणव्रतस्याऽशौचादिसम्भवेऽपि न जपबाधः। यदुक्तं विष्णुना –

यज्ञ-व्रत-विवाहेषु श्राद्धे होमाऽर्चने जपे।

प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥

प्रारब्धो भाषणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतजापयोः।

नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिष्क्रिया॥इति।

वस्तुतस्तु तान्त्रिकदीक्षावतामशौचादिसम्भवेऽपि नित्याऽर्चनादिबाधो नास्ति।

"जपो देवार्चनविधिः कार्यो दीक्षान्वितैर्नवैः।

नाऽस्ति पापं यतस्तेषां सूतकं वा यतात्मनाम्"॥

इति देवीयामलवचनात्।

"सूतके मृतके चैव धूमोद्गारादिके तथा।

अर्घं जाप्यं तथा कुर्यात् मन्त्रन्यासपुरःसरम्"॥

इति मृडानीतन्त्रवचनात्।

"सूतके मृतके चैव नित्यं विष्णुमयस्य च।

सानुष्ठानस्य विप्रेन्द्र सद्यः शुद्धिः प्रजायते"॥

इति नारदपञ्चरात्रवचनाच्च।

यत्तु –

"अशुचिर्न महामायां पूजयेत्तु कदाचन"।

इत्यादि कालिकापुराणाद्युक्तवचनानि। तानि तु नात्र लिखितानि, ग्रन्थगौरवभयात्। तानि तु तत्रोक्तमहामायामन्त्रपराणि ज्ञेयानि; तत्प्रकरणात्। अन्यथा प्राग्लिखितवचनानां वैयर्थ्यापत्तेः। नैमित्तिककाम्यपूजासु निषेध एव।

"सूतके मृतके वाऽपि वर्तमाने तु नारद।
कामतः पूजिते मन्त्रे शान्तिकादौ तु कुत्रचित्।
जपेत् पञ्चशतं मन्त्री सिंहमन्त्रस्य भक्तितः।
शतत्रयमकर्माच्च प्रायश्चित्तविधौ जपेत्"॥

इति नारदपञ्चरात्रे नैमित्तकार्चने प्रायश्चित्तविधानादित्यकामात् नैमित्तिके; एतत्सर्वं निष्कामोपासनमिति केचिदाहुः।

"अथ सूतकिनः पूजां वदाम्याऽऽगमबोधिताम्।
स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानसक्रियया तु वै॥
बाह्यपूजाक्रमेणैव स्थानयोगेन पूजयेत्।
यदि कामी न चेत् कामी नित्यं पूर्ववदाचरेत्॥

इति तत्त्वसारवचनात्। सकामे सूतकाद्यशौचे मानसपूजैव कार्या इति।

॥अथ काम्यहोमविधिः॥

तत्रादौ तन्त्रोक्तपरिपाट्या अग्निचक्रं विचार्य, सौम्यक्रूरग्रहमुखेषु आहुतिप्रवेशं विज्ञाय, शुभग्रहमुखप्रवेशदिने शुभहोमं; अशुभग्रहामुखप्रवेशदिने वाऽशुभहोमारम्भं कुर्यात्। तत्परिज्ञानप्रकारस्तु– सूर्यस्थितनक्षत्रमारभ्य चन्द्रस्थितनक्षत्रपर्यन्तं गणयित्वा, प्रतिग्रहं त्रीणि त्रीणि सूर्यादि नवग्रहेभ्यो विभज्य दद्यात्। तत्रादौ सूर्यः, ततो बुधः, ततः शुक्रः, ततः शनैश्चरः, ततश्चन्द्रः, ततो भौमः, ततो गुरुः, ततो राहुः, ततः केतुः इति ग्रहाणां क्रमो ज्ञेयः।

अत्र यस्य त्रिके होमारम्भः तन्मुखे तदाहुतिप्रवेशः। इत्यग्निचक्रपरिज्ञानप्रकारः।

अत्र सौम्यहोमे सूर्येऽशोकः, बुधे धनागमः; शुक्रेऽभीष्टफललाभः, शनौ पीडा, चन्द्रे सौख्यं, भौमे बन्धनं, गुरौ धनप्राप्तिः, राहौ रोगः, केतौ मृत्युः। इति ग्रहाणां फलानि।

अथ स्वर्ग-मर्त्य-पातालेषु वह्नेः स्थितिं विज्ञाय, तत्फलानि च ज्ञात्वा, काम्यहोमारम्भं कुर्यात्। तत्परिज्ञानप्रकारस्तु – प्रतिपदादिहोमादितिथिपर्यन्तं गणयित्वा, तथा सूर्यवारादिहोमारम्भवारपर्यन्तं च गणयित्वा, उभयत्र लब्धसंख्याकान् अङ्कान् एकोनत्रिंशाऽङ्कैर्मेलयित्वा, जाताङ्कसमुदायं त्रिभिः हृत्वा, अवशिष्टाङ्कः एकश्चेदग्निः स्वर्गे वसति; द्वयं चेत् पाताले; शून्यश्चेत् मर्त्यलोक इति पावकस्थितिं विज्ञाय, तत्फलानि निर्दिशेत्।

तत्र स्वर्गस्थिते वह्नावुत्पातः; पाताले धनक्षयो; मर्त्यलोके स्थिते सकलफलप्राप्तिः। इत्थं वह्निचक्रं विज्ञाय, प्रागुक्ते मण्डपे प्रागुक्तद्वादशराशिस्थानगतेषु नवसु कुण्डेषु प्रागुक्तमण्डलामङ्गलरूपेषु प्रागुक्तविधिना अग्निस्थापनं कृत्वा, प्रागुक्तजिह्वाभेदान् विज्ञाय, यथोक्तद्रव्यैः यथाविधि जुहुयात्।

तत्र सौम्यहोमद्रव्याणि ज्ञानार्णवे –

मालती-जातिका-मल्ली-कुसुमैर्मधुमिश्रितैः।
घृतपूर्णैर्हुनेद् देवि वागीशत्वं प्रजायते॥
मूकस्याऽपि हि मूढस्य शिलारूपस्य नाऽन्यथा।
जपापुष्पैराज्ययुक्तैः करवीरैस्तथाविधैः॥
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः।
कर्पूरं कुङ्कुमं देवि मिश्रं मृगमदेन हि॥

हवनात् मदनो देवि मन्त्रिणा विजितो भवेत् ।
सौभाग्येन विलासेन सामर्थ्येनाऽपि सुव्रते ॥
चम्पकैः पाटलैर्हुत्वा श्रियं प्रोल्लसितां वराम् ।
प्राप्नोति मन्त्री महतीं स्तम्भयेज्जगतीमिमाम् ॥
श्रीखण्डगुग्गुलुं चन्द्रमगुरुं होमयेत् ततः ।
राजनागेन्द्रदेवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत् ॥
सर्वलोकाः वशास्तस्य भवन्त्येव न संशयः ।
लाक्षाहोमात् लभेद् राज्यं दारिद्र्यभरपीडितः ॥
दुर्गोपसर्गशमनं पलान्नमधुहोमतः ।
दूरस्थितानां देवेशि गुरुणा प्रोक्तमार्गतः ॥
होमः कार्यो वश्यकामैरन्यथा निष्फलं भवेत् ।
रुधिराक्तेन छागस्य मांसेन निशि होमतः ॥
मधुरत्रययुक्तेन गुरुणोक्तविधानतः ।
परराष्ट्रं महादुर्गं समस्तं स्ववशं नयेत् ॥
महापालेन देवेशि रिपोः सैन्यं विनाशयेत् ।
खेचरो जायते रात्रौ कृत्वा होमं च तुष्यते ॥
क्षीरं मधु दधि त्वाऽऽज्यं पृथक् हुत्वा वरानने ।
आयुर्धनमथाऽऽरोग्यं समृद्धिर्जायते नृणाम् ॥
क्रमेण शैलजे क्षीरमधुभ्यां मृत्युनाशनम् ।
दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यं धनमाप्नुयात् ॥
सितया केवलं होमो वैरिस्तम्भनकारकः ।
कमलैररुणैर्होमः सम्यक् सम्पत्तिदायकः ॥

रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं राजानो वशगाः क्षणात् ।
नीलोत्पलैर्महादुष्टाः वशमायान्ति नान्यथा ॥
श्वेतोत्पलैः श्रियं वाचं लभते हवनात् प्रिये ।
श्वेतैस्तु होमात् कमलैर्लक्ष्मीं सौभाग्यमाप्नुयात् ॥
कह्लारहवनान्मन्त्री सौभाग्यं च धनं लभेत् ।
पूर्णावदरहोमेन वशीकुर्यात् महीसुरान् ।
मातुलङ्गफलोद्भूतहोमेन क्षत्रियाः वशे ।
नारङ्गफलहोमेन वैश्याः वश्याः भवन्ति हि ॥
कुष्माण्डफलहोमेन शूद्राः वश्यास्तथाऽपरे ।
द्राक्षाफलैः सिद्धयोऽष्टौ लक्षहोमान्न संशयः ॥
कदलीफलहोमेन लक्षमात्रेण भूभृतः ।
वश्यास्तु दशसंख्याकाः भवन्त्येव न संशयः ॥
खर्जूरीफलहोमेन लक्षमात्रेण भूभृतः ।
वश्याः विंशतिसंख्याकाः इत्याऽऽज्ञा पारमेश्वरी ॥
नालिकेरफलैर्होमात् समृद्धिर्जायते प्रिये ।
लक्षमात्रेण मन्त्रज्ञो राजाऽपर इव प्रिये ॥
पक्वान्नफलहोमेन लक्षमात्रेण सुन्दरि ।
चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेदिनीं वशमानयेत् ॥
पनसस्य फलैर्होमाल्लक्षेण शतभूभुजः ।
वश्याः भवन्ति देवेशि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥
तिलाऽऽज्यहोमाद् देवेशि कार्यसिद्धिर्भवेत्प्रिये ।
राजिकालवणाभ्यां तु दुष्टलोकान् वशं नयेत् ॥

कुङ्कुमेन हुनेद् देवि त्रैलोक्यं वशमानयेत्।
गुग्गुलस्य च होमेन सर्वदुःखानि नाशयेत्॥
वैरिणो वशगाः शीघ्रं चन्दनास्यापि होमतः।
रक्तचन्दनहोमेन वश्याः हि पुरुषास्स्त्रियः॥
कर्पूरस्य च होमेन वाग्वश्यं जायते नृणाम्।
कस्तूरीहोमतो देवि राजानो राजमन्त्रिणः॥
वश्याः भवन्ति सकलाः परिवारयुताः प्रिये।
तिल-तण्डुलहोमेन शान्तिर्भवति मन्दिरे॥
शर्करागुडहोमेन सर्वकार्यार्थसाधकः।
घृतपायसहोमेन सितायुक्तेन मन्त्रिणः॥
त्रैलोक्यं वशमायति धान्यसिद्धिमवाप्नुयात्।
नानाविधान्नहोमेन धान्यसिद्धिर्भवेत् ध्रुवम्॥
सोपस्करैश्च बटकैरुपसर्गान् विनाशयेत्।
बन्धूककुसुमैर्होमान् सर्वसत्त्वाम् वशं नयेत्॥
जपापुष्पैर्जगद्वश्यं बाणपुष्पैश्च मोहनम्।
बकुलस्य हुनेत् पुष्पैः सौभाग्यं जायते महत्॥
दशाङ्गधूपहोमेन सौभाग्यमतुलं भवेत्॥

कुलमूलावतारे –

“मांसी-शिवा-कौशिक-सर्ज-मज्जा-
भागाः समं वृक्षरुजः क्रमार्द्धम्।
शैलेय-मुस्ता-करजं च कुष्ठं
सर्वाऽर्द्धखण्डः कथितो दशाङ्गः”॥

यथा –

"जम्बूफलैः स्त्रियो वश्याः कूष्माण्डैर्दैत्यकन्यकाः।
वश्याः भवन्ति देवेशि नालिकेरजलेन वा।
केवलं घृतहोमेन वरदाः सर्वशक्तयः"।

तथा तन्त्रराजे –

अथ होमं प्रवक्ष्यामि ललिताविद्यया शिवे।
येन मर्त्योऽपि भुवने प्रख्यातो देवतासमः॥
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे द्रव्यकालादिभेदतः।
प्रोक्तेषु नवकुण्डेषु तत्र कर्मसु चोदितैः॥
जुहुयादुक्तमार्गेण तत्तत्कर्माऽनुपूर्वकम्।
शुक्लप्रतिपदारम्भात् पूर्णान्तं कमलैर्हुनेत्॥
मधुरत्रयसंसिक्तैः पुष्पैरप्यरुणैः शुभैः।
अखण्डितैरब्धमात्रान्नरो नृपतिसन्निभः॥
तैष्वेव दिवसेष्वेवं सितैः स्याद् धनवान् हुतैः।
कह्लारैर्हवनात् तेषु दिनेषु धनधान्यवान्॥
तथैवोत्पलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम्।
अरुणोरुत्पलैर्होमात् कन्यकां समवाप्नुयात्॥
कैरवैर्हवनात् तेषु दिनेषु श्रियमाप्नुयात्।
सौभाग्यं कीर्तिमारोग्यमवाप्नोत्यर्चनादपि॥
तैः षड्भिः कुङ्कुमक्षोदप्लुतैस्तद्दिनहोमतः।
अचलां च श्रियं प्राप्य सुखी जीवति भूतले॥
तैश्चन्दनाक्तैर्हवनात्तद्दिनेषु यथाविधि।
पुत्र-दासी-दासयुतश्चिरं जीवति मानवः॥

तैरेवेन्दुद्रवाक्तैस्तु होमात् कन्दर्पसन्निभः।
वनिताजनैः स हुनयेद् (हुनेद्) दीर्घायुर्बहु जीवति॥
कृष्णप्रतिपदारम्भाद् दर्शान्तं जुहुयाच्च तैः।
घृताक्तैरब्दमात्रेण निःसपत्नां लभेच्छ्रियम्॥
तेष्वेव दिवसेष्वग्नौ गुडैः क्षौद्रान्वितैर्हुनेत्।
कान्तिलक्ष्मीजयाऽऽरोग्ययुतो जीवति भूतले॥
द्राक्षाभिर्दुग्धसिक्ताभिस्तद्दिनैर्हवनान्नरः।
क्षाराऽहारी चिरं भूमौ जीवत्यकलुषाऽऽशयः॥
खर्जूरीफलहोमेन त्रिमध्वक्तेन तद्दिनैः।
आयुरारोग्यविजयं सम्पन्नां श्रियमश्नुते॥
कदलीफलहोमेन तथा तद्दिवसेषु च।
पुण्यकीर्तिर्नृपैर्मान्यो जीवेद् वर्षशतं सुखी॥
नालिकेरफलक्षोदैः सिताक्षौद्रसमन्वितैः।
हवनात् तद्दिनैरिष्टमखिलं समवाप्नुयात्॥
तैरिक्षुवारिसंसिक्तैर्हवनात् तद्दिनेषु वै।
वासांसि नानावर्णानि महार्हाणि लभेत सः॥
सर्वैश्च तैस्त्रिमध्वक्तैहर्वनाच्छ्रियमाप्नुयात्।
तैः सवत्ससितागव्यपयोक्तैर्हवनादपि॥
महिषीक्षीरसंसिक्तैः होमादिष्टमवाप्नुयात्।
अजाक्षीरप्लुतैस्तैश्च तथा क्षीरेण सम्प्लुतैः॥
नालिकेरफलक्षोदक्षीराक्तैरपि तैर्हुनेत्।
तथा द्वादशभिर्द्रव्यैरेकैकैः संहतैस्तु वा॥

नित्यशो हवनाद् दुग्धक्षौद्रसर्पिःसमन्वितैः।
सम्पन्नसस्यां पृथिवीमवाप्नोति सुनिश्चितम्॥
गोभूहिरण्यवासोभिः समृद्धो जीवति क्षितौ।
रविवारे सिताऽन्नैस्तु क्षीराक्तैर्हवनात्तथा॥
अक्षादन्नसमृद्धिः स्यात् घृताक्तैर्वा मधुप्लुतैः।
सोमवारे सितोपेतैर्नालिकेरफलैर्हुतैः॥
सम्पन्नसस्यां पृथिवीमवाप्नोति सुनिश्चितम्।
अङ्गारवारे क्षौद्राक्तैरन्नैर्होमाच्छ्रियं लभेत्॥
तैरिष्टभूभृन्मिलितैः हवनात् तां महीं लभेत्।
बुधवारे घृताक्तैस्तु होमेन तिलतण्डुलैः॥
श्रियं सकलकल्याणनिलयां लभतेऽब्दतः।
गुरुवारे दुग्धसिक्तैः पनसाऽस्थिपराग्रकैः॥
जुहुयाद् अब्दमात्रेण लभते गेहमुत्तमम्।
सितवारे नालिकेरक्षौद्रैः सितसमन्वितैः॥
गुडान्वितैर्वा जुहुयाच्छ्रिया सुचिरमेधते।
शनिवारे तैलसिक्तैर्जुहुयात् सप्तसु क्रमात्॥
तद्दिनैरिन्दिराढ्यः स्याद् विद्याहवनवैभवात्।
तत्तद्दिनेषु तद्विद्याभक्तान् स्त्रीन् वै सुभोजयेत्॥
घृतक्षीरसिताक्षौद्रगुडाऽपूपसमन्वितैः।
अश्विन्यादिषु ऋक्षेषु नवस्वपि हुनेत्क्रमात्॥
शालीभिस्तण्डुलैर्मुद्गैर्माषैर्गोरैस्तिलैः।
तथाविधैः सर्षपैश्च कोद्रवैरिन्दिराप्तये॥

क्षौद्रसर्पिस्तैलदुग्धकेरोदेक्षुरसाऽऽप्लुतैः।
महिष्यजाविकाक्षीरप्लुतैस्तैर्नवसु च क्रमात्॥
मद्यादिषु तथा होमं नवभिः स्यान्नवस्वपि।
चणकैश्चणकान्नैश्च मुद्गान्नैः कृत्सरैस्तथा॥
माषान्नैश्च हरिद्रान्नैर्गुडान्नैः पायसैरपि।
मुद्गाऽन्नैश्च त्रिमध्वक्तैकीर्तिलक्ष्मीजयाप्तये॥
तथा मूलादिनवके नवभिर्जुहुयात् तथा।
पृथुकैः सक्तुभिर्लाजैरिक्षुकाण्डैः पयप्लुतैः॥
शाली-चणक-मुद्गोत्थैर्माषपिष्टतिलोद्भवैः।
अपूपैर्मधुराभ्यक्तैर्विजयं कीर्तिमिन्दिराम्॥
आरोग्यमाप्नुयाद् राजमान्यतां च लभेद् ध्रुवम्।
सिद्धयोगेषु यद्द्रव्यैर्जुहुयात् तत्समृद्धिमान्॥
तथाऽमृताख्ययोगेषु जुहुयाद् रोगशान्तये।
गुडूचीतिलदूर्वाभिस्त्रिमध्वक्ताभिरादरात्॥
उच्चयोगेषु जुहुयादरुणैरुत्पलैः शुभैः।
उच्चो भवति सर्वेषां स्वकुलानां सुनिश्चितम्॥
पर्वताख्ये हुनेद् योगे यद्द्रव्यैस्तद्धि पर्वतम्।
भवेदस्याऽचिरेणैव कालेन परमेश्वरि॥
अथाऽन्यमद्भुतं होममाकर्णय वदामि ते।
स्वक्षेत्रगे स्वोच्चगे वा जुहुयाद् ग्रहतृप्तये॥
पायसैर्घृतसिक्तैस्तु सितमिश्रैस्तु विद्यया।
सर्वदा यो हुतविधिमेनं कुर्याद्यथाविधि॥

तत्तत्प्रोक्तेषु कालेषु ग्रहार्तिः स्यान्न तत्कुले।
मासेस्वजन्मत्रितये होमं कुर्याद् यथाविधि ॥
दूर्वाऽमृतातिलैर्नित्यं यावज्जीवं सुखं भवेत्।
तद्दिनेषु जपेद् विद्यां सहस्रं दिननित्यया ॥
न तस्य कुत्रचित् कश्चित् कदाचित् क्लेशसम्भवः।
तर्पणं कारयेत् चन्द्रवासितैर्मधुरैर्जलैः ॥
सौरभाऽऽढ्यैः प्रसूनैश्च पूजयेद् वाथ तद्दिने।
अबन्ध्याजन्मत्रितयः स्यात् कदाचन मान्त्रिकः ॥
यदि स्यात्तस्य रोगादिपीडा भवति निश्चितम्।
उच्चस्थे वा स्वराशौ वा स्थिते चन्द्रे दिवाकरे ॥
विद्यां जपेत् सहस्रं वा शतं वा पूजयेत् शिवाम्।
यस्तस्य रोगतो बाधा कदाचिन्न भवेद् ध्रुवम् ॥
तस्मादुक्तेषु कालेषु तथा कुर्वन् सुखी भवेत्।
ग्रहरोगादिदारिद्र्यक्लेशयुक्तस्य मन्त्रिणः ॥
मान्त्रिकत्वं भवेल्लोके शोकहास्यास्पदं भवेत्।
पालाशपुष्पैश्च फलैः पत्रैः काण्डैश्च मूलकैः ॥
हवनादब्दमात्रेण वाग्मी स्यात् कुण्ठवागपि।
अर्कपुष्पैस्त्रिमध्वक्तैर्होमादिष्टमवाप्नुयात् ॥
मण्डलात् तस्य पत्रैश्च समिद्भिरपि मूलतः।
बिल्वप्रसूनैस्तु फलैः पत्रैः काण्डैस्तथा हुनेत् ॥
मूलैश्च लक्ष्मीसंसिध्यै यस्तदन्वयगा भवेत्।
पद्माक्षैर्मधुराभ्यक्तैर्होमात् त.वद्दिनैर्नरः ॥

इन्दिरां लभते रम्यां सर्वलोकनमस्कृताम्।
चम्पकैर्मधुसम्मिश्रैर्जुहुयात् तद्दिनाऽवधि॥
आढ्यः स्यादप्रजः पुत्रानवाऽऽप्नोति गुणान्वितान्।
तैरेवाऽऽज्यप्लुतैर्होमान् मङ्गले तूचसंस्थिते॥
लभते सर्वसस्याऽऽढ्यां भुवं भोक्ता च जायते।
तैः क्षीराक्तैर्हुतैश्चन्द्रे स्वोच्चगे तद्दिनैर्भवेत्॥
शतगुः साधकः तद्वत् त्रिमध्वक्तैर्लभेत् त्रयम्।
पाटलैः क्षौद्रसंसिक्तैर्होमात् कन्यामवाप्नुयात्॥
तगरोत्थैरपि तथा लाजैश्च कुटजैरपि।
तैः क्षीरमिश्रैर्हवनाच्चतुर्भिर्लभते धनम्॥
अम्बराणि विचित्राणि महार्हाणि च तद्दिनैः।
शतपत्रैस्त्रिमध्वक्तैर्होमात् कन्यामवाप्नुयात्॥
केसरैश्च कदम्बैश्च कुन्दैर्विचकिलैरपि।
मल्लिकामालतीजातीपुन्नागैश्च न मेरुभिः॥
जुहुयात् प्रथमारम्भं पञ्चम्यन्तं मधुप्लुतैः।
एकैकशः समस्तैश्च महालक्ष्मीमवाप्नुयात्॥
तैरेव क्षीरमिलितैर्होमात् स्वर्गमवाप्नुयात्।
तथाज्याक्तैश्च हवनाल्लभते भूषणैः श्रियम्॥
प्रसूनैः कर्णिकारोत्थैः क्षौद्राक्तैर्हवनाद् दिनैः।
उदितैरचलां लक्ष्मीमवाप्नोति सुनिश्चितम्॥
कल्हारै रक्तकुमुदैरुत्पलैः कमलद्वयैः।
प्राग्वन्नन्दादिपूर्णान्तं एकैकैर्वाऽपि पञ्चभिः॥

हवनाल्लभते लक्ष्मीं सभूषणसवाहनाम् ।
त्रिमध्वक्तैस्तथैकैकैः सर्वैर्वा साधकोत्तमः ॥
केतकीकुसुमैः क्षौद्रप्लुतैर्होमात् तु तद्दिनैः ।
वासांसि लभते चित्राण्यनर्घाणि बहून्यपि ॥
सितैः प्रसूनैः क्षीराक्तैः होमादाप्नोति तद्दिनैः ।
सितानि वासांसि तथा मुक्तादाम अनल्पकम् ॥
हुनेत् मरुवकैः क्षौद्रप्लुतैर्वाञ्छितसिद्धये ।
तथा दमनकैः पत्रैः हवनाच्छ्रियमश्नुते ॥
यद्वर्णानि प्रसूनानि जुहुयाद्विद्यया प्रिये ।
तद्वर्णान्येव वासांसि लभते साधको ध्रुवम् ॥
मरिचैः सर्षपैस्तैलप्लुतैर्होमान्निशासु वै ।
लज्जामानकुलत्यागलोलामिष्टां समानयेत् ॥
पाटली-कुन्द-मन्दार-शेफालिकसमुद्भवैः ।
चम्पकाऽशोक-पुन्नाग-नमेरुकुसुमैः शुभैः ॥
हवनाद् वनिताः सर्वा वशयेत् क्षौद्रसम्प्लुतैः ।
तैरेवाऽऽज्यप्लुतैर्होमाद् वशयेत् पुरुषानपि ॥
तै राज्यलक्ष्मीं लभते घृताक्तैर्हवनान्निशि ।
समस्तजीवभुवनं वशयेत् तैः सितान्वितैः ॥
अन्नैर्घृतप्लुतैर्नित्यं हवनादन्नवान् भवेत् ।
तथैव जुहुयान्नित्यमायुषे तिलतण्डुलैः ॥
मध्यरात्रे तु लवणैः सुश्लिष्टपरिचूर्णितैः ।
त्रिमध्वक्तैर्हुतैः सर्वान् वशयेदङ्गनाजनान् ॥

तथा तदन्वितैर्लवणैर्होमाद् वेश्यां वशं नयेत्।
तथा पुण्ड्रेक्षुतोयाक्तैर्हुतैः स्युर्वशगा नृपाः॥
आज्यैस्तु केवलाद् होमाद् दिनैरुक्तैर्धनी भवेत्।
नित्यशो घृतहोमेन श्रीमान् भोगी च जायते॥
स्नाताऽनुलिप्तः स्रग्वी च सितगन्धस्रगम्बरः।
सम्पूज्य देवीं तुष्टात्मा संस्कृते हव्यवाहने॥
सवत्सायाः सिताया गोः पर्यासाद्विगुणो पचेत्।
प्रस्थमात्रं तण्डुलं तु शालिजं सितमेव वा॥
सिता दुग्धसमोपेतं कृत्वा वै सिक्थकं महत्।
गृहीत्वा पाणिना विद्यां जपित्वा शतवारकम्॥
प्रियं मे देवि देहीति प्रोक्त्वा काष्ठोज्ज्वलेऽनले।
हुत्वा समाप्य पूजां तु तथा भुक्त्वा तु तद्दिनम्॥
मौनी तु गमयेदब्दात् श्रियं प्राप्नोति पुष्कलाम्।
निरन्तरं नित्यशश्वत् जुहुयाच्चेत् तदन्वयम्॥
न कदापि रमा मुञ्चत्यद्भुता मन्त्रशक्तयः।
पायसैर्जुहुयात् पूर्णास्वर्कवारेषु साधकः॥
निवेदयेच्च पूजायां अब्दादाढ्यतमो भवेत्।
सवत्साऽरुणवर्णायाः गोः क्षीरान्नवनीतकम्॥
तद्दिनात् तत्तु कह्लारप्रसूनैर्निक्षिपेत् ततः।
तदुद्धृत्य हुनेदग्नौ भौमवारे तदुच्चके॥
काले तावद् दिनैर्लक्ष्मीं भूम्याढ्यां लभते ध्रुवम्।
तथा धवलरूपाया नवनीतं सिताऽम्बुजे॥

निधायाऽऽदाय मौने हुनेदग्नौ भृगोर्दिने।
सप्तवारप्रयोगेण महतीमाप्नुयाच्छ्रियम् ॥
नृपमान्यां सर्वहृद्यां नानापुष्पाऽन्वितां शुभाम्।
तथाऽरुणसमुद्भूतं नवनीतं रवेर्दिने ॥
निधाय विकचे पद्मे कर्णिकायां ततस्तु तत्।
जुहुयादष्टभिर्वारैः आढ्यः स्यात्साधकः शिवे ॥
कर्णिकारस्य पुष्पाणि तथा चम्पकजान्यपि।
जुहुयान्नवनीताक्तान्युच्चैस्तूच्चगते गुरौ ॥
निरातङ्कामहार्यां च राजचौराऽपहारकैः।
प्राप्नोति महतीं लक्ष्मीं या तदन्वयगामिनी ॥
केवलं नवनीतेन सितोपेतेन होमतः।
कीर्तिलक्ष्मीधनाऽऽरोग्यविजयैरायुराप्नुयात् ॥
बन्धूकैः किंशुकैः श्वेतैः त्रिमध्वक्तैर्हुतक्रिया।
सौभाग्यलक्ष्मीविजयकान्तिप्रज्ञावहा भवेत् ॥
दध्यन्नहोमादन्नाऽऽढ्यः साधकः स्यात् त्रिमासतः।
आर्द्रेषु तालपत्रस्य खण्डेषु निजवाञ्छितम् ॥
विलिख्य नवनीतेन समेतं जुहुयान्निशि।
मण्डलान्मासतो वारान् प्राप्नोत्येव स्ववाञ्छितम् ॥
तथा पालाशपर्णेषु विलिख्य दरदैर्हुनेत्।
कुङ्कुमैश्चूतपत्रेषु लिखित्वा वा हुनेन्निशि ॥
चन्दनैः पानसे पत्रे विलिख्य जुहुयात् तथा।
यक्षक्षोदैर्विलिख्येष्टं नागवल्लीदलेषु तैः ॥

तैर्हुतैस्तदवाप्नोति तद्दिनैस्तद्विधानतः।
एलालवङ्गकङ्कोलजातीफलसमन्वितैः॥
सितैरालिख्य च स्वेष्टं पत्रे पद्मसमुद्भवे।
जुहुयात् तस्य संसिध्यै बहुभिः कर्मचोदितैः॥
नासाध्यमस्ति भुवने विद्याहोमेऽनुदीरितैः॥

॥अथ क्रूरहोमः॥

तत्र तन्त्रराजे –

सूक्ष्मं परं च होमं ते कथितं परमेश्वरि।
इदानीं स्थूलहोमं तु कथयाम्यरिमर्दनम्॥
तत्तत्कर्मोदिते कुण्डे कुर्याद् होममुदीरितैः।
विधानैर्द्वेषनिधनरोगनिग्रहचाटनम्॥
आयुर्दायं रिपोर्ज्ञात्वा लग्नोक्तर्षाऽनुकूलतः।
तदात्मकग्रहाणां च स्थितिमष्टकवर्गकम्॥
त्रयाणामानुकूल्येन कुर्यात् तदभिचारकम्।
अन्यथा क्रूरकर्माणि कुर्वाणं नाशयन्ति हि॥
तान्येव कर्माणि ततस्तत्त्रयः प्रातिकूल्यतः।
कुर्यात् तद् देवता भक्तिमाऽऽस्तिक्यं वर्तनं गुरुम्॥
तत्पार्श्ववर्तिमन्त्रज्ञान् आलोच्य रिपुनिग्रहम्।
विदध्यादन्यथा शक्तिनैष्फल्यं चात्मनाशनम्॥
रिपोरष्टमलग्ने च काले त्वष्टमराशिगे।
स्थाने कुर्यादनिष्टानि तद्विनाशाय साधकः॥
प्राच्यां मेषवृषौ वह्नौ मिथुनं दक्षिणे तथा।
कुलसिंहमिथुनं निर्ऋत्यां कन्यकां तथा॥

तुलाकीटौ पश्चिमतो धनुर्वायौ तु संस्थितम् ।
नक्रकुम्भावुत्तरतो मीनमीशे तु संस्थितम् ॥
एवं राशिक्रमं ज्ञात्वा कुर्यात्कर्माणि देशतः ।
काले तु पञ्च-पञ्च स्युर्घटिकाक्रमयोगतः ॥
चैत्रादिषु तु मासेषु द्वादशस्वपि भास्करः ।
मेषादिराशिगो याति तथा तैर्ग्रहमण्डलैः ॥
देहेषु प्राणिनां तद्वद् अष्टाऽङ्गुलिविभेदतः ।
मूर्धादिचरणान्तं तु तां द्वादशसु लक्षयेत् ॥
त्रयाणामानुगुण्येन कुर्यात्कर्माणि नान्यथा ।
शुभाशुभानि कर्माणि फलन्त्येवं कृते ध्रुवम् ॥
तथा हानिविषस्थानान्यमृतस्थानकानि च ।
ज्ञात्वा विदध्यात् पुत्तल्याः प्रयोगं सर्वतस्तथा ॥
सिते हृदि स्तनगले नासाऽक्षीणि तथा श्रुतौ ।
भ्रूशङ्खमूर्धमध्येषु तच्छङ्खं भ्रूसुमध्यतः ॥
कर्णे नेत्रे नासिकायां वर्तते पुरुषस्य तु ।
सव्यकर्णे स्तनतटे हृदि नाभौ च गुह्यके ॥
जानुसन्ध्यङ्घ्रिपार्श्वेषु तथाऽङ्गुष्ठेषु दक्षिणे ।
अङ्घ्रौ सन्धौ जानुगुह्ये नाभौ चेति सितेतरे ॥
तिष्ठेद् विषकला पुंसि स्त्रियां वामादि वर्तते ।
विषनाड्यां विषस्थाने वेधयेत् कण्ठकेन तु ॥
सङ्कोचाख्येन तथा तीव्रेणाऽस्थिमयेन वै ।
तूलादि समुत्थैर्वा तप्ताऽयःसारसूचिभिः ॥

पुत्तल्या यत्र तद्विद्धं तदङ्गं शत्रुदेहजम्।
व्याधिना पीड़ितं कालादविधेयं भवेद् ध्रुवम्॥
तत्र तेनाऽऽर्तिना क्लिष्टो जीवितेशपुरं व्रजेत्।
पुत्तलीकरणं वक्ष्ये शृणु निग्रहसिद्धये॥
भौमशुक्रबुधाः चन्द्रो भास्करः सौम्यभार्गवौ।
मङ्गलो गुरुमन्दाऽहि गुरवोंऽशकराशिपाः॥
नक्षत्राणि चतुष्पादान्येवमष्टोत्तरं शतम्।
एतावत्यश्च पुत्तल्यस्त्वंशकक्रमयोगतः॥
प्रथमे नवके चन्द्रभास्करांशकयोः क्रमात्।
षोडशद्वादश तथा मानमङ्गुलिसंख्यया॥
अन्यांशकेषु सर्वाश्चतुर्दश समीरिताः।
द्वितीये नवकेऽन्येषां अध्यर्धाः स्युस्त्रयोदश॥
तृतीये नवकेऽन्येषां त्रयोदशसमीरितम्।
चन्द्राऽर्कयोरेकविधः प्रोक्तः संख्याक्रमस्तथा॥
पुत्तलीकरणे द्रव्यं चक्रिहस्तमृदान्वितम्।
चितामृद्भस्मलवणशुण्ठीपिप्पलिकायुतम्॥
मरिचं गृहधूमं च लशुनं हिङ्गुसैन्धवम्।
गैरिकं चेति कथितं पुत्तलीद्रव्यमीश्वरि॥
साध्यर्क्षवृक्षैः पिष्टैश्च माषचूर्णैश्च सिक्थकैः।
वैरिदेहजरोमाद्यैरुपेतैः पुत्तलीक्रिया॥
पुत्तलीदैर्घ्यमानं तु कृत्वाष्टांशमथैकतः।
शीर्षं त्रयात्कटेरूर्ध्वं त्रयात्पादद्वयं तथा॥

कटिप्रपदयोरेकमंशमेवं तु पुत्तलीम् ।
विधाय तन्त्रे सर्वत्र प्रयोगानाचरेत् ततः ॥
पातालयोगे नीचाख्ये विषयोगे च मृत्युजे ।
नाशयोगे च दिनजमृत्यौ क्रकचयोगके ॥
चण्डीशचण्डाऽऽयुधके महाखले च काणके ।
रक्तस्थूणे कण्टकाख्ये स्थूणे पञ्चादिसंज्ञके ॥
कुर्यात् प्रयोगान् प्रत्यर्थिभङ्गाय निधनाय च ।
निग्रहाय निरीक्ष्यैवं कुर्यात् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥
वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटमारणे ।
विदध्यात्पुत्तलीः सम्यक् चतस्रः प्रोक्तयोगतः ॥
४ पिष्टेन सिक्थेन तथा चक्रिहस्तमृदाऽपि च ।
साध्यनक्षत्रवृक्षेणाऽप्युक्तलक्षणसंयुताः ॥
आसने पादयोः स्थाने कुण्डमध्ये तु साधकः ।
पिष्टमृत्तरुजाः स्नात्वा स्थापयेत् सिक्थमम्बरे ॥
कुण्डमध्यादुपर्यूर्ध्वपादान्चक्रुशीर्षकामपि ।
एवं साधारणं कृत्वा कुर्यात्कर्मसमीरितम् ॥

॥ अथैतेषां विषमपदव्याख्या ॥

तत्र निग्रहशब्दो युद्धादिषु पराजयविषयः। आयुर्दायमित्यादि...... नाशनमित्यन्तानां चतुर्णां श्लोकानामयमर्थः– रिपोरभिचारकाले ज्योतिः-शास्त्रे होरास्कन्धोक्तप्रकारेण तस्य तात्कालिकमायुर्दायं गोचराऽष्टकवर्गेषु ग्रहाणां स्थितिं च विचार्य तत्त्रयाऽनूकूले सति तस्याऽभिचारकर्म कुर्यात् । तत्प्रातिकूल्ये तु न कुर्यात् । तमनवेक्ष्य क्रियमाणानि क्रूरकर्माणि कुर्वाणमेव नाशयन्ति । अतः सर्वथा तं निरीक्ष्यैव कुर्यादिति ।

अथ च रात्रौ देवताभक्तिमास्तिक्यमाचारं गुरुं तत्पार्श्ववर्तिनो मान्त्रिकानपि ज्ञात्वा, तेषामनुभावादिकं वा तद्विद्भिरालोच्य, तत्प्राबल्ये सति तदभिचारादिकं न कुर्यादिति।

रिपोरित्यादिश्लोकस्याऽयमर्थः– तत्र शत्रोर्जन्मर्क्षराशेश्चन्द्रलग्नराशेर्वा अष्टमे लग्ने तदुदयकाले वक्ष्यमाणद्वादशराशिस्थानेषु रिपोरष्टमराशिगे स्थाने तद्विनाशाय कर्म कुर्यादिति।

प्राच्यामित्यादिश्लोकद्वयस्यायममर्थः– तत्राभिचारादिकर्मकरणार्थं रचिते मण्डपादौ चतुरश्रीभूते नवधा विभक्ते पूर्वदिग्गतखण्डे उत्तरदक्षिणक्रमेण मेषवृषयोः स्थानद्वयं, आग्नेयां मिथुनस्य दक्षिणे पूर्वपश्चिमक्रमेण कर्कसिंहयोः, नैर्ऋत्यां कन्यायाः, पश्चिमे दक्षिणोत्तरक्रमेण तुलावृश्चिकयोः, वायव्ये धनुर्लग्नस्य उत्तरपश्चिमक्रमेण मकरकुम्भयोः, ईशान्ये मीनस्येति। सुस्थितमित्यनेन कालचक्रस्थराशिचक्रवन्न भ्रमतीत्युक्तम्।

एवमित्यादिश्लोकस्याऽयमर्थः– उक्तक्रमेण देशेषु राशिस्थितिक्रमं ज्ञात्वा, कालेऽपि सूर्याधिष्ठितराश्यादितः प्रतिराशि पञ्चषघटिकाक्रमयोगेन द्वादशराश्युदयकालमपि ज्ञात्वा, क्रूरकर्माणि कुर्यादिति। राशीनां न्यूनाधिकभावस्त्वंशदेशयोः वैषम्याद् गणितशास्त्रेषूक्तः; तदत्राप्रयोजकः इति।

चैत्रादीत्यस्य श्लोकस्यायमर्थः– चैत्रादिषु सौरमासेषु मेषाद्यैकैकराशिभक्तिक्रमेण ज्योतिःशास्त्रे तत्तद्ग्रहपरिवृत्तिप्रोक्तकालविशेषैः चन्द्रादिग्रहमण्डलैः सह सूर्यो यातीति।

देहेष्वित्यादिश्लोकस्याऽयमर्थः– देश-काल-देहात्मकानामाऽऽनूकूल्येन वक्ष्यमाणकर्माणि कृतानि फलदानि भवन्ति; अन्यथा न भवन्तीति।

तथेत्यादिश्लोकस्याऽयमर्थः– तत्राह प्रयोगदिवसे तथेत्यमृतस्थानकालीत्यत्रान्वयः। तानि तु पादाऽङ्गुष्ठ-प्रपद-गुल्फ-जानु-लिङ्ग-नाभि-हृद्गल-

नासा-अक्षि-कण-भ्रू-शङ्ख-मूर्धाख्यानि। एतेषु स्थानेषु शुक्लपक्षे पूर्वं दक्षिण-पादाऽङ्गुष्ठमारभ्य, मूर्धान्तं तत्पार्श्वस्थानेषु पञ्चदशसु प्रोक्तेषु स्थानेषु तत्प्रथमादिपूर्णान्तपञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि एकस्मिन् स्थाने, एककाले, इति यथाक्रममहरहः क्रमादमृतकलायाः स्थितिर्भवति। कृष्णपक्षे तु शिरो वामभागादिवामपादाऽङ्गुष्ठाऽन्तेषु प्रोक्तेषु पञ्चदशसु स्थानेषु पूर्णानन्तर-प्रतिपदमारभ्यामावान्तपञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रममवरोहक्रमेणाऽ-मृतकलास्थितिर्भवति। स्त्रीणां तु शिरो दक्षिणभागादिदक्षिणाऽङ्गुष्ठाऽन्तं प्रोक्तेषु पञ्चदशसु स्थानेषु पूर्णानन्तरप्रतिपदादिदर्शान्तं पञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रममवरोहक्रमेणाऽमृतकलास्थितिर्भवति। दक्षपादाऽ-ङ्गुष्ठादिशिरो दक्षिणभागान्तेषु प्रोक्तेषु पञ्चदशस्थानेषु दर्शाऽनन्तरप्रति-पदमारभ्य, पूर्णान्तपञ्चदशसु तिथिषु प्रतितिथि यथाक्रममारोहक्रमेणामृत-कलायाः स्थितिर्भवतीति विषस्थानानि वक्ष्यमाणानि।

सितेत्यादि सार्धत्रयश्लोकस्यार्थः— तत्र शुक्लपक्षप्रथमादिदर्शान्तासु त्रिंशत्तिथिषु पुरुषस्य दक्षिणभागे हृदयादिमूर्धान्तेषु नव स्थानेषु दक्षिणेषु पुनस्तद्वामपार्श्वे मूर्धादिपादाऽङ्गुष्ठान्तपञ्चदशसु स्थानेषु पुनर्दक्षिण-पादाऽङ्गुष्ठादिनाभ्यन्तषट्सु स्थानेषु च सम्भूय त्रिंशत् स्थानेषु क्रमेण विषस्य परिवृत्तिः भवतीति।

विषनाड्यामित्यादिसार्धत्रयश्लोकस्याऽर्थः— तत्र सप्तविंशति नक्षत्रेषु प्रतिनक्षत्रं ज्योतिःशास्त्रप्रोक्तविषात्मकनाडीचतुष्टयकाले शत्रुप्रतिकृति-रुपपुत्तल्याः देहे प्रोक्तविषस्थाने सङ्कोचाख्यस्य मत्स्यविशेषस्य देहोत्थ-तीव्राऽस्थिना बबूलादिकण्टकैर्वा वेधात् शत्रोः तत्तदङ्गव्याधिपीडितः प्रयोगस्य गौरवलाघवादिशीघ्रविलम्बेन वा मृत्युर्भवतीति।

भौमेत्यादिश्लोकस्याऽयमर्थः— तत्र अहिः शनैश्चरः, भौमादयो ग्रहाः, मेषादिद्वादशराशीनामश्विन्यादित्रि-त्रिनक्षत्रोद्भवद्वादशांशकानां च क्रमेणाऽ-धिपतय इत्यर्थः।

नक्षत्राणीत्यस्य श्लोकस्यार्थः– अश्विन्यादिसप्तविंशति नक्षत्राणि। प्रतिनक्षत्रं चतुश्चतुश्चरणक्रमेणाऽष्टोत्तरशतचरणैरष्टोत्तरशतांशकाः भवन्ति। तेषामष्टोत्तरशतपुत्तलिकाः भवन्ति।

प्रथमेत्यादिश्लोकत्रयस्याऽयमर्थः– तत्र अश्विन्याद्याश्लेषान्त-नव-नक्षत्रांशकेषु सूर्यसोमयोरंशकपुत्तलीनां क्रमेण द्वादशाऽङ्गुलं च मानं भवति; भौमादीनां चतुर्दशाऽङ्गुलमानं मघादि ज्येष्ठान्तद्वितीयनवांश-कानां सोमसूर्ययोः प्राग्वद् भौमादीनां सार्धत्रयोदशाऽङ्गुलमानं, मूलादि-रेवत्यन्ततृतीयनवकांशकानां भौमादीनां त्रयोदशाऽङ्गुलमानं, सूर्यसोमयोः प्राग्वत्।

पुत्तलीकरणेत्यादि श्लोकत्रयस्यार्थः– तत्र चक्रिहस्तमृत्कुलालहस्त-मृत-चिताभस्ममृच्च, शुण्ठ्यादिचूर्णितं, लशुनस्य रसं, साध्यर्क्षवृक्षः साध्यनक्षत्रवृक्षः, सिक्थकं मधूच्छिष्टं, शत्रुदेहजरोमादि, आदिशब्देन तन्नखपादपांशु च गृह्यते। अत्राऽयं निर्गलितार्थः। शत्रुनक्षत्रवृक्षेण एका पुत्तली कार्या; कुलालहस्तमृत्तिकयान्या; माषपिष्टेनापरा; मधूच्छिष्टेन चेतरा इति चतस्रः पुत्तल्यः सर्वकर्मसु कार्याः।

तत्र क्रूरकर्मणि शुण्ठ्यादि द्रव्याष्टकं चिताभस्मादि शत्रुदेहरोमादीनि च यथायोग्यं चूर्णीकृतानि मृत्तिकायां पिष्टे मधूच्छिष्टे च मेलयित्वा, पश्चात् तत्तत्पुत्तलिका कार्या इति।

पुत्तलीदैर्घ्यमानमित्यादिश्लोकद्वयस्यार्थः– तत्र तत्तदंशकोक्तपुत्तली-दैर्घ्याऽङ्गुलमानमष्टधा विभज्य, तेष्वेकांशेन कण्ठादूर्ध्वमंशत्रयेण, कटेरू-र्ध्वमर्धांशेन, कटिप्रदेशमंशत्रयेण, पार्ष्णिभागादूर्ध्वमर्धांशेन, प्रपदादिशेषाङ्गं च कुर्यादिति। सर्पशीर्षस्रुचा होमं कुर्यादिति।

सर्पशीर्षस्रुचा होमं कुर्यादशुभकर्मसु।
वैरियोन्यसृजा कृत्वा चरुं तु जुहुयात्तथा॥

त्रिकोणकुण्डे यमदिङ्मुखो भूत्वाऽर्धरात्रके।
श्मशाने निर्जने देशे विदध्यादभिचारकम् ॥
यत्राभिचारहोमं तु करोति भुवि साधकः।
तत्राऽभितो नृपो रक्षां कारयेदात्मसिद्धये ॥
न चेदरातिनृपतिश्चारैर्ज्ञात्वा निहन्त्यमुम्।
स्वराष्ट्रसन्धौ कुर्वीत न कुर्वीत स्वमण्डले ॥
यदि कुर्यात्प्रमादेन मान्त्रिकोऽज्ञानमोहितः।
तद् राष्ट्रं पीडयत्येव शनकैर्वैरिभूभृतः ॥
अक्षद्रुमसमृद्धेऽग्नौ तत्फलैश्च करञ्जजैः।
हैमीदलरसाक्तैस्तु होमाच्छत्रून् विनाशयेत् ॥
नक्रमालसमिद्धेऽग्नौ तत्फलैर्वा तथा हुनेत्।
रिपुरुग्रोऽपि रोगार्तः प्रयाति यमशासनम् ॥
उन्मत्तकाष्ठैः प्रज्वाल्य वह्निं तद्बीजकैर्हुनेत्।
तत्पात्राऽम्बुप्लुतैर्मासादरातिर्मृतिमाप्नुयात् ॥
आरग्वधसमिद्धेऽग्नौ तत्समिद्भिश्च तत्फलैः।
वितस्तिमात्रैस्तैलाक्तैर्हवनाद्वैरिणो मृतिः ॥
आरुष्करसमिद्धेऽग्नौ तद्बीजैस्तद्घृताप्लुतैः।
होमादरातेस्तीव्रार्तिज्वरेण स्यान्मृतिर्ध्रुवम् ॥
सौवीराक्तैश्च कर्पासबीजैर्होमात्तु मण्डलात्।
अरातीनामथाऽन्योन्यकलहान्निधनं भवेत् ॥
सर्षपाऽऽज्याप्लुतैः शुण्ठीमागधीमगधैर्हुनेत्।
वैरिजन्मर्क्षवृक्षाऽग्नौ मण्डलात् तन्मृतिर्ज्वरात् ॥

प्रागुक्तैः पुत्तलीं कृत्वा द्रव्यैरुक्तविधानतः।
सर्षपारुष्करघृतसंसिक्तैर्जुहुयान्निशि ॥
प्राग्वच्छित्वा तदङ्गैस्तु क्रुद्धचित्तोरुणाम्बरः।
रक्तस्रग्गन्धपुष्पादियुतः शत्रून् विनाशयेत् ॥
अरुष्करघृताभाक्तैस्तद्बीजैः सर्पशीर्षकैः।
हवनात् तत्तद्भूतसमिधां हवनादपि ॥
दिनैः कैश्चिद् रिपुक्लिष्टो नाशमेति सुनिश्चितम्।
द्रुमकुड्यनिगातेन निर्घातेनाऽरिखड्गतः ॥
सलिले पावके सर्पदंशात् मत्तद्विपाद् गदात्।
यक्षराक्षसगन्धर्वपिशाचैर्ब्रह्मराक्षसैः ॥
अन्यैर्वा कारणैः क्षिप्रं नाशमेति रिपुर्ध्रुवम्।
निम्बपत्रैश्च कार्पासबीजैस्तत्काष्ठकाण्डजैः ॥
हवनात् सर्षपस्नेहसिक्तैर्विद्वेषणं भवेत्।
नीचयोगे हुनेद्वह्नौ रिपुवृक्षसमेधिते ॥
तद्वृक्षखण्डैस्तैलाक्तैर्निशामध्ये रिपुर्दिनैः।
उच्चाटितः प्रयात्येव मन्त्रशक्त्याभिताडितः ॥
मृत्युपत्रैश्च तत्काष्ठैस्तद्बीजैस्तच्छुचौ हुनेत्।
अरातेर्दन्तिनो वाहाः रोगैर्नश्यन्ति निश्चितम् ॥
गैरिकैः पुत्तलीं कृत्वा रिपोरष्टमराशिके।
प्रागुक्तकण्टकाद्यैस्तु यदङ्गं वेधयेच्छनैः ॥
विषनाड्यां विषस्थाने तथैव यमकण्ठकम्।
अर्धप्रहरके शीर्षे प्रहरेद्वा शनैः शनैः ॥

अरातेस्तत्तदङ्गैः स्यान्निधनं प्रहरादिना।
ग्रन्थिभिर्वा कण्टकादिक्षतवृद्धिविदारुणैः॥
तन्नक्षत्रोपवृक्षोत्थपुत्तलीं स्थापितेषिकाम्।
गर्दभीमेहसलिले संस्थाप्य क्वाथयेच्छनैः॥
रिपुर्दाहज्वरग्रस्तः प्रयाति निधनं शनैः।
तां तत्कण्टकविद्धाऽङ्गीं खनेत् पितृगृहे निशि॥
व्रणात् पिशाचाऽऽविष्टश्च रिपुर्याति यमालयम्।
प्रागुक्तैरेव तद्द्रव्यैरशेषैः पुत्तलीं तथा॥
निर्माय कुण्डमध्ये तां खात्वारातिमहीरुहैः।
समिद्धेऽग्नौ तत्समिद्भिस्तैलाक्तैर्जुहुयान्निशि॥
सन्निपातज्वरस्तस्य वक्रजिह्वाऽतिमूढधीः।
प्रलपन् शनकैर्देहं त्यजन् याति यमालयम्॥
तथाविधां तां प्रतिमां निखनेत् कृष्णपक्षके।
नवम्यां मातृदिवसे मातृगेहेऽग्रपीठके॥
सप्ताहान्निधनं वैरी प्रयाति निशि ताडितः।
भूताद्यैः शिरसि स्वीये निर्घातवदलक्षितम्॥
सर्षपं माषचूर्णं च तिलं शालिजतण्डुलम्।
पिष्ट्वा साध्यर्क्षवृक्षस्य सकलैरपि संयुतम्॥
एरण्डबीजैर्मिलितं कृत्वा पुत्तलिकां ततः।
तद्वक्षोऽन्तर्निधायाऽरिनाम तालस्य पत्रगम्॥
संजप्य तां स्पृशन् विद्यात्तार्तीयप्रतिलोमतः।
सहस्रवारं साध्यस्य वधर्क्षेष्टमराशिषु॥

निबध्य तां पादयोस्तु भानुवृक्षोत्थ तन्तुना।
गृहीत्वा जीवहस्तेन तां जपन्निक्षिपेच्छुचौ॥
हुत्वाऽग्नौ तैः सहस्रं च तामूर्ध्वाऽङ्घ्रिमवाङ्मुखीम्।
तद्दिने तापतृष्णादिविह्वलेन ज्वरेण सः॥
ग्रस्तदेहो लुठन् भूमौ विसंज्ञः प्रलपन् मुहुः।
प्रयाति निधनं तूर्णं प्रयोगबलतः शिवे॥
साध्यर्क्ष-वृक्षसम्भूतां पुत्तलीं मधुदुग्धतः।
वज्रीक्षीरेण वा लिप्तां बद्धां प्राग्वदधोमुखीम्॥
साध्यनामादिसंयुक्तां कुण्डादूर्ध्वं प्रलम्बयेत्।
जुहुयात् तत्समिद्भिस्तु तत् क्षीरक्तैर्निशान्तरा॥
ज्वराऽऽर्तिः स्यादरातेस्तु त्रिभिरेव दिनैस्ततः।
यद्यस्ति तस्य रक्षेच्छा तां तडागोदरे खनेत्॥
जम्बालमध्ये तेन स्यात् सौख्यं तस्य शनैः शनैः।
तथा यदि न कुर्वीत चिरं रोगात्मको भवेत्॥
तथा तामामभाण्डे तु निवेश्याऽङ्गारवासरे।
चण्डिकाऽऽयतने खात्वा तद्र्योनिं पुरतो बलिम्॥
निहत्य दत्वाऽरातिं तु निहन्यादुपसर्गकैः।
स्वगेहे चुल्ल्यधः खात्वा तदुपर्यग्निवर्धनात्॥
अविच्छिन्नमरातेः स्याज्ज्वरादिगदसम्भवः।
तां तथा क्लृप्तरूपां तु रुरुजङ्घाऽस्थिसंयुताम्॥
निबध्य पूर्वसूत्रेण द्विषद्गेहे खनेन्निशि।
राशौ तदष्टमे मासात् प्रयात्युच्चटितोऽन्यतः॥

तथाविधं पुत्तलिकायुगं कृत्वोक्तमार्गतः।
बिडालमूषीका चर्माबद्धसाध्याख्यया युतम् ॥
निखनेत् तीरयोर्नद्याः पितृगेहेऽथवा ततः।
मातृगेहे नदी पूर्णाद्विद्वेषः स्याद् द्वयोः सदा ॥
ताः नव प्राग्वत्पाद्य साध्याख्यादिसमन्वितः।
तद्विद्याजपसिद्धास्ताः खनेदरिगृहे पुनः ॥
मध्येऽष्टदिक्षु तु तथा तत्कुलोत्सादनं भवेत्।
एवं निकटवर्तीनामभिचारमुदीरितः ॥
दूरस्थितानां द्विषतां कथं स्यादभिचारकम्।
वदामि ते शृणु प्राज्ञे सुदूरस्थस्य वैरिणः ॥
विनाशने प्रयोगं तु क्षिप्रमप्यभिचारकम्।
येनाऽरिर्निकटस्थात्तु प्रागेव निधनं व्रजेत् ॥
साध्यर्क्षवृक्षैः पुत्तलिका विधायाऽष्टौ शतं क्रमात्।
ताः प्राग्वदीरितक्षीरद्वयसिक्ताः ससंज्ञकाः ॥
तत्तदंशकमानाय घनास्ताः मध्यरात्रतः।
एकमेकां हुनेद्वैरी-दिङ्मुखस्तानशेषतः ॥
तत्तदंशककाले वा सुदूरस्थोऽपि नाशभाक्।
कथं वा मान्त्रिकबली निहन्तुं शक्यतां व्रजेत्।
तच्छृणु त्वं शिवे वच्मि प्रकारं तस्य निग्रहे ॥
तैर्मान्त्रिकैस्तस्य पूर्वं विद्वेषं कारयेत् ततः।
तैर्द्विष्टैर्निधनं तस्मिन् सुशकं स्यादनाश्रयात् ॥
भाग्याधिकमहारक्षाकारमान्त्रिकसङ्गतम्।
राजानं राजपुत्रं वा कथं हन्यात् प्रयोगतः ॥

तन्मे कथय देवेश यद्युपायस्तु विद्यते।
वदामि ते शृणु प्राज्ञे त्वमोघं घोरविग्रहे॥
अभिचारमरातीनां आशु नाशकरं परम्।
सिद्धमन्त्राननतिस्निग्धान् षोडशातिस्थिराशयान्॥
तैरविच्छिन्नरूपं तु होमयेद् यामतः क्रमात्।
तेन तन्निधनं भूयाद् रक्षितस्याऽप्ययत्नतः॥
अरातिनिधनं कुर्याद् एवमुक्तविधानतः॥
श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धावेकत्रिंशस्तरङ्गकः॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे एकत्रिंशस्तरङ्गः॥ ३१॥

॥ श्रीः ॥

अथ द्वात्रिंशस्तरङ्गः

॥ अथ काम्यहोमद्रव्याणां मानम् ॥

ज्ञानार्णवे –

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि मानं हवनसिद्धिदम्।
पुष्पं समग्रं जुहुयात् कमलं चापि पुष्कलम् ॥
कुसुम्भबाणपुष्पाणि यथेष्टानि हुनेत् प्रिये।
शतसंख्या राजिकाः स्युस्तिलाश्च शतसंख्यया ॥
लाजा मुष्टिप्रमाणाः स्युः घृतं गद्याणमात्रकम्।
चुलुकाऽर्धं पयः क्षीरमन्नं ग्रासमितं भवेत् ॥
स्थूलं फलं महेशानि कूष्माण्डं मातुलुङ्गकम्।
मनःप्रियैश्च खण्डैश्च फलं भवति निश्चयात् ॥
रम्भाफलं चतुःखण्डं लघु चेत् खण्डितं नहि।
नालिकेरस्य खण्डं हि स्थूलं कुर्यात् मनःप्रियम् ॥
पर्वस्थानेक्षुदण्डं तु मनःसन्तोषकारि च।
द्राक्षाफलं समग्रं स्यात् नारङ्गं खार्जुरं तथा ॥
गुग्गुलुः क्रमुकार्धं तु कुङ्कुमं च तथा भवेत्।
गुञ्जासमं सकर्पूरं कस्तूरी घुसृणं तथा ॥
चन्दनं चागुरुं देवि क्रमुकेण समं भवेत्।
मनःप्रियाऽऽहुतीः कृत्वा होमं कुर्यात् सुलोचने ॥

एतदाहुतिमानं ते कथितं सर्वसिद्धिदम्।
यथेच्छया वरारोहे श्रीविद्यां परितोषयेत्॥

तथा शारदातिलके—

कर्षमात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम्।
दधि प्रसृतिमात्रं स्यात् लाजाः स्युर्मुष्टिसम्मिताः॥
पृथुकास्तत्प्रमाणाः स्युः सक्तवोऽपि तथोदिताः।
गुडः पलार्धमानः स्यात् शर्कराऽपि तथा मता॥
ग्रासार्धं चरुमानं स्यादिक्षुः पर्वमितः स्मृतः।
एकैकं पत्रपुष्पाणि तथाऽपूपानि कल्पयेत्॥
कदलीनारङ्गाणां फलान्येकैकशो विदुः।
मातुलुङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधा कृतम्॥
अष्टधा नालिकेराणि खण्डितानि विदुर्बुधाः।
त्रिधा कृतं बिल्वफलं कपित्थं खण्डितं द्विधा॥
उर्वारुकफलं होमे कथितं खण्डितं त्रिधा।
फलान्यन्यान्यखण्डानि समिधः स्युर्दशाऽङ्गुलाः॥
दूर्वात्रयं समादिष्टं गुडूची चतुरङ्गुला।
व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युः मुद्गमाषयवा अपि॥
तण्डुलाः स्युस्तदर्धांशाः कोद्रवाः मुष्टिसम्मिताः।
गोधूमा-रक्तकलमा विहिताः पुष्टिमानतः॥
तिलाः चुलुकमात्रा स्युः सर्षपास्तत्प्रमाणकाः।
शुक्तिप्रमाणं लवणं मरिचान्यपि विंशतिः॥
पुरुः बदरमानं स्याद् रामठं तत्समं स्मृतम्।
चन्दनाऽगुरुकर्पूरकस्तूरीकुङ्कुमानि च॥

तित्तिडी बीजमानानि समुद्दिष्टानि देशिकैः॥ इति।

कर्षलक्षणमुक्तं सारसङ्ग्रहे—

"माषो दशगुञ्जा स्यात् षोडशमाषो निगद्यते कर्ष इति। तैलस्याऽपि **एतदेव** परिमाणम्। शुक्तिः कर्षद्वयम्। प्रसृतिमात्रं पलद्वयमात्रं मुष्टिः पलं **पलाऽर्धं** कर्षद्वयं ग्रासार्धमस्तीति रत्तिकामितम्, तदुक्तं पिङ्गलामते—

"गुञ्जाभिर्दशभिर्माषः शाणो माषचतुष्टयम्।
द्वौ शाणौ धढकः कोलो वदरं द्रक्षणश्च सः॥
तौ द्वौ पाणितलं कर्षः सुवर्णं कललग्रहः।
पिचुर्बिडालपदकं तिन्दुकोक्षश्च तद्द्वयम्॥
शुक्तिरष्टामिका ते द्वे पलं बिल्वं चतुर्थिका।
मुष्टिराम्रं प्रकुञ्जोऽथ द्वे पले प्रसृतिस्तथा"॥इति।

मातुलुङ्गं बीजपूरं उर्वारुकं च कर्कटी। तदर्धांऽशाः शुक्तिमिताः **चुलुक**मात्राः पाणितलप्रमाणाः कर्षमात्राः इत्यर्थः। पुरुः गुग्गुलुः। बदरमानं **अशीति** गुञ्जामितम्। रामठं हिङ्गुः।

तथा च नारदपञ्चरात्रे—

"तृतीयं खण्डमूलानां ह्रस्वानि स्वप्रमाणतः"॥

शैवागमेऽपि—

"खण्डत्रयं स्यान्मूलानां सूक्ष्माण्येवं च होमयेत्।
कन्दानामष्टमं भागं लतानामङ्गुलद्वयम्॥इति।

॥अथ समिधः॥

नारदपञ्चरात्रे—

"समित्प्रादेशमात्रेण समच्छेदाऽन्विता तथा।
विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्रा स्थूला कृशा द्विधा॥

क्रिमिदष्टाश्च दीर्घाश्च निश्चयं परिवर्जिताः।
विशीर्णाऽऽयुःक्षयं कुर्यात् छिद्रत्वाद् व्याधिसम्भवः॥
ह्रस्वायां मृत्युमाप्नोति वक्रा विघ्नकरी तथा।
स्थूलाभिर्हरते लक्ष्मीं कृशायां जायते क्षयः॥
द्विधाया नेत्रदोषः स्यात् कीटदष्टाऽर्थनाशिनी।
ईर्षं प्रकुरुते दीर्घाः प्राणघ्नी योनित्वक् स्मृता॥
सक्षीरा नाधिका न्यूनाः समिधः सर्वकामदाः।
आर्द्रत्वचं महच्छेदां तर्जन्यङ्गुल वर्तुलाम्॥
ईदृशीं होमयेत् प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां श्रियम्।
श्रौते स्मार्ते च तन्त्रोक्ते समिधः परिकीर्तिताः''॥

तथा वायवीयसंहितायाम् –

''ताः पालाश्यः परा वाऽपि यज्ञीया द्वादशाऽङ्गुलाः।
अवक्रा अ-स्वयं शुष्काः सत्वचो निर्व्रणाः समाः॥
दशाऽङ्गुलाः वा विहिताः कनिष्ठाङ्गुलसम्मिताः।
प्रदेशमात्रा वाऽलाभे होतव्याः सकला अपि''॥

॥ अथ काम्यजपविधिः॥

तत्र ज्ञानार्णवे –

''चक्रं समर्चयेद् देवि सकलं नियतव्रतः।
बाह्यमध्यगतं वापि मध्यं वा चक्रमर्चयेत्॥
उपचारैः समाराध्य सहस्रं प्रजपेच्छुचिः।
तदग्रे संस्थितो मन्त्री ततोऽनन्तफलं लभेत्॥
ध्यात्वाऽथवा चक्रराजं मनःपूजासमन्वितम्।
जपारम्भं सुधीः कुर्यात् महापातकहा भवेत्॥

निगदेनोपांशुना वा मानसेनाऽथवा जपेत् ।
निगदः परमेशानि स्पष्टं वाचा निगद्यते ॥
अव्यक्तश्च स्फुरद्वक्त्र उपांशुः परिकीर्तितः ।
मानसस्तु वरारोहे चिन्तनाऽन्तररूपवान् ॥
निगदेन तु यज्जप्तं लक्षमात्रं वरानने ।
उपांशुस्मरणेनैव तुल्यं भवति शैलजे ॥
उपांशुर्लक्षमात्रं तु यज्जप्तं कमलेक्षणे ।
मानसोच्चारणात् तुल्यमेकेन परमेश्वरि ॥
मुद्रासन्नद्धयोगः सन् पूर्वोक्तध्यानयोगतः ।
लक्षमात्रं जपेद्यस्तु महापापैः प्रमुच्यते ॥
लक्षद्वयेन पापानि सप्तजन्मभवान्यपि ।
महापातकमुख्यानि नाशयेन्नात्र संशयः ॥
ततो लक्षत्रयं जप्त्वा यन्त्रमन्त्रकलेवरः ।
महापातककोटीस्तु नाशयेन्नाऽत्र संशयः ॥
चर्तुर्लक्षं जपेद् देवि महावागीश्वरो भवेत् ।
कुबेर इव देवेशि पञ्चलक्षान्न संशयः ॥
षट्लक्षजपमात्रेण महाविद्याधरो भवेत् ।
सप्तलक्षजपान्मन्त्री खेचरी मेलको भवेत् ॥
अष्टलक्षजपात् मन्त्री देवपूज्यो भवेन्नरः ।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां नायको भवति प्रिये ॥
वशगास्तस्य राजानो योषितस्तु विशेषतः ।
नवलक्षप्रमाणं हि जपेत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥

रुद्रमूर्तिः स्वयं कर्ता हर्ता साक्षान्न संशयः।
सर्वैर्वन्द्यः सदा स्वच्छः सर्वसौभाग्यवान् भवेत्''॥

॥अथ कूटत्रयस्य पृथक् साधनविधिः॥

तत्र ज्ञानार्णवे –

''एषा विद्या वरारोहे पारम्पर्यक्रमागता।
भवबन्धं नाशयन्ती संस्मृता पापहारिणी॥
जपात् मृत्युञ्जयेशानि ध्याता सर्वार्थसाधनी।
पृथग् बीजत्रयस्याऽहं साधनं कथयामि ते॥
शुक्लाऽम्बरधरो वीरो गन्धकस्तूरिमण्डितः।
मुक्ताफलस्फुरद् भूषाभूषणः शुभ्रमाल्यधृक्॥
शुभ्रमन्दिरसंविष्टो ब्रह्मचर्यसमन्वितः।
पूजयेच्छुभ्रकुसुमैर्नैवेद्यमपि सूज्ज्वलम्॥
पायसं दुग्धसम्पूर्णं तथाऽमृतफलोदनम्।
घृतगोलकसम्पन्नं नाना शुभ्रान्नपूरितम्॥
नैवेद्यं दर्शयेद् देव्यै वागीश्वर्यै सुरेश्वरि।
मनः सङ्कल्पशुभ्रो वा साधयेन्मोक्षवाङ्मयम्॥
वाग्भवाख्यां जपेद्विद्यां वागीशीं संस्मरन् बुधः।
कर्पूरधवलां शुभ्रपुष्पाऽऽभरणभूषिताम्॥
अत्यन्तशुभ्रवसनां वज्रमौक्तिकभूषणाम्।
मुक्ताफलाऽमलमणिजपमालालसत्कराम्॥
पुस्तकं वरदानं च दधतीमभयप्रदाम्।
एवं ध्यायेत् महेशानि सर्वविद्याऽधिपो भवेत्॥

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्रवत्पीयूषवर्षिणीम् ।
तस्माज्ज्योतिर्मयीं ध्यायेत् जिह्वाऽग्रेऽमृतरूपिणीम् ॥
पाषाणेन समो वाऽपि मूर्खो जीवसमो भवेत्" ॥
"अथ कामकलाऽऽसक्तः साधकः परमेश्वरि ।
रक्ताऽलङ्कारसुभगो रक्तगन्धानुलेपनः ॥
रक्तवस्त्राऽऽवृतः सम्यक् मध्यकामकलात्मना ।
रक्तपुष्पैश्च विविधैः कुसुमादिभिरर्चयेत् ॥
(स्व-भक्ताऽज्ञान-निर्नामे) स्फुरद्दीपस्वरूपिणीम् ।
बन्धूककुसुमाऽऽरक्तकान्तिभूषणभूषिताम् ॥
इक्षुकोदण्डपुष्पेषु वरदाऽभयलसत्कराम् ।
तदीयकान्तिसिन्दूरभरितं भुवनत्रयम् ॥
चिन्तयेत् परमेशानि त्रैलोक्यं मोहयेत् क्षणात् ।
राजानो वशमायान्ति पन्नगा राक्षसाः सुराः ॥
कन्दर्प इव देवेशि योषितां मानहारकः ।
मनश्चिन्तितयोषित्तु दासीव बशगा भवेत् ॥
चलज्जलेन्दुसङ्काशां तरुणाऽरुणविग्रहाम् ।
चिन्तयेद् योषितां योनौ क्षोभयेत्सुरसुन्दरीम् ॥
किं पुनर्मानुषीं देवि त्रैलोक्यमपि मोहयेत् ।
एषैव चिन्तिता देवि सिन्दूराऽऽभा हृदि क्षणात् ॥
आकर्षयेत् तदा शीघ्रं रम्भां चापि तिलोत्तमाम् ।
रक्तवर्णां स्त्रियं ध्यात्वा तदीयमहसा ततः ॥
तस्याः मूर्ध्नि स्मरेद् बीजं स्रवत्पीयूषवर्षिणम् ।
ध्यायेत् सम्मोहयेद् देवि मदनोत्तप्तमानसम् ॥

क्षणमात्रेण देवेशि त्रैलोक्यं वशमानयेत्।
एतत्कामकला ध्याना पञ्चकामा वरानने॥
मोहयन्ति जगत्सर्वं प्रयोगं शृणु पार्वति।
पूर्वोक्तकामा देवेशि ज्ञातव्याः पञ्चसंख्यकाः॥
विदर्भ्याद्येन कामेन मन्मथाऽन्तर्गतं कुरु।
कन्दर्पसम्पुटं कृत्वा कोणगर्भगतं ततः॥
मकरध्वजसंज्ञं कुर्यात् मोहयेज्जगतीमिमाम्॥
त्रैलोक्यमोहनो नाम प्रयोगोऽयं प्रकीर्तितः"॥

अत्र विदर्भ्येत्यादिकुर्यादित्यन्तस्य पादोनश्लोकद्वयस्यायमर्थः– प्रथम मन्मथकूटं क्लींकारमाऽऽलिख्य, तस्य ककारस्योदरे कामराजकूटं ह्लींकारमालिख्य, तस्य हकारोदरे समरेफाऽधः अमुकं तयोर्मध्ये च समानयेति साध्य नाम ह्लींकारविदर्भितं विलिख्य, बीजद्वयाद् बहिः तृतीयकन्दर्पकूटरूपेण ऐंकारद्वयेन त्रिकोणाकारेण पुटितषट्कोणेनाऽऽवेष्ट्य, तस्य षट्सु कोणोदरेषु चतुर्थं मकरकेतनकूटाक्षरं ब्लूंकारं समालिख्य, षट्कोणाद् बहिः मीनकेतनकूटाक्षरेण स्त्रींकारेण संवेष्ट्य, वाञ्छिताऽर्थेषु विनियुञ्ज्यादिति।

अत्र पञ्चमकूटाक्षलेखने तदक्षरवह्निस्थानगं सकलं यन्त्रं यथा भवति तथा, गुरूक्तक्रमतः समाऽऽलेख्यमिति रहस्यार्थः।

तथा –

"शृणु देवि प्रवक्ष्यामि शक्तिबीजस्य साधनम्।
सृष्टिसंहारपर्यन्तं शरीरं चिन्तयेत् परम्॥
स्रवत्पीयूषधाराभिर्वर्षन्तीव विहारिणीम्।
हेमप्रभाभासमानां विद्युन्निकरसुप्रभाम्॥

स्फुरच्चन्द्रकलापूर्णकलशं वरदाभये।
ज्ञानमुद्रां च दधतीं साक्षादमृतरूपिणीम् ॥
ध्यायन् विषं हरेन्मन्त्री नानाकारव्यवस्थितम्।
एतस्य स्मरणाद् देवि नीलकण्ठत्वमागतः॥
अहं मृत्युञ्जयो भूत्वा विचरामि जले स्थले।
वैनतेयसमो मन्त्री विषभारसहस्रनुत् ॥
भूतप्रेतपिशाचांश्च नाशयेद् रोगसञ्चयम्।
चातुर्थिकज्वरान् सर्वानपस्मारांश्च नाशयेत्" ॥
"अथ त्रिकूटा सम्पूर्णा महात्रिपुरसुन्दरी।
चिन्तिता साधकस्याऽऽशु त्रैलोक्यवशकारिणी॥
क्रमेण नाभिहृद्वक्त्र-मण्डलस्थाऽरुणप्रभा।
पद्मरागमणिस्वच्छा चिन्तिता सुरवन्दिते॥
तस्याऽष्टगुणमैश्वर्यं सौभाग्यं च प्रजायते।
तन्नाम संस्मरन्मन्त्री योगिनीनां भवेत्प्रियः॥
मातृचक्रं तस्य काये तेन सार्धं सुखी भवेत्।
पुत्रवान् देवदेवेशि मन्त्री ध्यानान्न संशयः॥
यदा चक्रस्थिता पूर्णा खेचरी सिद्धिदायिनी।
चतुःषष्टिर्यतः कोट्यो योगिनीनां महौजसाम् ॥
चक्रमेतत् समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिते।
आदिसम्बन्धिनीपादे मध्ये बीजाष्टकं बहिः॥
कलां ध्यात्वाऽङ्गना सङ्गे कामराज इवापरः।
पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणैर्मादनैर्मोहयेत् प्रिये॥

त्रैलोक्यसुन्दरी देवि किं पुनर्मर्त्ययोषितः।
तथैव शक्तिबन्धैश्च शस्त्रैस्तन्मयविग्रहः॥
सिद्धगन्धर्वदेवाँश्च वशीकुर्यान्न संशयः।
एतामाराध्य देवेशि कामः सौभाग्यसुन्दरः॥
हरिश्च परमेशानि त्रिपुराराधानात् प्रिये।
त्रैलोक्यमोहिनो भूत्वा स्थितिकर्ता भवेत्सदा॥
एतत्समाऽऽराधनात्तु ब्रह्मा सृष्टिकरो भवेत्।
चन्द्रसूर्यौ वरारोहे सृष्टिसंहारकारकौ''॥

॥अथ श्रीचक्रसाधनविधिः॥

तत्र ज्ञानार्णवे –

''शृणु सर्वाऽङ्गसुभगे श्रीचक्रविधिमुत्तमम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण कर्ता (भोक्ता) सदाशिवः॥
अनेन विधिना यत्र श्रीचक्रं क्रमसंयुतम्।
पूज्यते तत्र सकलं वशीकुर्यान्न संशयः॥
नगरं वशमायाति देशः मण्डलमद्रिजे।
योषितः सकला वश्याः ज्वलत्कामाऽग्निपीडिताः॥
विद्याविमूढहृदयाः साधके न्यस्तमानसाः।
तद्दर्शनेन देवेशि जायन्ते सर्वयोषितः॥
गोरोचनादिभिर्द्रव्यैः चक्रराजं समालिखेत्।
अतीव सुन्दरं रम्यं तन्मध्ये प्रतिमां वराम्॥
ज्वलन्तीं नामसहितां महाबीजविदर्भिताम्''॥

महाबीजं मूलविद्यायाः कामराजकूटं विदर्भलक्षणं प्रागेवोक्तम्।

"चिन्तयेत्तु ततो देवि योजनानां सहस्रतः।
अदृष्टपूर्वा देवेशि श्रुतमात्राऽपि दुर्लभा॥
राजकन्याऽथवा चान्या भयलज्जाविवर्जिता।
आयाति साधकं सम्यक् मन्त्रमूढा सती प्रिये॥
चक्रमध्यगतो भूत्वा साधकश्चिन्तयेद् यदा।
उद्यत्सूर्यसहस्राऽऽभमात्मानमरुणं तथा॥
साध्यमप्यरुणीभूतं चिन्तयेत्परमेश्वरि।
अनेन क्रमेयोगेन स्वयं कन्दर्परूपवान्॥
सर्वसौन्दर्यसुभगः सर्वलोकवशङ्करः।
सर्वरक्तोपचारैश्च मुद्रासहितविग्रहः॥
चक्रं प्रपूजयेद् यस्तु यस्य नाम विदर्भितम्।
स भवेद् दासवद्देवि धनाढ्यो वापि भूपतिः॥
चक्रमध्यगतं कुर्यात् नाम यस्यास्तु योषितः।
अदृष्टा या महेशानि योनिमुद्राधरो बुधः॥
हठादाऽऽनयते शीघ्रं यक्षिणीं राजकन्यकाम्।
राजकन्यामप्सरसं खेचरीं वा सुराङ्गनाम्॥
विद्याधरीं दिव्यरूपां ऋषिकन्यां ऋषिस्त्रियम्।
मदनोद्भवसन्तापस्फुरज्जघनमण्डलाम्॥
कामबाणप्रभिन्नाऽन्तःकरणां लोलचक्षुषम्।
महाकामकलाध्यानयोगात् तुमुरवन्दिते॥
क्षोभयेत् स्वर्गभूर्लोकपातालतलयोषितः"॥

॥ अथ तिलकादिवश्यप्रयोगः॥

"रोचनाभागमेकं तु भागमेकं तु कुङ्कुमम्।
अथ भागद्वयं देवि चन्दनं मर्दयेत् समम्॥
एकत्र तिलकं कुर्यात् त्रैलोक्यवशकारिणम्।
अष्टोत्तरशताऽऽवृत्या मन्त्रयित्वा वशं नयेत्॥
राजानं नगरं ग्रामं येन यद्यत्प्रदर्श्यते।
मन्त्रिणा परमेशनि तत्सर्वं तस्य वश्यगम्॥
ताम्बूलं धूपमुदकं पत्रं पुष्पं फलं दधि।
दुग्धं घृतं चूर्णपत्रं वस्त्रं कर्पूरमेव च॥
कस्तूरीघुसृणं चैला-लवङ्गं जातिपत्रकम्।
फलं वा वस्तु यद्यत्तु सकलं परमेश्वरि॥
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा यस्मै यस्मै प्रयच्छति।
स वश्यो जायते देवि नाऽत्र कार्या विचारणा॥
स्त्रियस्तु सकला वश्या दासीभूताः भवन्ति हि।
हठाऽऽकर्षणमेतत्तु कथितं नान्यथा भवेत्"॥

॥ अथाकर्षणप्रयोगः॥

"रहस्ये स्थानके मन्त्री लिखेद् रोचनया भुवि।
चारुशृङ्गारवेषाऽऽढ्यां सर्वाऽऽभरणभूषिताम्॥
प्रतिमां सुन्दराङ्गीं तां विलिख्य सुमनोहराम्।
तद्भाल-कण्ठ-हृन्नाभितत्तन्मण्डलयोजिताम्॥
जन्मनाम महाविद्यामङ्कुशाऽन्तर्विदर्भिताम्।
सर्वसन्धिषु देहस्य मदनाक्षरमालिखेत्॥

लीनं दाडिमपुष्पाऽऽभं चिन्तयेद् देहसन्धिषु।
तदाऽऽशाऽभिमुखो बद्ध्वा मन्त्रमष्टशतं जपेत्।
नियोज्य दहनाऽऽगारे चन्द्रसूर्यकलात्मके॥
ततो विकलसर्वाऽङ्गीं कामबाणैः प्रपीडिताम्।
अनन्यमानसं प्रेम भ्रममाणां मदालसाम्॥
एवमाकर्षयेन्नारीं योजनानां शतादपि"॥

तथा –

"मातृकां च लिखेच्चक्रबाह्यतः सकलां प्रिये।
भूर्जपत्रे स्वर्णपत्रे रौप्यपत्रेऽथ ताम्रजे॥
सो वधः सर्वजन्तूनां व्याघ्रादीनां विशेषतः।
तथैव मातृकायुक्तां सुसंज्ञां नाममण्डिताम्॥
कर्पूरकुङ्कुमाद्यैस्तु अजराऽमरतां लभेत्।
अनेनैव विधानेन रोचनाऽगुरुकुङ्कुमैः॥
लिखितं चक्रयोगेन साध्यनाम वरानने।
विदर्भितं स्वनाम्ना तु यस्मिन् कस्मिन्नपि स्थितम्॥
स्थावरं जङ्गमं वाऽपि सकलं जनमण्डलम्।
वशीकुर्यात् महेशानि पादाक्रान्तं न संशयः॥
महात्रिपुरसुन्दर्यः कामकूटेन भास्वता।
एकमेकमवष्टभ्य साध्यनामाक्षराणि हि॥
बहिरप्यखिलैर्वर्णैर्मातृकायाः प्रवेष्टयेत्।
हेममध्यगते कुर्याच्छिखायां वामके भुजे॥

धारयेद् यत्र कुत्राऽपि त्रैलोक्यवशकारकम्।
राजेन्द्रमपि देवेशि दासभूतं करोति हि॥
राजानो वाजिनः सर्वे महादुष्टा मदोत्कटाः।
व्याघ्राः केसरिणो मत्ताः वश्यास्तस्य भवन्ति हि॥
पूर्वक्रमेण नगरनामसन्दर्भ्य शैलजे।
मध्ये चतुष्पथे चाऽपि चतुर्दिक्षु निधापयेत्॥
महाक्षोभो योषितां तु जनानां महतामपि।
तथैव सर्वदुष्टानां पुरस्थानां च जायते॥
एतन्मध्यगतां पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्।
ज्वलन्तीं सर्वराजेन्द्रमण्डितां सागराऽम्बराम्॥
मासषट्कं चिन्तयेद् यां सा सङ्क्षोभकरा भवेत्।
कटाक्षक्षेपमात्रेण नार्यस्तस्य वशाः प्रिये॥
राजानो ब्राह्मणा वैश्याः शूद्राश्च पशवो जगत्।
दृष्ट्वा कर्षयते देवि त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
दृष्ट्वा विषं नाशयते नात्र कार्या विचारणा।
भूतप्रेतपिशाचांश्च ज्वरांश्चातुर्थिकादिकान्॥
शूलगुल्मादिरोगांश्च दृष्ट्वा नाशयति क्षणात्।
एतत्सिन्दूरसुभगां रात्रौ सम्पूजितं प्रिये॥
योजनानां शताद्देवि सम्यगाऽऽकर्षयेत् स्त्रियम्।
यदा (च) दिवि दिक्ष्वेवं सम्यग्देवि प्रपूज्यते॥
तत्तद्दिक्षुस्थितान् लोकान् विदिक्स्थानपि सुन्दरी।
वशमानयते शीघ्रं सपुत्रपशुबान्धवान्॥

भूर्जपत्रे समाऽऽलिख्य रोचनाऽगुरुकुङ्कुमैः।
तन्मध्ये नगरं देशं मण्डलं खण्डमेव वा॥
नाम्ना विदर्भितं स्वस्य पूजयित्वा यथाविधि।
भूमिमध्यगतं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत्॥
अथवा धारयेत् कण्ठे शिखायां बाहुमूलके।
यत्र कुत्र स्थितं भद्रे क्षोभयेत्तु नरं महत्॥
अर्कक्षीरेण संयुक्तं धत्तूरकरसं तथा।
रोचनाकुङ्कुमे चैव लाक्षाऽलक्तकसंयुतम्॥
कस्तूरीद्रवसंयुक्तमेकीकृत्य ततः परम्।
चक्रमेतत् समालिख्य यस्य नाम्ना महेश्वरि॥
तस्य व्याघ्रहयव्याधिरिपुसर्पगजादिकम्।
चोरग्रहजलारिष्टशाकिनी डाकिनी भवम्॥
भयं न विद्यते देवि परमन्त्राऽभिचारजम्।
नित्यं समर्चयेद् देवि कालमृत्युं विनाशयेत्॥
अथवा मध्यगां देवीं त्रिकोणोभयमध्यगाम्।
अधस्तान्नामसंयुक्तं रोचनाकुङ्कुमान्वितम्॥
निधापयन् ससप्ताहाद् दासवत् किङ्करो भवेत्।
पीतद्रव्यैः समालिख्य पीतपुष्पैः समर्चयेत्॥
पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा स्तम्भयेत्सर्ववादिनः।
सहस्रवदनो देवि मूको भवति तत्क्षणात्॥
नाम्ना यस्य स वाग्मी हि पाषाण इव निश्चलः।
जायते देवदेवेशि महानीलीरसेन तु॥

नाम संयोज्य विधिवद् दक्षिणाशामुखो बुधः।
वह्नौ दग्ध्वा महेशानि मारयेद् वैरिणं प्रिये॥
महिषाश्वपुरीषाभ्यां रसमाकृष्य शैलजे।
गोमूत्रेण च संल्लिख्य नाम सन्दर्भ्य पूर्ववत्॥
क्षिप्त्वाऽऽरनालमध्यस्थ विद्वेषणकरं भवेत्।
कृत्वा रोचनया नाम काकपिच्छस्य मध्यगम्॥
लम्बमानं तदाऽऽकाशे शत्रूच्चाटनकारकम्।
महानीली-रोचनाभ्यां दुग्धलाक्षारसादिभिः॥
विलिख्य धारयन् मन्त्री सर्ववर्णान् वशं नयेत्।
अनेनैव विधानेन स्थापयेन्नीरमध्यगम्॥
तेनोदकेन संस्नातं पीतं तत्सर्ववश्यकृत्।
सौभाग्यं जायते तेन पानीयेन न संशयः॥
एतन्मध्यगतां पृथ्वीं नगरं वामलोचने।
सप्ताहात् क्षोभयेत् सत्यं ज्वलमानं विचिन्तयेत्''॥
''अथ वक्ष्ये महेशानि महापातकनाशनम्।
शिवां सम्पूजयेद् देवि सुगन्धैः कुसुमैः प्रिये॥
महापातकयुक्तात्मा तत्क्षणात् पापहा भवेत्।
शमीदूर्वाऽङ्कुरास्वच्छपल्लवैरथवाऽर्कजैः॥
मासेन हन्ति कलुषं सप्तजन्मकृतं नरः।
पूर्वाऽऽशाऽभिमुखो भूत्वा पीतद्रव्यैः समर्चयेत्॥
पीतस्थाने समालिख्य स्तम्भयेद् सर्ववादिनः।
उत्तराभिमुखो भूत्वा चन्दनेन समालिखेत्॥

सम्पूज्य विधिवद् विद्वान् सर्वयोषिन्मनोहरः ।
वल्लभो जायते तासां दासीमिव वशं नयेत् ॥
यमाशाभिमुखो भूत्वा चक्रं कृष्णं यदाऽर्चयेत् ।
यस्य नामाङ्कितं तत्र मन्त्रहानिः प्रजायते ॥
अग्निराक्षसवायव्यशम्भुकोणेषु पूजितम् ।
पूर्ववत् परमेशानि क्रमेण परियोजितम् ॥
स्तम्भविद्वेषणव्याधिशत्रूच्चाटकरं परम् ।
रोचनालिखितं चक्रं क्षीरमध्ये क्षिपेद् बुधः ॥
सर्ववश्यकरं देवि भवत्येव न संशयः ।
गोमूत्रमध्यगं सम्यक् शत्रूच्चाटकरं परम् ॥
तैलस्थं चक्रराजं तद् विद्वेषणकरं भवेत् ।
दलज्ज्वलनमध्यस्थं शत्रुनाशकरं भवेत् ॥
यदैकान्ते चतुर्मार्गे सिन्दूररजसा लिखेत् ।
सर्वबाह्यत आरभ्य यावन्मध्यं महेश्वरि ॥
अकारादिक्षकारान्तां मातृकां तत्र विन्यसेत् ।
पूजयेद् रात्रिसमये कुलाचारक्रमेण तु ॥
साधकः खेचरो देवि जायते नात्र संशयः ।
गिरावेकतरौ तद्वद् अर्चयेत् कुलमार्गतः ॥
अजराऽमरतां लब्ध्वा सुखी भवति मान्त्रिकः ।
श्मशाने पूजयेत् चक्रं महाभूतदिने तु यः ॥
पूर्वक्रमेण विधिवत् साधकः स्थिरमानसः ।
खड्गसिद्धिं च वेतालसिद्धिं च गुटिकां लभेत् ॥

पादुकाऽञ्जनसिद्धिं च मनस्सिद्धिं च वारुजम् ।
स महावीरसिद्धिं तु पक्षिणीचेटकोद्भवाम् ॥
सर्वं तल्लभते मन्त्री नाऽत्र कार्या विचारणा'' ।
''श्रीविद्यानन्दनाथने शिवयोः प्रियसूनुना ।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ द्वात्रिंशोऽगात् तरङ्गकः ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे द्वात्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३२ ॥

॥श्रीः॥

अथ त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गः

॥अथ श्रीमूलविद्याभेदाः॥

तत्र श्रीज्ञानार्णवे –

''सकलाभुवनेशानीकामेशीबीजमुत्तमम्।
अनेन सकलाः विद्याः कथयामि वरानने॥
शक्त्यन्ततूर्यवर्णोऽयं कलमध्ये सुलोचने।
वाग्भवं पञ्चवर्णं तु कामराजमथोच्यते॥
मादनं शिवचन्द्राद्यं शिवान्तं मीनलोचने।
कामराजमिदं भद्रे षड्वर्णं सर्वमोहनम्॥
शक्तिबीजं वरारोहे चन्द्राद्यं सर्वसिद्धिदम्''॥

शक्तिः एकादशस्वरः, तस्याः अन्ते अधः तूर्यवर्णः त्रिमूर्तीशः, सकलाभुवनेशानीत्यस्य कलाभ्यां सह वर्तमाना भुवनेशीत्यर्थत्वात् कलयोर्मध्ये प्रोक्तवर्णद्वये दत्ते कामराजविद्यायाः वाग्भवाख्यं प्रथमकूटं भवति। मादनं सकलेत्येतत् सम्बन्धात् क्रोधेशः शिवचन्द्रौ नकुलीशः, भृग्वीशावाद्यौ यस्य तत् शिवः नकुलीशः, अन्ते यस्य तत् चन्द्रः भृग्वीशः आद्यो यस्य तत्।

वामकेश्वरतन्त्रे –

''मादनं तदधः शक्तिस्तदन्तःबिन्दुमालिनी।
ऐन्द्रमाकाशबीजस्थमधस्ताज्ज्वलनाक्षरम्॥
माया बिन्द्वीश्वरयुतं सर्वोपरि नियोजयेत्।
अयं स वाग्भवो देवि वागीशत्वप्रवर्तकः॥

शिवबीजं त्रिधा कृत्वा सृष्टिस्थितिलयक्रमैः।
द्वयमाद्येन रहितमाद्याधो मदनाक्षरम् ॥
पुनः स्थित शिवाऽधस्तादिन्द्रबीजं नियोजयेत्।
तथा लयशिवाधोऽपि ज्वलनार्णं महेश्वरि ॥
चतुर्थस्वरसंयुक्तं बिन्दुखण्डेन्द्वलङ्कृतम्।
एवमेतन्महाबीजं कामराजं महोदयम् ॥
मायाबीजं महेशानि मादनं शक्रसंयुतम्।
चन्द्रबीजं केवलं तु विनियोज्य वरानने ॥
त्यक्त्वा सृष्टिक्रमं देवि प्रागुद्धारक्रमेण तु।
संहारक्रमयोगेन शक्तिकूटं समुद्धरेत्" ॥

इति ज्ञानार्णवोक्तवचनव्याख्यानानुसारात् कामराजपक्षे तु स्फुटोऽर्थः। लोपामुद्रापक्षे तु सारसङ्ग्रहे –

"माशक्तिश्च समाख्याता दनं स्वीकारकः शिवः।
एवं मादनमित्युक्तो हकारः शिवसंज्ञकः ॥
तत्र शक्तिर्यथार्थत्वे सकारश्च विधीयते।
शिवो हकार इत्युक्तः सकारः शक्तिरुच्यते ॥
बिन्दुमालिनिकार्णस्य पर्यायः परमेश्वरि।
शक्रव्योमानलाऽर्णाऽन्ते मायाबिन्द्वीश्वरादयः ॥
यथा स्थिताः पञ्चवर्णा वाङ्मयस्य निराविलाः।
द्वावन्त्यौ कामशक्त्याख्यौ वर्णौ निष्कीलिकात्मकौ" ॥

हंसपारमेश्वरेऽपि –

"मादनं प्राणरूपस्तु विकाशः शिव उच्यते।
सकारस्तत्परो ज्ञेयः सङ्कोचः शक्तिरूपवान्॥
सङ्कोचः परमा शक्तिः विकाशः परमः शिवः।
सङ्कोचश्च विकाशश्च ह स इत्यक्षरद्वयम्॥
तयोरधोऽधो रूपेण कवर्णो बिन्दुमालिनी।
अधोऽधः इन्द्र-आकाशं ज्वालनश्च तयोरधः॥
मायाबिन्द्वर्द्धगौ चैव वाग्भवो सावकीलकः"॥

ज्ञानार्णवे –

कामाराजाख्यविद्यायाः शक्तिं तुर्यं च सुन्दरि।
हित्वा मुखे शिवेन्दुभ्यां लोपामुद्रा प्रकाशिता॥

कामराजाख्यविद्यायाः पूर्वोक्तायाः, शक्तिम् एकारं, तुरीयमीकारं कलयोर्मध्यस्थितमेतदक्षरद्वयमपास्य, कलयोरादौ क्रमेण हकारसकारौ देयौ। एवं-कृते लोपामुद्राराधिता विद्या भवति। तेनान्यत्कूटद्वयं पूर्वोक्तमेव।

"कामराजाख्यविद्याया वाग्भवेन वरानने।
विद्योद्धारं प्रवक्ष्यामि शक्तिमादनमध्यगम्॥
शिवं कुर्याद् वाग्भवे तु शिवाद्यं कामराजकम्।
चन्द्राद्यं तत्तृतीयं स्याद् विद्येयं मनुपूजिता"॥

शक्तिमादनयोः एकारककारयोर्मध्यं शिवं हकारं कुर्यात्। तदा वाग्भवं कूटं भवति। कामराजविद्याया वाग्भवं हकाराद्यं चेत् – कामराजकूटं स्यात्। चन्द्राद्यं सकारं तद् वाग्भवं वाग्भवेति प्रतिज्ञानात्। कुबेरविद्याऽवधिरयमधिकारः। तृतीयं शक्तिकूटं स्यात्।

"शिवाद्यं वाग्भवं देवि चन्द्राद्यं शिवमध्यगम्।
मादनं कामराजे तु शक्तिवीजं हसाननम्॥
चन्द्राराधितविद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा"।

शिवो हकारः आद्यो यस्य तत् चन्द्रस्याद्यं मादनं शिवस्य मध्यगमधः कुर्यादित्यर्थः। तेन ह स श इत्यादि हसौ आनने आदौ यस्य तत्।

"हसाद्यं वाग्भवं विद्धि शिवाद्यं शिवमध्यगम्।
मादनं कामराजे तु तार्तीयं शृणु पार्वति॥
शिवाद्यं शक्तिबीजं स्याद् विद्या कुबेरपूजिता।
सहयोर्मध्यगं तेन ह स क ह ए॥ इत्यादि।
कामराजाख्यविद्यायास्तार्तीयसुरवन्दिते।
हसाद्यं शक्तिबीजं तु विद्यागस्त्यप्रपूजिता"॥

तार्तीयं शक्तिकूटं हसौ आद्यौ यस्य तत्, तेनाद्यकूटद्वयं कामराजविद्याया एव कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे मादनं त्यजेत्।

"चन्द्रं तत्रैव संयोज्य कामराजं यथा तथा।
शक्तौ चन्द्रं मुखे कुर्यात् विद्येयं नन्दिपूजिता॥

शक्तौ तत्कूटे चन्द्र सकारं मुखे आदौ तेन सह क इत्यादि।

"कामराजाख्यविद्याया हित्वा भूमिं तृतीयके।
शक्तिबीजस्थितां देवि चन्द्राऽधः कुरु तत्त्वतः॥
इन्द्राराधितविद्येयं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी"॥

शक्तिबीजस्थां भूमिं तृतीयकूटस्थितं लकारं तदीयसकारस्याधः कुर्यात्। तेन स ल क इत्यादि। आद्यकूटद्वयं तु कामराजप्रस्तारस्येव।

"लोपामुद्राख्यविद्याया द्वितीयाया महेश्वरि।
कामराजे भृगुं हित्वा तार्तीये स ग कः शिवः॥

एषा विद्या वरारोहे त्रिपुरा सूर्यपूजिता"॥

भृगुं सकारं तदा ह क ह इत्यादि, तार्तीयशक्तिकूटे सकारः सकारककारयोरधः हकारं कुर्यादित्यर्थः।

लोपामुद्रां द्वितीयां तु विलिख्य सुरवन्दिते।
पुनर्विलिख्य तामेव चतुर्थे पञ्चमे स्थिताम्॥
हित्वा तु भुवनेशानीमेकोच्चारणतोच्चरेत्।
चतुःकूटा महाविद्या शङ्करेण प्रपूजिता॥

पूर्वोक्तामगस्त्यविद्यामाऽऽलिख्य, तामेव पुनरपि विलिख्य चतुर्थपञ्चमयोः द्वितीयवारलिखिताया आद्याद्वितीयकूटयोरन्ते स्थितं मायाबीजद्वयं विहाय, कूटत्रयेणैकं कूटं कुर्यादित्यर्थः।

लोपामुद्रां पुनर्देवि विलिखेत् तदनन्तरम्।
नन्दिकेश्वरविद्यां च षट्कूटा वैष्णवी भवेत्॥

लोपामुद्रा अगस्त्यविद्या।

"अगस्त्य-नन्दिविद्याभ्यां षट्कूटा वैष्णवी प्रिये"॥

इति संहितोक्तेः।

कामराजाख्यविद्यायास्त्रिकूटेषु वरानने।
या स्थिता भुवनेशानी तां तु कुरु महेश्वरि॥
बिन्दुहीनां नादहीनां दूर्वासःपूजिता भवेत्॥

तेन ह्री इति त्रिषु कूटेषु बीजोच्चारणम्। दक्षिणामूर्तिसंहितायां तु मायास्थाने हरीवर्णयुगलं च क्रमाल्लिखेत्। दूर्वाससा पूजितेयं पुरुषार्थप्रदायिनीत्युक्तम्। तेन हरी इति पृथगुच्चारः प्रतीयते, वर्णयुगलमित्युक्तेः। अत्र यथागुरूपदेशतो जपः कार्यः।

ज्ञानार्णवे –

त्रिकूटाः कथिताः सर्वाः चतुःकूटा तु शाङ्करी ।

षट्कूटा वैष्णवी चैव .... ॥ इति ।

तथा –

चन्द्रान्तं वारुणान्तं च शक्रादिसहितं पृथक् ।

वामाक्षिबिन्दुनादाढ्यं विश्वमातृकलात्मकम् ॥

विद्यादौ योजयेद्देवि साक्षात् जाग्रत्स्वरूपिणी ।

त्रिकूटाः सकला भेदाः पञ्चकूटा भवन्ति हि ॥

वैष्णवी वसुकूटा स्यात् षट्कूटा शाङ्करी भवेत् ।

द्वितीयोऽयं प्रकारः स्याद् दुर्लभो भुवनत्रये ॥

चन्द्रान्तं हकारः वारुणान्तं शकारः, शक्रादिः रेफः, वामाऽक्षिः ईकारः बिन्दुरनुस्वारः, नाद ऊर्ध्वचन्द्रः । एतैः मायाबीजं चोद्धृतम् ।

तथा –

वेदादिमण्डितो देवि शिवशक्तिमयी सदा ।

तदा भेदास्तु सकलाः षट्कूटाः परमेश्वरि ॥

वैष्णवी नवकूटा स्यात् सप्तकूटा तु शाङ्करी ॥

वेदादिः प्रणवः ।

तथा –

आद्यबीजद्वयं भद्रे विपरीतक्रमेण तु ।

विलिख्य परमेशानि ततोऽन्यानि समुद्धरेत् ॥

विपरीतक्रमेण श्रीमायाक्रमेण ।

अन्तर्मुखा वरारोहे कुमारी त्रिपुरेश्वरी ॥

अन्तः मध्ये, मुखमाद्यं, वाग्भवं बीजं यस्याः सा । तथा – कामवाग्भवशक्ति बीजक्रमेण इत्यर्थः ।

एभिस्तु पञ्चसंख्याकैर्बीजैः सम्पुटिता भवेत् ।
षट्कूटा परमेशानि विद्येयं षोडशाक्षरी ॥
त्रिकूटाः सकला भद्रे षोडशार्णा भवन्ति हि ।
वैष्णव्येकोनविंशार्णा शिवा सप्तदशाक्षरी ॥
वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि ।
वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी ॥
पुटिताक्रमोत्क्रमेणाद्यं तयोः पञ्चबीजयुता ।
मन्त्रमादौ वदेत्सर्वं साध्यसंज्ञामनन्तरम् ॥
विपरीतं पुनश्चान्ते मन्त्रं तत्सम्पुटं स्मृतम् ॥

इति सिद्धेश्वरीतन्त्रोक्तं सम्पुटलक्षणम् । तथा –

षोडशार्णा मया भद्रे श्रीविद्या कथिता परा ।
निधानमिव चोरेभ्यो रक्षणीयं सदा प्रिये ॥
न देया यस्य कस्याऽपि देया चात्मप्रदायिने ।
निर्मलाय ससत्याय प्राणेभ्योऽप्यधिकाय च ॥

वामकेश्वरतन्त्रे षट्शत्याम् –

कामो विष्णुयुतः शक्तिर्माया शक्रश्च पार्वति ।
पश्चाद्देवि महामायाबीजं चान्ते नियोजयेत् ॥
एवं च वाग्भवं बीजं कथितं देवि दुर्लभम् ।
एतज्जप्त्वा महाबीजं किं न सिध्यति भूतले ॥

कामः विष्णुनाकारेण युक्तः, एतेन सर्वत्र श्रीविद्याकूटेषु सस्वरा एव वर्णाः

ठनीयाः । शक्तिः ए, माया ई, शक्रः ल महामाया भुवनेश्वरी । अयमाद्यो वाग्भवकूटः । तथा –

शिवबीजं समुद्धृत्य शक्तिबीजमनन्तरम् ।
तदधः कामबीजं तु भूर्व्योमाऽनलसंयुतम् ॥
चतुर्थस्वरसंयुक्तमर्द्धेन्दुबिन्दुसंयुतम् ।
प्रथमं कामबीजस्य कूटं त्रैलोक्यपूजितम् ॥

शिवबीजं ह, शक्तिबीजं स, कामबीजं क, भूः ल, व्योम ह, अनलेन रेफेण, चतुर्थस्वरेण ईकारेण च युक्तम्; एतेन मायाबीजं व्योमाऽनलेत्यादिनोक्तम् ।

तथा –

वियद्-विष्णुयुतं देवि मादनं तदनन्तरम् ।
तदधो हंसबीजं तु इन्द्रबीजं च पार्वति ॥
विष्णोः पदं वह्नियुतं मायाबीजविभूषितम् ।
अर्धेन्दुमस्तकाऽऽक्रान्तं कूटं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥
मध्यकूटमिदं पुण्यं सर्वसौभाग्यदायकम् ।

हंसबीजं ह, इन्द्रबीजं ल, विष्णोः पदमित्यादिना भुवनेश्युद्धृता ।

कामबीजं महेशानि शिवबीजं ततः परम् ।
तदधो वायुबीजं तु इन्द्रबीजं ततः परम् ॥
वियद्वह्निसमायुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम् ।
अर्धेन्दुबिन्दुसंयुक्तं तृतीयं बीजमुद्धरेत् ॥

वायुबीजं य, वियदित्यादिना मायोक्ता ।

प्राणबीजं समुद्धृत्य कामबीजं समुद्धरेत् ।
इन्द्रबीजं ततो देवीं क्रमेण विनियोजयेत् ॥

सान्तं वह्निसमायुक्तं चतुर्थस्वरसंयुतम्।

नादबिन्दुकलायुक्तं शक्तिकूटं समुद्धरेत्॥

प्राणबीजं ह, देवी सकारः, पिनाकीशं चन्द्रसंस्थं इति वक्ष्यमाणरुद्रयामल-वचनात्। सान्तमित्यादिना मायोद्धृता एतान् क्रमेण योजयेदित्यर्थः।

श्री रुद्रयामले–

"ब्रह्म चाधारशक्तिश्च कला स्मर पुरन्दरः।
एतान् संयोज्य परत ईश्वरीं योजयेच्छिवे॥
चन्द्रबीजं तदादिस्थं शिवबीजं नियोजयेत्।
मादनं शक्रबीजस्थं योजयेद् भुवनेश्वरीम्॥
शिवबीजं मादनस्थं शक्रषष्ठनियोजितम्।
रक्तसप्तमषष्ठस्थं मायाबीजं समुद्धरेत्॥
तुण्डाक्षरं शिवादिस्थं मरुदिन्द्रसमन्वितम्।
धराधरसुताबीजमेकत्रापि नियोजयेत्।
बकतुरीयबीजाऽधः क्रोधीशं च नियोजयेत्।
पिनाकीशं चन्द्रसंस्थमाकाशं रक्तसंयुतम्॥
चतुर्थस्वरसुयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्।
सर्वमेकत्र संयोज्य पञ्च पञ्चाक्षरी भवेत्॥
पञ्चकूटात्मिका विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता"॥

ब्रह्मा क, आधारशक्तिः ए, कलासार ई, पुरन्दरः ल, ईश्वरी माया, बीजं चन्द्रबीजं, स तदादिस्थं शिवबीजं; तेन सकारादौ हकारमित्यर्थः। मादनं क, शक्रस्थं भुवनेश्वरी मायाबीजं शिवबीजं ह तत् मादनस्थं ककारोपरिस्थितं रं लकार, तत्स्थं तदुपरि स्थितं भुवनेश्वरीमायाबीजं; एतेन ह क ह ल ह्रीमिति प्रसिद्धं तत् रक्तसप्तमस्य हकारस्य विष्णोस्तेन षष्ठम्।

तुण्डाक्षरं क, शिवादिस्थं हकारोपरि स्थितं, मरुत् य, इन्द्रः ल धराधरसुता भुवनेश्वरी, वक्रतुरीयबीजं ह, क्रोधेशः क, पिनाकीशः लः, चन्द्रः स, आकाशेत्यादिना माया उद्धृता।

श्रीक्रमसंहितायाम् –

"कामं शक्तिं च मायां च चन्द्रबीजं ततः पठेत्।
वियदग्निसमायुक्तं नादबिन्दुसमन्वितम्॥
वाग्भवं कथितं कूटं चतुर्थस्वरभूषितम्"॥

शक्तिः ए, माया ई, वियदित्यादिना भुवनेश्वरीबीजम्।

वियच्छक्तिस्ततः पश्चात् कलौ नकुलवह्निमत्।
मायास्वरेण संयुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम्॥
वियद्देवि समुद्धृत्य कामं व्योम महेश्वरि।
शक्रबीजं परं भद्रे अपरं शृणु वल्लभे॥
महामाया ततः पश्चात् स्वप्नावतीति कथ्यते।
मादनं शक्तिबीजं तु बालिनं तु ततः पठेत्॥
इन्द्रबीजं ततः पश्चात् शिवबीजं तवह्निकम्।
चतुर्थस्वरसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम्॥

शक्तिबीजं हकारः, तस्याऽपि शक्तिवाचकत्वात्।

अकारः सर्ववर्णाऽग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः॥

इति सङ्केतपद्धतिवचनात्, वामकेश्वररुद्रयामलयोः एकवाक्याच्च।

"कामराजमिदं देवि शक्तिबीजं शृणु प्रिये।
शिवबीजं महादेवि काममिन्द्रं महेश्वरि॥
महामायां पठेत् पश्चात् सर्वकामफलप्रदाम्॥

माहेश्वरी सकारः, पिनाकीशं चन्द्रसंस्थमिति यामलोक्ते।

डामरे –

पञ्चमीं षोडशीं चैव तथा सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
चण्डालेभ्योऽपि गृह्णीयाद् यदि भाग्येन लभ्यते॥
सर्व एव शुभः कालः पूजने ग्रहणेऽपि च।
न च दोषो दिवारात्रौ सन्ध्यायां च महानिशि॥
तच्छुद्धिं चिन्तयेदत्र भावशुद्धे हि शुद्धता।
नाऽत्र शुद्ध्याद्यपेक्षाऽस्ति न वाऽमित्रादिदूषणम्॥

अमित्रादि दूषणमिति पदच्छेदः। तेनारिदोषो नास्तीति। सर्वाङ्गसुन्दरी विद्यामाहुः श्रीमच्छङ्कराचार्यचरणाः –

"गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमाऽऽगमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिस्सीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि"॥

हरसहचरीशब्दात् हकारसकारौ, पद्माशब्दाद् बिन्दुः, लोपामुद्राकामराज-विद्ययोरन्त्यकूटान्ते वर्णद्वये दत्ते तुरीया नाम विद्या स्यादिति, द्रयं (इयं) सर्वाऽङ्गसुन्दरीविद्येत्यानन्दगिरिश्रीचरणैः व्याख्यातम्। अत्र पद्माशब्दस्य लक्ष्मीवाचकत्वेन कामकलाक्षरप्रतिपादकत्वात् तस्य बिन्दुत्रयात्मकत्वाद् हकारोपरि एको बिन्दु, सकारपार्श्वे बिन्दुद्वयम्। तेन हंसः पदं सिद्धम्; इत्यस्मदाऽऽराध्यचरणोक्तिः।

इत्येवं श्रीमूलविद्याया एकपञ्चाशद् भेदाः श्रीमदाराध्यचरणप्रसादप्राप्ताः प्रदर्शिताः।

अथ यद्यप्यासां विद्यानां न वाऽमित्रादिदूषणमित्युक्तेः सिद्ध-साध्यादिविचारो न कर्तव्यः।

तथापि –

नित्यानां त्रैपुराणां च नाऽवेक्ष्यास्त्वंशकादयः।
तथाऽप्यत्रोच्यते किञ्चिदभिचारादिसिद्धये॥

इति मन्त्रराजवचनेनाभिचारकर्मसु स्वस्य विरुद्धमन्त्रेणाभिचारे क्रियमाणे, स्वस्यैव नाशकरं भवति। शत्रोर्वाऽमित्रभूतेन क्रियमाणे नैष्फल्यं भवतीत्यादि-दोषपरिहाराय स्वस्य मित्रभूतेन शत्रोररिभूतेन तत्कर्मणः कर्त्तव्यत्वात् तत्परिज्ञानाय मन्त्रमेलनचक्राणि नक्षत्रचक्रादीनि लिख्यन्ते।

तत्रादौ नक्षत्रचक्ररचना प्रकारः। तत्र दक्षिणोत्तरायताः चतस्रो रेखाः प्राक् प्रत्यगायता दशरेखाश्च कृत्वा, सप्तविंशतिकोष्ठानि विरच्य, दक्षिणोत्तरायत पङ्क्तित्रये सर्वोर्ध्वपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठे अ आ, द्वितीये इ, तृतीये ई उ ऊ, चतुर्थे ऋ ॠ ऌ ॡ, पञ्चमे ए, षष्ठे ऐ, सप्तमे ओ औ, अष्टमे क, नवमे ख ग इति विलिख्य; तदधस्थ-द्वितीपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठे ग घ ङ, द्वितीये च, तृतीये च ज, चतुर्थे, झ ञ, पञ्चमे ट ठ, षष्ठे ड, सप्तमे ढ ण, अष्टमे त थ द, नवमे ध इति विलिख्य; तदधस्थतृतीयपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठे न प फ, द्वितीये ब, तृतीये भ, चतुर्थे म, पञ्चमे य र, षष्ठे ल, सप्तमे व श, अष्टमे ष स ह, नवमे ळ क्ष अं अः इति स्ववामादि-दक्षिणान्तं मातृकावर्णान् विलिख्य, सर्वोर्ध्वपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठमारभ्य, सर्वाधस्थतृतीयपङ्क्तेः नवमकोष्ठपर्यन्तेषु सप्तविंशति कोष्ठेषु एकादिसप्त-विंशत्यन्तान् अङ्कानेकैकशः समालिख्य, तानङ्कानश्विन्यादि सप्तविंशतिनक्षत्राणि परिकल्प्य, विचारयेत्।

तत्र यस्मिन् कोष्ठे साधकस्य नामाद्यक्षरं तिष्ठति, तत्रस्थमङ्कं वर्णांश्च विज्ञाय, तत्र यन्नक्षत्रं समायाति, तत् साधकस्य जन्मनक्षत्रं परिकल्प्य, तत्कोष्ठमारभ्य, मन्त्रस्याद्यक्षरं यस्मिन् कोष्ठे तिष्ठति तत्पर्यन्तं गणयित्वा, तत्रस्थमङ्कमक्षराणि च विज्ञाय, तत्र यन्नक्षत्रं दृश्यते तदेव, मन्त्रस्य नक्षत्रं परिकल्प्य, साधकनक्षत्रमारभ्य, मन्त्रनक्षत्रपर्यन्तं जन्म-सम्पद्-विपत्-क्षेम-प्रत्यरिः। साधकोवधः।

मैत्रं परममैत्रं च जन्मादीनि पुनः पुनः ॥इति ।

कुलार्णवोक्तप्रकारेण जन्मादिनवकं पर्यायत्रयेण विज्ञाय, फलानि च निर्दिशेत् । तत्फलानि च कुलार्णवे –

जनुषस्तारया मृत्युरायुर्नाशस्तृतीयया ।
मृत्युः पञ्चमताराणां सप्तमो घातको मतः ॥
द्वि-चतुःषडष्ट-नव(म)-गतास्ताराः शुभाः मताः ।
इति ताराफलं ज्ञात्वा मन्त्रं दद्याद् विशालधीः ॥

॥ अथ नक्षत्राणां गणभेदः ॥

तत्र कुलमूलावतारे –

अश्विनीमृगशीर्षं च तथा पुष्यपुनर्वसू ।
हस्तस्वातीरनुराधारेवतीविष्णुदैवतम् ॥
भरणी रोहिणी चैव आर्द्रा पूर्वोत्तरा तथा ।
पूर्वाऽऽषाढोत्तराषाढा पूर्वभाद्रोत्तरा-नृजः ॥
कृत्तिकाऽहिर्मघा चित्रा विशाखा ज्येष्ठका तथा ।
मूलं धनिष्ठा शतभिषा च रक्षोगणाः प्रिये ॥(?)
(मूलं धनिष्ठा शतभिष चरक्षोडुगणाः प्रिये॥)

विष्णुदैवतं श्रवणनक्षत्रं, देवगण इति शेषः । अहिराश्लेषा, नृजः मनुष्यगणः ।

॥ अथैतेषां गणानां प्रीतिविशेषः ॥

रुद्रयामले –

स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषे ।
अधमा राक्षसे देवे मृत्युर्मानवराक्षसे ॥

इति नक्षत्रशोधनप्रकारः ।

॥ अथ राशिचक्रम् ॥

तत्र प्राक्प्रत्यगायतं रेखाद्वयं, दक्षिणोत्तरायतं रेखाद्वयं च, मध्ये चतुरस्रं यथा भवति तथा, विलिख्य, मध्यस्थ-चतुस्रस्य चतुष्कोणेषु वहिः एकैकां रेखां कृत्वा, द्वादशखण्डानि विधाय, तेषु खण्डेषु प्रादक्षिण्येन प्रथमखण्डे अ आ इ ई, द्वितीयखण्डे उ ऊ ऋ, तृतीये ॠ ऌ ॡ, चतुर्थे ए ऐ, पञ्चमे ओ औ, षष्ठे अं अः श ष स ह ळ क्ष, सप्तमे क ख ग घ ङ, अष्टमे च छ ज झ ञ, नवमे ट ठ ड ढ ण, दशमे त थ द ध न, एकादशे प फ ब भ म, द्वादशे य र ल व इति मातृकावर्णान् विलिख्य, तेषु प्रागादिषु द्वादशखण्डेषु एकादिद्वादशपर्यन्तान् अङ्कान् एकैकशः समालिख्य, यस्मिन् खण्डे साधकस्य नामाक्षरं तिष्ठति तदारभ्य, यस्मिन् खण्डे मन्त्राद्यक्षरं तिष्ठति तत्पर्यन्तं गणयेत्। तत्र लग्नादिद्वादशस्थानानां नामानि कुलार्णवे –

लग्नो धन-भ्रातृ-शत्रु-बन्धु-पुत्र-कलत्रकाः।
मरणं धर्मकर्माय व्ययाद् द्वादशराशयः॥इति।

॥ अथैतेषां फलानि ॥

रत्नसागरे –

"एको वाऽप्यथ पञ्चमोऽथ नवमो राशेस्तु सद्बान्धवा
राशिः स्याद् दशमो द्वितीयसहितः षष्ठो भवेत् सेवकः॥
रुद्राऽग्निः स्वरसंख्यया यदि मतो मन्त्रो भवेत् पोषकः
सः स्याद् द्वादशकोऽष्टकः श्रुतिमितो यन्त्रः स्मृतो घातकः"॥

इति। रुद्रः एकादशः; अग्निस्तृतीयः, स्वरसंख्यः सप्तमः, श्रुतिमितश्चतुर्थः।

॥ अथ पाञ्चभौतिकचक्रम् ॥

तत्र दक्षिणोत्तरायताः षड्रेखाः, प्राक्पश्चिमायताः एकादशरेखाश्च विलिख्य, पञ्चाशत् कोष्ठानि कृत्वा, दशकोष्ठयोरेकैका पङ्क्तिरिति

पङ्क्तिपञ्चकं परिकल्प्य, तासु पङ्क्तिषु सर्वोर्ध्वगत प्रथमपङ्क्तौ वामादिदक्षिणान्तं दशसु कोष्ठेषु अ आ ए क च ट त प य ष, द्वितीयपङ्क्तौ इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष, तृतीयपङ्क्तौ उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ळ, चतुर्थपङ्क्तौ ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व स, पञ्चमपङ्क्तौ ऌ ॡ अं ङ ञ ण न म श ह इति वाय्वग्नि-भू-जलाऽऽकाशाऽऽत्मकान् पञ्चवर्गान् विसर्गरहितपञ्चाशद्वर्णविभागजनितानालिख्य, स्वनामाद्यक्षरं यत्र पङ्क्तौ तिष्ठति तत्रैव, चेत् – मन्त्राद्यक्षरमपि तिष्ठति तदा, तन्मन्त्रमेकभूतदैवत्यं स्वकुलं ज्ञेयम् । अन्यत्र चेत् – मन्त्राद्यक्षरं तिष्ठति तदा, तत् किं दैवत्यमिति विचार्य, तद्गुणदोषान् जानीयात् ।

आत्मनो नामाद्यक्षराधिदैवतभूतस्य विरुद्धभूतदैवत्यं वा मन्त्राद्यक्षरं स्यात्तदा, तन्मन्त्रं गृह्णीयात् ।

अत्र भूतानां वैर-मैत्री-तटस्थतास्वरूपमुक्तम्, श्रीकुलार्णवे –

"महीसलिलयोर्मैत्रमनलानिलयोरपि ।
सामान्यमग्निभूम्योस्तु सलिलाऽनिलयोस्तथा ॥
शात्रवं वैपरीत्येन मित्रं सर्वत्र चापरम् ।
परस्परविरुद्धानां वर्णानां यत्र सङ्गतिः ॥
वर्जयेत् तादृशं मन्त्रं नाशकृत्तं कुलेश्वरि" ॥

अपरमाकाशः ।

अथ मन्त्राणां सिद्धसाध्यादिशोधनप्रकारः ।

॥ तत्रादौ द्वादशारचक्रम् ॥

तत्र द्वादशारचक्रं राशिचक्रवद्विधाय, तस्य द्वादशखण्डेषु प्रागादि प्रादक्षिण्यक्रमेण अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः इति द्वादशस्वरान् प्रतिखण्डेषु एकैकशः समालिख्य, पुनः तथैव ककारादिठकाराऽन्तान् वर्णान् विलिख्य, पुनस्तथैव डकारादिभकाराऽन्तान् वर्णान् विलिख्य, पुनस्तथैव

मकारादिहकारान्तान् वर्णान् नवखण्डेषु क्रमेण विलिख्य, यस्मिन् खण्डे शिष्यनामाक्षरं तिष्ठति, तदारभ्य, मन्त्राद्यक्षरपर्यन्तं सिद्ध-साध्य-सुसिद्ध-अरिक्रमेण गणयेत्।

तत्र कुलमूलावतारे –

"नवैकपञ्चमः सिद्धः साध्यः षट्-दश-युग्मकः।
सुसिद्धो मुनि-रुद्राऽग्निस्तुर्याऽष्टद्वादशो रिपुः॥
इति ज्ञात्वा वरारोहे मन्त्रं दद्याद् विशालधीः"।

अथ षोडशारचक्रे सिद्धसाध्यादिशोधनप्रकारः।

तत्र प्राक्-प्रत्यगायताः दक्षिणोत्तरायताश्च पञ्च पञ्च रेखाः विलिख्य, षोडशकोष्ठानि कृत्वा, चतुश्चतुःकोष्ठात्मक-दक्षिणोत्तरायतपङ्क्तिचतुष्टये सर्वोर्ध्वपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठे अ, तृतीये आ; तदधस्तृतीयपङ्क्तेः तृतीयकोष्ठे इ, तत्प्रथमकोष्ठे ई, पुनः प्रथमपङ्क्तेद्वितीयकोष्ठे उ, चतुर्थे ऊ; तृतीयपङ्क्तेः चतुर्थकोष्ठे ऋ, तद्द्वितीये ॠ; ततो द्वितीयपङ्क्तेः द्वितीयकोष्ठे ऌ, चतुर्थे ॡ, ततः चतुर्थपङ्क्तेः चतुर्थकोष्ठे ए, तद्द्वितीये ऐ, पुनः द्वितीयपङ्क्तेः प्रथमकोष्ठे ओ, तृतीये औ, चतुर्थपङ्क्तेः तृतीयकोष्ठे अं, तत्प्रथमे अः इति षोडशस्वरान् विलिख्य, स्वरलेखनक्रमेणैव कादिषोडशकं, यादिषोडशकं हादि-त्रयं च पुनः पुनर्लिखेदिति मातृकावर्णान् विलिख्य, तच्चक्रमीशानादि चतुश्चतुष्कोष्ठैश्चतुष्कचतुष्टये, यस्मिन् चतुष्के साधकनामद्यक्षरं तिष्ठति तदारभ्य, यस्मिन् मन्त्राद्यक्षरं तिष्ठति तदवधि गणयित्वा; सिद्धसाध्यसुसिद्धान् विचारयेत्।

तत्र साधकमन्त्राद्यक्षरयोरेककोष्ठःएवं स्थितिश्चेद् भवति तदा, स मन्त्रः सिद्धसिद्धः; तत् चतुष्के एव प्रादक्षिण्यप्राप्तद्वितीयकोष्ठश्चेत्-मन्त्राद्यक्षरं स्यात् तदा, स मन्त्रः सिद्धसाध्यः, तृतीये चेत् – सिद्धसुसिद्धः; चतुर्थे चेत्सिद्धाऽरिः; एवं ततः प्रादक्षिण्यप्राप्तद्वितीयचतुष्के चेत् – तत्समकोष्ठे मन्त्राद्यक्षरं

तिष्ठति तदा, स मन्त्रः साध्य-सिद्धः, तद् द्वितीये चेत् – साध्यसाध्यः; तृतीये चेत् – साध्यसुसिद्धः; चतुर्थे साध्याऽरिः; एवं तृतीये चतुष्के चेत्– सुसिद्ध-सिद्धः; द्वितीये सुसिद्धसाध्यः, तृतीये सुसिद्धसुसिद्धः; चतुर्थे सुसिद्धाऽरिः; एवं चतुर्थचतुष्केऽपि प्रथमेऽरिसिद्धः; द्वितीये अरिसाध्यः, तृतीये अरिसुसिद्धः, चतुर्थे अर्यरिः इति सम्यग् गुरुमुखाद् विज्ञाय, मन्त्र-मेलनं कार्यम् ।

॥ अथैतेषां फलानि ॥

तत्र कुलमूलावतारे –

"सिद्धः सिध्यति कालेन साध्यः सिध्यति वा न वा ।
सुसिद्धस्तत्क्षणादेव अरिर्मूलं निकृन्तति" ॥

तन्त्रराजे –

"सिद्धसिद्धो जपात् सिद्ध्येर्द्विगुणात् सिध्यसाधकः ।
सिद्धे सुसिद्धः सम्प्राप्तेः सिद्धाऽरिर्हन्ति गोत्रजान् ॥
साध्यसिद्धोऽतिसंक्लेशात् साध्यसाध्योऽतिदुःखकृत् ।
साध्ये सुसिद्धो भजतात् साध्याऽरिः स्व-स्त्रियं हरेत् ॥
सुसिद्धसिद्धोर्द्धजपात् फलं दद्याद् यथेप्सितम् ।
सुसिद्धसाध्यो जपाद्यैः सिद्धये स्यादतोऽन्यथा ॥
सुसिद्धे तु सुसिद्धस्तु पूर्वजन्मकृतश्रमः ।
तस्मात्तं सर्वसिद्धीनां साधने योजयेत् मनुम् ॥
सुसिद्धाऽरिरशेषेण सुकुलं मारयेद् ध्रुवम् ।
अरिसिद्धः सुतं हन्याद् अरिसाध्यस्तु कन्यकाम् ॥
तत्सुसिद्धस्तु पत्नीघ्नः अर्यरिः साधकाऽपहः" ॥

सारसङ्ग्रहे –

"दुष्टर्क्ष-राशिभूताऽरि-वर्णप्रचुरमन्त्रकम् ।
सम्यक् परीक्ष्य तं यत्नादर्जयेद् मतिमान् नरः" ॥

अत्र मन्त्रमेलने प्रसिद्धमेव नाम ग्राह्यम्।

“सिद्धसाद्ध्यादियोगेषु मन्त्रदाने विशेषतः।
प्रसिद्धं नाम गृह्णीयात् प्रसुप्तो येन जागृयात्॥

इति ज्ञानोन्नयनवचनात्।

॥ अथ ऋणधनशोधनप्रकारः॥

तत्र मातृकायां साधकनामाद्यक्षरमारभ्य, मन्त्राद्यक्षरपर्यन्तं गणयित्वा, जातसंख्यं त्रिगुणीकृत्य, तत्सप्तभिराहृत्य, अवशिष्टमङ्कं पृथग् निधाय, पुनः मन्त्राद्यक्षरमारभ्य, साधकनामाद्यक्षरपर्यन्तं गणयित्वा; जातसंख्यं सप्तभिर्गुणित्वा, तज्जातसंख्यं त्रिभिराहृत्य, अवशिष्टमङ्कं पृथक् संस्थाप्य, अवशिष्टाऽङ्कद्वये यत्र संख्याऽऽधिक्यं स ऋणीति ज्ञेयः। यो मन्त्रः स्वस्य ऋणी भवति स एव ग्राह्यः; नान्यः।

दैवाद् गृहीतमन्त्रस्य पश्चात् स्वयं ऋणीति ज्ञातश्चेत् तदा, स्वाङ्कशेषाऽपेक्षया मन्त्रशेषाङ्के कियत् संख्याङ्कमधिकमिति विज्ञाय, तत्संख्यालक्षं स्वेष्टविद्यां जपेत्। तावता ऋणशुद्धिः भवतीति साम्प्रदायिकाः।

“श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाऽब्धौ त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गकः”॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गः॥ ३३॥

॥श्रीः॥

॥ अथ चतुस्त्रिंशस्तरङ्गः ॥

उक्तानां काम्यकर्मणामङ्गत्वेन पूजनीयदेवताष्टकमध्ये, त्रयोविंशे तरङ्गे वारेशद्वय-तिथीश-नक्षत्रेशानां पूजाप्रकारः प्रदर्शितः। इदानीं दिननित्यायाः तिथिनित्यानां धातुदेवतानां पञ्चाशत् मिथुनदेवतानां च साऽङ्गावरणपूजाविधिः। तत्र श्रीतन्त्रराजे –

आसां तु नित्या-विद्यानामङ्गानि शृणु सुन्दरि।
द्विरुक्तैस्तैः षडङ्गानि कुर्यादर्णैः कराङ्गयोः॥
विन्यस्य मातृकामुक्तां जपेद् विद्यास्तथैकशः।
रक्ताः रक्ताम्बराः रक्तभूषणस्रग्विलेपनाः॥
पाशाऽङ्कुशेक्षुकोदण्डप्रसूनविशिखाः स्मरेत्॥

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधःस्थयोरन्ये इत्यायुधध्यानम्।

तदावृतीनां पञ्चानां शक्तीस्तत्सदृशीः स्मरेत्।
चतुरस्रद्वयं कृत्वा द्वारद्वयविभूषितम्॥
अष्टपत्राऽम्बुजं मध्ये नादयोनौ च ताः यजेत्॥

अङ्गावृत्तिर्मध्ययोनावन्तरेत्यायुधावृतिः।

पृष्ठतो गुरुपङ्क्तिं च कोणेष्वष्टसु च क्रमात्।
बहिर्दलेष्वपि तथा यजेद् वर्णैर्विलोमतः॥
रूपिणी शक्तिसहितैर्माया सप्ताऽक्षरीयुतैः।
ब्राह्म्यादिशक्तिस्तद् बाह्ये चतुरस्रे तथा यजेत्॥

आसां बलिप्रदानं च करोतु कुरुकुल्लया।

सप्ताक्षर्या केवलया प्रोक्तरूपा स्मरन् धिया''॥ इति।

॥ अथ प्रयोगः॥

तत्र साधकः कृतप्रातराह्निकक्रियः पूजागृहे क्वचित् स्वासनमास्तीर्य, प्राग्वत्, सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखः उपविश्य, प्रागुक्तविधिना सर्वभूतबलिं दत्वा, गुर्वादिवन्दनपूर्वकं सङ्क्षेपतो भूतशुद्धिं मातृकान्यासं च कृत्वा, योग-पीठन्यासं विधाय, तद्दिननित्याविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ऐं ह्रीं श्रीं दक्षिणामूर्तिऋषये नमः, मुखे पङ्क्तिछन्दसे नमः, हृदये कालनित्यायै देवतायै नम इति विन्यस्य, मया क्रियमाणकर्माङ्गत्वेन कालनित्यापूजने विनियोगः। इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, तद्दिननित्याविद्यायाः प्रथमाक्षरमुच्चार्य, हृदयाय नमः, द्वितीयं शिरसे स्वाहा, तृतीयं शिखायै वषट्; पुनः प्रथमं कवचाय हुं द्वितीयं नेत्रत्रयाय वौषट्, तृतीयमस्त्राय फट् इति षडङ्गमन्त्राङ्गुष्ठादितलान्तं करयोर्विन्यस्य, हृदयादिषडङ्गेष्वपि विन्यस्य, रक्ताम्बरमित्यादि ध्यात्वा, मानसपूजादिकं विधाय, पुरतः स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना सकेसरमष्टदलकमलं विरच्य, तन्मध्ये प्राग्दीक्षाप्रकरणोक्तप्रकारेण नवयोनिचक्रं विधाय, अष्टदलाद् बहिः चतुरस्रद्वयं अन्तर्बहिर्विभागेन प्राक्पश्चिमयोः द्वारद्वययुतं कृत्वा तन्मध्य-योनौ तद्दिननित्याविद्यया पुष्पाञ्जलिं दत्वा, अर्घपाद्यादि पात्राणि संस्थाप्य, आत्मपूजां विधाय, श्रीचक्रस्य पीठपूजावदेव पीठपूजां विधाय, आवाहना-दिपुष्पान्तैरुपचारैरुपचर्य्य, लयाङ्गपूजनं कृत्वा योनिमुद्रां पाशादिचतुर्मुद्राश्च प्रदर्श्य, मध्ययोनिमध्ये अग्नीशासुरवायव्यकोणेषु देव्यग्रे तदादिचतुर्दिक्षु च प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, मध्ययोनेः बहिः अष्टकोणाभ्यन्तरस्थान्तरालेषु प्राग्वदायुधचतुष्टयं सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे पूर्वयोनिमध्ययोन्योरन्तराले गुरुपङ्क्तित्रयस्थाने प्राग्वद् रेखात्रयं विभाव्य, तासु प्रथमरेखायां प्रातः सन्ध्योक्तप्रकाशानन्दादिगुरुत्रयं मध्यरेखायां ज्ञानानन्दादिगुरुत्रयं तृतीयरेखायां स्वभावानन्दादिगुरुत्रयं चेति गुरुपङ्क्तित्रयं पूजयेत्।

अत्र स्वमण्डलेषु नाथान्ताः शक्त्यन्ता देविमण्डल इति तन्त्रराजवचनात्; प्रकाशानन्दशक्तिपादुकां पूजयामीत्यादि शक्तिपदान्तताप्रयोगवाक्ये ज्ञातव्याः।

अत्र यद्यपि तन्त्रराजे पादुकां पूजयामीति सप्ताक्षरीविद्यैव पूजायामुक्ता; तथापि बहुषु तन्त्रेषु श्रीपादुकां पूजयामीति श्रीपदादिदर्शनात् सर्वत्र श्रीपूर्वयानया पूजा कार्या।

ततो अष्टयोनिषु देव्यग्रमारभ्य, वामावर्तेन तद्दिननित्याविद्याया मध्याक्षरं षोडशस्वरयुक्तं कृत्वा, मायाश्रीबीजपूर्वकं तेषामाद्यमक्षरमुच्चार्य, रूपिणीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि, द्वितीयं रूपिणीशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि इत्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य, अष्टदलेषु च वामावर्तेनावशिष्टाक्षरशक्तीः सम्पूज्य बहिश्चतुरस्रवीथ्यां वामावर्तेन ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः मायाबीजादिकाः सम्पूज्य, लोकपालार्चनादिनैवेद्यदानान्ते नित्यहोमं प्रागुक्तविधिना कुरुकुल्लाविद्यया सप्ताक्षर्या बलिदानं विधाय, सर्वं समापयेदिति दिननित्या नित्यपूजाविधिः।

अथ कामेश्वर्यादिपञ्चदशनित्यानां पूजाविधिः लिख्यते।

तत्र कामेश्वरीनित्यापूजनविधिः। तत्र तन्त्रराजे –

"अथ षोडश नित्यासु द्वितीया या समीरिता।
कामेश्वरीति तां सर्वकामदां शृणु यत्नतः॥
तन्न्यासं तद्ध्यानभेदांस्तच्छक्तीस्तत्प्रपूजनम्"॥ इति।

अत्र पञ्चदशविद्यानां नित्यपूजाप्रकरणे लिखितत्वात् नात्रोद्धारः क्रियते। दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिः सम्मोहनो नाम त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
कामेश्वरी देवता स्यात् कन्दर्पो बीजशक्तिके"॥

कन्दर्पे ककार-ईकारौ पृथिवी कीलकं प्रोक्तमिति पृथिवी लकारः। तन्त्रराजे –

"मूलविद्याक्षरैरेव कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात्।
एकेन हृदयं शीर्षं तावताऽतो द्वयं द्वयात्॥
चतुर्भिर्नयनं तद्वदस्त्रमेकेन चोदितम्।
दृक्-श्रोत्र-नासा-द्वितये जिह्वा-हृन्नाभिगुह्यके॥
व्यापकत्वेन सर्वाङ्गे मूर्द्धादि प्रपदाऽवधि।
न्यसेद् विद्याक्षराण्येषु स्थानेषु तदनन्तरम्॥
समस्तेन व्यापकं तु कुर्यादुक्तक्रमेण वै"॥
"अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि नित्यपूजासु चोदितम्।
येन देवी सुप्रसन्ना ददातीष्टमयत्नतः॥
बालार्ककोटिसङ्काशां मणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।
हारग्रैवेयकाञ्चीभिरूर्मिकानूपुरादिभिः॥
मण्डितां रक्तवसनां रक्ताभरणशोभिताम्।
षड्भुजां त्रीक्षणामिन्दुकलाकलितमौलिकाम्॥
पञ्चाऽष्टषोडशद्वन्द्व-षट्कोणचतुरस्रगाम्।
मन्दस्मितलसद्वक्त्रां दयामन्थरवीक्षणाम्॥
पाशाङ्कुशौ च पुण्ड्रेक्षुचापं पुष्पशिलीमुखम्।
रत्नपात्रं शीधुपूर्णं वरदं बिभ्रतीं करैः॥

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये, तदाद्यधस्थयोरन्ये, तदाद्यधस्थयोरपरे,

एवं ध्यात्वाऽर्चयेद् देवीं नित्यपूजासु सिद्धये।
प्रयोगादिषु सर्वत्र वक्ष्ये ध्यानानि तत्र वै॥

मदनोन्मादनौ पश्चात् तथा दीपनमोहनौ।
शोषणश्चेति कथिता बाणाः पञ्चपुरोदिताः॥
कुसुमामेखला पश्चात् मदना मदनातुरा।
अनङ्गपदपूर्वास्ताः पञ्चमी मदवेगिनी॥
ततो भुवनपाला स्याच्छशिरेखा त्वनन्तरा।
रेखा गगनपूर्वाऽन्याः पूज्याः पत्रेषु चाष्टसु॥
श्रद्धा प्रीतिरती चैव धृतिः कान्तिर्मनोरमा।
मनोहराष्टमी प्रोक्ता देवी चात्र मनोरथा॥
मदनोन्मादिनी पश्चात् मोहनी शङ्खिनी ततः।
शोषिणी च वशङ्कारी शिञ्जिनी सुभगा ततः॥
सत्वरा षोडशप्रोक्ता प्रियदर्शिनि कान्तिकाः।
पूज्यास्ताः प्रतिपत्रं तु प्रत्येकं षोडशच्छदे॥
पूषा चेद् वा सुमनसा रतिप्रीतिर्धृतिस्तथा।
ऋद्धिः सौम्या मरीचिश्च परतस्त्वंशुमालिनी॥
शशिनी चाङ्गिरा छाया ततः सम्पूर्णमण्डला।
तुष्टामृताख्या कथिता कन्याः स्युः सस्वरा विधोः॥
षोडशस्वपि पत्रेषु पूजयेत् ता यथाक्रमम्।
बहिः षट्कोणकोणेषु हाकिन्याद्यास्तथार्चयेत्॥
तद्बहिश्चतुरस्रस्थाँल्लोकेशाँस्तत्समान् यजेत्।
वटुकं गणपं दुर्गां क्षेत्रेशं चाऽभितो यजेत्॥

अग्न्याद्यश्रिषु विद्यादिसप्तक्षर्यन्तारास्थितैः।
तन्नामभिर्बलिं तेभ्यो दद्याद् गन्धादिचोदितैः॥
ततस्तामङ्गविद्याभ्यां क्लृप्ताऽर्घः पूजयेच्छिवाम्।
प्रागुक्तैरुपचाराद्यैर्होमं कुर्यात् ततस्तथा॥
घृताक्तैर्मधुराक्तैर्वा प्रसूनैररुणैः शुभैः।
अन्नाभ्यां च .... ॥इति।

॥अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते कामेश्वरीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ॐ सम्मोहनाय ऋषये नमः, मुखे तृष्टुप् छन्दसे नमः, हृदये श्री कामेश्वर्यै देवतायै नमः, गुह्ये कं बीजाय नमः, पादयोः ईं शक्तये नमः, नाभौ लं कीलकाय नमः इति विन्यस्य, मम कर्तव्यप्रयोगफल-सिद्धये विनियोगः; इति कृताञ्जलिः उक्त्वा, ॐ ऐं हृदयाय नमः, सकलं ह्रीं शिरसे स्वाहा, नित्यशिखायै वषट्, क्लिन्ने कवचाय हुं, मदद्रवे नेत्रत्रयाय वौषट् सौः अस्त्राय फट् इति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षनेत्रे ऐं नमः, वामे सकलह्रीं नमः, दक्षश्रोत्रे निं नमः, वामे त्यं नमः, दक्षनसि क्लिं नमः, वामे न्नें नमः, जिह्वायां मं नमः, हृदये दं नमः, नाभौ द्रं नमः, गुह्ये वैं नमः, सर्वाङ्गे सौः नमः, इति वर्णान् विन्यस्य, मूलविद्यया त्रिः व्यापकं विन्यस्य, ध्यानमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पञ्चदलकमलं कृत्वा, तद्बहिरष्टदलं, तद्बहिः षोडशदलं, पुनस्तद्बहिः षोडशदलं, षट्कोणं, तद्बहिः चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रद्वयमिति पूजाचक्रं निर्माय; स्वपुरतः चन्दनादिपीठे, जयायै० विजयायै० अजितायै० अपराजितायै० नित्यायै० विलासिन्यै० दोग्ध्र्यै० अघोरायै०, मध्ये मङ्गलायै नमः इति पीठशक्तयः संस्थाप्य, तत्र

कामेश्वरीविद्यया पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, अर्घादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्राग्वदग्निस्थापनप्रकरणोक्तं कामेश्वरीपीठं सम्पूज्य, तत्र कामेश्वरीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, तत्र कामेश्वरीं तद्विद्ययाऽऽवाह्य, आवाहनादिपुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, प्राग्वल्लयाङ्गं सम्पूज्य, पञ्चदलकमलकेसरेष्वग्नीशासुरवायव्य-देव्यग्रतदादिचतुर्दिक्षु च षडङ्गानि च सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे पञ्चदला-ष्टदलयोरन्तराले प्रागुदिननित्या पूजोक्तगुरुपङ्क्तित्रयं सम्पूज्य, पञ्चदलेषु देव्यग्रादि प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं द्रां मदनबाणाय नमः, ह्रीं श्रीं द्रीं उन्मादनबाणाय नमः, र क्लीं दीपनबाणाय नमः, ह्रीं श्रीं ब्लूं मोहनबाणायनमः रसः शोषणबाणाय नमः, इति सम्पूज्य, तद्बहिः अष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन० २, अनङ्गकुसुमाश्रीपादुकां पूजयामि० २, अनङ्गमेखलाश्री० २, अनङ्गमदनाश्री० २, अनङ्गमदनातुराश्री ०२, अनङ्गमदवेगिनीश्री ० २, अनङ्गभुवनपालाश्री ० २, अनङ्गशशिरेखा श्री० २, अनङ्गगगनरेखाश्री० २; ततः षोडशदलेषु ह्रीं श्रीं अं श्रद्धाश्रीपादुकां पूजयामि आं प्रीति श्री० इं रति श्री० ईं धृति श्री० २, उं कान्ति श्री० २, ऊं मनोरमा श्री० २, ॠं मनोहरा श्री० २, ॠं मनोरथा श्री० २, ऌं मदना श्री० २, ॡं उन्मादिनीश्री० २, एं मोहनी श्री० २, ऐं शान्ति श्री० २, ॐ शोषणी श्री० २, औं वशङ्करी श्री० २, अं रञ्जिनी श्री० २, अं शुभगाश्री० इति सम्पूज्य, तद्बहिः षोडशदलेषु ह्रीं श्रीं अं पूषा श्रीं०२, आं श्रद्धाश्री० २, इं सुमनसा श्री० २, ईं रतिश्री० २, उं प्रीतिश्री० २, ऊं धृतिश्री०, ऋं ऋद्धि श्री०, ॠं सौम्याश्री० ऌं मरीचिश्री०, ॡं अंशुमालिनीश्री०, एं शशिनी श्री०, ऐं अङ्गिराश्री०, ॐ छाया०, औं सम्पूर्णमण्डला श्री०, अं तुष्टि श्री०, अः अमृता० इति सम्पूज्य; तद्बहिः षट्कोणेषु स्वदक्षिणाग्रकोणे रों डाकिनीश्रीपादुकां पूजयामि; वामाग्रे ऐं राकिणी०; एवं देव्या; पृष्ठकोणे

लाकिनी०, पृष्ठवामे काकिनी०, पृष्ठदक्षिणे साकिनी०, देव्यग्रे हाकिनी०, इति सम्पूज्य; षट्कोणाद्बहिश्चतुरस्राभ्यन्तरे आग्नेयकोणे ऐं बटुकश्रीपादुकां पूजयामि; नैऋत्ये ऐं गं गणपतिश्रीपा०, वायव्ये ऐं दुं दुर्गा०, श्री० पा०; ईशके ऐं क्षेत्रेशश्रीपा० इति सम्पूज्य, तद्बहिः चतुरस्रे देव्यग्रादि दशदिक्षु ऐं लं इन्द्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि, रं अग्निशक्तिश्रीपादुकां पूजयामीत्यादि-लोकेशाँस्तदायुधानि च शक्त्यन्तैः तत्तन्नामभिः सम्पूज्य, धूमादि नित्यहोमाऽन्ते प्राग्वत् कुरुकुल्लाबलिं बटुक-गणप-दुर्गाक्षेत्रेशबलिं च दत्वा, धूपादिकं शेषं प्राग्वत् समापयेदिति ।

अत्र दुर्गाबलिः प्रागुक्तनवदुर्गामन्त्रेण देयः ।

अत्र पञ्चदशनित्यास्वपि पूजादौ सर्वभूतबलिं, पूजान्ते सप्ताक्षर्या कुरुकुल्लाबलिं च दद्यादिति । इति कामेश्वरीनित्यायजनविधिः ।

अथ भगमालिनीनित्यापूजाविधिः लिख्यते । तत्र श्रीतन्त्रराजे –

“अथ षोडशनित्यासु तृतीयां भगमालिनीम् ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि साङ्गां सावरणां क्रमात् ॥
तदङ्गान्यथ तद्ध्यानं तदावरणदेवताः ।
तत्पूजायाः क्रमं .... ॥ इति ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

“ऋषिरस्यास्तु सुभगो गायत्री छन्द उच्यते ।
देवतेयं सबीजं तु हर ब्लेमात्मकं प्रिये ॥
शक्तिः स्त्रीबीजमं सन्तु कीलकं परमेश्वरी” ॥ इति ।

इयं भगमालिनीनित्या तन्त्रराजे –

“अङ्गानि मन्त्रवर्णैः स्यादाद्येन हृदुदीरितम् ।
ततश्चतुर्भिः शीर्षं स्याच्छिखा त्रिभिरुदीरिता ॥

चतुष्टयत्रयैः शेषाण्यङ्गानि षडिति क्रमात् ।
अरुणामरुणकल्पां सुन्दरीं सुस्मिताननाम् ॥
त्रिनेत्रां बाहुभिः षड्भिरुपेतां कमलासनाम् ।
कह्लारपाशपुण्ड्रेक्षुकोदण्डान् वामबाहुभिः ॥
दधानां दक्षिणैः पद्ममङ्कुशं पुष्पसायकम्'' ॥

उभयत्र ऊर्ध्वादिक्रमेण आयुधध्यानम् । तथाविधाभिः परितो वृत्तां शक्तिभिरात्मभिः अक्षरोत्थाभिरन्याभिः स्मरोन्मादमदात्मभिः पञ्चत्रिंशच्छतार्णैः स्वैः रूपिणीशक्तिपञ्चकं सप्ताक्षरीं च संयोज्य, शक्तिः तत्संख्यकाः यजेत् ।

मदनां मोहिनीं लोलां भञ्जनीमुद्यमां शुभाम् ।
ह्लादिनीं द्राविणीं प्रीतिं रक्तां मनोरमां तथा ॥
सर्वोन्मादां सर्वसुखामभङ्गामभितोद्यमाम् ।
अनल्पां व्यक्तविभवां विविधक्षोभविग्रहे ॥
एताः स्युः शक्तयः पञ्चपञ्चाशद्भिः शतन्त्विति ।
ताभिर्वृतां तु तां देवीं पूजयेद् वाञ्छिताप्तये ॥
अथ पूजाक्रमं देवि शृणु सर्वार्थदायकम् ।
येन विश्वं वशे भूयादपि स्थावरजङ्गमम् ॥
चतुरस्रद्वयं कृत्वा कुर्याद् द्वारं तु पश्चिमे ।
तन्मध्येऽब्जं पञ्चदलं कृत्वा तत्कर्णिकागतम् ॥
योनिद्वयं तयोर्मध्ये तिर्यग्रेखाविधानतः ।
योनीः कुर्याच्च तत्संख्यं योनयः परितः स्थिताः ॥

अग्राद्विलोमगास्तास्तु शक्तीः संस्थाप्य पूजयेत्।
मध्ये वृत्तद्वयं कृत्वा तत्र विंशतिरेखया॥
निष्पाद्य तावतीर्योनीर्मदनाद्याः समर्चयेत्।
वृत्ताऽन्तराले त्वभितो यजेदङ्गानि षट्क्रमात्॥
तन्मध्ये युगमालां तां समावाह्योक्तरूपिणीम्।
संस्थापनादिभिर्युक्तामर्चयेदुपचारकैः॥
अर्घ्यमङ्कैश्च मूलेन संसाध्याऽभ्युक्ष्य मूलतः।
द्वारस्य पार्श्वयो रागद्वेषशक्ती तथार्चयेत्॥
तदन्तर्भगमालायां मदनाद्यास्तथार्चयेत्।
मध्येऽथ देवीमभितो यजेत् तान्यायुधान्यपि॥
ततो देवीं षोडशभिरुपचारैरुदीरितैः।
पूजयेदाद्यवर्णेन विदध्यात् तद्बलिद्वयम्॥
जपेदष्टोतरशतमग्रे देवास्तु नित्यशः।
प्राग्वदग्निमुखं कृत्वा होमं कुर्याद् दशांशतः॥
संयोज्य बिन्दौ तां प्राग्वन्मूलेनाऽभ्यर्च्यतां तथा।
स्वात्मन्युद्वासयेदुक्तप्रकारेण महेश्वरि॥
देव्यात्मा वशयेद् विश्वं नरनारीनराधिपान्''॥

॥ अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्तं कृत्वा, मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सुभगाय ऋषये नमः, मुखे ॐ गायत्री

छन्दसे नमः, हृदये श्रीभगमालिनी नित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये हर ब्लें बीजाय नमः, पादयोः स्त्रीं शक्तये नमः, नाभौ ह्रीं कीलकाय नमः इति विन्यस्य, मम अभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः; इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ॐ हृदयाय नमः, ॐ भगभुगे शिरसे स्वाहा, ॐ भगिनि शिखायै वषट्, ॐ भगोदरि कवचाय हुं, ॐ भगमाले नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ भगावहेऽस्त्राय फट् इति मन्त्रैः करषडङ्गन्यासं विधाय, प्राग्वत् मूलविद्यया व्यापकं विन्यस्य, अरुणामित्यादि यथोक्तरूपां ध्यात्वा, मानसपूजां विधाय, स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिभिरन्तर्बहिर्विभागेन चतुरस्रद्वयेन चतुरङ्गुलाऽन्तरालां समचतुरस्रां वीथीं कृत्वा, तस्याः पश्चिमदिग्भागे मध्ये द्वारं विधाय, तस्य चतुरस्रस्य मध्ये पञ्चदलं पद्मं विरच्य, वृत्तद्वययुक्तायां तत्कर्णिकायां समत्रिरेखां कर्णिकां वृत्तस्पृष्टकोणत्रयं यथामानां योनिं कृत्वा, तस्यामेकां रेखां चतुर्विंशतिधा विभज्य, तैरंशैः त्रयोविंशतिचिह्नानि कृत्वा, तस्याः तिसृषु रेखास्वापि तथा कृत्वा, तेषु एकांशमानमभितः त्यक्त्वा, तदन्तः प्राग्वत् समत्रिरेखां योनिं विधाय, तस्यां योन्यामेकां रेखामेकविंशतिधाऽऽयतायां योन्यामेकां रेखामेकविंशतिधा विभज्य, तेषु विंशतिचिह्नानि प्रतिरेखमिति रेखात्रयेऽपि प्रत्येकं कृत्वा, तेषु बाह्याभ्यन्तरचिह्नेषु चिह्नात् चिह्नमिति क्रमेण पञ्चचत्वारिंशद् रेखाः तिर्यग्रूपाः प्रतिष्ठिताश्च विलिखेत्। एवं कृते बाह्यरेखाऽग्राण्यभ्यन्तररेखाग्राणि च त्रिकोणानि पञ्चत्रिंशदधिकशतसंख्यानि सम्भवन्ति। तदन्तस्त्र्यस्त्ररेखाभ्रमेण वृत्तं निष्पाद्य, तदन्तरपि तथा पञ्चमांऽशमानभ्रमेण वृत्तं विधाय, तदन्तरपि एकांशमानेन वृत्तान्तरं कृत्वा, पूर्ववृत्तयोर्विष्कम्भे षोडशांशसहितं विष्कम्भमानं त्रिगुणीकृत्य, तत्र समुदायमानं दशधा विभज्य, तेष्वेकांशेन चिह्नानि परितः तद्वृत्तद्वये प्रतिवृत्तं दश दश विधाय, तेषु क्रमेण बाह्याऽभ्यन्तर-मभ्यन्तरवृत्तस्पृष्टाऽग्राणि च त्रिकोणान्यभितो विंशतिसंख्यकानि

सम्भवन्ति। इत्थं पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य, भगमालिनीविद्यया अभ्यर्च्य, अर्घादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते प्रागुक्तभुवनेश्वरीपीठं सम्पूज्य, तत्र भगमालिनीविद्यया मूर्तिं सङ्कल्प्य, आवाह्य, आवाहनादिपुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे वृत्ताभ्यन्तर एव प्राग्वत् प्रकाशाऽऽनन्दादि गुरुपङ्क्तित्रयं पूजयित्वा, पञ्चदलकर्णिकामध्यगतवृत्तद्वयाऽन्तराले प्राग्वत् अग्नीशाऽसुरवायव्यदेव्यग्रतदादिचतुर्दिक्षु च षडङ्गानि सम्पूज्य, द्वारस्य वामदक्षिणपार्श्वयोः ॐ ऐं रागशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि; ॐ ऐं द्वेषशक्तिश्रीपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, पञ्चदलकर्णिकामध्यगतयोनिद्वयाऽन्तरालस्थपञ्चत्रिंशदधिकशतसंख्यत्रिकोणेषु देव्यग्रत्रिकोणमारभ्य, वामावर्तेन ॐ ऐं ऐं रूपिणी शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि; ॐ ऐं भगरूपिणी शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि; एवं ग रूपिणी० भु रूपिणी० गे रूपिणी० भ रूपिणी० गि रूपिणी० नि रूपिणी० भ रूपिणी० गो रूपिणी० द रूपिणी० रि रूपिणी० ग रूपिणी० मा रूपिणी० लो रूपिणी० भ रूपिणी० भ रूपिणी० भ रूपिणी० गा रूपिणी० व रूपिणी० हे रूपिणी० भ रूपिणी० ग रूपिणी० गु रूपिणी० ह्ये रूपिणी० भ रूपिणी० ग रूपिणी० यो रूपिणी० नि रूपिणी० भ रूपिणी० ग रूपिणी० नि रूपिणी० नि रूपिणी० नि रूपिणी० नि रूपिणी स रूपिणी० र्व रूपिणी० रू रूपिणी० पे रूपिणी० नि रूपिणी० त्य रूपिणी० क्लि रूपिणी० न्ने रूपिणी० भ रूपिणी० ग रूपिणी० स्व रूपिणी० रू रूपिणी० पे रूपिणी० स रूपिणी० र्वा रूपिणी० णि रूपिणी० भ रूपिणी० गा रूपिणी० नि रूपिणी० मे रूपिणी० ह्या रूपिणी० व रूपिणी० र रूपिणी० दे रूपिणी० रे रू० ते रू० सु रू० रे रूपिणी० ते रूपिणी० भ रूपिणी० ग रूपिणी० क्लि रूपिणी० न्ने रूपिणी० क्लिं रूपिणी० न्न रूपिणी० द्र रूपिणी० वे रूपिणी० क्ले रूपिणी० द रूपिणी० य रूपिणी० द्रा रूपिणी० व रूपिणी० य रूपिणी०

अ रूपिणी मो रूपिणी० ब्वे रूपिणी० भ रूपिणी० ग रूपिणी वि रूपिणी० ब्वेन्नूपिणी० क्षु रूपिणी० भ रूपिणी० क्षो रूपिणी० भ रूपिणी० प रूपिणी० स रूपिणी० र्व रूपिणी० स रूपिणी० त्वा रूपिणी० भ रूपिणी० गे रूपिणी० श्व रूपिणी० रि रूपिणी० ऐं रूपिणी० ब्लूं रूपिणी० जं रूपिणी० ब्लूं रूपिणी० भं रूपिणी० ब्लूं रूपिणी० मो रूपिणी० ब्लूं रूपिणी० हें रूपिणी० ब्लूं रूपिणी० हें रूपिणी० क्लि रूपिणी० न्ने रूपिणी० स रूपिणी० र्वा रूपिणी० णि रूपिणी० भ रूपिणी० गा रूपिणी० नि रूपिणी० मे रूपिणी० व रूपिणी० श रूपिणी० मा रूपिणी० न रूपिणी० य रूपिणी० स्त्री० रूपिणी० ह्ब्लें रूपिणी० ह्रीं रूपिणी० शक्ति श्रीपादुकां पूजयामि; ॐ ऐं मोहनी श्रीपादुकां पूजयामि; एवं लोला० भञ्जिनी० उद्यमा० शुभा० ह्लादिनी० द्राविणी० प्रीति० रतिः रक्ता० मनोरमा० सर्वोन्मादा० सर्वसुखा० अभङ्गा० अभितोद्यमा० अनल्पा० व्यक्ता० विभवा० विविधविग्रहा० क्षोभविग्रहा श्रीपादुकां पूजयामि; इति सम्पूज्य, तदन्तरावृत्तवीथीं रेखाभिः षोढा विभज्य, तेषु षट्सु खण्डेषु देव्यग्रखण्डमारभ्य, ॐ ऐं इक्षुकोदण्डाय नमः, एवं पाशाय कह्लाराय पद्माय अङ्कुशाय पुष्पसायकेभ्यो नम इति देव्याः वामाऽधःकरादि दक्षिणाऽधःकराऽन्तस्थानि आयुधानि सम्पूज्य, पुनस्तद्विद्यया भगमालिनी नित्यां सम्पूज्य, धूपादिसर्वं प्राग्वत् समापयेत् । इति भगमालिनीनित्यार्चनविधिः।

अथ नित्यक्लिन्ना नित्यापूजाविधिर्लिख्यते । तत्र तन्त्रराजे-

अथ षोडशनित्यासु चतुर्थीं शृणु पार्वति ।
नित्यक्लिन्नाऽभिधानां तां तन्मन्त्रं प्रागुदीरितम् ॥
तदङ्गानि च तद्ध्यानं तच्छक्तीस्ताभिरर्चनम् ॥ इति ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो विराट् छन्द उदीरितम् ।
नित्यक्लिन्ना देवतोक्ता वनिता द्राविणी परा ॥

बीजमाद्यं वह्निजाया शक्तिर्न्त्रे कीलकं मतम्" ॥ इति ।

तन्त्रराजे –

आद्येन मन्त्रवर्णेन हृदयं समुदीरितम् ।
ततो द्वाभ्यां पुनर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वयेन च ॥
कुर्याच्छेषाणि चाङ्गानि करयोश्च न्यसेत् क्रमात् ।
तन्त्रे षडङ्गं यत्रोक्तं तत्र तत्र करद्वये ॥
न्यसेदङ्गुष्ठमूलादिकनिष्ठाऽग्रान्तमूर्ध्वगम् ।
शेषं तलद्वये न्यस्यात् हृद्-दृक्-श्रोत्र-नसोर्द्वयोः ॥
त्वचिध्वजे च पायौ च पादयोरर्णकान् न्यसेत् ।
अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम् ॥
अरुणस्रग्विलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम् ।
नेत्रत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्माऽम्बुमौक्तिकैः ॥
विराजमानां मुकुटलसदर्धेन्दुशेखराम् ।
चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमङ्कुशं पानपात्रकम् ॥
अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्याऽऽसीनां मदालसाम् ॥

वामाद्यूर्ध्वयोराद्ये तदाद्यधस्थयोरन्ये; इत्यायुधध्यानम् ।

ध्यात्वैवं पूजयेन्नित्यक्लिन्नानित्यां स्वशक्तिभिः ।
क्षोभिणी मोहिनी लोला त्रिकोणादिषु शक्तयः ॥
नित्या निरञ्जना क्लिन्ना क्लेदिनी मदनातुरा ।
मदद्रवा द्राविणी च द्रविणी चाष्टपत्रगाः ॥

मदाऽऽविलामङ्गला च मन्मथाना मनस्विनी।
मोहा मोढा मानमयी माया मन्दा मितावती॥
चतुरस्रगताः पूज्या मदारुणचलेक्षणाः।
मध्यनित्या समाकारवर्णबाह्याधाराऽन्विताः॥
चतुरस्रं द्वयं कृत्वा प्राग्वत् तद् द्वारसंयुतम्।
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं तन्मध्ये त्र्यस्रकं तथा॥
अर्घ्यं षडङ्गमूलाभ्यां कृत्वा तां प्राङ्मुखोऽर्चयेत्।
चतुरस्रे पश्चिमादि-निर्ऋत्यन्तं यजेच्च ताः॥
द्वारपार्श्वेषु कोणेषु दिक्षु ताः दश पूजयेत्।
तदन्तरष्टपत्रेषु पश्चिमादिप्रदक्षिणम्॥
अर्चयेदष्टशक्तीस्ताः तदन्तर्योनिकोणगाः।
अग्रात् प्रदक्षिणं तिस्रः शक्तीश्चोक्तविधानतः॥
कर्णिकायोनिमध्यस्थदेशे वाय्वेश-वह्निषु।
नैर्ऋत्यां पुरतो दिक्षु यजेदङ्गानि षट् क्रमात्॥
ततो देवीं तु तां नित्यां नित्यक्लिन्नामुदीरितैः।
उपाचारैरर्चयेच्च बलिं दद्याच्च पूर्ववत्॥
तदग्रतो जपेद् विद्यां सहस्रं यदि वा शतम्।
ततोऽभ्यर्च्य शिवां होमं कुर्यादुक्तक्रमेण तु॥
आज्यसिक्ताऽन्धसाऽऽज्येन पुष्पैर्वा सौरभाऽन्वितैः।
जुहुयात् प्राग्वद् दुरितक्षये प्राग्वत् समाप्य तत्॥
अभ्यर्च्य देवीमथ तां स्वात्मन्युद्वास्य पूर्ववत्।
न्यासं कृत्वा स्तोत्रयुगं जपित्वा तन्मयश्चरेत्॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादि योगपीठन्यासाऽन्तं कृत्वा, नित्यक्लिन्ना-विद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे विराजे छन्दसे नमः, हृदि श्रीनित्यक्लिन्नायै नित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः, पादयोः स्वाहा शक्तये नमः, नाभौ कीलकाय नम इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः; इति प्राग्वदुक्त्वा, ह्रीं हृदयाय नमः, नित्य शिरसे स्वाहा, क्लिन्ने शिखायै वषट्, मदकवचाय हुं, द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा, अस्त्राय फट् इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा; हृदये क्लीं नमः, दक्षनेत्रे निं नमः, वामे त्यं नमः, दक्षश्रोत्रे क्लिं नमः, वामे न्नें नमः, दक्षिणनासायां मं नमः, वामे दं नमः, सर्वाङ्गे द्रं नमः, लिङ्गे वे नमः, गुदे स्वां नमः, पादयोः हां नमः, इति विन्यस्य, प्राग्वत् मूलविद्यया व्यापकं कृत्वा, ध्यानादिमानसपूजाऽन्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पूर्वपश्चिमयोः द्वारद्वययुतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा, तन्मध्ये अष्टदलपद्मं निर्माय, तत्कर्णिकायां स्वाभिमुखाऽग्रं त्रिकोणं कृत्वा, प्राग्वत् स्वपुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ्यादिस्थापनाद्यात्मपूजाऽन्ते प्राग्वत् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र नित्यक्लिन्नाविद्यया तन्मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पोपचारान्ते त्रिकोणाऽन्तः प्राग्वत् देवीं परितः षडङ्गानि सम्पूज्य, तद्बहिः देव्याः पृष्ठभागे प्राग्वत् प्रकाशाऽऽनन्दादि गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, चतुरस्रे देव्यग्रगतद्वारस्य दक्षिणे ॐ ह्रीं श्रीं मदाविला श्रीपादुकां पूजयामि; उत्तरे ॐ ह्रीं श्रीं मङ्गला श्रीपादुकां पूजयामि; एवं मन्मथार्त्ता०, मनस्विनी०, मोहा०, अमोदा०, मानमयी०, माया०, मन्दा०, मदनावती०, इति प्रादक्षिण्येन दिग्विदिक्षु द्वारपार्श्वेषु च सम्पूज्य, अष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य, ॐ ह्रीं श्रीं नित्या० श्रीपादुकां पूजयामि; एवं निरञ्जना०, क्लिन्ना०, क्लेदिनी०, मदनातुरा०, मदद्रवा०, द्राविणी०, द्रविण० श्रीपादुकां पूजयामि; मोहिनी लोला श्रीपादुकां पूजयामीति प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, पुनर्मध्ये

नित्यक्लिन्नां तद्विद्यया सम्पूज्य, धूपदीपादिकं सर्वं प्राग्वत् समापयेदिति।
इति नित्यक्लिन्नापूजाविधिः।

अथ भेरुण्डानित्या पूजाविधिर्लिख्यते। तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु भेरुण्डा पञ्चमी तु या।
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे कथयामि यथाविधि॥
मन्त्रोद्धारस्तृतीयेऽभूदङ्गान्यावृतिदेवताः।
पूजाक्रमं च .... ॥ इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिरस्याः महाविष्णुर्गायत्री छन्द उच्यते।
देवतेयं वरारोहे यं बीजमुच्यते तथा॥
वह्निजाया तु शक्तिः स्यात् कीलकं सृणिरेव च॥ इति।
सृणिरङ्कुशः (क्रों)

तन्त्रराजे –

"आद्यं तद्द्वयमध्यस्थैः षड्भिः कुर्यात् षडङ्गकम्।
रन्ध्राऽऽज्ञामुखकण्ठेषु हृन्-नाभ्याऽऽधारपङ्कजे॥
न्यसेन् मन्त्रार्णनवकं मातृकान्यासपूर्वकम्।
ततः शक्तीरावृतिस्था ध्यानं च शृणु पार्वति॥
बाह्यावृतौ तु ब्राह्म्याद्या युगशक्तीश्च पूजयेत्।
तदन्तरष्टपत्रेषु विजयां विमलां शुभाम्॥
विश्वां विभूतिं विनतां विविधां विमतां क्रमात्।
तदन्तरष्टकोणेषु कमलां कामिनीं तथा॥

किरातां कीर्तिसहितां कुर्दिनीं कुलसुन्दरीम्।
कल्याणीं कालकोलां च पूजयेदुक्तयोगतः॥
डाकिनीं राकिनीं तद्वत् लाकिनीं काकिनीं तथा।
साकिनीं हाकिनीं षट्सु कोणेषु क्रमतोऽर्चयेत्॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः त्रिषु कोणेषु पूजयेत्।
चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्वितम्॥
तदन्तरष्टपत्राब्जवृत्तयुग्ममथान्तरम्।
अष्टाश्रं भूपुरद्वन्द्वं तच्च वृत्तसमन्वितम्॥
तदन्तस्तादृशं कुर्यात् षट्कोणं चारुविग्रहम्।
तदन्तस्तादृशीं कुर्यात् पोतं तन्मध्यतो यजेत्॥
भेरुण्डां पञ्चमीं नित्यामुक्तशक्तिभिरावृताम्।
अर्घ्यं षडङ्गमूलाभ्यां संशोध्य प्राङ्मुखो यजेत्॥
बलिं च षोडशार्णेन दद्यादाद्यन्तयोः क्रमात्।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि देव्याः सर्वार्थसाधकम्॥
तदाऽऽवृतिस्थशक्तीनां क्रमेण शृणु पार्वति।
तप्तकाञ्चनसङ्काशदेहां नेत्रत्रयान्विताम्॥
रशनानूपुरोर्म्यादिभूषणैरतिसुन्दरीम्।
पाशाऽङ्कुशौ खेटखड्गौ गदावज्री धनुः शरान्॥
करैर्दधानामाऽऽसीनां पूजायामन्यदा स्थिताम्।
शक्तीश्च तत्समाऽऽकारतेजोहेतिभिरन्विताः॥

पूजयेत् तद्वदभितः स्मितसौम्यमुखां सदा।
एवं देवीमाऽऽवृतीभिराऽऽवृतामर्चयेत् तथा॥
बलिमाद्यं तयोर्दद्यात् पूर्वोक्तविधिना युतम्॥

॥ अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वदाऽऽसनपूजादि योगपीठन्यासान्ते भेरुण्डाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ॐ महाविष्णवे ऋषये नमः, मुखे ॐ गायत्री-छन्दसे नमः, हृदि ॐ श्रीभेरुण्डानित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये भ्रों बीजाय नमः, पादयोः ॐ स्वाहा शक्तये नमः, नाभौ क्रों कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, मम सर्वाऽभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः; इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ॐ क्रों हृदयाय नमः, भ्रों शिरसे स्वाहा, क्रों शिखायै वषट्, ह्लौं कवचाय हुं, छ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ज्रौं अस्त्राय फट् इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ब्रह्मरन्ध्रे ॐ नमः, आज्ञायां क्रों नमः, मुखे भ्रों नमः हृदि झ्रौं नमः, नाभौ छ्रौं नमः, मूलाधारे ज्रौं नमः, दक्षपादे स्वां नमः, वामे हां नम इति विन्यस्य, प्राग्वत् व्यापकं कृत्वा, "तप्तकाञ्चनसङ्काशाम्" इत्यादि ध्यात्वा, मानसपूजाऽन्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुक्तं चतुरस्रद्वयं कृत्वा, तदन्तरष्टदलं पद्मं, तदन्तर्वृत्तं, तदन्तरष्टाश्रं, पुनस्तदन्तर्वृत्तं, तदन्तः षट्कोणं, तदन्तर्वृत्तं, तन्मध्ये स्वाभिमुखाऽग्रत्रिकोणरूपां योनिं च कृत्वा, प्राग्वत् संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजाऽन्ते प्राग्वत् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र भेरुण्डा-विद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिप्राणप्रतिष्ठान्ते योनिमुद्रां प्रदर्श्य, आसनादिपुष्पोपचाराऽन्ते योन्यन्तर्देवीमभितः प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, योनिवृत्तयोरन्तराले देव्याः पृष्ठभागे प्राग्वत् गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, चतुरस्र-पश्चिमद्वारादि चतुर्द्वारपार्श्वेषु प्रतिद्वारं द्वि-द्विक्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः पूजयेत्। तद्यथा –

२ आँ ब्राह्मी०, २ ईं माहेश्वरी०, २ ॐ कौमारी०, ॠं वैष्णवी०, २ ॡं वाराही०, २ऐं इन्द्राणी०, २ औं चामुण्डा० २ अः महालक्ष्मी० इति सम्पूज्य, चतुरस्रस्य वायुकोणे कृतयुगशक्तिपादु०; ऐशान्ये त्रेतायुगशक्ति०; आग्नेये द्वापरयुगशक्ति०; निर्ऋतिकोणे कलियुगशक्तिपादुकां पूजयामीति सम्पूज्य, तदन्तरष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं विजया पा०; एवं विमला०, शुभा०, विश्वा०, विभूति०, विनता०, विविधा०, इति सम्पूज्य तदन्तरष्टकोणेषु देव्यग्रमारभ्य, प्रादक्षिण्येन कमला पा०, कामिनि०, किराता०, कीर्तिः०, कुर्दिनी०, कुलसुन्दरी०, कल्याणी०, कालकोला इति सम्पूज्य, तदन्तःषट्कोणेषु देव्याः वामाऽग्रकोणे ह्रीं श्रीं डाकिनी पा०; एवं दक्षिणाऽग्रकोणे २ राकिनी, पृष्ठकोणे लाकिनी० पा०, पृष्ठवामाऽग्रकोणे काकिनी ० दक्षिणपृष्ठकोणे साकिनी०, देव्यग्रकोणे हाकिनी इति सम्पूज्य, अन्तस्त्रिकोणे देव्यग्रकोणमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं इच्छाशक्ति पादु०, ज्ञानशक्ति०, क्रियाशक्ति०, पादुः ० इति सम्पूज्य, अष्टकोणषट्कोणयोरन्तराले देव्या दक्षिणाऽग्रादिषु पृष्ठदक्षिणाग्रान्तं स्थानचतुष्टयं परिकल्प्य, २ शरेभ्यो नमः २ वह्नये नमः, २ खड्गाय०, २ अङ्कुशाय नमः इति देव्या दक्षिणाधःकरादि तदूर्ध्वकरान्तस्थानि आयुधानि सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठवामभागमारभ्य, वामाग्रावधिस्थानचतुष्टयं परिकल्प्य, तेषु पाशाय नमः, चर्मणे नमः, गदायै नमः, धनुषे नमः, इति देव्याः वामोर्ध्वकरादि, तदधःकरान्तस्थान्यायुधानि सम्पूज्य, प्राग्वत् लोकपालाँस्तदायुधानि च सम्पूज्य, पुनर्मध्यस्थनित्यां तद्विधया सम्पूज्य, धूपादिसर्वं प्राग्वत् समापयेदिति । इति भेरुण्डानित्यापूजाविधिः ।

अथ वह्निवासिनीनित्या (पूजाविधिः) । तत्र श्रीतन्त्रराजे –

अथ षोडशनित्यासु या षष्ठी समुदीरिता ।
सा विद्यावह्निवासिन्याः कथिताभून्नवाक्षरी ॥

तदङ्गानि लिपिन्यासं ध्यानं शक्तिभिरर्चनम् ॥

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिर्वशिष्ठः छन्दः स्याद् गायत्री देवताऽन्विता ।
आद्यन्तं बीजशक्ती स्यात् कीलकं मध्यमेव च" ॥ इति ।

तन्त्रराजे –

विद्या द्वितीयबीजेन स्वराद् दीर्घात् नियोजयेत् ।
माया तत्षड्भिरेवाङ्गान्यावरेण्यकराङ्घ्र्योः ॥
नवाक्षराणि विद्याया नवरन्ध्रे च विन्यसेत् ।
व्यापकं तु समस्तो न कुर्याद् देव्यात्मसिद्धये ॥
सर्वास्वपि च विद्यासु व्यापकन्यासमाचरेत् ।
तेन तत्तन्मयो भूयात् साधकस्तेन सिद्धये ॥
तेऽस्याश्चिरेण देवीनां प्रसादात् सम्भवन्ति च ।
मातृकायाः षडङ्गाच्च मातृकान्यासमेव च ॥
तेन तस्यास्तु लिपिशो न्यासेनैव समीरितः ।
सर्वासां प्रथमं कृत्वा पश्चात् तन्त्रोदितं न्यसेत् ॥
ललितायास्तु वर्गैस्तत् प्रोक्तमष्टाभिरेव च ।
तेन तस्यास्तु लिपिशो न्यासेनैव समीरितः ॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशां नवयौवनसुन्दरीम् ।
चारुस्मेरमुखाम्भोजां विलसन्नयनत्रयाम् ॥
अष्टाभिर्बाहुभिर्युक्तां माणिक्याभरणोज्ज्वलाम् ।
पद्मरागकिरीटांशुसम्भेदारुणिताम्बराम् ॥

पीतकौशेयवसनां रक्तमञ्जीरमेखलाम्।
रत्नमौक्तिकसम्भिन्नस्तबकाभरणोज्ज्वलाम्॥
रत्नाब्जकं च मुद्रेक्षुचापपूर्णेन्दुमण्डलाम्।
दधानां बाहुभिर्वामैः कह्लारं हेमशृङ्गकम्॥
पुष्पेषु (पुष्प-इषु) मातुलुङ्गञ्च दधानां दक्षिणैः करैः।
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्॥

वामोर्ध्वादि तदधःपर्यन्तं, दक्षिणोर्ध्वादितदधःपर्यन्तम्। इति आयुध ध्यानम्।

एवं ध्यात्वाऽर्चयेद् वह्निवासिनीं विश्वविग्रहाम्।
ज्वालिनीविस्फुलिङ्गिन्यौ मङ्गला सुमनोहरा॥
कनका किनवा विश्वा विविधा चेति शक्तयः।
अष्टकोणेषु सम्पूज्यास्तदग्रात् तु प्रदक्षिणाम्॥
दलेषु द्वादशस्वेताः राशिशक्तीः समर्चयेत्।
मेषां वृषाऽऽह्वयां शक्तिं मिथुनां कर्कटामपि॥
सिंहां कन्यां तुलां कीटां चापा (धना) च मकरामपि।
कुम्भां मीनां यजेद् प्राक्तु प्राग्वदारभ्य शाङ्करि॥
चतुरस्रद्वारयुगे पार्श्वयोः कोणदिक्षु च।
अन्ययोश्च दिशो शक्तीः प्रोक्ता दश समर्चयेत्॥
माया सप्ताक्षरीमध्यगतैर्नामभिरीरिता।
घस्मरा सर्वभक्षा च विश्वा च विविधोद्भवा॥

चित्ररूपा निःसपत्ना निरातङ्का च पार्वति।
अचिन्त्या वैभवा रक्ता दशमी परिकीर्तिता।
बलिदेवी तु सम्प्रोक्ता कुरुकुल्लादिविद्यया।
यत्र नोक्ता देवता तु बलिकर्मणि तत्र ताम्॥
सप्ताऽक्षर्या समोपेतां विदध्यात् बलिदेवताम्।
वृत्तयोर्नवयोनिं तु कृत्वा तद्बहिरम्बुजम्॥
द्वादशाच्छदसंयुक्तं विदध्याद् वृत्तयुग्मकम्।
तद्बहिश्चतुरस्रे द्वे द्वारद्वयसमन्विते॥
पूर्वपश्चिमयोस्तस्मिन् चक्रे देवीं तथाऽर्चयेत्॥

॥ अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्तं कृत्वा, वह्निवासिनी-विद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि वशिष्ठऋषये नमः; मुखे गायत्रीछन्दसे नमः; हृदि वह्निवासिनी नित्यायै देवतायै नम; गुह्ये बीजाय नम; पादयोः "नमः" शक्तये नमः; नाभौ वह्निवासिनीकीलकाय नमः इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः; इति प्राग्वदुक्त्वा, ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट् इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, दक्षनेत्रे ॐ नमः, वामे ह्रीं नमः, दक्षकर्णे वं नमः वामे ह्निं नमः, दक्षे नसि वां नमः, मुखे सिन्यैं नमः, लिङ्गे नं नमः, गुदे मः नमः, इति विन्यस्य, वह्निवासिनीविद्यया व्यापकं विधाय, 'तप्तकाञ्चन-सङ्काशाम्' इत्यादि ध्यात्वा, मानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना द्वादश-दलकमलं विलिख्य, तत्कर्णिकायां वृत्तद्वयं विधाय, तन्मध्ये प्राग्वत् नवयोनिचक्रं कृत्वा, पश्चाद्बहिः वृत्तद्वयं विधाय, तद्बहिः पूर्वपश्चिमयोः द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं कुर्यादिति, पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घस्थापनाद्यात्म-

पूजान्ते प्राग्वत् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र वह्निवासिनीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पोपचारान्ते बाह्याभ्यान्तरवृत्तयोरन्तराले प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, देव्याः पृष्ठभागे पूर्वयोनि-मध्ययोनि-मध्ययोनिमध्ययोरन्तराले गुरुपङ्क्तित्रयं सम्पूज्य, अष्टयोनिषु देव्यग्रमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं ज्वालिनी पादुकां पूजयामि; एवं विस्फुलिङ्गिनी०, मङ्गला०, मनोहरा०, कनका०, कितवा०, विश्वा०, विविधा०, इति सम्पूज्य; द्वादशदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन मेषा०, वृषा०, मिथुना०, कर्कटा०, सिंहा०, कन्या०, तुला० वृश्चिका०, वापा (धना)०, मकरा०, कुम्भा०, मीना०, इति सम्पूज्य चतुरस्रे देव्यग्रंद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य, प्राग्दक्षिण्येन घस्मराया०, सर्वभक्षा०; विश्वा०, विविधोद्भवा०, चित्ररूपा०, इति पश्चिमद्वारपार्श्वद्वयवायव्योत्तरेशानेषु सम्पूज्य, पूर्वद्वारपार्श्वद्वयाऽऽग्नेयदक्षिणनैऋत्यकोणेषु च निःसपत्ना०, निराऽऽतङ्का०, पावनी०, अचिन्त्यवैभवा०, रक्ता पादुकां पूजयामि; इति सम्पूज्य, तद्बहिः प्राग्वल्लोकपालाँश्च तदायुधानि च सम्पूज्य, धूपदीपादिसर्वं प्राग्वत् कृत्वा, समापयेत्। इति वह्निवासिनी पूजाविधिः।

अथ वज्रेश्वरी नित्यापूजाविधिः। तन्त्रराजे –

अथ षोडशनित्यासु सप्तमी या समीरिता।
तस्याः विधानं वक्ष्यामि शृणु सर्वार्थसाधकम्॥
प्रोक्तैव विद्या प्रागेव द्वादशाक्षरविग्रहा।
तदङ्गानि लिपिन्यासं ध्यानं शक्तिभिरर्चनम्॥ इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

" .... ऋषिर्ब्रह्मा च गीयते।
गायत्री छन्द आख्यातं देवता परमेश्वरी"॥

परमेश्वरी = वज्रेश्वरीति।

आद्यन्ते बीजशक्ती तु वाग्भवं कीलकं भवेत् ॥ इति ।

तन्त्रराजे –

"द्वयमेकैकमथ च द्वयं द्वयमथ द्वयम् ।
मायया पुटितं कृत्वा कुर्यादङ्गानि षट् क्रमात् ॥
दृक्-श्रोत्र-नासा-वाग्-वक्षो-नाभि-गुह्येषु च क्रमात् ।
रक्तां रक्ताऽम्बरां रक्त-गन्ध-मालाविभूषणाम् ॥
चतुर्भुजां त्रिनयनां माणिक्यमुकुटोज्वलाम् ।
पाशाऽङ्कुशाविक्षुचापं दाडिमं सायकं तथा ॥
दधानां बाहुभिर्नेत्रैर्दयामदसुशीलितैः ।
पश्यन्तीं साधकं त्र्यश्र-षट्कोणाब्जमहीपुरे ॥
चक्रमध्ये सुखासीनां स्मेरवक्त्रसरोरुहाम् ।
शक्तिभिः स्व-स्वरूपाभिरावृतां पोतमध्यगाम् ॥
सिंहासनेऽभितः प्रेङ्खत्पोतस्थाभिश्च शक्तिभिः ।
कृतां ताभिर्विचोदाभिर्यातायातादिभिः सदा ॥
कुर्वाणामरुणाऽम्भोधौ चिन्तयेत् मन्त्रनायिकाम् ।
इच्छाज्ञानक्रियाश्चाऽत्र त्रिकोणाश्चात्र सिद्धयः ॥
डाकिन्याद्याः षडस्रस्थाः पद्मद्वादशपत्रगाः ।
हल्लेखा क्लेदिनी क्लिन्ना क्षोभिणी मदनातुरा ॥
निरञ्जना रागवती तथैव मदनावती ।
मेखला द्राविणी वेगवती द्वादशशक्तयः ॥

ततः षोडशपत्राच्छाः शक्तीराकर्णयाम्बिके।
कमलां कामिनीं कण्यां कलां कलितकौतुके॥
किरातां कालकदने कौशिकां कम्बुवादिनीम्।
कातरां कपटां कीर्तिं कुमारां कुङ्कुमामपि॥
चतुरस्त्रस्थाश्चापि शक्तीराकर्णय ताः क्रमात्।
भञ्जिनी वेगिनी नागा चपला पेशला सती॥
रतिः श्रद्धा-भोगलोभाः मदोन्मत्ते मनस्विनी।
दिक्षु द्वारेषु पार्श्वेषु कोणदिक्षु च संस्थिताः॥
द्वादशैताः महादेव्यः श्चतुरस्रेऽभितो यजेत्।
कृत्वाऽर्घमङ्गमूलाभ्यां प्रोक्तरूपा ततोऽर्चयेत्॥
शोणाऽब्धिं हेमपोतं च सिंहासनमनन्तरम्।
तत्र चक्रं तथा देवीं प्राग्वदावाह्य शक्तिभिः॥
माया सप्ताक्षरीमध्यगतैर्नामभिरर्चयेत्।
बलिं च दद्यात् तदनु सप्ताक्षर्या पुरोक्तया॥
देव्यास्तु कुरुकुल्लायाः होमं कुर्याद् यथाविधि।
घृताक्तैररूणैः पुष्पैर्घृतैर्वा होममाचरेत्॥
प्राग्वत् समर्पयेदित्थमर्चनं ते समीरितम्''॥ इति।

॥ अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते वज्रेश्वरीविद्यया प्राणायाम-त्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे गायत्र्यै छन्दसे नमः, हृदि वज्रेश्वरी न्यायदेवतायै नमः, गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः, पादयोः ह्रीं शक्तये नमः, नाभौ ऐं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः;

इति कृताऽञ्जलिः उक्त्वा, ह्रीं क्लिन्ने हृदयाय नमः; ह्रीं ऐं ह्रीं शिरसे स्वाहा, एवं १ क्रों १ शिखायै वषट्, नित्य १ कवचाय हुं १ मद १ नेत्रत्रयाय वौषट्, क्रों० अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षनेत्रे ह्रीं क्लीं ह्रीं नमः, वामे ह्रीं न्नें ह्रीं नमः; एवं दक्षकर्णे ऐं नमः, वामे क्रों०, दक्षनसि नीं०, वामे त्यं०, मुखे मं०, वक्षसि दं०, नाभौ द्रं०, लिङ्गे, वे०, इति विन्यस्य, मूलविद्यया व्यापकं विधाय, रक्ताम्बरामित्यादि ध्यात्वा, मानसपूजां विधाय, प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना स्वाभिमुखाग्र-त्रिकोणरूपां योनिं विधाय, तद्बहिः षट्कोणं, तद्बहिर्द्वादशदलपद्मं, षोडश-दलपद्मं तद्बहिश्चतुर्द्धारयुतं चतुरस्रद्वयं कुर्यात् इति पूजाक्षेत्रं निर्माय, प्राग्वत् स्वपुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्ध्य - स्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डपादि पृथिव्यन्तमभ्यर्च्य, तदनु शोणसमुद्राय नमः, कनकयोः तापरत्ना सिंहासना० इति सम्पूज्य, तदनु धर्मादिपीठमन्त्रान्तं भुवनेश्वरीपीठात् प्राग्वत् सम्पूज्य, वज्रेशीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, त्रिकोणमध्ये प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोण षट्कोणयोरन्तराले देव्याः पृष्ठे प्राग्वत् गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, तत्त्रिकोणे देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ह्रीं इच्छाशक्तिपादुकां पूजयामि; एवं ज्ञानशक्ति०; क्रियाशक्ति०; इति सम्पूज्य, पट्कोणेषु प्राग्वत् डाकिन्यादिषट्कं सम्पूज्य, द्वादशदलेषु देव्यग्रमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्रीं हृल्लेखाया०, एवं क्लेदिनी० क्लिन्ना० क्षोभिणी० मदना० मदनातुरा० निरञ्जना० रागवती० मदनावती मेखला० द्राविणी० वेगवती०; इति सम्पूज्य; तद्बहिः षोडशदलेषु कमला० कामिनी० कल्प्या० कला० कलिता कौतुका० किराता० काला० कदना० कौशिका० कम्बुवादिनी० कातरा० कपटा० कीर्ति० क्रमारा० कुङ्कुमा० इति प्राग्वत् सम्पूज्य; चतुरस्रे देव्यग्रादि द्वारचतुष्टयस्य पार्श्वेषु पश्चिमद्वारस्य दक्षिणभागादिप्रादक्षिण्येन

सञ्जीवनी० वेगिनी० नागा० बला० पेशला० सती०, रति० श्रद्धा०; इति सम्पूज्य; वायव्यादिकोणचतुष्टये प्राग्वत् प्रादक्षिण्येन भोगलोला० मदा उन्मत्ता० मनस्विनी०, इति नैऋत्यन्तं सम्पूज्य, प्राग्वल्लोकपालाऽर्चादि सर्वं समापयेदिति। इति वज्रेश्वरीनित्या पूजाविधिः।

अथ शिवदूती नित्याविधिर्लिख्यते। तत्र श्रीतन्त्रराजे–

"अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्ता त्वष्टमी तदा।
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे समाहितफलप्रदम्॥
विद्योद्धारः स्मृतः पूर्वमथ न्यासक्रमं तथा।
तदावरणशक्तीश्च तद्ध्यानं तत्प्रपूजनम्" ॥ इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्–

"ऋषी रुद्रोऽथ गायत्री छन्दः स्याद् देवता शिवा" ॥

शिवा = शिवदूतीति।

"आद्यन्ते बीजशक्ती च मध्यं कीलकमुच्यते" ॥ इति।

तन्त्रराजे–

कृत्वा प्राग्वत् षडङ्गानि विधानेनोक्तवर्त्मना।
तेनैव पुटितैर्णैर्न्यसेच्छ्रोत्रादिपञ्चसु॥
षष्ठं मनसि विन्यस्य व्यापकं विद्यया न्यसेत्।
पश्चादर्घं समुद्दिष्टं तच्छक्तीः शृणु पार्वति॥
विह्वलाऽऽकर्षणी लोली नित्या मदनमालिनी।
विनोदा-कौतुका-पुण्या पुराणा चतुरस्रगाः॥

वागीशी वरदा विश्वा विनदा विघ्नकारिणी।
वीरा विहरा विद्याः इत्युक्ताः सप्त शक्तयः॥
सुमुखी सुन्दरी सारा सुमना च सरस्वती।
समया सर्वगा विद्येत्युक्ता त्वष्टाश्रशक्तयः॥
हाकिन्याद्याः षडस्रेषु सर्वस्त्वग्रात् प्रदक्षिणम्।
मूलदेवी समाऽऽकारवर्णाऽऽयुधसमन्विताः॥
शिवां वाणीं दूरसिद्धां त्वद् विग्रहवतीमपि।
नादां मनोन्मनीं षट्सु पत्रेषु परितोऽर्चयेत्॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत्।
मध्ये देवीं हेतिवृत्तां पूजयेदष्टमीं शिवाम्॥
तस्याः ध्यानं शृणु प्राज्ञे यन्मया विश्वमीरितम्।
तथापि भक्तसन्त्राणहेतोः क्लृप्तां परां तनुम्॥
निदाघकालमध्याह्नदिवाकरसमप्रभाम्।
नवरत्नकिरीटां च त्रीक्षणामरुणाम्बराम्॥
नानाऽऽभरणसम्भिन्नदेहकान्तिविराजिताम्।
शुचिस्मितामष्टभुजां स्तूयमानां महर्षिभिः॥
पाशं खेटं गदां रत्नं चषकं वामबाहुभिः।
दक्षिणैरङ्कुशं खड्गं कुठारं कमलं तथा॥
दधानां साधकाऽभीष्टमनोद्यमसमन्विताम्।
ध्यात्वैवं पूजयेद् देवीं दूतीं दुरितनाशिनीम्॥

वृत्तद्वयं बहिस्त्र्यस्रं तद्द्वयं षड्दलाम्बुजम्।

तथा षडस्रमष्टास्रं तद्द्वयाऽष्टदलाऽम्बुजम्॥

भूपुरे वह्निवासिन्याः कृत्वा तन्मध्यगां शिवाम्।

अवाभ्यर्च्य च ताः प्रोक्ताः प्रागुक्तविधिना स्थिताः॥

जप्त्वा हुत्वा नम[illegible]स्यात्मन्युद्वासयेत् तथा॥ इति।

॥अ[illegible]योगः॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादियोग[illegible]सान्तं कृत्वा, शिवदूतीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि रुद्राय ऋषये नमः, मुखे गायत्री छन्दसे नमः, हृदि श्रीशिवदूती नित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये ह्रीं बीजाय नमः, पादयो, "नमः" शक्तये नमः, नाभौ शिवदूत्यै कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः; इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ह्रां ह्रीं इत्यादि-षड्दीर्घस्वरयुक्ताद्यबीजेन करषडङ्गन्यासं विधाय, श्रोत्रयोः ह्रीं शिं ह्रीं नमः; एवं सर्वाङ्गे वां नमः; चक्षुषो दूं नमः, जिह्वायां त्यैं नमः, प्राणयोः नं नमः, मनसि मः नमः, इति विन्यस्य, समस्तविद्यया व्यापकं विधाय, "निदाघकाल ...." इत्यादि ध्यात्वा, मानसपूजां विधाय, प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पड्दलपद्म निर्माय, तदन्तर्वृत्तं मध्ये स्वाभिमुखाग्रं त्रिकोणं, पद्माद्बहिः षट्कोणं, तद्बहिः षड्दलपद्मं, तद्बहिः पूर्वपश्चिमयोः द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ-स्थापनाद्यात्मपूजान्ते शिवदूतीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादि पुष्पो-पचारान्ते त्रिकोणान्तः प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोण वृत्तयोरन्तराले प्राग्वद् गुरुपङ्क्तित्रयं सम्पूज्य चतुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं विह्वलापादुकां पूजयामि; एवमाकर्षणी०, लोलानित्या० मदना० मालिनी० विनोदा० कौतुका० पुण्या० पुराणा० इति सम्पूज्य;

अष्टदलेषु प्राग्वद् वागीशी० वरदा० विश्वा० विनदा० विघ्नकारिणी० वीरा० विघ्नहरा० विद्या० इति सम्पूज्य; अष्टकोणेषु प्राग्वत् सुमुखी० सुन्दरी० सारा० सुमना० सरस्वती० समया० सर्वगा० सिद्धा० इति सम्पूज्य; षट्कोणेषु देव्यग्रकोणमारभ्य, हाकिनी पा०; एवं राकिनी० साकिनी० लाकिनी० डाकिनी इति सम्पूज्य; षट्पत्रेषु शिवा० वाणी० दूरसिद्धान्यै० विग्रहवती० नादा० मनोन्मनी० इति सम्पूज्य, अन्तस्त्रिकोणे देव्यग्रादिप्राद-क्षिण्येन इच्छाशक्ति पा० ज्ञानशक्ति० क्रियाशक्ति० इति सम्पूज्य; त्रिकोणाऽन्तर्वृत्तयोरन्तराले देव्याः दक्षिणाऽधःकरादि वामाऽधःकरान्तानि आयुधस्थानानि परिकल्प्य, कमलाय नमः, कुठाराय० खड्गाय० अङ्कुशाय० पाशाय० गदायै० रत्न- चषकाय० इति सम्पूज्य; पुनर्मध्ये देवीं सम्पूज्य, धूपादिकं सर्वं प्राग्वत् कृत्वा, समापयेत्। इति शिवदूतीनित्याऽर्चनविधिः।

॥ अथ त्वरितानित्याविधिः लिख्यते ॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु नवमी या समीरिता।
प्रोक्तैव त्वरिता विद्या प्रागेव द्वादशाक्षरा॥
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे होमयन्त्रादिभिः समम्।
येन मन्त्री मन्मथाऽऽभो विक्षोभयति भूतलम्" ॥ इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिः शौरिर्विराट् छन्दो देवतेयं च पार्वति।
कवचास्त्रे शक्तिबीजे "क्षे" कीलकमितीरितम्" ॥ इति।

इयं त्वरितानित्या तन्त्रराजे–

"विद्या चतुर्थवर्णादि सप्तभिस्त्वक्षरैस्तथा।
कुर्यादङ्गानि मन्त्रार्णैः षट्क्रमेण कराऽङ्गयोः॥
शिरो-ललाट-कण्ठेषु हृनु-नाभ्याधारकेषु च।
चतुर्युग्मे तथा जानुद्वये जङ्घाद्वये तथा॥
पादयुग्मे तथा बाणान् मन्त्रजान् दश विन्यसेत्।
द्वितीयोपान्त्य मध्यस्थैर्मन्त्रार्णैरितरैरपि॥
ताराद्यैः शृणु तद्ध्यानं तच्छक्तीस्तत्प्रपूजनम्।
श्यामवर्णां शुभाकारां नवयौवनशोभिनीम्॥
द्वि-द्वि-क्रमादष्टनागैः कल्पिताभरणोज्वलाम्।
बर्हि-बर्हिकृतापीडां तच्छत्रां तत्पताकिनीम्॥
गुञ्जा-गुण-लसद्वक्षः कुचकुङ्कुममण्डलाम्।
त्रिनेत्रां चारुवदनां मन्दस्मितमुखाऽम्बुजाम्॥
पाशाऽङ्कुश-वराऽभीतिलसद्भुजचतुष्टयाम्।
ध्यात्वैवं तोतलां देवीं पूजयेच्छक्तिभिर्वृताम्॥
तदग्रस्था तु फट्कारी शरचापकरोज्वला।
प्रसादे फलदाने च साधकानां त्वरान्विता॥
यतः सा त्वरितेत्युक्त्वा मया शक्तिर्नवम्यसौ।
कृष्णवर्णा गदापाणिर्वर्वरोच्छ्रशिरोरुहा॥
किङ्करौ चाऽग्रतस्तस्या पूज्यौ सर्वार्थसिद्धये।
तद्द्वारपार्श्वयोः पूज्यौ जयविजयसंज्ञकौ॥

शक्ती तत्सदृशे स्वर्णवेत्रवेल्लत्कराम्बुजे।
हुङ्कारी खेचरी चण्डा छेदनी क्षपणी ततः॥
स्त्रीहुङ्कार्यौ क्षेमकरी लोकपालसमा इमाः।
पूज्याः पद्माष्टपत्रेषु स्थिता मन्त्राऽर्णशक्तयः॥
याभिर्नित्यार्चिताभिः स्यान्नरो नारीषु मन्मथः।
शृणु पूजाविधिं तस्याः त्वरिताया महेश्वरि॥
प्राग्वदर्घ्यं विधायेत्थमष्टसिंहाऽङ्घ्रिके शुभे।
आसने हेमरचिते विदध्यात् भूपुरद्वयम्॥
पश्चिमद्वारसंयुक्तं तदन्तर्वृत्तयुग्मकम्।
तदन्तराऽष्टपत्राब्जे विधायात्र शिवां पराम्॥
प्राग्वदावाह्य परितः शक्तिभिर्वेष्टितां तथा।
मुद्रादर्शनपूर्वां तु पूजयेत् तां यथोदिताम्॥
अग्रपत्राऽग्रके वृत्तमध्ये वर्णैः पुरोदितैः।
किङ्कराय बलिं दद्याद् देव्यग्रे प्रागुदीरितैः॥
स्वसमानगणाऽऽकीर्णमण्डलस्थस्य भक्तितः।
एवं पूजां विधायाऽग्रे जपेद्विद्यां सहस्रकम्॥
शतं वा कृतहोमस्तु पूजां प्राग्वत् समापयेत्''॥ इति।

॥अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासन्ते त्वरिताविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि शौरये ऋषये नमः, मुखे विराट्छन्दसे नमः, हृदि त्वरितानित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये स्त्रीबीजाय नमः, पादयोः हुं शक्तये नमः, नाभौ क्षं कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः;

इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, ॐ खे च हृदयाय नमः, च छे शिरसे स्वाहा, छे क्ष शिखायै वषट्, क्ष स्त्रीं कवचाय हुं, स्त्रीं हूं नेत्रत्रयाय वौषट्, हूं क्षे अस्त्राय फट् इति षडङ्गन्यासं कृत्वा, शिरसि ॐ नमः, ललाटे हुं नमः, कण्ठे खें नमः, हृदि चं नमः, नाभौ छें नमः, मूलाधारे क्षं नमः, ऊरुद्वये स्त्रीं नमः, जानुद्वये हूं नमः, जङ्घाद्वये क्षें नमः इति मायापुटितान् वर्णान् विन्यस्य, समस्तविद्यया प्राग्वद् व्यापकं कृत्वा, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना पश्चिमदिग्द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं विधाय, तदन्तर्वृत्तद्वयं, तदन्तरष्टदलपद्ममिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घादिस्थापनाद्यात्मपूजान्ते भुवनेशीमेवमभ्यर्च्य, तत्र त्वरिताविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पोपचारान्ते कर्णिकान्तः प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य, पश्चाद्बहिः वृत्तत्रयान्तरालस्था वीथीद्वये देव्यग्रदलाग्रबाह्ये ह्रीं श्रीं फट्कारीपादुकां पूजयामि; बाह्यवीथ्यां देव्यग्र एव किङ्करपादुकामिति सम्पूज्य चतुरस्रद्वारस्य दक्षिणोत्तरपार्श्वयोः जयाय० विजयाय०; ततोऽष्टदलेषु देव्यग्रदलमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं हुङ्कारी पादु०; एवं खेचरी पा० चण्डा पा० छेदनी पा० क्षपणी पा० स्त्री पा० हुङ्कारी० क्षेमकारी पा० इति सम्पूज्य प्राग्वल्लोकपालार्चादि सर्वं समापयेत्।

अत्र कुरुकुल्लाबलिदानानन्तरं किङ्करस्यापि देव्यग्रेऽन्नादिभिर्बलिं दद्यादिति त्वरितानित्यापूजाविधिः।

"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ चतुस्त्रिंशत्तरङ्गकः"॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे चतुस्त्रिंशस्तरङ्गः॥ ३४॥

॥श्रीः॥

अथ पञ्चत्रिंशस्तरङ्गः

॥अथ कुलसुन्दरी॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु दशमी या समीरिता।
विद्योक्ता कुलसुन्दर्यास्तस्याः पूजाविधिं शृणु॥
तद् ध्यानमथ तन्न्यासं तच्छक्तीस्तत् समर्चनम्" ॥ इति।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिरहं शिरसि विन्यसेत्।
छन्दः पङ्क्तिस्तु विज्ञेयं मुखे विन्यस्य देवताम्॥
हृदये परमेशानि विन्यसेत् कुलसुन्दरीम्।
वाग्भवं बीजमित्युक्तं शक्तिस्तार्तीयमीरितम्॥
कामबीजं कीलकं स्यात् पुरुषार्थे नियुज्यते" ॥ इति।

तन्त्रराजे –

"त्रिभिस्तैरुदितैर्मूलैः वर्णैः कुर्यात् षडङ्गकम्।
आदिमध्याऽवसानेषु पूजाजपविधौ क्रमात्॥
प्रत्येकं तैस्त्रिभिर्बीजैर्दीर्घस्वरसमन्वितैः।
कुर्यात् कराङ्गवक्त्राणां न्यासं प्रोक्तं यथाविधि॥
ऊर्ध्वाधःप्रागुदक्षिणोदक्पश्चिमापरनामभिः।
शुचिगत्यन्तरस्थैस्तैस्तदात्मसु यथाक्रमम्॥

आधाररन्ध्रयोरेकं द्वितीयं लोचनत्रये।
तृतीयं श्रोत्रचिबुके चतुर्थं घ्राणतालुषु॥
पञ्चमं चांऽसनाभीषु ततः पाणिपदद्वये।
मूलमध्याऽग्रतो न्यसेत् नवधा मूलवर्णकैः॥
लोहिता-लोहिताकार-शक्तिवृन्दनिषेविताम्।
लोहितांऽशुकभूषास्रक्लेपनां षण्मुखाम्बुजाम्॥
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां तथा चारुस्मितान्विताम्।
अनर्घ्यरत्नघटितमाणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्॥
ताटङ्क-हार-केयूर-रशना-नूपुरोज्ज्वलाम्।
रत्नस्तबकसम्भिन्नलसद्वक्षःस्थलां शुभाम्॥
कारुण्याऽऽनन्दपरमामरुणाऽम्बुजविष्टराम्।
भुजैर्द्वादशभिर्युक्तां सर्वेशीं सर्ववाङ्मयीम्॥
प्रवालाऽक्षस्रजं पद्मं कुण्डिकां रत्ननिर्मिताम्।
रत्नपूर्णां तु चषक-लुङ्गीं व्याख्यानमुद्रिकाम्॥
दधानां दक्षिणेबाहौ पुस्तकं चाऽरुणोत्पलम्।
हैमीं च लेखनीं रत्नमालां कम्बुपरैर्भुजैः॥
लुङ्गी मातुलुङ्गीमालामम्लानपङ्कजमयीम्।
कम्बुं शङ्खं........................ ॥
अभितः स्तूयमानां च देवगन्धर्वकिन्नरैः।
यक्षराक्षसदेवर्षिसिद्धविद्याधरादिभिः॥
ध्यात्वैवमर्चयेन्नित्यं वाग्लक्ष्मीकान्तिसिद्धये।
सितां केवलवाक्सिद्ध्यै लक्ष्म्यै हेमप्रभामपि॥

धूमाभावेऽपि विद्विष्ट्यै मृतये विग्रहाय च।
नीलां च मूलीकरणे स्मरेत् तत्तदपेक्षया॥
भाषा सरस्वती वाणी संस्कृता प्राकृता परा।
बहुरूपा चित्ररूपा रम्याऽऽप्यानन्दकौतुके॥
एवमेकादश प्रोक्ताः नवयोनिषु पूजयेत्।
बहिरष्टछदाम्भोजे ब्राह्म्याद्यास्ताः समर्चयेत्॥
चतुरस्रे लोकपालान् शक्तिरूपान् समर्चयेत्।
इन्द्राग्नि-यम-रक्षोभिर्वरुणाऽनिल-सोमकान्॥
ईशानं तद्विधीन् प्रागाद्यष्टदिक्षु धरोत्तरम्।
शक्त्यन्तैर्नामभिः प्राग्वत् पूजयेत् सर्वसिद्धये॥
चतुरस्रद्वयं कृत्वा प्राक्-प्रत्यग् द्वारसंयुतम्।
तन्मध्ये वृत्तयुग्मस्थं कुर्यादष्टछदाम्बुजम्॥
चतुस्त्रि-पञ्च-चत्वारि भागतो नवयोनिकम्।
कृत्वाऽत्र तां समाऽऽवाह्य प्राग्वत् सम्यगथार्चयेत्॥
एकादशस्वन्तशक्तीर्मध्ययोनेस्तु पार्श्वयोः।
तथैव लोकपालाऽन्तशक्तीर्द्वारद्वयेऽर्चयेत्॥
विशेषेण च सामान्यमन्यदर्चनमम्बिके।
सप्ताक्षर्या बलिं दद्यात् पूजान्ते कुरुकुल्लया॥
एवं नित्याऽर्चनं कुर्यात् नित्यहोमं घृतेन वै"॥

॥अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासाऽन्ते मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्ति ऋषये नमः, मुखे पङ्क्ति छन्दसे नमः, हृदये

कुलसुन्दरी नित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये ऐं बीजाय नमः, पादयोः सौः शक्तये०, नाभौ क्लीं कीलकाय०, इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्ट-सिद्धये विनियोगः; इति कृताऽञ्जलिरुक्त्वा; पूजारम्भे जपारम्भे च आं हृदयाय नमः, ईं शिरसे स्वाहा, ॐ शिखायै वषट्, ऐं कवचाय हुं, औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अः अस्त्राय फट् इति कराऽङ्गयोर्विन्यस्य, शिरसि ऐं आँ ऊर्ध्ववक्त्राय नमः, मुखे ऐं ईं पूर्ववक्त्राय नमः, दक्षकर्णे ऐं ऊं दक्षिणवक्त्राय नमः, वामकर्णे ऐं ऐं उत्तरवक्त्राय नमः, चूडाधः ऐं औं पश्चिमवक्त्राय नमः, ब्रह्मरन्ध्रे ऐं अः अपरवक्त्राय नमः, इति न्यसेत्।

पूजामध्ये तु आवरणपूजारम्भे विद्याया मध्यमबीजं षड्-दीर्घस्वरैर्भिन्नं कृत्वा, क्लां क्लीं इत्यादिना न्यसेत्।

पूजान्ते विद्याया अन्तिमबीजं तथैव स्वरभिन्नं कृत्वा, सां सीं इत्यादिना न्यसेत्। एवं जपादौ, जपान्ते च; जपमध्ये तु उपदिष्टसंख्याया अर्द्धजपानन्तरमिति।

अथ प्रकृते प्रथमकूटस्य वक्त्रन्यासाऽनन्तरं मूलाधारे ऐं नमः, ब्रह्मरन्ध्रे क्लीं नमः, हृदये सौः नमः, दक्षनेत्रे ऐं नमः, वामे क्लीं नमः, ललाटनेत्रे सौः नमः, दक्षश्रोत्रे ऐं०, वामे क्लीं० चिबुके सौः दक्षनासापुटे ऐं, वामे क्लीं नमः, तालुनि सौः, दक्षिणनसि ऐं०, वामे क्लीं०, नाभौ सौः, दक्षदोर्मूले ऐं० मध्ये क्लीं० अग्रे सौः, एवं वामदोर्मूलादिषु दक्षोरुमूले ऐं०, जानुनि क्लीं०, पादाऽग्रे सौः०; एवं वामोरुमूले ऐं जानुनि पादाऽग्रे च न्यसेत्।

ततो मूलविद्यया व्यापकं कुर्यात्। पूजाजपमध्याऽन्तयोरपि मध्यबीजान्त्यबीजयोरपि वक्त्रन्यासाऽनन्तरम् मूलबीजैर्नवविधन्यासं व्यापकं न्यासं च कुर्यादिति सम्प्रदायः।

ततो ध्यानमानसपूजाऽन्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना अष्टदल-कमलं कृत्वा, तत्कर्णिकायां प्राग्वत् नवयोनिचक्रं विधाय, पद्माद्बहिः वृत्तद्वयं,

तद्बहिः पूर्वपश्चिमयोः द्वारयुतं चतुरस्रद्वयं च कुर्यादिति; पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ्यादि स्थापनाद्यात्मपूजान्ते मण्डूकादि-ज्ञानात्मान्तं प्राग्वत् पीठपूजां कृत्वा, अष्टदलकेसरेषु वामायै नमः, ज्येष्ठायै नमः, रौद्र्यै० अम्बिकायै० इच्छायै० ज्ञानायै० कृपायै० कुब्जिकायै० विभ्व्यै०, विषघ्न्यै० इतर्यै० आनन्दायै नमः, इति द्वादशशक्तीः सम्पूज्य, ह्-सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः इति समस्तं पीठं सम्पूज्य; तत्र कुलसुन्दरीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिप्राणप्रतिष्ठान्ते प्रागुक्त-षड्वक्त्रन्यासमन्त्रैर्देव्याः वक्त्रषट्कं सम्पूज्य, आसनादिपुष्पोपचाराऽन्ते अन्तस्त्रिकोणाभ्यन्तरे प्राग्वत्षडङ्गानि सम्पूज्य, प्राग्ज्योति मध्ययोन्योर्मध्ये प्राग्वद्गुरुपङ्क्तित्रयं सम्पूज्य, अन्तस्त्रिकोणस्याग्रकोणे ह्लां श्रीं भाषापादुकां पूजयामि; इति सम्पूज्य, अष्टसु योनिषु देव्यग्रयोनिमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्लीं श्रीं सरस्वतीपादुकां पूजयामि; एवं वाणी० संस्कृता० प्राकृता० परा० बहुरूपा० चित्ररूपा० रम्या० इत्यष्टशक्तीः सम्पूज्य; अन्तर्योन्यां देव्याः पृष्ठदक्षिणकोणे अनन्दा० तद्वामे कौतुका० इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु प्राग्वद् ब्राह्म्याद्याः सम्पूज्य, चतुरस्रे प्रावत् लोकपालान् लं इन्द्रशक्ति पा० इत्यादि-शक्तिरूपान् सम्पूज्य, तदायुधान्यपि तथैव शक्तिरूपाणि सम्पूज्य धूपादिकं सर्वं कृत्वा, प्राग्वत् समापयेदिति । कुलसुन्दरीनित्यापूजाविधिः ।

॥ अथ नित्या-नित्यापूजा लिख्यते ॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्तैकादशी तु ताम् ।
नित्यानित्यां शृणु प्राज्ञे यदायत्तमिदं जगत् ॥
विद्योद्धारः कृतः पूर्वं तद्विधानमिहोच्यते ।
याऽसौ समस्तजीवानां देहस्थितिविधायिनी ॥

न्यासं ध्यानं ततः शक्तीस्ताभिः पूजां च साधनम्'' ॥ इति ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"............ त्रिपुरेशीव तत्र त्विति"।

"त्रिपुरेशी बाला तेन बाला च कुलसुन्दरी"॥

इति ज्ञानार्णवोक्तौ बाला-कुलसुन्दर्योरभेदाद्, बालाया ऋष्यादिकमेव कुलसुन्दर्याः; त एव नित्या-नित्यायाः अपि; इति प्राक्कुलसुन्दरीविधानोक्ता एव ऋष्यादयो अत्रापि ज्ञेयाः। ते तु प्रयोगे लेखनीयाः।

तन्त्रराजे –

"दीर्घस्वरसमेताभ्यां हं सं ह्रद्रां षडङ्गकम्।
भ्रूमध्ये कण्ठ-हृन्नाभि गुह्याधारेषु च क्रमात्॥
विद्याक्षराणि क्रमशो न्यसेद् बिन्दुयुतानि च।
व्यापकं तु समस्तेन विधाय विधिना युतम्॥
ध्यायेत् तां सर्वसम्पत्तिहेतोः सर्वात्मिकां शिवाम्।
उद्यद्भास्करबिम्बाऽऽभां माणिक्यमुकुटोज्वलाम्॥
पद्मरागकृताकल्पामरुणांशुकधारिणीम्।
चारुस्मितलसद्वक्त्रषट्सरोजविराजिताम्॥
प्रतिवक्त्रं त्रिनयनां भुजैर्द्वादशभिर्युताम्।
पाशाऽक्षगुणपुण्ड्रेक्षु चापखेटत्रिशूलकान्॥
वरं वामैर्दधानां च, अङ्कुशं पुस्तकं तथा।
पुष्पेषुं मण्डलाग्रं च कपालमभयं तथा॥

दधानां दक्षिणैर्ध्यायेद् सदा देवीमनन्यधीः ॥

मण्डलाग्रमेव ॐ ।

अनन्तशक्तयो देव्यास्त्वाऽऽकर्णय वदामि ते ।
ललिताशक्तिवृन्दाऽब्जबीजद्वयमथो क्रमात् ॥
पूर्वमण्डलवर्णास्ते स्फुरन् शक्तीति संयुता ।
सप्ताक्षर्यायुता संज्ञा विद्या स्याद् द्वादशाक्षरा ॥
षट्सप्तत्या पञ्चशतं यजेत्ताः निवृतां शिवाम् ।
षट्कोणे कोणाब्जासना डाकिन्याद्यास्तथार्चयेत् ॥
रक्षोऽनिलेन्द्रवह्नीशवरुणेषु क्रमाच्च ताः ।
डाकिनी राकिनी पश्चात् लाकिनी काकिनी तथा ॥
साकिनी हाकिनी मूल-देवी-सदृशविग्रहाः ।
हेतीस्तामभितः शक्तिरूपास्ता मुकुटाननाः ॥
कृतन्यासोऽर्घं सङ्कल्प्य पूजयेदादितः क्रमात् ।
सतिलद्वयहोमं तु जपेद् विद्यां यथोदिता ॥
षट्कोणाद् बहिरब्जं तु शतार्द्धैकदलाऽन्वितम् ।
कृत्वाऽन्तेऽपि च तामस्तु वृतां पूजा तु मध्यमा ॥
द्वि चतुः षट्-दशदलैर्द्वादशाऽष्टद्वयच्छदैः ।
पद्मैरावृतषट्कोणे यजेल्लब्धेरिताऽर्चना ।
चतुरस्रद्वयं बाह्ये चतुर्द्वारसमन्वितम् ।
विधाय तेषु शाखाश्च शक्तीनां विंशतिं यजेत् ॥

ब्रह्माद्यालोकपालाख्याः षोडशद्वारसंस्थिताः।
अनन्तब्रह्मनियतिकालरूपा विदिग्गताः॥

॥अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते नित्यानित्याविद्याया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि दक्षिणामूर्ति ऋषये नमः, मुखे पङ्क्तिछन्दसे नमः, हृदि नित्यानित्यादेवतायै नमः, गुह्ये ऐं बीजाय, नमः, पादयोः औ शक्तये नमः, नाभौ ई कीलकाय नमः, इति विन्यस्य, सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः; इति कृताञ्जलिरुक्त्वा, हां सां हृदयाय नमः, हीं सीं शिरसे स्वाहा, हू सूं शिखायै वषट्, हैं सैं कवचाय हुं, हौं सौं नेत्रत्रयाय वौषट्, हः सः अस्त्राय फट् इति करषडङ्गन्यासं विधाय, भ्रूमध्ये हं नमः, कण्ठे सं नमः, हृदि कं नमः, नाभौ लं नमः, गुह्ये यं नमः, मूलाऽऽधारे डं नमः, समस्तविद्यया व्यापकं विधाय, "उद्यद् भास्करबिम्बाऽऽभां" इत्यादि ध्यात्वा मानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना षट्कोणं विधाय, तन्मध्ये वृत्तं कृत्वा, षट्कोणाद् बहिः षोडशदलयुतानि षट्त्रिंशत्पद्मानि विधाय, यद्वा – द्वात्रिंशद्-द्वात्रिंशद् दलयुतान्यष्टादशपद्मानि वाऽन्तर्बहिर्विभागेन कृत्वा, तद्बहिश्चतुरस्रद्वयं चतुर्द्वारोपेतं कुर्यादिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ्यस्थापनाद्यात्मपूजान्ते कुलसुन्दरीपीठपूजां विधाय, आवाहनादि-पुष्पोपचाराऽन्तेऽन्तर्वृत्तमध्ये देवीं परितः प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, देव्या, पृष्ठभागे षट्कोणवृत्तयोरन्तराले प्राग्वद् गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, षट्कोणेषु निर्ऋतिकोणे ह्रीं श्रीं डाकिनीपादुकां पूजयामि; वायव्ये राकिनी पा०, पूर्वकोणे लाकिनी पा०, आग्नेये काकिनी पा०, ईशाने २ साकिनी०, पश्चिमे हाकिनी०, इति सम्पूज्य, बहिः षोडशदले देव्यग्रदलमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं अं अंशक्तिपादुकां पूजयामि; ३ आशक्तिपा० एवं

शेषस्वरशक्ति पा०, इत्यादि अः शक्तिपादुकां पूजयामि, इत्यन्तं षोडशशक्तीः पूजयेत् ।

एवं अन्येष्वपि पञ्चत्रिंशत् पद्मेषु ककारादि क्षकारान्तपञ्चत्रिंशद् वर्गशक्तीः प्रतिपद्मं षोडश-षोडश-शक्तीरिति प्रागुक्तपूर्णमण्डलवर्णशक्तीः पूजयेत् । अष्टादशपद्मपक्षे तु प्रतिपद्मं द्वात्रिंशत् संख्याकाः प्रोक्तशक्तयः पूज्याः ।

अथवा षट्कोणाद् बहिरेकपञ्चाशद्दलमण्डितं पद्मं विरच्य, तद्दलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं 'अ'शक्तिपादुकां पूजयामि, ह्रीं श्रीं 'आ'शक्तिपादुकां पूजयामि; ह्रीं श्रीं स्वरव्यञ्जन शक्तिपा०, इत्याद्यकारादि-क्षकारान्तैकपञ्चाशद्वर्णशक्तीः पूजयेत् ।

यद्वा षट्कोणाद्बहिः षोडशरत्नपद्मं तद्बहिर्द्वादशदलं, तद्बहिर्दशदलं, तद्बहिः चतुर्दलं, तद्बहिर्द्विदलमिंति पद्मषट्कं निर्माय; तेषु षोडशदलेषु स्वरशक्तीः, द्वादशदलेषु कादिठाऽन्तवर्णशक्तीः, दशदलेषु डादि फान्तवर्णशक्तीः, षड्दलेषु बादिलाऽन्तशक्तीः, चतुर्दलेषु वादि सान्तवर्णशक्तीः, द्विदलयोः ह क्ष शक्तीः इति पञ्चाशत् शक्तीः पूजयेत् ।

एवमुक्तमध्यमकनिष्ठ-कनिष्ठपक्षे वक्ष्यमाण-प्रकारेण वर्णशक्तीः सम्पूज्य, बहिश्चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्व-मारभ्यारब्धद्वारस्योत्तरपार्श्वाऽन्तं प्रतिद्वारं द्विद्विक्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं ब्राह्मीपादुकां पूजयामीत्यादिक्रमेण सम्पूज्य, पूर्वद्वार-मारभ्य प्रतिद्वारं द्वि-द्विक्रमेण इन्द्रादीशान्तंल्लोकपालाशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य, वायव्यादिनिर्ऋत्यन्ते कोणचतुष्टये ह्रीं श्रीं अनन्तशक्तिपादुकां पूजयामि; एव कपालशक्ति० नियतिशक्ति० कालशक्ति० इति सम्पूज्य

षट्कोणाऽन्तर्वृत्तयोरन्तराले द्वादशस्थानानि परिकल्प्य, देव्याः दक्षिणाऽधः करादिवामाऽधःकराऽन्तस्थान्यायुधानि ह्रीं श्रीं अभयशक्तिपा०, एवं कपालशक्ति पा०, खड्गशक्ति०, इषुशक्ति०, पुस्तकशक्ति०, अङ्कुशशक्ति० पाशशक्ति० अक्षगुणशक्ति० इक्षुचापशक्ति० त्रिशूलशक्ति० वरशक्ति० इति सम्पूज्य; पुनर्मध्ये देवीं तद्विद्यया सम्पूज्य, धूपादिकं सर्वं कृत्वा, समापयेत्। इति नित्यानित्यापूजाविधिः।

॥ अथ नीलपताका पूजाविधिः लिख्यते ॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु द्वादशा या समीरिता।
तस्या नीलपातकाया विधानं सर्वसिद्धिदम् ॥
न्यासक्रमविधानं च ध्यानं शक्तीः प्रपूजनम्" ॥ इति ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिः सम्मोदनः, छन्दो गायत्रं देवता मनुः।
नित्या नीलपताकाऽऽख्या ह्रीं बीजं ह्रीं च शक्तिकः ॥
कामबीजं कीलकं स्यात्......................." । इति ।

तन्त्रराजे –

"मूलविद्याऽक्षरैरङ्गान्याऽऽचरेत् षडपि क्रमात्।
द्वि-चतुरष्ट-षट्-त्र्यर्णैः क्रमेण षडितीरितैः ॥
श्रोत्राऽक्षिनासायुगले वाचि कण्ठे हृदि क्रमात्।
नाभावाऽऽधारके पादसन्धिषु त्रिषु च क्रमात् ॥
मन्त्राक्षराणि क्रमशो न्यसेत् सप्तदशाऽपि च।
व्यापकं च समस्तेन विदध्याच्च यथाविधि ॥

इन्द्रनीलनिभां भास्वन्मणिमौलिविराजिताम् ।
पञ्चवक्त्रां त्रिनयनामरुणांऽशुकधारिणीम् ॥
दशहस्तां लसन्मुक्ताप्रायाभरणमण्डिताम् ।
रत्नस्तबकसम्भिन्नदेहां चारुस्मिताननाम् ॥
पाशं पताकां चर्माऽपि शार्ङ्गं चापं वरं करैः ।
दधानां वामपार्श्वस्थैः सर्वाभरणभूषितैः ॥
अङ्कुशं च ततः शक्तिं खड्गं बाणं तथाभयम् ।
दधानां दक्षिणैर्हस्तैरासीनां पद्मविष्टरे ।
आकारवर्णवेषाऽऽस्य-पाण्यायुधविभूषणैः ।
शक्तिवृन्दैर्वृतां ध्यायेद् देवीं नित्यार्चनक्रमे ॥

उभयपार्श्वयोरूर्ध्वादिक्रमेणायुधध्यानमिति ।

त्रि-षट्कोणयुतं पद्ममष्टपत्रं ततो बहिः ।
द्व्यष्टारं भूपुरं द्वन्द्वाद् वृत्ते तत्पुरयुग्मकम् ॥
चतुर्द्वारयुतं दिक्षु शाखाभिश्च समन्वितम् ।
कृत्वा तामाऽऽवृतां शक्तिगणैस्तत्रार्चयेच्छिवाम् ॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीस्त्रिषु कोणेषु पूजयेत् ।
डाकिन्याद्याः यजेत् षट्सु कोणेषु परितः क्रमात् ॥
ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रेषु तत्कोणेषु बहिस्तथा ।
प्रागुक्तास्तायजेच्छक्तीः नित्या-नित्यादिषूदिताः ॥

बलिद्वयं च कुर्वीत पूजां प्राग्वत् समापयेत्।
सर्वत्र नित्यहोमं तु कुर्यात्तामाज्यतोपि वा॥
तिलतण्डुलाक्तैर्वाऽपि प्रोक्तं द्रव्यानुसारणम्॥ इति।

॥ अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासान्ते नीलपताकाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि सम्मोहनाय ऋषये नमः, मुखे गायत्री छन्दसे नमः, हृदि नीलपताकानित्यायै देवतायै नमः, गुह्ये ह्लीं बीजाय नमः, पादयोः ह्लीं शक्तये नमः, नाभौ ह्लीं कीलकाय नमः। इति विन्यस्य, मम सर्वाभीष्टसिद्धये विनियोगः; इति कृताञ्जलिर्वदेत्।

ततः ह्लीं फ्रें हृदयाय नमः, स्रूं क्रों आं क्लीं शिरसे स्वाहा, ऐं ब्लूं नित्यमदशिखायै वषट्, द्रं कवचाय हुं, वें नेत्रत्रयाय वौषट्, हूं अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, दक्षकर्णे ह्लीं नमः, वामे फ्रें नमः, दक्षनेत्रे स्रूं नमः, वामे क्रों नमः, नसि आं नमः; वामे क्लीं नमः, मुखे ऐं नमः, कण्ठे ब्लूं नमः, हृदि निं नमः, नाभौ त्यं नमः, मूलाधारे मं नमः, दक्षोरुमूले दं नमः, जानुनि द्रं नमः, गुल्फसन्धौ वें नमः, वामोरुमूले हूं नमः, जानुनि फ्रें नमः, गुल्फसन्धौ ह्लीं नम इति विन्यस्य, नीलपताकाविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा, तदन्तर्वृत्तद्वयं, तदन्तरष्टकोणं, तदन्तरष्टदलकमलं, तदन्तःषट्कोणं, तदन्तस्त्रिकोणं इति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ्यादि स्वात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र नीलपताकाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पोपचाराऽन्ते त्रिकोणाभ्यन्तरे प्राग्वत् षडङ्गानि सम्पूज्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले

प्राग्वद् गुरुपङ्क्तित्रयमभ्यर्च्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले देव्या दक्षिणाऽधःकरादिवामाऽधः कराऽन्तस्थान्यायुधानि ॐ ह्रीं श्रीं इच्छाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि; एवं ज्ञानशक्ति० क्रियाशक्ति० इति सम्पूज्य, षट्कोणेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ ह्रीं श्रीं हाकिनी श्री पा० एवं साकिनी० काकिनी० लाकिनी० राकिनी० पा० डाकिनी पा० इत्थं सम्पूज्य, अष्टदलेषु देव्यग्रादिप्रादक्षिण्येन ॐ ह्रीं श्रीं आं ब्राह्मी श्रीपादुकां पूजयामीत्यादि माहेश्वरीं कौमारी० वैष्णवी० वाराही० इन्द्राणी० चामुण्डा० महालक्ष्मी० ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य, अष्टदलकोणेषु देव्यग्रमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ॐ ह्रीं श्रीं सुमुखी श्री पा०, एवं सुन्दरी० सारा० सुमना० स्वती० समया० सर्वगा० सिद्धा० इति सम्पूज्य; तद्बहिः चतुरस्रे देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणभागमारभ्य, ह्रीं श्रीं विह्वला श्री पा०, एवं आकर्षणी० लोला० नित्या० मदना० मालिनी० विनोदा० कौतुका० पुण्या० पुराणा० इति सम्पूज्य, बहिः चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य, वामपार्श्वाऽन्तं प्रतिद्वारं द्वि-द्विक्रमेण प्रादक्षिण्येन पुनः ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः सम्पूज्य, पुनः देव्याः पृष्ठभागस्थद्वारदक्षिणपार्श्वमारभ्य, प्रतिद्वारं द्वि-द्विक्रमेण इन्द्रादीशानाऽन्तलोकपालाऽष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य, आग्नेयादिकोणचतुष्टये अनन्तब्रह्मनियतिकालशक्तीः सम्पूज्य, वज्रादीन्यायुधानि प्राग्वच्छक्तिरूपाणि सम्पूज्य, पुनर्मध्ये नीलपताकानित्यां तद्विद्ययाऽभ्यर्च्य, धूपादि सर्वं प्राग्वत् कल्पयेत् । इति नीलपताकानित्यापूजाविधिः ।

॥ अथ विजया नित्यापूजाविधिः लिख्यते ॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु सम्प्रोक्ता या त्रयोदशी ।
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे विद्या प्रागुदिता तव ॥
तदङ्गान्यक्षरन्यासं ध्यानार्चाऽस्यास्तु शक्तिभिः" ॥ इति ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिरस्या अहिः छन्दो गायत्री देवता स्वयम्"॥

स्वयं = विजया।

तन्त्रराजे –

"विद्यायां व्यञ्जनैर्दीर्घ-स्वरयुक्तैः चतुष्टयम्।
शेषाभ्यां च द्वयं कुर्यात् षडङ्गानि कराङ्गयोः॥
ज्ञानेन्द्रियेषु श्रोत्रादिष्वथ चित्ते च विन्यसेत्।
अक्षराणि क्रमाद् बिन्दुयुतान्यन्यत्तु पूर्ववत्॥
पञ्चवक्त्रां दशभुजां प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम्।
भास्वन्मुकुटविन्यस्तचन्द्ररेखाविराजिताम्॥
सर्वाऽऽभरणसंयुक्तां पीताम्बरसमुज्ज्वलाम्।
उद्यद्भास्वद् बिम्बतुल्यदेहकान्तिं शुचिस्मिताम्॥
शङ्खं पाशं खेटचापौ कह्लारं वामबाहुभिः।
चक्रं तथाऽङ्कुशं खड्गं सायकं मातुलुङ्गकम्॥
दधानां दक्षहस्तैस्तु प्रयोगे भीमदर्शनाम्।
व्याघ्राऽऽरूढाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्॥
समरे पूजनेन्येषु प्रयोगेषु सुखासनाम्।
शक्तयश्चाऽपि पूजायां सुखासनसमन्विताः॥

सर्वा देव्याः समाकारमुखपाण्याऽऽयुधा अपि। वामोर्ध्वादिदक्षिणोर्ध्वादि चायुधध्यानम्।

चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारोपशोभितम्।
शाखाऽष्टकसमोपेतं तत्र प्राग्वत् समर्चयेत्॥

तदन्तर्वृत्तयुग्माऽन्तरष्टकोणं विधाय तु।
तदन्तश्च तथा पद्मं षोडशच्छदसंयुतम् ॥
तथैवाऽष्टछदं पद्मं विधायावाह्य तत्र ताम्।
तत्तच्छक्त्याऽऽवृतां सम्यगुपचारैस्तथार्चयेत् ॥
ललितारहिताः पञ्चदश-नित्यास्तिथीश्वराः।
चन्द्रखण्डलसन्मौलियुताः सा तन्मयी सदा ॥

अत्र कामेश्वर्यादिपञ्चदशनित्यानां वृद्धिक्षयोपेतचान्द्रकलापञ्चदशकरूपपञ्चदशतिथिमयत्वात् तासां चन्द्रकलाधारणत्वम्; ललितायास्तु तासां कलानां कारणभूतलयादि कलारूपत्वात् तस्याः तद्धारणं नास्ति। तथा –

मायां सप्ताक्षरीं मध्यगतैर्नामभिरर्चयेत्।
तदावरगाः शक्तीस्तत्समाकारहेतिकाः ॥
अग्रात् प्रदक्षिणेनैव ताः सर्वास्तेषु पूजयेत्।
तासां क्रमेण नामानि शृणु वक्ष्ये यथाविधि ॥
नित्यानित्यावदुदितमर्चनं चतुरस्रके।
ब्राह्म्यादि लोकपालाख्याः षोडश द्वारसंस्थिताः ॥
अनन्तब्रह्मनियतिकालरूपा विदिग्गताः।
अन्तःस्थिताऽष्टकोणेषु पूजयेदुक्तविग्रहाः।
जयां च विजया दुर्गा भद्रा भद्रकरीमपि।
क्षेमां क्षेमङ्करीं नित्यामष्टकोणेषु भक्तितः ॥
तदन्तः षोडशदलेष्वर्चयेत् षोडशाऽभितः।
शक्तीस्ताः गन्धपुष्पादियुतो भक्तिसमन्वितः ॥

विदारिकां वां विश्वमयां विश्वां विश्वविभञ्जिनीम् ।
वीरां विक्षोभिणीं विद्यां विनोदां वित्तविग्रहाम् ॥
वीतशोकां विषग्रीवां विपुलां विजयप्रदाम् ।
विभवां विविधां विप्रां प्रोक्ताकारसमन्विताः ॥
तदन्तरष्टपत्रेषु शक्तीरष्टाभितो यजेत् ।
प्रोक्तक्रमेण गन्धाद्यैः भक्तिनिष्ठाशयो वशी ॥
मनोहरां मङ्गलां च मदोत्सिक्तां मनस्विनीम् ।
मानिनीं मधुरां मायां मोहिनीं मुक्तविग्रहाः ॥
एवं पूजाजपध्यानहोमोद्वासनतो वशी ।
भजते नित्यशो देवीं योऽसौ स्यात् सर्वतो सुखी ॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वद्योगपीठन्यासाऽन्ते विजयाविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि अहि ऋषये नमः, हृदि विजयानित्यायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य, भां हृदयाय नमः, मीं शिरसे स्वाहा, रूं शिखायै वषट्, यैं कवचाय हुम्, औं नेत्रत्रयाय वौषट्, कुं अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं विधाय, श्रोत्रयोः भं नमः, सर्वाङ्गे मं नमः, नेत्रयो रं नमः, जिह्वायां यं नमः, नसि औं नमः, चित्ते ॐ नमः इति विन्यस्य, प्राग्वद् विजयाविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुरर्द्वार-युक्तं चतुरस्रद्वयं विधाय, तदन्तर्वृत्तयुग्मं, तदन्तरष्टकोणं, तदन्ततः षोडश-दलपद्मं, तदन्तरष्टदलपद्ममिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्य, अंभ्यर्च्य, अर्घ्याद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद् भुवनेश्वरी योगपीठमभ्यर्च्य, तस्मिन् विजयाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पोपचाराऽन्ते प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य, चतुरस्रस्य चतुर्द्वार-

पार्श्र्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्र्वमारभ्य, तद्वामपार्श्र्वान्तं प्रतिद्वारं द्वि-द्विक्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः प्रादक्षिण्येन ह्लीं श्रीं आं ब्राह्मी श्रीपादुकां पूजयामीत्यादिक्रमेण सम्पूज्य, पूर्वद्वारमारभ्य, प्रतिद्वारं द्वि-द्वि क्रमेण इन्द्रादीशानान्तं लोकपालशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य, वायव्यादिनिर्ऋत्यन्तं कोणचतुष्टये ह्लीं श्रीं अनन्तशक्तिपादुकां पूजयामि; एवं ब्रह्मशक्त० नियतिशक्ति० कालशक्ति० इति सम्पूज्य, अष्टकोणेषु देव्यग्रमारभ्य, प्रादक्षिण्येन ह्लीं जया श्रीपादुकां पूजयामि; एवं विजया० दुर्गा० भद्रा० भद्रकरी० क्षेमा० क्षेमकरी० नित्या० इति सम्पूज्य; षोडशदलेषु विदारिका० विश्वमयी० विश्वा० विश्वविभञ्जिका० वीरा० विक्षोभिणी० विद्या० विनोदा० वित्तविग्रहा० वीतशोका० विषग्रीवा० विपुला० विजयप्रदा० विभवा० विविधा० विप्रा० सम्पूज्य; अष्टदलकर्णिकायां देव्याः दक्षिणाऽधः करादि-वामाऽधः करान्तानि दशाऽऽयुध स्थानानि परिकल्प्य, ह्लीं मातुलुङ्गाय नमः, एवं सायकेभ्यो नमः, खड्ग० अङ्कुश० चक्र० शङ्ख० पाश० खेट० चाप० कह्लार० इति सम्पूज्य; पुनः मध्ये विजयानित्यां तद्विद्यया सम्पूज्य, धूपादिसर्वां प्राग्वत् समापयेत्। इति विजयानित्या पूजाविधिः।

॥अथ सर्वमङ्गला नित्या पूजाविधिः॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु या प्रोक्ता तु चतुर्दशी।
एकाक्षरा तु सा प्रोक्ता विद्या सा सर्वमङ्गला॥
न्यासक्रमं ध्यानविधिं शक्तीरावरणस्थिताः।
पूजां मन्त्रं साधनं च विनियोगादिकान् क्रमात्॥

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिश्चन्द्रो महेशानि गायत्री छन्द उच्यते।
देवतेयमिति ...." ॥ सर्वमङ्गला।

तन्त्रराजे –

“मूलविद्याऽक्षरैर्दीर्घस्वरैर्भिन्नैः षडङ्गकम् ।
तानि तत्स्वरभिन्नानि न्यसेत् षट्सु मनोऽवधि ॥
सुवर्णवर्णरुचिरां मुक्तामाणिक्यभूषणाम् ।
माणिक्यमुकुटां नेत्रद्वयप्रेङ्खद्-दयापराम् ॥
द्विभुजां स्वासनां पद्मे त्वष्ट षोडश तद्वयैः ।
पत्रैरुपेते सचतुर्द्वार-भू-सद्म-युग्मके ॥
मातुलुङ्गफलं दक्षे दधानां करपङ्कजे ।
वामेन निजभक्तानां प्रयच्छन्तीं धनादिकम् ॥
स्वसमानाऽभिरताभिः शक्तिभिः परिवारिताम् ।
षट्सप्ततिभिरन्याभिरक्षरोक्ताभिरन्विताम् ॥
प्रयोगेऽप्यन्यदा नित्यसपर्यासूक्तशक्तिकाम् ।
तच्छक्तीः शृणु देवेशि या नित्याऽऽवरणस्थिताः ॥
भद्रां भवानीं भव्यां च विशालाऽक्षीं शुचिस्मिताम् ।
ककुभां कमलां कल्पां पूजयेदष्टपत्रके ॥
कलां च पूरणीं नित्याममृतां जीवितोदयाम् ।
अशोकाममलां पूर्णां पुण्यां भाग्यामथोदिताम् ॥
विवेकां विभवां विश्वां विततां वाऽष्टयुग्मके॥
पूजयेदभितः शक्तीः प्रादक्षिण्यक्रमेण वै ॥
कामिनीं खेचरीं चर्यां पुराणां परमेश्वरीम् ।
गौरीं शिवाममेयां च विमलां विजयां पराम् ॥
पवित्रां पद्मिनीं विद्यां विश्वेशीं शिववल्लभाम् ।
अशेषरूपामानन्दामम्बुजाक्षीमनिन्दिताम् ॥

वरदां वाक्प्रदां वाणीं विविधां वेदविग्रहाम्।
वन्द्यां वागीश्वरीं सत्यां संयतां च सरस्वतीम्॥
निर्मलां नादरूपां च पूजयेत् षोडशद्वये।
प्राग्वद् गन्धादिभिः सर्वाः क्रमादन्वर्थसंज्ञका॥
ब्राह्म्याद्या लोकपालाख्याः शक्तीर्द्वारिषु पूजयेत्।
पश्चिमादिचतुर्दिक्षु चतस्रः प्रोक्तविग्रहाः॥
अनन्तब्रह्मनियतिकालरूपा विदिग्गताः।
बलिद्वयं च होमं च कुर्यात् प्राग्वत् समापनम्॥
जपं तु नित्यशः कुर्यादग्रे तस्याः सहस्रकम्"॥

॥ अथ प्रयोगः॥

तत्र प्राग्वद् योगपीठन्यासान्तं मङ्गलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि चन्द्राय ऋषये नमः, मुखे गायत्री छन्दसे नमः, हृदि सर्वमङ्गला-नित्यायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य, स्वां हृदयाय नमः, स्वीं शिरसे स्वाहा, स्वूं शिखायै वषट् स्वैं कवचाय हुम्, स्वौं नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वः अस्त्राय फट् इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा; श्रोत्रयोः स्वां नमः, सर्वाङ्गे स्वीं नमः, नेत्रयोः स्वीं नमः। जिह्वायां स्वैं नमः, नासायां स्वौं नमः, मनसि स्वः नमः इति विन्यस्य, समस्तविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादि मानसपूजान्ते प्राग्वत् स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा, तदन्तः द्वात्रिंशद् दलं तदन्तः षोडशदलं, तदन्तरष्टदलमिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ्याद्यात्मपूजान्ते भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तत्र सर्वमङ्गलाविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पोपचाराऽन्ते प्राग्वत् षडङ्गनि गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य कर्णिकायां देव्याः दक्षिणवामयोः ह्रीं श्रीं बीजापूराय नमः खड्गाय नमः। इति सम्पूज्य, अष्टदलेषु ह्रीं श्रीं भद्राश्रीपादुकां पूजयामि; एवं भवानी० भव्या० विशालाक्षी० शुचिस्मिता० ककुभा०

कमला० कल्पा० इति सम्पूज्य; षोडशदलेषु कला० पूरणी० नित्या० अमृता० जीविता० दया० अशोका० अमला० पूर्णा० पुण्या० भाग्या० उद्यता० विवेका० विभवा० विश्वा० वितता० इति सम्पूज्य; द्वात्रिंश-द्दलेषु कामिनी० खेचरी० आर्या० पुराणी० परमेश्वरी० गौरी० शिवा० अमेया० विमला० विजया० पवित्रा० पद्मिनी० विद्या० विश्वेशी० शिववल्लभा० अशेषरूपा० आनन्दा० अम्बुजाक्षी० अनिन्दिता० वरदा० वाक्प्रदा० वाणी० विविधा० वेदविग्रहा० वन्द्या० वाणेश्वरी० सत्या० संयता० सरस्वती० निर्मला० नादरूपा० इति सम्पूज्य, चतुरस्रस्य चतुर्द्वार-पार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य, तद्द्वारपार्श्वान्तं प्रतिद्वारं द्वि-द्वि क्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं ब्राह्मी श्रीपादुकां पूजयामि; एवं क्रमेण सम्पूज्य, पूर्वद्वारमारभ्य, पूर्वक्रमेण इन्द्रादीशानान्तं लोकपालेशक्त्यष्टकं प्राग्वत् सम्पूज्य, वायव्यादिनिर्ऋत्यन्तं कोणचतुष्टये ह्रीं श्रीं अनन्तशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि; एवं ब्रह्मशक्ति० नियतिशक्ति० कालशक्ति० इति सम्पूज्य; पुनः सर्वमङ्गलाविद्यया मध्ये तां सम्पूज्य, धूपादिकं सर्वं प्राग्वत् कृत्वा, समापयेत्। इति सर्वमङ्गलापूजाविधिः।

॥ अथ ज्वालामालिनी पूजाविधिः ॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु पञ्चदश्युदिता तु या।
तद्विधानं शृणु प्राज्ञे ज्वालामालिन्युदाहृता॥
न्यासः ध्यानं ततः शक्तीः पूजामपि च साधनम्"॥

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिस्तु कश्यपः छन्दो गायत्रं देवता त्वियम्।
रेफास्त्रे बीजशक्ती तु कीलकं कवचं (कूर्चबीजं) प्रिये"॥

इयं = ज्वालामालिनी।

एक-द्वय-चतुःपञ्च-चतुष्टय-दशाऽक्षरैः।
कुर्यादङ्गानि मूलार्णैः आदितः षट् कराऽङ्गयोः॥
ज्वलज्ज्वलनसङ्काशां माणिक्यमुकुटोज्ज्वलाम्।
षड्वक्त्रां द्वादशभुजां सर्वाभरणभूषिताम्॥
पाशाऽङ्कुशौ खेटखड्गौ चापबाणौ गदाक्षरौ॥
शूलवह्नी वराभीतिदधानां करपङ्कजौ॥
स्वसमानाभिरभितः शक्तिभिः परिवारिताम्।
चारुस्मितलसद्वक्त्रसरोजां त्रीक्षणान्विताम्॥
ध्यात्वैवमुपचारैस्तैरर्चयेत् तां तु नित्यशः।
चतुरस्रद्वयं कृत्वा चतुर्द्वारसमन्वितम्॥
सशाखमष्टपत्राब्जमन्तरष्टास्रकं ततः।
षट्कोणं मध्यतस्त्र्यस्रं विधायात्र शिवं यजेत्॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीरर्चयेत् त्र्यस्रगाः क्रमात्।
डाकिन्याद्यश्च षट्कोणे त्वष्टास्रेऽष्टस्मरादिकाः॥
घस्मरा विश्वकवला लक्ष्मी लोलजिह्वका।
सर्वभक्षा सहस्राक्षी निःसङ्गा संहतिप्रिया॥
बहिरष्टच्छदेऽप्येताः पूजयेच्च प्रदक्षिणम्।
अचिन्त्या सप्रमेयं च पूर्णरूपां दुरासदाम्॥
सर्वां संसिद्धिरूपां च पावनामेकरूपिणीम्।
बहिर्द्वारेषु कोणेषु पूजयेत् प्रागुदीरिताः॥
प्राग्वत्कृताऽर्घ्यश्चक्रे तामुक्तां प्रोक्तक्रमां यजेत्।
बलिहोमावसानान्तमिति सम्यक् समीरिता॥

॥ अथ प्रयोगः ॥

तत्र प्राग्वत् योगपीठन्यासाऽन्ते ज्वालामालिनीविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि कश्यपाय ऋषये नमः, मुखे गायत्री छन्दसे नमः, हृदि ज्वालामालिनी नित्यायै देवतायै नमः, रं बीजाय नमः, फट् शक्तये नमः, हुं कीलकाय नमः, प्राग्वद् विन्यस्य, मम सर्वार्थसिद्धये विनियोगः; इति कृताञ्जलिरुक्त्वा; ॐ हृदयाय नमः; नमः शिरसे स्वाहा, भगवति शिखायै वषट् ज्वालामालिनि कवचाय हुम्, देवदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्, सर्वभूतसंहारकारिके अस्त्राय फट् इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, ज्वालामालिनीविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारोपेतं चतुरस्रद्वयं कृत्वा, तदन्तरष्ट-पत्राब्जं, तदन्तरष्टकोणं, तदन्तः षट्कोणं, तदन्तस्त्रिकोणमिति पूजाचक्रं निर्माय, प्राग्वत् पुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ्याद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद् भुवनेश्वरीपीठमभ्यर्च्य, तस्मिन् ज्वालामालिनीविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षडङ्गानि गुरुपङ्क्तित्रयं च सम्पूज्य, त्रिकोणषट्कोणयोरन्तराले देव्याः दक्षिणाधःकरादिवामाधःकरान्तानि द्वादशायुधस्थानानि परिकल्प्य, ह्रीं श्रीं अमीत्यै नमः, ह्रीं श्रीं वह्न्यै नमः; एवं शङ्खाय० बाणेभ्यो खड्गाय० अङ्कुशाय पाशाय० खेटाय० गदायै० शूलाय० वराय० इति सम्पूज्य; त्रिकोणे ह्रीं श्रीं इच्छाशक्तिपा० एवं ज्ञानशक्ति० क्रियाशक्ति०; ततः षट्कोणे देव्या वामाग्रकोणे ह्रीं श्रीं डाकिनी०, एवं दक्षिणाग्रकोणे राकिनी०; पृष्ठकोणे लाकिनी०, पृष्ठवामकोणे काकिनी०, पृष्ठदक्षे शाकिनी०, देव्यग्रकोणे हाकिनी इति सम्पूज्य अष्टकोणे घस्मरा० विश्वकवला० लोलाक्षी० लोलजिह्वा० सर्वभक्षा० सहस्राक्षी० निःसङ्गा० संहृतिप्रिया० इति सम्पूज्य; अष्टदले अचिन्त्या० अप्रमेया० पूर्णरूपा० दुरासदा० सर्वसंसिद्धिरूपा० पावना०

एकरूपिणी० इति सम्पूज्य; चतुरस्रस्य चतुर्द्वारपार्श्वेषु देव्यग्रद्वारस्य दक्षिणपार्श्वमारभ्य, तद्वामपार्श्वान्तं प्रतिद्वारं द्वि-द्वि-क्रमेण ब्राह्म्याद्यष्टशक्तीः प्रादक्षिण्येन सम्पूज्य, पूर्वद्वारमारभ्य, पूर्वक्रमेण इन्द्रादीशानान्तं प्राग्वत् लोकपालशक्त्यष्टकं सम्पूज्य, वायव्यादि-निर्ऋत्यन्तकोणचतुष्टये प्राग्वदनन्तशक्ति० ब्रह्मशक्ति० नियतिशक्ति० कालशक्ति० इति सम्पूज्य; पुनः ज्वालामालिनीविद्यया मध्ये तां सम्पूज्य; धूपदीपादिकं सर्वं प्राग्वत् कृत्वा, समापयेत्। इति ज्वालामालिनीपूजाविधिः।

॥ अथ चित्रानित्या पूजाविधिः ॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"अथ षोडशनित्यासु या चित्रा षोडशी शिवे।
प्रोक्ता तत्कल्पमधुना शृणु सर्वाऽर्थसिद्धिदम् ॥
विद्या प्रागेव कथिता तदङ्गन्याससंयुता।
ध्यानं शक्तिः पूजनं चेति ...." ॥

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

"ऋषिर्ब्रह्माऽस्य गायत्री छन्द .... उच्यते।
विचित्रा देवता .... ॥ इति।

तन्त्रराजे –

"विद्यादिवायुना कुर्याद् दीर्घस्वरयुजा क्रमात्।
षडङ्गानि यथापूर्वं मातृकां विद्यया न्यसेत् ॥
उद्यदाऽऽदित्यबिम्बाभां नवरत्नविभूषणाम्।
नवरत्नकीरीटां च चित्रपट्टांशुकोज्वलाम् ॥

चतुर्भजां त्रिनयनां शुचिस्मितलसन्मुखीम्।
सर्वानन्दमयीं नित्यां समस्तेप्सितदायिनीम्॥
चतुर्भुजां भुजैः पाशमङ्कुशं वरदाभये।
दधानां मङ्गलां पद्मकर्णिकानवयोनिकाम्॥

अत्रायुधध्यानं वामोर्ध्वादिवामदक्षिणक्रमेण।

तच्छक्तिभिश्च तच्चक्रे तथैवार्चनमीरितम्।
नवयोनावष्टवर्गयुता ब्राह्म्यादिका यजेत्॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिरर्चयेत् मध्यकोणतः।
हेतीश्च परितो देव्याः पूजयेत् तद्भुजान्तिके॥
सर्वासामपि नित्यानां नाथान् देव्यास्तु पश्चिमे।
पूजयेत् तत्तदाऽऽकाराँस्तत्तन्मन्त्रैर्यथाविधि॥
गुरुमण्डलपूजादिसाधारणमुदीरितम्।
सर्वासामपि नित्यानां यदाद्यंशोदया इमाः''॥

॥अथ प्रयोगः॥

तत्र योगपीठन्यासान्ते चित्राविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, शिरसि ब्रह्मऋषये नमः, मुखे गायत्री छन्दसे नमः, हृदि विचित्रनित्यायै देवतायै नमः, इति विन्यस्य; चां हृदयाय नमः चीं शिरसे स्वाहा, चूं शिखायै वषट्, चैं कवचाय हुम्, चौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चः अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासं कृत्वा, च कौं अं नमः, इत्यादि च कौं क्षं नमः इत्यन्तं मातृकां विन्यस्य, चित्राविद्यया व्यापकं विधाय, ध्यानादिमानसपूजान्ते स्वर्णादिपट्टे कुङ्कुमादिना चतुर्द्वारयुक्तचतुरस्रद्वयं कृत्वा, तदन्तर्द्वात्रिंशद्दलपद्मम्, तदन्तः षोडशदलं, तदन्तरष्टदलं,

तदन्तर्नवयोनिमिति पूजाचक्रं निर्माय, पुरतः संस्थाप्य, अभ्यर्च्य, अर्घ्याद्यात्मपूजान्ते प्राग्वद् भुवनेष्वरीपीठमभ्यर्च्य, तस्मिन् चित्राविद्यया मूर्तिं परिकल्प्य, आवाहनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् त्रिकोणाष्टकोणयोरन्तराले षडङ्गानि देव्याः पृष्ठभागस्य अन्तराले गुरुपङ्क्तित्रयं सम्पूज्य, त्रिकोणाष्टकोणयोरन्तरालेष्वेव दक्षिणवामयोश्चतुर्षु स्थानेषु ह्रीं श्रीं अभयाय नमः; एवमङ्कुशाय नमः, पाशाय नमः, वराय नमः इति सम्पूज्य, अन्तस्त्रिकोणे देव्यग्रादि प्रादक्षिण्येन ह्रीं श्रीं इच्छाशक्ति० ह्रीं, श्रीं एवं ज्ञानशक्ति० क्रियाशक्ति० इति सम्पूज्य, अष्टयोनिषु ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ब्राह्मी श्रीपादुकां पूजयामि; ह्रीं श्रीं कं माहेश्वरी श्रीपा० ४ कौमारीश्री पा० ।२८४। वैष्णवी श्री पा०, २ तं वाराही श्री पा०, पं ४ इन्द्राणी श्री पा०, २ यं ४ चामुण्डा श्रीपा०, षं ४ महालक्ष्मी श्री, इति सम्पूज्य, अष्टदलादिषु सर्वमङ्गलापूजोक्तशक्तीः सम्पूज्य, तथैव सर्वं समापयेत् । इति विचित्रानित्यापूजाविधिः ।

॥ अथ इडा नित्यापूजाविधिः ॥

नित्यादिषट्धातुदेवतानां पूजाविधिर्लिख्यते । तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"भूमौ विधाय षट्कोणसप्तकं प्रोक्तदिक्क्रमात् ।
मध्ये च तत्र तां नित्यानित्यां गन्धादिभिर्यजेत् ॥
अभितस्तत्षडस्रेषु तत्षट्कां तत्क्रमात् यजेत् ।
बाह्येष्वपि च ताः प्राग्वत् प्रोक्तवर्णाः समर्चयेत् ॥
तासां तत्षट्कमपि तथा षट्सु कोणेषु शक्तयः ।
षट्त्रिंशत्ताः समादेव्याः सर्वारूपायुधादिभिः ॥

प्राग्वत् स्वराणां पञ्च स्युरपूर्वाः कादि-मान्तकाः।
परेषु य-व-ल-क्षाऽर्ण-रहितैस्तैस्तथार्चयेत्॥
तेषामपि च चक्राणां शक्तीनां च विलोमतः।
पूजा निग्रहसंज्ञा स्यात् सा शत्रूणां विपत्तये॥

॥अथ प्रयोगः॥

तत्र क्वचित् सुसमे सुसंवृत्ते गोमयोपलिप्ते पशुदृष्टिरहिते प्राग्वदासनपूजादियोगपीठन्यासान्ते नित्यानित्याविद्योक्तविधिना प्राणायामादि-मानसपूजान्तं कृत्वा, स्वपुरतः क्वचिद्बिन्दुं कृत्वा, तदवष्टम्भतः परितश्चतुर्विंशाङ्गुलमानभ्रमात् वृत्ते निष्पाद्य, तन्मध्ये प्राक् प्रत्यगायतं ब्रह्मसूत्रमास्फाल्य, तद् ब्रह्मसूत्रस्यार्द्धमानेन, तस्मिन् वृत्ते ब्रह्मसूत्रस्य पूर्वाग्रादितः पश्चिमाग्रादि तद्दक्षिणभागे चिह्नद्वयमिति सम्भूय चिह्न-चतुष्टयं कृत्वा, चिह्नाच्चिह्नं दक्षिणोत्तरपर्यन्तं तिर्यक्सूत्रद्वयमास्फाल्य, पश्चिमतिर्यक् सूत्राग्रद्वयमारभ्य, ब्रह्मसूत्रस्य पूर्वाग्रावधि सूत्रद्वयं विन्यस्य, पुनः पूर्वतिर्यक्सूत्रस्य कोटिद्वयमारभ्य, ब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रान्तं सूत्रद्वयं विन्यस्य, षट्कोणं कृत्वा, तस्मिन् षट्कोणे आग्नेयादि वायुकोणाऽन्तमीशानादिनिर्ऋतिकोणान्तं च कर्णसूत्रद्वयं विन्यस्य, पूर्वकृत-ब्रह्मसूत्रसमेतानि त्रीण्यपि सूत्राणि प्रत्येकं त्रिधा विभज्य, चिह्नानि कृत्वा, पश्चिम-वायव्य-ईशान्य-पूर्व-आग्नेय-निर्ऋति(दिग्)गतेषु षट्सु ब्रह्मसूत्रतृतीयांशस्थानेषु मध्ये च तत्र द्विद्व्यंश मानसूत्रभ्रमेण वृत्तसप्तकं कृत्वा, ब्रह्मसूत्रत्रयं प्रत्येकं चतुर्विंशतिधा-चतुर्विंशतिधा विभज्य, मध्यवृत्तमध्यगतबिन्दुमारभ्य, परितः षट्सु वृत्तेषु दशमांश-दशमांशस्थानेषु तत्तन्मध्यगतब्रह्मसूत्रे चिह्नानि कृत्वा, पूनर्मध्यवृत्तस्य वायव्यवृत्तस्य च मध्यादितः आग्नेयकोणगतवृत्ते ब्रह्मसूत्रे प्राग्वत् दशमांऽशे चिह्नं

कृत्वा, तथैव आग्नेयवृत्तमध्यान्तयोरन्तरालादितो वायव्यवृत्तमध्यगत-ब्रह्मसूत्रे दशमांशे चिह्नं कृत्वा, तथैवेशान-निर्ऋतिकोणगतवृत्तयोरप्युक्त-युक्त्या प्रतिवृत्तं चिह्नद्वयं विधाय, तथैव प्राक्-प्रत्यगायतब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रादितः पूर्वाग्रादितश्च प्राग्वद् दशमांशे चिह्नद्वयं विधाय, सप्तसु वृत्तेष्वपि चिह्ने-चिह्ने प्रतिवृत्तं तिर्यग्रेखाद्वयं कृत्वा, तेषु प्रागुक्तयुक्त्या षट्कोणसप्तकं निष्पाद्य, तेषु प्रतिषट्कोणं, मध्ये त्रिकोणेषु च वृत्तानि कृत्वा, ब्रह्मसूत्राणि मार्जयेदिति पूजाचक्रमुद्धृत्य, तन्मध्ये नित्याविद्यया पुष्पाञ्जलिं निक्षिप्य, नित्यानित्याविद्ययाऽर्घस्थापनाद्यात्म-पूजाऽन्तं कृत्वा, मध्यषट्कोणे प्रागुक्त-नित्या-नित्यापूजोक्तविधिना पीठपूजादिपुष्पोपचारान्ते तन्त्रोक्तविधिना डाकिन्यादिषट्कं सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्वा, वक्ष्यमाणनैवेद्यषट्कं निवेद्य, ताम्बूलादिसर्वं प्राग्वत् कृत्वा, निर्ऋतिकोणस्थषट्कोणे धूम्रवर्णे मध्ये डाकिनीमावाह्य, धूम्रवर्णां नित्या-नित्या-समानमुख-भुजायुधादियुतां ध्यात्वा, डां डीमित्यादि षडङ्गमन्त्रैर्जातियुक्तैः षडङ्गन्यासयोगेन सकलीकृत्य, तस्याः प्राणप्रतिष्ठां विदध्याद्; एवमुत्तरत्रापि राकिन्यादिनामाद्यक्षरैः षड्दीर्घजातियुक्तैस्तासां सकलीकरणे प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।

ततः ह्यभिमुखीमासनादिपुष्पान्तैरुपचारैरभ्यर्च्य तदावरण-शक्तीश्च निर्ऋतिकोणे ह्रीं श्रीं अ शक्तिपादुकां पूजयामि; एवं वायव्य-कोणे क शक्ति पा०, पूर्वकोणे २ ख शक्ति०, आग्नेयकोणे ग शक्ति०, ईशानकोणे च शक्ति०, पश्चिमकोणे ड शक्तिपा० इति सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्वा, पायसान्नं निवेद्य, ताम्बूलादिप्रणामान्तैरुपचारैः परितोष्य, वायव्यस्य षट्कोणे सिन्दूरवर्णे राकिनीमावाह्य, सिन्दूरवर्णां नित्यानित्या-समानमुखभुजादियुतां ध्यात्वा, आसानादिपुष्पोपचारान्ते राकिन्या, वामाग्रे दक्षिणाग्रपृष्ठपृष्ठे वामदक्षिणसम्मुखस्थेषु षट्सु कोणेषु ह्रीं श्रीं इ

शक्ति पा०; एवं च शक्ति० छ शक्ति० ज शक्ति० झ शक्ति० ञ शक्ति० इति सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्वा, गुडोदनं निवेद्य, ताम्बूलादि प्राग्वत् कल्पयेत्।

॥ लाकिनी ॥

ततः पूर्वदिग्गतषट्कोणे नीलवर्णे लाकिनीमावाह्य, प्राग्वन्मुखभुजादि-युतां ध्यात्वा, आसनादि पुष्पोपचारान्तैः प्रोक्तरीत्या षट्कोणेषु २ ट शक्ति० ठ शक्ति० ठ शक्ति० ड शक्ति० ढ शक्ति० ण शक्ति० इति सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्वा, मुद्गोदनं निवेद्य, शेषं प्राग्वत् कुर्यात्।

॥ काकिनी ॥

अथ आग्नेयस्थ-षट्कोणे उद्यदाऽऽदित्यवर्णे तादृशीं काकिनी-माऽऽवाह्य, प्राग्वद् ध्यात्वा, आसनादिपुष्पोपचारान्ते प्राग्वत् षट्सु कोणेषु ह्रीं श्रीं अ-शक्ति पा० २ त-शक्ति०, थ-शक्ति०, द-शक्ति० षट्कोणे हेमवर्णीं, तत्र **साकिनी**मावाह्य, स्वर्णवर्णां ध्यात्वा, आसनादिपुष्पोपचारान्ते २ अः-शक्तिपा०, प-शक्ति, फ-शक्ति०, ब-शक्ति० भ-शक्ति०, म-शक्ति०, इति सम्पूज्य, तिलमिश्रं अन्नं निवेद्य, शेषं प्राग्वत् कुर्यात्।

॥ हाकिनी ॥

अथ पश्चिमषट्कोणे शुभ्रवर्णे हाकिनीमावाह्य, प्राग्वद् भुजादियुतां शुभ्रवर्णां ध्यात्वा, आसानादिपुष्पोपचारान्ते र-शक्तिपा०, ल-शक्ति०, श-शक्ति०, ष-शक्ति०, स-शक्ति०, ह-शक्ति०, इति सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्वा, शुद्धान्नं निवेद्य, ताम्बूलादिप्राग्वत् कल्पयेत्।

ततो नित्या-नित्यां प्राग्वत् तद्विद्यया सम्पूज्य, धूपदीपौ दत्वा, स्तुतिप्रणामादिभिः परितोष्य, डाकिन्याद्याः सावरणाः तस्यां संयोज्य, तां च स्वहृद्युद्वास्य तन्मयः सुखं विहरेदिति।

इयमनुग्रहपूजावश्यादिशुभकाम्यकर्मसु ज्ञेया; निग्रहादिक्रूरकर्मसु तु प्रोक्तषट्कोणसप्तके हाकिन्यादिनित्यानित्यान्ताः विलोमेन तत्तदावरण-

शक्तीश्च विलोमेन सम्पूज्य, क्रूररूपां ध्यायन् स्ववैरिनक्षत्रयोनिरक्त-सम्पादितचरुणा नैवेद्यं कल्पयित्वा, स्ववैरिणां शरीराणीव ताभ्यो निवेद्य, क्रुद्धाभिस्ताभिः तच्छरीराणि छित्वा छित्वा पिशाचेभ्यो विभज्य, दत्तानि; तैश्च वक्ष्यमाणानि ध्यायेदिति धातुदेवतापूजाविधिः।

॥अथ पञ्चाशन्मिथुनपूजा॥

तत्र श्रीतन्त्रराजे –

"आदिक्षान्ताक्षरैः प्राग्वद्रूपिणीशक्तिसंयुतैः।
बीजद्वयाद्यैः सप्ताक्षर्यन्तैः पञ्चदशाक्षरैः॥
पञ्चाशच्छक्तयः पूज्याः पञ्चाशत्क्षेत्रपालकैः।
तेषां बीजद्वयं वर्ण-रूप-क्षेत्रेशसंयुताः॥
सप्ताक्षर्या च संयुक्ता मन्त्राः पञ्चदशाक्षराः।
चतुःषष्टीपदे मध्यचतुष्के दिनविद्यया॥
मनीषितं समालिख्य तेषु तन्मिथुनानि वै।
घटिकाक्रमयोगेन हृन्माया मध्यगेऽर्चयेत्॥
दिनेषु घटिका योगात् पञ्चाशन्मिथुनान्यपि।
एवं मण्डलमासार्द्धात् प्राप्नोत्येवाभिवाञ्छितम्॥
नित्यशस्ताः समावाह्य तस्मिँश्चक्रे समर्चनात्।
समस्तवाञ्छितप्राप्तिः सदा भवति सर्वतः"॥

आदिक्षान्तेत्यादि .... सर्वतः" इत्यन्तस्य श्लोकषट्-कस्याऽयमर्थः –

तत्र प्राग्वत् शुभे स्थाने समान्तरालानि नव सूत्राणि प्राक्-प्रत्यक्दक्षिणोदक्-क्वचिद्विन्यस्य, चतुःषष्टिपदोपेतं चतुरस्रं चक्रं कृत्वा, तस्मिँश्चक्रे, मध्यकोष्ठचतुष्कमेकीकृत्य, तत्र तद्दिननित्याविद्याक्षराणि

स्वाभिमतप्रार्थनं मध्यमे आलिख्य, तदनन्तरं बाह्याधः पङ्क्ति-मध्यद्वये दक्षिणं कोष्ठमारभ्य, प्रादक्षिण्यक्रमेण उक्तक्रमं निर्गमगत्या चक्रवाम-पङ्क्त्यधः कोष्ठावधि षष्टिकोष्ठेषु तद्दिनोदयाक्षरादीनि मातृकायाः पञ्चाशदक्षराणि विसर्गस्वररहितानि स्लां इति बीजमध्यगतानि विलिख्य, अवशिष्टेषु दशसु कोष्ठेषु, पुनरप्युदयाक्षरादीनि दशाक्षराणि समालिख्य, तेषु लिखितक्रमेण उदयाक्षरादिषु षष्टिघटिकासु तत्तद्घटिकामिथुनं षोडशभिरुपचारैरभ्यर्च्य, तत्फलमवाप्नुयात्।

अत्र पूजामन्त्रास्तु ह्रीं श्रीं अ-रूपिणी शक्तिपादुकां पूजयामि; इत्यादि शक्तिविद्यापञ्चाशत् ह्रीं श्रीं अ-रूपक्षेत्रेशपादुकां पूजयामि इत्यादयः। क्षेत्रेशमन्त्राः पञ्चाशत्। इत्येवं पञ्चदशाऽक्षराणि काभिः (ताभिः) विद्याभिः पञ्चदशाक्षरैर्मन्त्रैश्च तानि मिथुनानि प्रोक्तक्रमेण पूजयेत्।

काम्यकर्माङ्गत्वेन पूजायां तु घटिकापारायणवदुदयाऽक्षरादीनि षष्टिमिथुनानि यथाक्रममेकैकशस्त्वविलम्बेन पूजयेत्। प्रतिघटिकापूजनस्य तदेककाम्यकर्मविषयत्वात्। इति पञ्चाशन्मिथुनपूजा।

॥ अथ मुद्राः ॥

तास्तु अङ्कुश-कुम्भ-अग्निप्राकार-ऋष्यादिकरषडङ्ग – सौभाग्यदण्डिनी-रिपुजिह्वाहागालिनी-धेनु-शङ्ख-योनि-मत्स्य-आवाहनादि नव – सङ्क्षोभणादि-चतुर्दश-पद्म-स्वागत-कुशलप्रश्न-अर्घ-पाद्याचमनीय-मधुपर्क-स्नान-वसनाऽऽ-भरणगन्धादि पञ्च; चक्रग्रासप्राणादिपञ्च, सप्तजिह्वा बलिपञ्चक; नीराजन-नमस्कारागदायुःशक्तिताशनि-खड्गाख्या चेति सम्भूय सप्तति मुद्राः।

॥ अथैतासां लक्षणानि ॥

तत्र नारदपाञ्चरात्रे –

"दक्षाऽङ्गुष्ठं पराङ्गुष्ठे क्षिप्त्वा हस्तद्वयेन च।
सावकाशं त्वेकमुष्टिं कुर्यात् कुम्भाख्यमुद्रिका" ॥

प्रयोगसारे –

“त्रिशूलाग्नौ करो कृत्वा व्यत्यस्तावभितो यजेत् ।
अस्त्रमुद्रेयमाख्याता वह्निप्राकारलक्षणा” ॥

सारसङ्ग्रहे –

“ऋषिश्छन्दो-देवतानां अङ्गुष्ठेनाऽचरेत् न्यासम् ।
.... अन्याऽङ्गुलिसमाश्रयम् ॥
अङ्गुष्ठं विरचयन् न्यासं तर्जनी शिरसैव हि” ।

दक्षिणामूर्तिसंहितायाम् –

कनिष्ठाऽङ्गुष्ठरहितैस्त्रिभिस्तु हृदि विन्यसेत् ।
मध्यमानामिकाभ्यां तु न्यसेच्छिरसि मन्त्रवित् ॥
शिखाङ्गुष्ठेन विन्यस्य, दशभिः कवचं न्यसेत् ।
हृद्गतैर्नेत्रविन्यासं विन्यसेत् परमेश्वरि ॥
तर्जनीमध्यमाभ्यां तु ततोऽस्त्रं विन्यसेत् प्रिये ।
मुष्टिं कृत्वोच्चलेन्मन्त्री तर्जनीदण्डवत् तदा ॥
सौभाग्यदण्डिनीनाम रिपून् दण्डयते क्षणात् ।
अङ्गुष्ठं मुष्टिगं कुर्याद् रिपुजिह्वाग्रहा भवेत् ॥

मन्त्रतन्त्रप्रकाशे –

“कनिष्ठाऽङ्गुष्ठकौ लसत् करयोरितरेतरम् ।
तर्जनीमध्यमाऽनामाः संहताः भुग्नवर्जिताः ॥
मुद्रैषा गालिनी प्रोक्ता शङ्खस्योपरि चालिता” ।

लक्षणसङ्ग्रहे –

वामाङ्गुष्ठं तु सङ्गृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना।
कृत्वोत्तानं तथा मुष्टिमङ्गुष्ठं तु प्रसारयेत्॥
वामाङ्गुल्यस्तथा श्लिष्टाः संयुक्ताः सम्प्रसारिताः।
दक्षिणाऽङ्गुष्ठसंस्पृष्टाः मुद्रैषा शङ्खसंज्ञिता॥

तथा –

अधोमुखे वामहस्ते तादृशं दक्षहस्तकम्।
विन्यस्याऽङ्गुष्ठयुग्मं तु पार्श्वयोः सम्प्रसार्य च॥
दर्शयेदर्घपात्रे तु मत्स्य-मुद्रेयमीरिता"।

यज्ञवाहिन्याम् –

"अजल्पानामातर्जन्याख्यकनिष्ठाख्याग्रयोगतः।
मुद्रेयं त्रिशिखा प्रोक्ता ...."॥ इति।

लक्षणसङ्ग्रहे –

"हस्ताभ्यामञ्जलिं बध्वाऽऽनामिकामूलपर्वणोः।
अङ्गुष्ठौ निःक्षिपेत् सेयं मुद्रा त्वावाहनी स्मृता॥
अधोमुखा त्वियं चेत्तु स्थापिनीति निगद्यते।
उच्छ्रिताङ्गुष्ठमुष्ट्योस्तु संयोगात् सन्निधापनी॥
अन्तःप्रवेशिताऽङ्गुष्ठा सैव संरोधिनी मता।
उत्तानमुष्टियुगलं सम्मुखीकरणा भवेत्॥
देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात् सकलीकृतिः।
सव्य-हस्त-कृता-मुष्टिर्दीर्घाऽधो-मुखतर्जनी॥
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रमिता मता।
अन्योऽन्याभिमुखाश्लिष्टाः कनिष्ठानामिकाः पुनः॥

तथैव तर्जनीमध्याद्‌ धेनुमुद्रेयमीरिता ।
अमृतीकरणं कुर्यात्‌ तथा साधकसत्तमः ॥
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुलिः ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे प्रिये ॥
प्रयोजयेदिमां मुद्रां देवताह्वानकर्मणि'' ॥

तन्त्रराजे –

''पुटाञ्जली करौ कृत्वा व्यत्यस्य तदनामिके ।
तन्नखे तर्जनीग्रस्ते त्रिखण्डा ललितावहा ॥
कनिष्ठानामिकामध्या तत्स्वरेऽन्योन्यसङ्गता ।
कृत्वाऽङ्गुष्ठौ कनिष्ठास्थौ ऋजूकुर्याच्च तर्जनी ॥
सर्वसङ्क्षोभणी मुद्रा त्रैलोक्यक्षोभकारिणी ।
एतस्या मध्यमे देवि तर्जनीवत्‌ कृते सति ॥
सर्वविद्राविणी मुद्रा सर्वासामपि योषिताम्‌ ।
द्वाभ्यामङ्कुशरूपाभ्यां संश्लिष्टाकर्षणा मता ॥
परिवृत्ताङ्गुलीः कृत्वा नखाश्लिष्टतलौ करौ ।
अङ्गुष्ठौ तर्जनीश्लिष्टौ नखैरावेशकारिणी ॥
कराग्रे प्रसृते कृत्वा व्यत्यस्येत्‌ तत्कनिष्ठकैः ।
तदग्राश्लेषतो भुग्ने मध्यमेऽनामिके ऋजू ॥
तन्नखस्थे तु तर्जन्यावङ्गुष्ठौ मध्यमोपरि ।
इयमुन्मादिनी मुद्रा सर्वोन्मादनकारिणी ॥
आयस्तानामिके भुग्ने तर्जन्यावङ्कुशाकृतिः ।
एषा महाङ्कुशा मुद्रा स्तम्भनाकर्षकारिणी ॥

सव्यदक्षकरौ सम्यक् व्यत्यस्येत् कूर्परौ ततः।
मणिबन्धौ च बध्नीयादञ्जलिमध्यपृष्ठयोः॥
विधाय भुग्ने तर्जन्या अङ्गुष्ठौ कारयेदधः।
कनिष्ठानामिके कुर्यात् व्यत्यस्ते करपृष्ठगे॥
इयं सा खेचरी मुद्रा ललिताप्रीतिकारिणी।
आस्यां विरचनेनैव सर्वाः सिद्ध्यन्ति देवताः॥

अस्यां मुद्रायामीषद् भेदः उक्तः वामकेश्वरतन्त्रे –

सव्यं दक्षिणदेशे तु दक्षिणं सव्यदेशतः।
बाहुं कृत्वा महादेवि हस्तौ सम्परिवर्त्य च॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्तानेन क्रमेण तु।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोच्चमपि मध्यमे॥
अङ्गुष्ठौ तु महेशानि कारयेत् सरलावपि।
इयं सा खेचरी नाम्ना मुद्रा सर्वोत्तमा प्रिये॥
रचितैव महेशानि सर्वतेजोपहारिणी।
बद्धयैवैतया देवि दृश्यते साधकोत्तमः॥
योगिनी सर्ववृन्दैस्तु ज्वलत्पावकसन्निभाः।
डाकिनी राकिनी वृन्दैर्लाकिनी काकिनी गणैः॥
साकिनी हाकिनी वृन्दैर्दृश्यते परमेश्वरि।
एतया ज्ञातया देवि योगिनीनां भवेत्प्रियः॥
अतः समयमुद्रेयं सर्वासां परिकीर्तिता।
प्रयताप्रयतौ वापि शुचौ देशेऽथवा शुचौ॥

उच्छ्रितश्चोपविष्टश्च चङ्क्रमे निश्चलोऽपि वा ।
उच्छिष्टो वा शुचिर्भूत्वा भुञ्जानो मैथुने रतः ॥
मुद्रया मध्यमाङ्गुल्योपरिवर्त्ये क्रमेण तु ।
पार्थिवस्थानके युक्ता सद्यः खेचरतां लभेत्'' ॥ इति ।

तन्त्रराजे –

''मध्यमामध्यपार्श्वाऽधः कनिष्ठाग्रे विपर्ययात् ।
अनामिकेऽधो-व्यत्यस्ते तर्जन्यावङ्कुशाकृती ॥
इतरे तं नखाग्राग्रे बीज-मुद्रेयमीरिता ।
कनिष्ठाऽङ्गुष्ठसंश्लेषात् महायोनिस्त्रिखण्डिका ॥
कनिष्ठानामिकामध्याः व्यत्यस्ताः पृष्ठतः क्रमात् ।
वलितामूर्द्ध्वयोगेन ऋजु तर्जनिकौ करौ ॥
शक्त्युच्छ्रायनमुद्रैषा जपपूजासमाधिषु ।
मूर्तीकरणमेतस्याः रचनेन समीरिता ॥
बाणकोदण्डमुद्रा स्यात् ऋज्वङ्गुष्ठेन मुष्टिना ।
पाशमुद्रा तु तेनैव तर्जन्यङ्गुष्ठयोगतः ॥
कनिष्ठामध्ययोः पृष्ठे स्यादङ्गुष्ठस्तु तर्जनी।
कुटिलाऋजुमध्यस्था मुद्राऽसावङ्कुशाभिधा ॥
खेचर्या वक्ष्यमाणाया मध्यमे करपृष्ठगे ।
तर्जन्यौ ऋजुसंश्लिष्टे मुद्रैषोक्ता नमस्कृतौ'' ॥

लक्षणसङ्ग्रहे –

''हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संहतावुन्नताङ्गुली ।
तलान्तर्मिलिताङ्गुष्ठौ मुद्रैषा पद्मसंज्ञिता ॥

ज्येष्ठाग्रेण कनिष्ठाग्रं स्पृशेद्गन्धस्य मुद्रिका ॥
अधोमुखं करं कृत्वा तर्जन्यग्रे तु योजयेत् ॥
अङ्गुष्ठाग्रं तु मुद्रैषा पुष्पाख्या परमेश्वरि ।
अङ्गुष्ठाग्रेण तर्जन्या स्पृशेदग्रं महेश्वरि ॥
धूपमुद्रेयमाख्याता सर्वदेवप्रियङ्करी ।
ज्येष्ठाग्रेण स्पृशेदग्रं मध्यमायाः सुरार्चिते ॥
दीपमुद्रेयमुद्दगीता सर्वदेवप्रिया शिवे ।
अनामाग्रं स्पृशेद् देवि ज्येष्ठाग्रेण तु देशिकः ॥
नैवेद्यमुद्रा कथिता देवानां प्रीतिदायिनी"।

नारदपञ्चरात्रे –

"विपर्यस्ते तले कृत्वा वामदक्षिणहस्तयोः ।
अङ्गुष्ठाग्रद्वये चैव कनिष्ठानामिकान्तरौ ॥
चक्रमुद्रेयमुद्दिष्टा सर्वदुष्टनिकृन्तनी ।
ग्रासमुद्रां सव्यहस्ते प्रफुल्लकमलाकृतीम् ॥
दर्शयेत् पञ्चवायूनां सव्यहस्तेन नारद ।
कनिष्ठानामिके सम्यगङ्गुष्ठाग्रेण योजयेत् ॥
प्राणमुद्रा समाख्याता प्रथमा मुद्रिकोत्तमा ।
योजयेत् तर्जनीमध्यामपानस्याऽथ मुद्रिका ॥
मध्यमानामिके तद्वद् व्यानमुद्रा प्रकीर्तिता ।
तर्जनीमध्यमाऽनामा तद्वन्मुद्रा तुरीयका ॥

सर्वाभिरङ्गुलीभिश्च पञ्चमा मुद्रिका मता।
स्वकीयैर्मनुभिर्युक्ता पञ्चमुद्रा प्रकीर्तिता॥
प्राणस्त्रंज्ञस्तथापानो व्यानोदानमनुस्ततः।
समानेडायुताः सर्वप्रणवाद्याद्विठान्तिकाः॥
पञ्चमन्त्राः भवन्तीह क्रमेण मुनिसत्तम"॥

लक्षणसङ्ग्रहे –

"मणिबन्धस्थितौ कृत्वा प्रसृतालिकौ करौ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयुगलं मिलित्वान्तः प्रसारयेत्॥
सप्तजिह्वाग्रमुद्रेयं प्रिया वैश्वानरस्य हि"॥

कुलार्णवे –

"अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु बटुकस्य बलिः स्मृतः।
तर्जनीमध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्योगिनीबलिः॥
अङ्गुलीभिश्च सर्वाभिरुक्तो भूतबलिः प्रिये।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु क्षेत्रपालबलिर्भवेत्॥
अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां तु राजराजेश्वरस्य च"।

इयमेव गणेशस्यापि बलिमुद्रा।

"अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां च गणपस्य बलिं हरेत्"॥

इति ज्ञानार्णवात्।

पद्मवाहिन्याम् –

"वृद्धाभ्यां चाङ्गुलीर्बद्ध्वा तर्जन्यौ दण्डवत् सृजेत्।
अग्रे वामतः पृष्ठे दक्षमाकर्षयेच्छनैः॥

नाराचमुद्रा सम्प्रोक्ता योज्या बलिविसर्जने"॥

लक्षणसङ्ग्रहे –

"अधोमुखे वामहस्ते ऊर्ध्वास्यं दक्षहस्तकम्।
कृत्वाङ्गुलीरङ्गुलीभिः संयोज्य परिवर्तयेत्॥
एषा संहारमुद्रा स्याद् विसर्जनविधौ प्रिये।
वाममुष्टेस्तु तर्जन्या दक्षमुष्टेस्तु तर्जनी॥
संयोज्याङ्गुष्ठकाग्राभ्यां तर्जन्यग्रं स्वके स्पृशेत्।
एषा पाशाह्वया मुद्रा कथिता परमेश्वरी॥
हस्तौ तु सम्मुखीकृत्वा लग्नौ च सम्प्रसारितौ।
अङ्गुल्यौ मध्यमे भूयः संलग्ने सम्प्रसारिते॥
गदा मुद्रेयमाख्याता सर्वशत्रुनिवर्हिणी।
मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्॥
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं कथिता परमेश्वरि।
ऊर्ध्वास्यां वामतर्जन्यामधोवक्त्रां परां लिखेत्॥
तिर्यङ्मध्ये भवेत् सा तु वज्रमुद्रा महेश्वरि।
ऊर्ध्वास्यां वामतर्जन्यामधो-वक्त्रां परां न्यसेत्॥
तिर्यङ्मध्ये भवेत् सा तु वज्रमुद्रा महेश्वरि।
कनिष्ठानामिके बद्ध्वा स्वाङ्गुष्ठेनैव दक्षतः॥
शिष्टाङ्गुली तु प्रसृते संयुक्ते खड्गमुद्रिका"॥

इति मुद्राविवरणम्।

॥ अथ जपकाले विहितासनानि ॥

तत्र गोरक्षसंहितायाम् –

"जान्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तदुदीरितम् ॥
गुल्फौ च वृषणस्याधः शीचन्या पार्श्वयोः क्षिपेत्।
पार्श्वपादौ च पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा तु निश्चलः ॥
सिद्धासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविषापहम्।
एकपादमथैकस्मिन् विन्यस्योरुणि संस्थितम् ॥
इतरस्मिँस्तथा चोरौ वीरासनमुदीरितम्।
वामपादव्यथादाय दक्षिणोरौ प्रविन्यसेत् ॥
तथैव दक्षिणं पादं सव्यस्योपरि विन्यसेत्।
पद्मासनं भवेदेतत् सर्वेषामपि पूजितम् ॥
स्वस्तिकं पद्मकं वीरं सिद्धं चेति चतुष्टयम्।
जपे प्रशस्तमन्येषां प्रसङ्गादेव कीर्तितम्" ॥

इत्यासनविधिः।

"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ पञ्चत्रिंशत्तमोऽगमत्" ॥

॥ श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे पञ्चत्रिंशस्तरङ्गः ॥ ३५ ॥

॥श्रीः॥

अथ षट्त्रिंशस्तरङ्गः

॥ अथ मन्त्रपारायणक्रमः ॥

स तु श्रीधर्माचार्यैः स्वकीये लघुस्तवे मायाकुण्डलिनीत्यादि-श्लोकेन सूचितः।

यथा –

"मायाकुण्डलिनी क्रियामधुमती काली कला मालिनी
मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रीङ्कारी त्रिपुरा परा परमयी माता कुमारीत्यसि" ॥ इति ।

माया ह्रीं, कुण्डलिनी १, क्रिया क्लीं, मधुमती शुद्धा-बिन्दुयुता-विसर्गयुक्ता बिन्दुविसर्गयुक्ता चेति, चतुर्विधमातृकाः। काल्यादीनि दश नामानीति। शक्त्याद्यः दश विद्याः। एभिः श्रीमूलविद्यायाः श्रीमदाराध्य-चरणकृपाप्राप्तो मन्त्रपारायणक्रमः प्रदर्श्यते ।

तत्र कृतप्रातराह्निकक्रियः, विविक्ते स्थाने स्वासनमास्तीर्य, ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः इति तत् सम्पूज्य, तत्र प्राङ्मुखः उपविश्य, गुरुगणपतिपरदेवताः प्रणम्य, मूलविद्यया प्राणायामत्रयं कृत्वा, सङ्क्षेपतो भूतशुद्धिप्राणप्रतिष्ठां मातृकान्यासं मूलविद्यया ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासं चतुरासनवाग्देवताष्टकन्यासं च विधाय, देवीं ध्यात्वा, मानसैरुपचारैः सम्पूज्य श्रीपरदेवतात्मकपारायणजपमारभेत ।

॥ काली ॥

तत्र तां मूलविद्यां ह्रीं अ काली सौः मू०, ह्रीं आ काली सौः मू०, ह्रीं इ काली सौः मू०, ह्रीं ई काली सौः मू०, ह्रीं उ काली सौः मू०, ह्रीं ऊ काली सौः मू० ह्रीं ऋ काली सौः मू०, ह्रीं ॠ काली सौः मू०, ह्रीं ऌ काली सौः मू०, ह्रीं ॡ काली सौः मू०, ह्रीं ए काली सौः मू०, ह्रीं ऐ काली सौः मू०, ह्रीं ओ काली सौः मू०, ह्रीं औ काली सौः मू०, ह्रीं अं काली सौः मू०, ह्रीं अः काली सौः मू०, ह्रीं क काली सौः मू०, ह्रीं ख काली सौः मू०, ह्रीं ग काली सौः मू०, ह्रीं घ काली सौः मू०, ह्रीं ङ काली सौः मू०, ह्रीं च काली सौः मू०, ह्रीं छ काली सौः मू०, ह्रीं ज काली सौः मू०, ह्रीं झ काली सौः मू०, ह्रीं ञ काली सौः मू०, ह्रीं ट काली सौः मू०, ह्रीं ठ काली सौः मू०, ह्रीं ड काली सौः मू०, ह्रीं ढ काली सौः मू०, ह्रीं ण काली सौः मू०, ह्रीं त काली सौः मू०, ह्रीं थ काली सौः मू०, ह्रीं द काली सौः मू० ह्रीं ध काली सौः मू०, ह्रीं न काली सौः मू०, ह्रीं प काली सौः मू०, ह्रीं फ काली सौः मू०, ह्रीं ब काली सौः मू०, ह्रीं भ काली सौः मू०, ह्रीं म काली सौः मू०, ह्रीं य काली सौः मू८, ह्रीं र काली सौः मू०, ह्रीं ल काली सौः मू०, ह्रीं व काली सौः मू०, ह्रीं श काली सौः मू०, ह्रीं ष काली सौः मू०, ह्रीं स काली सौः मू०, ह्रीं ह काली सौः मू०, ह्रीं ळ काली सौः मू०, ह्रीं क्ष काली सौः मू०,– इत्थमेकपञ्चाशद् वारं जपित्वा; पुनः मू०, ह्रीं अं काली सौः मू०, ह्रीं आं काली सौः मू०, इत्यादि मू०, ह्रीं क्षं काली सौः इत्थं स–बिन्दुभिर्मातृकाऽक्षरैरेकपञ्चाशद्वारं जपित्वा; पुनः मू० ह्रीं अः काली सौः मू०, ह्रीं आः काली सौः इत्यादि मू०, ह्रीं क्षः काली सौः इत्यन्तं विसर्गसहितमातृकाक्षरैरेकपञ्चाशद् वारं जपित्वा; मू० ह्रीं

अंः काली सौः मू०, ह्रीं आंः काली सौः इत्यादि-मूल० ह्रीं क्षंः काली इत्यन्तं बिन्दुविसर्गसहितमातृकाक्षरैरेकपञ्चाशद् वारं जपेत्।

इति मायाबीजेन सह चतुर्विधमातृकावर्णैः चतुरधिकद्विशतवारं मूलविद्यां जपित्वा; पुनः मू० ऐं अ काली सौः इत्यादि ॐ ३ मू० ऐं क्ष काली सौः इत्यन्तं ५१; पुनः मू० ऐं अं काली सौः मू०, ऐं आं काली सौ० इत्यादि मू०, ऐं क्षं काली सौः इत्यन्तं ५१; पुनः मू० ऐं अः काली सौः मू०, ऐं आः काली सौः मू०, इत्यादि मू०, ऐं क्षः काली सौः इत्यन्तं ५१; पुनः मू० ऐं अंः काली सौः मू०, ऐं आंः काली सौः इत्यादि मू० ऐं क्षंः काली सौः मू०, इत्यन्तं ५१ वारं जपेत्।

इत्थं वाग्भवबीजेन सह चतुर्विधमातृकाक्षरैश्चतुरधिकद्विशतवारं मूलविद्यां जपित्वा; पुनः मू० क्लीं अ काली सौः मू० क्लीं आ काली सौः इत्यादि-मू० क्लीं क्ष काली सौः इत्यन्तं ५१; पुनः मू० क्लीं अं काली सौः मू० क्लीं आं काली सौः मू० इत्यादि ॐ ३ मू० क्लीं क्षं काली सौः इत्यन्तं ५१; पुनः मू० क्लीं अंः काली सौः ॐ ३ मू०, क्लीं आंः काली सौः इत्यादि मू० क्लीं क्षंः काली सौः इत्यन्तं ५१; इत्थं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह मूलविद्यां २०४ वारं जपेत्।

॥ कला॥

पुनः मू० ह्रीं अ कला सौः मू०, ह्रीं आ कला सौः इत्यादि ५१; पुनः ह्रीं अं कला सौः मू०, ह्रीं आं कला सौः इत्यादि ५१; पुनः मू० ह्रीं अः कला सौः मू०, ह्रीं आः कला सौः इत्यादि ५१; पुनःमू०, ह्रीं अंः कला सौः मू० ह्रीं आंः कला सौः इत्यादि ५१; इत्थं २०४ वारं जपेत्।

पुनः मू० ऐं अ कला सौः मू०, ऐं आ कला सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अं कला सौः मू०, ऐं आं कला सौः इत्यादि ५१; ऐं अः कला सौः मू०, ऐं आः कला सौः मू०, इत्यादि ५१; पुनःमू० ऐं अंः कला सौः मू०, ऐं आंः कला सौः मू० इत्यादि ५१; इत्थं २०४ वारं जपेत्।

पुनः मू० क्लीं अ कला सौः मू०, क्लीं आ कला सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं कला सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अः कला सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः कला सौः इत्यादि ५१; इत्थं चतुर्विधमातृकाक्षरैः प्रत्येकं मायावाग्भवकामराजबीजैः सह द्वादशाधिकषट्शतवारं मूलविद्यां जपेत्।

॥ मालिनी ॥

ततः मू० ह्रीं अ मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अं मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अंः मालिनी सौः इत्यादि ५१;

(पुनः) ऐं अ मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अं मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अः मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः मालिनी सौ इत्यादि ५१; (इत्थं २०४) वारं जपेत्।

पुनः मू० क्लीं अ मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः मालिनी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः मालिनी सौः इत्यादि ५१; इत्थं चतुर्विधमातृकाभिः बीजत्रयेण सह ६१२ वारं जपेत्।

॥ मातङ्गी ॥

ततः मू० ह्रीं अ मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः आतङ्गी सौः इत्यादि ५१, मू० ह्रीं अंः मातङ्गी सौः इत्यादि ५१, (इत्थं २०४)।

ततः मू ऐं अ मातङ्गी सौः (इत्यादि ५१;) मू० ऐं अं मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अः मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; (इत्थं २०४)।

ततः मूल० क्लीं अ मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अः मातङ्गी सौः मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः मातङ्गी सौः इत्यादि ५१; (इत्थं २०४) इत्यन्तं ६१२ वारं जपेत्।

॥ **विजया** ॥

ततः मू० (ह्रीं) अ विजया सौः इत्यादि एकपञ्चाशत्; (मू०) ह्रीं अं विजया सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः विजया सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अंः विजया सौः इत्यादि ५१; (इत्थं २०४)

(पुनः) मू० ऐं अ विजया सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अं विजया सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अः विजया सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः विजया सौः इत्यादि ५१। (इत्थं २०४)।

मू० क्लीं अ विजया सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं विजया सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अः विजया सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः विजया सौः इत्यादि ५१; (२०४) इत्थं ६१२ वारं जपेत्।

॥ **जया** ॥

ततः मू० ह्रीं अ जया सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अं जया सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः जया सौः इत्यादि; मू० ह्रीं अंः जया सौः इत्यादि ५१ (२०४)।

मू० ऐं अ जया सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अं जया सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अः जया सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः जया सौः इत्यादि ५१; (२०४)।

मू० क्लीं अ जया सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं जया सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अः जया सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः जया सौः इत्यादि ५१; इत्थं ६१२ वारं जपेत्।

॥ भगवती ॥

ततः मू० ह्रीं अ भगवती सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः भगवती सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अंः भगवती सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अंः भगवती सौः इत्यादि ५१; (२०४)।

मू० ऐं अ भगवती सौः इत्यादि ५१, मू० ऐं अं भगवती सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अः भगवती सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः भगवती इत्यादि ५१; (२०४)

मू० क्लीं अ भगवती सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं भगवती सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अः भगवती सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः भगवती सौः इत्यादि ५१; (२०४) इत्यन्तं ६१२ वारं जपेत्।

॥ देवी ॥

ततः मू० ह्रीं अ देवी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अं देवी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः देवी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अंः देवी सौः इत्यादि ५१; (२०४)

मू० ऐं अ देवी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अं देवी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः देवी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः देवी सौः इत्यादि ५१; (२०४)।

मू० क्लीं अ देवी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं देवी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः देवी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः देवी सौः इत्यादि ५१; (२०४) इत्यन्तं ६१२ वारं जपेत्।

॥ शिवा ॥

ततः मू० ह्रीं अ शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अं शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अंः शिवा सौः इत्यादि ५१; (२०४)।

मू० ऐं अ शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अं शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० ऐ अः शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः शिवा सौः इत्यादि ५१; (२०४)।

मू० क्लीं अ शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अः शिवा सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः शिवा सौः इत्यादि ५१; (२०४) इत्यन्तं ६१२ वारं जपेत्।

॥ शाम्भवी ॥

ततः मू० ह्रीं अ शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अं शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अः शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० ह्रीं अंः शाम्भवी सौः ५१; (२०४)।

मू० ऐं अ शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अं शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अः शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० ऐं अंः शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; (२०४)

मू० क्लीं अ शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अं शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अः शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; मू० क्लीं अंः शाम्भवी सौः इत्यादि ५१; (२०४) इत्यन्तं ६१२ वारं जपेत्।

एवं सम्भूयैकस्मिन् दिने विंशत्युत्तरैकशताधिकषट्सहस्रजपो भवति मूलविद्यायाः।

॥ काली ॥

ततो द्वितीयदिने प्राग्वदासनादि मानसपूजान्ते मू० ह्रीं अ काली ह स्त्रीं स ह्रीं ५१; एवं मू० ह्रीं अं काली ह स्त्रीं स ह्रीं ५१; मू० ह्रीं अः काली ह स्त्रीं स ह्रीं ५१; मू० ह्रीं अंः काली ह स्त्रीं स ह्रीं इत्यादि ५१; (२०४) वारं जपेत्।

मू० ऐं अ काली ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; मू० ऐं अं काली (स) ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; अः काली ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; अः काली ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; (२०४)

मू० क्लीं अ काली ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; मू० क्लीं अं काली ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; एवं अः काली हं स्त्रीं स ह्लीं ५१; अंः काली ह स्त्रीं स ह्लीं इत्यादि ५१; सम्भूय ६१२ वारं जपेत्।

॥ कला ॥

ततः मू० ह्लीं अ कला ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; एवं अं कला ह स्त्रीं स ह्लीं ५१, अः कला ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; अंः कला ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; इत्थं २०४, एवं वाग्भवकामबीजाभ्यां सह ६१२।

॥ मालिनी ॥

ततः मू० ३ ह्लीं अ मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; अं मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; अः मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; अंः मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; इत्थं २०४।

ततः मू० ऐं अ मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; एवं अं मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; अः मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; अंः मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; इत्थं २०४।

ततः मू० क्लीं अ मालिनी ह स्त्रीं स ह्लीं ५१; एवं अं मालिनी ५१; अः मालिनी ५१; अः मालिनी इत्थं २०४; सम्भूय ६१२ वारं जपेत्।

॥ मातङ्गी ॥

ततः मू० ह्लीं अ मातङ्गी ह स्त्रीं स ह्लीं; एवं अं मातङ्गी०; एवं अः मातङ्गी०; अंः मातङ्गी०; २०४।

ततः मू० ऐं अ मातङ्गी ह स्त्रीं स ह्लीं०; एवं अं मातङ्गी०; अः मातङ्गी०; अंः मातङ्गी०; इत्थं २०४।

ततः मू० क्लीं अ मातङ्गी ह स्त्रीं स ह्लीं; एवं अं मातङ्गी०; अः मातङ्गी०; अंः मातङ्गी०; २०४; एवं सम्भूय ६१२।

॥ विजया ॥

ततः मू० ह्लीं अ विजया ह स्त्रीं स ह्लीं; एवं अं विजया०; अः विजया०; अंः विजया०; २०४।

ततः मू० ऐं अ विजया ह स्त्रीं स ह्लीं; एवं अं विजया०; अः विजया०; अंः विजया०; २०४।

मू० क्लीं अ विजया ह स्त्रीं स ह्लीं; एवं अं विजया०; अः विजया०; अं विजया०; २०४; एवं सम्भूय ६१२।

॥ जया ॥

ततः मू० ह्लीं अ जया ह स्त्रीं स ह्लीं अः एवं अं जया०; अः जया०; अंः जया०; २०४।

मू० ऐं अ जया ह स्त्रीं स ह्लीं एवं अं जया०; अः जया०; अंः जया; २०४।

ततः मू० क्लीं अ जया ह स्त्रीं स ह्लीं एवं अं जया; अः जया०; अंः जया०; २०४; इत्थं सम्भूय ६१२।

॥ भगवती ॥

ततः मू० ह्लीं अ भगवती ह स्त्रीं स ह्लीं; एवं अं भगवती; अः भगवती०; अंः भगवती०; २०४।

ततः मू० ऐं अ भगवती ह स्त्रीं स ह्लीं; एवं अं भगवती०; अः भगवती०; अंः भगवती०; २०४।

ततः मू० क्लीं अ भगवती ह स्त्रीं स ह्रीं०; मू० क्लीं अं भगवती०; एवं अः भगवती०; अंः भगवती०; इत्थं ६१२ ।

॥ देवी ॥

ततः मू० ह्रीं अ देवी ह स्त्रीं स ह्रीं; एवं अं देवी०; अः देवी०; अंः देवी०; २०४ ।

ततः मू० ऐं अ देवी ह स्त्रीं स ह्रीं०; एवं अं देवी०; अः देवी०; अंः देवी०; २०४ ।

ततः ॐ मू० क्लीं अ देवी ह स्त्रीं स ह्रीं०; एवं अं देवी०; अः देवी०; अंः देवी०; २०४; इत्थं सम्भूय ६१२ ।

॥ शिवा ॥

ततः मू० ह्रीं अ शिवा ह स्त्रीं स ह्रीं०; एवं अं शिवा०; अः शिवा०; अंः शिवा०; २०४;

ततः मू० ऐं अ शिवा ह स्त्रीं स ह्रीं एवं अं शिवा०; अः शिवा०; अंः शिवा०; २०४;

ततः मू० क्लीं अ शिवा०; अं शिवा०; अः शिवा०; अंः शिवा०; २०४; इत्थं सम्भूय ६१२ ।

॥ शाम्भवी ॥

ततः मू० ह्रीं अ शाम्भवी ह स्त्रीं स ह्रीं०; अं शाम्भवी०; अः शाम्भवी०; अंः शाम्भवी०; २०४;

ततः मू० ऐं अ शाम्भवी ह स्त्रीं स ह्रीं०; एवं अं शाम्भवी०; अः शाम्भवी०; अंः शाम्भवी०; २०४;

ततः मू० क्लीं अ शाम्भवी ह स्त्रीं स ह्रीं०; एवं अं शाम्भवी०; अः शाम्भवी०; अंः शाम्भवी०; २०४ इत्थं सम्भूय ६१२ ।

इत्थं द्वितीयदिनेऽपि सम्भूय ६१२० वारं जपेत्।

ततः तृतीयदिने प्राग्वदासनादिमानसपूजाऽन्ते –

॥ काली ॥

मू० ह्रीं अ काली वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; ततः मू० ऐं अ काली वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४;

ततः मू० क्लीं अ काली वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं सम्भूय ६१२।

॥ कला ॥

ततः मू० ह्रीं अ कला वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४।

ततः मू० ऐं अ कला वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४।

ततः मू० क्लीं अ कला वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं ६१२।

॥ मालिनी ॥

ततः मू० ह्रीं अ मालिनी वौषट्; एवं चतुर्विधमातकृाक्षरैः सह २०४; पुनः मू० ऐं अ मालिनी वौषट्ः एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; पुनः मू० क्लीं अ मालिनी वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं सम्भूय ६१२।

॥ मातङ्गी ॥

ततः मू० ह्रीं अ मातङ्गी वौषट्; अवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४।

ततः मू० ऐं अ मातङ्गी वौषट्०; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४।

मू० क्लीं अ मातङ्गी वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं सम्भूय ६१२ वारं जपेत्।

॥ विजया ॥

ततः मू० ह्रीं अ विजया वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० ऐं अ विजया वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू क्लीं अ विजया वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं सम्भूय ६१२ वारं जपेत्।

॥ जया ॥

ततः मू० ह्रीं अ जया वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० ऐं अ जया वौषट्; एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० क्लीं अ जया वौषट् एवं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं सम्भूय ६१२।

॥ भगवती ॥

ततः मू० ह्रीं अ भगवती वौषट्; इत्यादि चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० ऐं अ भगवती वौषट्; इत्यादि चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० क्लीं अ भगवती वौषट्; इत्यादि चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४ इत्थं सम्भूय ६१२।

॥ देवी ॥

ततः मू० ह्रीं अ देवी वौषट्; इत्यादि चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० ऐं अ देवी वौषट्; इत्यादि चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० क्लीं अ देवी वौषट्; इत्यादि चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं सम्भूय ६१२ वारं जपेत्।

॥ शिवा ॥

ततः मू० ह्रीं अ शिवा वौषट्; इत्यादिचतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० ऐं अ शिवा वौषट्; इत्यादिचतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० क्लीं अ शिवा वौषट्; इत्यादि चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं सम्भूय ६१२ वारं जपेत्।

॥ शाम्भवी ॥

ततः मू० ह्रीं अ शाम्भवी वौषट्; इत्यादि चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४;

मू० ऐं अ शाम्भवी वौषट्; इत्यादिचतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; मू० क्लीं अ शाम्भवी वौषट्; इत्यादिचतुर्विधमातृकाक्षरैः सह २०४; इत्थं सम्भूय ६१२ वारं जपेत्।

एवं सर्वं सम्भूय ६१२०।

अथ चतुर्थदिने प्राग्वदासनादिमानसपूजान्ते।

॥ काली ॥

मू० ह्रीं अ काली आह; मू० ह्रीं आ काली आह; इत्यादि माया-वाग्भव-कामबीजैः प्रतिबीजं, केवलं सबिन्दु-सविसर्ग-सबिन्दुविसर्गयुक्तैः मातृकाक्षरैः सह ६१२ वारं जपेत्।

॥ कला ॥

ततः मू० ह्रीं अ कला आह; इत्यादि प्राग्वद् बीजत्रयपूर्वकं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सह ६१२ वारं जपेत्।।

॥ मालिनी ॥

ततः मू० ह्रीं अ मालिनी आह; इत्यादि प्राग्वत् ६१२।

॥ मातङ्गी ॥

(ततः मू० ह्रीं अ मातङ्गी आह इत्यादि प्राग्वत् ६१२ ।)

॥ विजया ॥

(ततः मू० ह्रीं अ विजया आह इत्यादि प्राग्वत् ६१२ वारं जपेत् ।)

॥ जया ॥

एवं अ जया आह इत्यादि प्राग्वत् ६१२ ।

॥ भगवती ॥

एवं अ भगवती आह इत्यादि प्राग्वत् ६१२ ।

॥ देवी ॥

एवं अ देवी आह इत्यादि प्राग्वत् ६१२ ।

॥ शिवा ॥

एवं अ शिवा आह इत्यादि प्राग्वत् ६१२ ।

॥ शाम्भवी ॥

एवं अ शाम्भवी आह इत्यादि प्राग्वत् ६१२ । इत्थं सम्भूय ६१२० वारं जपेत् ।

ततः पञ्चमदिने प्राग्वदासनादि मानसपूजान्ते, ॐ मू० ह्रीं अ काली ह स क्लीं ह् सौः; एवं बीजत्रयादिचतुर्विधमातृकाक्षरैः सह काल्यादि दशनामभिः प्राग्वत् ६१२० वारं जपेत् ।

ततः षष्ठदिने प्राग्वदासनादिकल्पनान्ते, मू० ह्रीं अ काली ह्रीं इत्यादि प्राग्वत् ६१२० वारं जपेत् ।

ततः सप्तमदिने, मू० ह्रीं अ काली ह ५ ह ६ स ४ इत्यादि प्राग्वत् ६१२० वारं जपेत् ।

ततोऽष्टमदिने मू० ह्लीं अ काली ह्सौः स्ह्रौः सहौः इत्यादि प्राग्वत् ६१२० ।

ततो नवमदिने, मू० ह्लीं अ काली ह स क ल र डै ह स क ल र डीं ह स क ल र डौं इत्यादि प्राग्वत् ६१२० जपं भवति ।

ततो दशमदिने प्राग्वदासनादिमानसपूजान्ते, मू० ह्लीं अ काली ऐं क्लीं सौं इत्यादि प्राग्वत् ६१२० जपं भवति । इति मन्त्रपारायणक्रमः ।

अस्मिन् परायणजपे प्रोक्तक्रमेण दशभिर्दिनैः पर्यायो भवति ।

एवं दशभिर्दिनैः कर्तुमशक्तैः एकदिनस्य जपं पञ्चधा विभज्य, नामद्वयोत्थचतुर्विंशत्युत्तरद्विशताधिकसहस्रसंख्यं प्रत्यहं जपः कार्यः । तदा पञ्चाशद्भिर्दिनैः पर्यायो भवति ।

अत्राप्यशक्तः एकैकनाम्ना प्रतिबीजं चतुर्विधमातृकाक्षरैः सञ्जातद्वादशाधिकषट्शतसंख्यं वा जपः प्रत्यहं कार्यः । तदा शतसंख्यैर्दिनैः पर्यायो भवति ।

एवमुक्तपर्यायत्रयेऽपि एकपर्यायानुसारेण साधकैर्मन्त्रपारायणजपः कार्य इति ।

अत्र पारायणक्रमेण प्रागुक्तनामपारायणवद् अहर्गणादिविचाराऽभावाद् यदा गुरूपदेशः स्यात् तदैवारभ्य, प्रोक्तविधिना साधकैः पारायणजपः कार्य इति ।

अत्र पारायणे काम्यफलादिकं नामपारायणोक्तमेव ज्ञेयम्; पृथक् फलानुक्तेः ।

"एवं यः कुरुते नित्यं मन्त्रपारायणं बुधः ।
भुक्त्वेह भोगानखिलानन्ते देवीपरं व्रजेत् ॥

अथाभिवक्ष्ये सङ्क्षेपादन्ययागविधिक्रमम् ।
साधकानां च सिद्धानां दीक्षितानां शिवागमे ॥
दीक्षितास्त्रिविधाः प्रोक्ताः उत्तमाधममध्यमाः ।
तत्रोत्तमस्य नान्त्येष्टिः सर्वोत्तीर्णात्मदर्शनात् ॥
अधमस्यापि नान्त्येष्टिर्मोचिका पापपञ्जरात् ।
पारिशेष्यादथान्त्येष्टिर्मध्यमस्येति न स्थितिः ॥
अथवा श्रद्धया कुर्यात् सर्वेषामुत्तमो गुरुः ।
स्वात्मशुद्ध्यर्थमेकत्र परत्र कृपयैव हि ॥
साक्षात्करन्ध्रमध्यस्थब्रह्मरन्ध्रविनिर्मितः ।
उत्तमो मध्यमस्यास्य श्रोत्रनासादिमार्गतः ॥
अधमः पायुलिङ्गाभ्यां केवलं नारकी हि सः ।
पैशाचलोकमाप्नोति पायुमार्गविनिर्गतः ॥
आस्येन दैत्यलोकस्थो नासया नरलोकभाक् ।
श्रोत्रेण पितृलोकः स्याद् देवलोकं तु चक्षुषा ॥
करन्ध्रेण शिवस्थानमिति लोकस्य निर्णयः ।
मृतानां कृपयान्त्येष्टिः कर्तव्या देशिकेन तु ॥
परीक्ष्य कालं विधिवद् देशिको मृतिहात्पुरा ।
सप्ताहे वापि पञ्चाहे त्र्यहेऽपि वाङ्कुरार्प्यणम् ॥
विधाय गात्रमानीय भैरवान् योगिनीस्तथा ।
समभ्यर्च्य गुरुं पश्चादासीनं योगविष्टरे ॥

कृत्वा च प्रणतिं सम्यक् पुष्पाञ्जलिपुरःसरम्।
इति विज्ञापयेद् दीनो जानुभ्यामवनींगतः॥
देवदेव महादेव करुणालय शङ्कर।
नित्यानन्द निराधार निराकुल निरञ्जन॥
आज्ञया तव देवेश सिद्ध्यत्येव ममेप्सितम्।
तथापि शिव सर्वज्ञ यानि दुश्चरितानि मे॥
प्रमादादथवा ज्ञानात् तानि सर्वाणि सर्वदा।
क्षमस्व परमेशानदासोऽहं तव चाव्यय॥
इति विज्ञाप्य गुरवे दिव्यागमपुरःसरम्।
स्वार्जितं द्रव्यजातं यत्तत्सर्वं विनिवेदयेत्॥
त्वयाज्ञयार्जिता ह्येते त्वदर्थं विनियोजिताः।
इत्युक्त्वा प्रणमेद् भूयो गुरुं भक्तिपरायणः॥
गुरौ व्याप्ते प्रतिष्ठाप्य पादुकां तस्य पीठतः।
समभ्यर्च्य यथान्यायं सर्वं तत्र समाचरेत्॥
पुत्रशिष्यादिभिः सर्वं कारयेच्च विचक्षणः।
स्वयं कर्तुमशक्तश्चेत् सर्वथा तद्दिने पुनः॥
तत्प्रसादं महायासात् स्वीकर्तव्यं मनीषिभिः।
अवाशिष्टं तु सङ्गृह्य चतुर्धा च विभज्य तत्॥
औरसाय स्वपुत्राय दद्याद् भागद्वयं ततः।
गोत्रिभ्यः एकमेकं तु स्वस्याऽन्त्येष्ट्यर्थमादिशेत्॥

श्रीचक्रं पूजयेत् तावद् यावत्पञ्चत्वमाप्नुयात् ।
उत्क्रान्तिकाले तत्कर्णे जपेत्तद्गुरुपादुकाम् ॥
चरणत्रयमन्त्रं च विद्याद्वयमथो गुरुः ।
तत्तत् समयनिष्ठानां तत्तन्मन्त्रं जपेद्बुधः ॥
यस्मिन्निष्ठा परा तस्य तत्कर्णे सर्वथा जपेत् ।
अनुसन्धानबाहुल्यात् तत्र चित्तलयो भवेत् ॥
श्रीभूतिराजलब्धानि श्रीशम्भुवदनांबुजात् ।
वाक्यानि ब्रह्मविद्याया प्रणवैः पुटितानि च ॥
मुक्त्यैककर्मभूतानि तत्तत्स्थानगतानि च ।
श्रावयेत् परमं हं सं तदेकाऽग्रमनाः गुरुः ॥
श्रुतेषु येषु वाक्येषु हंसस्तु रमसंज्ञकः ।
सदानाघ्रातसंसारपरब्रह्मणि लीयते ॥
अथोच्यते ब्रह्मविद्या सद्यः प्रत्ययकारिका ।
शिवश्रीभूरितज्ज्ञाय यां विद्यां विनिवेदयेत् ॥
सर्वेषामेव भूतानां मरणे समुपस्थिते ।
यथा पठितयोत्क्रम्य जीवो याति निरञ्जनम् ॥
या ज्ञातिनोऽपि सम्पूर्णकृत्यस्याऽपि श्रुता सती ।
प्राणविच्छेदनान् मृत्युव्यथां सद्यो व्यपोहति ॥
यामाकर्ण्य महामोहविवशोऽपि क्रमागतः ।
प्रबोधवज्रसामुख्यमभ्येति रभसा स्वयम् ॥
तारो माया वेदमाया (वेदकला) मातृकायोनिचात्मकम् ।
प्रतिवाक्यं यदाऽऽद्यन्ते योजितं परिपठ्यते ॥

ॐ ह्रीं ह् स् ख् फ्रें अं ह् स् क्ष् म् ल् व् र् यूं। इति निष्कलाब्रह्मविद्या। एनां तु वक्ष्यमाणेष्वाद्यन्ते विनियोजयेत्।

– ॐ ह्रीं ह् स् ख् फ्रें अं ह् स् क्ष् म् व् ल् व्र्यूं परमपदात्वमिहागतः सनातनः। जहिहि देहान्तं। पादाङ्गुष्ठादिविभो निबन्धनं जहिह्युग्रं हसक्षमलवरयूं अं ह स ख फ्रें ह्रीं ॐ।

ॐ गुल्फान्तेजानुगतं जत्रुस्थं बन्धनं तथा। मेढ्रे त्वं जहिहि पुरमग्र्यं मध्यं निबन्धनात् हृत्पद्मात् समुत्तिष्ठ हंसहयग्रीव च विभा। सदाशिवस्त्वं सर्गेषु परोसि जीवाख्यः। रवि-सोम-वह्नि-सं घट्ट दिव्यबिन्दुदेहो ह ह ह समुत्क्राम ५५।

ॐ हंस महामन्त्रमय सनातनस्त्वं शुभाशुभापेक्षी। मण्डलमध्यनिविष्टः शक्तिमहासेतुकारणमहार्थः कमलोभयविनिविष्टः प्रबोधमायाहि देवता देह ५५।

ॐ अज्ञानात्वं बद्धः प्रबोधितोत्तिष्ठ देव-देव। देहजतालु साह्वयान्तं ह्यौदुम्बरघटितमहाद्वारं। प्राप्य प्रयाहि हंहो हंहो वामदेव पदम् ५५।

ॐ ग्रन्थीश्वर परमात्मन् शान्तमहातालुरन्ध्रमासाद्य।
उत्क्रमदेह-महेश्वर निरञ्जनं शिवपदं प्रयाह्याशु!।५५।

ॐ आक्रम्य धर्ममार्गं प्राणापानौ समाहृत्य,
धर्माधर्मौ त्यक्त्वा नारायण याहि शान्तान्तम्।५५।

ॐ हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे रुद्र शिवोसि वासुदेवस्त्वमग्नीषोम सनातन मृत्पिण्डं जहिहि हे महाकाश ५५।

ॐ अङ्गुष्ठमात्रममलं आवरणं जहिहि हे महासूक्ष्म ५५।

ॐ पुरुषत्वं प्रकृतिमयैः बद्धोऽहङ्कारतन्तुना बन्धैः।
अभवाभव नित्योदित परमात्मँस्त्यज सरागमध्वानं।५५।

ॐ ह्रीं हुं मन्त्रशरीरमविलम्बमाशु त्वमेहि देहान्तम्।

तदिदं गुणमयमुत्यज त्वं षाट्कोशिकं देहम् ।५५।

ॐ ह्लीं हूं मन्त्रशरीर अविलम्बमाशु त्वमेहि देहान्तम् ।५५।

ॐ त्यज देहं भूतमयं प्रगृह्यतां शाश्वतं महादेह

मण्डलममलमनन्तं त्रिधास्थितं गच्छ भित्त्वैतत् ।५५॥

इति श्रीनिष्कलाब्रह्मविद्या ।

ज्ञानी चेत् स्वमेवासून् नियम्य प्रजपेत्तदा ।
अन्यथा शृणुयाद्वापि तदैकाग्रमनाः भवेत् ॥
निर्वाणविद्यानिरतो निर्वाणपदभाग् भवेत् ।
मृते तस्मिन्नथान्त्येष्टिकर्ता स शिवसंयुतः ॥
स्नात्वा सम्यगलङ्कृत्य नित्यकृत्यं यथाविधि ।
विधायानन्दसम्पूर्णः कृत्वा न्यासादिकं तनौ ॥
अभिमन्त्र्य जलं पश्चात् पञ्चश्लोकैर्गुरूक्तितः ।
पिण्डं संशोधयेद् विद्वानथवा रत्नपञ्चकैः ॥
अथवा दीपनीमुक्त्वा ज्वालामालिन्यनन्तरम् ।
व्योमं षष्ठस्वराऽर्द्धेन्दुयुतमस्त्रान्तिको मनुः ॥
मायाबीजान्तिमः प्रोक्तः शोधकः सर्वदेहिनाम् ॥

ॐ ह्लीं ह् स् ख् फ्रें अं ह् स् क्ष् म् ल् व्र् यूं ऐं दीपनी ज्वाला-मालिनि हूं हंसः फट् ह्लीं ह् स् ख्फ्रें ल व र यूं अं ह् स् ख् फ्रें ह्लीं ॐ । इति दीपनीविधिः ।

एवं विशोधिते देहे शक्तिचालनयोगतः ।
नेत्ररन्ध्रादिमार्गेण लोकोत्तरविनिर्गताम् ॥
आकृष्य स्वापयेत् पूतपिण्डे तु गुरुवाक्यतः ।
वियद्वह्नित्वगारूढबिन्दुमुच्चार्य मोक्षदे ॥

चक्षुरादि पदान्तो नु प्रेतनाम त्वथोच्चरेत्।
आवाहयामीत्यनेन सपञ्चप्रणवेन वै॥

"प्रूं मोक्षे देवसुरादिपदे देवदत्तमावाहयामि ५"।

मन्त्रेणावाहयेत् प्रेतं सर्गादिभ्यो निराकुलम्।
अमुष्येत्यादिमन्त्रेण प्रतिष्ठाप्यसमीरणीम्॥
अङ्गं सङ्कल्पयेत् पश्चान्मायां षट्दीर्घजातिभिः।
एकसूत्राभिसंवीतप्रतिष्ठाप्यघटं पुनः॥
अभ्यर्च्योक्तेन मार्गेण पिण्डं समापयेत् ततः।
आदाय पूजितां पश्चात् वर्धनीमस्त्ररूपिणीम्॥
सर्वतीर्थमनुस्मृत्य तत्तौयैरभिषेचयेत्।
भस्मस्नानं ततः कुर्यात् परमेष्ठिमनुस्मरेत्॥
पिण्डं दक्षिणमूर्द्धानं न्यस्य दर्भास्तरैः पुनः।
नव वस्त्रत्वगालेपैरलङ्कृत्याथ भूषणैः॥
तस्मिन् पिण्डे न्यसेत् पश्चात् मन्त्रजातमशेषतः।
अभ्यर्च्य क्रममुद्वास्य सव्याप्तिगुरुपादुकाम्॥
सम्यग्विमानं सङ्कल्प्य संस्थाप्याऽत्र विचक्षणः।
ग्रामं प्रदक्षिणीकृत्य शङ्खभेर्यादिनिःस्वनैः॥
प्रेतस्थानं प्रविश्याथ दक्षिणोत्तरमायतम्।
उपलिप्य समां भूमिं लाजाक्षततिलानपि॥
विकीर्य सर्षपात् प्रोक्ष्य विमानं तत्र विन्यसेत्।
संस्थाप्य तत्र चित्याग्निं परिस्तीर्य विलोमतः॥

पात्राण्यासाद्य विधिवद् दक्षिणे विष्णुदैवतम् ।
प्रणीतापात्रमासाद्य सम्पूज्य कुसुमादिभिः ॥
दर्भैराच्छादितं धीमान् वह्निकोणे प्रविन्यसेत् ।
दक्षभागे यजेद्देवं भैरवं मण्डले क्रमात् ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन कृत्वा जिह्वादिकल्पताम् ।
तिलतण्डुलसम्मिश्रं सम्पाद्य चरुकं पुनः ॥
मृत्युञ्जयेन सम्मन्त्र्य पञ्चश्लोकैर्विशेषतः ।
साज्येन चरुणा पश्चात् पञ्चरत्नैर्विशेषतः ॥
जुहुयात् न्याससम्प्रोक्तैः स्वाहान्तैः सुसमाहितः ।
मूलविद्याद्वयं जप्त्वा प्रत्येकं सप्त सप्त च ॥
हुतक्रमं सावरणं विलोमेन विधानतः ।
एवं विलोमतो होमान्न्यस्तमन्त्राद् गुरोस्तनौ ॥
क्रमेण विलयं कुर्यात् सूक्ष्मपुर्यष्टकात्मनि ।
हुत्वा वाग्भवमन्त्रेण स्वाहान्तेन विचक्षणः ॥
पुनश्च विद्यया हुत्वा तत सूति-लयात्मिकाम् ।
इष्टिं संन्यासिनां कुर्यात् क्रमेण व्याप्तिभाजनम् ॥
ततस्तत्त्वानि सूक्ष्माणि विलोमेन विधानतः ।
तत्राऽधीशेषु संयोज्य सर्वामात्मनि योजयेत् ॥
सूक्ष्मरूपेणात्मगतपुण्यपापे सदा ह्ययम् ।
नाशयेत् कर्म शिष्यस्य भयभक्षणहोमतः ॥

"५ ख ट क स खर यूँ फ्रुं फुट् शिशोरात्मगतपुण्यपापराशिं नाशयामि स्वाहा ५" ।

एवं स्थूलक्रमं दत्वा सूक्ष्मलीनं विभावयेत्।
विलोमेन क्रमेणैव सूक्ष्मं चापि चरेत् तथा॥
एवं बिन्दौ समायोज्य क्षीणं शिष्यमलत्रयम्।
पूर्णाहुतिप्रयोगेण पूजयेत् परमे पदे॥
शिवशक्त्यात्मके शुद्धे पुनरावृत्तिवर्जितेः।
सच्चित्सुखमये साक्षात् तत्त्वातीते निजे पदे॥
इति संज्योज्यते साक्षात् गुरुणा परमे पदे।
सन्त्यज्य मलकालुष्यं शम्भुभावाय कल्पते॥
आज्येन जुहुयात् पञ्च श्लोकैरधः क्रमात्।
अनुलोमविधानेन प्रायश्चित्ताय चास्तिकः॥
देहमानेन शिष्यस्य शयनं परिकल्पयेत्।
वह्नेर्दक्षिणदिग्भागे कुलवृक्षसमुद्भवैः॥
ककुभिर्दक्षिणाग्रं तु समिद्भिर्वाथ बिल्वजैः।
दर्भैर्वा शयनं कृत्वा त्रिगुणीकृततन्तुना॥
नव तन्वावेष्टयित्वा चन्दनागुरुपूर्वकैः।
कृत्वा चितान्वितं कायं नववस्त्रेण वेष्टयेत्॥
पद्मं त्रिकोणषट्कोणकर्णिकं साष्टपत्रकम्।
सोर्ध्वरेखं विधायात्र पुष्पाण्यपि विकीर्य च॥
प्रेतं दक्षिणमूर्धानं विन्यस्यात्र सुदृष्टिकः।
रक्षामन्त्रेण सङ्कल्प्य ज्वालामालिनीविद्यया॥
प्रज्वाल्याघोरमन्त्रेण दाहयेत्पादतो बुधः।
अघोरास्त्रेण मन्त्रेण तथा पाशुपतेन वा॥

यावद् भस्मीभवत्येतत् तावद्धोमो विधीयते।
प्राप्ताः ये गोत्रिणस्तत्र सर्वतस्ते समागताः॥
स्तोत्रमन्त्रजपं कुर्युः प्रयतायतकर्मणः।
विभाव्य कर्मतः प्रेतं भक्षितं योगिनां गणैः॥
विद्याद्वयजपं कुर्यान्निश्चलेनान्तरात्मना।
स्तुत्वा पश्चाद् यथाशास्त्रं स्वक्रमं सम्यगर्चयेत्॥
रक्षयेत् च चितावह्निं यावदस्थिसमुच्चयम्।
दिवसे सप्तमे वह्निं घृतेन पयसाऽथवा॥
निर्वाप्यास्थीनि पादाद्यं नवधा मस्तकावधि।
क्रमात् सङ्गृह्य निक्षिप्य पात्रे संवेष्ट्य वाससा॥
नवेन भस्म प्रक्षिप्य नद्यास्तोयाशयेऽपि वा।
देवमातृगृहे चाथ स्वगृहे वास्थिभाजनम्॥
खात्वा निधाय तस्योच्चैर्मेखलात्रयसंयुतम्।
पीठं सङ्कल्प्य शिष्यो वा कनिष्ठो वा विधानवित्॥
त्रिसन्ध्यमर्चयेत् पीठे विधिवद् गुरुमण्डलम्।
एकादशे दिने कृत्वा सम्यगुत्सवमास्तिकः॥
सम्यक् पात्रं प्रतिष्ठाप्य हेतुनापूर्य सादरम्।
स्वर्णरत्नादिकं तत्र विनिक्षिप्य यथाबलम्॥
समयाचारसम्पन्नं नित्यपूजापरायणम्।
योग्यं देशिकमानीय सम्पूज्याऽस्मै निवेदयेत्॥

पूर्तपूजां मृतदिने प्रतिमासं समाचरेत्।
सम्पूर्णे वत्सरे कुर्यात् महोत्सवमतन्द्रितः॥
अस्तिभाजनमुद्धृत्य पश्चाद् देशिकपुङ्गवः।
नद्यां समुद्रगामिन्यां निक्षिपेत् निखनेत्तु वा॥
नदीतीरेऽथवान्यत्र तत्र वृक्षान्निरोपयेत्।
(स्थापयेत्) प्रतिमां वाऽपि कृत्वा शिल्पिभिरन्वितः॥
पादुकां वा शुभे देशे सुलग्ने सुमुहूर्तके।
पूर्वोक्तेन विधानेन संयोज्य परमे पदे॥
भावयेन्मनसा पश्चात् शम्भुत्वं तस्य चास्तिकः।
ये केचित् पशुमार्गस्थाः गुप्ताचाराः कुलागमे॥
तेषामपि मृते कुर्याद्दर्भैः पञ्चाशता गुरुः।
तत्पूर्वं कूर्चमावाह्य तत्र प्रेतं विधानतः॥
पूर्वोक्तेन विधानेन तत्र सर्वं समाचरेत्।
जीवतामेव शिष्याणामर्थवान् कृपया गुरुः॥
कुर्याद्द्वार्थनयो तेषामन्त्येष्टिं कुलशासनः।
सर्वलक्षणसम्पन्नं शालिपिष्टमयं शुभम्॥
देहं कृत्वा समावाह्य शिष्यात्मानं विधानतः।
तस्मिन् पिण्डे न्यसेत् पूर्वं मन्त्रं पूर्ववदेव तु॥
पश्चाद् विलोममार्गेण हुत्वा स्थूलक्रमं बुधः।
पराक्रमे निवेश्याथ (सर्वथा कार्या) मृतानाममृतेन तु॥
साक्षाच्छाम्भवसिद्धानामन्त्ययोगो विधीयते।
तथापि कुर्यात् सिद्ध्यर्थमात्मनः सर्वथास्तिकः॥

.... पिण्डं पिष्टमयं ततः।

स्रुचि निक्षिप्य जुहुयात् स्रुवेणाच्छाद्य देशिकः॥

पूर्णाहुतिप्रयोगेण प्रणवैरेव पञ्चभिः।

गुरुमुद्दिश्य कर्तव्या शिष्यैर्होतृभिरेव वा॥

अन्त्येष्टिः सर्वथा कार्या मृतानाममृतेन तु।

साक्षाच्छाम्भवसिद्धानामन्त्ययोगो विधीयते॥

तथापि कुर्यात् सिध्यर्थमात्मनः सर्वथास्तिकः।

अथवा मनसा कुर्यादेकान्ते स्वयमास्तिकः॥

मानसं परमोत्कृष्टं योगिनीनामिति स्थितिः।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मानसक्रममाचरेत्॥

इत्यन्त्येष्टिविधिः।

इति गदितमशेषं त्रैपुरं ब्रह्मविद्या

यजनजपहुतानां शास्त्रदृष्टं विधानम्।

गुरुचरणसरोजाराधनाल्लभ्यमेतत्

पशुषु परमगोप्यं भावितं सिद्धसङ्घैः॥

श्रीविद्यातत्त्ववेत्ता जगति करुणयोपात्तकायः शिवो यः

सः श्रीमान् सुन्दराख्यः क्षितिसुरतिलकः सच्चिदानन्दनाथः।

तच्छिष्यः श्रीनिवासो द्रविडविषयजस्तत्प्रसादाऽऽत्ततत्त्वः

श्रीविद्यानन्दनाथः परशिववचसां भाववेत्ता विधाय॥

"सौभाग्यरत्नकर"नामधेयं
सौभाग्यविद्यादिसुमन्त्ररत्नैः।
अलङ्कृतं ग्रन्थवरं तरङ्गैः
सुशोभितं शैवसुतत्त्व(३६)संख्यैः॥
अध्यापयन्नात्मविदात्मशिष्यान्
अभ्यर्थिनोऽन्यैरपि तान्दुष्टान्।
क्षेत्रे विमुक्ते शिवराजधान्याम्
आस्ते निजाराध्यँनिदेशवर्ती॥

यथा पित्रोर्मुदे भूयादश्लीलमपि भाषितम्।
बालस्य महतामस्तु ममापि भणितं तथा॥

त्यक्त्वा कुलं कुलवधूः पुरमध्यवीथ्या
गत्वा कुलं मधु निपीय यथेप्सितं या।
मत्तापरं पुरुषमेत्य तदीयसङ्गात्
तुष्टा पुनः स्वकुलमेति पुनातु सा माम्॥

"श्रीविद्यानन्दनाथेन शिवयोः प्रियसूनुना।
कृते सौभाग्यरत्नाब्धौ षट्त्रिंशोऽगात् तरङ्गकः"॥

॥श्रीसच्चिदानन्दनाथचरणारविन्दद्वन्द्वान्तेवासिना श्रीविद्यानन्दनाथेन विरचिते सौभाग्यरत्नाकरे षट्त्रिंशस्तरङ्गः॥३६॥

॥ श्रीसौभाग्यरत्नाकरः समाप्तिमगमत्॥
॥श्रीराजराजेश्वरीमहात्रिपुरसुन्दरीकामेश्वराभ्यां नमः॥

सौभाग्यरत्नाकरे समुद्धृताः ग्रन्थाः ग्रन्थकाराश्च

क्रमः	नाम	पृष्ठाङ्काः
१-	आनन्दगिरिः	४८२
२-	उड्डीशमतम्	३७
३-	ऋग्वेदः	१९३
४-	ऋग्वेदीयखिलसूक्तम्	१९३
	अ- कादिमतम्	२४२, २४३
५-	कामराज सम्प्रदायः	२४१
६-	कामशास्त्रम्	२१६
७-	कालिकापुराणम्	४२७
८-	कुब्जिका	१६६, १७३
९-	कुम्भसम्भवः	४१६
१०-	कुलचूडामणिः	२२२
११-	कुलप्रकाशतन्त्रम्	४१०
१२-	कुलमूलार्णवः	४३१, ४८४
१३-	कुलमूलावतारः	४६, ४०९, ४३०, ४८४, ४८७,
१४-	कुलार्णवतन्त्रम्	७६, १५०,१९३, ३००, ३०८, ३४२, ३४३, ३४५, ३४७, ३९५, ४१७, ४८६, ५६०
	गृहकल्पम्	३७४
१५-	गोरक्षसंहिता	५६२
१६-	गौतमः	४१६

१७- ज्ञानार्णवः ९०, ४०५, ४०६, ४०८,
४२८, ४५४, ४५७, ४५९,
४६३, ४७२, ४७४, ४७७,
१८- ज्ञानोन्नयनम् ४८९
१९- डामरः ४८२
२०- तत्त्वसारः ४२७
२१- तन्त्रराजः २७, ४३, ४७, ३१५, ३२०, ३३२,
४३२, ४४१, ४८८, ४९२, ४९७, ५०२,
५०९, ५१३, ५१४, ५१७, ५२०, ५२१,
५२४, ५२८, ५२९, ५३३, ५३६, ५३७, ५४०,
५४१, ५४३, ५४६, ५४८, ५५२, ५५६, ५५८,
२२- त्रिपुरार्णवः १, ८, १२, १८
२३- दक्षिणामूर्त्तिसंहिता ४०६, ४०७, ४०८, ४९२,
४९७, ५०२, ५१०, ५१३,
५१७, ५२०, ५२४, ५२९, ५३३,
५३७, ५४०, ५४३, ५४६, ५५४,
२४- देवीयामलम् २१३, २१४, ४२६
२५- नारदपञ्चरात्रम् ३७५, ३७६, ३७७, ४२६,
४२७, ४५६, ५५३, ५५९
२६- पञ्चविंशतन्त्रराजपटलम् १२
२७- पद्यवाहिनी ५६०
२८- पिङ्गलामतम् ४५६
२९- पौराणिकः २८८
३०- प्रपञ्चसारः ३३२, ४१०
३१- प्रयोगसारः ३९९, ५५४

३२- ब्रह्मयामलम् २१८
भविष्यपुराणम् ३८३
३३- भूतिराजः ५८०
३४- भैरवयामलम् ११०
भैरवीतन्त्रम् ३६०
३५- मन्त्रराजः ४८३
३६- मन्त्रतन्त्रप्रकाशः ४०४, ५५४
३७- मन्थानभैरवः ३३७
३८- महाकपिलपाञ्चरात्रम् ३२५
३९- मृडानीतन्त्रम् ४२६
४०- यज्ञवाहिनी ५५५
४१- रत्नसागरः ४०, ४८५
४२- रुद्रयामलम् ११, ४४, १०४, ४१४, ४८०, ४८४
४३- लक्षणसङ्ग्रहः ५५५, ५५८, ५६०, ५६१
४४- लक्षणसागरः ४४, ४६, ४७
४५- लघुस्तवः ५६३
४६- लोपामुद्रासम्प्रदायः २४२
४७- वामकेश्वरतन्त्रम् १८७, ४०६, ४७२, ४७८, ५५७
४८- वायवीयसंहिता ४०४, ४५७
४९- विष्णुस्मृतिः ४२६
५०. वैदिकः २८८
५१- वैशम्पायनः ३३९, ४०४
५२- शङ्करः १२२
५३- शारदातिलकम् ३२६, ३७५, ३७६,
३७७, ४१०, ४२५, ४५५

५४-	शिवागमः	५७८
५५-	शिवार्चनचन्द्रिका	३१६
५६-	शैवागमः	४५६
५७-	श्रीक्रमसंहिता	४०६, ४८१
५८-	श्रीविद्यानन्दनाथः	१
५९-	श्रीशम्भुः	५८०
६०-	सच्चिदानन्दनाथः	१
६१-	सारसङ्ग्रहः	४४, ३२६, ३३७, ४५६, ४७३, ४८८
६२-	सिद्धेश्वरीतन्त्रम्	४७८
६३-	सोमशम्भुः	४०१
६४-	सौत्रामणितन्त्रम्	४७
६५-	स्कन्दपुराणम्	३०८
६६-	हंसपारमेश्वरम्	४७४

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः

श्रुतम् मे गोपाय

श्रीजी कम्प्यूटर प्रिण्टर्स